४—क्या उपनिषद् वेद है !

उक्त चारों प्रतिपाद्य विषयों में चौथे- क्या उपनिषद् वेद है ?' इस विषय की पूर्ति भूमिका द्वितीयखण्ड में हुई है। इस विषय के सम्बन्ध में प्रस्तुत खण्ड में दार्शनिक दृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले मतवादों का, एवं आंशिकरूप से वैज्ञानिक दृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले वेद के तात्त्विक स्वरूप का ही प्रतिपादन हुआ है। वेद के वैज्ञानिक स्वरूप के प्रतिपादन के साथ साथ भूमिका-द्वितीयखण्ड में निम्न लिखित विषयों का समावेश हुआ है—

४—वेदस्वरूपमीमांसा (प्रक्रान्त)।

५—उपनिषदों में क्या है !

६—उपनिषद् हमें क्या सिखाते है ?

७—अधिकारी स्वरूप निरूपण।

८—ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों का पारस्परिक सम्बन्ध।

९—औपनिषद ज्ञान के प्रवर्तक कौन थे ?

१०—श्रुतिशब्दमीमांसा, एवं एकेश्वरवाद पर एक दृष्टि।

*—भूमिकोपसंहार

यद्यपि न्यायतः 'उपनिषद्विज्ञानभाष्य' प्रकाशन से पहिले भूमिका-प्रकाशन ही उचित था। परन्तु कई एक विशेष कारणों से ऐसा सम्भव न होसका। उपनिषद्विज्ञानभाष्यों में से खण्डद्वयात्मक, एवं सहस्रपृष्ठात्मक 'ईशोपनिषद्विज्ञानभाष्य' "वैदिकविज्ञानपुस्तकप्रकाशन फण्ड-बम्बई' के द्वारा गतवर्ष प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत भूमिकाखण्ड की प्रकाशना का पात्र भी बम्बई-फण्ड ही है। सम्भवतः भूमिका-द्वितीखण्ड भी बम्बई के शेष फण्ड से प्रकाशित हो जायगा, जिसका कि पूरा विवरण स्वतन्त्ररूप से प्रकाशित किया जा चुका है।

इस के अतिरिक्त गतवर्ष में 'वैदिकविज्ञानप्रकाशनसमिति कलकत्ता' की ओर से गीताविज्ञानभाष्यभूमिका के दो खण्ड और प्रकाशित हुए हैं। पहिला खण्ड 'बहिरङ्ग परीक्षात्मक' है, एवं इस में गीताकार, नाम, मीमांसा, ऐतिहासिकसन्दर्भ, आदि बहुविषयों की मीमांसा हुई है। दूसरा खण्ड 'अन्तरङ्गपरीक्षात्मक' है, एवं इस में दार्शनिक, तथा

जीवनमुक्ति का मूलसूत्र यह उपनिषच्छास्त्र जहां आत्मानन्दप्राप्ति का अन्यतम साधक बन रहा है इसके साथ साथ इसी शास्त्र से हमें समृद्धानन्द प्राप्ति के भी सुगम उपाय उपलब्ध होरहे हैं। ऐहलौकिक, आवश्यक विषयों का अनुगमन करते हुए हम इनकी आसक्ति से कैसे बचें ? इस प्रश्न का समाधान भी जैसा उपनिषच्छास्त्र ने किया है, वैसा अन्यत्र अनुपलब्ध है। और अपने इसी महत्व से यह शास्त्र तीनों आश्रमधर्म्मों का उपकारक बन रहा है। उपनिषच्छास्त्र को केवल आत्मशास्त्र मानते हुए इसे विशुद्ध पारलौकिक, निर्गुणभावों का उद्बोधक मान लेना सर्वथा प्रौढिवाद है। यह ठीक है कि, समस्त उपनिषदों का तात्पर्य्य एकमात्र अद्वयब्रह्म की ओर ही है। परन्तु इसके साथ ही यह भी ठीक है कि, साधकरूप से उपनिषदो ने ब्रह्म के सगुणरूपों को ही अपना लक्ष्य बनाया है। सगुणविवर्त्तों के द्वारा जहां यह शास्त्र लोक-शान्ति का प्रवर्त्तक है, वहां निर्गुण लक्ष्य के द्वारा यह आत्मशान्ति का कारण बन रहा है। इसी हेतु से उपनिषच्छास्त्र हमारे व्यवहारकाण्ड का भी अन्यतम सहायक सिद्ध होरहा है। एवं इसी हेतु के स्पष्टीकरण के लिए उपनिषदों की व्याख्या उपनिषत् प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित की गई है।

'गतानुगतिको लोकः' न्याय का समादर करते हुए उपनिषद्व्याख्या लिखने से पहिले यह संकल्प हुआ कि, उपनिषदों से सम्बन्ध रखने वाले समालोचनात्मक बाह्य विषयों पर कुछ लिखा जाय। इसी सङ्कल्प की पूर्त्ति के लिए व्याख्येय उपनिषदों को लक्ष्य में रखते हुए 'उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका' लिखी गई। इस भूमिका ग्रन्थ में उपनिषदों से सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सभी बाह्य विषयों के स्पष्टीकरण की चेष्टा की गई है। विषय स्पष्टीकरण की दृष्टि से यह ग्रन्थ ८०० पृष्ठों में सम्पन्न हुआ, अतएव इसे दो खण्डों में विभक्त करना सामयिक समझा गया। जिनमें से प्रथमखण्ड पाठकों के सम्मुख उपस्थित है, एवं द्वितीयखण्ड भी यथासम्भव शीघ्र ही प्रकाशित होजायगा। इस प्रथमखण्ड में प्रधानरूप से निम्नलिखित विषयों का समावेश हुआ है—

१—आत्मनिवेदन
२—उपनिषदों के आद्यन्त में मङ्गलपाठ क्यों किया जाता है ?
३—उपनिषद् शब्द का क्या अर्थ है ?

प्रकरणों के आरम्भ से पृथक् पृथक् क्रमाङ्क लग गए हैं। क्रमाङ्कों के अतिरिक्त प्रमाण वचनों की, प्रमाणाङ्कों की, विषयसन्निवेशक्रम की त्रुटियां भी यत्र यत्र होगईं हैं। फिर भी हमें आशा है कि, विषयोपयोगिता की दृष्टि से सहृदय पाठक इन विवशतानुगामिनी त्रुटियों के लिए हमें, तथा सम्पादक को क्षमा प्रदान करदेंगे।

सर्वान्त में विदित-वेदितव्य, अधिगतयाथातथ्य, विद्यावाचस्पति, समीक्षाचक्रवर्त्ती, प्रज्ञावदातश्रममूर्त्ति, श्रीश्रीगुरुचरणों के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण करना भी आवश्यक कर्तव्य हो जाता है, जिनके कि अव्यर्थ अनुग्रह से यह वैज्ञानिक साहित्य बाह्यजगत् की सम्पत्ति बन रहा है। यह स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि, अबतक जो कुछ प्रकाशित हुआ है, एवं आगे जो कुछ भी प्रकाशित होगा, वह गुरुचरणों का पवित्र प्रसाद है। उनके पावन चरणों में बैठ कर अध्ययनकाल में जो कुछ सुना गया, सामान्य सेवा में उस अनन्तश्रुति के जो कण स्थिर रह सके, उन्हीं के आधार पर उस श्रुति को इस स्मृतिरूप में लिपिबद्ध किया गया। "त्वदीय वस्तु गोविन्द ! (मधुसूदन!) तुभ्यमेव समर्पये" के अतिरिक्त इस अकिञ्चन के पास और ऐसी कौनसी वस्तु है, जिसे वह श्रद्धाञ्जलि में भेंट करे। इसी आत्मसमर्पण द्वारा उस महापुरुष के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए प्रस्तावना उपरत होती है।

विजयदशमी आश्विनशुक्लपक्ष सं० १९९७	विद्वद्विधेयः- मोतीलालशर्म्मा-गौडः जयपुरीयः

वैज्ञानिकदृष्टि से आत्मपरीक्षा' हुई है। तीसरा खण्ड कलकत्ते में ही एक सम्पन्न श्रेष्ठि-महोदय के सहयोग से प्रकाशित हो रहा है। इस तृतीय खण्ड में 'ब्रह्मकर्म्मपरीक्षा'—'कर्म्मयोगपरीक्षा' नामक दो विषयों का समावेश हुआ है। यह ग्रन्थ सम्भवतः ८०० पृष्ठों में पूर्ण होगा। और जैसा हमारा अपना विश्वास है, अब तक जितने भी प्रकाशन हुए हैं, उन सब की अपेक्षा प्रकाशन की दृष्टि से भी, एवं उपयोगिता की दृष्टि से भी यह गीताभूमिका-खण्ड अपना एक विशेष स्थान रक्खेगा, जो कि सम्भवतः फाल्गुनमास तक गीताप्रेमियों की सेवामें उपस्थित हो जायगा। अबतक के प्रकाशन कार्य्य का यही संक्षिप्त इतिवृत्त है जिस की कि प्रवृत्ति अबतक 'मधुकरवृत्ति' से ही हुई है।

जिस प्रभूत मात्रा में वैदिकसाहित्य राष्ट्रभाषा में सम्पन्न हुआ है, उस की विशालता देखते हुए अबतक होने वाला कार्य्य 'शाकाय वा स्यात्, लवणाय वा स्यात्' को ही चरितार्थ कर रहा है। जब तक इस महारम्भ कार्य्य को कोई महासहयोग नहीं मिल जाता, तबतक इस के सुव्यवस्थित प्रचार—प्रसार का कोई आयोजन नहीं हो सकता। यद्यपि गत ३—५ वर्षों से अपने आवश्यकतम स्वाध्याय कर्म में बाधा डालते हुए इस आयोजन की स्थिरता के लिए हम यत्र तत्र अनुधावन कर रहे हैं, परन्तु क्षणिक—पिपासा-शान्ति के अतिरिक्त अब तक इस कार्य्य के लिए कोई स्थायी आयोजन नहीं हो सका है। गतवर्ष की कलकत्ता यात्रा में अवश्य ही एक सम्मान्य महानुभाव का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। जैसा कि हमें विश्वास है, यदि स्वाध्याय कर्म्म में वह आकर्षण बाधक सिद्ध न हुआ, तो कलकत्ता ही हमारे कार्य्य का केन्द्र बन जायगा, एवं भविष्य में सब असुविधाएं दूर हो जायंगी।

प्रकाशन के सम्बन्ध में इसलिए विशेष कुछ नहीं कहा जासकता कि, प्रस्तुत भूमिका खण्ड का प्रकाशन हमारे प्रवास-काल में हुआ है अन्यान्य कार्य्यों में व्यग्र रहने के कारण, साथ ही कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले गीताखण्ड की व्यस्तता से इस ओर अणुमात्र भी ध्यान न दिया जासका। यही कारण है कि, प्रस्तुतखण्ड के क्रमाङ्कों में बड़ी अव्यवस्था होगई है। आरम्भ से अन्त तक यद्यपि समानाङ्कव्यवस्था रहनी चाहिए थी परन्तु कुछ तो प्रेसकापी से सम्बन्ध रखने वाली हमारी असावधानी से, एवं कुछ सम्पादक की अनवधानता से प्रतिपाद्य

* श्रीः *

उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका प्रथमखण्ड की संक्षिप्त विषयसूची

* श्रीः *

उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका प्रथमखण्ड की संक्षिप्त विषयसूची

घ—वैज्ञानिकविचार—१—१०४

इति—उ० वि० भूमिकायाः
संक्षिप्तविषयसूचीसमाप्ता

* श्रीः *

उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका प्रथमखण्ड की
विस्तृत–विषयसूची

(१–प्रारम्भिकनिवेदन)–*७६)

क-वैदिकसाहित्य और हमारी मनोवृत्ति-१*२१

ख—वैदिक साहित्य, और पश्चिमी विद्वान् २१-४१

———:o:———

ग—वैदिकसाहित्य, और वैज्ञानिक निदर्शन ४२-७६

इति प्रस्तावना

इति-नव्यन्यायमतप्रदर्शनम्

इति-सांख्यमतप्रदर्शनम्

———:०:———

इति-वैशेषिकमतप्रदर्शनम्

इति-नास्तिकमतप्रदर्शनम्

समाप्ताचेयं दार्शनिकमतमीमांसा

(ग)

—:०:—

हो लोहनार हजारनो, लाला मोघर मस्तकें दीध ॥ जीहो तेहथी पराजव नवि थयो, लाला पण कांय मूर्च्छा कीध ॥ न० ॥ १७ ॥ जीहो अणगमती नारी परें, लाला मूर्च्छा मूकी दूर ॥ जीहो वज्र मुजरें लंकापति, लाला हण्यो पीडा थइ नूर ॥ न० ॥१७॥ जीहो रुधिर जरे मूर्च्छा लह्यो, लाला निगडित कीधो रे दीन ॥ जीहो वडवृक्षें पशुनी परें, लाला बांध्युं बंधन पीन ॥ न० ॥ १९ ॥ जीहो चक्री शक्र पराक्रमी, लाला मूकी तिहां रखवाल ॥ जीहो धैर्य देइ तस सैन्यने, लाला निःशंकित नूपाल ॥ न० ॥ २० ॥ जीहो निज सैन्यें आवी करी, लाला सुख निद्रा करे तेह ॥ जीहो तव शतकंठ चित्त चिंतवे, लाला आणी धर्मस्नेह ॥ न० ॥ २१ ॥ जीहो निजकृत कर्म सहे अहो, लाला सुखदुःख इह पर लोक ॥ जीहो में पराजव ध्यानें कर्यो, लाला तेहनुं फल ए रोक ॥ न० ॥ २२ ॥ जीहो दोष ए माहारो मूलगो, लाला फलीउ मुज ततकाल, जीहो आरंनादिक इंणी परें, लाला फलशे मुज जंजाल ॥ न० ॥ २३ ॥ जीहो राज्य आरंननुं मूल छे, लाला एम करी ते आलोच ॥ जीहो दीक्षा लेउं एम चिंतवी, लाला पंच मुष्टि करे लोच ॥ न० ॥ २४ ॥ जीहो नाव मुनि थया तेहने, लाला शासन देवता ताम ॥ जीहो बंधन छेदीनें दीयो, लाला मुनिवर वेश उद्दाम ॥ न० ॥ ॥२५॥ जीहो द्रव्यनावथी मुनि थया, लाला तिहांहीज काउस्सग्ग ठाय ॥ ॥ जीहो समता दृष्टि करी रह्या, लाला निर्ममनें निर्माय ॥ न० ॥ २६ ॥ जीहो श्रीजयानंदना रासमां, लाला बीजे खंमें रे सार ॥ जीहो पद्मे ढाल त्रीजी कही, लाला धन्य राय रूषि अणगार ॥न०॥२७॥ गाथा ॥ १०४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ आरक्षक आनन थकी, सांनली विस्मित थाय ॥ सेना छत्र संयुत हवे, पोहोतो मुनिवर पाय ॥१॥ तुमें तो मोहोटा माहाव्रती, तुम बल तुमची पाज ॥ अमें न थाये एहवुं, मुनिने कहे महाराज ॥ २ ॥ खमावे खांतें करी, लीलायें लंका जाय ॥ श्रीकंठ सुतनें सोंपतो, राज्य करी तस राय ॥ ३ ॥ आण मनावी आपथी, तेहनी दीधी ताम ॥ कन्या शतनो कर ग्रहे, कीधुं आपणुं काम ॥ ४ ॥ अन्य द्वीप अवनीपति, नमीआ चक्री नाम ॥ वधू सघली लेइ वल्यो, वैताढ्यें विश्राम ॥ ५ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ सोनानी जारी हे ॥ ए देशी ॥

॥ दक्षिण श्रेणी हे, साहेब माहारा सरोवर तीर ॥ मेरा तंबू दीध, सह स्स कन्या तिहां क्रीडतीजी ॥ रूपगुणवंती हे, सा० ॥ निज अनुरक्त, जाणी अपहरी तेह, मनमथ मनमां पीडतीजी ॥ १ ॥ कन्या कंचुकी हे,सा०॥ चक्रीनी वात, जणवे कन्या ताय, तेह आवी संगर करेजी ॥ नाग ते सहु ए, सा० ॥ दक्षिण स्वामि, बहु खेचर करें सेव, वन्हिवेग रथनूपुरेंजी ॥२॥ सहु जइ तेहने हे, सा० ॥ जांखी वात, वन्हिवेग तव दूत, मोकली कहे वरावे इइयुंजी ॥ हरथी कन्या हें, सा० ॥ लीधी ते मूक, नहीं तो करो संग्राम, अन्यायें न करो किश्युंजी ॥ ३ ॥ तेह सांनली हे, सा० ॥ मान्यो संग्राम, नूख्याने जिम आहार, करें निमंत्रणा तिणीपरेंजी ॥ रथनूपुर हे, सा० ॥ नगरें आय, वन्हिवेग पण ताम, सैन्य लेइनें नीसरेजी ॥४॥ बलमदथी तेह हे, सा० ॥ ते दिन जोर, दारुण थयो संग्राम, ते बिहुं लश करनें तिहांजी ॥ वन्हिवेग तव हे, सा० ॥ देखे एम, बहु गज पायक आदि, मरण लह्या प्राणी जिहांजी ॥ ५ ॥ अति दयावंतो हे, सा० ॥ चक्रीनें एम, जांखे वाणी रसाल, आपण अरिहंत मत धणीजी ॥ शुद्ध श्रावक हे, सा० ॥ न घटे एह, जिणें हत्यादिक जीव, समुदय होय मरण जणीजी ॥ ६ ॥ युद्ध करीयें हे, सा० ॥ आपण दोय, वीर मानी करो युद्ध, शाने लोक मरावीयेंजी ॥ शूर न वांछे हे, सा० ॥ जय संविजाग, अंगीकरे दोय ताम, निज निज बलनें गावीयेंजी ॥ ७ ॥ वाणनें खंमे हे, सा० ॥ दंम गदाय, सम विक्रम तेह दोय, लडतां कोइ न हारियोजी ॥ दोय सिंह लडता हे, सा० ॥ जीते न कोय, चक्री पाम्यो खेद, ज्वलतुं चक्र संजारीयुंजी ॥ ८ ॥ आव्युं ततक्षण हे, सा० ॥ हृदयें मारि, मूर्छा लह्यो वन्हिवेग, धरणी पड्यो वायें डुम यथाजी ॥ जाणी साधर्मिक हे, सा० ॥ चक्री ताम, अंचलें घाले वाय, जिम संज्ञा पामे तथाजी ॥ ए ॥ करे लडाइ हे, सा० ॥ धरतां एम, दया हृदयमां जोय, धन्य जिनशासन जग जयोजी ॥ उठ्यो वलियो हे, सा० ॥ जे वज्जकाय, चिर मूर्छा नवि होय, जिम श्रावक स्त्री परि थयोजी ॥ १० ॥ देखी चक्रीनें हे, सा० ॥ चिंते तेह, ए मुज तात समान, करे उपगार एणी परेंजी ॥ एह पराजव हे, सा० ॥ नवि देखंत, दीक्षा लीधी होत्त, जे नव तारणी सुख करेजी ॥

॥ ११ ॥ इण अवसर हे, सा० ॥ चक्रथी मुज, मरण आवत निरधार,तो दुर्गति जातो सहीजी ॥ पुण्य हीननें हे, सा० ॥ सद्गति नांहिं, राजानें तो विशेष, सद्गति आरंनें नहीजी ॥ १२ ॥ चक्री कृपालु हे, सा० ॥ वात्स ल्यवंत, संतोषी ए राय, अवसर योग्य करुं हवेजी ॥ इंम चिंतवी हे, सा०॥ बोले वाणि, ताहारी कृपा अदनूत, एणे आचरणे सूचवेजी ॥ १३ ॥ बां धव साथें हे, सा० ॥ न करुं युद्ध, लीजें माहरुं राज्य, हुंतो दीक्षा आद रुंजी ॥ चक्री बोले हे, सा० ॥ नहीं मुज काम, नोगवो सुखथी राज्य, हुं नवि लेउं ताहरुंजी ॥ १४ ॥ हुंतो इछुं हे, सा० ॥ एक प्रणाम, धुरथी की धो तेह, तव प्रार्थना करी निजपुरेंजी ॥ आव्यो चक्री हे, सा० ॥ निज प र जेह, कन्यानो समुदाय, पांचशें दीये चक्री करेंजी ॥ १५ ॥ लीधी पूरवें हे, सा० ॥ हरखी तेह, आपे तेहना तात, हर्ष करीनें हेजशुंजी ॥ दक्षिण श्रे णिना हे, सा० ॥ सर्व राजान, आवी प्रणमे पाय, देखी संयुत तेजशुंजी ॥ १६ ॥ हयगय नेटण हे, सा० ॥ करता तेह, आज्ञा मानी तास, सहस गमे कन्या दीयेजी ॥ वन्हिवेगनें हे, सा० ॥ आपे ताम, मुख्य नगर जे आठ, हरख धरीनें ते लीयेजी ॥ १७ ॥ बीजा खेटनें हे, सा० ॥ आपे शेष, हवे उत्तर श्रेणी आय, लीलायें जीते नरवरूजी ॥ आपे कन्या हे, सा० ॥ तेह राजान, सहस्र तणे परिमाण, यौवन रूप मनोहरूजी ॥ १८ ॥ पूर्वापर सहु ए, सा० ॥ शोल हजार, राणीनो समुदाय, जीते शेष वैरी वलीजी ॥ इंम जय करीनें हे, सा० ॥ नोगवे राज्य, निजपुर आवी सार, मानुं च क्रीनी रूद्धि मलीजी ॥ १९ ॥ वन्हिवेग हवे हे, सा० ॥ पूर्णसंवेग, गुरु संयो ग अनाव, रहेवुं पड्युं घरमां तिणेजी ॥ महावेग मुनिवर हे, सा० ॥ जे नि ज तात, चउनाणी उद्यान, समवसस्या गुरु तिहां किणेजी ॥ २० ॥ सांन ली हरख्यो हे, सा० ॥ गुरु कनें जाय, प्रणमी गुरुना पाय, तेह पासें व्रत आदरेजी, सातशें पुरुषशुं हे, सा० ॥ सातशें नारि, परवरिउ परिवार, नि रतिचार संयम धरेजी ॥ २१ ॥ श्रीवन्हिवेग हे, सा० ॥ श्रीचंडराय, सहस्रा युध नर नाथ, त्रणे राजवी तिण नवेंजी ॥ पामी केवल हे, सा० ॥ अहो अहो एह, वरीया अव्याबाध, सकल करमनें क्षय थवेजी॥ २२ ॥ लंका पति पण हे, सा० ॥ चारित्र पाली, पंचम नवें लहे सिद्धि, अहो चारित्र महिमा वडोजी ॥ इंम श्रावकनो हे, सा० ॥ साधुनो धर्म, पालतां लहे शि

वशमें, तिणे जैन महिमा ए वडोजी॥२३॥ बीजे खंमें हे, सा०॥ चोथी ढाल, श्रीजयानंदनें रास, चक्रायुध अधिकार एजी ॥ पद्मविजयें हे,सा० ॥ नांख्यो रसाल, सुणतां मंगल माल, होवे जयजयकार एजी॥२४॥ सर्वगाथा ॥१२३॥

॥ दोहा ॥

॥ इण नरतें अवनी तलें, विजयपुर सुवखाण ॥ विधियें कीधी वानकी, स्वर्ग तणी सुख खाण ॥ १ ॥ स्वर्ग अर्थी सज्जन जिके, परगट कीजें पुण्य ॥ आदर करवा एणी परें, निरति कीधी नुन्न ॥ २ ॥ कोट चैत्यनें उंक जे, वापी वनश्री विशेष ॥ जेहनी शोना जोइनें, नाकी थया अनिमेष ॥३॥

॥ ढाल पांचमी ॥ आठे लालनी देशी ॥

॥ तिहां जय नामें राय, युवराजा तस नाय, आठे लाल विजयनामें जितशत्रुनेंजी ॥ १ ॥ पृथिवी पाले न्याय, चंद सूर्य समुदाय, आ० ॥ क्यांहि अनीतितम नवि रहेजी ॥ २ ॥ मित्र शत्रुनें दोय, नुग रूग होय, आ० ॥ क्षिति आपे अचरिज अहोजी ॥ ३ ॥ जयनें विमला नारि, विजयनें कमला धारि, आ० ॥ नयन ते राज्य लक्ष्मी तणांजी ॥ ४ ॥ रति प्रीति दोय नारि, हरदग्ध अनंग विसारि, आ० ॥ सुख अर्थे आवी इहांजी ॥ ५ ॥ एकदिन सूती राति, सुपनें सूअर साक्षात, आ० ॥ हरि सुत खोले आवी रह्योजी ॥ ६ ॥ सूअर मूकी ताम, हरि गयो कोइ वाम, आ० ॥ जागी कहे नरतारनेंजी ॥ ७ ॥ पुत्र ते सूअर समान, होशे कहे राजान, आ० ॥ अन्यनें हरि सम सुत थशेजी ॥ ८ ॥ पण बेहुनें थशे प्रीत, साथें विचरशे नित्य, आ० ॥ सांनली खेद हरख लहेजी ॥ ए ॥ वसुसार जीव तिहां आय, पूरण करी सुर आय, आ० ॥ तेहनी कूखें उपन्योजी ॥ १० ॥ हिंसा झोहादिक नाव, मायनें दोहद प्रनाव, आ० ॥ क्रूरता प्रमुख घणी थइजी ॥ ११ ॥ अनुक्रमें जनम ते थाय, दासी वधाइ खाय, आ० ॥ दान नरिंदें बहु दीयांजी ॥ १२ ॥ जनम महोत्सव करे राय, हरिदर्शन चित्त लाय, आ० ॥ सिंहसार अनिधा ठव्युंजी ॥ १३ ॥ कमला पण एक दिन्न, सूतां रयणी सुपन्न, आ० ॥ सिंह सूअर दीग विहुंजी ॥ १४ ॥ नयन सौम्य बलवंत, उत्संगें रह्यो संत, आ० ॥ कोल गयो अन्य थानकेंजी ॥ १५ ॥ संनलावे नरतार, सांनली हर्षे अपार ॥ आ० ॥ सुपन तणुं फल ते कहेजी ॥ १६ ॥ ताहरे सिंह समान, गुणथी ते असमान, आ० ॥

बीजीनें सूअर सारिखोजी ॥ १७ ॥ वयण सुणीनें तेह,हर्षवंती थइ देह, श्रा० ॥ कमला कमलमुखी तदाजी ॥ १८ ॥ सत्तर सागर आय, मंत्री जीव सुर राय, श्रा० ॥ सातमा देवलोकथी चवीजी ॥ १९ ॥ तास कुखें अवतार, शुभ दोहला तेणी वार, श्रा० ॥ उपजे धर्म करण तणाजी ॥ ॥ २० ॥ पूरे ते युवराय, आनंद अंग न माय, श्रा० ॥ अवसरें पुत्र जनम थयोजी ॥ २१ ॥ शुभ लग्नें शुभ वार, नासुर अति देदार, श्रा० ॥ पूरव दिशें सूरज परेंजी ॥ २२ ॥ इण समे शंख पुरीश, मानवीर नरईश, श्रा० ॥ ते उपरें जय नृप चढेजी ॥ २३ ॥ विनयें निवारी राय, चडीया तव युवराय, श्रां० ॥ जय करी बांधी लावीयाजी ॥ २४ ॥ दासी वधावे ताम, कमला सुत थयो स्वामि, श्रा० ॥ आवी बीजी दासी तदाजी ॥ २५॥ दोय वधाया राय, नाल निक्षेपनें गाय, श्रा० ॥ पुत्र जनमनें अवसरेंजी ॥ २६ ॥ नीकल्यो कुंभ निधान, हरख्या बेहु राजान, श्रा० ॥ तिहां मगावी जोइयोजी ॥ २७ ॥ तात नामांकित तेह, देखी चिंतवे जेह, श्रा० ॥ पुत्रपुण्यें गयो निधि जडयोजी ॥ २८ ॥ शत्रुजय थयो एम,लखमी आवी नेम, श्रा० ॥ पुत्र जनम कारण थयोजी ॥२९॥ दासी संतोषी दान, देइ तास अमान, श्रा०॥ बीजे खंडें एम कहीजी ॥ ३० ॥ पाचमी ढाल रसाल,सुणतां मंगल माल, श्रा०॥ पद्मविजयें प्रेमें कहीजी॥३१॥ सर्वगाथा ॥ १६६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वधामणां वर आवतां, बंदी बिरुद बोलाय ॥ युगपत जय जय रव होये, गीत नाटक गवराय ॥ १ मूक्या बंदी मोकला, दान माहा देवाय ॥ दशदिश वाजित्र नादथी, प्रमोद प्रजा बहु पाय ॥ २ ॥ इष्ट अर्थ आगमनथी, प्रीतें आशीष पढाय ॥ हर्षे पुत्रना हेतथी, जगमां जनम जणाय ॥ ३ ॥ पडिवजी आणा प्रेमथी, मानवीर महाराय ॥ दंम लेइनें दंभ विनु, शीख दीये समजाय ॥ ४ ॥ शत्रुजय सहु जीवनें, आनंद आपणहार ॥ श्रीजयानंद सज्जन मली, दीधुं नाम उदार ॥ ५ ॥

॥ ढाल छठी ॥ फतमल पाणीडाने जाय ॥ ए देशी ॥

॥ नरपति श्रीजयानंद कुमार, सिंहसार सार्थे वधे ॥ न० ॥ धावें पालता तेह, तात मनोरथ नित्य सधे ॥ १ ॥ न० ॥ पांसुक्रीडा करे साथ, तिम बीजी रामत सम करे ॥ न० ॥ थया कलानें योग, नृप कलाचार्य

पासें धरे ॥ २ ॥ न० ॥ शस्त्र शास्त्रनी जेह, शीखवे कला नली परें ॥ न० ॥ नाग्य प्रमाणे तेह, पाम्या उद्यम पर परें ॥ ३ ॥ न० ॥ बहु धन आपी राय, कलाचार्य संतोषीउ ॥ न० ॥ यौवन पाम्या दोय, काम राय जिहां पोषीउ ॥ ४ ॥ न० ॥ वापी वन आराम, मित्र साथें क्रीडा करे ॥ न० ॥ सामग्री सम दोय, पण प्रकृति निन्नज धरे ॥५॥न० ॥ सहुनां कर्म विनिन्न, सिंहसार क्रूरज घणो ॥ न० ॥ लोकनें करे उदवेग, लागे सवि अलखामणो ॥ ॥ ६ ॥ न०॥ दोनागी अविनीत, अप्रियनाखी अधर्मियो ॥ न० ॥ श्रीजयानंद कुमार, सौनागी घणो धर्मियो ॥ ७ ॥ न० ॥ लावण्य लीलावंत, त्यागी शूर सोनागीयो ॥ न० ॥ व्यक्त मनमथ रूप, सहुजन जेहनो रागीयो ॥ ॥ ८ ॥ न० ॥ प्रकृतें उदार कृतज्ञ, प्रियवादी उपगारीयो ॥ न० ॥ सर्वेने हित करनार, गुण गणनो ते धारीयो ॥ए॥न०॥ लोक मुखें जस वाद, सिंहसार तस सांनले ॥ न० ॥ खेद लहे चित्तमांहि, कारमी प्रीति करी नलें ॥ १० ॥ न० ॥ सरल ते श्रीजयानंद, साचुं करीनें सद्दहे ॥ न० ॥ साची प्रीति धरेह, तस गुणमांहि नजर रहे ॥ ११ ॥ न० ॥ गुणी गुण देखे सर्व, निर्गुणी ते अवगुण ग्रहे ॥ न० ॥ एकदिन क्रीडा उद्यान, वसंत ऋतें वाहिर रहे ॥ १२ ॥ न० ॥ रातें सुणे दिव्य गीत, वाजित्रध्वनि मीठो घणुं ॥ न० ॥ तव साहसिक ते दोय, चाल्या धरत धीरयपणुं ॥ १३ ॥ ॥ न० ॥ कौतुकें पोहोच्या दूर, क्रीडा पर्वत उपरें ॥ न० ॥ काउस्सग्गमां लीन, कोइक ऋषि ध्यानज धरे ॥१४॥न०॥ कोइ सुर दिव्य स्वरूप, देवीयुत देखे तदा ॥ न० ॥ पटह वजावे देव, नृत्य करे एक सुरी यदा ॥ १५ ॥ ॥ न० ॥ एक वजावे ताल, वीणाघोपवती वली ॥ न० ॥ वंश वजावे एक, मुनि आगल मननी रुली ॥ १६ ॥ न० ॥ गावे मुनिगुण नक्ति, नाटक बेहु हरखें जुवे ॥न०॥ विश्वमोहन अदनूत, करतां कर्मकादव धूवे ॥न०॥१७॥ मुनि समता नंमार, शुक्लध्यान श्रेणें चढ्या ॥न०॥ पाम्या केवल ज्ञान, घाती कर्म साथें वढ्या ॥ १८ ॥ न०॥ महोत्सव करवा काज, चार निकायना देवता ॥ न० ॥ मलिया वाजित्र नाद, करता केवली सेवता ॥ १९ ॥ न० ॥ कनक कमल रचे तब, केवली तिहां बेसी करी ॥ न० ॥ सहुनें देइ धर्म लान, देशना दिये चित्तमां धरी ॥ २० ॥ न० ॥ समकेत अणुव्रत आदि, सांनली देशना हित करे ॥ न० ॥ श्रीजयानंद कुमार, बूझ्या सम

बीजीनें सूअर सारिखोजी ॥ १७ ॥ वयण सुणीनें तेह,हर्षवंती थइ देह, आ० ॥ कमला कमलमुखी तदाजी ॥ १८ ॥ सत्तर सागर आय, मंत्री जीव सुर राय, आ० ॥ सातमा देवलोकथी चवीजी ॥ १९ ॥ तास कुखें अवतार, शुन्न दोहला तेणी वार, आ० ॥ उपजे धर्म करण तणाजी ॥ ॥ २० ॥ पूरे ते युवराय, आनंद अंग न माय, आ० ॥ अवसरें पुत्र जनम थयोजी ॥ २१ ॥ शुन्न लग्नें शुन्न वार, नासुर अति देदार, आ० ॥ पूरव दिशें सूरज परेंजी ॥ २२ ॥ इंण समे शंख पुरीश, मानवीर नरईश, आ० ॥ ते उपरें जय नृप चढेजी ॥ २३ ॥ विनयें निवारी राय, चडीया तव युवराय, आं० ॥ जय करी बांधी लावीयाजी ॥ २४ ॥ दासी वधावे ताम, कमला सुत थयो स्वामि, आ० ॥ आवी बीजी दासी तदाजी ॥२५॥ दोय वधाया राय, नाल निक्षेपनें गय, आ० ॥ पुत्र जनमनें अवसरेंजी ॥ २६ ॥ नीकल्यो कुंन्न निधान, हरख्या बेहु राजान, आ० ॥ तिहां मगावी जोइयोजी ॥ २७ ॥ तात नामांकित तेह, देखी चिंतवे जेह, आ० ॥ पुत्रपुख्यें गयो निधि जडयोजी ॥ २८ ॥ शत्रुजय थयो एम,लखमी आवी नेम, आ० ॥ पुत्र जनम कारण थयोजी ॥२९॥ दासी संतोपी दान, देइ तास अमान, आ०॥ बीजे खंमें एम कहीजी ॥ ३० ॥ पाचमी ढाल रसाल,सुणतां मंगल माल, आ० ॥ पद्मविजयें प्रेमें कहीजी ॥३१॥ सर्वगाथा ॥ १६६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वधामणां वर आवतां, बंदी बिरुद बोलाय ॥ युगपत जय जय रव होये, गीत नाटक गवराय ॥ १ मूक्या बंदी मोकला, दान माहा देवाय ॥ दशदिश वाजित्र नादथी, प्रमोद प्रजा बहु पाय ॥ २ ॥ इष्ट अर्थे आगमनथी, प्रीतें आशीष पढाय ॥ हर्षे पुत्रना हेतथी, जगमां जनम जणाय ॥ ३ ॥ पडिवजी आणा प्रेमथी, मानवीर महाराय ॥ दंम लेइनें दंन विनु, शीख दीये समजाय ॥ ४ ॥ शत्रुजय सहु जीवनें, आनंद आपणहार ॥ श्रीजयानंद सज्जन मली, दीधुं नाम उदार ॥ ५ ॥

॥ ढाल उठी ॥ फतमल पाणीडाने जाय ॥ ए देशी ॥

॥ नरपति श्रीजयानंद कुमार, सिंहसार सायें वधे ॥ न० ॥ धावें पालीजता तेह, तात मनोरथ नित्य सधे ॥ १ ॥ न० ॥ पांसुक्रीडा करे साथ, तिम बीजी रामत सम करे ॥ न० ॥ थया कलानें योग, नृप कलाचार्य

जीवडा, परस्त्रीगमन करे जेह हो ॥ सुं०॥ ग० ॥ १० ॥ सुं० ॥ पंचेंद्रिय वध आचरे, तेह्नें नरकमां गए हो ॥ सुं०॥ हिंसा न करे जे नरा, तस सुख जस कल्याण हो ॥ सुं०॥ ग० ॥ ११ ॥ सुं० ॥ आरोग्यता बल आ चखुं, पामे लक्ष्मी रूप हो ॥ सुं०॥ परनवें सुरवर सुख होये, अनुक्रमें मो क्षसरूप हो ॥सुं०॥ ग० ॥ १२ ॥ सुं० ॥ सांनली धर्मनें बूझीया, सम कित पामे सार हो ॥सुं०॥ प्रथम अणुव्रत आदरे, वली पञ्चखे मांसाहार हो॥सुं०॥ग०॥१३॥ सुं० ॥ हरखें श्रमनें वंदीया, पोहोता निज आवास हो ॥ सुं०॥ आहोनिश ते व्रत पालता, माने जीवित खास हो ॥ सुं० ॥ ॥ग० ॥ १४ ॥ सुं० ॥ राय सुणे ते वारता, मिथ्यात्वी शिरदार हो ॥ सुं० ॥ हिंसकपरिणामी घणो, कोप करी तिणी वार हो ॥सुं०॥ग०॥१५ ॥ सुं० ॥ मृगया करी मृगमांसनें, लावो निन्न निन्न दोय हो ॥ सुं०॥ मुज मृगमांस खावा तणी, आज इछा छे जोय हो ॥सुं०॥ ग० ॥ १६ ॥ सुं० ॥ नृप आ णा अंगीकरी, चाल्या दोय ते ताम हो ॥सुं०॥ आज तो मृग लाधां नहीं, उत्तर देशुं स्वामी हो ॥सुं०॥ ग० ॥ १७ ॥ सुं० ॥ वनमां दोय गया हवे, मृग दीठा तेणे ताम हो ॥सुं०॥ नीम चिंते चित्तमां तदा, मृग हणीयें मां स काम हो ॥सुं०॥ ग० ॥ १८ ॥ सुं० ॥ तो व्रत जांगे मूलगुं, पण होये कोप नरींद हो ॥सुं०॥ दोष नहीं परवश पणे, इंम कहे श्रीजिनचंद हो॥ सुं०॥ग०॥१९॥ सुं०॥ व्रत तो कालें फल दीयें, आजज फल नृप कोप हो॥ सुं० ॥ सोमें वार्यो पण नवि रह्यो, कीधो व्रतनो लोप हो ॥सुं०॥ग०॥२०॥ ॥सुं०॥मृग हणी मांस लेइ वल्यो, श्रीजयानंदनें रास हो ॥सुं०॥ बीजे खंमें पभ्भें कह्नी, सातमी ढाल विलास हो ॥ सुं०॥ ग० ॥ २१ ॥ सर्वगाथा ॥ २१० ॥

॥ दोहा ॥

॥ प्राण जाय परलोक जो, पण व्रत नवि लोपाय ॥ बीजो तो इंम व हु परें, सोम चित्त समजाय ॥१॥ प्राण राखवा आपणां, परनां न हणुं प्राण ॥ माहारां वाहालां मुजने, परनें तिमज प्रमाण ॥ २ ॥ राजा रूसो मुज उपरें, प्राण धरो परदेश ॥ मृगनें हुं माहारी करी, लोपुं नहीं व्रत ले श ॥ ३ ॥ यतः ॥ निंदंतु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवंतु, लक्ष्मीः समाविश तु गछतु वा यथेष्टं ॥ अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा, न्यायात्पथोन विचलं ति कदापि धीराः ॥१॥ निमित्तमासाद्य जवेन किंचन, स्वधर्ममार्गं विसृजंति

केत आवरे ॥ २१ ॥ न० ॥ श्रीजयानंदने रास, त्रीजे खंमें ए कही ॥ न०॥ छठी ढाल रसाल, पद्मविजय गुरुथी लही ॥॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ १९४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीजयानंद पूछे इश्युं, सुर ए स्वामी कवण ॥ नाटक कीधुं निर्मलुं, वात कहे मुनि वयण ॥ १ ॥ वैताढ्यें खेचरवई, नाम जयंत निदान ॥ सू रय ग्रहणे समजियो, दीक्षा करुं आदान ॥ २ ॥ ज्ञानवंत थयो गुरुथकी, आपी मुजनें आण ॥ एकाकीनी अवनीयें, विचरुं अवसर जाण ॥ ३ ॥ विंध्यगुफामां आवीयो, चोमासुं चउमास ॥ करी उपवास तिहां किणे, र ह्यो हुं रीजी उल्लास ॥ ४ ॥ तिहांथी दोय जोयण तदा, नयरगिरि डुर्ग नाम ॥ सुनंद तिहां नृपति सदा, राज्य करे अभिराम ॥ ५ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ सुंदर पापस्थानक कह्युं सोलमुं ॥ ए देशी ॥

॥ सुंदर दोय सेवक छे तेहनें, जीम सोम अभिधान हो ॥ सुंदर ॥ एक गाउ ते गुफाथकी, रायनुं गोकुल थान हो ॥ १ ॥ सुंदर ॥ गति परिमाणें मति होये ॥ ए आंकणी ॥ सुं० ॥ राय आणाथी बिहुं जणा, पामी नृप आदेश हो ॥ सुं० ॥ गोकुलमां वासो वसे, शूरवीर सुविशेष हो ॥ सुं० ॥ ॥ग०॥२॥सुं०॥ मृगया अरथें एकदा, आव्या गुफानें पास हो ॥सुं०॥ मृ गयूथ देखी बहु तिहां, मूके बाण ते तास हो ॥ सुं० ॥ ग० ॥ ३ ॥ सुं० ॥ कोइ मृगनें नवि लागीयुं, बाण ते थया निराश हो ॥सुं० ॥ विस्मय ते बिहुं पामीया, मृग आव्या मुज पास हो ॥सुं०॥ ग०॥ ४ ॥सुं०॥ मुज पासें सुणे देशना, मृग पूठें ते दोय हो ॥ सुं० ॥ आव्या मुज देखी करी, तास विचार ते होय हो ॥ सुं० ॥ ग० ॥ ५ ॥ सुं० ॥ ए मुनिना महिमाथकी, मृगनें न लाग्यां बाण हो ॥ सुं० ॥ ए तपसी ऋषिराजीया, करे उपकारनें हाण हो ॥ सुं०॥ ग० ॥ ६ ॥ सुं० ॥ मनमां बीहीना अतिघणुं, कीधो मुज परणा म हो ॥ सुं० ॥ कहे अपराध ए अम तणो, खमो तुमें तपसी स्वामि हो॥सुं०॥ग०॥७ ॥ सुं० ॥ अमें तुम मृग नहीं मारीयें, मत करजो अमराष हो ॥सुं०॥ मुनि धर्म लाभ देइ कहे, जय नवि आणो सराख हो ॥ सुं०॥ ॥ ग० ॥ ८ ॥ सुं० ॥ तुमनें अजय छे पण सुणो, धर्मतत्त्व एकांत हो ॥ सुं० ॥ सुखइछक सहु जीवडा, जीववुं सहु इछंत हो ॥ सुं०॥ ग० ॥ ९ ॥ सु० ॥ तेहनां प्राण जे अपहरे, नरकें जाये तेह हो ॥ सुं० ॥ मांसाहारी

कोइ शस्त्र लागे नही रे, तेहनें अंग विशाल रे ॥ क० ॥ १५ ॥ पुष्पवृष्टि आकाशथी रे, थइ वली डुंडुनि ध्वान ॥ ते दिखी विस्मित हुदें रे, उना रहे तिण थान रे ॥ क० ॥ १६ ॥ तव पाषाण पडे तिहां रे, मस्तक ऊपरें तास ॥ ते ते पथरे मारीजता रे, बुंब करे जिम दास रे ॥ १७ ॥ क० ॥ नय विव्हल नागा तिहां रे, नृपनें कहे सवि वात ॥ देवी परगट सोमनें रे, दिव्य शरीर विख्यात रे ॥ क० ॥ १८ ॥ देडकी सघली अपहरी रे, तु ष्टमान थइ तेह ॥ धीर पारो काउस्सग्गनें रे, दीठो तुज व्रतनेह रे ॥ क० ॥१९॥ में तुज परीक्षा कारणें रे, देडकी दरिसण दीध ॥ तुजनें काले परो डीये रे, राज्य थशे प्रसिद्ध रे ॥क०॥२०॥ श्रीजयानंदना रासमां रे,नांखी आठ मी ढाल ॥ बीजे खंमें पद्म कहे रे, आगल वात रसाल रे ॥क०॥२१॥ २४५॥

॥ दोहा ॥

॥ महाव्रतवंता मुनि कनें, रहेजे जइनें रात ॥ एम कहीनें अदृश थइ, सोमने थइ सुखशात ॥ १ ॥ पाख्यो काउस्सग्ग प्रेमथी, हियडे हरख न मात ॥ प्रणमे जाणी मुज प्रतें, उपसर्गनो अवदात ॥ २ ॥ रातें पूछे रागीयो, मुजनें कहो मुनिराय ॥ जीवाडयो मुजनें जिणें, माहारी कोण ते माय ॥३॥ में नांख्युं माहारी घणुं, जगतिवंती जलि नांति ॥ समकेत पामी ए सुरी, अम पासें एकांत ॥ ४ ॥

॥ ढाल नवमी ॥ निणदल वींदली दे ॥ ए देशी ॥

॥ तुमें धर्म पाम्या एम जाणी, पूछे मुजनें सपराणी हो ॥ नविजन धर्म करो ॥ व्रत पालशो के ए नाहीं, मुजने नांखो ते आंही हो ॥ न० ॥ १॥ में कह्युं विराधशे नीम, आराधशे सोम ए नीम हो ॥न०॥ तुज परीक्षा करवा आवी, तुज धैर्य देखी थइ नावी हो ॥ न० ॥ २ ॥ तव सोम सुणी मु ज धर्म, चिंतवे जीवादिक मर्म हो ॥ न० ॥ हवे नूपति सोमनी वात, देव ता कृत साह्य विख्यात हो ॥ न० ॥ ३ ॥ ते सांजली विस्मित नूप, थयुं मांस अजीर्ण अनूप हो ॥ न० ॥ थइ गूढ विशूचिका ताम, तेह रातिमां गयो यमधाम हो ॥ न० ॥ ४ ॥ बीजी नरकें उत्पन्न, महापापथी तेह अधन्य हो ॥ न० ॥ अति उग्र पुण्य के पाप, फले तुरत ए शास्त्रें ठाप हो ॥ न० ॥ ५ ॥ स्वामीनक्के मार्तुं नीम, करी पाप अघोर निःसीम हो ॥ न० ॥ तेहज नरकें गयो तेह, व्रतनंग तणुं फल एह हो ॥ न० ॥ ६ ॥

बालिशाः ॥ तपःश्रुतज्ञानधनास्तुसाधवो, न यांति कष्टोपगमेपि विक्रियं ॥ ॥ ३ ॥ दोहो ॥ सोम विचारी सत्त्वथी, मृग नवि मस्रो तेण ॥ उत्तर रायनें आपीयो, अमनें न जडघो एण ॥ ४ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ पुण्य प्रशंसीयें ॥ ए देशी ॥

॥ सोम आव्यो निज घरनणी रे, नीम प्रशंसे राय ॥ मृग आमिष जे आणीशुं रे, खाशुं उदर नराय रे ॥ कर्म विटंबणा ॥ १ ॥ कर्मे जुउ शुं होय रे, डुर्गति नेटणा ॥ कर्म न बूटे कोय रे, नवनव डुःखिउ सोय रे ॥ क० ॥ ए आंकणी ॥ नीमनें पूठे नृपति रे, सोम न लायो रे केम ॥ तव ईर्ष्यायें नांखीयुं रे, एहने ठे ए नेम रे ॥ क० ॥ २ ॥ मृग लाधां प ण नवि हण्यां रे, तव रूगे नरराय ॥ मुज आणा लोपी इंणे रे, बांधी लावो जाय रे ॥ क० ॥ ३ ॥ गाम एक तुज आपशुं रे, तव हवे लोनथी तेह ॥ सुनट सार्थे तस घर गयो रे, मारण चित्त धरेह रे ॥ क० ॥ ४ ॥ ऊर्ध्व शस्त्र करी हाथमां रे, आव्यो तिहां किण जाम ॥ सोम शंकावंत धु रथकी रे, वात सुणी वली ताम रे ॥ क० ॥ ५ ॥ सोम नाठो घरथी हवे रे, परवत जावुं रे धारि ॥ नगर बाहिर जब नीकल्यो रे, नीम पण पद अनुसार रे ॥ क० ॥ ६ ॥ नीम पूठें सोम आगलें रे, लग नग मलिया रे तेह ॥ सोम विह्वल नय नासतो रे, जाणे आव्या एह रे ॥ क० ॥ ७ ॥ सुनट कहे किहां जाय ठे रे, करी नृपनो अपराध ॥ किहां जाइश तुं ना शिनें रे, रूगे राय अगाध रे ॥ क० ॥ ८ ॥ कडुआं वयण सुणी इश्यां रे, नय आणी मनमांहि ॥ अति उतावलो नासतो रे, मनथी गतउत्साह रे ॥ क० ॥ ९ ॥ इंणे अवसरें मारग विचें रे, देडकी सूक्ष्म अपार ॥ चालती केइ केइ थिर रही रे, देखे सोम तिवार रे ॥ क० ॥ १० ॥ लरकोगमे पग मू कवा रे, न मले ठाम विचाल ॥ केम जाउं इंम चिंतवे रे, सोम महा कि रपाल रे ॥ क० ॥ ११ ॥ पर्वत आव्यो ढूंकडो रे, पहोंचुं शीघ्रथी तेथ ॥ सु नटें नवि पकडाईयें रे, पण मंडुकी मरे एथ रे ॥ क० ॥ १२ ॥ पण मुज प्राण जतां थकां रे, व्रत लोपुं किण रीत ॥ इत्यादिक ध्यातां थकां रे, करे अणसण ते अनीत रे ॥ क० ॥ १३ ॥ काउस्सग्ग करीनें रह्यो रे, परमेष्ठी करे ध्यान ॥ एहवे नीमादिक सहु रे, आव्या नट ते थान रे॥ ॥ क० ॥ १४ ॥ विविध शस्त्र मूके तदा रे, क्रूर महा विकराल ॥ पण

कोइ शस्त्र लागे नही रे, तेहनें अंग विशाल रे ॥ क० ॥ १५ ॥ पुष्पवृष्टि आकाशथी रे, थइ वली डुंडुनि ध्वान ॥ ते दिखी विस्मित हदें रे, उना रहे तिण थान रे ॥ क० ॥ १६ ॥ तव पाषाण पडे तिहां रे, मस्तक ऊपरें तास ॥ ते ते पथरे मारीजता रे, बुंब करे जिम दास रे ॥ १७ ॥ क० ॥ नय विव्हल नाग तिहां रे, नृपनें कहे सवि वात ॥ देवी परगट सोमनें रे, दिव्य शरीर विख्यात रे ॥ क० ॥ १८ ॥ देडकी सघली अपहरी रे, तु घ्टमान थइ तेह ॥ धीर पारो काउस्सग्गनें रे, दीठो तुज व्रतनेह रे ॥ क० ॥१९॥ में तुज परीक्षा कारणें रे, देडकी दरिसण दीध ॥ तुजनें काले परो डीये रे, राज्य थशे प्रसिद्ध रे ॥क०॥२०॥ श्रीजयानंदना रासमां रे,नांखी आठ मी ढाल ॥ बीजे खंमें पद्म कहे रे, आगल वात रसाल रे ॥क०॥२१॥ २४५॥

॥ दोहा ॥

॥ महाव्रतवंता मुनि कनें, रहेजे जइनें रात ॥ एम कहीनें अदश थइ, सोमने थइ सुखशात ॥ १ ॥ पाख्यो काउस्सग्ग प्रेमथी, हियडे हरख न मा त ॥ प्रणमे जाणी मुज प्रतें, उपसर्गनो अवदात ॥ २ ॥ रातें पूछे रागीयो, मुजनें कहो मुनिराय ॥ जीवाडयो मुजनें जिणें, माहारी कोण ते माय ॥३॥ में नांख्युं माहारी घणुं, नगतिवंती नलि नांति ॥ समकेत पामी ए सुरी, अम पासें एकांत ॥ ४ ॥

॥ ढाल नवमी ॥ निणदल बींदली दे ॥ ए देशी ॥

॥ तुमें धर्म पाम्या एम जाणी, पूछे मुजनें सपराणी हो ॥ नविजन धर्म करो ॥ व्रत पालशे के ए नाहीं, मुजने नांखो ते आंही हो ॥ न० ॥ १ ॥ में कह्युं विराधशे नीम, आराधशे सोम ए नीम हो ॥न०॥ तुज परीक्षा करवा आवी, तुज धैर्य देखी थइ नावी हो ॥ न० ॥ २ ॥ तव सोम सुणी मुज धर्म, चिंतवे जीवादिक मर्म हो ॥ न० ॥ हवे नृपति सोमनी वात, देवता कृत साह्य विख्यात हो ॥ न० ॥ ३ ॥ ते सांनली विस्मित नूप, थयुं मांस अजीर्ण अनूप हो ॥ न० ॥ थइ गूढ विशूचिका ताम, तेह रातिमां गयो यमधाम हो ॥ न० ॥ ४ ॥ बीजी नरकें उत्पन्न, महापापथी तेह अधन्य हो ॥ न० ॥ अति उग्र पुण्य के पाप, फले तुरत ए शास्त्रें गाप हो ॥ न० ॥ ५ ॥ स्वामीनकें मानुं नीम, करी पाप अघोर निःसीम हो ॥ न० ॥ तेहज नरकें गयो तेह, व्रतनंग तणुं फल एह हो ॥ न० ॥ ६ ॥

मृतकारज करी हवे विहाणे, अपुत्रीयो नृप ए टाणे हो ॥ ज० ॥ खोले ह वे योग्य राजान, राज्य मंत्रलीनें परधान हो ॥ ज० ॥ ७ ॥ पंच दिव्य प्रग ट करी वासें, नगरीथी वाहीर निकासे हो ॥ ज० ॥ परवत पासें जाय जा म, सोम कुटुंब खबरनें काम हो ॥ ज० ॥ ८ ॥ जाय ते नगरीमांहि, गज रायें दीठो उडाहि हो ॥ ज० ॥ तिहां कलशनुं जल शिर नामे, आरोपे पृष्ठ नें ठामें हो ॥ ज० ॥ ए ॥ वली छत्र चामर वींजाय, हेषारव तुरंग कराय हो ॥ ज० ॥ आकाशें देवी ते बोली, सांजलो सहु हियडुं खोली हो ॥ ज० ॥ ॥ १० ॥ सोम नाम ए तुमनें राय, में आप्यो गुण समुदाय हो ॥ ज० ॥ ए हनी जे खंमशे आण, तस जमघरें देइश ठाण हो ॥ ज० ॥ ११ ॥ इंम कही अदृश थइ देवी, सहु हरख्या तेह सुणेवि हो ॥ ज० ॥ तेहनें सहु क रे प्रणाम, सहु माने रायनें ठाम हो ॥ ज० ॥ १२ ॥ वाजित्रध्वनि नज न वि माय, वंदीजन विरुद बोलाय हो ॥ ज० ॥ महा रुद्धिथी प्रवेश उछिठा, आवी सिंहासनें वेठा हो ॥ ज० ॥ १३ ॥ न्यायें परजानें पाले, दया धर्म घ णो अजुआले हो ॥ ज० ॥ सोम दृढधर्मा दया पाली, इण जव पण सु खनी आली हो ॥ ज० ॥ १४ ॥ जीम हिंसायें गयो नरकें, पापी किम जा ये सरगें हो ॥ ज० ॥ मुज नमवा नृपति आयो, निज देशें अमारी बजा यो हो ॥ ज० ॥ १५ ॥ सेवे गुरु तिम शुद्ध धर्म, प्रत्यक्ष दीठो जिणें मर्म हो ॥ ज० ॥ एम धर्ममयी राज्य पाली, सौधर्में गयो दुःख गाली हो ॥ ॥ ज० ॥ १६ ॥ ते सामानिक थयो देव, में विहार कर्यो ततखेव हो ॥ ॥ ज० ॥ ॥ फरी आव्यो हुं इण थान ॥ देवता जुवे अवधिज्ञान हो ॥ ज० ॥ ॥ १७ ॥ आव्यो उपकार संजारी, प्रणमी नाटक करे जारी हो ॥ ज० ॥ गुरु सेवानें अहिंसा, तेहनां फल स्वर्गमां शंस्यां हो ॥ ज० ॥ १८ ॥ सां जली कहे श्रीजयानंद, जसु धर्में बुद्धि अमंद हो ॥ ज० ॥ युद्धादिक का रण टाली, स्थूलहिंसा नहीं करुं जाली हो ॥ ज० ॥ १ए॥ परस्त्रीनो त्या ग में कीधो, समकित व्रत तुमथी लीधो हो ॥ ज० ॥ गुरु कहे तुं सम्य ग पाले, ए कल्पवृक्ष सम जाले हो ॥ ज० ॥२०॥ एहथी थशे तुज क ल्याण, कहे कुमर स्वामी परमाण हो ॥ ज० ॥ निज आतम कृतारथ जा णे, मुनि प्रणमी गया घर विहाणे हो ॥ ज० ॥२१॥ गुरुकर्मा ते सिंह सार, नवि प्रणम्यो धर्म लगार हो ॥ ज० ॥ सुर प्रमुख ते गया निज था

न, लही श्रद्धा प्रमुख प्रधान हो ॥ ज० ॥२२॥ अलगें मुनि करे विहार, युवराज नंदन हवे सार हो ॥ ज० ॥ लीधो ते धर्मनें पाले, गुरु देव जक्ति अजुवाले हो ॥ज०॥२३॥ ढाल नवमी वीजे खंमें,कही धर्मनो राग अखंमें हो ॥ज०॥ गुरु उत्तमविजयनो वाल, कहे पद्मविजय सु रसाल हो ॥२४॥

॥ दोहा ॥

॥ एक दिन जय अवनीपति, पूछे प्रश्न प्रकार ॥ सामुद्रिक घणुं समज णो, कुण सुलक्षण कुमार ॥१॥ निमित्तियो दोय निरखीनें, सर्वांगें शुज रीति ॥ नृपनें कहे निमित्तियो, निर्णय कीधो नीति ॥२॥ सिंहसारनां सांजलो, तुमें ल क्षण ततकाल ॥ अनरथ स्वजननें आपशे, लोक द्वेष जिम काल ॥ ३ ॥ क्रूर बुद्धि कृतघ्न कह्यो, पदें पदें आपद गेह ॥ डुर्गतिगामी डुःख लहे, धर्म नो द्वेष धरेह ॥४॥ श्रीजयानंद सोजागीयो, शुज लक्षण सर्वांग ॥ सुख कर्त्ता सवि विश्वनें, चक्रधारी ए चंग ॥५॥ त्रण खंमनो अधिपति, बहुराजा बलवंत ॥ सेवा एहनी सारशे, उपकारी ए अनंत ॥६॥ न्याय धर्ममां निपुण ए, जस प्रताप जयवंत ॥ शिवगामी सुस्वर धणी, एहना गुण छे अनंत ॥ ७ ॥ विसरजे वारु परें, निमित्तियो नरनाह ॥ धरणीपति धारी करी अनुजने कहे उछाह ॥८॥ गोप्य अछे पण गाइयें, तुज आगल तहकीक ॥ सिंहसार तो शुज नहीं, श्रीजयानंद सश्रीक ॥ ए ॥

॥ ढाल दशमी ॥ रामचंद्के वाग ॥ ए देशी ॥

॥ एणे समें दासी एक, राय तंबोल तणी री ॥ जाणी विश्वासी तेह, वात ते सर्व सुणी री ॥१॥ अवसर पामी राय, नाना प्रकार करी री ॥ परी क्षा कीधी तास, नैमित्त वचन धरी री ॥२॥ निश्चय कीधो तास, हवे सिंह सार पुरें री ॥ क्रीडतो करे उन्माद, लोकनें डुःख धरे री ॥३॥ शंका न ध रे कांय, स्वेछायें विचरे री ॥ नर नारी आजरण, लूंटी लीये सुपरें री ॥४॥ फोडे नारीना कुंज, नारी सुरूपा हरे री ॥ शकट लूंटी लूंटी जाय, बहु अन्याय करे री ॥ ५ ॥ तुरंग खेलावे तेह, मारगमांहि जइ री ॥ कोप्या नगरनां लोक, वीनवे जइ नरवइ री ॥ ६ ॥ लोकनें करी सत्कार, मोकले आप घरें री ॥ कुमर निभ्रंछी राय, अति अपमान करे री ॥ ७ ॥ इणी परें वे त्रण वार, वार्यो पण न रहे री ॥ एक दिन दासी तेह, जाती दे खी कहे री ॥ ८ ॥ शुं लेइ जाये एह, ते कहे केम खले री ॥ नृप अरथें

तंबोल, सुणी तिणें लीधुं वलें री ॥ ए ॥ रूठी कहे रे डुष्ट, नैमित्त साच वदे री ॥ कुमरें जोलावी तास, कहे तुं जेह हृदे री ॥१०॥ दासी कहे वृत्तांत, सघलो जेह थयोरी ॥ कुमरें धारी वात, डुर्मन तेह जयोरी ॥११॥ यतः ॥ न तरुस्तटिनीतटे चिरं, न खले प्रीतिरघात्मनींदिरा ॥ नच धर्मेर सोतिलोनके, नच गूढं हृदि तिष्ठति स्त्रियाः ॥ १ ॥ ढाल ॥ दासीयें कही सवि वात, कुमरें अन्याय कस्यो री ॥ रायें बोलावी ताम, जांखे क्रोध नस्यो री ॥१२॥ रे पापी अन्याय, नगरमां नित्य दमे री ॥ लोक करे पोकार, सहुनें तुं न गमे री ॥१३॥ घरमां पण ए रीति, कुलमां कलंक समो री ॥ जा हवे नगरथी दूर, देशांतरमां नमो री ॥१४॥ रहीश जो नगरी मांहि, तो हुं नाहिं सहुं री ॥ कापीश नाकनें कान, पुत्र छे पण ए कहुं री ॥१५॥चिंते सिंहकुमार, जाउं परदेश यदा री ॥श्रीजयानंद कुमार, नृपति थाये तदा री ॥ १६ ॥ रागी लोकनें राय, एहनो देखुं सही री ॥ लेई जाउं परदेश, तो रहे दूध दहीं री ॥ १७ ॥ राज्य वेलायें मुज्ज, बोलावे हर्ष धरी री ॥ त्रीजो नहीं कोइ योग्य, एहिज वात खरी री ॥१८॥ इंम चिंति एक दिन्न, मायावंत वदे री ॥ सांनली श्रीजयानंद, आपण एक हृदें री ॥१९॥ देशांतर चलो नाय, जिहां आश्चर्य होवे री ॥ अतुल कला शीखाय, नाग्य परीक्षा जोवे री ॥ २० ॥ तीर्थ अनेक वंदाय, तनु ए क्लेश सहे री ॥ धूर्त्तथी नवि वंचाय, डुर्जन सयण लहे री ॥२१॥ एम अनेक गुण थाय, नहीं एक गुण रह्यां री ॥ तुज विरहो न खमाय, तिणे ए वयण कह्यां री ॥२२॥ श्रीजयानंदनें रास, दशमी ढाल कही री ॥ खंम बीजे कहे पद्म, कपटें सिद्धि नही री ॥ २३ ॥ सर्वगाथा ॥ ३०५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ ते कारण चालो तुमें, दिश धारी कोइ देश ॥ पित्रादिक अण पूछीनें, वारु करशुं विशेष ॥१॥ सरल ते जाणे सहु खरुं, पुण्यवंत परधान ॥ सुकृतिमांहे शिरोमणि, मान्युं वचन प्रमाण ॥ २ ॥ रातें चाल्या रंगशुं, बिहुंये करी बनाव ॥ खज्य सखाइ खांतशुं, जावे कांइक जाव ॥ ३ ॥ कथा प्रसंग करतां थकां, वारु धर्म विचार ॥ श्रीजयानंद कहे सुणो, पुण्यें सर्व प्रकार ॥ ४ ॥ पुण्यें लखमी पामीयें, पायक सेवे पाय ॥ जस कीरति जग जागती, सुकुलें जन्म सदाय ॥ ५॥

॥ ढाल अगीयारमी ॥ सत्तरमुं पापनुं ठाम ॥ ए देशी ॥

॥ धरमें सुख पामे प्राणी, आपदा जाय सर्वे उजाणि ॥ सुर नरमां कीरति गवाणी हो लाल ॥ १ ॥ धर्म करो नवि प्राणी ॥ ए. आंकणी ॥ खाण्यो पृथिवीनें तरु जे आपे, मणिद्रव्यनें फल डुःख कापे ॥ ए धर्मथकी नही पापें हो लाल ॥ ध० ॥ २ ॥ अरिहंतनो धर्मज रूडो, वीजो जाणे सहू कूडो ॥ नवि माने अधर्मी नूंडो हो लाल ॥ ध० ॥ ३ ॥ हवे बोले तिहां सिंहसार, नाई तुम वचन उदार ॥ सत्य मानुं हुं निरधार हो लाल ॥ध०॥ ॥ ४ ॥ पण वात एक अवधारो, अधर्मीनें द्रव्य वधारो ॥ हमणां अधर्म सुखकारो हो लाल ॥ ध० ॥ ५ ॥ धर्मी जन डुःखीया दीसे, ए वात ठे विश्वावीशे ॥ अधर्मीथी डुःख जाय रीशें हो लाल ॥ ध०॥ ६ ॥ तव श्रीजयानंदजी बोले, मूरख नही ताहरे तोले ॥ तुं खोटी वातमां मोले हो लाल ॥ ध० ॥ ७ ॥ पापानुबंधी पुण्य, तेणे लखमी होये अगण्य ॥ तुं देखे हृदयथी शून्य हो लाल ॥ ध० ॥ ८ ॥ वली पुण्यानुबंधी पाप, तेणें आ नवमां संताप ॥ ए परनव कीधलां आप हो लाल ॥ ध० ॥ ए ॥ इण नवमां जे जे करशे, तेहनां फल आगल नोगवशे ॥ वावशे ते कालें फलशे हो लाल ॥ ध० ॥ १० ॥ तव डुष्ट कहे सिंहसार, वाद ते प्रेमनो हरनार ॥ नाई म करो वाद विचार हो लाल ॥ ध० ॥ ११ ॥ कोइ निपुणनें पूठीयें वात, ते नांखे जे अवदात ॥ ते धारियें निश्चय भ्रात हो लाल ॥ ध० ॥ ॥१२॥ ते श्रीजयानंदजी माने, वीजो डुष्ट ते एम मन जाणे ॥ एहने राय प्रजा सहु माने हो लाल ॥ ध० ॥ १३ ॥ राज्य योग्य टले तेम करीयें, ए वातमां पण कांय धरीयें ॥ एहनां नेत्र कदि अपहरियें हो लाल ॥ ध० ॥ ॥१४॥ पठी राज्य ते माहरे आवे, एम चिंतवी कहे इंण दावें ॥ नाइ पण विना काम न आवे हो लाल ॥ ध० ॥ १५ ॥ जे हारे ते आपे नयण, एम सिंहसार कहे वयण ॥ श्रीजयानंद माने सयण हो लाल ॥ ध० ॥ ॥१६॥ कोइ गाममांहि हवे पेठा, गामठाकुर लोकशुं बेठा ॥ सिंहसारें ते सहु दीठा हो लाल ॥ ध० ॥१७॥ तस प्रणमीनें कहे एम, हुं पापथी शुन्न कहुं नेम ॥ आतो धर्मथी कहे ए केम हो लाल ॥ ध० ॥ १८ ॥ ते रूप वेष तस देखी, माया नाटक वली पेखी ॥ बोले ठाकुर सवि उवेखी हो लाल ॥ ध० ॥१ए॥ नाई ताहरी वात ते साची, सांनली सिंह मनमां मा

ची ॥ नाइशुं चाल्यो हवे नाची हो लाल ॥ ध० ॥ २० ॥ आगल जइ नेत्र ते जाचे, कहे श्रीजयानंद एम वाचें ॥ गामडीयाने वयणें शुं माचे हो लाल ॥ ध० ॥२१॥ बीजे खंमें अग्यारमी ढाल, कही पद्मविजय सुरसाल, धर्मथी होय मंगलमाल हो लाल ॥ ध० ॥ २२ ॥ सर्व गाथा ॥२२३॥

॥ दोहा ॥

॥ गामडीया ने गमार ए, धर्म न लहे अधर्म ॥ कूड साखी केवल कह्या, मूरख न लहे मर्म ॥ १ ॥ जूठुं बोले ए जडा, श्यो एहनो विश्वास ॥ गामडियानो मत गणे, कोइ विश्वास चकास ॥ २ ॥ हंस काग दृष्टांत हे, सांजल जे तुं सीह ॥ श्रीजय कहे ते सांनलो, बहु गंनीर अबीह ॥ ३ ॥

॥ ढाल बारमी ॥ रसीयानी देशी ॥

॥ धन्य पुरें एक इह मोहोटो अछे, तिहां बहु मत्स्यनी जाति॥सुबंधव॥ मीन लेवा एक काग पड्यो तिहां, मीन तो जलमांहे जात ॥ सु० ॥१॥ गामडीयानो विश्वास न कीजीयें ॥ ए आंकणी ॥ कागनी पांखो जलनीनी थई, न तराये न उमाय ॥ सु०॥ जलमांहे हवे बूडशे कागडो, इण समे अचरज थाय ॥ सु० ॥ गा० ॥ २ ॥ हंसी हंसने कहे सुणो स्वामीजी, कागडो बूडे छे एह ॥ सु०॥ नीचें पेशी पूठें धरी तुमें, काढो करुणा रे नेह॥सु० ॥ गा०॥३॥ तेमज कसुं तिणें काकनें काढीयो, स्वस्थ थयो हवे काग ॥सु०॥ प्रार्थना करी हंसी युत हंसनें, तुमें उपगारी महाजाग ॥ सु० ॥ गा० ॥ ४ ॥ एम कही पोतानें वड लइ गयो, वातो करी विवेक ॥ सु० ॥ चंचुपुटें फल लावी आपीयां, वावरे प्रीति विवेक ॥ सु० ॥ गा० ॥ ५ ॥ हंसी सहित हवे हंसलो उडवा, मांमे जेटले ताम ॥ सु०॥ काक कहे रे प्रिया तुं जाय किहां, हंसी रोकी ते वाम ॥ सु० ॥ गा० ॥ ६ ॥ हंस कहे माहारी ए नारी छे, ताहरी ए नहिं नारी ॥सु०॥ तुंतो मिश सरिखो महा श्याम छे, एतो शशी अनुहार ॥ सु०॥ गा०॥ ७ ॥ काक कहे तेहनो श्यो मेल छे, परकुलनी होये नार ॥ सु० ॥ नगिनी होय तो समरूपें होय, एक कूखें अवतार ॥ सु०॥ गा० ॥ ॥ ८ ॥ जो नवि माने मुज ए वातडी, तो ए गामना लोक ॥सु०॥ हुं ए परण्यो तव सहु दीसलो, मली मली सहुयें रे थोक ॥सु०॥ गा० ॥ ए ॥ ते कहेशे तो मानशो के नहीं, हंसे मानी ते वात ॥सु०॥ पित्रादिकनें सोंप्यो हंसलो, काक ते ग्रामें आयात ॥ सु० ॥ गा० ॥ १० ॥ आप विवाद सुणाव्यो लोकनें, नर

जाखें कहे वाणी ॥ सु० ॥ कूडी साखें मुज साचो करो, नहीं तो तुम करुं हाण ॥ सु०॥ गा०॥ ११ ॥ नारी शिरें घट हुं अशुचि करुं, पशु व्रण खोडुं रे तेम ॥ सु० ॥ पीडा उपजावुं अति आकरी, कहेशो न कह्युं रे केम ॥ सु०॥ गा० ॥ १२ ॥ नर नारी शिर बेसी उडी जाउं,तावड मूक्यां जे धान ॥सु० ॥ ते कणनक्षण करुं वली बालथी, करुं अशनादि आदान ॥सु०॥ गा० ॥ ॥ १३ ॥ बीजा पण अनरथ हुं बहु करुं, करी घर लोक अन्याय ॥ सु० ॥ मनुष्य वाणी सुणी विस्मय पामीया, बीहिना सहु समुदाय ॥सु०॥ गा०॥ ॥ १४ ॥ धर्माधर्म विचार कर्यो नहीं, मानी कूडी रे साख ॥ सु० ॥ धिग ए काक तथा धिग लोकनें, करे अन्याय ए जाख ॥ सु० ॥ गा० ॥ १५ ॥ हवे ते काक हंस जेला मली, पूछे आवी रे न्याय ॥ सु०॥ लोक कहे अ में परणतां देखीयो, सुणि हंस अति डुःखी थाय ॥सु०॥ गा०॥ १६ ॥ का क कहे हवे हंसनें सांजलो, ल्यो ए तुम प्रिया सार ॥सु०॥ प्राण दीया तुमें मुजनें तुम तणो, न करुं डोह लगार ॥सु०॥गा० ॥ १७ ॥ गामडीया पर ख्या इण रीतिशुं, ग्राम्यनें कहे हवे काग ॥सु०॥ रे मूरखो तुमें थोडे कारणें, कर्यो कूडी साख लाग ॥ सु०॥ गा०॥ १८ ॥ इह जव परजव तुमनें डुःख घणां, कूडी साख सम पाप ॥सु०॥ नहीं जगमां जेहथी सवि ऊपजे, हिंसा दिकनो रे व्याप ॥ सु० ॥ गा० ॥ १९ ॥ हंस काग मली क्रोधथकी हवे, चांचें लावी रे आग ॥ सु० ॥ वरशी अंगारानें बालीया, तेहनां घर नहीं ताग ॥ सु०॥ गा० ॥ २० ॥ मरण लही ते डुर्गतिमां गया, कूडी साख प्र जाव ॥सु०॥ एह कथा गामडीयानी सुणी, मत विश्वास तुं लाव ॥सु०॥ गा० ॥ २१ ॥ वात सुणी कहे सिंह जाई सुणो, कूड कथा कही मुज्क ॥ सु०॥ मनुष्य परें पशु नवि बोले कदा,न उगाउं वातें तुज्क ॥सु०॥गा०॥२२ श्रीजयानंद कहे ए सत्य छे, सांजलो कारण तास ॥ सु० ॥ बीजे खंमें बा रमी ढाल ए, पद्म कहे सुविलास ॥सु०॥ गा० ॥ २३ ॥ सर्वगाथा ॥३५७॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीमुख यक्ष वसे इहां, अर्चे लोक अगाध ॥ नंदी यक्ष नंदी पुरें, वि हुं मित्र निर्बाध ॥ १ ॥ श्रीमुख नंदीघर सुखें, पोहोतो धारी प्रीत ॥ कहे नंदीनें किम नवि, मुज घर आवो मित्त ॥ २ ॥ नंदी कहे नावुं तिहां, गा मडीया जे गमार ॥ तेहनी बीक धरी तथा, विगत विवेक विचार ॥३॥

ची ॥ नाइशुं चाल्यो हवे नाची हो लाल ॥ ध० ॥ २० ॥ आगल जइ नेत्र ते जाचे, कहे श्रीजयानंद एम वाचें ॥ गामडीयाने वयणें शुं माचे हो लाल ॥ ध० ॥२१॥ बीजे खंमें अग्यारमी ढाल, कही पद्मविजय सुरसाल, धर्मथी होय मंगलमाल हो लाल ॥ ध० ॥ २२ ॥ सर्व गाथा ॥३२१॥

॥ दोहा ॥

॥ गामडीया ने गमार ए, धर्म न लहे अधर्म ॥ कूड साखी केवल कह्या, मूरख न लहे मर्म ॥ १ ॥ जूतुं बोले ए जडा, श्यो एहनो विश्वास ॥ गामडियानो मत गणे, कोइ विश्वास चकास ॥ २ ॥ हंस काग दृष्टांत हे, सांजल जे तुं सीह ॥ श्रीजय कहे ते सांजलो, बहु गंजीर अबीह ॥ ३ ॥

॥ ढाल बारमी ॥ रसीयानी देशी ॥

॥ धन्य पुरें एक इह मोहोटो अछे, तिहां बहु मत्स्यनी जाति॥सुबंधव॥ मीन लेवा एक काग पडयो तिहां, मीन तो जलमांहे जात ॥ सु० ॥१॥ गामडीयानो विश्वास न कीजीयें ॥ ए आंकणी ॥ कागनी पांखो जलनीनी थई, न तराये न उमाय ॥ सु०॥ जलमांहे हवे बूडशे कागडो, इण समे अचरज थाय ॥ सु० ॥ गा० ॥ २ ॥ हंसी हंसने कहे सुणो स्वामीजी, कागडो बूडे छे एह ॥ सु०॥ नीचें पेशी पूठें धरी तुमें, काढो करुणा रे नेह॥सु० ॥ गा०॥३॥ तेमज कर्युं तिणें काकनें काढीयो, स्वस्थ थयो हवे काग ॥सु०॥ प्रार्थना करी हंसी युत हंसनें, तुमें उपगारी महाजाग ॥ सु० ॥ गा० ॥ ४ ॥ एम कही पोतानें वड लइ गयो, वातो करी विवेक ॥ सु० ॥ चंचुपुटें फल लावी आपीयां, वावरे प्रीति विवेक ॥ सु० ॥ गा० ॥ ५ ॥ हंसी सहित हवे हंसलो उडवा, मांमे जेटले ताम ॥ सु०॥ काक कहे रे प्रिया तुं जाय किहां, हंसी रोकी ते गम ॥ सु० ॥ गा० ॥ ६ ॥ हंस कहे माहारी ए नारी छे, ताहरी ए नहिं नारी ॥सु०॥ तुंतो मिश सरिखो महा श्याम छे, एतो शशी अनुहार ॥ सु०॥ गा०॥ ७ ॥ काक कहे तेहनो श्यो मेल छे, परकुलनी होये नार ॥ सु० ॥ नगिनी होय तो समरूपें होय, एक कूखें अवतार ॥ सु०॥ गा० ॥ ॥ ८ ॥ जो नवि माने मुज ए वातडी, तो ए गामना लोक ॥सु०॥ हुं ए परण्यो तव सहु दीसलो, मली मली सहुयें रे थोक ॥सु०॥ गा० ॥ ए ॥ ते कहेशे तो मानशो के नहीं, हंसे मानी ते वात ॥सु०॥ पित्रादिकनें सोंप्यो हंसलो, काक ते ग्रामें आयात ॥ सु० ॥ गा० ॥ १० ॥ आप विवाद सुणाव्यो लोकनें, नर

धर्म जयवंत ला०॥ध० ॥१०॥ ईम चिंती कह्युं धुरथी साचुं, आप्युं घरेणुं कतारी जाचुं ला० ॥ क० ॥ हरख धरी ते तस्कर माल्या, नृप ते वनमां आगल चाल्या ला० ॥ आ० ॥११॥ तापस आश्रम पामीने वेसे, कुलप ति कहे किम आश्रमें पेसे ला० ॥ आ० ॥ कोण तुं किम इहां आयो नाई, तव नृप कहे सवि चित्त लगाइ ला० ॥ चि० ॥१२॥ कुलपति कहे सुण रा क्षस एक, इण वन वसतो नांही विवेक ला० ॥ ना० ॥ तापस विण माण सनें मारे, तेणें तुं तापस वेशने धारें ला० ॥ वे० ॥१३॥ एम कही तापस वेशनें आपे, नृप पण निज अंगें ते थापे ला० ॥ अं० ॥ करी फल आहा रने सरोवर आवे, न्हावानें जव सज्ज ते थावें ला० ॥ स० ॥१४॥ तव रा क्षस आवी कहे एम, निक्षु नवो तुं आव्यो ठे केम ला० ॥ आ० ॥ माह री वात सांनल तुं एक, नर नखी दिन एक राखुं हुं टेक ला० ॥ रा० ॥ ॥१५॥ बत्रीश लक्षणो नखीयें राजा, एक वरस लगें रहीयें ते ताजा ला० ॥ एहवो नृप नंदीपुर स्वामी, पण रहे नित्य नित्य परवश्यो धामी ला० ॥ प० ॥ १६ ॥ तेणे माहारो कोई दाव न फावे, पण एक वात सुणी ईणे रावें ला० ॥ सु० ॥ तुरंग हरी अटवीमां लावे, एह वात खरी होय तो फावे ला० ॥ हो० ॥ १७ ॥ जाणतो होय तो कहे मुज वात, सांनली चिंतवे नृप विख्यात ला० ॥ साचुं कहुं तो ए मुज खाये, जूठुं कहुं तो व्रत मुज जाय ला० ॥ व्र० ॥ १८ ॥ अथवा प्राणनें अरथें जूठुं, बोलुं तो लागे पाप अपूठुं ला० ॥ पा० ॥ प्राणथी अधिको धर्म ए मोहो टो, नवि कहुं जूठ न थाउं खोटो ॥ ला० ॥ था० ॥ १९ ॥ मुज तनु देइ बीजा उगारुं, लान मोहोटो होये आतम तारुं ला० ॥ आ० ॥ होशे दया एक वरस प्रमाण, निश्चय कस्यो इम आप विन्नाण ला० ॥ आ० ॥ ॥ २० ॥ राय कहे हुं तेहज राय,कर तुं ताहरे जे मन नाय ला० ॥जे०॥ ते कहे मुनि नवि मारुं कहे साचुं, खरो तापस के कांय ठे काचुं ला० ॥ ॥ कां० ॥ २१ ॥ नृप कहे मुनियें आप्यो ठे वेश,कोणप कहे तुज नखियें विशेष ला० ॥ न० ॥ इष्ट देव संनार तुं रंग, नृप पण निज वोसिरावे अं ग ला० ॥ वो० ॥ २२ ॥ पंच परमेष्टिनुं ध्यान ते ध्याय, राक्षस घोररूपें तिहां थाय ला० ॥ रू० ॥ अट्टाट्ट हास्य स्थूल ते दंत, खावा धाये नृप अक्षोन वंत ला० ॥ अ० ॥ २३ ॥ राक्षस अटवी क्षणमां न देखे, निज

ज्ञान वुद्धि गत ए जना, जोवुं वदन न योग्य ॥ श्रीसुख कहे किम सत्य ए, फनि परीक्षा विण फोक ॥४॥ तेह परीक्षा तेहनी, करवा कारण शोय ॥ हंस काग थइ हरखशुं, सघलुं कीधुं सोय ॥ ५ ॥ हंस काक बोल्या हता, सत्य तुं जाण सुजाण ॥ न वदे आणंद नृप परें, जूठ जते पण प्राण ॥६॥ कहे सिंह आणंद किश्यो, जेह न बोल्यो जूठ ॥ श्रीजय कहे तमें सांजलो, उत्तम एह अछुट ॥ ७ ॥

॥ ढाल तेरमी ॥ लालननी देशी ॥ अथवा पापथानक अगीयारमुं कूडुं ॥ ए देशी ॥

॥ नंदीपुर नगरें अति शोहे, आणंद नरपति जनमन मोहे लालन, जनमन मोहे ॥ श्रीअरिहंतना धर्मनो रागी, पापजीरु मोहोटो वडजागी लाण ॥ मोण ॥ १ ॥ बत्रीश लक्षण अंग विराजे, आवे बहु नृप सेवना काजें लाण ॥ सेण ॥ कोडी मूलथी उंछुं न राखे, आजरण ते निज अंगें सराखे लाण ॥ अंण ॥ २ ॥ क्रीडा करवा एकदिन आवे, पुर बाहिर आजरणें सोहावे लाण ॥ आण ॥ विविध गतें तव वाजी खेलावे, तुरंग तदा उडी आकाशें जावे लाण ॥ आण ॥ ३ ॥ लावे अटवीमां नृप एकाकी, दुष्ट जाणी नृप उतर्यो ताकी लाण ॥ उण ॥ जूमी पडयो हय अदृश्य हूउ, जमे एकाकी तिहां अचरिज जूउ लाण ॥ अण ॥ ४ ॥ उघाडे शस्त्र चोर ते चार, मलीया नवि खोजाणो लगार लाण ॥ खोण ॥ चोर कहे अम जाग्यें मलीयो, अलंकार युत्त तुज अटकलीयो लाण ॥ तुण ॥५॥ चरित्र अमारुं सांजल राय, सूरिपुर नृप सेव कराय लाण॥सेण॥ क्षत्रीपुंगव कांय अपराध कीनो,अमने देश निकाल ते दीनो लाण ॥निण॥६॥ गुरु कन्हे धर्म सुणी अमें लीधुं, नवि लेवुं कोइनुं अण दीधुं लाण ॥ कोण ॥ पण अमचो निर्वाह न थाय, जूपति विण बीजो पीडाय लाण ॥ बीण ॥७॥ लक्ष्यी उंडी चोरी न करीयें, नित्य परिणाम न हीणडा धरीयें लाण ॥हीण॥ तेणे नृपनुं धन बहु अमें लेशुं, तेहवुं नहीं होय तो अमें जावाने देशुं लाण ॥जाण॥८॥ तुं कोण बे आजरण श्यां मूलां, सत्य कहो अम वयण अमूलां लाण ॥ ॥ वण ॥ ल्यो अलंकार ए नृप मन चिंते, आजीविका करो दुःख व्यतीतें लाण ॥ दुःण ॥ए॥ पापनुं मूल अनृत नवि बोलुं, धंन बे विनाशी तेणें चित्त न मोलुं लाण ॥ चिण ॥ धनथी मव्युं सुख धर्में अनंत, सत्य समान न

धर्म जयवंत ला०॥ध० ॥१०॥ ईम चिंती कह्युं धुरथी साचुं, आप्युं घरेणुं कतारी जाचुं ला० ॥ क० ॥ हरख धरी ते तस्कर माल्या, नूप ते वनमां आगल चाल्या ला० ॥ आ० ॥११॥ तापस आश्रम पामीने वेसे, कुलपति कहे किम आश्रमें पेसे ला० ॥ आ० ॥ कोण तुं किम इहां आयो जाई, तव नृप कहे सवि चित्त लगाइ ला० ॥ चि० ॥१२॥ कुलपति कहे सुण राक्षस एक, इण वन वसतो नांही विवेक ला० ॥ नां० ॥ तापस विण माणसनें मारे, तेणें तुं तापस वेशने धारे ला० ॥ वे० ॥१३॥ एम कही तापस वेशनें आपे, नृप पण निज अंगें ते थापे ला० ॥ अं० ॥ करी फल आहारने सरोवर आवे, न्हावानें जव सज्ज ते थावें ला० ॥ स० ॥१४॥ तव राक्षस आवी कहे एम, भिक्षु नवो तुं आव्यो छे केम ला० ॥ आ० ॥ माहरी वात सांभल तुं एक, नर भखी दिन एक राखुं हुं टेक ला० ॥ रा० ॥ ॥१५॥ बत्रीश लक्षणो भखीयें राजा, एक वरस लगें रहीयें ते ताजा ला० ॥ एहवो नृप नंदीपुर स्वामी, पण रहे नित्य नित्य परवश्यो धामी ला० ॥ प० ॥ १६ ॥ तेणे माहारो कोई दाव न फावे, पण एक वात सुणी ईणे रावें ला० ॥ सु० ॥ तुरंग हरी अटवीमां लावे, एह वात खरी होय तो फावे ला० ॥ हो० ॥ १७ ॥ जाणतो होय तो कहे मुज वात, सांभली चिंतवे नृप विख्यात ला० ॥ साचुं कहुं तो ए मुज खाये, जूठुं कहुं तो व्रत मुज जाय ला० ॥ व्र० ॥ १८ ॥ अथवा प्राणनें अरथें जूठुं, बोलुं तो लागे पाप अपूठुं ला० ॥ पा० ॥ प्राणथी अधिको धर्म ए मोहोटो, नवि कहुं जूठ न थाउं खोटो ॥ ला० ॥ था० ॥ १९ ॥ मुज तनु देइ बीजा उगारुं, लाभ मोहोटो होये आतम तारुं ला० ॥ आ० ॥ होशे दया एक वरस प्रमाण, निश्चय कर्यो इम आप विन्नाण ला० ॥ आ० ॥ ॥ २० ॥ राय कहे हुं तेहज राय, कर तुं ताहरे जे मन भाय ला० ॥जे०॥ ते कहे मुनि नवि मारुं कहे साचुं, खरो तापस के कांय छे काचुं ला० ॥ ॥ कां० ॥ २१ ॥ नृप कहे मुनियें आप्यो छे वेश, कोणप कहे तुज भखियें विशेष ला० ॥ भ० ॥ इष्ट देव संभार तुं रंग, नृप पण निज वोसिरावे अंग ला० ॥ वो० ॥ २२ ॥ पंच परमेष्टिनुं ध्यान ते ध्याय, राक्षस घोररूपें तिहां थाय ला० ॥ रू० ॥ अट्टाट्ट हास्य स्थूल ते दंत, खावा थाये नृप अक्षोभ वंत ला० ॥ अ० ॥ २३ ॥ राक्षस अटवी क्षणमां न देखे, निज

पुर बाहिर क्रीडातो पेखे ला० ॥ क्री० ॥ सैन्यनें नृपण तेह तुरंग, तिम हीज देखे पूरव रंग ला० ॥ पू० ॥ २४ ॥ पुष्पवृष्टि आकाशथी थाय, इं द्रजाल के नवि समजाय ला० ॥ गगनें देदीप्यमान देव दो दीसे, एक क हे सुणो वात जगीशें ला० ॥ वा० ॥ २५ ॥ बीजे खंमें तेरमी ढाल, सां नलतां होये मंगलमाल ला० ॥ मं० ॥ श्रीजयानंदना रासमां नांखी, प द्मविजय कहे चरित्र छे साखी ला० ॥ च० ॥ २६ ॥ सर्व गाथा ॥२९५॥

॥ दोहा ॥

॥ इणहिज उद्याने अछुं, नंदी यक्ष इण नाम ॥ मित्र श्रीयक्षें मुक्कनें, तेडयो हुं गयो ताम ॥ १ ॥ कूट साखी परीक्षा करी, गामडियानी गमार ॥ मुजनें कहे हवे मित्र ते, कहो तुम नयर प्रकार ॥ २ ॥ में कह्युं उत्तम माहरा, नयरमां नृप नर नारि ॥ सत्यवादी शुन लक्षणा, श्रीमुख कहे श्री कार ॥३॥ किम मानुं साचुं करी, इंम संदेह अपार ॥ आवी परीक्षा अ में करी, सत्यवादी शिरदार ॥४॥ धन्य तुं दृढव्रतनो धणी, नवि चूक्यो निज नेम ॥ पामीश इह नव परनवें, इछित संपद एम ॥ ५ ॥ आमयहर मणि आपीयो, खड्ग शत्रुजय खांत ॥ आपीनें अदृश थया, सांनली प्रजा प्र शांत ॥६॥ नृपतणी स्तवना नणे, प्रजालोक पुण्यवंत ॥ मणिथी रोग ग मावतो, खड्गें द्विट्जय खांत ॥ ७ ॥ सम्यक्त्वादिक व्रत सवि, पाली पूर ण प्रीति ॥ सात क्षेत्रें धन साचवी, सुरवर थया सुरीति ॥ ८ ॥

॥ ढाल चौदमी ॥ अढीयानी देशी ॥

॥ कहे श्रीजय सुण सिंह, वात कहुं निरबीह॥उत्तम नर लही ए, पूछीयें ति हां सही ए॥ १ ॥ ते कहेशे ते साच, करशुं प्रमाण तस वाच ॥ सिंह अं गी करे ए, आगल संचरे ए ॥ २ ॥ श्रीविशालपुर नाम, पोहोता क्रमें ति ण गाम ॥ तास उद्यानमां ए, देखता शानमां ए ॥३॥ विद्याविलास अनिधा न, कलाचारज गुनवान ॥ धनुर्वेदादिका ए, बहुत कला जिका ए ॥ ४॥ नृप पुत्रादिक जेह, पांचशें छात्रनें तेह ॥ शीखवे शुन परें ए, गया तस परिसरें ए ॥ ५ ॥ सिंहशुं श्रीजयानंद, नमी तस पद अरविंद ॥ पूछे आपनी ए, वा त शुन पापनी ए ॥ ६ ॥ कहे कलाचारज वात, शास्त्र लोक अवदात ॥ शु न ते धर्मथी ए, अशुन अधर्मथी ए ॥ ७ ॥ सांनली श्रीजयानंद, पाम्या प रमानंद ॥ कुमलाणो वली ए, सिंह ते मन वली ए ॥ ८ ॥ कलाचारयनी

पास, करवा कला अन्यास ॥ नणवा तिहां रह्या ए, चित्तमां गहगह्या ए ॥ ए ॥ कलाचारज वश कीध, ठात्रोगानन हरी लीध ॥ विनयादिक करी ए, श्रीजय चित्त धरी ए ॥ १० ॥ अल्प दिनें नण्यो तेह, सकल कला गुण गेह ॥ अनुक्रमें आण हीए, कलाचारयनी सही ए ॥ ११ ॥ ठात्र नणावे ताम, एम सहु मन अनिराम ॥ सहुनें वल्लन घणो ए, लागे शोहामणो ए ॥ १२ ॥ स्पर्द्धायें नणे सिंह, ते पण रातनें दीह ॥ बहुदिनें अल्प लह्यो ए, नाग्य प्रमाण कह्यो ए ॥ १३ ॥ नाम विशाल जयराय, षट षट मासें आय ॥ परीक्षा सहु तणी ए, करतो नूधणी ए ॥ १४ ॥ एक दिन आव्यो तेह, पुत्रादिकनें स्नेह ॥ सहुनें परखतो ए, नयणें निरखतो ए ॥ १५ ॥ ताड शिरें ठव्युं एक, मोरपिछ अति ठेक ॥ वींधे धनुर्द्धरा ए, तेह कुमरवरा ए ॥ १६ ॥ कह्यो तंतु न बेदाय, पाठक मन कलपाय ॥ आण श्रीजयनणी ए,करता ते गुणी ए ॥ १७ ॥ तंतु बताव्यो जेह, वींध्यो श्रीजयें तेह ॥ हरख्या तव सहु ए, देखी कला बहु ए ॥ १८ ॥ यंत्र मुक्तादिक वात, चरित्र मांहे घणी जात ॥ ते तिहांथी लहो ए, इहां संक्षेप कहो ए ॥ १ए ॥ बीजे खंमें ढाल, चौदमी अति सुरसाल ॥ पद्मविजय कही ए, नविजनें सद्दही ए ॥ २० ॥ सर्वगाथा ॥ ४१ए ॥

॥ दोहा ॥

॥ कमलपत्र तिहां मांमीनें,गुरु बतावे जेह ॥ श्रीजय बेदे ते तंतु,खंडुं न बीजुं रेह ॥ १ ॥ वली मूके कर चक्रनें, बेदे जे सहु ताल, गिरिशिर दूर शिला रही, चूरे ते ततकाल ॥ २ ॥ अश्वयुद्ध करतां थकां, सुनट हजारो तेण ॥ महावीर्यथी जीतिया, श्रीजयें बहु शस्त्रेण ॥ ३ ॥ वली धारा गति अश्वनें, वट शाखा विलग्ग ॥ पवन वेग बिहुंपगथकी, अश्वने उपाड्यो सलग्ग ॥ ४ ॥ इंम गज युद्धें पाडीया, आधोरणादिक वीर ॥ इत्यादिक बहु देखीनें, नूपें जाण्यो धीर ॥ ५ ॥

॥ ढाल पन्नरमी ॥ साहेला हे ॥ ए देशी ॥

॥ साहेला हे, ते नूपादिक सर्व, विस्मित मुदित थया हवे हो लाल ॥ सा० ॥ शिर धूणावता तेह, सिंह विना सहु ए स्तवे हो लाल ॥ १ ॥ सा० ॥ वीर्य कला गुण देख, पूछे पाठकनें नूपति हो लाल ॥सा०॥ ए कोण पुरुष रतन्न, पाठक कहे सुणो सांप्रति हो लाल ॥ २ ॥ सा० ॥ प

पुर बाहिर क्रीडातो पेखे ला० ॥ क्री० ॥ सैन्यनें नृपतण तेह तुरंग, तिम हीज देखे पूरव रंग ला० ॥ पू० ॥ २४ ॥ पुष्पवृष्टि आकाशथी थाय, इंद्रजाल के नवि समजाय ला० ॥ गगनें देदीप्यमान देव दो दीसे, एक कहे सुणो वात जगीशें ला० ॥ वा० ॥ २५ ॥ बीजे खंडें तेरमी ढाल, सांजलतां होये मंगलमाल ला० ॥ मं० ॥ श्रीजयानंदना रासमां जांखी, पद्मविजय कहे चरित्र छे साखी ला० ॥ च० ॥ २६ ॥ सर्व गाथा ॥३९५॥

॥ दोहा ॥

॥ इणहिज उद्याने अछुं, नंदी यक्ष इण नाम ॥ मित्र श्रीयक्षें मुजनें, तेड्यो हुं गयो ताम ॥ १ ॥ कूट साखी परीक्षा करी, गामडियानी गमार ॥ मुजनें कहे हवे मित्र ते, कहो तुम नयर प्रकार ॥ २ ॥ में कह्युं उत्तम माहरा, नयरमां नृप नर नारि ॥ सत्यवादी शुज लक्षणा, श्रीमुख कहे श्रीकार ॥३॥ किम मानुं साचुं करी, इंम संदेह अपार ॥ आवी परीक्षा अमें करी, सत्यवादी शिरदार ॥४॥ धन्य तुं दृढव्रतनो धणी, नवि चूक्यो निज नेम ॥ पामीश इह जव परजवें, इच्छित संपद एम ॥ ५ ॥ आमयहर मणि आपीयो, खड्ग शत्रुजय खांत ॥ आपीनें अदृश थया, सांजली प्रजा प्रशांत ॥६॥ नृपतणी स्तवना जणे, प्रजालोक पुण्यवंत ॥ मणिथी रोग गमावतो, खड्गें छिद्जय खांत ॥ ७ ॥ सम्यक्त्वादिक व्रत सवि, पाली पूरण प्रीति ॥ सात क्षेत्रें धन साचवी, सुरवर थया सुरीति ॥ ८ ॥

॥ ढाल चौदमी ॥ अढीयानी देशी ॥

॥ कहे श्रीजय सुण सिंह, वात कहुं निरबीह॥उत्तम नर लही ए, पूछीयें तिहां सही ए ॥ १ ॥ ते कहेशे ते साच, करशुं प्रमाण तस वाच ॥ सिंह अंगी करे ए, आगल संचरे ए ॥ २ ॥ श्रीविशालपुर नाम, पोहोता क्रमें तिण गाम ॥ तास उद्यानमां ए, देखता शानमां ए ॥३॥ विद्याविलास अनिधान, कलाचारज गुनवान ॥ धनुर्वेदादिका ए, बहुत कला जिका ए ॥ ४॥ नृप पुत्रादिक जेह, पांचशें छात्रनें तेह ॥ शीखवे शुज परें ए, गया तस परिसरें ए ॥ ५ ॥ सिंहशुं श्रीजयानंद, नमी तस पद अरविंद ॥ पूछे आपनी ए, वात शुज पापनी ए ॥ ६ ॥ कहे कलाचारज वात, शास्त्र लोक अवदात ॥ शुन ते धर्मथी ए, अशुन अधर्मथी ए ॥ ७ ॥ सांजली श्रीजयानंद, पाम्या परमानंद ॥ कुमलाणो वली ए, सिंह ते मन वली ए ॥ ८ ॥ कलाचारयनी

पास, करवा कला अभ्यास ॥ भणवा तिहां रह्या ए, चित्तमां गहगह्या ए ॥ ए ॥ कलाचारज वश कीध, छात्रोगानन हरी लीध ॥ विनयादिक करी ए, श्रीजय चित्त धरी ए ॥ १० ॥ अल्प दिनें भण्यो तेह, सकल कला गुण गेह ॥ अनुक्रमें आण हीए, कलाचारयनी सही ए ॥ ११ ॥ छात्र भणावे ताम, एम सहु मन अभिराम ॥ सहुनें वल्लभ घणो ए, लागे शोहामणो ए ॥ १२ ॥ स्पर्द्धायें भणे सिंह, ते पण रातनें दीह ॥ बहुदिनें अल्प लह्यो ए, भाग्य प्रमाण कह्यो ए ॥ १३ ॥ नाम विशाल जयराय, षट षट मासें आय ॥ परीक्षा सहु तणी ए, करतो भूधणी ए ॥ १४ ॥ एक दिन आव्यो तेह, पुत्रादिकनें स्नेह ॥ सहुनें परखतो ए, नयणें निरखतो ए ॥ १५ ॥ ताड शिरें ठव्युं एक, मोरपिछ अति छेक ॥ वींधे धनुर्द्धरा ए, तेह कुमरवरा ए ॥ १६ ॥ कह्यो तंतु न छेदाय, पाठक मन कलपाय ॥ आण श्रीजयभणी ए,करता ते गुणी ए ॥ १७ ॥ तंतु बताव्यो जेह, वींध्यो श्रीजयें तेह ॥ हरख्या तव सहु ए, देखी कला बहु ए ॥ १८ ॥ यंत्र मुक्तादिक वात, चरित्र मांहे घणी जात ॥ ते तिहांथी लहो ए, इहां संक्षेप कहो ए ॥ १९ ॥ बीजे खंमें ढाल, चौदमी अति सुरसाल ॥ पद्मविजय कही ए, भविजनें सदही ए ॥ २० ॥ सर्वगाथा ॥ ४१९ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कमलपत्र तिहां मांमीनें,गुरु बतावे जेह ॥ श्रीजय छेदे ते तंतु,खंडुं न बीजुं रेह ॥ १ ॥ वली मूके कर चक्रनें, छेदे जे सहु ताल, गिरिशिर दूर शिला रही, चूरे ते ततकाल ॥ २ ॥ अश्वयुद्ध करतां थकां, सुभट हजारो तेण ॥ महावीर्यथी जींतिया,श्रीजयें बहु शस्त्रेण ॥ ३ ॥ वली धारा गति अश्वनें, वट शाखा विलग्ग ॥ पवन वेग त्रिहुंपगथकी, अश्वने उपाड्यो सलग्ग ॥ ४ ॥ इंम गज युद्धें पाडीया, आधोरणादिक वीर ॥ इत्यादिक बहु देखीनें, भूपें जाण्यो धीर ॥ ५ ॥

॥ ढाल पन्नरमी ॥ साहेला हे ॥ ए देशी ॥

॥ साहेला हे, ते भूपादिक सर्व, विस्मित मुदित थया हवे हो लाल ॥ सा० ॥ शिर धूणावता तेह, सिंह विना सहु ए स्तवे हो लाल ॥ १ ॥ सा० ॥ वीर्य कला गुण देख, पूछे पाठकनें भूपति हो लाल ॥सा०॥ ए कोण पुरुष रत्न, पाठक कहे सुणो सांप्रति हो लाल ॥ २ ॥ सा० ॥ प

रदेशी कोइ एह, बांधव सहित कला नणे हो लाल ॥ सा० ॥ क्षत्री पुं गव शुद्ध, नवि जाणुं रहे किहां कणे हो लाल ॥ ३ ॥ सा०॥ चिंतवे नरप ति ताम, राज्य योग्य निश्चय करे हो लाल ॥ सा० ॥ ए बे राजकुमार, ल क्षण सवि तेहनां धरे हो लाल ॥ ४ ॥ सा० ॥ आदर करिय अपार, पूजी पाठक पर परें हो लाल ॥ सा० ॥ गात्र नणावण आण, देई नृप गया मं दिरें हो लाल ॥ ५ ॥ सा० ॥ श्रीजयानंद कुमार, गीत नाटयादिक बहु नणे हो लाल ॥ सा० ॥ कला बहोंतेर विशेष, पामी पसाय गुरुतणे हो लाल ॥ ६ ॥ सा० ॥ गात्र नणावे नित्य, गुरुनें वीसामो करे हो ला ल ॥ सा० ॥ एकदा परीक्षा निमित्त, रायनो ढंढेरो फिरे हो लाल ॥ ७ ॥ ॥ सा० ॥ तेहनें इच्छित देश, आपुं जे तोले करी हो लाल ॥ सा० ॥ श्री जय तोले ताम, गजनें नावामां धरी हो लाल ॥ ८ ॥ सा० ॥ जलमां मूके तेह, बूडे तिहां रेखा करे हो लाल ॥ सा० ॥ गज उतारी तेह, ना वामां पत्थर नरे हो लाल ॥ सा० ॥ ९ ॥ रेखा लगें जल आय, तव पत्थ र तोले सवे हो लाल ॥ सा० ॥ तेहना नार प्रमाण, हाथीनुं पण संनवे हो लाल ॥ १० ॥ सा० ॥ नृपति विस्मय पामि, आदरथी घर लावियो हो लाल ॥ सा० ॥ स्नान नोजन शुन रीत, बहु गौरव करे नावियो हो लाल ॥ ११ ॥ सा० ॥ सर्व कलामां प्रवीण, गुणवंतो पंमित लही हो लाल ॥ सा० ॥ रूप कला गुणें तास, निजपुत्री अनुरूप सही हो ला ल ॥ १२ ॥ सा० ॥ अण इछतां पण राय, पुत्री मणिमंजरी तणो हो लाल ॥ सा० ॥ कीधो शुन विवाह, नृप दायजो आपे घणो हो लाल ॥ ॥ १३ ॥ सा० ॥ हय गय रथने पत्ति, देश एक आपे वली हो लाल ॥ ॥ सा० ॥ घर उपकरण समेत, मोहोल एक दीये मनरुली हो लाल ॥ ॥ १४ ॥ सा० ॥ मणिमंजरीशुं नोग, दिन दिन नोगवे अनिनवा हो ला ल ॥ सा० ॥ जींती नूप अनेक, सोंपे नृपनें नवनवा हो लाल ॥ १५ ॥ ॥ सा० ॥ पामे प्रतिष्ठा सार, हवे एक नृप शूररायनें हो लाल ॥ सा० ॥ जींतवा जातां निषेध, करी कहे जीतुं हुं जायनें हो लाल ॥ १६ ॥ सा० ॥ सेना लेइ गयो तेह, साहमो आव्यो नूपति हो लाल ॥ सा० ॥ युद्ध थ युं दोय सैन्य, नाग्यो कुमर सेनापति हो लाल ॥१७॥ सा० ॥ कवचा कु मर नरिंद, युद्ध कर्युं तिहां तेणिपरें हो लाल ॥ सा० ॥ वैरी सेना नठ,

शूर उठ्यो तव ततपरें हो लाल ॥ १८ ॥ सा० ॥ बाणें बेहु करे युद्ध, गगन दिशो सघली नरी हो लाल ॥ सा० ॥ अनुक्रमें सात धनुष, छेदे कुमार शरें करी हो लाल ॥ १९ ॥ सा० ॥ नांग्यो रथ वली वर्म, खड्ग लेइनें धावियो हो लाल ॥ सा० ॥ कुमरें खड्गें खड्ग, खंम करीनें वधावियो हो लाल ॥ २० ॥ सा० ॥ मोघरें मोघर नांगी, गदायें गदा चूरण करे हो लाल ॥ सा० ॥ शस्त्र रहित थयो तेह, बाहु युद्ध मल्लनी परें हो लाल ॥ २१ ॥ सा० ॥ बहु वेला करी युद्ध, शूरनें हृदयमां ताडियो हो लाल ॥ सा० ॥ मूर्छा लही पड्यो नूमि, यश अंबर लगें चाडियो हो लाल ॥ २२ ॥ सा० ॥ निगडबंध करी तास, जीवन छांटी सज्ज कस्यो हो लाल॥ सा० ॥ सैन्यने अन्नय ते दीध, जइ नृपनें आगल धस्यो हो लाल ॥ २३ ॥ सा० ॥ कुमर वयणें करी तास, मूक्यो दंम लेइ यदा हो लाल ॥ सा० ॥ दयावंत एम जाणी, मूके शत्रु नम्यो तदा हो लाल ॥ २४ ॥ सा० ॥ वालें जींत्यो मुज्ज, एह वैराग्य धरी मनें हो लाल ॥ सा० ॥ पुत्रनें थापी राज्य, दीक्षा लीधी गुरु कनें हो लाल ॥ २५ ॥ सा० ॥ पाली निरतिचार, केवल लही शिवपद वस्यो हो लाल ॥ सा० ॥ धन्य एहनो अवतार, एणी परें अंतर रण कस्यो हो लाल ॥ २६ ॥ सा० ॥ बीजे खंमें ढाल, पन्नरमी ए सोहामणी हो लाल ॥ सा० ॥ पद्मविजय कहे एम, धर्म ते जिम चिंतामणि हो लाल ॥ २७ ॥ सर्व गाथा ॥ ४५१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ नाग्यवंत नोगी नला, राज्य वृद्धि करनार ॥ नगर लोक नरपति नणी, हर्ष पमाडण हार ॥ १ ॥ सुखमां काल श्रीजयतणो, जाय नित्य जयकार ॥ खेदाये खर नानुयें, सिंह जिम घूक शिरदार ॥ २ ॥ लखमी आपे नवि लीये, ईर्ष्यानें अनिमान ॥ अवलुं चिंते उधमी, नावे शान निदान ॥ ३ ॥ यतः ॥ खलः खिद्यतएवान्य, रुद्धिनिः सत्कृतोप्यलम् ॥ पश्यन् साम्यश्रियं शुष्येत्, सिक्तोऽपि हि च वासकः ॥ १ ॥ दोहा ॥ देशांतरें दुःख दाखवा, लेई जाउं हुं लाहार ॥ एम चिंतीनें एम कहे, वात सुणो सुविचार ॥ ४ ॥ निजनयरीथी नीकल्या, देश दर्शननें दूर ॥ मनवंछित मनमां रह्युं, पाम्या न कौतुक पूर ॥ ५ ॥ आसन्न रहेतां आपणें, जाणे मावित्र जाम ॥

मावित्र माणस मोकली, तेडावी लिये ताम ॥ ६ ॥ सुख गिरिधर मुज सा थ जो, नहीं आवो मनधार ॥ एकाकी जाणुं अमें,तुज वियोग दुःख त्यार॥७॥

॥ ढाल शोलमी॥ एकवीशानी देशी ॥

॥ मन चिंतवे रे, श्रीजयानंद शिरोमणि ॥ मुज आशय रे, आव्यो सहुनें अवगणी ॥ केम एकलो रे, मूकुं तेणें जावूं खरुं ॥ तस नांखे रे, आवशुं सार्थे तिम करुं॥ १ ॥ त्रुटक ॥ तिम करुं एम कही करे सामग्री,वास घर द्वार शाख ए ॥ श्रीजयानंद लखे श्लोकह, तेहमां एम नाख ए ॥ यतः ॥ रंत्वा जलाशयेष्वष्टौ, मासांश्चित्रेषु कौतुकान् ॥ वर्षासु कुरुते हंसः, स्वपदे मानसे रतिं ॥ १ ॥ निजनारीशुं परिवार सहुनें, वंची खड्ग सहाय ए ॥ सिंह साथें नीकल्यो ते, नगरथी निरमाय ए ॥ २ ॥ पुरग्रामें रे, फरतां इछायें करी ॥ जोवे कौतुक रे, इंण अवसर मणिमंजरी ॥ प्रात समयें रे, चिंतवे मुज पति किहां गया ॥ पूछे परिकर रे, ते पण सहु विलखा थया ॥ ३ ॥ त्रुटक ॥ तेणें पण नृपनें जणव्युं, मूकी निज नर राय ए ॥ ग्राम नगर उद्यान प्रमुखें, बहु परें शोधाय ए ॥ खोलतां नवि शोध लाधी, शोकातुर नृप बहु थयो ॥ इंण अवसर श्लोक देखी, मणिमंजरी आणंद नयो ॥ ४ ॥ कहे तातनें रे, कौतुकें देश जोई करी, वर्षायें आवशे रे, मु जपति जाणजो इहां फरी ॥ तव धीरज रे, धरीनें राय प्रमुख रह्या ॥ हवे दोय जण रे, चाल्या आगें मन गह गह्या ॥ ५ ॥ त्रुटक ॥ सिंह एकदा ज यनें नांखे, अधर्मे लहुं कष्ट ए ॥ तुं सहेशो कष्ट एणि परें, तुंतो धर्मे लष्ट ए ॥ कहे श्रीजयानंद ताहरे, संगें पामुं आपदा ॥ पापी संगें धर्मवंत, सीदा ये जाये संपदा ॥६॥ यतः ॥ तेजोमयोऽपि पूज्योऽपि, पापिना नीच धातुना ॥ अयसा संगतोवन्हिः, सहते घनताडनम् ॥ १ ॥ ढाल ॥ कुसंगतें रे, म हिमा मोहोटानो नवि रहे ॥ लसण संगें रे, गंध कपूर सवे जहे ॥ तव पा पी रे, क्रोधें बोल्यो एणी परें ॥ वाद आपणो रे, हजीअ न नांग्यो कोइ नरें ॥ ७ ॥ त्रुटक ॥ कलाचार्यनां वचन बहुविध, तेह नांही प्रमाण ए ॥ विना द्रव्यें जेह आणे, अशननें वली पान ए ॥ तेहनो मत खरो जाणे, पण तो चक्षुं अछे ॥ श्रीजयानंदें मानीयुं तव, हरख्यो सिंह कहे पछें ॥ ८ ॥ ॥ त्रुटक ॥ शक्ति परीक्षण आज आगल, जाशुं हुं पुर गाम ए ॥ तुमें विलं वें आवजो नाई, पूठें नोजन काम ए ॥ जो न साफे काम मुजथी, तो तुमें

पछें साधजो ॥ आज मुजथी काम सीजे, काल तो तमें वाधजो ॥ ए ॥ एम कहीनें रे, आगल चाल्यो ते हवे ॥ चंमसेन रे, शतकूटगिरिप्रछ एह वे ॥ नंदिसाल रे, नगरें अवस्कंध कारणें ॥ जाय छे तिहां रे, सिंह पडयो भिल्ल मारणें ॥ १० ॥ त्रुटक ॥ बांध्यो सिंहनें लोनवशथी, पल्लिपतिनें दीध ए ॥ पापी नरकमां पडयो परमा, धामीयें जिम कीध ए ॥ कोलाहल सुणी श्रीजयानंद, दया स्नेह धरी करी ॥ शीघ्र आवी कहे जाशो, किहां बांधव मुज धरी ॥ ११ ॥ लुंटया आसेरण रे, पल्लिपतियें तेहना ॥ युद्ध करवा रे, अग्रसेना नट जेहना ॥ बाण वरशी रे, हत प्रहत सहुनें कस्या ॥ चंमसेनें रे, आवी सुनट धीरय धस्या ॥ १२ ॥ शृंगनादें थया नेला, युद्ध करवानें सहु ॥ युद्ध करतां तेह साथें, मारतो निल्लनें बहु ॥ कालनी परें श्रीजय जाण्यो, एह नवि जींताय ए ॥ मरण जाणी पल्लिपति निज, कहे एम सुणो नाय ए ॥ १३ ॥ केम मारे रे, महारा सुनटनें एणी परें, तव ते कहे रे, बांध्यो जेहनें शुन परें ॥ तेहनो हुं रे, लघु बांधव मूको तेणें ॥ नहीं मारुं रे, जाउ पछें निर्नय पणे ॥ १४ ॥ त्रुटक ॥ चंमसेन कहे नाई ताहरो, लेई मूक संग्राम ए ॥ आपणे आजथी प्रीति जाणे, सांनली श्रीजय ताम ए ॥ मूक्युं रण तेणें सिंह आप्यो, पल्लीशें प्रार्थना करी ॥ आव्या पालीमां दोय नाई, कार्य निज चित्तमां धरी ॥ १५ ॥ बिहु जण करी रे, नोजन सुखमां तिहां कणे ॥ तस आग्रहें रे, रहिया तेहने दाक्षिणें ॥ श्रीजय कनें रे, शीखे धनुर्विद्या कला ॥ पल्लिपति रे, गुण ग्राहक गुण आगला ॥ १६ ॥ त्रुटक ॥ बीजे खंमें शोलमी ए, ढाल कही शोहामणी ॥ धर्मथी सघले सुरक पामे, धर्म जिम चिंतामणि ॥ पंमित उत्तम विजय केरो, शिष्य पद्मविजय कहे ॥ जेह प्राणी धर्म उद्यम, करे ते संपद लहे ॥ १७ ॥ सर्व गाथा ॥ ४७५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मृगया चोरी धाडमां, साथें जाये सिंह ॥ नीच कर्म नित्य नित्य करे, वमणुं ते निरबीह ॥१॥ सहस्र कूटमां एणे समे, महासेन महाराण ॥ चंम वेरी चंमसेननो, पल्लिपति लीये प्राण ॥ २ ॥ एकदिन्न चंमसेन एम, सिंह सहित एम साम ॥ वयणें श्रीजयने वदे, करो अमारुं काम ॥ ३ ॥ स्वार्थ सिद्ध नणी स्वामीजी, राख्या छे रणकाज ॥ थाउ सखायी स्थिर थइ,

जाणीयें आप्युं राज ॥ ४ ॥ तास वचन ते ततक्षणें, मान्युं वचन प्रमाण ॥ उत्तमजन अंगी करे, प्रार्थनायें दिये प्राण ॥ ५ ॥ सर्व सामग्री सामटी, करी आव्यो सहसकूट ॥ शृंगशब्दें सघले तिहां, वात विशेषें स्फूट ॥ ६ ॥ महासेन निज मानवी, परवस्यो पालीनें बाहार ॥ नीकलियो नट मानवी, क्रोधें जम अनुकार ॥ ७ ॥ वसन चित्रक करी व्याघ्रनां, मृगपशुनां महा मान ॥ विविध लता वींटी शिरें, मोर पिछ असमान ॥ ८ ॥ काहिल नादें क्रो धथी, युद्ध करणनें जोध ॥ विविध आयुद्धशुं आविया, शत्रु करता शोध ॥ ९ ॥

॥ ढाल सत्तरमी ॥ धवल शेठ लेई भेटणुं ॥ ए देशी ॥

॥ सैन्य मल्यां दोय सामटां, गर्जारवें गिरि गाजे रे ॥ कडुआं वचन वदे घणां, वाजित्र बहु तिहां वाजे रे ॥ सै० ॥ १ ॥ एक एक शत्रु बोलावता, खड्ग कुंतें केइ मारे रे ॥ बाण लेइ केइ उछले, शत्रु केइ संहारे रे ॥ सै० ॥ ॥ २ ॥ रण करतां चंद्रसेननुं, भागुं सैन्य ते नासे रे ॥ कोलाहल सुणी आ वियो, सिंहसार ते पासें रे ॥ सै० ॥ ३ ॥ धीरज देई तेहनें, वरसे बाण अखंड रे ॥ भिल्ल नासे ते उपद्रवें, जिम घनें रेणु प्रचंड रे ॥ सै० ॥ ४ ॥ माहासेन ते देखीनें, उठ्यो जिम जमराय रे ॥ बाण वरसे सिंह उपरें, भि ल्ल ते भाग जाय रे ॥ सै० ॥ ५ ॥ सिंहनां बाण छेदे शरें, शत्रु शरण न कोय रे ॥ सिंहधनुष्य छेदी करी, सिंह व्याकुल तिहां होय रे ॥ सै० ॥ ६ ॥ बांधीने निज सैन्यमां, मोकले सुभटनें संगें रे ॥ चंद्रसेन ते देखीनें, सन्न द्धबद्ध थइ रंगें रे ॥ सै० ॥ ७ ॥ महासेन बोलावियो, क्रोधें थइ विकराल रे ॥ बिहुं धीर स्पर्द्धायकी, लडे ज्युं डुर्द्धर व्याल रे ॥ सै० ॥ ८ ॥ गाजे ग र्जारवें गिरिगुफा, घनपरें वरसे बाण रे ॥ घोर संग्राम कस्यो तेणें, वीर तणुं घणुं मान रे ॥ सै० ॥ ९ ॥ महासेन बलीयो हवे, चंद्रसेन धनु वर्म रे ॥ बाणें छेदी विव्हल कस्यो, गयो तेहनो अति मर्म रे ॥ सै० ॥ १० ॥ सेनायें सेना त्रासवी, कुंत तीर तरवार रे ॥ चंद्रसेन बीजुं धनु, लीये अ ति धीरज धार रे ॥ सै० ॥ ११ ॥ हवे महासेन तणुं धनु, बाणे करीनें का पे रे ॥ पापनें कापे जेम व्रती, विघन महामंत्रने जापें रे ॥ सै० ॥ १२ ॥ शिलाखंड लेई हवे, चंद्रसेन शिर दीधी रे ॥ तेह पीडायें तेहनें, पापीयें मू र्छा कीधी रे ॥ सै० ॥ १३ ॥ चंद्रसेननें बांधवा, आवे महासेन जेतें रे ॥ अकस्मात श्रीजय तिहां, आवी बोलाव्यो तेतें रे ॥ सै० ॥ १४ ॥ महासे

न पण अमरष धरी, चाप आस्फाले कोपें रे ॥ श्रीजय साहामो धाईनें, क हे क्रोध आटोपें रे ॥ सै० ॥ १५ ॥ निरपराधी हणुं नहीं, भिन्ननी जाति विशेषें रे ॥ क्षत्री कुल हुं उपन्यो, लागे कलंक सहु देखे रे ॥ सै० ॥१६॥ भाई माहारो तें बांधीयो, एटलो काल उवेख्यो रे ॥ हवे हुं महारीश तुज नें, क्रोधें करीनें विशेष्यो रे ॥ सै० ॥ १७ ॥ नहीं तो कख जे हुं कहुं, मू क माहारो तुं भाई रे ॥ मेल करो चंमसेनशुं, राज्य भोगव तुं सवाई रे ॥ ॥ सै० ॥ १८ ॥ महासेन कहे मानीपणे, क्षत्रीपणुं हवे लेहेशुं रे ॥ मृ गशुं हरिनें मेल श्यो, आगल सहु तुज कहेशुं रे ॥ सै० ॥ १९ ॥ हरिथी मृग मूकावशे, एहवो कोण छे धीर रे ॥ गुणथी वीर वखाणीयें, नवि वय णें होये वीर रे ॥ सै० ॥ २० ॥ स्पर्द्धायें करी बिहुं जणा, महाभट माहा उत्साह रे ॥ महामानी महापराक्रमी, महायोध धरत उमाह रे ॥ सै० ॥ ॥ २१ ॥ बाणयुद्धें ते योधता, पराक्रमथी पनोता रे ॥ बिहुं दल पण सन्नद्ध थइ, रण संग्राममां पोहोता रे ॥ सै० ॥ २२ ॥ श्रीजय बाण समू हथी, सहुदिशें सुभट ते बेग रे ॥ कायर थइ निर्भयपणे, तेहनें शरणें पे ग रे ॥ सै० ॥ २३ ॥ एहवो भट नवि को रह्यो, अंकित जे नवि कीधो रे ॥ पण श्रीजयें किरपायकी, यम नृप घर नवि कीधो रे ॥ सै० ॥ २४॥ बल भागुं महासेननुं, क्रोधें अधिक भराणो रे ॥ बाण निरंतर मूकतो, छेदे श्रीजय उजाणो रे ॥ सै० ॥ २५ ॥ बखतर धनुष छेदी करी, छेदे तस तरवार रे ॥ शस्त्र रहित मुष्टियकी, श्रीजय हृदयमां मारे रे ॥ सै० ॥ ॥ २६ ॥ मूर्छा लही धरणी ढल्यो, भिन्न पासें बंधावी रे ॥ पाणी पाई सज्ज कर्यो, दिये चंमसेनने लावी रे ॥ सै० ॥ २७ ॥ बीजे खंमें ए कही, सत्तरमी वर ढाल रे ॥ पद्मविजय कहे धर्मथी, होवे मंगलमाल रे ॥ ॥ सै० ॥ २८ ॥ सर्वगाथा ॥ ५१२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीजयानंद तस सैन्यनें, आश्वासन बहु आपि ॥ सिंह तेडावी सज्ज करें, कपरां बंधन कापि ॥ १ ॥ श्रीजयनी सेवा करे, चातुर ते चंमसेन ॥ स्तवना करे सारी परें, हियडे हर्ष भरेण ॥ २ ॥ अहो भाग्य अमारडुं, कुलदेवें करी महेर ॥ पाम्या तुम सरिखा पुरुष, लेवा लीला लहेर ॥ ३ ॥ श्रीजय स्तवना शुभ परें, करी पालि निज पाण ॥ कोइक तिहां आपी क

री, सिंह लेइ सपराण ॥ ४ ॥ महासेन लेइ मोजशुं, पोहोता आपणी पाल ॥ श्रीजयनें स्वामी गणे, काढे एणी परें काल ॥ ५ ॥

॥ ढाल अढारमी ॥ चित्रोडा राणा रे ॥ ए देशी ॥

॥ महासेन दंम लेइ रे, मूक्यो सुख सेंइ रे ॥ श्रीजय न करेइ, कोप तस ऊपरें रे ॥ १ ॥ मन चिंते सिंह रे, धिग माहारा दीह रे ॥ दोय वार अबीह, मूकाव्यो जीवतो रे ॥ २ ॥ अधिकुं दुःख पायो रे, बंधथी मूकायो रे ॥ एह वातनें गायो, श्रीजय एम वदे रे ॥ ३ ॥ खेद म करो भाई रे. वात ते चित्त लाई रे ॥ जीत हार कमाई, देशादिक लही रे ॥ ४ ॥ सिंह चूको फाल रे, वनमां कोइ काल रे ॥ तोहि महा व्यालनें, मारे ते खरो रे ॥ ५ ॥ एम श्रीजय बोल्या रे, पण सिंह न मोल्या रे ॥ जस रोग असाध्य खुल्या, औषध कीशुं रे ॥ ६ ॥ श्रीजय उपगारी रे, काम अद्भुतकारी रे ॥ पण उत्सुकता धारी, श्रीजय नहीं कदा रे ॥ ७ ॥ दोय वार दियां प्राण रे, पण खल अप्रमाण रे ॥ देवा दुःखठाण, विचारे सिंह तदा रे ॥ ८ ॥ जावा परदेश रे, मन कीधुं विशेष रे ॥ कोण म्लेछ देशमां, रहे एम जाणतो रे ॥ ए ॥ श्रीजय केइ दिन्न रें, रह्या लही दाखिन्न रे ॥ गुण आकीर्ण, ते करे उपगारनें रे ॥ १० ॥ कोइ काल व्यतीतें रे, शूल रोग प्रतीतें रे ॥ परलोक गतें गयो, पल्लिपति हवे रे ॥ ११ ॥ तस पुत्र न कोई रे, पालिनो धणी होइ रे ॥ पराक्रम जोइ, श्रीजयनें कहे रे ॥ ॥ १२ ॥ भिल्ल मलीनें ताम रे, कहे थाउ अम स्वाम रे ॥ कुराज्यनो ठाम, देखीनें नवि ग्रहे रे ॥ १३ ॥ इहे सिंह सार रे, अन्य नांहीं तेवार रे ॥ भिल्लराय उदार ते, थाप्यो सिंहनें रे ॥ १४ ॥ करे कर्म ते क्रूर रे, गर्व धरतो प्रचूर रे ॥ धरे नूरि प्रमोदनें, पाले पालिनें रे ॥ १५ ॥ देशांतर जाशुं रे, हुं इहां नवि ठाशुं रे ॥ श्रीजयें प्रकाशशुं, तव सिंह चिंतवे रे ॥ ॥ १६ ॥ मावित्र जो जाणे रे, एहनें तेडी पराणें रे ॥ आपशे कोइ टाणे, एहनें राज्यनें रे ॥ १७ ॥ एम चिंतवी तेह रे, माया धरी नेह रे ॥ तुज विरह न रेह, खमी शकूं हुं कदा रे ॥ १८ ॥ तव श्रीजय गाया रे, एकदिन सिंहराया रे ॥ कहे गर्व भराया, श्रीजयानंदनें रे ॥ १ए ॥ हुं अधर्मकारी रे, पाम्यो राज्य विचारी रे ॥ जूउ चित्तमां धारी, तव श्रीजय कहे रे ॥ २० ॥ पामी खलखंम रे, रंक गर्व प्रचंम रे ॥ केम मा

न उद्दंम, धरे जगारिके रे ॥ २१ ॥ उपनो अति काप रें, पण दीधो गोप रे ॥ आटोप करे केम, बलीया आगलें रे ॥ २ २॥ पण मूषक लेवा रें, करे गात्र संखेवा रे ॥ उंतुपरें हेवा रे, सिंहना जाणजो रे ॥ २३ ॥ हसी प्रेम देखाडे रे, बहु रीज पमाडे रे ॥ बहु दिवस गमाडे रे, एकदिन सिंह कहे रे ॥ २४ ॥ सांजलो तुमें च्रात रे, गिरिकूट नग ख्यात रे ॥ तेह गाण रहात, गिरिमालिनी सुरी रे ॥ २५ ॥ एक गाउ थाय रे, पल्लिपति यें पूजाय रे ॥ कालि चउदश थाय, आज तेणे सांजलो रे ॥ २६ ॥ मंत्र जपतां थाय रे, मांहि बहु अंतराय रे ॥ जो उत्तर साधक थाय,तो कारज नीपजे रे ॥ २७ ॥ मान्युं श्रीजयानंदें रे, लेइ खड्ग आणंदें रे ॥ पूजा उपकरण वृंदें, सिंह ते चालीयो रे ॥ २८ ॥ देवीनें धाम रे, श्रीजय अनिराम रे ॥ उपगारनें काम, गयो साथें तिहां रे ॥ २९ ॥ बीजे खंमें अढार रे, ढाल थइ सुप्रकार रे ॥ सिंहसारनुं चरित्र, सुणो हवे जे होये रे ॥ ३० ॥ सर्वगाथा ॥ ५४७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ पूजी देवी पाधरी, जपतो कपटें जाप ॥ तेहनी आगल ते रही, उंघ चलावे आप ॥ १ ॥ श्रीजय खड्ग सबाहीनें, सात्त्विकमां शिरदार ॥ देवालयनें चिहुं दिशें, करतो तिहां हुंकार ॥ २ ॥ त्रास पमाडे नूतनें, प्रेत ते सहु पलाय ॥ उत्तर साधक आफणी, थयो तास थिर थाय ॥ ३ ॥ मंत्र थयो सिद्ध माहरे, तुम प्रनाव ततकाल ॥ दक्ष पणे दोय पोहोरमां, सिंह कहे संनाल ॥ ४ ॥ मंत्रजागरिका माहरे, करवी बे तेणे काम ॥ सूउं श्रांत थया तुमें, रक्षक हुं आराम ॥ ५ ॥

॥ ढाल उंगणीशमी, नोलीडा हंसा रे, विषय न राचीयें ॥ ए देशी ॥

॥ आशय तेहनो रें अणजाणे थके, सूता श्रीजयानंद ॥ निद्रा आवी रे बहु थाकें करी, अवसर लही ते नरींद ॥ १ ॥ पापी दुर्जन एणीपरें जाणीयें, न गणे कांय उपकार ॥ सज्जननें दुःखदायी कलटो, तेहथी थान श्रीकार ॥ पा० ॥ २ ॥ कटयो ठल लही शस्त्रीयें करी, काढयां नेत्र विशाल ॥ कहे मुज पक्ष अधर्मनें दुःखवे, तिम मुज राज्य रसाल ॥ पा० ॥ ॥ ३ ॥ हाख्यो नेत्र न आपे मुजनें, बलथी लीधी में इष्ट ॥ धर्मनां फल नोगव हवे आंधला, मरण तणुं लहे कष्ट ॥ पा० ॥ ४ ॥ एम कहीनें रे आ

व्यो पालिमां, डुर्गतिनुं रे प्रस्थान ॥ साधुनें नेत्र गयां जे नांखीयां. मंत्री नवें ते निदान ॥ पा०॥ ५ ॥ अज्ञानें जे कर्म उपारज्युं, क्रोधें करीनें अपार ॥ निंदा गर्हा आलोचनादिकथकी, क्षय कीधुं तेणी वार ॥ पा० ॥ ६ ॥ शेष रह्युं ते रे नोगववुं पडयुं, हवे बहु वेदना थाय ॥ शास्त्रवेदी पण मुजनें धिक पडो, खल विश्वास कराय ॥ पा० ॥ ७ ॥ यतः ॥ जीर्णां नोजन मात्रेय, कपिलः प्राणिनां दया ॥ बृहस्पतिरविश्वासं, पांचालः स्त्रीषु मार्दवं ॥ १ ॥ ढाल ॥ जीवतो राख्यो रे तो पण एम थयो,ते मुज कर्म प्रमाण ॥ कर्म कर्यां ते रे नोगवे प्राणीयो, निश्चय एह विन्नाण ॥ पा० ॥ ८ ॥ क्षेत्र कालादिक सामग्री मले, पाके शुनाशुन कर्म ॥ ते सहेतां नही हाणी छे ताहरे, क्रोध ते करवो अधर्म ॥ पा०॥ ए ॥ यतः ॥ पुनरपि सहनीयो, डुःख पाकास्त्वयैव, न खलु नवति नाशः कर्मणां संचितानां ॥ इति सह गणयित्वा यद्यदा याति सम्यक्, सदसदितिविवेको ऽन्यत्र नूयः कुतस्ते ॥१॥ ढाल ॥ आपद पामे रे धीरय धारवुं, सज्जननो ए स्वनाव ॥ वृक्ष कंपे पण पर्वत नवि चले, वायुएं ए निजनाव ॥ पा० ॥ १० ॥ कर्मनो क्षय होय ध्यान बलें करी, तेणेंकरी ध्यावुं रे तेह ॥ समकित निश्चल सुखदायक अछे, आपद अग्नियें मेह ॥ पा० ॥ ११ ॥ एम विचारी रे काउस्सग्ग धारतो, ध्यातो परमेष्ठि मंत ॥ शत्रु मित्र समोवड त्रेवडे, मन एकाग्र करंत ॥ पा० ॥ १२ ॥ समकेत ध्यानबलें गिरिमालिनी, कंपित आसन आय ॥ कहे तुज सुपुरुष केरी आपदा, हरवा आवी रे नाय ॥ पा० ॥ १३ ॥ कहे एक पशुयें रे पूजा माहरी, कर तुं नयननें काम ॥ काउस्सग्ग पूरो करि पारी हवे, देवीनें कहे आम ॥ पा० ॥ १४ ॥ आंखनें प्राण जाउ सवि मूलगां, न हणुं प्राणीनां प्राण ॥ बलिनें नोज्य प्रणाम वली जाचती, देवी तेह अजाण ॥ पा० ॥ १५ ॥ समकेत मलिन थवानें कारणें, तुं मिथ्यात्विणी जेण ॥ न करुं तुजनें रे कोपी ते तदा, बोली क्रोध नरेण ॥ पा० ॥ १६ ॥ न करे मुजनें प्रणाम पण डुरमति, तो तस फल तुं रे देख ॥ एम कही डुर्द्धर वायु विकूर्वती, रज कडे सुविशेष ॥ पा० ॥ १७ ॥ पर्वत शिला रे पडतां शब्दथी, बीये देवनां वृंद ॥ उपाडीनें आकाशें नमाडीयो, पीडा अतिही अमंद ॥ पा० ॥ १८ ॥ पण न खोनाणो रे श्रीजय धर्मथी, पडतां जडफे रे तेह ॥ कहे हुं तूठी रे तुज सत्त्वें करी, तुं गुण ग·

ए मणि गेह ॥ पा० ॥ १ए ॥ औषधि ले तुं सज्ज कर नयननें, लेइ घ सी जलमांहे ॥ रेडी आंखमां रे, सज्ज थयां नयन ते, धरतो अंग उ छाह ॥ पा० ॥ २० ॥ औषधिने मणि मंत्र प्रनाव जे, वयणें नवि क हेवाय ॥ दिव्य नेत्र थई देवी देखतो, आणंद अंग न माय ॥ पा० ॥२१॥ देवी कहे तें रे समकित कारणें. क्लेश सह्यो रे अपार ॥ तास स्वरूप कहो मुज साहेवा, तव ते श्रीजयकुमार ॥ पा० ॥ २२ ॥ देवादिकनुं स्वरूप सुविस्तरें, श्रावकधर्म विस्तार ॥ सांजली पूरवनव संस्कारथी, जाणे अ वधें विचार ॥ पा० ॥ २३ ॥ उंगणीशमी ए रे बीजा खंममां, नांखी अ नुपम ढाल ॥ पद्मविजय कहे धर्म करो सवे, धर्मथी मंगलमाल ॥ पा० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ५७६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मत डंघो तुमें मानवी,सांजलतां श्रीकार ॥ श्रीजयानंदजी सारिखा, अनरथ लह्या अपार ॥ १ ॥ समकेत पामी ते सुरी, पूरवनव परबंध ॥ श्रीजयनें कहे सांजलो, अन्य दर्शनें थइ अंध ॥ २ ॥ समकित धारी श्रावि का, व्रत धारी गुणवंत ॥ पुत्र महारो मांदो पड्यो, तास उपायने तंत ॥ ३ ॥ पूडुं हुं लिंगी प्रतें, प्रतिक्रिया परकार ॥ परिव्राजक एक पाधरो, आव्यो मुज आगार ॥ ४ ॥ नूत दोष मुज नांखीनें, मंत्र चूर्णादिक मेलि ॥ साजो कीधो सुत प्रतें, निक्षा देउं मन नेलि ॥ ५ ॥ लेवा निक्षा लाल चें, आवी आखे धर्म ॥ शौच मूलने सांनली, मुज मन पाम्यो नर्म ॥ ६ ॥ शौच धर्म साचो हशे, अथवा मलमय एह ॥ एम शंकादिक अति चरी,समकितमां संदेह ॥७॥ काल वहु एम काढीयो,आलोयुं नही आल ॥ गिरशिर हुं गिरिमालिनी, देवी थई दयाल ॥ ८ ॥ मिथ्या दृष्टि शिरोमणि, करुं कर्म अतिक्रूर ॥ तुज वयणें मुज तम गयुं, समकित जग्यो सूर ॥ ए ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ रह्यो तो हुं रांधुं खीचडी ॥ ए देशी ॥

॥ स्वामी में पूरवनव माहरो, नांख्यो तुम आगल एह ॥ स्वामी मोरा हे, हवे तुम आधीन हुं रहुं, कहो मुजनें करवुं जेह ॥ स्वा० ॥ १ ॥ उत्त म नर एम जाणीयें ॥ ए आंकणी ॥ तुज साखें में आदर्युं, नवुं समकित जगमां सार ॥ स्वा० ॥ वली निरपराधी जीवनें, हणशुं नहीं कोइ प्रका र ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ २ ॥ पण में हिंसा करी घणी, तेह किम छूय थाशे

मुज ॥ स्वा० ॥ कुमर कहे तुमें देवता, तप प्रमुख न होये तुज ॥ स्वा० ॥ ॥ उ० ॥ ३ ॥ पण श्रीअरिहंतना चैत्यनी, करो पूजा निर्मल चित्त ॥ स्वा० ॥ वली शासननी प्रजावना, धर्म सहाय करो नित्य नित्य ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ४ ॥ तेह देवी अंगी करे, पठी देवी कहे सुणो स्वामि ॥ स्वा० ॥ तुमें महारा उपकारीया, तुम मूकुं कहो कुण गाम ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ५ ॥ कुमर कहे तुं धन्य बे, तुजनें थयो एम उपगार ॥ स्वा० ॥ हेमपुरना उद्यानमां, मुजनें मूके तुं धरी प्यार ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ६ ॥ ततक्षण मूक्यो तिहां जइ, वली आपी औषधि दोय ॥ स्वा० ॥ एक विषनी अपहारिणी, नेत्र सज करणी बीजी जोय ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ७ ॥ दिव्यवस्त्रनें पथ्य वली दीयां, तिम बहुमूला अलंकार ॥ स्वा० ॥ करी प्रणाम अदृश थई, हवे ते सवि अंगें धार ॥ ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ८ ॥ पेठो हवे ते नयरमां, मोह पामे लोकना वृंद ॥ ॥ स्वा० ॥ दीठ रमता जुवटूं, तिहां बेठो मन आणंद ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ॥ ए ॥ नूपणं पणमां धरी करी, दस दाव रम्यो ते ठाम ॥ स्वा० ॥ दश लक्ष लीलायें जींतीयो, राजकुमर हाख्या ते ताम ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १० ॥ हवे हाख्याना जयथकी, नवि रमियो कोइ कुमार ॥ स्वा० ॥ हवे गवरावे गंधर्वप्रत्यें, जिनवरनां गीत उदार ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ ११ ॥ दश लाख याचकनें दीयां, एह सांजली चरित्र उदार ॥ स्वा० ॥ हेमप्रजरायें तेडियो, दीठो अद्भुत आकार ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १२ ॥ दिव्य अलंकृत वस्त्रनें, वली अद्भुत लावण्यरूप ॥ स्वा० ॥ लहे व्यामोह सजाजना, जइनें तिहां प्रणम्यो नूप ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १३ ॥ विस्मय लही आलिंगीयो, कहे अर्धासने तुं वेश ॥ स्वा० ॥ विनयें नवि बेठो तिहां, तेह उचित न चूके लेश ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १४ ॥ बेठो ते नीचे आसनें, नृप पूछे कुशल छे तुज ॥ स्वा० ॥ ते कहे तुम दरशनथकी, थयुं जनम नयन फल मुज ॥ ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १५ ॥ यतः ॥ तीर्थानां प्रथमं तीर्थं, नृपतिर्नयपावनः ॥ दर्शनादपि योऽत्राऽपि, दत्तेऽजीष्टाद्भुतश्रियः ॥ १ ॥ ढाल ॥ विनय आकारादिक सवे, जांखे तुज गुण असमान ॥ स्वा० ॥ मूरति तुज सरखी नही, एम कहे वारंवार राजान ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १६ ॥ कुमर कहे तुम दृष्टिथी, हुं सौजागी थयो आज ॥ स्वा० ॥ एम वातें वेला गमी, आव्यो शिर उपर दिनराज ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १७ ॥ सजा विसर्जी राजीये, हवे स्नान

नोजन करे राय ॥ स्वा०॥ कुमर संघातें सहु करी, नृप शय्यायें जइ गाय ॥ ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ १८ ॥ कुमरनें आसन आपीनें, कहे नूप सुणो तुमें वात ॥ स्वा० ॥ जे कारण तुम तेडीया, ते सांनलो मुज अवदात ॥ स्वा० ॥ ॥ उ० ॥ १९ ॥ बीजा खंमर्मा वीशमी, कही पद्मविजय वर ढाल ॥ स्वा० ॥ श्रीजयानंदना रासमां, आगल सुणो वात रसाल ॥ स्वा० ॥ उ० ॥ २० ॥

॥ दोहा ॥

॥ राणी पांचशे रूअडी, माहारे ठे मनोहार ॥ ललिता विमला लीलावती, केलि कलादिक सार ॥ १ ॥ शत पुत्रह सोहामणा, नानु नानुधर नाम ॥ नानुवीर सुनानु नें, वरदत्त सुदत्त सुधाम ॥ २ ॥ सुसेन रवितेजा सुगुण, सुनीम सुमुख सुजाण ॥ इत्यादिक उपर अठे, पुत्री रूप निधान ॥३॥ ललिता पटराणी लहे, गुणोत्तर सरवंग ॥ सौनाग्य मंजरी सुरलता, सरखी यौवन संग ॥ ४ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ मोहनजी मोकलोनें मोशाला ॥ ए देशी ॥

॥ ते चोशठ कला निधान. प्रिय मधुर वदे सुप्रधान ॥ तेहनां वर उत्तम काज, बेठो कुलदेवी समाज ॥ १ ॥ मोहनजी सांनलो अरदास ॥ तुम सम नहीं जग सुविलास ॥ मो० ॥ ए आंकणी ॥ रेह्नणी कुलदेवी नाम, मौन ध्याननें जप शुन गाम ॥ त्रीजे दिन तूठी रातें, मुज सुपनमां कहे इंण नांतें ॥ मो० ॥ २ ॥ युवराज गृह द्वार पासें, द्यूतपदें रमें उल्लासें ॥ दिव्य वस्त्र अलंकृति जास, खड्गधर दिव्याकृति खास ॥ मो० ॥ ३ ॥ दश लक्ष जींती दान देशे, सौनाग्यमंजरी पतिवेशें ॥ हरख्यो हुं सांनली तेह, विहाणे पूजी गयो गेह ॥ मो० ॥ ४ ॥ पारणुं दुःखवारणुं कीधुं, ते सुनटोनें जाण न दीधुं ॥ एहवो नर कोइ आवे, लावजो मुज पासें नावें ॥ मो० ॥ ५ ॥ ते कारण तुमनें लाव्या, देखी अम मन घणुं नाव्या ॥ परणो ए महारी कुमरी, जस रूपथी हारी अमरी ॥ मो० ॥ ६ ॥ कहे कुमर न जाणो वंश, गुण अवगुण न लहो अंश ॥ केम आपो कन्या मुज, एमां हाणी आवे ठे तुज ॥ मो० ॥ ७ ॥ यतः ॥ कुलं शीलं वपुर्विद्या, वयोवित्तं सनाथता ॥ वरे सप्त गुणा मृग्या, स्ततो नाग्यवशा कनी ॥ १ ॥ ढाल ॥ कहे राय देवीनी वाणी, आकार विनयादिक जाणी ॥ जाण्यो तुम उत्तम वंश, एहमां नही संशय अंश ॥ मो० ॥ ८ ॥ मुज

प्रार्थना ग्नंग न कीजें, तव कुमरें मौन रहीजें ॥ वाजे ते ढोल दमाम, शुन लगनें परण्या ताम ॥ मो० ॥ ए ॥ हय गयने पायक गाम, दासी दासनें पुरवर दाम ॥ राय सौध रहेवानें काम, बहु उपकरण जरे ते धाम ॥मो०॥ ॥ १० ॥ तिहां जोगवता वर जोग, नृप सेवा करे शुजयोग ॥ ते दिनथी लखमी वाधे, बहु राय प्रमुख नृप साधे ॥ मो० ॥ ११ ॥ श्रीवर्द्धन अनि धा थापे, तेहनो जश दश दिशें व्यापे ॥ एक दिन नृप जांखे कुमार, सुणो अमकुल ए आचार ॥ मो० ॥ १२ ॥ परणीनें बहु जरतार, उच्चवशुं हर्ष अपार ॥ कुल देवता मासने अंतें, पूजे एक पशुयें सुचित्तें ॥ मो०॥ १३ ॥ चौदशनी रात्रें पूजो, तुम विघन होये ते धूजो ॥ कहे कुमर न काम ए कीजें, अपराध विना न मारीजें ॥ मो० ॥ १४ ॥ यतः ॥ नास्ति हिंसा समं पापं, नरकादिप्रदानतः ॥ न चाहिंसासमं पुण्यं, दानात्स्वर्गापवर्गयोः ॥ १ ॥ अमृतं नौरगाद्वक्रात्, नैवापथ्याज्ञदक्षयः ॥ साधुवादोविवादान्न, न शांतिः प्राणिनां वधात् ॥ २ ॥ ढाल ॥ जोज्यादिकें नृपति जांखे, अरचो जिम विघन न दाखे ॥ कहे कुमर मिथ्यात्विणी एह, तत्त्वज्ञानी पूजुं कहो केह ॥ मो० ॥ १५ ॥ जेहनें देव गुरु धर्म राखे, तेहनें इह अनर्थ न दाखे ॥ ए रांकडीनो श्यो जार, तुमें रहो सुखमां निरधार ॥ मो० ॥१६॥ यतः ॥ ग्रहाः प्रसन्नावशवर्त्तिनःसुरा, न डुष्टनूपाः प्रजवंति नो खलाः ॥ न श्यंति विघ्नाविलसंति संपदो, यदि स्थितो यत्र जिनः सुपूज्यते ॥ १ ॥ ॥ ढाल ॥ जमाईनें नवि कहेवाय, अधिकुं एम कही घर जाय ॥ कुलदेवी नें कहे एम, तें आप्यो जमाई प्रेम ॥ मो० ॥ १७ ॥ ते पण तुजनें नवि पूजे, बीजुं मुजनें नवि सूजे ॥ तूनें ते जमाई जाणो, शुं करुं पण जक्ति न राणो ॥ मो० ॥ १८ ॥ नमी देवीनें गयो नूप, कुमरें लह्युं तास स्वरूप ॥ स प्रत्यया देवी जाणी, हवे रयणीयें गुणमणिखाणी ॥ मो० ॥ १९ ॥ कांयक तस शंका करतो, पट्टमां जिनप्रतिमा धरतो ॥ धूप पुष्प सुगंध धरीनें, बेगे जिनध्यान करीनें ॥ मो० ॥ २० ॥ एकवीशमी बीजे खंमें, ढाल जांखी रंग अखंमें ॥ धर्मैं दृढ एम मन करजो, कहे पद्मविजय शिव वरजो ॥ ॥ मो० ॥ २१ ॥ सर्व गाथा ॥ ६३० ॥

॥ दोहा ॥

॥ अप्रमत्त आसन धर्युं, पोहर बीजे तिहां पेखी ॥ धूमघटा दश दिश धरी,

देवीकृत ए देखी ॥ १ ॥ कोलाहल परिकर करी, दहदिशें नाठो दूर ॥ कुम र बीहीक मन नवि करे, परमेष्टि ध्यान पडूर ॥ २ ॥ काउस्सग्ग तव करी रह्यो, धूममयो ते ध्यान ॥ जाज्वल्य मान ज्वाला थई, परगट ते पहिचान ॥ ३ ॥ रौद्ररूप करी रेहणी, मस्तक मूढक समान ॥ अग्नि गणशो आं खडी, ताड मान पद तान ॥ ४ ॥ पेट बन्युं पर्वत गुफा, कीलक दंत क राल ॥ चक्र त्रिशुल खड्ग चगचगे, नीषण अतिशय नाल ॥ ५ ॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ हामानी देशी ॥

॥ अट्टाट्ट हास्यनें मूकती डमरूक वजाडे, बहुत्रास पमाडे, कर चक्र न माडे, मानुं आकाश तल फोडशे रे ॥१॥ में तुजनें नररायनी, लखमी बहु दीधी, कन्या प्रसिद्धि, ताहरे कर कीधी, तोहि तें निंदा कीधी माहरी रे ॥ २ ॥ हजीअ पूजा कर माहरी, वली कर परणाम, नहीं तो यम धाम, पामिश सुत्राम, राखण काम पण नावशे रे ॥ ३ ॥ तोहे पण क्षो न्यो नही, तव रीश चढावी, अगनि वरसावी, जाला शिर आवी, तो पण लावी कुमरें मन नहीं रे ॥ ४ ॥ जिनवर ध्यानधारा धरे, अगनि उला य, तव हरि मूकाय, गर्जारव थाय, नक्षण करवा जाय ते हवे रे ॥ ५ ॥ पुछांछोटें कंपावतो, धरतीनें जाम, नख आयुध गाम, दाढा पडी ताम, नख आम नांगा जिन ध्यानथी रे ॥ ६ ॥ सिंह गयो हवे सर्पथी, मूक्या बहु नाग, हुंकारनो लाग, नरे अंबर नाग, श्यामनो राग नव मेघश्यो रे ॥ ॥ ७ ॥ शतगमे मणि घणुं दीपता, मानुं यम कर दंम, फणाटोप प्रचंम, वींटे ते अखंम, वेदना चंम करे रोषथी रे ॥ ८ ॥ फणाटोपें मारे घणुं, वली तनुनें मरडे, दशने वली करडे, लालायें खरडे, दंत पडे रे तेह नागना रे ॥ ए ॥ फणथी मणि त्रुटी पडे, वली नांगे हाड, वायरे जिम जाड, नवि लागे पहाड, कुमर पहाड तनु उपरें रे ॥ १० ॥ नाग सवे विलखा थइ, ते नाठा जाय, विस्मय सुरी पाय, मन चिंते थाय, पीडा उपाय नवि एहनें रे ॥ ११ ॥ ध्यान बलें न खोनी शकुं, करुं ध्याननें पी डा, अनुकूल पणे क्रीडा, करी शुन कहुं ईडा, एहमां रे ब्रीडा नहीं मुज नें रे ॥ १२ ॥ एम विचारी नारीनुं, कीधुं वली रूप, अलंकृत अनुरूप, मुख चंद सरूप, कामनो यूप मानूं ए बनी रे ॥ १३ ॥ घुघरी चरणे रणजणे, लीला गतें चाले, कुमर मुख नाले, निज मानें गाले, बोले रसालें वयण

एणीपरें रे ॥ १४ ॥ माहारो खम अपराध रें, सात्विक सोनागी, तुजशुं लय लागी, मुज नावठ नांगी, हुं थइ रागी हवे ताहरी रें ॥ १५ ॥ एवा पुरुषनें पामवा, में परीक्षा कीधी, हुं तुजशुं गिद्धी, मुजनें क्रय लीधी, देव नी ऋद्धि नोगव नरपणे रे ॥ १६ ॥ अंगीकार कर मुजनें, हुं ताहरी दासी, स्नेही सुविलासी, नित्य नृत्य प्रकाशी, गीत गाशी रे सहु तुज आगलें रे ॥ १७ ॥ कामने वयणें न वेधी रें, न चलाव्युं ध्यान, व्रत उपर ज्ञान ॥ जिनवर बहुमान, मान न दीधुं रे देवीनें तेणें रे ॥ १८ ॥ बीजे खंमें बावी शमी, वर नांखी ढाल, पद्मे सुरसाल, परीक्षाने काल, मंगलमाल होये थिर थतां रे ॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥ ६५४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ विस्मय पामी व्यंतरी, बोले एहवा बोल ॥ तुज उपर तूठी अछुं, खां तें वचनज खोल ॥ १ ॥ हवे उपसर्ग करुं नहीं, पण कहे ताहरी पास ॥ श्यो छे मंत्र सोहामणो, परगट तेह प्रकाश ॥ २ ॥ जास प्रनावें मुज जरा, जालिम न चल्यो जोर ॥ कोण धर्म पूजा करे, सांनलुं मूकी सोर ॥ ३ ॥ हुं ताहरी हितकारिणी, पूजे नहीं तूं पाणि ॥ काउस्सग्ग पारी कुंवर ते, उत्तर आपे आणि ॥ ४ ॥

॥ ढाल त्रेवीशमी ॥ महाविदेहक्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥

॥ कुमर कहे सुण रेहृणी, पंच परमेष्ठी ध्यान लाल रे ॥ जगत पूज्यनुं हुं करुं, केवल अमृत पान लाल रे ॥कु०॥ १ ॥ त्रिविधें जेह ध्यातां थकां, सकल दुःख क्षय थाय लाल रे ॥ धर्म ते अरिहंतनो कह्यो, सयल जीव हितदाय लाल रे ॥ कु० ॥ २ ॥ समकेतधारी प्राणीया, मिथ्यादृष्टि जे होय लाल रे ॥ तेहनी पूजा नवि करे,प्राणांतें पण जोय लाल रे ॥कु०॥ ॥ ३ ॥ तेमाटे देवी सुणो, इच्छो जो आतम हेत लाल रे ॥ त्रिविधें हिंसा नवि करो, हिंसा नरक संकेत लाल रे ॥ कु० ॥ ४ ॥ धर्म अरिहंतनो मुज नें, नांखो करी विस्तार लाल रे ॥ तव कुमारें विस्तर करी, नांख्यो धर्मवि चार लाल रे ॥ कु० ॥ ५ ॥ हिंसानां फल दाखीयां, तेमज दयानां विशाल लाल रे ॥ सांनली बूजी ते हवे, समकेत ग्रहे सुरसाल लाल रे ॥ कु० ॥ ॥ ६ ॥ विरमी प्राणीवधथकी, पूर्वें जे हिंसा कीध लाल रे ॥ तेह रोगनें टालवा, उपध आकरुं दीध लाल रे ॥ कु० ॥ ७ ॥ अरिहंतनी पूजा करो,

धर्म सहाय करेह लाल रे ॥ शासननी परजावना, संघ उपरें ससनेह ला ल रे ॥ कु० ॥ ८ ॥ देवी लेवा धर्मथी, कुमर देवी लह्या हर्ष लाल रे ॥ वृ क्ष कदंबना फूलनें, मेघ धारा जिम वर्ष लाल रे ॥ कु० ॥ ए ॥ गुरु नक्तें दिव्यौषधि, आपे महिमावंत लाल रे ॥ निज पर शिर थापीथकी, इछित रूप करंत लाल रे ॥ कु० ॥ १० ॥ वस्त्र नूषण वली आपती, वर्षे कनक मणिराशि लाल रे ॥ देव डुंडुनि वजाडीनें, अदृश्य हुई तास लाल रे ॥ ॥ कु० ॥ ११ ॥ जई राजा बोलावीयो, उंघे जागे ढे के केम लाल रे ॥ जागुं बुं नरपति कहे, उंघ आवे केम एम लाल रे ॥ कु० ॥ १२ ॥ धूम्या दिक जमाई घरें, देखी डुःख अपार लाल रे ॥ सा कहे सांजल जे कहुं, तुं ज जमाई उदार लाल रे ॥ कु० ॥ १३ ॥ अनुकूल प्रतिकूल में कस्या, उप सर्ग तास अनेक लाल रे ॥ पण सात्विक उत्तम घणो, नवि मूकी निज टेक लाल रे ॥ कु० ॥ १४ ॥ जीवदया मूल आदस्यो, में एह पासें धर्म ला ल रे ॥ तुं पण धर्म एहनी कनें, लेजे ढंमी अधर्म लाल रे ॥ कु० ॥ १५ ॥ एम कही ए अदृश्य थई, हवे विहाणें सहु आय लाल रे ॥ राय प्रमुख रयणी तणो, जोवा कुमरनें गाय लाल रे ॥ कु० ॥ १६ ॥ कुमर आनूषण वस्त्रथी, दिव्यें देखी हरखाय लाल रे ॥ रत्नपुंज देखी करी, आनंद अंग न माय लाल रे ॥ कु० ॥ १७ ॥ पूढे नूप कुमारनें, श्यो रयणी वृत्तांत लाल रे ॥ कुमरें यथास्थित नांखीयो, चित्त करी एकांत लाल रे ॥ कु० ॥ ॥ १८ ॥ कुमर सत्त्व प्रशंसता, तिम जिन धर्म प्रनाव लाल रे ॥ चमत कार पामी करी, राय प्रमुख सद्भाव लाल रे ॥ कु० ॥ १ए ॥ धर्म श्रद्धा नूप मन करे, उद्यान पालक ताम लाल रे ॥ दीये वधामणी आवीया, धर्मयशा गुरु नाम लाल रे ॥ कु० ॥ २० ॥ बहु परिवारें परिवस्या, धर्म मूर्त्ति मानुं तेह लाल रे ॥ कुमरवयणें राजा हवे, वंदे गुरु ससनेह लाल ॥ कु० ॥ २१ ॥ धर्म सांजली आदरे, समकेतादिक शुद्ध लाल रे ॥ राज पुत्र राज्यवर्गीया, नागर पण प्रतिबुद्ध लाल रे ॥ कु० ॥ २२ ॥ कुमत मूकी धर्मी थया, देखी कुमार चरित्र लाल रे ॥ काल काढे एम धर्ममां, श्रीवर्द्धन सुपवित्र लाल रे ॥ कु० ॥ २३ ॥ बीजे खंडें त्रेवीशमी ,पद्म कहे एम ढाल लाल रे ॥ श्रीजयानंदना रासमां, आगल वात रसाल लाल रे ॥ कु० ॥ २४ ॥ सर्व गाथा ॥ ६८२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एक दिन आस्थानें रह्यो, सौधर्म सजा समान॥ शत सुत श्रीवर्द्ध न सहित, पागीयानें परधान ॥ १ ॥ वन पालक आवी कहे, क्रीडा वनमां क्रोड ॥ घोर शब्द घुर्घुर करे, खराखर करे खोड ॥२॥ काल रूपें ए कोल छे, जटनें पण दीये जीक ॥ नाशी जाये निर्झरा, एहमां नहीं अलीक ॥ ३ ॥ अवनीपति उठे यदा, वारे पुत्र विनीत ॥ शत पुत्र उठे सामटा, सन्नद्ध थया शुज रीत ॥ ४ ॥ कुंमर पशु जाणी करो, उवेखीयुं तमाम ॥ कौतुकथी केडें गयो, बुद्धिमंत बलधाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल चोवीशमी ॥ जांजरीया मुनिवर धन धन तुम अवतार ॥ ए देशी ॥

॥ जइ सूअर बोलावीयोजी, हय गय परिवृत तेह ॥ साहामो सूअर आवीयोजी, क्रोध करालित देह ॥ १ ॥ जवि जाव धरीनें सुणजो अचरज वात ॥ ए आंकणी ॥ समकालें सुत रायनाजी, बाण श्रेणी वरसंत ॥ उब ली उब्बली ते सवेजी, दाढायें खंम करंत ॥ जवि०॥ २॥ हय गयनें पण पा डियाजी, खड्ग मोघर गदा घात ॥ तेहने अणगणतो थकोजी. बहु सुजट क रे पात ॥ जवि० ॥ ३ ॥ क्षण गगनें क्षण धरतीयेंजी, फाल दीये बलवंत ॥ लस्करमां सहु देखताजी, आदि मध्यें वली अंत ॥ जवि० ॥ ४ ॥ आकु ल व्याकुल सहु थयाजी, राजकुमर तेणी वार ॥ तेहनी रक्षा कारणेंजी, श्री जयानंद कुमार ॥ जवि० ॥ ५ ॥ शस्त्र रहित ते देखीनेंजी, मूके खड्ग तुरंग ॥ बांधी केडें बोलावीयोजी, सूअरनें निज संग ॥ जवि० ॥ ६ ॥ फाल देइ कुमर शिरेंजी, आवे कोल ते जाम ॥ मुष्टियें हणी दोय दाढनेंजी, खं म खंम करी ताम ॥ जवि०॥ ७ ॥ तो पण सत्त्व पराक्रमेंजी, श्रीजय ऊपर तेह ॥ पडवा मांम्युं तेटलेजी, पग पकडी ज्रम देह ॥ जवि० ॥ ८ ॥ ते फे रि दूर फेंकी दीयोजी, धीर बली महावीर ॥ सात ताड दूरें पड्योजी, श्री जयशूर कोटीर ॥ जवि० ॥ ए ॥ नाठो बुंबारव करीजी, थयो नख हाडनो जंग ॥ पेठो गहनें नाशिनेंजी, पूठें कुमर गया संग ॥ जवि० ॥ १० ॥ दीठो नहीं ते वराहनेंजी, आवतो जूए गजराज ॥ श्वेत चार दंतुशलें जी, शो जित आव्यो समाज ॥ जवि० ॥ ११ ॥ मोद लहीनें जमाडियोजी, मुष्टि यें कीध प्रहार ॥ वश करी शिर ऊपर चढ्योजी, श्रीजयानंद कुमार ॥जवि० ॥ १२ ॥ चाले ते हिमपुर जणीजी, पण वन सनमुख धाय ॥ वायुवेगें दूरें

नइजी, गगनें पंखीपरें जाय ॥ नवि० ॥ १३ ॥ देखे पृथिवीयें तदाजी, गो पद सम कासार ॥ उदेही शिखर परें नग तदाजी, नदीयो नीक अनुहार ॥ नवि० ॥ १४ ॥ ग्राम पुरादिक देखतोजी, बालक्रीडा पुर रीति ॥ कुमर विचारे चित्तमांजी, वैरी कोइक दियें नीति ॥ नवि० ॥ १५ ॥ रखे सायरमां नाखतोजी, वज्रमुष्टियें कस्यो घाथ ॥ तेहनुं बल न सही शक्योजी, दुःख पीडा अति थाय ॥ नवि० ॥ १६ ॥ गगनें ठांमीनें गयोजी, समरे औषधि ताम ॥ विघ्न निवारणी नामथीजी, सरोवर पडियो उद्दाम ॥ नवि० ॥ ॥ १७ ॥ तेह तरी तीरें गयोजी, मारग जोवा काम ॥ चढीयो एक वड उपरेंजी, दीठो मारग वली गाम ॥ नवि० ॥ १८ ॥ उतरवा इछा करेंजी, वडथी लावा जाम ॥ वड उमघो आकाशमांजी, जइ महारणनें ठाम ॥ नवि० ॥ १९ ॥ पर्वतनिकूटें वड रह्योजी, उतस्यो हवे वनमांहि ॥ पाणी सींच्यां वृक्षनांजी, थल दीठां रे उछाहि ॥ नवि० ॥ २० ॥ पांचशें तापसना तिहांजी, आश्रमें गयो ते कुमार ॥ तिहां एक शय्यायें रह्योजी, व्याघ्र दीठो मनोहार ॥ नवि० ॥ २१ ॥ वाघ सेवा तापस करेजी, विस्मय लह्यो कुमार ॥ तव तापस उना थइजी, आलिंगन दिये सार ॥ नवि० ॥ ॥ २२ ॥ खेम कुशल पूछे वलीजी, अमृत नरियां नयण ॥ बेसारे उचितासनेंजी, कुमर पूछे एम वयण ॥ नवि० ॥ २३ ॥ एह वाघ कहो कोण छेजी, केम सेवा करो तास ॥ तापस कहे मोहोटी कथाजी, छे ते कहेशुं उल्लास ॥नवि०॥ २४ ॥ श्रीजयानंदना रासमांजी, चोवीशमी ए ढाल ॥ खंम बीजे पदमें कहीजी, सुणतां मंगलमाल ॥ नवि० ॥ २५॥सर्वगाथा॥७१२॥

॥ दोहा ॥

॥ स्नान करीनें शुद्ध थया, गौरवथी गुणवंत ॥ नोजन करवा नाजनें, पायस ते पिरसंत ॥ १ ॥ इष्ट फलादिक आपियां, नोजन करीनें नावि ॥ तापसशुं तिहां ततक्षणें, आसन वेग आवि ॥ २ ॥ तापस एक युवान तव, हरिवीर हितकार ॥ कुमरनें तेह कथा कहे, व्याघ्रनी करी विस्तार ॥ ३ ॥

॥ ढाल पच्चीशमी ॥ वींछीयानी देशीमां ॥

॥ महापुरें नरसुंदर राजियो, गाजीयो शत्रुजय हेत रे ॥ हरिवीर क्षत्रीमां नाजीयो, नृप तेहशुं हित बहु देत रे ॥ १ ॥ जूउ जूउ वात विनोदनी ॥ ए आंकणी ॥ नृप बालमित्र सेनापति, निज नंदन अधिक प्रमाण

॥ दोहा ॥

॥ एक दिन आस्थानें रह्यो, सोधर्म सभा समान॥ शत सुत श्रीवर्द्ध न सहित, पागीयानें परधान ॥ १ ॥ वन पालक आवी कहे, क्रीडा वनमां क्रोड॥ घोर शब्द घुघुर करे, खराखर करे खोड ॥२॥ काल रूपें ए कोल छे, भटनें पण दीये भीक ॥ नाशी जाये निर्झरा, एहमां नहीं अलीक ॥ ३ ॥ अवनीपति उठे यदा, वारे पुत्र विनीत ॥ शत पुत्र उठे सामटा, सन्नद्ध थया शुभ रीत ॥ ४ ॥ कुंमर पशु जाणी करी, उवेखीयुं तमाम ॥ कौतुकथी केडें गयो, बुद्धिमंत बलधाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल चोवीशमी ॥ जांजरीया मुनिवर धन धन तुम अवतार ॥ ए देशी ॥

॥ जइ सूअर बोलावीयोजी, हय गय परिवृत तेह ॥ साह्मो सूअर आवीयोजी, क्रोध करालित देह ॥ १ ॥ भवि भाव धरीनें सुणजो अचरज वात ॥ ए आंकणी ॥ समकालें सुत रायनाजी, बाण श्रेणी वरसंत ॥ उछ ली उछली ते सवेजी, दाढायें खंम करंत ॥ भवि०॥ २॥ हय गयनें पण पा डियाजी, खड्ग मोघर गदा घात ॥ तेहने अणगणतो थकोजी, बहु सुभट क रे पात ॥ भवि० ॥ ३ ॥ क्षण गगनें क्षण धरतीयेंजी, फाल दीये बलवंत ॥ लस्करमां सहु देखताजी, आदि मध्यें वली अंत ॥ भवि० ॥ ४ ॥ आकु ल व्याकुल सहु थयाजी, राजकुमर तेणी वार ॥ तेहनी रक्षा कारणेंजी, श्री जयानंद कुमार ॥ भवि० ॥ ५ ॥ शस्त्र रहित ते देखीनेंजी, मूके खड्ग तुरंग ॥ बांधी केडें बोलावीयोजी, सूअरनें निज संग ॥ भवि० ॥ ६ ॥ फाल देइ कुमर शिरेंजी, आवे कोल ते जाम ॥ मुष्टियें हणी दोय दाढनेंजी, खं म खंम करी ताम ॥ भवि०॥ ७ ॥ तो पण सत्त्व पराक्रमेंजी, श्रीजय ऊपर तेह ॥ पडवा मांम्युं तेटलेजी, पग पकडी भ्रम देह ॥ भवि० ॥ ८ ॥ ते फे रि दूर फेंकी दीयोजी, धीर बली महावीर ॥ सात ताड दूरें पड्योजी, श्री जयशूर कोटीर ॥ भवि० ॥ ए ॥ नाठो बुंबारव करीजी, थयो नख हाडनो भंग ॥ पेठो गहनें नाशिनेंजी, पूठें कुमर गया संग ॥ भवि० ॥ १० ॥ दीठो नहीं ते वराहनेंजी, आवतो जूए गजराज ॥ श्वेत चार दंतुशलें जी, शो भित आव्यो समाज ॥ भवि० ॥ ११ ॥ मोद लहीनें भमाडियोजी, मुष्ट यें कीध प्रहार ॥ वश करी शिर ऊपर चढ्योजी, श्रीजयानंद कुमार ॥भवि० ॥ १२ ॥ वाले ते हिमपुर भणीजी, पण वन सनमुख धाय ॥ वायुवेगें दूरें

रथ वेगो क्रोधथी एम कहे, नाशि गयो तुं एकवार रे ॥ हवे जाश्यो किहां परबलथकी,वेलु तपे केतिक वार रे ॥जू०॥१८॥ जोगराय कोप करीनें कहे, एक वार चूको दीपीकालें रे, पण वानर मारतां वार शी, परथी तप्यो अय तृण वाले रे ॥ जू० ॥ १९ ॥ तेजस्वी अवज्ञा नवि खमे, लागुं तिहां रण असराल रे ॥ जोगरायनुं धनुष छेद्युं शरें, रथ जांज्यो थइ विकराल रे ॥जू० ॥ २० ॥ शिरस्त्राण वर्म सवि जेदीयां, जोगराय थयो जोगहीन रे ॥ हरिवीरें रथ वच्चें नाखियो, करे युद्ध थइ अदीन रे॥ जू० ॥ २१ ॥ कहे शूरपाल तुं केम मरे, पर अर्थे कहे तव तेह रे ॥ निजपरनां काम स मोवडें, गणे सज्जन प्राणी जेह रे ॥ जू० ॥ २२ ॥ मरवुं तो दैवनें हाथ बे, तुज इज्ञानें न आधीन रे ॥ एम कही शरनो मंमप रच्यो, शूरपाल से ना थई दीन रे ॥ जू० ॥ २३ ॥ पत्ति ते विपत्ति पामीया, रथ रहित थ या रथवंत रे ॥ एम निज निज वाहन सवि गयां, मूक्यां संग्राम महंत रे ॥ जू० ॥ २४ ॥ हय गय जड तूर्यना नादथी, प्रस्फोट परें आकाश रे ॥ युद्ध करतां जयश्री अंतरें, रही न लह्यो वर अवकाश रे ॥ जू० ॥ २५ ॥ वादिहेत परें ते हेतीनें, छेदे ते परस्पर योद्ध रे ॥ सात धनुष छेद्यां शूर पालनां, अनुक्रमें सेनानीयें क्रोध रे ॥ जू० ॥ २६ ॥ तव विधुर चिंते तनु कंपतो, जे लेजं ते छेदे एह रे ॥ हुं थाको एह नवा परें, सेना जागी गइ जेह रे ॥ जू० ॥२७॥ इहां रहुं तो मरण लहुं खरो, जइ पामे जीव जोजीव रे॥ लज्जा नहीं शूरथी नासतां, एम चिंतवे चित्त अतीव रे ॥ जू० ॥२८॥ एम चिंतवी रथ वाल्यो तेणें, मूकी वचमां जट श्रेणी रे ॥ नागो शूरपाल लेई चमू, जोगराय पूठें थयो तेणी रे ॥ जू० ॥ २९ ॥ गज घोडा शस्त्र लूं टी लीये, मते बकतरनें अलंकार रे ॥ नासंतां लूंटवुं शोहवुं, तव हूउं जय जयकार रे ॥ जू० ॥ ३० ॥ बीजे खंमें पच्चवीशमी, ढाल श्रीजयानंदनें रास रे॥ कहे पद्मविजय पुण्यें करी, लहियें नित्य लीलविलास रे ॥ जू० ॥ ॥ ३१ ॥ सर्वगाथा ॥ ७४६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ दान याचकनें देयतां, सेनानी लइ संग ॥ जोगराय निजपुर जणी, आव्या अति उछरंग ॥१॥ जोगराय माने जलुं, जीवनो दायक जाण ॥ से नानीनां शुज परें,चारु करे वखाण ॥ २ ॥ देवा कन्या मोदशुं, उपकारीने

रे ॥ एहवें निज मातुल नरपति, जोगपुरीमां जोगराजान रें ॥ जू० ॥ २ ॥ तस वैरी तस पुरें आवियो. राजा वलीयो शूरपाल रे ॥ जोगराय ते तेह शुं जूजीउं, नाग्युं निजवल तिण काल रे ॥ जू० ॥ ३ ॥ जोगराय पेगो निज नयरमां, परधानें लख्यो ते लेख रे ॥ गनो नाणेज तेडावियो, नरसुंदर लेख ते देख रे ॥ जू० ॥ ४ ॥ धीर वीर माने निज धन्यता, आज स्वजननें आव्युं काम रे ॥ करुं उपकार हुं तेहनें, राखुं सहुनी एम माम रे ॥ जू० ॥ ५ ॥ यतः ॥ किं तद्राज्यं रमा सा किं, यतोनोपकृतिः परे ॥ सर्वैरूपचिकीर्षंति, महांतः किं पुनर्निजे ॥ १ ॥ ढाल पूर्वली ॥ एम चिंतवी जावा उद्यम करे, तेटले नृपनें निषिद्ध रे ॥ सेनानी कहे जेक उपरें, केम गरुड पराक्रम सिद्ध रे ॥ जू० ॥ ६ ॥ शूरनगरें जइ शूरपालनें, जींती राखुं जोगराय रे ॥ मुज द्यो आदेश तव जूपति, आण आपे करी सुपसाय रे ॥ जू० ॥ ७ ॥ गजरथ दोयसह ते आपीया, पांच लाख तुरंगम दीध रे ॥ पायक पांच कोडीशुं परिवस्यो, नीसाणे मंको कीध रे ॥ जू० ॥ ॥ ८ ॥ हरिवीर चाल्यो जोगपुर जणी, महामानी मादा जोद्धार रे ॥ शूरपालनें जइ बोलावीयो, जोगरायें जाण्यो ते प्रकार रे ॥ जू० ॥ ए ॥ लेइ सैन्यनें तेह जेलो थयो,शूरपाल सैन्य दोय साथ रे ॥ लडे तास वाजित्र गर्जारवें, गाजे जिम सायर पाथ रे ॥ जू० ॥ १० ॥ गजें गज तुरंगें तुरंग लडे, रथी पायक सम करे युद्ध रे ॥ शर कुंत खड्ग न्यायें लडे, क्षीण शस्त्रे केइ थइ क्रुद्ध रे ॥ जू० ॥ ११ ॥ बाहु मुष्टियुद्धें वली जूजता, पदें पद दंतें वली दंत रे ॥ केशें केश नखें नख वलगता, मस्तकें मस्तक फूटंत रे ॥ ॥ जू० ॥ १२ ॥ केइ मोघरे रथनें चूरता, पाषड परें वली गदाघात रे ॥ करी पाडे गज नगटूक ज्यूं, जम सरिखा ते साक्षात रे ॥ जू० ॥ १३ ॥ हय पग पकडी उबालता, लघु उपल परें वली केइ रे ॥ पग पकडी सुभट जमाडता, जेम शिशु उहाड करेइ रे ॥ जू० ॥ १४ ॥ केइ मूर्छा पडया गृद्ध पांखना, पवनें सज्ज युद्ध कराय रे ॥ रणधरति डःसंचर थइ, प्रेतें करी गगन जराय रे ॥ जू० ॥ १५ ॥ एम घोर रणें शूरपालनें, सैन्यें दोय सैन्यनें ठेली रे ॥ तव उसख्या कांयक हारथी, रणथंज मर्यादा मेली रे ॥ ॥ जू० ॥ १६ ॥ जोगराय ऊठ्यो तव रथ चडी, अजिमानथी युद्ध करेय रे ॥ शूरपालनुं सैन्य नाठुं तदा, देखी शूरपाल उठेय रे ॥ जू० ॥ १७ ॥

महिला हियया मग्गो, तिन्निवि विरला पयंपंती ॥ १ ॥ रविचरियं गह चरियं, तारा चरियं च राहु चरियं च ॥ जाणंति बुध्धिमंता, महिला चरियं न जाणंति ॥ २ ॥ दोहा ॥ जामातानें विंडी वाघ, मद्यपानी मूरख अज्ञात ॥ नगिनीसुत पृथिवीको नाथ, कीधो गुण नवि जाणे सात ॥ ३ ॥ धूता धूते मूढकुं, चतुर न धूत्यो जात ॥ नारी धूते चतुरकुं, एह बडी एक बात ॥ ४ ॥ नूख्यो नाट बगायुं ढोर, हार्यो जुआरी बांध्यो चोर ॥ रांम नांमने मातो सांढ, ए सातेथी टलीया मांम ॥ ५ ॥ ढाल पूर्वली ॥ जणव्युं जमाईनें तेणें रे, ते आव्यो ततकाल ॥ उचित प्रतिपत्ति करी रे, संतोष्यो सुरसाल ॥ जू० ॥ १२ ॥ सुनगा कुमलाणी मनें रे, दीवी देखी जेम नाग ॥ बाहिर स्नेह देखावतां रे, कहे मुज जाग्यां नाग्य ॥ ॥ जू० ॥ १३ ॥ यतः ॥ कबहुं वनिता मृडु वाच वदे, कबहुं तिनछुं कटु वाच कहे ॥ कबहुं मनरंग विरंग धरे, कबहुंज बिरागिनी हूइ रहे ॥ कबहुं एक बोल सहे न नलो, कबहुं कटु बोल अनेक सहे ॥ मुनि धन्य कहे जगदीश विना, त्रियकी करणी कहो कौन लहे ॥ १ ॥ पूर्व ढाल ॥ हवे स्त्री लईने जायवा रे, हरिवीर थयो उजमाल ॥ तव कपटें घहेली थई रे, शिर कंपे विकराल ॥ जू० ॥ १४ ॥ अट्टहास्य मुख बोलती रे, आंखे बीहाडे लोक ॥ नाजन नांगे नाचती रे, मारे बालादि थोक ॥ जू० ॥ ॥ १५ ॥ निज परनें गालो दीये रे, कांइ न ढांके अंग ॥ कारण विण रुवे हसे रे, ताली दीये गाये रंग ॥ जू० ॥ १६ ॥ विच विचमां माही होयें रे, वावडीमां करे क्रीड ॥ खेद लहे पित्रादिका रे, धरता अतिशय व्रीड ॥ जू० ॥ १७ ॥ मंत्रवादी तेडया घणा रे, करता बहु प्रतिकार ॥ देवी ग्रह प्रेत शाकिनी रे, व्यंतर शंका धार ॥ जू० ॥ १८ ॥ सन्निपात उन्मादता रे, जाणी दोष अपार ॥ विविध प्रयोग औषध करे रे, पण गुण न थयो लगार ॥ जू० ॥ १९ ॥ कुलदेवी पूजा करे रे, मात पिता घण राग ॥ हरिवीर पण करे मानता रे, देव देवीनी लाग ॥ जू० ॥ २० ॥ गुण न थयो कोयथी हवे रे, विलखो थयो हरिवीर ॥ सालादिक हांसी करे रे, चिर रहेतां जाय नीर ॥ जू० ॥ २१ ॥ रूपवती सती प्रेयसी रे, अनुयायी घणो स्नेह ॥ एम दुःखणी न खमी शकुं रे, चिंतवे जाउं गेह ॥ जू० ॥ ॥ २२ ॥ घरें जाउं एहनें मूकीनें रे, मित्रादिक करे हास ॥ मुख दाखी

एह ॥ सनानें पूछे सुगुण, कन्या छे कोइ गेह ॥ ३ ॥ दंमनायक शूरदत्त ते, बोल्यो एहवा बोल ॥ सुनगा नाम सोहामणी, आवे एहनें तोल ॥ ४ ॥ अनुत कन्या एहवी, माहारे छे महाराय ॥ एकांतें अनुरूप जोइ, मनमां मोद न माय ॥ ५ ॥ हरिवीरनें दीये हर्षथी, अवनीपति लही आण ॥ पाणीग्रहण प्रेमें करी, महोत्सव विविध मंमाण ॥ ६ ॥ आपे अति आदर करी, करमोचननें काल ॥ शूरदत्त निजशक्तिथी, अनुपम धन असराल ॥ ७ ॥ नोगराय पण नक्तिथी, आपे वस्त्र अनेक ॥ पुर गाम दिये प्रेमें करी, वारु धरीय विवेक ॥ ८ ॥ काल केत्तोएक काढतो, नोगवतो सुख नोग ॥ जावा निजपुर जेटले, जुडतो कीधो योग ॥ ९ ॥

॥ ढाल बत्रीशमी ॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

॥ सुनगा कहे एणे अवसरें रे, पेटपीडा मुज थाय ॥ कपट न शीखवुं पडे रे, नारीमां सहज ए आय ॥१॥ जूउ गति नारीनी रे ॥ नारी कपट न कोय जणाय ॥ जू० ॥ ए आंकणी ॥ मांचे तडफडती पडी रे,पिता करे प्रतिकार ॥ तिम तिम बूंब पाडे घणुं रे, दाखवे अतिय विकार ॥ जू० ॥ २ ॥ नाग्ययोगें नरता मल्यो रे, उत्तम सुगुण निधान ॥ एणे अवसर पीडा थई रे, धिग् मुज पाप निदान ॥ जू० ॥ ३ ॥ सासू ससरा सेववा रे, उत्सुकता रही एम ॥ एम सांनली निज कपरें रे, दंमनायक लहे प्रेम ॥ जू० ॥ ४ ॥ स्वामी मलवा मन घणुं रे, पण टकीयो कोई दिन्न ॥ पण शाता तस नवि थई रे, खाये नवि वली अन्न ॥ जू० ॥ ५ ॥ कुगडी कहो कोण शके रे, जागतो उंघे जेह ॥ हवे ससरादिक एम कहे रे, साजी थाये जब एह ॥ जू० ॥ ६ ॥ तव तुमें तेडवा आवजो रे, नूपनें जणव्युं तेह ॥ नूपें नूपनें मोकल्यां रे, हय गय अनुत जेह ॥ जू० ॥ ॥ ७ ॥ सेनानी ते लई चल्यो रे, दूरें पोहोतो जाणि ॥ स्वैरिणी सुनगा हर्षथी रे, साजी थइ तेणे ठाय ॥ जू० ॥ ८ ॥ तात चाकर मधुकंठशुं रे, सेवे काम विलास ॥ नाना उपचारें करी रे, ते पण वश छे तास ॥ जू० ॥ ९ ॥ मोही तेहना स्वरथकी रे, क्रीडा करे आसक्त ॥ पण निपुणाइ तेहनी रे, कोई न जाणे रक्त ॥ जू० ॥ १०॥ नारी चरित्र न को लहे रे, धाता पण मुंजाय ॥ शूरदत्त हरख्यो घणुं रे, सरल ते नारीनो ताय ॥ ॥ जू० ॥ ११ ॥ यतः ॥ जलमज्के मच्छिपयं, आगासे पंखीयाण पयपंती॥

दिक दीये शीख, सुनगा पण अंगीकरेजी ॥ जगत ठगे जे नारी, मात पिता ते नवि धरेजी ॥ १० ॥ दंपती चाल्यां दोय, वोलावी सहुये वल्यांजी ॥ मधुकंठ दर्शितमार्गे, ते मार्गें सहुये चल्यांजी ॥ ११ ॥ मान्यां इछ्यां जेह, तेह सफल माने तदाजी ॥ अर्द्ध मारगें हरिवीर, नदी आवी तिहां एकदाजी ॥ १२ ॥ वन निकुंज तस तीर, कतस्था जोजन कारणेजी ॥ दंपती जोजन कीध, सुनगा कहे चित्त ठारणेजी ॥ १३ ॥ ए सरिता रमणीक, वन प्रदेश सोहामणाजी ॥ क्रीडा करीयें क्षणेक, मुज मन एहवी कामनाजी ॥ १४ ॥ मधुकंठ रक्षक एह, अंतर सेवक आपणो जी ॥ लाजनें नय इहां नांहिं, नवि आवे कोइ खांपणोजी ॥ १५ ॥ पेठां सरितामांहिं, कामक्रीडा पीयुशुं करेजी ॥ जलक्रीडा करी एम, पेठां ते वन गव्हरेंजी ॥ १६ ॥ कामक्रीडा करे तब, आलिंगन गाढुं दीयेजी ॥ विविध करी रतिक्रीड, एक पोहोर उल्लंघीयेंजी ॥ १७ ॥ रक्षा मिश मधुकंठ, रथ वेशी फरे चिहुं दिशेंजी ॥ फिकर करे चोकीयात, नीकल्यां नहीं कारण कीशेजी ॥ १८ ॥ बीजे खंडें ढाल, सत्तावीशमी सोहामणीजी ॥ पद्म कहे मुनिराज, धन्य जेणे नारी अवगणीजी ॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥ ८०५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मुग्ध जाणे मनमां नहीं, केम इहां करीयें वार ॥ शंका लही शब्द ज कस्या, चोकीयातें दोय चार ॥ १ ॥ उत्तर नवि आव्यो किमे, वनमां जुवे विचार ॥ सेनानी सुनगा तथा, नवि दीठां निरधार ॥ २ ॥ खड् किहांयक दीठुं खरुं, अनिष्ट थइ आशंक ॥ मधुकंठ खोलण मांमीयो, नवि लाधो निःशंक ॥ ३ ॥ शोकार्त्तें संकुल सहु, विकलप विविध विशेष ॥ पगलां पण अण पेखता, पडती रयणी पेख ॥ ४ ॥ त्रियामा शतयाम परें, काढी दुःखमां काल ॥ अनन्यगति कांहिं आगलें, चाल्या जांगती चाल ॥ ५ ॥

॥ ढाल अट्ठावीशमी ॥ चंद्रावलानी देशी ॥

॥ अनुक्रमें पोहोता महापुरें रे, नमीया जइ नृपाल ॥ आंखथकी आंसू जरे रे, वात कहेता विकराल ॥वात०॥ सरूप, शोकवंत थयो सांजली नृप ॥ सैनादिकें करीनें चोंप, खोलावे बहु दिन ते अनूप ॥ १ ॥ जी राजन जी जीरे ॥ लखो गमे जट मोकली रे, शोधाव्यो बहु जाति ॥ वाल मित्र राजा तणो रे, नवि लाधो एकांति ॥ नवि लाधो एकांत जेवारें, पुत्रथकी ते

शकुं केणी परें रे, एके नहीं अवकाश ॥ जू० ॥ २३ ॥ कर्म तणी गति कोण लहे रे, जावुं निश्चय धाम ॥ पूछे श्वसुरनें ते कहे रे, आवजो फरि तुमें आम ॥ जू० ॥ २४ ॥ आण लही चाल्यो घरें रे, पोहोतो अनुक्रमें तेह ॥ स्वजननें सहु संनलावतो रे, धरतो तास सनेह ॥ जू० ॥२५॥ खंमें बीजे उवीशमी रे.पद्मविजयें कही ढाल ॥ धन्य मुनिवर जेऐं परिहरी रे, नारी डुःखजंजाल ॥ जू० ॥ २६ ॥ सर्व गाथा ॥ ७७१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कुलदेवी पूजा करे, शकुन देखावे साच ॥ निमित्त पूछे बहु निमित्तिया, नारी करावे नाच ॥ १ ॥ कोइ संगम स्त्रीनो कहे, ड्व्यादिक दीये तास ॥ नारी आसक्त नरनें होये, सर्व विचार विनाश ॥ २ ॥ सुनगा वली साजी थई, पूरव रीति पिछाण ॥ तेडवुं मूकवुं हाथ तस, मांद्यपणुं सुप्रमाण ॥ ३ ॥ पित्रादिक परमोदथी, तेडाव्यो जामात ॥ आव्यो ते उतावलो, नूख्यानें जेम नात ॥ ४ ॥ शूरदत्तादिक साचवे, उचितकृत्य उजमाल ॥ सुनगा दाखवे सुखपणी, स्नेह हियामां साल ॥ ५ ॥

॥ ढाल सत्तावीशमी ॥ राग खंनाती ॥ हवे श्रीपाल कुमार ॥ ए देशी॥

सुनगा नामें नार, डुनगापणुं ते आचरेजी ॥ जेम नद्रा कहे नाम, पण अनद्र सहुने करेंजी ॥ १ ॥ कामस्नेह उपचार, करी नरतारनें रीजवे जी ॥ वश थयो नारीनें तेह, एक दिन एकांतें चवेजी ॥ २ ॥ जब करीयें प्रयाण, तब मुज ताततनें मागजोजी ॥ मधुकंठ आपो साथ, ए बहु कामनो जाणजोजी ॥ ३ ॥ मारगनो छे जाण, ढूकडे मारग लइ जशें जी ॥ नक्तिवंतो ने समर्थ, एहथकी गुण बहु थशेजी ॥ ४ ॥ मानी सूरसेंवे वात, तेमज कयुं ते अवसरेंजी ॥ वस्त्रालंकार सत्कार, दासी दास दीये तस करेंजी ॥ ५ ॥ मधुकंठ पण दीयो तास, हवे जावा उद्यम करेजी ॥ मात पिता पडी पाय, सुनगा आखें आंसू जरेजी ॥ ६ ॥ मात पिता दीये शीख, नरता देवपरें गणेजी ॥ पालजो शील उदार, अनाचार सवि अवगणेजी ॥ ७ ॥ पूर्वें न कीजें शयन, ऊठीयें नरता पूरवें जी ॥ सासु नणंदनी नक्ति, करजो जेम डुःख चूरवेजी ॥८॥ बंधु परिजन जेह, वदन प्रसन्न निज राखजेजी ॥ शोक्य साथें धरे राग, पतिवल्लननें आदर करेजी ॥ ए ॥ पतिद्वेषीनें उवेखि, शुन आचारें संचरेजी ॥ इत्या

शेषी ॥ जी० ॥ ११ ॥ वाजित्र गीत बहु थया रे, बंदी मंगल बोले ॥ सांजली कुटुंब ते आवीनें रे, डुःखनां बंधन खोले ॥ बंधन डुःखनां खोला पूछे, अचरिज वात कहो ए शुं छे ॥ नवि दीठुं नवि सांजलीयुं छे, हरिवीर कहे तमें सांजलो ज्युं छे ॥ जी०॥ १२॥ कर्मथी बलीयो को नहीं रे, कर्में तिरिमां घाल्यो ॥ तेहमांथी तुमें उध्दरी रे, मानवनो नव आल्यो ॥ आल्यो मानवनो नव रूडो, सवि संसारनो मोह छे कूडो ॥ विंडु दीये एक जिम मधुपूडो, सुख माने परमारथें नूंमो ॥ जी० ॥ १३ ॥ यतः ॥ शौर्ये च धैर्ये च धने च पूर्णे, ऐश्वर्ययोगेऽप्यखिले बले च ॥ मित्रे च नूपेपि हरौ कपित्वे, नृत्यत्यहो कर्मगतिर्विचित्रा ॥ १ ॥ यन्मनोरथगतेरगोचरं, यत् स्पृशंति न गिरः कवेरपि ॥ स्वप्नवृत्तिरपि यत्र डुर्लना, हेलयैव विदधाति कर्म तत् ॥ २ ॥ पूर्वढाल ॥ बीजे खंमें ए कही रे, अठावीशमी ढाल ॥ पद्मविजय कहे सांजलो रे, आगल वात रसाल ॥ आगल वात रसाल सुसार, सांजलतां होय जयजयकार ॥ श्रीजयानंदजीनें अधिकार, हरिवीर कहे निज वात प्रकार ॥ जी० ॥ १४ ॥ सर्व गाथा ॥ ८२४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रेयसीशुं पेठो वनें, तिहां लगें मालिम तुम्ह ॥ नावि वात सुणो नणुं, अंतर वन गयां अम्ह ॥ १ ॥ स्मरचेष्टा संलापथी, मुंजावे मुज मन्न ॥ मलयगिरि मारुतथकी, टाढुं थाये तन्न ॥ २ ॥ कोकिलरव कानें सुणुं, बंधुर लता संबंध ॥ नमतां जोतां नामिनी, बोली करी निर्बंध ॥ ३ ॥ माधवी मंमप रम्य छे, आपण रमीयें एथ ॥ तास वचन तहत्ति करी, ततक्षण पोतो तेथ ॥ ४ ॥

॥ ढाल उंगणत्रीशमी ॥ वणजारानी देशी ॥

॥ पल्लव साथरो पाथस्यो ॥ सुणो राजा रे ॥ कामक्रीडा करी ताम नूपति गुण ताजा रे ॥ तिहां एक कपि देखी करी ॥ सु० ॥ मुजनें कहे ते नाम ॥ नू० ॥ १ ॥ स्वामी हुं पापणी यदा ॥ सु० ॥ मांदी थइ दोय वार ॥ नू० ॥ मूकी गया तमें मुजनें ॥ सु० ॥ दैवथी थयो करार ॥ नू० ॥ २॥ तुम वियोगें डुःख धरुं ॥ सु० ॥ एण समे आवी एक ॥ नू० ॥ परिव्राजिका माही घणी ॥ सु० ॥ धरती अंग विवेक ॥ नू० ॥ ३ ॥ पासें औषधि गांठडी ॥ सु० ॥ जाणी एह विचार ॥ नू० ॥ दान इष्ट देइ वश करी ॥ सु०॥

ह अधिको धारे ॥ शोक विलाप करे सहु नारे, तेम तेम नृपति घणुं पोकारे ॥ जी० ॥ २ ॥ सेनानीनुं कुटुंब ते रे, रूइ रूइ बहु काल ॥ प्राणी कर्मनां उदयथी रे, सहे एकलो दुःखजाल ॥ स० ॥ ते राजा, मंत्र्यादिक प्रतिबोधे जाजा ॥ अन्य सेनानी थापे अतिन्राजा, जेहनी कोय न लोपे माजा ॥ जी० ॥ ३ ॥ अनुक्रमें शोक मूकी करी रे, एकदिन जाये गज लेवा ॥ विंध्या अटवी आवीयो रे, सामग्रीशुं कलेवा ॥ सामग्रीशुं मेरामां बेंगे, बहु परिवारें परिवृत्त जेंगे ॥ शबर आवी एक बेंगे देंगे, वानर नाच करावे उक्किंगे ॥ जी० ॥ ४ ॥ वानर वानरी नाचतां रे, विचविच करे थुतकार ॥ वलगे चूंबे आलिंगतां रे, युद्ध करे ते अपार ॥ युद्ध० ॥ ते जोइ, सहुजन चित्तमां अचरज होई ॥ एहवो नाच न दीगे कोई, सहु एम कहे ते नयणें पलोई ॥ जी० ॥ ५ ॥ राजा देखी रीजियो रे, आपे तस बहु दान ॥ तेहमां मुख्य जे वानरो रे, देखी हरखे राजान ॥ राजा देखी वानर रोवे, पाय पडी आसुयें पग धोवे ॥ सहु एहवुं अचरिज ते जोवे, राय तणे मन विस्मय होवे ॥ जी० ॥ ६ ॥ चेष्टायें सवि दाखवे रे, पण वचनें न कहाय ॥ आशय कोइ समजे नहीं रे, पण कांइक अनिप्राय ॥ कांइक अनिप्राय जाणी लेवें, कपिनुं वृंद नृप ततखेवें ॥ इङ्गित शबरनें धन बहु देवे, नाटकथी नृपनें कपि सेवे ॥ जी० ॥ ७ ॥ केलिवीर पशुपालनें रे, आप्यो शिक्षा हेत ॥ राजा केइक दिन रही रे, चाल्यो पृथिवी नेत ॥ पृथिवीनेत लेई गज वलीयो, निजधामें पोहोतो सुख नलीयो ॥ अवसर जोइ केलिवीर ते कलियो, नृत्य करावे नृपपुर हलीयो ॥ जी० ॥ ८ ॥ कपि पालक कपिनें दीये रे, ग्रास अधिक नरराय ॥ तत्त्व जाणे नहीं पण तिहां रे, राग ते अधिको थाय ॥ अधिका रागथी नृप करावे, कनकमणि अलंकार जडावे ॥ सोनी आनरण लेइनें आवे, नृत्य अंतें नृप आगल गावे ॥ जी० ॥ ॥ ए ॥ नृपें कलाद संतोषीयो रे, दान देइ शुन रीति ॥ तेह आनरण पहेरावता रे, निज हाथें धरी प्रीति ॥ प्रीति धरी पहेरावता काम, लोहनुं वलय अछे गल ताम ॥ नवीन पहेरावता काढे जाम, वानर पुरुष रूप हुउ ताम ॥ जी० ॥ १० ॥ नृपतिनें चरणे नमे रे, सेनानी हरिवीर ॥ उगाडी आलिंगीयो रे, नयणें झरंतो नीर ॥ नयणें नीर झरंतो देखी, जोवा रढ थइ सर्व उवेखी ॥ नृपें आश्वास्यो संन्रम पेखी, आसनें बेसाड्यो सुवि

॥ नू०॥ १८ ॥ दोहा॥ और गांठ खोली खुले, जब लगें पोहोंचे हाथ॥ प्रेमगांठ अंतर पडी, सरके शिरके साथ ॥ १ ॥ ढाल ॥ विवाह सहुयें मना वीयो ॥ सु० ॥ पण मुज राग न कोय ॥ नू० ॥ सहुने विश्वास पमाडवा ॥ ॥ सु० ॥ स्नेह देखाडयो तोय ॥ नू० ॥ १९ ॥ दोहा ॥ सारी नारी किन्न री. चोथा हे जूआ ॥ नागा सो उगया, वेध्या सो मूआ ॥ १ ॥ ढाल ॥ वार बिहुं तुज फेरव्यो ॥ सु० ॥ तोही न समज्यो गमार ॥ नू० ॥ परि व्राजिकदत्त वलयथी ॥ सु० ॥ कपि कीधो एणी वार॥ ॥नू०॥ २० ॥ नो गव तिरिपणुं मोजमां ॥ सु० ॥ समज्यो न मुज आकूत ॥ नू० ॥ माहा रो दोष इहां नथी ॥ सु० ॥ शाने करे ठे तूत ॥ नू०॥ २१ ॥ तात वंची ला वी बहु ॥ सु० ॥ जाशुं कांइक धन लेइ ॥ नू० ॥ क्रीडीशुं इच्छाथकी ॥ ॥ सु० ॥ तुं कपिगणमां रमेय ॥ नू० ॥ २२ ॥ एम कही रथ प्रेरियो ॥सु०॥ इच्छित दिशि नणी तेण ॥ नू० ॥ फाल देई हुं वलगीयो ॥ सु० ॥ वलीय विदारुं नखेण ॥ नू० ॥ २३ ॥ मास्यो परोणे मुजनें ॥ सु० ॥ तोही न मूकुं तास ॥ नू० ॥ म्यान सहित खड्गें हण्यो ॥ सु० ॥ तव कस्यो क्रोधें निराश॥ ॥ नू० ॥ २४ ॥ मूर्छित थइ नूयें पडयो ॥ सु० ॥ वातयोगें थयो सज्ज॥ ॥ नू० ॥ राति गई विहाणुं थयुं ॥ सु० ॥ नवि लहुं कज्ज अकज्ज ॥नू०॥ ॥ २५ ॥ वानरीयूथ देखी करी ॥ सु० ॥ निरधास्यो यूथेश ॥ नू० ॥ वानरीशुं क्रीडा करुं ॥ सु० ॥ यूथपति हुं विशेष ॥ नू० ॥ २६ ॥ शबरें पकडी एक दिनें ॥ सु० ॥ शिखव्युं नाटक मुज्ज ॥ नू० ॥ तुम आप्यो तु में नर कस्यो ॥ सु० ॥ ए मुज वातनुं गुज्ज ॥ नू० ॥ २७ ॥ मुज पूछो तो नारिनो ॥ सु० ॥ कोइ न करशो संग ॥ नू० ॥ विषयासक्त जे जे होये ॥ ॥ सु० ॥ आपद लहे एकंग ॥ नू० ॥ २८ ॥ बीजे खंमें ए कही ॥सु०॥ उगणत्रीशमी ढाल ॥नू०॥ पद्म कहे ते धन्य मुनि ॥सु०॥ जे न जूत्रे नामिनी जाल ॥ २९ ॥ सर्वगाथा ॥ ८५७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मदोन्मत्त मूढा परें, नष्ट हृदय जोइ नार ॥ सर्वखमा ने सामर्टु, करे विपरीत विकार ॥ १ ॥ वाणी सांनली नृप वदे, मत खेदाउ मन्न ॥ शील वंती श्यामा करी, जोगवो जोग अखिन्न ॥ २ ॥ सेनानी कहे सांनलो,जा मिनी मुख्य जोगांग ॥ रात दिवस वीहितो रहुं, सिंहिणी जिम सारंग ॥

तूठी कहे मुज सार ॥ जू० ॥ ४ ॥ केम महारी सेवा करे ॥ सु० ॥ काम होये ते जांख ॥ जू० ॥ सर्वं वातें समरथ छुं ॥ सु० ॥ मनमां मत काय राख ॥ जू० ॥ ५ ॥ में कह्युं स्वामिनी सांजलो ॥ सु० ॥ रोग आवे मुज देह ॥ जू० ॥ विघन करे कामजोगमां ॥ सु० ॥ प्रिय संगम नवि रेह ॥ जू० ॥ ६ ॥ महारां विघन दूरें करो ॥ सु० ॥ तव तेणें औषधि जुत्त ॥ ॥ जू० ॥ लोह वलय मुज आपियुं ॥ सु०॥ मुजनें एणी पेरें वत्त ॥जू०॥ ॥ ७ ॥ ए औषधि पासें थकां ॥ सु० ॥ विघन थाये विसराल ॥ जू० ॥ रोग आवे नहीं सर्वथा ॥ सु० ॥ न पराजवे सिंह व्याल ॥ जू० ॥ ८ ॥ सुर नर कोइ न दुःख दीये ॥ सु० ॥ हरख लइ हुं अपार ॥ जू० ॥ विसरजी पूजी नमी ॥ सु० ॥ महिमा घणो श्रीकार ॥ जू० ॥ ए ॥ तेणें तुम संगम मुज थयो ॥ सु० ॥ वली अंगें नीरोग ॥ जू० ॥ महारे शिव तुम जोइयें ॥ सु० ॥ तुम कंठें करुं योग ॥ जू० ॥ १० ॥ उंशीके हमणां ठवुं ॥ ॥ सु० ॥ रतक्रीडायें कस्यो खेद ॥ जू० ॥ अवसरें सहु सारुं थशे ॥ सु० ॥ हमणां सुउ सुख वेद ॥ जू० ॥ ११ ॥ एम कही देखाडी मनें ॥ सु० ॥ मूकी उंशीसा मूल ॥ जू० ॥ मूढ थयो एना वयणथी ॥ सु० ॥ नवि जाणी प्रतिकूल ॥ जू० ॥ १२ ॥ करी विश्वासनें उंघीयो ॥ सु० ॥ मुज कंठें ते दीध ॥ जू० ॥ वैरणी प्रायें निड्डी ॥ सु० ॥ जाग्यो देखी कपि कीध ॥ ॥ जू० ॥ १३ ॥ खेद लह्यो हुं मनथकी ॥ सु० ॥ धायो पूठें तास ॥ ॥ जू० ॥ रथ बेठी मधुकंठशुं ॥ सु० ॥ करती लील विलास ॥ जू० ॥ १४ ॥ जाती दीठी स्नेहथी ॥ सु० ॥ हुं करतो लाल पाल ॥ जू० ॥ ते कहे मूढ जाणे नहिं॥सु०॥हजीअ स्नेहनो काल ॥जू०॥१५॥ दोहा ॥ मूरख घर लछी घणी,अरु विद्या अकुलीन ॥ महीला माने नीचकुं, वरसो मेह गरीन ॥१॥ पाप होय सब लोजथें, रस थें व्याधिविशेष ॥ अति दुःख उपजे स्नेह थें, त्रिहुं बोडे सुख देख ॥ २ ॥ पूर्वढाल ॥ एक पखो कहो निर्वहे ॥सु०॥ स्नेह ते केतो काल ॥ जू० ॥ विवाह प्रमुख पितायें कस्यो ॥ सु० ॥ ते परवश पणे माल ॥ जू० ॥ १६ ॥ बालथी हुंतो स्वैरिणी ॥ सु० ॥ मधुकंठशुं अतिराग ॥ जू० ॥ मधुरस्वरें मोही घणुं ॥ सु० ॥ गीत कलानें लाग ॥ जू० ॥ १७ ॥ निजघरमां एहशुं रमुं ॥ सु० ॥ एहज मुज जरतार ॥ ॥ जू० ॥ अद्भुत रूप तुज देखीनें ॥ सु० ॥ वली तुज चरित्र आचार ॥

॥ नू०॥ १८ ॥ दोहा ॥ और गांठ खोली खुलें, जब लगें पोहोंचे हाथ ॥ प्रेमगांठ अंतर पडी, सरके शिरके साथ ॥ १ ॥ ढाल ॥ विवाह सहुयें मना वीयो ॥ सु० ॥ पण मुज राग न कोय ॥ नू० ॥ सहुने विश्वास पमाडवा ॥ ॥ सु० ॥ स्नेह देखाडयो तोय ॥ नू० ॥ १९ ॥ दोहा ॥ सारी नारी किन्न री, चोथा हे जूआ ॥ जागा सो उगरया, वेध्या सो मूआ ॥ १ ॥ ढाल ॥ वार बिहुं तुज फेरव्यो ॥ सु० ॥ तोही न समज्यो गमार ॥ नू० ॥ परि व्राजिकदत्त वलयथी ॥ सु० ॥ कपि कीधो एणी वार ॥ ॥नू० ॥ २० ॥ जो गव तिरिपणुं मोजमां ॥ सु० ॥ समज्यो न मुज आकूत ॥ नू० ॥ माहा रो दोष इहां नथी ॥ सु० ॥ शाने करे छे तूत ॥ नू०॥ २१ ॥ तात वंची ला वी वहु ॥ सु० ॥ जाशुं कांइक धन लेह ॥ नू० ॥ क्रीडीशुं इच्छायकी ॥ ॥ सु० ॥ तुं कपिगणमां रमेय ॥ नू० ॥ २२ ॥ एम कही रथ प्रेरियो ॥सु०॥ इच्छित दिशि जणी तेण ॥ नू० ॥ फाल देई हुं वलगीयो ॥ सु० ॥ वलीय विदारुं नखेण ॥ नू० ॥ २३ ॥ मास्यो परोणे मुजनें ॥ सु० ॥ तोही न मूकुं तास ॥ नू० ॥ म्यान सहित खड्गें हण्यो ॥ सु० ॥ तव कस्यो क्रोधें निराश॥ ॥ नू० ॥ २४ ॥ मूर्छित थइ नूयें पडयो ॥ सु० ॥ वातयोगें थयो सज्ज॥ ॥ नू० ॥ राति गई विहाणुं थयुं ॥ सु० ॥ नवि लहुं कज्ज अकज्ज ॥नू०॥ ॥ २५ ॥ वानरीयूथ देखी करी ॥ सु० ॥ निरधास्यो यूथेश ॥ नू०॥ वानरीशुं क्रीडा करुं ॥ सु० ॥ यूथपति हुं विशेष ॥ नू० ॥ २६ ॥ शबरें पकडी एक दिनें ॥ सु० ॥ शिखव्युं नाटक मुज्ज ॥ नू० ॥ तुम आप्यो तु में नर कस्यो ॥ सु० ॥ ए मुज वातनुं गुज्ज ॥ नू० ॥ २७ ॥ मुज पूछो तो नारिनो ॥ सु० ॥ कोइ न करशो संग ॥ नू० ॥ विषयासक्त जे जे होये ॥ ॥ सु० ॥ आपद लहे एकंग ॥ नू० ॥ २८ ॥ बीजे खंमें ए कही ॥सु०॥ उगणत्रीशमी ढाल ॥नू०॥ पद्म कहे ते धन्य मुनि ॥सु०॥ जे न जूते जामिनी जाल ॥ २९ ॥ सर्वगाथा ॥ ८५७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मदोन्मत्त मूढा परें, नष्ट हृदय जोइ नार ॥ सर्वखमा ने सामटुं, करे विपरीत विकार ॥ १ ॥ वाणी सांजली नृप वदे, मत खेदाउ मन्न ॥ शील वंती श्यामा करी, जोगवो जोग अखिन्न ॥ २ ॥ सेनानी कहे सांजलो,जा मिनी मुख्य जोगांग ॥ रात दिवस बीहितो रहुं, सिंहिणी जिम सारंग ॥

॥ ३ ॥ यतः ॥ अनृतं साहसं माया, मूर्खत्वमतिलोनता ॥ अशौचं निर्दयत्वं च, स्त्रीणां दोषाः स्वनावजाः ॥१॥ दोहा ॥ नामिनी तजथुं नयथकी, इह परनव सुख थाय ॥ तपोवनमां जइ तप करुं, आणा तुम आदाय ॥ ४ ॥ राय विचारे हृदयमां, उपरांगो थयो एह ॥ अथवा देखी एहवुं, कहो विरचे नहीं केह ॥ ५ ॥

॥ ढाल त्रीशमी ॥ वटाउनी देशी ॥

॥ नूपति मनमां चिंतवे रे, गज रथ अश्व अनेक ॥ माहारे ढे पण नवि शक्यो, स्त्री डुःखथी ए व्यतिरेक रे ॥ जीव डुःख सहे अनेक रे, कोइ नहीं आधार विवेक रे, कर्म वैरी परानव ढेक रे ॥ १ ॥ कर्मतणी गति एहवी मेरे लाल ॥ए आंकणी॥ इंइ ते कीडो उपजे रे, चक्री नरकें जाय ॥ नरपति ते पायक होये, धनवंत दरिडी थाय रे ॥ शक्तिवंतनी शक्ति जाय रे, सुखीयो ते डुःखनर गाय रे, नीरामय ते सरोगी काय रे ॥ कर्म० ॥ २ ॥ सुनग दोनागी नीपजे रे, इण नव परनव एम ॥ कर्म कस्यां बूटे नहीं, तेह ऊपर आस्था केम रे, एतो अनियत सुख ढे नेम रे, सुख विषयना ऊपर प्रेम रे, ते तो खरज खनन सुख जेम रे ॥कर्म०॥३॥ विषय आशा फोकट करे रे, मृग तृष्णा परें तेह ॥ नारी आहेडी थानकें, मारे नग मृगनें जेह रे ॥ फोकट धरे तस नेह रे, नारी बाले नरनी देह रे, एतो डुःख वन ऊपरें मेह रे ॥ कर्म० ॥ ४ ॥ वगी आवी निज तातनें रे, तिरि कीधो नरतार ॥ एम कोइ राणी मुजने, करे तो श्यो तस प्रतिकार रे ॥ एक नारीयें एम डुःख धार रे, माहारे तो अनेक ढे नार रे, सापण वाघण अनुकार रे ॥ ॥ कर्म० ॥ ५ ॥ नव उदवेग एम नावतो रे, आव्यो नर कोइ ताम ॥ राय वधाव्यो एणी परें, स्वामी हेमजट तापस नाम रे ॥ परिवार लइ उद्याम रे, तुम पुर सीमानें गाम रे, धरे ज्ञान ध्यान अनिराम रे ॥कर्म०॥ ॥ ६ ॥ ते गुरु आव्या सांनली रे, नृप करतो बहु मान ॥ घृतपूरमां साकर परें, जाणी चाल्यो उद्यान रे ॥ वंदनानुं धारी ध्यान रे, जई दीठा तरुतलें थान रें, नमतां दीये आशीष दान रे ॥ कर्म० ॥७ ॥ तापसनक्तो नूपति रे, सांनले तस उपदेश ॥ आयु अथिर धन चपल ढे, स्वारथीयां सक्जन विशेष रे ॥ क्षण क्षण क्षय थाय तनु शेष रे, नारी राक्षसणीने वेश रे, डुःख उपजावे संक्लेष रे ॥ कर्म० ॥ ८ ॥ नृप सुणी ते देशना रे,

अधिक वैराग्य धरेय ॥ राज्य ठवि निज पुत्रनें, साथें हरिवीरादिक लेय रे ॥ तापस व्रत अंगी करेय रे, स्वर्णजट तस अजिधा देय रे, गुरु लानतो हर्ष धरेय रे ॥ कर्म० ॥ ए ॥ पट्टराणी सुर सुंदरी रे, बूजी साथें थाय ॥ तापसणी पण नवि कह्यो, निज गर्न ते व्रत अंतराय रे ॥ मन धारी पण निरमाय रे, पांचशे तापस समुदाय रे, अमें तप करीयें इण ठाय रे ॥ ॥ कर्म० ॥ १० ॥ दिन दिन गर्न प्रगट थयो रे, पूछ्यो तास विचार ॥ वात यथारथ राणीयें, सवि नांखी निज जरतार रे ॥ प्रसवे पुत्री मनोहार रे, शुन लगन नखेतर वार रे, पाले तापसणी परिवार रे ॥ कर्म० ॥ ११ ॥ लक्षण पुण्य लावण्यवती रे, तापससुंदरी नाम ॥ बुद्धियें जीती शारदा, तस तात शिखावे ताम रे ॥ चोशठ कला गुणधाम रे, हवे हेमजट आपणे ठाम रे, स्वर्णजट थापे अजिराम रे ॥ कर्म० ॥ १२ ॥ पल्यंकविद्या आपतो रे, साधनविधियें समेत ॥ ते सुरसुख नोगी थयो, कुलपति स्वर्णजट थयो नेत रे ॥ तापस पाले अजिप्रेत रे, विद्या साधन संकेत रे, उपवास विधि समवेत रे ॥ कर्म० ॥ १३ ॥ गिरि उपर गिरिचूडनुं रे, यक्षनुं देहरुं एक ॥ ध्यान आसन करी तिहां रह्यो, जप लाख करे सुविवेक रे ॥ देखी कुलपतिनी टेक रे, तुष्टमान थयो अतिरेक रे, एकवीश दिनें ते नेक रे ॥ ॥ कर्म० ॥ १४ ॥ गगनगामी दियो ढोलीयो रे, कुलपति प्रणम्यो तास ॥ स्तवना करी पारणुं करे, पल्यंक राखे निज पास रे ॥ ते उपर करिय निवास रे, विद्याधर परें उल्लास रे, तीरथ वंदे अति खास रे ॥ कर्म० ॥ १५ ॥ यौवन पामी कन्यका रे, सौनाग्य अद्भुत रूप ॥ कमला ते चपला थई, डुःखें देखी तास सरूप रे ॥ पड्यो तास पिता चिंताकूप रे, वर खोलवा तस अनुरूप रे, जमे पल्यंकें ऋषिजूप रे ॥ कर्म० ॥ १६ ॥ जूप पुत्र बहु देखतो रे, कोइ न आव्यो दाय ॥ एकनृप रूप देखी करी, व्याघ्ररूपें थानक थाय रे ॥ पल्यंक उपर ते ठाय रे, देखी बीहीना ऋषि समुदाय रे, जाय नाठा तेह पलाय रे ॥ कर्म० ॥ १७ ॥ संज्ञायें धीरी करी रे, बोलाव्या ऋषि तेह ॥ नखथी नूमि अक्षर लखी, स्वर्णजट तुम कुलपति जेह रे ॥ कोइ देव शरापें एह रे, थयो व्याघ्र तणो ए देह रे, एहमां म धरो मन संदेह रे ॥ कर्म० ॥ १८ ॥ धर्मतत्त्व ज्ञानीथकी रे, नर थाईश निरधार ॥ खोली लावो तेहनें, बीजे खंमें अधिकार रे ॥ सुणो श्रीजयानंद कुमार

रे, ढाल त्रीशमी अति मनोहार रे, कहे पद्मविजय सुखकार रे, जिनधर्म थी जयजय काररे ॥ कर्म० ॥१ए॥ सर्वगाथा ॥ ७७१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ अमचा धर्मने कपरें, उत्कृष्टो नहीं अन्य ॥ मंत्रविद्या बहु मांनी यां, धर्म ते न थयो धन्य ॥ १ ॥ अक्षपादनें उलुकना, सांख्य शैव सहु कोय ॥ कठिन थई उद्यम करे, होशे विफला होय ॥ २ ॥ तापस तव चिंतातुरा, आव्यो नही उपाय ॥ मुज आदे देइ सहुमुनि, गिरिचूडनें गया गाय ॥ ३ ॥ पवित्र थइनें पाथस्यो, दर्न संथारो दक्ष ॥ ध्यानासन बेसी धु रें, जाप करे सुर यक्ष ॥ ४ ॥ उपवासी आदर करी, संजारे सुर तेह ॥ अंतें आठ उपवासनें, आवी पूछे एह ॥ ५ ॥तव बोल्या ते कुलपति, स्वा मी करो स्वरूप ॥ सुर कहे हुं समरथ नही, सांजलो तास सरूप ॥ ६ ॥ शक्ति ए महोटा सुर तणी, कहो बीजी कांइ वात ॥ तापस कहे धर्म तत्त्व नो, जाण लावो जोइ जात ॥ ७ ॥

॥ ढाल एकत्रीशमी ॥ रमतां फाटो घाघरो रे, दश गज फाटो चीर ॥ ए देशी ॥

॥ ज्ञानीने पूछी करी रे, धर्मतत्त्वनो जाण रे प्राणी ॥ सुर कहे जूठी नही वात ए प्रमाणी ॥ १ ॥ क्षणेक जइनें आवियो रे, कहे सुणो चोथे दिन रे तेह ॥ मलशे कही देव, गयो गगनें सनेह ॥२॥ मुज आदें तापस सहु रे, पारणा दिनथी आज रे जाणो ॥ वाट जोतां चोथे दिनें, नाग्य थी पीछाण्यो ॥ ३ ॥ शक्ति होय जो तुम्हमां रे, तो करो ए उपकार रे स्वा मी ॥ संत करे उपकार, परनें पामी ॥ ४ ॥ हरिवीरनां मुखथी सुणी रे, व्याघ्र चरित्र विचित्र रे बोले ॥ करशुं तुमचुं काम अमें, धर्मथी अमोलें ॥ ॥५॥ पण तुमें सर्वज्ञ नांखायो रे, धर्म करो अंगीकार रे रूडो ॥ तो तिरिप णुं ठेलो, काढशुं ए कूडो ॥ ६ ॥ ते कहे काम अमारडुं रे, करशो तव सुर वयणथी ए जाणुं ॥ तत्त्व जाण गुरु, सत्य ए वखाणुं ॥ ७ ॥ लावो वन्हि कुमर कहे रे, वली फल प्रमुख अनेक ते मगावे ॥ ते पण सर्व लावे, चि त्तशुं स्वनावें ॥ ८ ॥ आडंबरें ए मानशे रे, एम चिंतवी वन्हिकुंम कस्यो तेणें ॥ स्नान मुद्रा ध्यान, आसनादिक जेणें ॥ ए ॥ वाघ पासें बेसाडीनें रे, मंत्र उच्चरी करी होम हाथें फरशे ॥ फूंक दीये जूठं, काम केवुं करशे ॥१०॥ मंत्रोयथा ॥ ॐ नमोऽर्हन्भ्यः ह्रीँसर्वसंपद्वशीकरेन्भ्यः ह्लीँनमः सर्वसिद्धेन्भ्यः सि

ज्ञानंतचतुष्टयेन्यः ॐनमः आचार्येन्यः पंचाचारधरेन्यः ॐनमः उपाध्यायेन्यः सर्वविघ्नजयापहारिन्यः ॐनमः सर्वसाधुन्यः सर्वदुष्टगणोच्चाटनेन्यः सर्वा नीष्टान् साधय साधय सर्वविघ्नान् स्फुटय स्फुटय सर्वदुष्टानुच्चाटयोच्चाटय ॐ फुट् स्वाहा ॥ ढाल पूर्वली ॥ रेखणी दीधी उपधी रे, इच्छित रूप था ये तेह मूके हाथें ॥ लघुलाघवी कला, करी व्याघ्र माथे ॥ ११ ॥ तास प्र नावें नर हूउ रे, कुलपतिनें नमे तेह मोदें माता ॥ स्तवना करे कुमर केरी, तुंही मात न्राता ॥१२॥ कुलपति आलिंगन करी रे, कहे तुज हो नमस्का र रे नाई ॥ हाखो मानव नव ते, तें दीयो ए आई ॥ १३ ॥ पूछे कुमर ता पस मली रे, कुलपतिनें वृत्तांत तव नांखे ॥ कन्यावरनें अर्थें नमुं, गाम नगर लाखें ॥ १४ ॥ पर्यंक सार्थे एकदा, पर्वतशिर पडयो ताम निज देखुं ॥ व्याघ्ररूपें तव, डुःखनुं न लेखुं ॥ १५ ॥ शिला उपर ध्यानें रह्या रे, जै न मुनि एक देव तस आगें ॥ चार देवीशुं परिवस्यो तिहां, साधुजीनें रा गें ॥ १६ ॥ गीत वाजित्र नाटक करे रे, विश्वनें नयणानंद रे थाये ॥ में चिंत्युं मुज अपराध कोइ प्रायें ॥ १७ ॥ ए मुनियें मुज नाखीयो रे, प्रण म्यो डुःखथी ताम हुं रोतो ॥ निज नाषायें बोलुं एम, आडुं अवलुं जोतो ॥ १८ ॥ श्यो अपराध स्वामी कहो रे, मुज कस्यो वाघ हवे मुजकृपा की जें ॥ खमी अपराध माहारुं, मानवपणुं दीजें ॥ १९ ॥ कल्पना पण हुं करुं नहीं रे,मुनि कहे मनमां अंश रे जाणो ॥ पण सुरवर कछुं कांइ रो षथी नराणो ॥ २० ॥ नाटक पूरुं जब कखुं रे, में मुनि पूछया ताम रे स्वामी ॥ कोण ए देव कोप्यो, केम मुजमां खामी ॥ २१ ॥ मुनि कहे सां नल ते कथा रे, बीजे खंमें एकत्रीशमी ए ढाल ॥ पद्मविजय कहे, सुणतां मंगलमाल ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ९१० ॥

॥ दोहा ॥

॥ विद्याधरमां हुं वडो, रमणी तजी वली ऋद्धि ॥ प्रवृज्या में पडिव जी, पढयो आगम परसिद्ध ॥ १ ॥ एकाकी आणा लही, विचरुं वारु री ति ॥ प्रतिबोधुं नव्य प्राणीनें, तप तपतो धरी प्रीति ॥ २ ॥ गगनें जातां गिरिशिरें, एक दिन दीठुं एम ॥ सामजनें सिंह मारतो, न शक्यो देखी नेम ॥ ३ ॥ अंतरथी हुं कतस्यो, तप परन्नावें ताम ॥ सिंह नागो शंका धरी, करि उपकारने काम ॥ ४ ॥ पाप सर्व पञ्चरकावीयां, दीधां नवपद

सार ॥ सर्व खमावे सत्त्वनें, पामी गुरु उपगार ॥ ५ ॥ शुन ध्यानें मरी तो हमें,मणिचूड सुर नाम ॥ पंच परमेष्टि प्रनावथी, उत्तम गुण अनिराम॥६॥

॥ ढाल ॥ बत्रीशमी ॥ मोरा साहेब हो श्रीशीतलनाथ के ॥ ए देशी ॥

॥ तेह देवता हो चिंते उहीनाण के,पूरव पुण्य में शुं कस्युं ॥ तव जाण्यो हो महारो उपकार के, बीजा सर्व कामें सस्युं ॥ १ ॥ बहु नक्तें हो प्रणम्यो मुज पाय के, मुज वृत्तांत संनलावीयुं ॥ एहवे तुज हो पर्यंकनी ठाय के ॥ देखी क्रोधमां आवीयो ॥ २ ॥ आशातना हो मुज उपर देखि के, देइ शराप दुःखी कस्यो ॥ एम सांनली हो मुनिवरनी वाणी के, ते सुर आगल संचस्यो ॥ ३ ॥ आंसु जरतो हो कहे दीन वचन्न के, मूको स राप करो कृपा ॥ कहे निर्झर हो राज्यादिक ठामी के, रे मूढ तुं ठे गतत्र पा ॥ ४ ॥ मुनि केरी हो आशातना कीध के, फोकट तप तुं आचरे ॥ जा निज पद हो पर्यंकें बेंश के, मुज परनावें संचरे ॥ ५ ॥ एक मासें हो धर्मतत्त्वनो जाण के, मूलरूपें करशे तनें ॥ ते पासें हो समजी धर्मत त्त्व के, कन्या तुज देजे मनें ॥ ६ ॥ हुं आव्यो हो तिहांथी एणें गाम के, वात आगल जाणो सवे ॥ ते सांनली हो तापस नें कुमार के, विस्मयथी गुण संस्तवे ॥ ७ ॥ करे उत्सव हो मंगलनां गीत के, गाये तापसणी घ णुं॥ कहे कुमरनें हो समजावो धर्म के, जेम अम जाये मिथ्यापणुं ॥८॥ विस्तारें हो कुमरें कह्यो धर्म के, साधु श्रावक बहु नेदथी ॥ बूज्या ताप स हो समकेतशुं शुद्ध के, अणुव्रत लिये गतखेदथी ॥ ए ॥ कहे कुलप ति हो देवें कह्यो मुज्झ के, कन्या नावि वर तुम्हो ॥ तेणें परणो हो करी वयण प्रमाण के, जेम राजी थाउं अम्हो ॥ १० ॥ नवि बोल्या हो सुणी तेह कुमार के, ताम कुसुम वृष्टि थई॥ देखी तापस हो विस्मय ल ह्या चित्त के, तव गिरिचूड तिहां सुरवई ॥ ११ ॥ थई परगट हो कहे सांनलो वात के, में ते ज्ञानी पूठया जइ ॥ नर थाशे हो केणी परें कहो स्वामी के, तत्त्वज्ञानी कहे शुनमई ॥ १२ ॥ त त्त्वज्ञानी हो संगें नर थाय के, में पूठ्युं केम जाणीयें ॥ ज्ञानी बोल्या हो तुज सूअर रूप के, जींतशे एह अहिनाणीयें ॥ १३ ॥ तव हुं नम्यो हो राजधानी अनेक के, कोलरूपें पण को नहीं ॥ मुज जींत्यो हो तव हेमपुर जाय के, वननंज वाड करुं तहीं ॥ १४ ॥

नृपना सुत हो शत नाग जाय के, विण शस्त्रें एणें जीतियो ॥ गजरूपें हो हरि लाव्यो ताम के, कही एम वातो अतीतियो ॥ १५ ॥ उदारता हो शौर्यता उपकार के, धर्म प्रमुख गुण एहवो ॥ नहीं बीजो हो जगमां अ द्भुत के, अनुनवीयो में जेहवो ॥ १६ ॥ कौतुकें करी हो रही ठानो अ त्र के, सवि जोयुं नयणें करी॥ वली सांनल्यो हो अरिहंतनो धर्म के, न वसायरमां ए तरी ॥ १७ ॥ पूरवनव हो संस्कारने जोग के, बूज्यो ते तु में सांनलो ॥ धन्यपुरमां हो धनवंत धन्यनाम के, धनदेव आगल सामलो ॥ १८ ॥ प्रिया वसुमती हो श्रावक एक मित्र के, तस संगें वली गुरु मल्या ॥ समकित मूल हो अंगी कस्यो धर्म के, गुरु वयणां तेणें सांनल्यां ॥ १९ ॥ एक दिन तस हो नारीनें रोग के, ऊपनो ते उपशम नणी ॥ तेडया वैद्यनें हो कस्या बहु उपचार के, पण नवि गुण कीधो सुणी ॥ २० ॥ घणुं रागें हो मंत्रवादी तेडि के, ते पण सवि निःफल थया ॥ गाढस्नेहें हो घहेला परें तेह के, पग पग पूछे पति सया ॥ २१ ॥ जटी कापडी हो प्रयोगना जाण के, जे साजी करे मुज प्रिया ॥ तेहनें आपुं हो लक्ष सुणी एम वात के, ए क जटी कहे करुं क्रिया ॥ २२ ॥ क्षणमां करुं हो नीरोगी नारि के, पण लेशुं मुखें जे कहुं ॥ मानी तेणें हो विनयें करी वाणि के, बोल्युं ते हुं नवि जहुं ॥ २३ ॥ जोई नारीनें हो तेणें कीध उपाय के, रोग गयो अनुक्रमें वही ॥ तेह देखी हो विस्मय लह्यो चित्त के, साचो ते एहज सही ॥ ॥ २४ ॥ करी आग्रह हो राख्यो एक मास के, तेणें जैनधर्म शिथिल क स्यो ॥ जेणें पाम्यो हो व्यंतर नव एह के, शेठ ते हुं डुर्गति धस्यो ॥ २५ ॥ तापस साथें हो समकित लह्युं आज के, धर्मतणी वाणी सुणी ॥ गुरु माथे हो फूलनी करी वृष्टि के, ए सरिखो जग नहीं गुणी ॥ २६ ॥ बीजे खंडें हो बत्रीशमी ढाल के, पद्मविजय एणि परें कही ॥ सुणो श्रोता हो चित्त राखी ठाम के, निद्रा विकथा सवि जही ॥ २७ ॥ सर्व गाथा ॥ ९४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ देव कहे द्यो एहनें, यौवन कन्या योग ॥ सुरवरें नांख्यो ए सखर, सू धो ए संयोग ॥ १ ॥ उत्तवयी उपगारीनें, परणावो धरी प्रेम ॥ थाशुं कृता रथ एणी परें, जाय फिकर वली जेम ॥ २ ॥ कुलपतियें अंगीकस्युं, कुमरनें प्रार्थना कीध ॥ सामग्री सुरवर करे, प्रत्युपकार प्रसिद्ध ॥ ३ ॥

॥ ढाल तेत्रीशमी ॥ झुमखडानी देशी ॥

॥ कनक मंमप तिहां सुर रचे, रयणमयी रचे थंन ॥ सोनागी सांन लो ॥ तोरण मुक्तामालनां, देखी होय अचंन ॥ सो० ॥ १ ॥ देवी तापस णी मली, गावे मंगल गीत ॥ सो० ॥ डुंडुनिनाद वजावता,कुसुममाल सु रनीत ॥ सो० ॥ २ ॥ बिरुदावली सुर बोलता, विद्याधर संजुत्त ॥ सो० ॥ उत्सव सुर तिहां बहु करे, उपकारी आकूत ॥ सो०॥ ३ ॥ कन्या तापस सुं दरी, दिव्यनूषण वस्त्रधार ॥ सो० ॥ तापसें परणावी तदा, कुमरें परणी नारि ॥ सो० ॥ ४ ॥ कुमरनें आपे देवता, वस्त्रानरण अनेक ॥ सो० ॥ ग गनगामि दीये ढोलियो, कुलपति धरिय विवेक ॥ सो०॥ ५ ॥ ते वन रमणी कमां रचे, गिरिचूड देव विशाल ॥ सो० ॥ सप्तनूमि शोनामयी, महोल ति हां ततकाल ॥सो०॥६॥ स्वर्गविमान ज्युं शोनतो,तेह कुमरने काज ॥सो०॥ खादिम स्वादिम पूरीयो, सर्वांगें सुखसाज ॥ सो० ॥ ७ ॥ बहु सुरना परि वारशुं,सेवा करे सुप्रकार ॥सो०॥ अप्सरा सरखी नारिशुं,नोगवे नोग कुमा र ॥ सो० ॥ ७ ॥ तीर्थ अनेकनें वांदता, पल्यंकनें वलें तेह ॥ सो० ॥ कोइ दिन नारी विना जाये, कोइ दिन नारीशुं नेह ॥ सो० ॥ ए ॥ नदी वनमां क्रीडा करे, वली तापसनें कुमार ॥ सो० ॥ जैन धर्म विधि शीखवे, सम्यक् जेह प्रकार ॥ सो० ॥ १० ॥ उपदेश चारित्रनो दीये, ज्ञानतणुं फल सार ॥ सो० ॥ उचित नण्या ते अनुक्रमें, जाणे क्रिया व्यवहार ॥ सो०॥११॥ दक्ष थयां जिनशासनें, चारित्र इन्नावंत ॥ सो० ॥ नववैराग्यथी ते रहे,नि त्य वैराग महंत ॥ सो० ॥ १२ ॥ बीजे खंमें ए कही, तेत्रीशमी वर ढाल ॥ सो० ॥ श्रीजयानंद रासें थयो, बीजो खंम रसाल ॥ सो० ॥ १३ ॥ स त्यविजय पन्यासना, कपूरविजय वर शिष्य ॥ सो० ॥ खिमाविजय वर तेह ना, चढती जास जगीश ॥ सो० ॥ १४ ॥ जिनविजयो जगमां जयो, तेह ना शिष्य अनेक ॥ सो० ॥ उत्तमविजय तेहमां थया, पंमित वारू विवेक ॥ सो० ॥ १५ ॥ तस पदपंकज अलि समो, पद्मविजय जसु नाम ॥सो०॥ तास कृपाथी नांखीयो, खंम बीजो अनिराम ॥ सो० ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमत्संविज्ञपक्षीय पंमितप्रवर पंमित श्री उत्तमविजयजीगणि विनेय पंमित पद्मविजयगणिविरचिते प्राकृतप्रबंधे श्रीजयानंदकेवलिच रित्रे सहस्रायुधादि राजर्षिचतुष्टयचरित्रेण चारित्रधर्मवर्णन श्राद्धधर्मक

लितचक्रायुधचरित्रवर्णन प्रथमव्रतपालनमहात्म्यसूचकनीमसोमदृष्टांत श्रीजयानंदप्रतिबोधादिवर्णन हंसकाकनिदर्शनेन श्रीमहानंदराजदृष्टांतेन च द्वितीयव्रतपालनफलदर्शन श्रीजयानंदकुमारकलाग्रहण मणिमंजरीप्रथमपत्नीपरिणयन श्रीजयानंदकुमारस्य महासेनपल्लीशविजयगिरिमालिनीदेवीप्रतिबोध तदार्पितमहौषधिद्वयलाभ हेमपुरपुरागमन सौभाग्यमंजरीद्वितीयपत्नीपरिणयन रेह्नणीदेवीप्रतिबोधतदर्पितकामितरूपकारी महौषधिप्राप्ति हेमप्रभनृपादि प्रतिबोधलाभादि श्रीजयानंदकुमारस्य देशांतरचर्यायां हेमपुरपुरोद्यानगतदुर्जयकोलविजयतापसाश्रमगमन सुवर्णजटकुलपत्यादि तापसपंचसतीसहित गिरिचूडयक्षप्रतिबोध कुलपतिपुत्रीतापससुंदरीतृतीयपत्नीपरिणयनकुलपतिदत्तपर्यंकविद्यान्वितगगनगामिपर्यंकबलेन नानातीर्थनमस्करणादिवर्णनोनामा द्वितीयः खंमः समाप्तः ॥ प्रथमखंमे गाथा ॥ ४४३ ॥ द्वितीयखंमे गाथा ॥ ९६२ ॥ सर्वमली गाथा ॥१४०५॥ तथा प्रथमखंमे उक्त श्लोक ॥१३॥ अने द्वितीयखंमे उक्त श्लोक ॥ १९ ॥ सर्व श्लोक ॥ ३२ ॥ तथा सवईयो एक छे. इति द्वितीयखंमः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ श्रीशांतीश्वरोजयति ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीतृतीयखंम प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥

॥ शासन नायक समरीयें, वर्द्धमान विख्यात ॥ देवारयनें द्रव्यगुण, सर्वे भाषा विख्यात ॥ १ ॥ बीजो खंम बहु भांतिशुं, विगतें वरणव्यो एम ॥ त्रीजो खंम कहुं तुरत, सांभलो श्रोता प्रेम ॥ २ ॥ उंघे ने अति आलसु, शिशु रमवे करे शान ॥ आडुंनें अवलुं जूवे, वक्ता शुं करे व्याख्यान ॥३॥ नयनें नयनमेलावीनें, वदन विकस्वरवंत ॥ वाणी सुणे वक्ता तणी, ते दीये हर्ष अत्यंत ॥ ४ ॥ तेमाटे निजमति तजी, सांभलो चतुर सुजाण ॥ श्रीजयानंदना रासमां, आगल कहुं आख्यान ॥ ५ ॥

॥ ढाल पहेली ॥ जीरे माहारे जाग्यो कुमर जाम ॥ ए देशी ॥

॥ जीरे माहारे एकदिन सातमी भूमि, बेठा रयण सिंहासने जीरेजी॥

॥ जी० ॥ गगनें निरखे कुमार,श्रावतो देखे निजकनें जीरेजी ॥ १ ॥ जी०॥ परिव्राजक सुरूप, योवनवय श्राव्यो तिहां जीरेजी ॥ जी० ॥ देइ श्राशीष वईठ, कुमर कहे रहो गो किहां जीरेजी ॥ २ ॥ जी० ॥ कोण तुमें सेहेत, श्राव्या ते कारण कहो जीरेजी ॥ जी० ॥ कीजें ते तुम काम, थानें कृता रथ श्रमें श्रहो जीरेजी ॥ ३ ॥ जी० ॥ जाणी न करे काम, श्रावे कलंक दाता नणी जीरेजी ॥ जी० ॥ तेह कृतारथ जाण, श्राश पूरे याचक त णी जीरेजी ॥ ४ ॥ जी० ॥ श्रवलुं सुख करी जेह, याचक देखीनें रह्या जीरेजी ॥ जी० ॥ डुम गिरि समुड्र न नार, ते धरतीनें नारे कह्या जीरे जी ॥ ५ ॥ यतः ॥ दीयतां कथमनीप्सितमेषां, दीयतां डुतमयाचित मेव ॥ तं धिगस्तुकलयन्नपि वांगा, मर्थिवागवसरं सहते यः ॥ १ ॥ ढाल पूर्वली ॥ ॥ जी० ॥ कुमर चिंतवे एम, केम बोल्या विण जाणीयें जीरेजी ॥ जी० ॥ परिव्राजक कहे ताम, तुं शूरवीर कुलखाणीयें जीरेजी ॥ ६ ॥ जी० ॥ तु ज श्रसाध्य न कांय, परउपकारी तुं वडो जीरेजी ॥ जी० ॥ तुज सम श्र वर न कोय, तुं जगमां जेम केवडो जीरेजी ॥ ७ ॥ जी० ॥ सांजल माहा री वात, गंगातटें मुज गुरु रहे जीरेजी ॥ जी० ॥ नइदत्त श्रनिधान, जे श्राम्नाय बहु लहे जीरेजी ॥ ८ ॥ जी० ॥ हुं गंगदत्त तस शिष्य,औषधि कल्प गुरु दीये जीरेजी ॥ जी० ॥ मलयकूटें बहु तेह, उलखुं सघली ठे ही ये जीरेजी ॥ ए ॥ जी० ॥ जाणुं सम्यक् ताम, साधुविधिथी ए यदा जीरे जी ॥ जी० ॥ जई तिहां बहु वार, साधवा मांमी में तदा जीरेजी ॥ १० ॥ ॥ जी० ॥ मलयमाल क्षेत्रपाल, ए पर्वतनो श्रधिपति जीरेजी ॥ जी० ॥ बीवरावे मुज तेह, करे उपसर्ग वली श्रति जीरेजी ॥११॥जी०॥ पाद लेप गुरु दीध, तेह श्राम्नायथी श्रंबरें जीरेजी ॥ जी० ॥ योजन एक उतपात, जाउं हुं ए शक्तिवरें जीरेजी ॥ १२ ॥ जी० ॥ श्राव्यो इण वन मांहि, दीठुं धाम कनकतणुं जीरेजी ॥ जी० ॥ पूठी तापसनें वात, उत्तर सुणी हरख्यो घणुं जीरेजी ॥ १३ ॥ जी० ॥ लोकोत्तर तुज वात, सुर पण तुज नवि ज य करे जीरेजी ॥ जी० ॥ जाचवा तुमची पास, स्वार्थसिद्धि तुम श्राशरे जी रेजी ॥ १४ ॥ जी० ॥ योग्यनें याचना जेह, तेहमां लाज श्रावे नही जी रेजी ॥ जी० ॥ जो समरथ गो ताम, उत्तर साधक हो वही जीरेजी ॥ ॥ १५ ॥ जी० ॥ कुंश्रर बोल्या ताम, एहमां शुं नारे श्रबे जीरेजी ॥जी०॥

एम जीती करुं काम; तेहथी सहु हलका पडे जीरेजी ॥ १६ ॥ जी० ॥ परिव्राजक कहे ताम, ए सवि तुममां संजवे जीरेजी ॥जी०॥ पण शो यो जन दूर, पर्वत इहांथी होय जवे जीरेजी ॥ १७ ॥ जी० ॥ बारशें मांमवो मात्र, पूरो होय त्रयेंणे दिनें जीरेजी ॥ जी० ॥ जो निरविघ्नें था य, चौदशने दिन सिद्ध बने जीरेजी ॥ १८ ॥ जी०॥ वदि आठम बे आ ज, सङ्क थाउ विहाणे चालीयें जीरेजी ॥ जी० ॥ खंधें बेसाडी तुज, जा तां त्रण दिन जालीयें जीरेजी ॥ १९ ॥ जी० ॥ हसीनें कहे कुमार, स्वार्थ साधो तुमें जाउ सुखें जीरेजी ॥ जी० ॥ बारशें आवशुं प्रजात,निज शक्तें जाणो सुखें जीरेजी ॥ २० ॥ जी० ॥ म धरो संदेह लगार, वयण सयण नां नवि चले जीरेजी ॥ जी० ॥ अचला मेरुदृष्टांत, सांजली तेह हरखज धरे जीरेजी ॥ २१ ॥ जी० ॥ जणवी मलया नाम,परिव्राजक थानक गयो जीरेजी ॥ जी० ॥ नारिनें कहे कुमार, पर उपकार अवसर थयो जीरेजी ॥ २२ ॥ जी० ॥ दिवस थशे मुज त्रण, कार्य करी आवुं खरो जीरेजी ॥ जी०॥ पुण्य अंश यशे तुज,तातनो विनय तुमें करो जीरेजी ॥२३॥जी०॥ एकादशीनी रात, कुमर पल्यंकें आवीयो जीरेजी ॥जी०॥ पल्यंक गोपवी त ब, साधकनें मल्यो जावीयो जीरेजी ॥ २४ ॥ जी० ॥ त्रीजें खंमें एह,प हेली ढाल सोहामणी जीरेजी ॥ जी० ॥ पद्मविजय कहे वात, आगल घ णी रलियामणी जीरेजी ॥ २५ ॥ सर्वगाथा ॥३०॥

॥ दोहा ॥

॥ कुमर ते साधकनें कहे, सुखमां विद्या साध ॥ तेणें पण मांमी ततक्ष णें, विधियें करी विण वाध ॥ १ ॥ श्रीजय सायुध अति सुजट, विघन करे विसराल ॥ पूरवदिशि निशि पेखतो, धूम बहु धूंधाल ॥ २ ॥ अंधित दिशि मुख अति थयुं, देवीयें ओषधि दीध ॥ ते संजारे ततक्षणें, नमस्कार वली सिद्ध ॥ ३ विलय थयो वारु परें, अगनि देखे आप ॥ अट्टाट्टहास्य जीषण अति, ततक्षण आपे ताप ॥ ४ ॥ तोपण क्षोन्यो ते नहीं, धीरज हृदयें धार ॥ अंबर वाणी एहवी, सांजले अतिहिं असार ॥ ५ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ वन्यो रे कुंअरजीनो सेहरो ॥ ए देशी ॥

॥ कहे तो पहेलां साधक जखुं, के उत्तर साधक एह रे कुमार ॥ तव त्र टकी श्रीजय बोलीयो, खा पत्थर एह जगेह रे सुरिंद ॥ १ ॥ श्रीजय देवशुं

जूऊतो ॥ ए आंकणी ॥ नहीं ताहरे वश अमें दोय छुं, केम केशरीनें मृग खाय रे सुरिंद ॥ अथवा सिंहें मृग राखियो, तेह साहसुं नवि जोवाय रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २ ॥ जीतुं छुं शक्र समाननें, तो ताहरी केही वात रे सुरिंद ॥ फरि देव बोल्यो आकाशमां, तुं मानव कीटक मात रे कुमार ॥ श्री०॥ ॥ ३ ॥ कोण मूरख कोइ माटें मरे, तुं नवि जाणे कांय बाल रे कुमार ॥ केम सुरनें जीतें मानवी, ए जाणे बाल गोपाल रे कुमार ॥ श्री० ॥ ४ ॥ जा दूरें तुं तुजनें नही हणुं, तुं निरपराधी जेण रे कुमार ॥ तुं रक्षक छते पण मारशुं, साधक सापराधी तेण रे कुमार ॥ श्री० ॥ ५ ॥ मुज पर्वत औषधि इछतो, विद्या साधे छे एह रे कुमार ॥ मुज अर्चादिक न कर्युं एणें, तेणें मारीश निःसंदेह रे कुमार ॥ श्री० ॥ ६ ॥ तव बोले कुमर हसी करी, शुं अदृश्य रही करे वात रे सुरिंद ॥ जो वीरपणुं चित्तमां धरे, तो परगट था साक्षात रे सुरिंद ॥ श्री०॥ ७ ॥ एम तर्जित अमर कोपें करी, थयो कोलरूपें परगट्ट रे सुरिंद ॥ पादाहत कंपित गिरि, साहामो आव्यो रण सट्ट रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ८ ॥ देवी दीधी औषधि बलें, कुमरें कर्युं सूअर रूप रे सुरिंद ॥ क्रोधें करी युद्ध बेहु करे, महाडुर्द्धर रौद्र सरूप रे सुरिंद॥ ॥ श्री० ॥ ए ॥ घोर घुघुर गरजे घणुं, तेणें गिरिगुफा करती गाज रे सुरिंद ॥ मांहो मांहे ते विदारता, तेम नख कर्कश अति साज रे सुरिंद ॥श्री०॥ ॥ १० ॥ महाकायनें महापराक्रमी, स्पर्द्धावंत बेहु बलगंत रे सुरिंद ॥ पर्वत धरती कंपावता, उछले वली हेठ पडंत रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ११ ॥ भीषण रण एणीपरें बहु कर्युं, देवता सूअरनी दाढ रे सुरिंद ॥ कुंअर कोलें भांगी तिहां, जेहनो हतो अतिशय गाढ रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १२ ॥ करी बुंबारव नाशी गयो, कुंवर कोलथी सुरकोल रे सुरिंद ॥ करी हस्तीनुं रूप प्रगट थयो, उछालतो सूंढ कल्लोल रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १३ ॥ तव हस्तिरूप कुंअर करी, करे युद्ध चलावे भूमि रे सुरिंद ॥ गिरिशृंग पडे गर्जारवें, मानुं फूटशे हमणां व्योम रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १४ ॥ दंतभांगा सूंढ पीडा थइ, नाठो सुर करिवर ताम रे ॥ सुरिंद ॥ तिम सिंहरूपें बेहु जूऊता, सुरकेशरी हाख्यो ते ठाम रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १५ ॥ एम सर्वे युद्धें सुर हारियो, तव क्रोध चढ्यो अत्यंत रे सुरिंद ॥ भीषण रूप करे हवे, अतिरौद्र बिभत्स दे खंत रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १६ ॥ ताड वृक्ष स्थूल जंघा बनी, गिरिकंदरा उद

र वखाण रे सुरिंद ॥ पृथु लांबी शिला सम हृदय छे, लांबी कुश कोटि प्र
माण रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १७ ॥ वडशाखा सम भुजा जेह्नी, स्थूल रज्जु
समी नसा जाल रे सुरिंद ॥ नीसातरा सम जस अंगुली, अंजन सम वर्ण
काल रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ १८ ॥ कीलक सम दंतावली, अगनि स्थानक स
म नयन रे सुरिंद ॥ स्थूलनें लघु चिपट्ट नासिका, कटाह् समान वदन्न रे
सुरिंद ॥ श्री० ॥ ॥ १ए ॥ शिर त्रणकोण मूढक समुं, स्थूल काबरा जेह्ना
केश रे सुरिंद ॥ बिल कान गाल बेशी गया, नादें गाजे शैलेश रे सुरिंद ॥
॥ श्री० ॥ २० ॥ डमरुक वजावे करथकी, स्फुटाटोप करे वली नाग रे सुरिं
द ॥ मोघर करवाल धर्यां करें,एम चार हाथनो लाग रे सुरिंद ॥श्री०॥२१॥
भुजास्फोट अट्टाट्ट हास्यें हवे, सांभल रे हुं क्षेत्रपाल रे सुरिंद ॥ मलयमा
ल नामें वडो, करुं वैरीनो हुं काल रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २२ ॥ तुजशुं में
युद्ध कर्युं जिके, ते युद्धक्रीडानें काज रे सुरिंद ॥ मत जाणजे हुं जीत्यो
अछुं, सुर न जीतायें कोइ व्याज रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २३ ॥ हजी कांइ ग
युं नथी ताहरुं, मरे परनें अर्थे केम रे सुरिंद ॥ मुज बालनें मारतां ज
स नहीं, जीवतो मूक्यो जा खेम रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २४ ॥ कहे कुमर ता
हरे क्रीडा थइ, माहरे थयो परउपकार रे सुरिंद ॥ सुर असुरपति पण न
वि गणुं, मुज आगल तुज श्यो नार रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २५ ॥ जीतायें
तेजें न वयथकी, नगशिर दीये पद रविबाल रे सुरिंद ॥ धीर मरण इछे उ
पकारथी,मत मरणनी बीहीक देखाड रे सुरिंद ॥ २६ ॥ यतः ॥ हस्तिस्थू
लतमः सचांकुशवशः किं हस्तिमात्रांकुशो, वज्रेणाभिहताः पतंति गिरयः किं
वज्रमात्रोगिरिः॥ दीपे प्रज्ज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तम, स्तेजो
यस्य विराजते स बलवान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥१॥ ढाल पूर्वली ॥ जय मर
ण जाणशुं युद्धें करी,फरि युद्ध करो जो होंश होय रे सुरिंद ॥ एम तर्जि
त क्रोध लही करी, धायो असि मोघर लइ सोय रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २७ ॥
कुमरें कर्युं रूप ते सारिखुं, संभारी तव नवकार रे सुरिंद ॥ लेई खड्ग धायो
सुर ऊपरें, दोय घा वंचावे तेवार रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ २८ ॥ एम खड्गयु
द्ध बहुविध करी, डर्जय जाण्यो ए कुमार रे सुरिंद ॥ करी नागनें करडे कु
मारनें, एक हाथें धरी तरवार रे सुरिंद ॥ श्री०॥ २ए ॥ एकहाथें मोघर ले
ई करी, एक हाथें वजावे तूर रे सुरिंद ॥ सर्वशक्तें जूझे उत करें, तव श्री

जय पण अतिशूर रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ३० ॥ विघ्नहर औषधिना बलथ की, वली धर्म पराक्रम तास रे सुरिंद ॥ करवालें डमरुक नेदियुं, खंमोखं म कस्या नागपाश रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ३१ ॥ खड्गनें मोघर पण चूरीयां, तव वृक्ष उपाडे देव रे सुरिंद ॥ कुमरें पण वृक्षें चूरियो, पुख्यें करी तस त त्तखेव रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ३२ ॥ एम नव नव वृक्षें जूफीया, वली स्थूल शिला सुरें लीध रे सुरिंद ॥ कुमरें पण कीध तेणी परें, देवनें पण विस्मय दीध रे सुरिंद श्री० ॥ ३३ ॥ हवे वल युद्धथी जूफता, बंध नुज शिर स्फो ट करंत रे सुरिंद ॥ पदथी धरती कंपावता, कुर्कट परें उपरें पडंत रे सुरिं द ॥ श्री० ॥ ३४ ॥ करे मुष्टिप्रहार बेहु जणा, पडे वपडे पण न जणा य रे सुरिंद ॥ आलोटे पृथिवी ऊपरें, ऊपर हेठल वली थाय रे सुरिंद ॥ ॥ श्री० ॥ ३५ ॥ युद्धें पण मले विठडे यदा, तव राग परें परखाय रे सु रिंद ॥ सिंहनादनें मुष्टिप्रहार जे, स्कंधाघात नुजास्फोट कराय रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ३६ ॥ तस नादें विश्व कंपावता, गिरि गाजे पृथिवी चलंत रे सुरिंद ॥ दिश बहेरी नदीयो विसंस्थूला, सायरनी वेली वधंत रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ३७ ॥ पडे वृक्षथी फल त्रूटी करी, नगशृंगथी तेम शिला पात रे सुरिंद ॥ प्रेत नाचेनें वली नासता, प्रीतिनें वली नय आपात रे सुरिंद ॥ श्री० ॥ ३८ ॥ मुष्ट्यादिकें श्रीजयानंदजी, करी श्रांत लीलायें तास रे सु रिंद ॥ उलाली दूर नाखी दियो, पड्यो शिला ऊपर दुःखराशि रे सुरिंद ॥ ॥ श्री० ॥ ३९ ॥ घोर शब्दें ने शिला चूरण थई, पीडा थइ तास अत्यंत रे सुरिंद ॥ पण देव माटे खंम नवि थयो, सुर चमक्या चित्त अनंत रे सु रिंद ॥ श्री० ॥ ४० ॥ तस महिमा पराक्रम देखीनें, माने मुज जीत्यो एण रे सुरिंद ॥ कहे वीर तुं जगमां एक ठे, निज रूप प्रगट करी तेण रे सुरिंद ॥श्री०॥४१॥त्रीजे खंमें पूरण थइ, ए बीजी ढाल रसाल रे सुरिंद ॥ कहेप द्मविजय पुख्येंकरी,सघले लहे मंगलमाल रे सुरिंद॥श्री०॥४२॥सर्वगाथा॥७७॥

॥ दोहा ॥

॥ नवी जीत्यो मुजने किणे, जीत्यो मुजनें जेण ॥ जग जींत्यो ते जा लमी, तुजनें मानुं तेण ॥ १ ॥ मंत्रधर्म ताहरो मनें, कहे मुज करुणा आ ण ॥ जिण बलथी तुं जींतीयो, मोहोटोनें माहाराण ॥ २ ॥ जाणी श्रीज यानंदजी, धर्मथकी धरे शांत, धरी सहजाकृति धर्मनें, नांखे अति नाग्य

वंत ॥ ३ ॥ वीतराग मुज देव छे,संयमी गुरु सुजाण ॥ अरिहंत नाषित आ
दरुं, सार धर्म सपराण ॥ ४ ॥ तेणें हुं तुजनें जीतीयो, सुणी धर्म विस्ता
र ॥ सुर कहे बूज्यो समी परें, पोहोंचाड्यो नवपार ॥ ५ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ मुनिमन सरोवर हंसलो ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंदजी सांनलो, धर्मदत्त इंण नामें रे ॥ पाछले नव हुं श्रावक
हुतो, ऋद्धि घणी मुज धामें रे ॥ श्रीजया० ॥ १ ॥ एक दिन दीठो उद्यान
मां, मास क्षपण करनार रे ॥ परिव्राजक निश्चलासनी, ध्यान लीन सुविचा
र रे ॥ श्री० ॥ २ ॥ नाम धनेश्वर तेहनुं, चार कोडी धन त्यागी रे ॥ माह
रो मित्र गृहस्थमां, लोक वंदन आवे रागी रे ॥ श्री० ॥ ३ ॥ में परशंस्यो
तेहनें, अहो तप त्यागनें ध्यान रे ॥ श्राद्ध प्रशंसित कारणें, राय प्रमुख दि
ये मान रे ॥ श्री० ॥ ४ ॥ एम समकितमां लगाडियो, चोथो में अतिचा
र रे ॥ बहु मिथ्यात्व वर्त्ताविउं, दर्शन हार्यो तिवार रे ॥ श्री० ॥ ५ ॥ थ
यो मिथ्यात्वी देवता, समकेतवंत जो होय रे ॥ वैमानिक सुर ऊपजे, नही
संदेह ते कोय रे ॥ श्री० ॥ ६ ॥ यतः ॥ सम्मद्दिठ्ठी जीवो, विमाणवज्जं
न बंधए आउ ॥ जइ नवि सम्मत्त जढो, अहव न बद्धाउओ पुविं ॥ १ ॥ ढा
ल ॥ बोधि विराधीनें ऊपजे, नीच देवमांहे प्राणी रे ॥ फरी समकित लहे
दोहिलुं, बहुनव नमे कहे नाणी रे ॥ श्री० ॥ ७ ॥ धर्म आराध्यो अतिच
री, न गयो डुर्गति तेणें रे ॥ तुजथकी समकित पामीयो, पूर्व संस्कार हतो
जेणें रे ॥ श्री० ॥ ८ ॥ ज्ञानें जाणीनें नांखीउं, तेणें मुज तुं उपकारी रे ॥
तुंहिज मित्र बांधव गुरु, दे समकित निरधारी रे ॥ श्री० ॥ ए ॥ योग्य निय
म वली आपियें, सांनली तेह कुमार रे ॥ श्रीजय कहे तुं धन्य छे, तुज सफ
ल अवतार रे ॥ श्री० ॥ १० ॥ समकित तेहनें आपीउं, हिंसानो नियम
आपे रे ॥ सुर कहे धर्मदायक तुमें, तुम ऋण केणीपरें कापे रे ॥ श्री० ॥
॥ ११ ॥ वर मागो कांइ मुखथकी, देई पूजुं तुम पाय रे ॥ कुमर कहे कांइ
खप नहीं, तो पण सांनल नाय रे ॥ श्री० ॥ १२ ॥ साधक पुरुषनें औष
धि, आपो वांछित जेह रे ॥ उद्यम श्रम बिहुं एहनो, सफल करो तुमें तेह
रे ॥ श्री० ॥ १३ ॥ देव कहे देशुं सही, पण नहीं रहे एह पासें रे ॥ ना
ग्य विना दरिद्री घरें, रयण निधान न ठाशे रे ॥ श्री० ॥ १४ ॥ में आ
णा करी एहनें, औषधि ल्यो मन नावे रे ॥ पंमित औषधि कल्पमां, गुरु

कीधो सुप्रस्तावें रे ॥ श्री० ॥ १५ ॥ पण तुं सार औषधि लइ, मुजने कर उपकार रे ॥ गुरु पूजा होये माहरे, कुमर बोल्या तेवार रे ॥ श्री० ॥१६॥ पांच औषधि दीये देवता, श्रीजयकुमरें ते लीधी रे ॥ सुर कहे महिमा सांजलो, एहवी जग परसिद्धि रे ॥ श्री० ॥ १७ ॥ बे आंगुल जाडी वली, लांबी आंगुल चार रे ॥ पीली ते मंत्र जपे थके,लीजे वार हजार रे ॥ ॥ श्री० ॥ १८ ॥ मंत्रश्चायं ॥ ॐ महाजैरवी ह्रां ह्रीं ह्रः श्रियं वितर वितर स्वाहा ॥ ढाल ॥ रत पांचशें आपशें, अर्च्यां दिन दिन एह रे ॥ हवे बीजी पण एहवी, वरणें राती बे जेह रे ॥ श्री० ॥ १९ ॥ तेहनो महिमा पूज्याथकी, शुं आपे एम जांखे रे ॥ माग्याथी बमणुं लियो तुमें, त्यो त्रिगुणुं एम दाखे रे ॥ श्री० ॥ २० ॥ कहे पण आपे कांइ नही. पण कौतुक एह दीसे रे ॥ पूरव परें एहनी साधना, सुणतां हियडुं हीसे रे ॥ ॥ श्री० ॥ २१ ॥ मंत्रश्चायं ॥ ॐ महावादिनी फ्रॉं फ्रॅं फ्रौं महाश्रियं वद वद स्वाहा॥ ढाल ॥ त्रीजी उजली औषधी, पूरवथी अर्द्ध मानें रे ॥ एहनी साधनां कांइ नथी, पण महिमा सुणो कानें रे ॥ श्री०॥ २२ ॥ स्थावर जंगम विष हणे, रोग सवे मटी जाय रे ॥ घात व्रणादिक एहना, जाये नीर सींचाय रे ॥ श्री० ॥ २३ ॥ अर्द्ध मानें चोथी एहथी, औषधि वरणें नीली रे ॥ पूर्वपरें मंत्र साधना, साधे काम एकेली रे ॥ श्री० ॥ २४ ॥ चेतन अथवा पूतली, मस्तकें औषधि दीधी रे ॥ अतीत अनागत वारता, पूबी कहे सवि सीधी रे ॥ श्री०॥ २५ ॥ मंत्रो यथा ॥ ॐ माहाघंटे चंडे चंडशासिनि प्रश्नार्थं वद वद कें स्वाहा ॥ ढाल ॥ चोथी ए ज्ञानी समी कहे, हवे पांचमी जेह श्याम रे ॥ डुष्ट कामण मंत्र चूर्ण जे, टाले ए अजिराम रे ॥ ॥ श्री० ॥ २६ ॥ ए विधि महिमा जे जांखीयो, कुमरें धार्यो विलासें रे ॥ क्षेत्रपालशुं आवीया, साधक पुरुषनें पासें रे ॥ श्री० ॥ २७ ॥ त्रीजे खंडें त्रीजी कही, ढाल अधिक उल्लासें रे ॥ पद्मविजय कही पुण्यनी, श्रीजयानंदनें रासें रे ॥ श्री० ॥ २८ ॥ सर्वगाथा ॥ ११० ॥

॥ दोहा ॥

॥ सुर कहे साधक सांजले,ले औषधि मन लाय ॥ ध्यान मूकी धारी करी. जइ जे मनमां जाय ॥ १ ॥ एह कुमर अनुजाव बे, सांजली सुर पूजेय ॥ निर्झर कुमर नमी कहे, श्रीजयानंद सुणेय ॥ २ ॥ काम पडे सम

ण करे, पूठी प्रणमी पाय ॥ निज थानक निर्जर गयो, साधक ह्वे सजा
य ॥ ३ ॥ नमि नमिनें मन नावती, औषधि लीये अपार ॥ नाग प्रमा
णें नली परें, विधि पूर्वक अवधार ॥ ४ ॥ साधक कुमरनें कहे सुणो, सघ
लुं सीधुं काज ॥ तुम पसायथी ततक्षणें, माह्यरुं ए महाराज ॥ ५ ॥ तु
म आणायें जाउं तुरत, निज थानक निरधार ॥ परउपगार प्रमोदथी, करे
आणा ते कुमार ॥ ६ ॥ पल्यंक बेशी कुमर पण, आवे अंबर राह ॥ रतन
पुरनें ऊपरें, उपवनमांहें अबाह ॥ ७ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ राय कहे राणीप्रत्यें ॥ ए देशी ॥

॥ तिहां जिनचैत्य मनोहरु, देखीनें विचारे ॥ उल्लंघन आशातना, रखे
थाय केवारें ॥ हुं वारी एह जिणंदनी, जे नव दुःख वारे ॥ १ ॥ उ
तरी पेसे चैत्यमां, विधियें प्रणमंतो ॥ योग्यता जाणी ढोलीयो, किहां
यक गोपंतो ॥ हुं वारी० ॥ २ ॥ विधि सामग्री मेलवी, जिनध्यानमां
लीनो ॥ त्रण उपवास करी तिहां, मंत्र जापज कीनो ॥ हुं० ॥ ३ ॥ त्रणे
मंत्र ते साधीया, प्रभु रुपननी पासें ॥ जिनवर पूजी नावशुं, आणी हर्ष
उल्लासें ॥ हुं० ॥ ४ ॥ पारणुं फलथी करे ह्वे, थाय औषधि पासें ॥ पां
चशें रत्न ते पामीयो, जेहथी दुःख नासे ॥ हुं० ॥ ५ ॥ अठाइ महोत्सव ते
हनो, करी पुरमां आवे ॥ निर्धन श्रावकनें घरें, नाडुं जे थावे ॥ हुं० ॥ ६ ॥
आपी तेहनें थिर रहे, मन हर्ष ते आणी ॥ गोशीर्ष चंदननी करे, प्रतिमा
गुणखाणी ॥ हुं० ॥ ७ ॥ ते लघुप्रतिमा गुरु कनें, प्रतिष्ठावी थापे ॥ नित्य
पूजा करे तेहनी, अति आनंद व्यापे ॥ हुं० ॥ ८ ॥ औषधि प्रतिमा एकठी,
माबडामां मूके ॥ माबडो गर्भगृहें ठवे, तस विधि नवि चूके ॥ हुं० ॥ ९ ॥
पांचशें रत्न ते नित दीये, पहेली औषधि जेह ॥ अर्थ कामनें धर्म ते, सा
धे ससनेह ॥ हुं० ॥ १० ॥ श्राद्ध कुटुंब सेवा करे, कुमरनी नक्तें ॥ दान दी
ये तेणें वश सहु, अढलक अतिशक्तें ॥ हुं० ॥ ११ ॥ बहु परिवार कस्यो ति
हां, देतो याचक दान ॥ राज्य पंथें ते करावतो, वेशी गीत गान ॥ हुं० ॥
॥ १२ ॥ मूल नाम अणजाणते, लोकें दीधुं नाम ॥ श्रीविलास सान्वय प
णे, इच्छित करे काम ॥ हुं० ॥ १३ ॥ तिण नगरीनो राजीयो, रत्नरथ इति
नाम ॥ गांभीर्य शौर्य ऐश्वर्यता, बहु विद्या ठाम ॥ हुं० ॥ १४ ॥ विजय या
त्रायें जेहनें, अचला चल थाय ॥ रतिमाला गणिका तिहां, रूपें रंभ हराय

॥ हुं० ॥ १५ ॥ तरुण पुरुष मन जींपती,कला चोशठ धाम ॥ चंड जीती पद नख मिशें, करावे परणाम ॥ हुं० ॥ १६ ॥ राय तणुं चित्त रीजव्युं, क्रमें पुत्री आवी ॥ पूर्वे पुत्री अनावथी. नृप चित्त अति नावी ॥ हुं० ॥ १७ ॥ जन्ममहोछव नृपति करे, लक्षण रूपवंती ॥ रतिरंनादिक नारीनें,लावण्यें जीपंती ॥ हुं० ॥ १८ ॥ स्वजन जमाडी थापतो, रतिसुंदरी नाम ॥ थापे कल्पवेली परें, वधती अनिराम ॥ हुं० ॥ १९ ॥ वय स्पर्द्धायें नित्य वधे, गुण विनयनें रूप ॥ सुंदरता लावण्य वली, दाक्षिण्य अनूप ॥ हुं० ॥ २० ॥ योग्य थइ कला ग्रहणनें, कलाचारय पास ॥ नणवा मूके नृपति, करवा अन्यास ॥ हुं० ॥ २१ ॥ प्रज्ञायें जीते सरसती, नणी थोडा दिनमां ॥ त्रण वर्गना शास्त्रनी, जाण थइ सहु जनमां ॥ हुं० ॥ २२ ॥ षट्दर्शननां रहस्य ते, जाणे रूडी रीतें ॥ नारती बिहुं रूपें थई, मानु आवी प्रीतें ॥हुं०॥२३॥ पूरव नव संस्कारथी, वली जैनी नणावे ॥ तेणे जिन शासनमां थई,घणुं ते दृढनावें ॥ हुं० ॥ २४ ॥ सरसती पुस्तक लेई करें, मानुं जोवे एम ॥ एहवी कोय थइ के थशे, एम जाणवा नेम ॥ हुं० ॥ २५ ॥ त्रीजे खंमें चोथी कही, पद्मविजयें ढाल ॥ कुमरी गर्व रहित घणुं, जैननावें रसाल ॥ ॥ हुं० ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ १४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वर जोवा वारू परें,रूप देखीनें राय ॥ दिशो दिश मूके दूतनें,जोवा ते पण जाय ॥ १ ॥ अन्य राणीनी ईरषा, जाणी नृप सुजाण ॥ रतिमाला पुर बाहिरें, ठवी आवासनें गण ॥ २ ॥ कलास्थैर्यनें कारणें, रतिसुंदरीनें राय ॥ पासें राखे प्रेमशुं, आपे इव्य अमाय ॥ ३ ॥ नृप कुलदेवी नामथी, उपवन मांहें अचल ॥ चंडेश्वरी चैत्यमां रहे, नित्य थाये पूजन वल ॥४॥ उपकारी अणगारजी, चोमासुं चित्त लाय ॥ चोमासी तप आचरी, आवासें कोइ आय ॥ ५ ॥ सधाय ध्यानशुं लीन जे, ते सुणी देवी ताम ॥ गुणरागी रीजी घणुं, आदर करे उद्दाम ॥ ६ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ वीर वखाणी राणी चेलणा जी ॥ ए देशी ॥

॥ पूरवनव तस सांनलोजी, सांनलो नांखीयें तेह ॥ विप्रदेवशर्मा नंदी पूरें जी, नंदिनी पुत्री डुःख रेह ॥ १ ॥ कर्म विचित्रता सांनलो जी॥ ए आंकणी ॥ परणी सुशर्मा वाडव प्रत्यें जी, वैधव्य वरष थयुं एक ॥ मर

ए जह्युं तास पति अन्यदा जी, निकट आलयमां आयात ॥ क० ॥ २ ॥ देइ प्रतिबोध श्राविका करी जी, समकित अणुव्रत शील ॥ धर्ममां दृढव्रती ते थई जी, साध्वी पासें रहे लील ॥ क० ॥ ३ ॥ तात आणायें तप ते करे जी, षट आवश्यक करे नित्य ॥ देवगुरु नक्तिवंती घणुं जी, अल्प आरंन सुविनीत ॥ क० ॥ ४ ॥ काम घरनां हवे तस पिता जी, नवि करावे तस पास ॥ धर्ममां विघन जाणी करी जी, करे हवे धर्म उल्लास ॥क०॥ ॥ ५ ॥ एम करतां हवे अन्यदा जी, गुरु प्रमुख तणे रे अनाव ॥ आसन मठ परिव्राजिका जी, तास संयोग सनाव ॥ क० ॥ ६ ॥ गोठ तेह्शु बनी तेह्नें जी, मधुर वयणें करे वात ॥ समकित मलिन अतिचारथी जी, पाखंमी परिचय ख्यात ॥ क० ॥ ७ ॥ प्रीति थई ते पिता वारतो जी, पण नवी मूके तस संग ॥ एह् स्वनाव ठे स्त्री तणो जी, संग सरिखो होये रंग ॥ क० ॥ ८ ॥ एणें समे सावित्री ब्राह्मणी जी, ठे पाडोसण तस पुत्र ॥ यज्ञदत्त अंजना तस प्रिया जी, पण नहीं प्रीति संयुत ॥ क० ॥ ए ॥ परनव गयो नंदिनीपिता जी, यज्ञदत्त देखी तस रूप ॥ मोहीयो पण नवि ते मली जी, खेद पामे प्रतिरूप ॥ क० ॥ १० ॥ दिन दिन दूबलो ते होये जी, पूठे तस सावित्री माय ॥ लाज मूकी कह्युं मातनें जी, मात कहे शानें खेदाय ॥ क० ॥ ११ ॥ तुज मनोरथ सफला करुं जी, हवे एक दिन तस माय ॥ नंदिनीनें एकांतें कहे जी, देइ विश्वास शुन ठाय ॥क०॥ ॥ १२ ॥ माह्हारो पुत्र तुज इछतो जी, यौवनवय स्मर रूप ॥ धन्य तुं तेह अंगीकरी जी, यौवन सफल अनुरूप ॥ क० ॥ १३ ॥ नारीना नोग विण विफल ठे जी, रूप लावण्य सोनाग ॥ यौवन विनव निःफल सवे जी, तेणे धर मुज सुत राग ॥ क० ॥ १४ ॥ वृद्धवयें तप करवुं घटे जी, तरुणपणुं फोक मत हार ॥ पति मरणें कह्युं पांचने जी,अन्यपति करण विचार ॥ क० ॥ १५ ॥ यडुक्तं॥ नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतिते पतौ ॥ पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्योविधीयते ॥ १ ॥ ढाल ॥ सांनली तेह क्रोधें चढी जी, मूढ तुजनें रे धिक्कार ॥ कर्णकटुक ए तुं शुं लवी जी, कुगतिनो अधिकार ॥ क० ॥ १६ ॥ सतीय ते शील लोपे नहीं जी, जो कदी होय प्राणांत ॥ इह परलोक विरुद्ध ते जी, आचरे केम निःभ्रांत ॥ ॥ क० ॥ १७ ॥ तडुक्तं ॥ वरं प्रविष्टं ज्वलितं हुताशनं, नचापि नग्नं सु

॥ हुं० ॥ १५ ॥ तरुण पुरुष मन जींपती,कला चोशठ धाम ॥ चंद्र जीती पद नख मिशें, करावे परणाम ॥ हुं० ॥ १६ ॥ राय तणुं चित्त रीजव्युं, क्रमें पुत्री आवी ॥ पूर्वे पुत्री अनावथी. नृप चित्त अति नावी ॥ हुं० ॥ १७ ॥ जन्ममहोछव नूपति करे, लक्षण रूपवंती ॥ रतिरंनादिक नारीनें,लावण्यें जीपंती ॥ हुं० ॥ १८ ॥ स्वजन जमाडी थापतो, रतिसुंदरी नाम ॥ थापे कल्पवेली परें, वधती अनिराम ॥ हुं० ॥ १९ ॥ वय स्पर्द्धायें नित्य वधे, गुण विनयनें रूप ॥ सुंदरता लावण्य वली, दाक्षिण्य अनूप ॥ हुं० ॥ २० ॥ योग्य थइ कला ग्रहणनें, कलाचारय पास ॥ नणवा मूके नूपति, करवा अन्यास ॥ हुं० ॥ २१ ॥ प्रज्ञायें जीते सरसती, नणी थोडा दिनमां ॥ त्रण वर्गना शास्त्रनी, जाण थइ सहु जनमां ॥ हुं० ॥ २२ ॥ षट्दर्शननां रहस्य ते, जाणे रूडी रीतें ॥ नारती बिहुं रूपें थई, मानु आवी प्रीतें ॥हुं०॥२३॥ पूरव नव संस्कारथी, वली जैनी नणावे ॥ तेणे जिन शासनमां थई,घणुं ते दृढनावें ॥ हुं० ॥ २४ ॥ सरसती पुस्तक लेई करें,मानुं जोवे एम ॥ एहवी कोय थइ के थशे, एम जाणवा नेम ॥ हुं० ॥ २५ ॥ त्रीजे खंडें चोथी कही, पद्मविजयें ढाल ॥ कुमरी गर्व रहित घणुं, जैननावें रसाल ॥ ॥ हुं० ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ १४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वर जोवा वारू परें,रूप देखीनें राय ॥ दिशो दिश मूके दूतनें,जोवा ते पण जाय ॥ १ ॥ अन्य राणीनी ईरषा, जाणी नृप सुजाण ॥ रतिमाला पुर बाहिरें, ठवी आवासनें ठाण ॥ २ ॥ कलास्थैर्यनें कारणें, रतिसुंदरीनें राय ॥ पासें राखे प्रेमशुं, आपे ड्व्य अमाय ॥ ३ ॥ नृप कुलदेवी नामथी, उपवन मांहें अचल ॥ चंड्रेश्वरी चैत्यमां रहे, नित्य थाये पूजन वल्ल ॥४॥ उपकारी अणगारजी, चोमासुं चित्त लाय ॥ चोमासी तप आचरी, आवासें कोइ आय ॥ ५ ॥ सद्याय ध्यानशुं लीन जे, ते सुणी देवी ताम ॥ गुणरागी रीजी घणुं, आदर करे उद्दाम ॥ ६ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ वीर वखाणी राणी चेलणा जी ॥ ए देशी ॥

॥ पूरवनव तस सांनलोजी, सांनलो नांखीयें तेह ॥ विप्रदेवशर्मा नंदी पूरें जी, नंदिनी पुत्री डुःख रेह ॥ १ ॥ कर्म विचित्रता सांनलो जी॥ ए आंकणी ॥ परणी सुशर्मा वाडव प्रत्यें जी, दैवथी वरष थयुं एक ॥ मर

ण लह्युं तास पति अन्यदा जी, निकट आलयमां आयात ॥ क० ॥ २ ॥ देइ प्रतिबोध श्राविका करी जी, समकित अणुव्रत शील ॥ धर्ममां दृढव्र ती ते थई जी, साध्वी पासें रहे लील ॥ क० ॥ ३ ॥ तात आणायें तप ते करे जी, षट आवश्यक करे नित्य ॥ देवगुरु नक्तिवंती घणुं जी, अल्प आरंन सुविनीत ॥ क० ॥ ४ ॥ काम घरनां हवे तस पिता जी, नवि करा वे तस पास ॥ धर्ममां विघन जाणी करी जी, करे हवे धर्म उल्लास ॥क०॥ ॥ ५ ॥ एम करतां हवे अन्यदा जी, गुरु प्रमुख तणे रे अनाव ॥ आसन मठ परिव्राजिका जी, तास संयोग सनाव ॥ क० ॥ ६ ॥ गोठ तेहशु बनी तेहनें जी, मधुर वयणें करे वात ॥ समकित मलिन अतिचारथी जी, पा खंमी परिचय ख्यात ॥ क० ॥ ७ ॥ प्रीति थई ते पिता वारतो जी, पण नवी मूके तस संग ॥ एह स्वनाव ठे स्त्री तणो जी, संग सरिखो होये रं ग ॥ क० ॥ ८ ॥ एणें समे सावित्री ब्राह्मणी जी, ठे पाडोसण तस पुत्र ॥ यज्ञदत्त अंजना तस प्रिया जी, पण नहीं प्रीति संयुत ॥ क० ॥ ए ॥ पर नव गयो नंदिनीपिता जी, यज्ञदत्त देखी तस रूप ॥ मोहीयो पण नवि ते मली जी, खेद पामे प्रतिरूप ॥ क० ॥ १० ॥ दिन दिन दूबलो ते हो ये जी, पूठे तस सावित्री माय ॥ लाज मूकी कह्युं मातनें जी, मात कहे शानें खेदाय ॥ क० ॥ ११ ॥ तुज मनोरथ सफला करुं जी, हवे एक दिन तस माय ॥ नंदिनीनें एकांतें कहे जी, देइ विश्वास शुन ठाय ॥क०॥ ॥ १२ ॥ माहारो पुत्र तुज इछतो जी, यौवनवय स्मर रूप ॥ धन्य तुं तेह अंगीकरी जी, यौवन सफल अनुरूप ॥ क० ॥ १३ ॥ नारीना नोग विण विफल ठे जी, रूप लावण्य सोनाग ॥ यौवन विनव निःफल सवे जी, तेणे धर मुज सुत राग ॥ क० ॥ १४ ॥ वृद्धवयें तप करवुं घटे जी, तरुणपणुं फोक मत हार ॥ पति मरणें कह्युं पांचने जी,अन्यपति करण वि चार ॥ क० ॥ १५ ॥ यडुक्तं॥ नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीवे च पतिते पतौ ॥ पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्योविधीयते ॥ १ ॥ ढाल ॥ सांनली तेह क्रोधें चढी जी, मूढ तुजनें रे धिक्कार ॥ कर्णकटुक ए तुं शुं लवी जी, डु र्गतिनो अधिकार ॥ क० ॥ १६ ॥ सतीय ते शील लोपे नहीं जी, जो क दी होय प्राणांत ॥ इह परलोक विरुद्ध ते जी, आचरे केम निःन्रांत ॥ ॥ क० ॥ १७ ॥ तडुक्तं ॥ वरं प्रविष्टं ज्वलितं हुताशनं, नचापि नमं सु

॥ हुं० ॥ १५ ॥ तरुण पुरुष मन जींपती,कला चोशठ धाम ॥ चंद्र जीती पद नख मिशें, करावे परणाम ॥ हुं० ॥ १६ ॥ राय तणुं चित्त रीजव्युं, क्रमें पुत्री आवी ॥ पूर्वें पुत्री अनावथी. नृप चित्त अति नावी ॥ हुं० ॥ १७ ॥ जन्ममहोत्व नृपति करे, लक्षण रूपवंती ॥ रतिरंनादिक नारीनें,लावण्यें जीपंती ॥ हुं० ॥ १८ ॥ स्वजन जमाडी थापतो, रतिसुंदरी नाम ॥ थापे कल्पवेली परें, वधती अनिराम ॥ हुं० ॥ १९ ॥ वय स्पर्द्धायें नित्य वधे, गुण विनयनें रूप ॥ सुंदरता लावण्य वली, दाक्षिण्य अनूप ॥ हुं० ॥ २० ॥ योग्य थइ कला ग्रहणनें, कलाचारय पास ॥ नणवा मूके नृपति, करवा अन्यास ॥ हुं० ॥ २१ ॥ प्रज्ञायें जीते सरसती, नणी थोडा दिनमां ॥ त्रण वर्गना शास्त्रनी, जाण थइ सहु जनमां ॥ हुं० ॥ २२ ॥ पट्दर्शननां रहस्य ते, जाणे रूडी रीतें ॥ नारती बिहुं रूपें थई, मानु आवी प्रीतें ॥हुं०॥२३॥ पूरव नव संस्कारथी, वली जैनी नणावे ॥ तेणे जिन शासनमां थई,घणुं ते दृढनावें ॥ हुं० ॥ २४ ॥ सरसती पुस्तक लेई करें, मानुं जोवे एम ॥ ए हवी कोय थइ के थशे, एम जाणवा नेम ॥ हुं० ॥ २५ ॥ त्रीजे खंमें चोथी कही, पद्मविजयें ढाल ॥ कुमरी गर्व रहित घणुं, जैननावें रसाल ॥ ॥ हुं० ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ १४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वर जोवा वारू परें,रूप देखीनें राय ॥ दिशो दिश मूके दूतनें,जोवा ते पण जाय ॥ १ ॥ अन्य राणीनी ईरषा, जाणी नृप सुजाण ॥ रतिमाला पुर बाहिरें, रवी आवासनें गण ॥ २ ॥ कलास्थैर्यनें कारणें, रतिसुंदरीनें राय ॥ पासें राखे प्रेमशुं, आपे ड्व्य अमाय ॥ ३ ॥ नृप कुलदेवी नामथी, उपवन मांहे अचल ॥ चंडेश्वरी चैत्यमां रहे, नित्य थाये पूजन वह्न ॥४॥ उपकारी अणगारजी, चोमासुं चित्त लाय ॥ चोमासी तप आचरी, आवासें कोइ आय ॥ ५ ॥ सभाय ध्यानशुं लीन जे, ते सुणी देवी ताम ॥ गुणरागी रीजी घणुं, आदर करे उद्दाम ॥ ६ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ वीर वखाणी राणी चेलणा जी ॥ ए देशी ॥

॥ पूरवनव तस सांनलोजी, सांनलो नांखीयें तेह ॥ विप्रदेवशर्मा नंदी पूरें जी, नंदिनी पुत्री दुःख रेह ॥ १ ॥ कर्म विचित्रता सांनलो जी॥ ए आंकणी ॥ परणी सुशर्मा वाडव प्रत्यें जी, वैधवी वरष थयुं एक ॥ मर

मीजी, उत्तम एह वर ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमांजी, पद्मविजय सुर साल ॥ क० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ १०३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ ब्रह्म पालंती ब्राह्मणी,कूतरी थइ किरतार ॥ कष्ट सह्युं ते किहां गयुं, ए कोइ अवर प्रकार ॥ १ ॥ मुज पण एम मत नीपजे, जोगवुं तेणें हुं जोग ॥ आवी निज आगारमां, लक्षणें जाणे लोग ॥ २ ॥ सावित्री इंगित सवे, परगट एणी परें पेखी, पूरव परें कहे पापिणी, ऊणिम नही कांइ रेख ॥ ३ ॥ नंदिनी कहे नारी प्रतें, सावित्री सुण वाणि ॥ बांधवथी बीहुं बहु, वारु करो विन्नाण ॥ ४ ॥ सावित्री कहे साचलुं, जाशुं तीरथ जात ॥ शंका जेम नवि संपजे, ए छलनो अवदात ॥ ५ ॥ जोगव जोग जली परें, देशांतरें जइ दक्ष ॥ इव्य पितानुं दीधलुं, निज हस्तें करी न्यक्ष ॥ ६ ॥ एम कही इव्य उपार्जना, पुत्र मूके परदेश ॥ पीयर मोकले वहू प्रतें, वाडवी करती वेश ॥ ७ ॥ नंदिनीनें लेवा निमित्त, जाणी घरे रही जाम ॥ सुव्रता आर्या तिणे समे, आव्यां अवसर पाम ॥ ८ ॥

॥ ढाल छठी ॥ सुण बेहेनी पियुडो परदेशी ॥ ए देशी ॥

॥ पूरव परिचित आर्या आव्यां, नंदिनी मनमां जाव्यां रे ॥ नंदिनी प्रणमी तव ते पूछे,धर्म वात तुम शुं छे रे ॥ पू० ॥ १ ॥ वात प्रसंगें स्त्राशय जाख्यो, आर्यायें तव दाख्यो रे ॥ जोली रे तुं केम मूजाणी, एतो नरक नीसाणी रे ॥ पू० ॥ २ ॥ अरिहंत मारगमां तुं साचो, कल्पित वात सां माची रे ॥ रागी द्वेषी मूढ जे प्राणी, ते कल्पित कहे वाणी रे ॥ पू० ॥३॥ पूरवनवनुं ज्ञान न एहनें, कपट पाटव छे जेहनें रे ॥ पुत्रथी स्वर्ग लहे जो कोइ, तो उत्तर सुण सोइ रे ॥पू०॥४॥ नागिण कुर्कटीनें वली शूकरी, गर्दजी शुनीनें बकरी रे ॥ स्वर्गें तेह जशे सहु पहेलां, व्रत तप जप करे ब हेलां रे ॥ पू० ॥ ५ ॥ ते कारण जिनमत लही साचो, जेहवो हीरो जाचो रे ॥ तेणे शीलें मन म म कर काचो, वीतरागमतें राचो रे ॥ पू० ॥ ६ ॥ यतः ॥ रागाद्वा द्वेषाद्वा, मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतं ॥ यस्य तु नैते दोषा, स्तस्यानृतकारणं किं स्यात् ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ शीलखंमनथी जिनवर जाखे, आपद एणे जव चाखे रे ॥ परजव नरक निगोदमां जावे, उंचो दोही लो आवे रे ॥ पू० ॥ ७ ॥ वली तीर्यंचणी गर्दजी थाये, तुरगी मृगी डुःख

जनार्चितं व्रतं ॥ वरंहि मृत्युः शुचिशुद्धकर्मणा, नचापि शीलस्खलितस्य जीवितम् ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ काम शास्त्रोक्त किरिया थकी जी, नरकगति नवि अवराय ॥ शीलखंमनथकी निश्चयें जी, प्राणीयो नरकमां जाय ॥ ॥ क० ॥ १७ ॥ एम प्रतिहत करी तेहनें जी, मौन करी गइ निजगेह ॥ दोय त्रण वार एम कह्युं घणुं जी, पण विलखी थइ तेह ॥ क० ॥ १ए ॥ कार्य असाध्य निजथी लही जी, तेह परिव्राजिका पास ॥ नंदिनी तास वश जाणीनें जी, सेवना करती उल्लास ॥ क० ॥ २० ॥ पूछे परिव्राजिका एकदा जी, केम करे सेवना मुऊ ॥ सावित्रीयें सघलुं कह्युं जी, मोहवशें साध्य छे तुऊ ॥ क० ॥ २१ ॥ अंगीकरी तास विसर्जती जी, हवे करे तास उपाय ॥ कूतरी एक तेणें वश करी जी, अशनपानादिक दाय ॥ क० ॥ ॥ २२ ॥ पादपतनादि चेष्टा प्रतें जी, शीखवे अतीय अभ्यास ॥ नंदिनी देखतां एकदा जी, कूतरी तेडी निज पास ॥ क० ॥ २३ ॥ चक्षुमां चूर्ण नाख्युं यदा जी, तेह करती अश्रुपात ॥ पाय लगाडी शुनीप्रत्यें जी, नंदिनी देखी साक्षात ॥ क० ॥ २४ ॥ पूछे परिव्राजिकाने तदा जी, एहशुं कौतुक आज ॥ सा कहे पूर्वजव सांजलो जी, मुजशुं एहनें जे काज ॥ क० ॥ ॥ २५ ॥ पृथिवीपुरें दत्त ब्राह्मण वसे जी, तेहनें दीकरी दोय ॥ प्रथमनें अग्निदत्त परणीयो जी, पुत्र त्रण तेहनें होय ॥ क० ॥ २६ ॥ पति मूवे थइ परिव्राजिका जी, जगिनी लघु ते पण ताम ॥ अग्निशर्मानें ते परणती जी, मास षटें विधि थयो वाम ॥ क० ॥ २७ ॥ धव मरी गयो अतिरूपिणीजी, इछतो हरिदत्त तास ॥ सा न इछे हरिदत्तनेंजी, शील खंडुं नही खास ॥ क० ॥ २७ ॥ धूर्त्त उपदेश तस चित्त वस्योजी, नवि लहे जोग अंतराय ॥ वृद्धजगिनीनें कहे व्रत दीयोजी, ते कहे नवीय अपाय ॥ क० ॥२ए॥ अपुत्रिणी नहीं व्रत योग्यनेंजी, तेह वारी पण एम ॥ नवि रही थइ परिव्राजिकाजी, नवि इछे कोयनें तेम ॥ क० ॥ ३० ॥ आयुपूरें थई कूतरी जी, देखी मुज जाति संजारि ॥ पाय पडे ए रोती थकीजी, हुं गइ मनुष्य जवहार ॥ क० ॥ ३१ ॥ जोग अंतरायनें शोचती जी, तेणें सुणी नंदिनी वात ॥ प्रार्थना जंग नवि कीजीयेंजी, जोग अंतराय बंधात ॥ क० ॥३२॥ कपटणी एम कपटें करीजी, जोलवी नंदिनी नार ॥ हीणी संगतिथी हीणापणुंजी, आवतां नवि करे वार ॥ क० ॥ ३३ ॥ खंम त्रीजे कही पांच

वीने, न सुणे अन्यनुं नाम ॥५॥ दासीयो दूरें करे, पुरुष न आवे पास ॥ पू
रवनवपति पामवा, आदरीयो अन्यास ॥ ६ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ एणें अवसर तिहां झूंबनुं रे ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन नाटकणी तिहां रे, आवी विजया नाम रें ॥ चतुर नर ॥
निज योग्य बहु परिवारशुं रे लोल ॥ आवी महाराष्ट्र देशथी रे, नृपघर पो
लनें गाम रे ॥ च० ॥ चारीनें नीर मूके तदा रे लोल ॥१॥ नाटकें जींते मुजनें
रे, दासी थाउं तास रे ॥ च० ॥ नहीं तो तस दासी करुं रें लोल ॥ एह प्र
तिज्ञा माहरी रे, उद्घोषणा करे खास रे ॥ च० ॥ नृप पण पडह वजाव
तो रे लोल ॥ २ ॥ पण नवि कोइ परगट थयो रे, नगरमां जीतणहार रे ॥
॥ च० ॥ राय विषाद लई करी रे लोल ॥ चिंतवे मुज पुरमां नहीं रे, कोई क
लाभंमार रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी ते जाणीनें रे लोल ॥ ३ ॥ तातनो खेद
निवारवा रे, कहे जीतुं एह नारी रे ॥ च० ॥ पण नरपरखदमां नही रे
लोल ॥ नृप कहे नर दूरें रहे रे, तव सा करे अंगीकार रें ॥ च० ॥ दिव
स ठरावी घरें गइ रे लोल ॥ ४ ॥ उक्त दिनें नरपति हवे रे, विजया तेडा
वे तब रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी नृप आणथी रे लोल ॥ बेसी प्रवर सुखास
नें रे, उपकरण नृत्य सब रें ॥ च० ॥ दासीयो नर दूरें करे रे लोल ॥५॥
बहु परिवारें परवरी रे, पण चित्त चिंतवे एम रें ॥ च० ॥ मुज नाटकने
सारखी रे लोल ॥ वीणावादिका कोइ नहीं रे, तेणें करशुं कहो केम
रे ॥ च० ॥ श्रीविलास चोहटें रह्या रे लोल ॥ ६ ॥ देखी अचरज पामी
नें रे, पूछे कोइकनें वात रे ॥ च० ॥ ते पण सवि मांमी कहे रे लोल ॥ ना
टक जोवा कौतुकी रे, पण नरथी न जवात रे ॥ च० ॥ रूप करे तव
नारीनुं रे लोल ॥ ७ ॥ मनगमती वीणा तदा रे, मागी लाव्यो कोइ पास
रे ॥ च० ॥ तेह पेटकमांहे भली रे लोल ॥ राय सनामां ते गई रे, धर
ती मन उल्लास रे ॥ च० ॥ थोडी सनायें नृप उपविशे रे लोल ॥ ८ ॥ कौ
तुक जोनारा जिके रे, ते नर राख्या दूर रे ॥ च० ॥ विजयानें नृप आणा
करे रे लोल ॥ विजयायें नाटक मांमिउं रे, नाना करणादि पूर रे ॥ च० ॥
गीत वाजित्रशुं मेलवी रे लोल ॥ ए ॥ रीजवे ते सघली सना रे, वंशनल्ला
ग्रें नाच रे ॥ च० ॥ असि छुरिकाग्रें तेम वली रे लोल ॥ तंडुलपुंजें सूचा
ग्रवी रे, ऊपर फूलनो ताच रे ॥ च० ॥ नाटक कर्युं तेह ऊपरें रे लोल ॥

दाय रे ॥ सूअरणी उंदरडी दुःख लहेती, नार घणो तिहां वहेती रे ॥ पू० ॥ ८ ॥ कुरूपीने कडुई वाणी, योनिरोगें अकुलाणी रे ॥ कोढरोग हीनांगनें विकला, निकलानें वली दुकुला रे ॥ पू० ॥ ए ॥ दुष्ट जीवित अल्पायु पामे. पुत्र वियोग सुख वामे रे ॥ कुशील कर्म किमे नवी तूटे, न वनव दुःख नवि छूटे रे ॥ पू० ॥ १० ॥ वात सुणी ते नरकथी बीहीनी, सा धवी वयणें जीनी रे ॥ स्थिर धर्म शीलें थइ बोले, नावे कोइ तुम तोलें रे ॥ पू० ॥ ११ ॥ दुर्गति पडती मुजनें राखी, जिनवचनामृत जाखी रे ॥ दुष्टबोध विषनो कर्यो नाश, न पडुं हवे कोइ पास रे ॥ पू० ॥ १२ ॥ ए णी परें कहीनें प्रणमी पाया, निजघर मांहे आया रे ॥ वली सावित्री ता स बोलावे, तेहनें कहे इण रावें रे ॥ पू० ॥ १३ ॥ हवे हुं नीच आचार न सेवुं, मत कहे मुजनें एहवुं रे ॥ जो ए वात कहीश हवे मुजनें, दुःख दे वरावीश तुजनें रे ॥ पू० ॥ १४ ॥ नंदिनी त्रासथी बीहीती नासे, गइ निज पुत्रनी पासें रे ॥ अन्यदेशें गयां साधवी विचरी, धर्ममां तत्पर इतरी रे ॥ पू० ॥ १५ ॥ तप करे मुक्तावली रत्नावली, पाखंम संग तजे जाली रे ॥ परपाखंमनो परिचय पामी, समकितमां थइ खामी रे ॥ पू० ॥ १६ ॥ स हस्र वरस श्रावक धर्म पाल्यो, पण नवि कर्मनें गाल्यो रे ॥ मरण लही चंमेश्वरी देवी, थई अल्प ऋद्धि कहेवी रे ॥ पू० ॥ १७ ॥ वैमानिक सुख थी वंचाणी, विराधितनी कमाणी रे ॥ तेणे मुनिवंदन करीनें देवी, निज अवदात कहेवी रे ॥ पू० ॥ १८ ॥ समकित पामी मुनिवर पासें, सेवा करी चजमासें रे ॥ मुनि विचरे संघ साहाय्य करंती, विघन ते सहुनां ह रंती रे ॥ पू० ॥ १ए ॥ बही ढाल ए त्रीजे खंमें, जांखी रंग अखंमें रे ॥ पद्मविजय कहे उत्तम संगें, उत्तमता होये रंगें रे ॥ पू० ॥ २० ॥२१०॥

॥ दोहा ॥

॥ सप्रजावा देवी सुणी, रतिसुंदरी अनुरूप ॥ नर्त्ती मले एम जावती, जंजन चिंता चूप ॥ १ ॥ अरचे देवी आदरें, तुष्टमान थइ तेह ॥ सुपरें जांखे स्फुट परें, सांजलजे ससनेह ॥ २ ॥ नरपति आगल नाचतां, पूत ली दोय प्रधान ॥ उतरी थंजथी आवशे, चामर लेई आचान ॥ ३ ॥ वीं णावादकनें वींजशे, पूरवजव पति तेह ॥ वासुदेव सम वरणव्यो, इह जव जरता एह ॥ ४ ॥ जागीनें जिनराजनी, पूजा करे प्रणाम ॥ दक्षा पूजे दे

वीने, न सुणे अन्यनुं नाम ॥५॥ दासीयो दूरें करे, पुरुष न आवे पास ॥ पू रवनवपति पामवा, आदरीयो अन्यास ॥ ६ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ एणें अवसर तिहां रूबनुं रे ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन नाटकणी तिहां रे, आवी विजया नाम रें ॥ चतुर नर ॥ निज योग्य बहु परिवारशुं रे लोल ॥ आवी महाराष्ट्र देशथी रे, नृपघर पो लनें गम रे ॥ च० ॥ चारीनें नीर मूके तदा रे लोल ॥१॥ नाटकें जींते मुजनें रे, दासी थाउं तास रे ॥ च० ॥ नहीं तो तस दासी करुं रे लोल ॥ एह प्र तिज्ञा माहरी रे, उद्घोषणा करे खास रे ॥ च० ॥ नृप पण पडह वजाव तो रे लोल ॥ २ ॥ पण नवि कोइ परगट थयो रे, नगरमां जीतणहार रे ॥ ॥ च० ॥ राय विषाद लई करी रे लोल ॥ चिंतवे मुज पुरमां नहीं रे, कोई क लानंमार रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी ते जाणीनें रे लोल ॥ ३ ॥ तातनो खेद निवारवा रे, कहे जीतुं एह नारी रे ॥ च० ॥ पण नरपरखदमां नही रे लोल ॥ नृप कहे नर दूरें रहे रे, तव सा करे अंगीकार रे ॥ च० ॥ दिव स वरावी घरें गइ रे लोल ॥ ४ ॥ उक्त दिनें नरपति हवे रे, विजया तेडा वे तब रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी नृप आणथी रे लोल ॥ बेसी प्रवर सुखास नें रे, उपकरण नृत्य सब रें ॥ च० ॥ दासीयो नर दूरें करे रे लोल ॥५॥ बहु परिवारें परवरी रे, पण चित्त चिंतवे एम रें ॥ च० ॥ मुज नाटकने सारखी रे लोल ॥ वीणावादिका कोइ नहीं रे, तेणें करशुं कहो केम रे ॥ च० ॥ श्रीविलास चोहटें रह्या रे लोल ॥ ६ ॥ देखी अचरज पामी नें रे, पूछे कोइकनें वात रे ॥ च० ॥ ते पण सवि मांमी कहे रे लोल ॥ ना टक जोवा कौतुकी रे, पण नरथी न जवात रे ॥ च० ॥ रूप करे तव नारीनुं रे लोल ॥ ७ ॥ मनगमती वीणा तदा रे, मागी लाव्यो कोइ पास रे ॥ च० ॥ तेह पेटकमांहे नली रे लोल ॥ राय सनामां ते गई रे, धर ती मन उल्लास रे ॥ च० ॥ थोडी सनायें नृप उपविशे रे लोल ॥ ८ ॥ कौ तुक जोनारा जिके रे, ते नर राख्या दूर रे ॥ च० ॥ विजयानें नृप आणा करे रे लोल ॥ विजयायें नाटक मांमियुं रे, नाना करणादि पूर रे ॥ च० ॥ गीत वाजित्रशुं मेलवी रे लोल ॥ ए ॥ रीऊवे ते सघली सना रे, वंशनल्ला ग्रें नाच रे ॥ च० ॥ असि छुरिकाग्रें तेम वली रे लोल ॥ तंडुलपुंजें सूची ववी रे, कपर फूलनो ताच रे ॥ च० ॥ नाटक कर्युं तेह कपरें रे लोल ॥

दाय रे ॥ सूअरणी उंदरडी दुःख लहेती, नार घणो तिहां वहेती रे ॥ पू० ॥ ८ ॥ कुरूपीने कडुई वाणी, योनिरोगें अकुलाणी रे ॥ कोढरोग हीनांगनें विकला, निकलानें वली डकुला रे ॥ पू० ॥ ए ॥ दुष्ट जीवित अल्पायु पामे. पुत्र वियोग सुख वामे रे ॥ कुशील कर्म किमे नवी तूटे, न वलव दुःख नवि त्रूटे रे ॥ पू० ॥ १० ॥ वात सुणी ते नरकथी बीहीनो. सा धवी वयणें जीनी रे ॥ स्थिर धर्म शीलें थइ बोले, नावे कोइ तुम तोलें रे ॥ पू० ॥ ११ ॥ दुर्गति पडती मुजनें राखी, जिनवचनामृत लाखी रे ॥ दुष्टबोध विपनो कस्यो नाश, न पडुं हवे कोइ पास रे ॥ पू० ॥ १२ ॥ ए णी परें कहीनें प्रणमो पाया, निजघर मांहे आया रे ॥ वली सावित्री ता स बोलावे, तेहनें कहे इण रावें रे ॥ पू० ॥ १३ ॥ हवे हुं नीच आचार न सेवुं, मत कहे मुजनें एहवुं रे ॥ जो ए वात कहीश हवे मुजनें, दुःख दे वरावीश तुजनें रे ॥ पू० ॥ १४ ॥ नंदिनी त्रातथी बीहीती नासे, गइ निज पुत्रनी पासें रे ॥ अन्यदेशें गयां साधवी विचरी, धर्ममां तत्पर इतरी रे ॥ पू० ॥ १५ ॥ तप करे मुक्तावली रत्नावली, पाखंम संग तजे जाली रे ॥ परपाखंमनो परिचय पामी, समकितमां थइ खामी रे ॥ पू० ॥ १६ ॥ स हस्र वरस श्रावक धर्म पाल्यो, पण नवि कर्मनें गाल्यो रे ॥ मरण लही चंडेश्वरी देवी, थई अल्प रूद्धि कहेवी रे ॥ पू० ॥ १७ ॥ वैमानिक सुख थी वंचाणी, विराधितनी कमाणी रे ॥ तेणे मुनिवंदन करीनें देवी, निज अवदात कहेवी रे ॥ पू० ॥ १८ ॥ समकित पामी मुनिवर पासें, सेवा करी चउमासें रे ॥ मुनि विचरे संघ साहाय्य करंती, विघन ते सहुनां ह रंती रे ॥ पू० ॥ १ए ॥ बही ढाल ए त्रीजे खंमें, जांखी रंग अखंमें रे ॥ पद्मविजय कहे उत्तम संगें, उत्तमता होये रंगें रे ॥ पू० ॥ २० ॥२१०॥

॥ दोहा ॥

॥ सप्रजावा देवी सुणी, रतिसुंदरी अनुरूप ॥ जर्ता मले एम जावती, जंजन चिंता जूप ॥ १ ॥ अरचे देवी आदरें, तुष्टमान थइ तेह ॥ सुपरें जांखे स्फुट परें, सांजलजे ससनेह ॥ २ ॥ नरपति आगल नाचतां, पूत ली दोय प्रधान ॥ उतरी थंजथी आवशे, चामर लेई आचान ॥ ३ ॥ वीं णवादकनें वींजशे, पूरवजव पति तेह ॥ वासुदेव सम वरणव्यो, इह जव जरता एह ॥ ४ ॥ जागीनें जिनराजनी, पूजा करे प्रणाम ॥ दक्षा पूजे दे

॥ च० ॥ पूरव नवना रागथी रे लोल ॥ २१ ॥ नारी रूप धरी करी रे, वेठी तस घर बार रे ॥ च० ॥ दासीयो देखीने उलखी रे लोल ॥ रतिसुंदरीनें व धामणी रे, दीधी तव अलंकार रे ॥ च० ॥ बहु मूला दीये दासीनें रे लोल ॥ ॥ २२ ॥ साहामी जइ रतिसुंदरी रे, लागी तेहने पाय रे ॥ च० ॥ ऊठा वे बहु हर्षथी रे लोल ॥ कुशल छे तुजनें हे सखी रे, माहारी जीवितदा य रे ॥ च० ॥ अनुकंपा करी माहरी रे लोल ॥ २३ ॥ चालो घरमांहे हवे रे, लावी ते घरमांह रे ॥ च० ॥ पल्यंकें वेसारीनें रे लोल ॥ धर्म शास्त्र कला तणा रे, करे विनोद उत्साह रे ॥ च० ॥ निज हस्तें न्हवरावती रे लोल ॥ २४ ॥ अमृत सम भुंजाविनें रे, पोतें वावरे आहार रे ॥ च० ॥ भक्तियें निजघर राखती रे लोल ॥ ते पण पूर्वमोहें करी रे,रही हवें बिहु नें प्यार रे ॥ च० ॥ दिन दिन अधिकेरो धरे रे लोल ॥ २५ ॥ सातमी त्री जा खंडमां रे, पद्मविजयें कही ढाल रे ॥ च० ॥ श्रीजयानंदना रासमां रे लोल ॥ धर्म काम अर्थ शास्त्रनी रें, वातो करे सुरसाल रें ॥ च० ॥ पूरव नवना प्रेमथी रे लोल ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ २४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ बहुदिन काढे एम बिहु, रतिसुंदरी सुप्रसन्न ॥ सामुद्रिक साचुं लहे, एम चिंते एक दिन्न ॥ १ ॥ लक्षण जोतां हुं लखुं, चक्री सम छे चेन ॥ ना रीपणे तो नवि होये, जाची छे वली जैन ॥ २ ॥ गति चेष्टा स्वर मुख गु णा, पुरुष योग्य परधान ॥ कोइक कारणथी कर्युं, नारी रूप निदान ॥३॥ एम निश्चय करी आखती, स्मेरमुखी ससनेह ॥ जाणुं हुं जुगतें करी, तहत्त करी सुणो तेह ॥ ४ ॥ देवी वयणें दाखीयें, पूरव नवपति प्रेम ॥ कला दे खावीय कारमो, कृत्रिम रूपें केम ॥ ५ ॥ अनुग्रह कीजें अम नणी, स्वाना विक थाउ स्वामि, स्नेहथकी साचुं कहे, प्रियानो आग्रह पामि ॥ ६ ॥ इइ स्मरथी अधिक श्री, देखी तास देदार ॥ रोमांचित रमणी थई, आनंद अंग अपार ॥ ७ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ प्रेमनां वादल वरश्यां दाहाडा सोहिला॥ ए देशी ॥

॥ आज आनंद थयो, पूरवनव पति मलियो धन्य दिन आजनो ॥ ए आंकणी ॥ आज पूरवपुन्य विनव फलियो, अणचिंत्यो चिंतामणि मलियो ॥ आ० ॥ कहे श्रीजयानंद सुणो नारी, तुज सौनाग्यता वावडी सारी ॥

॥१०॥ नाटक नाटकें नृप दीये रे, दान अने बहुमान रे ॥च०॥ नाटक करतां तेहनें रे लोल ॥ भ्रू नख अंगुलि भंगना रे, विपरीत थयां तेणें थान रे ॥ ॥ च० ॥ रतिसुंदरी सहुनें दाखवे रे लोल ॥ ११ ॥ नृप आदेशें रतिसुंदरी रे, नाटक करे अद्भुत रे ॥ च० ॥ देवता पण मोही रहे रे लोल ॥ कुमर नारी वजावती रे, वीणा नृत्य आकूत रे ॥ च० ॥ ते ध्वनि श्रवण सुधा समी रे लोल ॥ १२ ॥ नाद तथाविध कहीयो रे, देवनें दुर्लभ जाण रे ॥ ॥ च० ॥ हय गय पशु पण थिर रह्यां रे लोल ॥ तो नरनुं कहेवुं किश्युं रे, नाटक पण तिणें गाण रे ॥ च० ॥ रंभा हरावती सुंदरी रे लोल ॥ ॥ १३ ॥ विजयानो भारज किश्यो रे, तिहां देवी प्रभाव रे ॥ च० ॥ मणिपूतली दोय कतरी रे लोल ॥ वींजे सवीणा नारीनें रे, सहु लह्या विस्मय ताव रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी चित्त चिंतवे रे लोल ॥ १४ ॥ देवी कह्युं ते सवि मल्युं रे, पण भरता केम नारी रे ॥ च० ॥ माया इहां कांइ संभवे रे लोल ॥ अथवा जाणशुं आगलें रे, भर्त्तानो निरधार रे ॥ च० ॥ पण राखवी पासें सही रे लोल ॥ १५ ॥ पद्म तंतु ऊपर करे रे, विजया नाटक सार रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी तव नाचती रे लोल ॥ लूता तंतु ऊपर सही रे, जींती ए निरधार रे ॥ च० ॥ जय जय रव परगट थयो रे लोल ॥ १६ ॥ रतिमाला नृप आणथी रे, करे उत्सव सुप्रकार रे ॥ च० ॥ निजघर लावे पुत्रीनें रें लोल ॥ रतिसुंदरी तव मोकले रे, तेडवा कुंवर नारि रे ॥ च० ॥ निज प्रतिहारियो मानथी रे लोल ॥ १७ ॥ केटली भूमि आविया रे, नारीरूपें कुमार रे ॥ च० ॥ नागरूपें तेआवीने रे लोल ॥ आव्या स्वरूपें निजघरें रे, हवे विजया जे नारि रे ॥ च० ॥ दासी थई दंभ धारणी रे लोल ॥ १८ ॥ दासीयो खोले कुमारनें रे, पण नवि दीठी ते नारि रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरीनें ते सवि कह्युं रे लोल ॥ सांभली दुःखणी ते थई रे, करे प्रतिज्ञा सार रे ॥ च० ॥ आरतध्यानें ते पडी रे लोल ॥ ॥१९॥ न मले ए नारी जिहां लगें रे, तिहां लगें न करुं आहार रे ॥च०॥ आकुल व्याकुल सहु थयां रे लोल ॥ रतिमाला सुख बहु कहे रे, न करे आहार जेवार रे ॥ च० ॥ दासीयो नृपने ते जइ कहे रे लोल ॥ २० ॥ त्रणदिन नगर शोधावीयुं रे, न जडी कोई उपाय रे ॥ च० ॥ कुमर हवे चोथे दिनें रे लोल ॥ एकांतें मुज रागिणी रे, आहार विना मरी जाय रे

॥ च० ॥ पूरव जवना रागथी रे लोल ॥ २१ ॥ नारी रूप धरी करी रे, बेठी तस घर बार रे ॥ च० ॥ दासीयो देखीने उलखी रे लोल ॥ रतिसुंदरीनें व धामणी रे, दीधी तव अलंकार रे ॥ च० ॥ बहु मूला दीये दासीनें रे लोल ॥ ॥ २२ ॥ साहामी जइ रतिसुंदरी रे, लागी तेहने पाय रे ॥ च० ॥ जगा वे बहु हर्षथी रे लोल ॥ कुशल ठे तुजनें हे सखी रे, माहारी जीवितदा य रे ॥ च० ॥ अनुकंपा करी माहरी रे लोल ॥ २३ ॥ चालो घरमांहे हवे रे, लावी ते घरमांह रे ॥ च० ॥ पल्यंकें बेसारीनें रे लोल ॥ धर्म शास्त्र कला तणा रे, करे विनोद उत्साह रे ॥ च० ॥ निज हस्तें न्हवरावती रे लोल ॥ २४ ॥ अमृत सम जुंजाविनें रे, पोतें वावरे आहार रे ॥ च० ॥ जक्तियें निजघर राखती रे लोल ॥ ते पण पूर्वमोहें करी रे,रही हवे बिहु नें प्यार रे ॥ च० ॥ दिन दिन अधिकेरो धरे रे लोल ॥ २५ ॥ सातमी त्री जा खंमनमां रे, पद्मविजयें कही ढाल रे ॥ च० ॥ श्रीजयानंदना रासमां रे लोल ॥ धर्म काम अर्थ शास्त्रनी रे, वातो करे सुरसाल रे ॥ च० ॥ पूरव जवना प्रेमथी रे लोल ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ २४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ बहुदिन काढे एम बिहु, रतिसुंदरी सुप्रसन्न ॥ सामुद्रिक साचुं लहे, एम चिंते एक दिन्न ॥ १ ॥ लक्षण जोतां हुं लखुं, चक्री सम ठे चेन ॥ ना रीपणे तो नवि होये, जाची ठे वली जैन ॥ २ ॥ गति चेष्टा स्वर मुख गु ण, पुरुप योग्य परधान ॥ कोइक कारणथी कखुं, नारी रूप निदान ॥३॥ एम निश्चय करी आखती, स्मेरमुखी ससनेह ॥ जाणुं हुं जुगतें करी,तद्दत्त करी सुणो तेह ॥ ४ ॥ देवी वयणें दाखीयें,पूरव जवपति प्रेम ॥ कला दे खावीय कारमी, कृत्रिम रूपें केम ॥ ५ ॥ अनुग्रह कीजें अम जणी,स्वाजा विक थाउ स्वामि, स्नेहथकी साचुं कहे, प्रियानो आग्रह पामि ॥ ६ ॥ इंद्र स्मरथी अधिक श्री, देखी तास देदार ॥ रोमांचित रमणी थई, आनंद अंग अपार ॥ ७ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ प्रेमनां वादल वरश्यां दाहाडा सोहिला॥ ए देशी ॥

॥ आज आनंद थयो, पूरवजव पति मलियो धन्य दिन आजनो ॥ ए आंकणी ॥ आज पूरवपुण्य विजव फलियो, अणचिंत्यो चिंतामणि मलियो ॥ आ० ॥ कहे श्रीजयानंद सुणो नारी, तुज सौजाग्यता वावडी सारी ॥

॥१०॥ नाटक नाटकें नृप दीये रे, दान अने बहुमान रे ॥च०॥ नाटक करतां तेहनें रे लोल ॥ भ्रू नख अंगुलि भंगनां रे, विपरीत थयां तेणें थान रे ॥ ॥ च० ॥ रतिसुंदरी सहुनें दाखवे रे लोल ॥ ११ ॥ नृप आदेशें रतिसुंदरी रे, नाटक करे अद्भुत रे ॥ च० ॥ देवता पण मोही रहे रे लोल ॥ कुमर नारी वजावती रे, वीणा नृत्य आकृत रे ॥ च० ॥ ते ध्वनि श्रवण सुधा समी रे लोल ॥ १२ ॥ नाद तथाविध कलीयो रे, देवनें डुर्लन जाण रे ॥ ॥ च० ॥ हय गय पशु पण थिर रह्यां रे लोल ॥ तो नरनुं कहेवुं किश्युं रे, नाटक पण तिणें गण रे ॥ च० ॥ रंना हरावती सुंदरी रे लोल ॥ ॥ १३ ॥ विजयानो नारज किश्यो रे, तिहां देवी प्रनाव रे ॥ च० ॥ मणिपूतली दोय कतरी रे लोल ॥ वींजे सवीणा नारीनें रे, सहु लह्या विस्मय ताव रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी चित्त चिंतवे रे लोल ॥ १४ ॥ देवी कह्युं ते सवि मल्युं रे, पण नरता केम नारी रे ॥ च० ॥ माया इहां कांइ संनवे रे लोल ॥ अथवा जाणशुं आगलें रे, नर्त्तानो निरधार रे ॥ च० ॥ पण राखवी पासें सही रे लोल ॥ १५ ॥ पद्म तंतु ऊपर करे रे, विजया नाटक सार रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरी तव नाचती रे लोल ॥ लूता तंतु ऊपर सही रे, जींती ए निरधार रे ॥ च० ॥ जय जय रव परगट थयो रे लोल ॥ १६ ॥ रतिमाला नृप आणथी रे, करे उत्सव सुप्रकार रे ॥ च० ॥ निजघर लावे पुत्रीनें रे लोल ॥ रतिसुंदरी तव मोकले रे, तेडवा कुंवर नारि रे ॥ च० ॥ निज प्रतिहारियो मानथी रे लोल ॥ १७ ॥ केटली नूमि आविया रे, नारीरूपें कुमार रे ॥ च० ॥ नागरूपें तेआवीने रे लोल ॥ आव्या स्वरूपें निजघरें रे, हवे विजया जे नारि रे ॥ च० ॥ दासी थई दंन धारणी रे लोल ॥ १८ ॥ दासीयो खोले कुमारनें रे, पण नवि दीठी ते नारि रे ॥ च० ॥ रतिसुंदरीनें ते सवि कह्युं रे लोल ॥ सांजली डुःखणी ते थई रे, करे प्रतिज्ञा सार रे ॥ च० ॥ आरतध्यानें ते पडी रे लोल ॥ ॥१९॥ न मले ए नारी जिहां लगें रे, तिहां लगें न करुं आहार रे ॥च०॥ आकुल व्याकुल सहु थयां रे लोल ॥ रतिमाला मुख बहु कहे रे, न करे आहार जेवार रे ॥ च० ॥ दासीयो नृपने ते जइ कहे रे लोल ॥ २० ॥ त्रणदिन नगर शोधावीयुं रे, न जडी कोई उपाय रे ॥ च० ॥ कुमर हवे चोथे दिनें रे लोल ॥ एकांतें मुज रागिणी रे, आहार विना मरी जाय रे

॥ च० ॥ पूरव नवना रागथी रे लोल ॥ २१ ॥ नारी रूप धरी करी रे, बेठी तस घर बार रे ॥ च० ॥ दासीयो देखीने उलखी रे लोल ॥ रतिसुंदरीनें व धामणी रे, दीधी तव अलंकार रे ॥ च० ॥ बहु मूला दीये दासीनें रे लोल ॥ ॥ २२ ॥ साहामी जइ रतिसुंदरी रे, लागी तेहने पाय रे ॥ च० ॥ कवा वे बहु हर्षथी रे लोल ॥ कुशल ठे तुजनें हे सखी रे, माहारी जीवितदा य रे ॥ च० ॥ अनुकंपा करी माह्री रे लोल ॥ २३ ॥ चालो घरमांहे हवे रे, लावी ते घरमांह रे ॥ च० ॥ पल्यंकें बेसारीनें रे लोल ॥ धर्म शास्त्र कला तणा रे, करे विनोद उत्साह रे ॥ च० ॥ निज हस्तें न्हवरावती रे लोल ॥ २४ ॥ अमृत सम नुंजाविनें रे, पोतें वावरे आहार रे ॥ च० ॥ नक्तियें निजघर राखती रे लोल ॥ ते पण पूर्वमोहें करी रे,रही हवे बिहु नें प्यार रे ॥ च० ॥ दिन दिन अधिकेरो धरे रे लोल ॥ २५॥ सातमी त्रीजा खंममां रे, पद्मविजयें कही ढाल रे ॥ च० ॥ श्रीजयानंदना रासमां रे लोल ॥ धर्म काम अर्थ शास्त्रनी रे, वातो करे सुरसाल रे ॥ च० ॥ पूरव नवना प्रेमथी रे लोल ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ २४३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ बहुदिन काढे एम बिहु, रतिसुंदरी सुप्रसन्न ॥ सामुद्रिक साचुं लहे, एम चिंते एक दिन्न ॥ १ ॥ लक्षण जोतां हुं लखुं, चक्री सम ठे चेन ॥ नारीपणे तो नवि होये,जाची ठे वली जैन ॥ २ ॥ गति चेष्टा स्वर मुख गुणा, पुरुष योग्य परधान ॥ कोइक कारणथी कखुं, नारी रूप निदान ॥३॥ एम निश्चय करी आखती, स्मेरमुखी ससनेह ॥ जाणुं हुं जुगतें करी,तहत्त करी सुणो तेह ॥ ४ ॥ देवी वयणें दाखीयें,पूरव नवपति प्रेम ॥ कला देखावीय कारमी, कृत्रिम रूपें केम ॥ ५ ॥ अनुग्रह कीजें अम नणी,स्वानाविक थाउ स्वामि, स्नेहथकी साचुं कहे, प्रियानो आग्रह पामि ॥ ६ ॥ इंद्र स्मरथी अधिक श्री, देखी तास देदार ॥ रोमांचित रमणी थई, आनंद अंग अपार ॥ ७ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ प्रेमनां वादल वरश्यां दाहाडा सोहिला॥ ए देशी ॥

॥ आज आनंद थयो, पूरवनव पति मलियो धन्य दिन आजनो ॥ ए आंकणी ॥ आज पूरवपुण्य बिनव फलियो, अणचिंत्यो चिंतामणि मलियो ॥ आ० ॥ कहे श्रीजयानंद सुणो नारी, तुज सौनाग्यता वावडी सारी ॥

॥ आ० ॥ १ ॥ मुज मन कल हंस तिहां रमियो, नवि पंकिलजल मुज नें गमियो ॥ आ० ॥ रतिमाला दासी मुखें जाणी, आवी जूंछणा करती उजाणी ॥ आ० ॥ २ ॥ हवें जइ दासी कहे राय, तुम पुत्री पति आज प्रगटाय ॥ आ० ॥ रायें तस दीधुं बहुदान, वली मोकले तेडवा प रधान ॥ आ० ॥ ३ ॥ कुमर पण नृपति कनें जावे, वही आलिंगन क रे नृप नावें ॥ आ० ॥ कांइ प्रेममां अंतर नवि राखे, तो पण वयणें एणी परें जांखे ॥आ०॥४॥ तुज रूप अनुत्तर हुं देखी, थयो लीन घणुं सवि क वेखी ॥ आ० ॥ तुम सेवा कहो शी शी करीयें, तुम सुजगता अम मनडुं हरीयें ॥ आ० ॥ ५ ॥ तुम कुल पूछणनुं नहीं काम, नवि देवी वाणी क हे वाम ॥ आ० ॥ पण जनमें पवित्र करी नयरी, तुमें ते कहो अमनें सवि विवरी ॥ आ० ॥ ६ ॥ हुं विजयपुरी नयरीवासी, कहे कुमर सांज लो उल्लासी ॥ आ० ॥ कौतुक जोवानें नीसरीयो, देश गाम गाम फर्दे न रीयो ॥ आ० ॥ ७ ॥ फरतो फरतो तुम्ह पुर आव्यो, इत्यादिक सर्वे संज लाव्यो ॥ आ० ॥ हवे स्नान जोजन साथें राय, करे हर्ष हियामां नवि माय ॥ आ० ॥ ८ ॥ कहे नृप ए मुज कन्या परणो, एहनें ए संधा अन्य नवि वरणो ॥ आ० ॥ कुंवर कहे जस कुल नवि जाणो, तस कन्या देवा श्यो टाणो ॥ आ०॥ ए ॥ कहे नृप एक तो देवी वाणी, वली प्रकृति आ कृति गुणनी खाणी ॥ आ० ॥ एम कुल जाण्युं अमें तुम तणुं, तमें वचन प्रमाणो अम तणुं ॥ आ० ॥ १० ॥ तव मौन कुमर करे ज्यारें, हवे लग न जोवरावे नृप त्यारें ॥ आ० ॥ परणावे नृप रतिसुंदरी, गज घोडा दिये मनोहार करी ॥ आ०॥११॥ तेहमां कुमार न ले कांय, तव आग्रह अति करीनें राय ॥ आ० ॥ आठ नगर आपे घणुं मनोहार, ते आपे पियानें ने ह धार ॥ आ० ॥ १२ ॥ रतिसुंदरी सोंपे मातनें, तस चिंताना अ वदातनें ॥ आ० ॥ रहे नृपति दीधा आवासें, सुख जोगवे विषयनां उल्ला सें ॥ आ० ॥ १३ ॥ कदी वापी वनमां करे क्रीडा, नवि देवे कोई जननें पीडा ॥ आ० ॥ कदी नृत्य करावे प्रिया पासें, पोतें वाद्य वजावे सुविला सें ॥ आ० ॥ १४ ॥ करे देवगुरुना गुणग्राम, याचकनें बहु आपे दाम ॥ ॥ आ० ॥ दीनादिकनें दीये अति दान, लहे कीर्त्ति धर्म ते अप्रमाण ॥ ॥ आ० ॥ १५ ॥ जिमे देव गुरुनी पूज करी, जिमे दान सुपात्रें तेह ध

री ॥ आ० ॥ करी उरडी देहरासर मांहिं, गोपवी प्रतिमा उषधि त्यांहिं ॥ ॥ आ० ॥ १६ ॥ तालुं देइ नारीनें दीये कूंची, सा आनूपणमां गुप्त मूची ॥ आ० ॥ निज जीवितनी परें रखवाले, ते पण नित्य पांचशें रत्न आले ॥ आ० ॥ १७ ॥ निज नारीनें रत्न दीये तेह, तेतो एकजीव मानुं दो देह ॥ आ० ॥ निज पुत्रीप्रेमें रतिमाला, नित्य आवे हर्षे सुकुमाला ॥ आ० ॥ ॥ १७ ॥ पुर आठ तणुं जे इव्य आवे, आपे निज पुत्रीनें चावें ॥ आ० ॥ एकदिन चिंते विस्मय पामी, नृप दीधा धननो ए नहीं कामी ॥ आ० ॥ ॥ १ए ॥ पुर आठना धननुं न नाम ग्रहे, मागवुं तो ते दूरें रहे ॥ आ० ॥ दान नोग करे सुरनी परें, एह अचरिज वात हृदय धरे ॥ आ० ॥ २० ॥ धन आगम मारग नवि लहुं, ए वात एहनें पूछुं सहु ॥ आ० ॥ पूछे श्रीजयनें रतिमाला, तव श्रीजय बोले रढीयाला ॥ आ० ॥ २१ ॥ ते कहे मुज तात दीधुं धन्न, में पण उपराज्युं बहु दिन्न ॥ आ० ॥ ते वात सुणी मानी नहीं, तेणीयें निज पुत्रीनें कही ॥ आ० ॥ २२ ॥ धन किहांथी काढे ठे ए घणुं, माहारुं ए टाल कौतुक पणुं ॥ आ० ॥ पुत्री कहे प्रश्ननुं शुं काम, इछित पूरे ठे अनिराम ॥ आ० ॥ २३ ॥ त्रीजे खंमें आठमी ढाल, कहे पद्मविजय सुणो सुरसाल ॥ आ० ॥ हवे वेश्या श्यो परपंच करे, निज जाति देखावे एणी परें ॥ आ० ॥ २४ ॥ सर्व गाथा ॥ २७४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ पुत्रीनें पण्यांगना, क्रोध करी कहे एम ॥ एमहीज में उदरें धरी,कौतुक न कहे केम ॥ १ ॥ सरल घणुं रतिसुंदरी, आखे दाक्षिण आण ॥ जाणुं छुं ते जल्पियें, सांनल मात सुजाण ॥ २ ॥ देहेरासरथी दीपतां, रत्न तणो लेइ राशि ॥ तालुं देई निसरे तथा, कूंची दे मुज सकाश ॥ ३ ॥ वावरतां जे वाधीयां, आपे मुजने आवि ॥ वीजुं कांइ बूफुं नहीं, जुगतो जेह जमाव ॥ ४ ॥ देहरासरमां दाखीयो, एणीयें एह उपाय ॥ पुत्रीनें एम प्रेमशुं, चिंती कहे चित्त लाय ॥ ५ ॥

॥ ढाल नवमी ॥ बीजुं पापनुं स्थान ॥ ए देशी ॥

॥ देरासर देखडाव, ए मुज कोम पूराव ॥ आज हो रतिसुंदरी कहे मत बोलो तुमें मातजी रे ॥ १ ॥ मरणांतें पण एह, वात थाये कहो केह ॥ ॥ आ० ॥ वेश्या रे कहे तो मुज कूंची आपीयें रे ॥ २ ॥ एह मनोरथ तु

॥ आ० ॥ १ ॥ मुज मन कल हंस तिहां रमियो, नवि पंकिलजल मुज नें गमियो ॥ आ० ॥ रतिमाला दासी मुखें जाणी, आवी लूंछणा करती उजाणी ॥ आ० ॥ २ ॥ हवें जइ दासी कहे राय, तुम पुत्री पति आज प्रगटाय ॥ आ० ॥ रायें तस दीधुं बहुदान, वली मोकले तेडवा प रधान ॥ आ० ॥ ३ ॥ कुमर पण नृपति कनें जावे, उठी आलिंगन क रे नृप नावें ॥ आ० ॥ कांइ प्रेममां अंतर नवि राखे, तो पण वयणें एणी परें नांखे ॥आ०॥४॥ तुज रूप अनुत्तर हुं देखी, थयो लीन घणुं सवि क वेखी ॥ आ० ॥ तुम सेवा कहो शी शी करीयें, तुम सुनगता अम मनडुं हरीयें ॥ आ० ॥ ५ ॥ तुम कुल पूछणनुं नहीं काम, नवि देवी वाणी क हे वाम ॥ आ० ॥ पण जनमें पवित्र करी नयरी, तुमें ते कहो अमनें सवि विवरी ॥ आ० ॥ ६ ॥ हुं विजयपुरी नयरीवासी, कहे कुमर सांन लो उल्लासी ॥ आ० ॥ कौतुक जोवानें नीसरीयो, देश गाम गाम फर्यो न रीयो ॥ आ० ॥ ७ ॥ फरतो फरतो तुम्ह पुर आव्यो, इत्यादिक सर्व संन लाव्यो ॥ आ० ॥ हवे स्नान नोजन साथें राय, करे हर्ष हियामां नवि माय ॥ आ० ॥ ८ ॥ कहे नृप ए मुज कन्या परणो, एहनें ए संधा अन्य नवि वरणो ॥ आ० ॥ कुंवर कहे जस कुल नवि जाणो, तस कन्या देवा श्यो टाणो ॥ आ०॥ ए ॥ कहे नृप एक तो देवी वाणी, वली प्रकृति आ कृति गुणनी खाणी ॥ आ० ॥ एम कुल जाण्युं अमें तुम तणुं, तमें वचन प्रमाणो अम तणुं ॥ आ० ॥ १० ॥ तव मौन कुमर करे ज्यारें, हवे लग न जोवरावे नृप त्यारें ॥ आ० ॥ परणावे नृप रतिसुंदरी, गज घोडा दिये मनोहार करी ॥ आ०॥ ११॥ तेहमां कुमार न ले कांय, तव आग्रह अति करीनें राय ॥ आ० ॥ आठ नगर आपे घणुं मनोहार, ते आपे पियानें ने ह धार ॥ आ० ॥ १२ ॥ रतिसुंदरी सोंपे मातने, तस चिंताना अ वदातनें ॥ आ० ॥ रहे नृपति दीधा आवासें, सुख नोगवे विषयनां उल्ला सें ॥ आ० ॥ १३ ॥ कदी वापी वनमां करे क्रीडा, नवि देवे कोई जननें पीडा ॥ आ० ॥ कदी नृत्य करावे प्रिया पासें, पोतें वाद्य वजावे सुविला सें ॥ आ० ॥ १४ ॥ करे देवगुरुना गुणग्राम, याचकनें बहु आपे दाम ॥ ॥ आ० ॥ दीनादिकनें दीये अति दान, लहे कीर्त्ति धर्म ते अप्रमाण ॥ ॥ आ० ॥ १५ ॥ जिमे देव गुरुनी पूज करी, जिमे दान सुपात्रें तेह ध

रे ॥ २४ ॥ त्रीजे खंभें ढाल, नवमी कही सुरसाल ॥ आ० ॥ पद्मविजयें ह वे सांनलो वात सोहामणी रे ॥ २५ ॥ सर्वगाथा ॥ ३०४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एक दिन नारीनें एम कहे, मूकी कूंची मन आण ॥ जननी तुज दे खे यथा, जूवे ते मनमां जाण ॥ १ ॥ दूर रही तुं देखजे, जाणे नही ए जे म ॥ तेमज करे ते ततक्षणें, प्रेयसी आणी प्रेम ॥२॥ रतिमाला जुवे रंग शुं, ध्याये देखी ध्यान ॥ वमणां रत्न वनावशुं, लावें ए अमिलान ॥ ३ ॥ एक दिन विस्मय आणिनें, देवपूजा क्षण दाव ॥ सांनले वात सोहामणी, नणे जे औषधि नाव ॥ ४ ॥ पूरव औषधि पासथी, नवि लह्यां रत्न नि दान ॥ विधि साध विण विफल ते, एम नवि लहे अज्ञान ॥ ५ ॥ उताव लमां में अवर, औषधि लीधी एह ॥ वीजी साची वाहिरें,रही न दीठी रेह ॥ ६ ॥ अर्थथकी आपे अधिक, एहनें औषधि एह ॥ अवसर पामी एहनो, वदलुं विंडुयें नेह ॥ ७ ॥ चिंतामणि पामी चतुर,कांकरे तूसे कोण ॥ अ वसर पामी एकदिनें, ग्रहे ते मूकी गौण ॥ ८ ॥ हर्षित थया कुंवर हवे, चित्तमां करे विचार ॥ वाक्पटु औषधि वालशुं, करि उपाय किवार ॥ ए ॥

॥ ढाल दशमी ॥ लाल रंगावो वरनां मोलीयां ॥ ए देशी ॥

॥ हवे गणिका औषधि पूजीनें, रत्न मागे पण नवि आपे रे ॥ नवि वो ले साधन विधि विना, पण पाढी ठामें न थापे रे ॥ १ ॥ नवि पुण्य विना फल पामीयें ॥ ए आंकणी ॥ करे खेद घणो विधि जाणवा, नवि वदन राग पलटावे रे ॥ करे सासू जमाइ गोठडी, धूरतें धूरत केम फावे रे ॥ न० ॥२॥ प्रीतें तिहां करतां वातडी, कुंवरनें गणिका पूछे रे ॥ वत्स शुं शुं विज्ञान जा णो तुमें, कहे कुमर काम तुम शुं छे रे ॥ न० ॥ ३ ॥ जाणुं विविध प्रकार नी औषधि, वली सकल कला पण जाणुं रे ॥ विज्ञान विविध लहुं मंत्रनें, कुरूपनें रूप देउं नाणुं रे ॥ न० ॥ ४ ॥ रूप होये तो अधिकेरूं करुं, रूडा विधिथी जो आराधे रे ॥ सौनाग्यनें यौवन नित्य रहे, मन इच्छित वरनें साधे रे ॥ न० ॥ ५ ॥ सासू कहे मुज एहवी करो, जेहथी नूपति मुज मा ने रे ॥ जेम मान मडे सवि शोक्यनुं, कोइनें न बोलावे शानें रे ॥ न०॥६॥ कहे कुमर मूंमावो शिर तुमें, वदनें वली मशिका लींपो रे ॥ उपवास करो हैयडे धरी, वली मंत्र देउं ते जंपो रे ॥ न० ॥ ७ ॥ रुरु वुरु रुरु वुरु वुरु वु

ज, सीफे न जीवतां मुज ॥ आ० ॥ रतिसुंदरी कहे तूसो अथवा रूसजो रे॥ ३ ॥ ड्रोह न करुं नरतार, प्राण सोंप्यां तस सार ॥ आ० ॥ रतिमाला यें निश्चय जाण्यो पुत्रीनो रे ॥ ४ ॥ कपटें देई विश्वास, एक दिन सुरा चं ड्रहास ॥ आ० ॥ पाई रे दधिघोलमां तव मूर्छा लही रे ॥ ५ ॥ सूती प ल्यंकें तेह, जोई पुत्री देह ॥ आ० ॥ लाधी रे कूंची तव तालुं कघाडीयुं रे ॥ ६ ॥ जूवे देहरासर जाम,औषधि दीठी ताम ॥ आ० ॥ रत्नदायक जा णीनें लेइ पाठी वली रे ॥ ७ ॥ तालूं देइ तह, कूंची मूके हती जह ॥ ॥ आ० ॥ चेतना लही जागी रतिसुंदरी तेटले रे ॥ ८ ॥ सघलुं दीठुं तेम, शंका न आवी एम ॥ आ० ॥ धूतारे कोण नवि वंचाये मानवी रे ॥ ए ॥ बीजे दिनें ते कुमार, पूजा करीनें प्यार ॥ आ० ॥ औषधि पूजवा जूवे तो नवि लाधी तदा रे ॥ १० ॥ तव पूछे निज नारि,चित्तमां शंका धारि॥आ०॥ चतुरा रे चमकी तव पतिनें वीनवे रे ॥ ११ ॥ नहीं कोइनो परवेश, कूंची न ठवुं अन्यदेश ॥ आ० ॥ मात दीधी सुरा काल तेणें हुं अचेत थई रे ॥ १२ ॥ तेणें जाणुं ठल मात, बीजी न जाणुं वात ॥ आ० ॥ इंगित आ कारें करी ए निश्चय हशें रे ॥ १३ ॥ प्रश्नादिक सवि वाच, कही देखाडी साच ॥ आ० ॥ कुमरें पण निश्चय कस्यो सासुयें हरी रे ॥ १४ ॥ सासूनें कहे वात, आ श्या छे अवदात ॥ आ० ॥ गणिका रे कहे कान ढांकीने एणी परें रे ॥ १५ ॥ आपवुं तो रह्युं दूर, कलंक चढावो नूर ॥ आ० ॥ राजा नें वली तुमें मुज इष्टकारी ठतां रे ॥ १६ ॥ चोरी करुं शे काम, मुज परिवार पण नाम ॥ आ० ॥ चोरीनुं नवि जाणे न आवे ढूकडा रे ॥ १७ ॥ पूछो तमें निज नारि, साचवे जे रति धारि ॥ आ० ॥ शंका जो होये मनमां तो टालो परी रे ॥ १८ ॥ सांजली श्रीजयानंद, चिंतवे धिक् ए मंद ॥ आ० ॥ निजपुत्री शिर दोष दिये पोतें करी रे ॥ १ए ॥ देशे न वगर उपाय,शिक्षा दे उं एणे ठाय ॥ आ० ॥ एम चिंतीनें कहे जोशुं बीजे स्थलें रे ॥ २० ॥ हर्ष लही सुणी तेह, गइ निज थानकें नेह ॥ आ० ॥ देहेरासरमां बीजे दिन कुं वर गया रे ॥ २१ ॥ ठानां सहस्र रतन्न, मूके करीनें जतन्न ॥ आ० ॥ पू जीरे जिन पट्टुवाक् औषधि पूजतो रे ॥ २२ ॥ पांचमी औषधि पास, मागे रत्न उल्लास ॥ आ० ॥ औषधि कहे तुं रत्न सहस ले रीजथी रे ॥ २३ ॥ ले इ रत्न हजार, निकलीयो तेवार ॥ आ० ॥ पूरव परें तालुं प्रमुख देइ करी

ता अहोनिशि केलि ॥ १ ॥ करतां क्रय विक्रय वली, पाम्या लाभ अपार ॥ सज्जनें बहु सन्मानिया, अधिकी शोभ आगार ॥ २ ॥ पूरणमासें प्रसवियो, शुभलगनें शुभ वार ॥ तिथि करण निर्दोष तेम, योग घणुं जयकार ॥ ॥ ३ ॥ वाय सुगंधी वाय ते, डुर्भिक्ष नहीं निज देश ॥ जनपद सुखिया जन सवे, वारु पहेर्या वेश ॥४ ॥ प्रात समय उज्ज्वल पखें, पुण्य प्रभावें पूत ॥ पूरवदिशि सूरय परें, शोभावे घरसूत ॥ ५ ॥

॥ ढाल अगीयारमी ॥ वारी रंग ढोलणां ॥ ए देशी ॥

॥ आवी वधामणी एहवे हो राज, शेठनें हर्ष न माय ॥ सोभागी सुत आवियो ॥ घर बाहेर बेठां थकां हो राज, आपवा धन निरमाय ॥ सो० ॥ ॥ १ ॥ खोले पण धन नहीं तदा हो राज, शेठ चिंते मनमांहि ॥ सो० ॥ दान वेला धन दोहिलुं हो राज, होय ते आपे नांहिं ॥ सो० ॥ २ ॥ आमण दूमणो ते थयो हो राज, नीचुं मुख करी शेठ ॥ सो० ॥ अंगुलीयें धरती खणे हो राज, नजर करीनें हेठ ॥ सो० ॥ ३ ॥ कीडीनगरा जेटलुं हो राज, दीठुं विवर ते ठार ॥ सो० ॥ अधिक खणे महोटुं थयुं हो राज, दीठुं सुवर्ण द्रव्यसार ॥ सो० ॥ ४ ॥ धन अनर्गल देखी करी हो राज, चिंते चित्त मझार ॥ सो० ॥ अद्भुत भाग्य ए सुत तणुं हो राज,आपुं चित्त उदार ॥ सो० ॥ ५ ॥ आपे वधामणी तेहनें हो राज, तेहमांथी धन लाख ॥ ॥ सो०॥ वस्त्र भूषण घृत गुड घणा हो राज, दरिद्र न राखे सराख ॥सो०॥ ॥ ६ ॥ दीन अनाथनें आपतो हो राज, वाजित्र वाजे गेह ॥ सो० ॥ सज्जन लावे घणां भेटणां हो राज, हर्ष न माये देह ॥ सो० ॥ ७॥धवलमंगल गाये सुंदरी हो राज, नाटक नव नव थाय ॥ सो० ॥ एम नव नव उत्सव थकी हो राज, दश दिवस वही जाय ॥ सो० ॥ ८ ॥ चंद्र सूरय दर्शन करे हो राज, छठी जागर वली होय ॥ सो० ॥ एम उत्सव थटे जे दिनें हो राज, ते ते दिन करे सोय ॥ सो० ॥ ए ॥ शेठ चिंते जे दिनथकी हो राज, आव्यो छे सुत एह ॥ सो० ॥ ते दिनथी लखमी लह्यो हो राज, मंगल माला गेह ॥ सो० ॥ १० ॥ दीनादिक संतोषिया हो राज, तोही न खूटे द्रव्य ॥ सो० ॥ द्रव्य जडयुं संभलावीयें हो राज, नृपनें तो होये भव्य ॥ ॥ सो० ॥ ११ ॥ अन्यथा राय अदत्त होये हो राज, श्रावक माटे शेठ ॥ ॥ सो० ॥ एम चिंती लेइ भेटणुं हो राज, गयो नृप पासें ठेठ ॥सो०॥ १ २॥

रु स्वाहा, तेणीयें हर्षे सहु कीधुं रे ॥ पासें आव्या संध्यायें कुमरजी, दोष जाणे वंछित सीधुं रे ॥ न० ॥ ८ ॥ बहु आमंबर देखावतो, औषधियें सू अरणी कीधी रे ॥ बांधी थांचे सांकलथी पापिणी,तें औषधि माहरी लीधी रे ॥ न० ॥ ए ॥ पुत्री शिर दोष देखावती, फल जोगव चोरी केरां रे ॥ ल्यो औषधि एम देखावती, तमें दयावंतमां धोरी रे ॥ न० ॥ १० ॥ नारी वयणथी हवे कृपा करी, मूलरूपें कीधी तास रे ॥ औषधि देइ पुत्री ज माईनें, खमावती देइ विश्वास रे ॥ न० ॥ ११ ॥ तेहुयें पण खमी राखी घरें, एक दिन हवे श्रीजयकुमार रे ॥ सासुने धर्म अरथें कहे, खमो मात तुमें पूज्यतार रे ॥ न० ॥ १२ ॥ तुमनें जे विटंबना में करी, तुम प्रति बोधननें काज रे ॥ अदत्तनुं फल इह परजवें,फुःख आपे फुर्गति राज्य रे ॥ ॥ न० ॥ १३ ॥ नरकें जइयें फुर्जाग्यता, वली दरिद्र पणुं ते आवे रे ॥ को ण इछे अदत्त एम जाणीनें, कोण अदत्त लेवानें जावे रे ॥ न० ॥ १४ ॥ प्राणनाशें अदत्त न लीजीयें, थोडुं पण इहां दृष्टांत रे ॥ लखमीपुंज जे म लखमी लह्या, सांजलजो तस वृत्तांत रे ॥ न० ॥ १५ ॥ हस्तिपुरमां राय पुरंदरु, पौलोमी नामें राणी रे, तेतो पौलोमी परें शोजती, शीलवंती चातुर जाणी रे ॥ न० ॥ १६ ॥ तिहां शेठ सुधर्मा नामथी, जिनशासन नो घणो रागी रे ॥ दयावंतनें गुरुजक्तो घणुं, धन्या गेहिनी पति अनुरा गी रे ॥ न० ॥ १७ ॥ धन क्षीण थयुं तस अन्यदा, अंतराय लाजनो आ यो रे ॥ पण श्रीअरिहंतना धर्मनें, नवि छंमे स्नेही जेम जायो रे ॥ न० ॥ ॥ १८ ॥ देवपूजानें आवश्यक प्रमुख जे, ते अंगीकर्युं नवि चूके रे ॥ एक दिन पुण्यवंत सुत सूचवे, एहवुं सुपन नारीनें ढूके रे ॥ न० ॥ १ए ॥ पद्म सरोवर पद्में अलंकर्युं, नरतारनें आवी जांखे रे ॥ शेठ पण तस अर्थ वि चारीनें, नारी आगल एम प्रकाशे रे ॥ न० ॥ २० ॥ लखमी लावण्य पुण्य वंतो वली, सुत होशे सांजली हर्षे रे ॥ रत्नखाण परें गर्ज धारती, प्रिया अंगें शोजा वर्षे रे ॥ न० ॥ २१ ॥ त्रीजे खंमें दशमी ढाल ए, कही पद्मवि जय सुरसालो रे श्रीजयानंदना रासमां, सुणतां होये मंगलमालो रे ॥ ॥ न० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ३३५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ अंगें शोजा अतिघणी, गर्जप्रजावें गेलि ॥ शेठनुं दारिद्र गयुं सवे,कर

ता अहोनिशि केलि ॥ १ ॥ करतां क्रय विक्रय वली, पाम्या लाज अपार ॥ सज्जनें बहु सन्मानिया, अधिकी शोज आगार ॥ २ ॥ पूरणमासें प्रसवियो, शुजलगनें शुज वार ॥ तिथि करण निर्दोष तेम, योग घणुं जयकार ॥ ॥ ३ ॥ वाय सुगंधी वाय ते, डुर्जिक्ष नहीं निज देश ॥ जनपद सुखिया जन सवे, वारु पहेरया वेश ॥४ ॥ प्रात समय उज्ज्वल परखें, पुण्य प्रजावें पूत ॥ पूरवदिशि सूरय परें, शोजावे घरसूत ॥ ५ ॥

॥ ढाल अगीयारमी ॥ वारी रंग ढोलणां ॥ ए देशी ॥

॥ आवी वधामणी एहवे हो राज, शेठनें हर्ष न माय ॥ सोजागी सुत आवियो ॥ घर बाहेर बेगं थकां हो राज, आपवा धन निरमाय ॥ सो० ॥ ॥ १ ॥ खोले पण धन नहीं तदा हो राज, शेठ चिंते मनमांहि ॥ सो० ॥ दान वेला धन दोहिलुं हो राज, होय ते आपे नांहिं ॥ सो० ॥ २ ॥ आमण दूमणो ते थयो हो राज, नीचुं मुख करी शेठ ॥ सो० ॥ अंगुलीयें धरती खणे हो राज, नजर करीनें हेठ ॥ सो० ॥ ३ ॥ कीडीनगरा जेटलुं हो राज, दीठुं विवर ते ठार ॥ सो० ॥ अधिक खणे महोटुं थयुं हो राज, दीठुं सुवर्ण इव्यसार ॥ सो० ॥ ४ ॥ धन अनर्गल देखी करी हो राज, चिंते चित्त मकार ॥ सो० ॥ अद्भुत जाग्य ए सुत तणुं हो राज,आपुं चित्त उदार ॥ सो० ॥ ५ ॥ आपे वधामणी तेहनें हो राज, तेहमांथी धन लाख ॥ ॥ सो०॥ वस्त्र जूषण घृत गुड घणा हो राज, दरिड न राखे साख ॥सो०॥ ॥ ६ ॥ दीन अनाथनें आपतो हो राज, वाजित्र वाजे गेह ॥ सो० ॥ सज्जन लावे घणां जेटणां हो राज, हर्ष न माये देह ॥ सो० ॥ ७॥धवलमंगल गाये सुंदरी हो राज, नाटक नव नव थाय ॥ सो० ॥ एम नव नव उत्सव थकी हो राज, दश दिवस वही जाय ॥ सो० ॥ ८ ॥ चंड सूरय दर्शन करे हो राज, ठठी जागर वली होय ॥ सो० ॥ एम उत्सव घटे जे दिनें हो राज, ते ते दिन करे सोय ॥ सो० ॥ ए ॥ शेठ चिंते जे दिनथकी हो राज, आव्यो ठे सुत एह ॥ सो० ॥ ते दिनथी लखमी लह्यो हो राज, मंगल माला गेह ॥ सो० ॥ १० ॥ दीनादिक संतोषिया हो राज, तोही न खूटे इव्य ॥ सो० ॥ इव्य जडयुं संजलावीयें हो राज, नृपनें तो होये जव्य ॥ ॥ सो० ॥ ११ ॥ अन्यथा राय अदत्त होये हो राज, श्रावक माटे शेठ ॥ ॥ सो० ॥ एम चिंती लेइ जेटणुं हो राज, गयो नृप पासें ठेठ ॥सो०॥१२॥

वात यथास्थित तिहां कही हो राज, नृपति बोल्यो न्याय ॥ सो० ॥ श्राव क अदत्त ग्रहे नही हो राज, नृपति हर्षित थाय ॥ सो० ॥ १३ ॥ नाग्य निधि सुत पुण्यथी हो राज, धन प्रगट्युं असराल ॥ सो० ॥ राख तुं धन्य ए तादृरुं हो राज, तुज हो मंगलमाल ॥ सो० ॥ १४ ॥ राजप्रसाद लही करी हो राज, वाजते गाजते गेह ॥ सो० ॥ आव्या शुन मुहूर्त्तें हवे हो रा ज, पुत्रनामनें नेह ॥ सो० ॥ १५ ॥ स्वजन कुटुंब जमाडियुं हो राज, अ र्थे धरी मनमांहि ॥ सो० ॥ लक्ष्मीपुंज इण नामथी हो राज,थाप्युं हर्ष उ छाहि ॥ सो० ॥ १६ ॥ दिन दिन कल्पांकुर परें हो राज, मावित्र उमेदने सा थ ॥ सो० ॥ वाधे सुखदायी घणो हो राज, सहु जाणे अम आथ ॥सो०॥ ॥१७॥ दांत आव्या पग मांमतो हो राज, इत्यादिक सहु ठाम ॥सो०॥ ता स पिता उत्सव करे हो राज, बालक्रीडा करे ताम ॥ सो० ॥१८॥ नीशा ले नणवा ठव्यो हो राज, विनय घणो गुरु कीध ॥सो० ॥ पाठक पण तस हर्षथी हो राज, विद्या सघली दीध ॥ सो० ॥ १९ ॥ विद्या शास्त्र न तेह वुं हो राज, जे नवि जाणे कुमार ॥ सो० ॥ साखी मात्र पाठक थयो हो राज,सकल कला नंमार ॥ सो० ॥ २० ॥ तिम जिनधर्म कला लह्यो हो राज, सूक्ष्म बुद्धि सुरूप ॥ सो० ॥ जैनशास्त्र शिरोमणि हो राज, कला विज्ञाननो नूप ॥ २१ ॥ काव्य छंद नाटक वली हो राज, प्रश्न प्रहेलिका न्याय ॥ सो० ॥ गीत नाटकनें विनोदमां हो राज, नित्य नित्य काल ग माय ॥ सो० ॥ २२ ॥ एकदिन मित्रें परवस्यो हो राज, क्रीडतो उपवन जाय ॥ सो० ॥ मुनिवर एकांतें रह्या हो राज, देखी प्रणमे पाय ॥ सो० ॥ ॥ २३ ॥ धर्मलान मुनियें दियो हो राज, धर्म सुणे मुनिपास ॥ सो० ॥ बाल कालमां आदरे हो राज, समकित व्रत उल्लास ॥ सो० ॥ २४ ॥ त्रीजे खंमें अगियारमी हो राज, पद्मविजयें कही ढाल ॥ सो० ॥ श्रीजयानंदना रासमां हो राज, सुणतां मंगलमाल ॥२५॥ सो० ॥ ३६५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मावित्र वचन माने सदा, समकितने सदाचार ॥ विनय करे वीतरा गनो, गुरुनक्तो गुणधार ॥ १ ॥ यौवन आव्युं जेटले, विवाहनी करे वात, इबे कन्या एहनें, श्रीदेवी साक्षात ॥२॥ धनेश्वरनें पृथ्वीधर, कन्या केरा तात ॥ श्रीधर यशोधर श्रीपति, वली धनावह विख्यात ॥ ३ ॥ श्रेष्ठी

धन ते सातमा, जिनदास आठमा जाण ॥ दाता ज्ञाता दीपता, ख्याता गुणमणि खाण ॥ ४ ॥ शेठनें नमे सोनागीया, नांखे आवी नाथ ॥ पुत्री अम तुम पुत्रनें, आपणनो अजिलाष ॥ ५ ॥ रूपश्रीनें रूपरेखा, पद्मावती पहेंचाण ॥ पद्मा धनश्री पद्मिणी, वली लखमीनुं वखाण ॥ ६ ॥ मदनसिरी लखमीवती, रूपें रति अनुकार ॥ परणवुं मानो प्रेमशुं, अम आग्रह अनुसार ॥७॥ शेठ कहे तुमें सांजलो, आव्या तुमें अम धाम ॥ कन्या उद्देशी कहो, मान्य विशेषें आम ॥ ८ ॥ पंथीनें जोजन परें, तेणें मानी तुम वात ॥ हर्ष लह्या ते होंशथी, उत्सवें घर आयात ॥ ए ॥

॥ ढाल बारमी ॥ तुमें पीतांबर पहेरोजी, मुखने मरकलडे ॥ ए देशी ॥

॥ हवे लगन दिवस निरधारेजी ॥ रंगवधामणां ॥ सहु सज्जन तेडी घर वारेंजी ॥ रं० ॥ निज निज घर उत्सव रंगेंजी ॥ रं० ॥ करे चित्र विचित्र उमंगेंजी ॥ रं० ॥ १ ॥ तोरण मंमप रूडा रचीयाजी ॥ रं० ॥ तेतो साव सोनेरी खचीयाजी ॥ रं० ॥ पापड वडीयो देवायजी ॥ रं० ॥ पक्वान्न विविध केलवायजी ॥ रं० ॥ २ ॥ कंचन मणि घाट घडायजी ॥रं०॥ वस्त्र विविध प्रकार शिवडायजी ॥ रं० ॥ सोपारी पत्र मगावेजी ॥ रं० ॥ वेदिका वली जवहरा वावेजी ॥ रं० ॥ ३ ॥ रच्युं माहिरुं चोरी बंधावेजी ॥ रं० ॥ वली धवल मंगल गवरावेजी ॥ रं० ॥ एम विवाह सामग्री कीधीजी ॥रं० ॥ निमित्तिये वेला जली दीधीजी ॥ रं० ॥ ४ ॥ वरघोडे कुंवर चडियाजी ॥ रं० ॥ गाम गाम दान देवा जिडियाजी ॥ रं० ॥ मलियुं साजन बहु संगेंजी ॥ रं० ॥ सांबेला बहु उच्छरंगेंजी ॥ रं० ॥ ५ ॥ लामणदीवो माता हाथेंजी ॥ रं० ॥ जानणी गीत गाये साथेंजी ॥ रं० ॥ कन्या आठे समकालेंजी ॥ रं० ॥ करपीडन कर्युं तेणें तालेंजी ॥ रं० ॥ ६ ॥ मणि कनकनें रयणें जडियाजी ॥ रं० ॥ जाणे स्वर्गमांहे ते घडियाजी ॥ रं० ॥ ससरा सहुये मली आपेजी ॥ लखमीपुंज कुमार पुर थापेजी ॥ रं० ॥ ७ ॥ तारुण्य वय इंद्र समानजी ॥ रं० ॥ शचीसम आठशुं शुजवानजी ॥ रं० ॥ जोग जोगवे अतिय रसालाजी ॥ रं० ॥ निज तात पसाय विशालाजी ॥ ॥ रं० ॥ ८ ॥ कांय चिंता नहीं घरजारजी ॥ रं० ॥ पण धर्म न पामे हारजी ॥ रं० ॥ श्रावकनुं लक्षण एहजी ॥ रं० ॥ एम जीडमां धर्म धरेहजी ॥ रं० ॥ ए ॥ यतः ॥ सामग्गि अनावेवि हु, वसणेवि सुहेवि तह कुसंगे

वि ॥ जस्स न हायइ धम्मो, निछयउं जाण तं सठं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ पूर्व पुण्यनें सुपसायजी ॥ रं० ॥ सघले ते सुखिया थायजी ॥ रं० ॥ एम नाग्यवंत गुणवंतोजी ॥ रं० ॥ जिनधर्मे उपर दृढचित्तोजी ॥ रं० ॥ १० ॥ चाकर पण धर्मी देखीजी ॥ रं० ॥ धर्मी थया सर्व उवेखीजी ॥ रं० ॥ न वि करे पराजव कोईजी ॥ रं० ॥ जस पुण्यप्रकृति दृढ होईजी ॥रं०॥११॥ जेम वेलडी वृक्षने वलगे जी ॥ रं० ॥ जेम सरिता सायर सलगेंजी ॥रं०॥ तेम लखमी स्वयंवरा आवेजी ॥ रं०॥ अनुरक्त थई स्थिर थावेजी ॥ रं०॥ ॥ १२ ॥ मणिमंत्रनें चूरण जोगेंजी ॥ रं० ॥ जिम वश करियें कोइ जोगेंजी ॥ रं० ॥ जेम राशें बांधी राखेजी ॥ रं० ॥ तेम लखमी न ठंमे सराखेंजी ॥ रं०॥ १३ ॥ अंगें जोग सुपात्रें दानजी ॥रं०॥ बहुजननें खानने पानजी ॥ रं० ॥ सज्जन वाणोतर कामेंजी ॥ रं० ॥ आवें वली धर्म पण पामेजी ॥ रं० ॥ १४ ॥ यतः ॥ गृहकूपी कृपणानां, लक्ष्मीर्व्यवहारिणां नगरवापी॥ व्यापारिणां च सरसी, तरंगिणीव क्षितीशानाम् ॥१॥ सा लक्ष्मीर्या धर्मकर्मोपयुक्ता, सा लक्ष्मीर्या बंधुवर्गोपजुक्ता ॥ सा लक्ष्मीर्या स्वांगजोगप्रसक्ता, याऽन्या मान्या सा तु लक्ष्मीरलक्ष्मीः॥ २ ॥ पूर्वढाल ॥ पुत्रनुं पुण्य शेठ हवे जाणीजी ॥ रं० ॥ दानादिक करे मन आणीजी ॥ रं० ॥ व्यापार करे नें करावेजी ॥ रं० ॥ कोडगो गमे लाज तिहां आवेजी ॥ रं० ॥ १५ ॥ एम धर्म साधन करी शेवजी ॥रं०॥ सौधर्मे सुर थया ठेवजी ॥ रं०॥ माता पण गृहिधर्म पालीजी ॥ रं० ॥ स्वर्गे गइ धर्म अजुवालीजी ॥ रं० ॥ १६ ॥ तेहनें मरणें पण बाधेजी ॥ रं० ॥ सुख यश स्त्री सुख नवि बाधेजी ॥ रं० ॥ सुत महत्त्व प्रमुख नवि उंठांजी ॥ रं० ॥ संतनें केम होय ते ओठांजी ॥ रं० ॥ १७ ॥ पाछली रातें एक दिन्नजी ॥ रं० ॥ धर्म ध्यानमां तत्पर मन्नजी ॥ रं० ॥ केम लखमी जनमथी पाम्योजी ॥ रं० ॥ नवि खूटे दुःख सवि वाम्योजी ॥ रं०॥ ॥ १८ ॥ एम चिंतवतां एक देवजी ॥ रं० ॥ परगट थयो करतो सेवजी ॥ ॥ रं० ॥ संशय छेदननें नाणीजी ॥ रं० ॥ मन चिंते ए कोण प्राणीजी ॥ ॥ रं० ॥ १९ ॥ देव दानव के जोगींइजी ॥ रं० ॥ खेचरपतिनें योगींइजी ॥ ॥ रं० ॥ मन माने ते हो एहजी ॥ रं० ॥ पण तेजस्वी गुणी देहजी ॥रं०॥ ॥ २० ॥ निजघरें शत्रु जो आवेजी ॥ रं० ॥ पण पूजवा योग्य ते थावेजी ॥ रं० ॥ तेम एहना गुण नवि जाणुंजी ॥ रं० ॥ पण मणिपरें पूजन टाणुं

जी ॥ रं० ॥ २१ ॥ विनयें करी करे परणामजी ॥ रं० ॥ तुमें कोणनें आव्या छो कामजी ॥ रं० ॥ किहांथी तुमें आव्या स्वामीजी ॥ रं० ॥ ते चिंते सुर विनय न खामीजी ॥ रं० ॥ २२ ॥ कहे हुं छुं देवता जाणो जी ॥ रं० ॥ पूर्वस्नेह रज्जु बंधाणोजी ॥ रं० ॥ मुज थानकथी इहां आव्योजी ॥ रं० ॥ तुज संशय मुज मन जाव्योजी ॥ रं० ॥ २३ ॥ ते टालवा हुं इहां आयोजी ॥ रं० ॥ कहुं ते सांजल सुखदायोजी ॥ रं० ॥ बारमी कही त्रीजे खंमेंजी ॥ रं० ॥ ढाल पद्मे रंग अखंमेंजी ॥ रं० ॥ २४ ॥ ३०० ॥

॥ दोहा ॥

॥ जंबूनरतार्द्धे जाणीयें, मध्यखंमें मणिपूर ॥ नगरें श्रीपाल नरपति, डुशमन कीधा दूर ॥ १ ॥ धन्य वसे तिहां धनपति, नामें सारथवाह ॥ प्रीतिमती सति तस प्रिया, अंगें धरे उछाह ॥ २ ॥ सूत्राम नामें सुत नलो, गुणधर गिरुउ जेह ॥ कला बहोंतेर केलवे, यौवन पाम्यो जेह ॥ ३ ॥ शेठनी कन्या सामटी, उत्सव करी अपार ॥ परणावे तेहनो पिता, सुख नोगवे श्रीकार ॥ ४ ॥ विविध प्रकारें व्यवहरे, उपराजे बहु आथ ॥ क्रीडा करवा एकदा, सजिउ मित्र लेइ साथ ॥ ५ ॥

॥ ढाल तेरमी ॥ नणंदल बिंदलि दे ॥ ए देशी ॥

॥ वनमां सूरीश्वर देखे, क्रीडा करतां शुनवेषें हो ॥ नवियण मुनि वंदो ॥ मुनि अध्यवसाय शुन ध्यान, चारण मुनिनें चार ज्ञान हो ॥ न० ॥ १ ॥ जइनें मुनि चरणे वंदे, मुनि निरखी मन आणंदे हो ॥ न० ॥ धर्मलान दिये मुनि तास, नइक जाणी सुविलास हो ॥ न० ॥ २ ॥ अणुव्रत पांचे विस्तारें, सर्वविरति कहे सुप्रकारें हो ॥ न० ॥ दृष्टांतनें फल देखावे, ते कुमर सुणे शुननावें हो ॥ न० ॥ ३ ॥ समकित करे अंगीकार, करे अन्नक्ष तणो परिहार हो ॥ न० ॥ निज उचित अनंतकाय वारे, वली अदत्त आदान व्रत धारे हो ॥ न० ॥ ४ ॥ सुविशेषें निरतिचार, वली पूछे तास विचार हो ॥ न० ॥ मुनि कहे सांजल तुं नाई, ए व्रतनी वात वराई हो ॥ न० ॥ ५ ॥ मणिनें तृण जे पर केरुं, अण आप्युं न लीजें अनेरुं हो ॥ न० ॥ मुनि त्रिविध त्रिविध व्रत पाले, गृही डुविध त्रिविध संजाले हो ॥ न० ॥ ६ ॥ बीजा पण बहु छे नेद, पण-कायर पुरुषना वेद हो ॥ न० ॥ जे नेदें आदर्युं जेसें, ते पाली सुख लह्यां तेणें हो ॥ न० ॥

॥ ७ ॥ वली जेणें विराध्युं एह, नवसायर नमिया तेह हो ॥ न० ॥ बध वंधन पीडा पामे, दुःखी दरिद्री होये गाम गामें हो ॥ न० ॥ ८ ॥ दुर्ग ति दुःखनो नही पार, त्रिहुं लोक विनाशणहार हो ॥ न० ॥ एम जाणी अदत्त न लीजें, तो जगतजनें पूजीजें हो ॥ न० ॥ ए ॥ आराधे उनय लोक साधे, दिन दिन दोलत बहु वाधे हो ॥ न० ॥ व्रतथी न चले जेम मेरु, तस जस होय जगत घणेरुं हो ॥ न० ॥ १० ॥तेजस्वीमां ते रवि जे म, सौम्यमां हिमरश्मि नेम हो ॥ न० ॥ एम जाणी व्रत तुमें पालो, मत कोई कारणें करो टालो हो ॥ न०॥ ११॥ करी तहत्ति आव्या निज धाम, गुरु प्रणमी आतमराम हो ॥ न० ॥ त्रणे पुरुषारथ साधंतो, धर्मार्थे काम अवाधंतो हो ॥ न० ॥ १२॥ लखमी बहु छे पण जाणे, परखुं निज नाग्य ए टाणे हो ॥ न० ॥ माय ताय प्रिया परिवार, पूछीनें थाये तैय्यार हो ॥ न० ॥ १३ ॥ करियाणुं लेई दूरदेश, गयो लाननो धरी उद्देश हो ॥ न० ॥ पृथिवी प्रतिष्ठपुर तेह, नेटणां नलां नृपनें देह हो ॥ न० ॥ १४ ॥ नृप आणथी नाडे गेह, लेई पण्य उतारे तेह हो ॥ न० ॥ परिवारथी देव गुरु पूजे, नित्य नित्य ते धर्म न मूंजे हो ॥ न०॥ १५॥ वाणोतर लोकने आगें, धर्म उपदेशे धर्मरागें हो ॥ न० ॥ व्यापार करेनें करावे, न्याय मारगें सहु वरतावे हो ॥ न० ॥ १६ ॥ व्यवहार शुद्धि तो पावे, न्यूनाधिक तोल टला वे हो ॥ न० ॥ चोरे आण्युं जेह न लेवे, चोरनें नवि धन कांइ देवे हो ॥न०॥ ॥ १७ ॥ न करे नेल संनेल कांय, नृपवैरीदेशें न जाय हो ॥न०॥ ए पांच अतिचार वर्जे, तो सुखमां धन बहु अर्जे हो ॥ न०॥ १८ ॥ तेम करतो पाम्यो प्रसिद्धि, महिमा घणो लह्यो बहु ऋद्धि हो ॥ न० ॥ नृपनें अति शय वश कीधो, शासन उन्नति यश लीधो हो ॥ न० ॥ १ए ॥ हवे तातें ते डाव्यो ज्यारें, नरपति आणा लही त्यारें हो ॥ न० ॥ पूर्वं निज साथ मोक लियो, पूठें पोतें नीकलियो हो ॥ न० ॥ २० ॥ तुरंगें हवे थइ असवार, वे गें चाल्यो शुनवार हो ॥ न० ॥ उलंघे पुरनें ग्राम, एकदिन वसीयो कोइ गाम हो ॥ न० ॥ २१ ॥ आगल जाये एकदिन्न, अटवीमां दूर आसन्न हो ॥ न० ॥ रमणिक दोय कुंमल दीठां, अश्व उपरथी उक्किठां हो ॥ न० ॥२२॥ जेम सूर्यथी दृष्टि संकेले, तेम नवि जूवे आगल सेलें हो ॥ न० ॥ दीठी आगें मणिमाला, ठंमे रज्जुपरें ततकाला हो ॥ न० ॥ २३ ॥ मणिरत्न

सुवर्ण जरीयो, कुंज देखी आगें संचरियो हो ॥ ज० ॥ जाणे उपल जख्या जेम होय, तेम दृष्टि न देवे सोय हो ॥ ज० ॥ २४ ॥ मन चिंतवे माहरे आगें, केम आवे ए त्रण मुज मागे हो ॥ ज० ॥ अथवा शी चिंत ए माहा रे, पण विस्मय चित्तमां धारे हो ॥ ज०॥ २५ ॥ धन्य एहनी मातनें तात, जे पाले व्रत साक्षात हो ॥ ज० ॥ कारण मले मन न डगायो, ए केणि परें जाय ठगायो हो ॥ ज० ॥ २६ ॥ खंम त्रीजे तेरमी ढाल, पद्मविजय कही सुरसाल हो ॥ ज० ॥ एम सांजली व्रत तुमें पालो, जेम होवे मंगल मालो हो ॥ ज० ॥ २७ ॥ सर्वगाथा ॥ ४३० ॥

॥ दोहा ॥

॥ ततक्षण थाको तुरंग ते, चाले नही ते चाल ॥ उतरियो तव अश्वथी, आ शुं चिंते अकाल ॥ १ ॥ चिंतवतां एम चित्तमां, प्राण गया परें प्राय, दिलगीर थयो देखी करी, शुं ए अश्वनें थाय ॥ २ ॥ केम ए तरपें आक लो, अथवा मूर्छा एह ॥ मरण लह्यो अश्व मुजनें, कोइ न खबर करेह ॥ ३ ॥ देव क्रुड कोइ दाखीयें, अथवा मानुं एम ॥ दैव शरापें दुःखीयो, कहो अकालें ए केम ॥४॥ वक्रवदन वाल्हीक ए,स्वामी जक्त सुजाण ॥ चित्त अभिप्रायें चालतो, कर्णकुश केकाण ॥५॥ मार्गे सखायी नें मृडु, मांसलमध्य संस्थान ॥ ऋद्धिदाता रणमां रहे, वारु करे व्याख्यान ॥६॥ माहरी अपेक्षा मूकीनें,आ वेला थयो एम ॥ अश्व विना हवे आगलें,कहोनें चलियें केम ॥७॥

॥ ढाल चौदमी ॥ जाव श्रावकना जाखीयें ॥ ए देशी ॥

॥ पंथी वैद्य कोइ मले, करे औषधें करी उपकार रे, दातार रे, जीवनुं जाणुं ते सही ए ॥ १ ॥ आपुं धन तेहनें बहु, एम करी इत उत ते जोवे रे, होवे रे, एम करतां वेला घणी ए ॥ २ ॥ पण नवि पंथी को आवियो, पण फिरतां तरष ते लागी रे, शक्ति जांगी रे, तो पण जमतो नवि रहे ए ॥ ३ ॥ शुद्धि न लाधी वैद्यनी, नवि लाधुं खोलतां पाणी रे, थाक आणी रे, वेगो ठांहि तरुतलें ए ॥ ४ ॥ एणे समे मसक पाणी जरी, शाखा अ वलंबित तेह रे, जेह रे, गलती जलने बिंडुयें ए ॥ ५ ॥ कोणें ए नीर ज री ठवी, गयो किहां कहो एहनो स्वामी रे, शिर नामी रे, मागीनें जल पी जीयें ए ॥ ६ ॥ तरष टालुं एम चिंतवी, जोतां न जड्यो कोय रे, तव जो य रे, शाखायें वेगो सूडलो ए ॥ ७ ॥ नरजापायें ते वदे, ताहरे इंगितनें

आकारें रे, जाणुं प्यारें रे, तरष्यो छे तुं अतिघणो ए ॥ ८ ॥ पाणी देखे पण नवि पीये, कहे कारण मुजनें तास रे, मुज वास रे, इणद्विज वृक्ष मांही अछे ए ॥ ए ॥ तुं अमचो छे प्राहुणो, वली गुणवंतमां शिरदार रे, आकार रे, देखी ताहरो नाखीयें ए ॥ १० ॥ घर आव्यो ते सहु पूजीयें, वली तुज सरिखा सुविशेष रे, तुं देखी रे, नक्ति करुं हुं ताहरी ए ॥ ११ ॥ जेहनुं हो तेहनुं होय जो. ए पाणी पी निःशंक रे, इहां वंक रे, लेश मात्र नहीं ताहरो ए ॥ १२ ॥ माहरे थानक ए जल अछे, तेणें आणा आपुं रंगें रे, उछरंगें रे, तरष टालो जल पी करी ए ॥ १३ ॥ तरष्यां धर्म न होयशे, उलटुं थाय आर्त्त ध्यान रे, लावो ज्ञान रे, पछी व्रत दृढपणे पालजो ए ॥१४॥ यतः ॥ सव्व संजमं सं,जमाउ अप्पाणमेव रखिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही तया विरई ॥ १ ॥ पूर्व ढाल ॥ कहे कुंअर सुण सूडला. तुं तत्त्वनी वात न जाणे रें, मुज आणे रे, हित पण सांजल वातडी ए ॥ १५ ॥ मसकनें जल ताहरुं नहीं, आणा दीये जे होय स्वामी रे, सुखकामी रे, ते लिये तस दूषण नहीं ए ॥ १६ ॥ जेह अदत्त लीये नही, इह परनव संपदा पामे रे, डुःखगामें रें, होय अदत्त जे आदरे ए ॥ १७ ॥ सुख यश लखमी लहे नहीं, वात धर्म तणी रहे दूरें रे, संपूरें रे, डुर्गति डुःख पामे सही ए ॥ १८ ॥ एक वार लीये अदत्त जो, तो जन्मनी कीर्त्ति हारे रे, प्यारें रे, आपे जल ते नवि लेउं ए ॥ १ए॥ प्राणांतें पण नवि पीयुं, तरषें मरण एकवार रे, पीयुं वारि रे, मरण अनंत लहुं अदत्तथी ए ॥ २० ॥ स्थिरता मन वच कायथी, सांनली शुक अदृश थाय रे, तव आय रे, एक पुरुष अणचिंतव्यो ए ॥ २१ ॥ सत्यप्रतिज्ञावंत तुं, तुजनें हो परणाम रे, सत्त्वधाम रे, व्रतमां दृढ तुं एक छे ए ॥ २२ ॥ एम प्रशंसा सांनली, कुमर वदे एम वाणी रे, गुणखाणी रे, तुमें गुण अनुमोदनथकी ए ॥ २३ ॥ पण तुमने पूछुं अमो, तुम चरित्र घणुं चित्रकारी रे, अवधारी रे, कहो तुमें कोण केम आवीया ए॥ ॥ २४ ॥ ते कहे सांनलो वातडी, वैताढ्यें विपुला नयरी रे, जितवयरी रे, चंड्रविद्याधर राजीयो ए ॥ २५ ॥ त्रीजे खंर्मे चौदमी, ढाल अधिक उल्लासें रें, सुविलासें रे, पद्मविजय नांखी मुदा.ए ॥ २६ ॥ ५६३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ विशद नाम विद्याधरु, तेह नगरमां ताम ॥ रमणीरूपें रूअडी, म णिमाला अभिराम ॥ १ ॥ सुत तेहनो सूरय अछुं, कला ग्रही में काल ॥ शास्त्र नण्यो हुं समजणें, काढुं हवें काल ॥ २ ॥ विद्या विविध प्रकारनी, आपे पिता अनूप ॥ साधनशुं विद्या सवे, साधुं सिद्धसरूप ॥३ ॥ फरतो पृथिवीमां फरुं, विविध क्रीडा वनमांहि ॥ विद्या बलें वारु परें, आणी अं ग उत्साहि ॥ ४ ॥

॥ ढाल पन्नरमी ॥ दीठी हो प्रनु दीठी जगगुरु तुज ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन हो तिहां एक दिन सांनले कान, देशना हो नली देशना वि मल सूरिकनेजी ॥ बूझ्या हो मुज बूझ्या नली परें तात, दीक्षा हो लिये दीक्षा राज्य तजी मनेंजी ॥१॥ शिक्षा हो बिहु शिक्षा ग्रहे गुरु पास,तपथी हो वली तपथी लब्धि लहे घणीजी ॥ अतिशय हो श्रुत अतिशय गुरुथी पामि,परिसह हो खमे परिसह खमे अप्रमत्त मुणीजी॥२॥ पाम्या हो क्रमें पाम्या सूरिपद खास,चारित्र हो धरे चारित्र समिति संगथीजी ॥ पाम्या हो रुषि पाम्या ते चउ नाण,बूझवे हो नवि बूझवे विचरे रंगथीजी ॥३॥ वसतो हो घर वसतो हुं करुं राज्य,चोरी हो शिख्यो चोरी हुं शिख्यो कुसंगथीजी॥ लावुं हो धन लावुं अनगेल ताम,नित्य नित्य हो एम नित्य नित्य विद्या अ नंगथीजी॥४॥ नूचर हो नृप नूचरनुं हरुं ड्रव्य, क्रूरता हो थइ क्रूरता मनमां आकरीजी ॥ बीजा हो बहु दोष आव्या निज अंग,सन्मति हो गुण सत्य गया मूकी करीजी ॥५॥ नाग्यें हो मुज नाग्यें प्रेर्या ताम,आव्या हो रुषि आव्या विशदसूरीसरूजी॥ जाणी हो गयो जाणी विद्याधर साथ,महोत्सवें हो घणे महोत्सवें प्रणम्या जनक गुरुजी ॥६॥ स्तवीया हो सुणी स्तवीया सु णी उपदेश, समकित हो सुख समकितसुख लह्या जन घणाजी ॥ निजनिज हो सहु निजनिज थानक जाय,हितनी हो मुज हितनी नहीं कांइ मणाजी ॥७॥ शिक्षा हो मुज शिक्षा बहु प्रकार,देई हो मुज देई त्रीजुं व्रत आपियुंजी॥ चोरी हो नवि चोरी न करवी कोय,पूज्यें हो दिधा पूज्यें मुज डःख कापियुंजी॥ ८ ॥ दीधो हो मुज दीधो तुज दृष्टांत, करवा हो मुज करवा दृढता कारणेंजी ॥ बिहुं नव हो हित बिहुं नव जाणी हेत,आदर्युं हो व्रत आदर्युं डःख निवारणेंजी ॥९॥ चिंतव्युं हो में चिंतव्युं परखुं तेह, जोउं हो वल

जोवं आकार आचारनेंजी ॥ दृढता हो व्रतें दृढता जोवं तास, जेहना हो गुरु जेहना वखाणे व्यापारनें जी ॥१०॥ तेणें में हो तुज तेणें परीक्षा कीध, कुंमल हो आदें कुंमल प्रमुखनी जाणजेजी ॥ अश्व हो कर्यो अश्व ते अतिशय मंद, करणी हो माहारी करणी वीजानी मआणजेजी ॥११॥ पाणी हो तुनें पाणी न पीधुं रेख,तरप्यां हो तुमें तरप्यां पण अचरिज कयुं जी ॥ साची हो एह साची प्रतिज्ञा तुज्झ, कनक हो परें कनक परें व्रत तुमें धर्युंजी ॥१२॥ गुरुनी हो इहां गुरुनी मलि सवि वात, मिछामि हो तुज मिछामि दुक्कड हुं देवंजी ॥ तूगे हो तुज तूगे मागो कांय,आपी हो मुज आपी जनमतुं फल लेवं जी ॥१३॥ पवित हो लिद्धिपवित लिद्धि दिये ताम, गगन हो गामी गगनगामिनी विद्या नली जी ॥ वीजी हो घणी वीजी विद्याउ अनेक, आपी हो हवे आपी धन आपे वलीजी ॥१४॥ पूछे हो तव पूछे सारथवाह, केहनुं हो ए केहनुं वित्त छे ते कहो जी ॥ खेचर हो कहे खेचर कांयक मुज्झ, कांइक हो वली कांइक पारकुं ए लह्यो जी ॥ १५ ॥ सांजली हो कहे सांजली सारथवाह, निंदित हो कह्यो निंदित वाल केणी परें जी ॥ धर्मनी हो कह्यो धर्मनी एक तो वात, बीजुं हो दियो बीजुं अदत्त एणी परें जी ॥ १६ ॥ चोरीयें हो आव्युं चोरीयें शुद्ध पण एह, अशुद्ध हो घणुं अशुद्ध मदिरायें जल यथाजी ॥ धर्म हो लह्या धर्म जो तातनी पास, मूको हो तुमें मूको लाव्या तिम तथाजी ॥ १७ ॥ जाणो हो जेहनुं जाणो सांजरें जेह, वावखुं हो अथ अणवावखुं ते आपीयें जी ॥ तिणथी हो थाय तिणथी बहु जशवाद, पुण्यनो हो वली पुण्यनो संचय थापीयेंजी ॥१८॥ सांजली हो तव सांजली सार्थेद वाणि, कीधुं हो तव कीधुं जेह सवे कह्युंजी ॥ साजो हो थयो साजो अश्व तेणी वार, खेचर हो धन खेचर दीये ते नवि लह्युं जी ॥ १९ ॥ साखें हो तस साखें कर्युं धर्मठाम, पण ते हो कांइ पण ते नवि राख्युं तदाजी ॥ पोहोता हो ते पोहोता निजनिज ठाम, वरते हो तुं वरते धर्ममांहे सदाजी ॥ २० ॥ वावरे हो धन वावरे साते क्षेत्र, दीनने हो दीये दीन अनाथनें संपदाजी ॥ पाले हो व्रत पाले निरतिचार, टाले हो वली टाले लोकनी आपदा जी ॥ २१ ॥ मेरु हो वली मेरुनें गिरनार, सिद्धगिरि हो वली सिद्धगिरि नंदीश्वर करेजी ॥ जात्रा हो करे जात्रा तीरथनी एम, गगनें हो जाय गगनें विद्याधर परेंजी ॥ २२ ॥ उत्सव हो करे उत्सव पू

जा गीत, सफलो हो करे सफलो मानव नव तिहां जी ॥ धर्म हो करी धर्म दानादिक चार, ऊपन्यो हो तुं ऊपन्यो आयु क्षयें इहां जी ॥ २३ ॥ त्रीजे हो खंमें त्रीजे पन्नरमी ढाल, नांखी हो श्रीनांखी श्रीजयानंदरासमां जी ॥ उत्तम हो गुरु उत्तमविजय पसाय, पदमें हो नांखी पद्मविजयें उल्लासमां जी ॥२४॥ सर्वगाथा ॥ ४७१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ विद्याधर गुरु वाणीथी, पाली धर्म प्रपंच ॥ आयुक्षयें तिहां ऊपन्यो, सुर महाऋद्धिनो संच ॥ १ ॥ व्यंतर पल्य आयु वडो, देवता थयो दयाल ॥ पूरवनव व्रत पालिनें, तुं लिरिवंत रसाल ॥ २ ॥ तुऊ जनमथी ताहरे, घर लखमी घणी होय ॥ पूरवनव कृत पुण्यना, योगथी सघलुं जोय ॥ ३ ॥ धर्मस्नेह पूरव धरी, आव्यो तुज घर आप ॥ लखमी पूरुं लख गमे, मोजथकी विण माप ॥ ४ ॥ अधिपति व्यंतरनो अछुं, आव्यो ए कहेवा आज ॥ आनूषण वस्त्र आपिनें, स्वघर गयो सुरराज ॥ ५ ॥ हरख्यो लखमीपुंज हवे, जाति समरण जात ॥ सुर कह्युं जाणी साचलुं, धर्में दृढ थई धात ॥ ६ ॥ दान अनर्गल देयतो, सुख नोगवे सुरसाल ॥ सांनली एकदिन देशना, लह्यो वेराग विशाल ॥ ७ ॥ गुरु पासें दीक्षा ग्रही, उत्सव करी अपार ॥ अंग नण्या अगीयार ते, तप वली बहु तपनार ॥ ८ ॥ चोखुं पाली चरण ते, अणसण विधें आराधि ॥ देवलोक बारमें देवता, बावीश अयर अबाधि ॥ ९ ॥ नोगवी आउखुं सुरनवें, नृप थयो नरनव पाम ॥ केवलज्ञान लही करी, विचरे नवि विश्राम ॥ १० ॥ सिद्धि वरे सुख शाश्वता, ए धारी अवदात ॥ बीजुं व्रत पालो तुमें, सहु लहो जिम सुख शात ॥ ११ ॥

॥ ढाल सोलमी ॥ मुजरो ल्योनें जालिम जाटणी ॥ ए देशी ॥

॥ सांनली रतिमाला जे कुमर कह्युं, लखमीपुंज दृष्टांत ॥ बूजी अदत्तादान निषेधती, अदत्त न लेउं एकांत ॥ १ ॥ व्रत एम पालो नविक सोहामणुं ॥ ए आंकणी ॥ श्रावक धर्म तिहां अंगी करे, हवे साधर्मिक थाय ॥ त्रिहुं जण प्रीतें सुखमांहे रहे, धर्में काल गमाय ॥ व्र० ॥ २ ॥ राति समय एकदिन सूतां थकां, देखे सुपन कुमार ॥ कोइक नगरें पर्वत ढूकडो, निद्धुनो अवतार ॥ व्र० ॥ ३ ॥ काष्ठ नार कपाड्यो मस्तकें, कु

रूपी शिरदार ॥ चोटामां कनो एम देखीनें, जाग्यो तेह कुमार ॥ व्र० ॥४॥ मन चिंते ए सुपननुं फल किश्युं, वात असंनव एह ॥ जमणुं लोचन फर क्युं तेणे समे, सुपननी साख पूरेह ॥ व्र० ॥ ५ ॥ चिंतव्यो तास उपाय वि चारीनें, मोहोटो पट एक कीध ॥ स्वप्न दीठुं जिम नगरादिक तणुं, तेम आलेखावी लीध ॥ व्र० ॥ ६ ॥ क्रीडा परवत वाव्य सरोवर, चहुटा हाटनें गेह ॥ नव नव रंगें चित्रित पट थयो, मनोहर अतिशय एह ॥ व्र० ॥ ७ ॥ तेह नगरनां वाह्य उद्यानमां, चैत्य ते ऋषन जिणंद ॥ तेहना द्वारने मल तुं वारणुं, शत्रुसालकरंद ॥ व्र० ॥ ८ ॥ तस आगल एक पीठ करावतो, तेडी वर सूत्रधार ॥ दानशाला मंमावी तिहां कणे, दीन अनाथ उद्धार ॥ ॥ व्र० ॥ ए ॥ चाकर मूक्या तास जिमाडवा, सेवक दक्ष वली जेह ॥ पट विस्तार देखाडे लोकनें, जूवे अति ससनेह ॥ व्र० ॥ १० ॥ जे जूवे दृष्टि करी स्थिर तेहनें, कहे नगरादिक नाम ॥ ते मुजनें मेलवजो पुरुषनें, पट जालवज्यो सुठाम ॥ व्र० ॥ ११ ॥ ते पण सेवक कह्युं तिमहिंज करे, वर्णव करे सहु लोक ॥ देहरे आवे ते सहु देखता, मलि मलि थोकें थोक ॥व्र०॥१२॥ एक दिन पंथी आव्या दूरथी, धूलें खरडित देह ॥देखी प टने विस्मय पामिया, अहो केणे चितर्यो एह ॥ व्र० ॥ १३ ॥ पटने जोइ जोइ आनंद हुवे घणो, सुंदर शोनागेह ॥ अमचुं नगर वसुं अमें एहमां, नामें पद्मपुर जेह ॥ व्र० ॥ १४ ॥ पटपालक कहे आव्या किहांथकी, को ण तुमें किहां वास ॥ ते कहे पद्मपुरथी आविया, लाव्या ते कुमरनें पा स ॥ व्र० ॥ १५ ॥ कुमरें वात सुणी तस मुखथकी, संतोष्या जली री ति ॥ कुमर पूठे फरी तास स्वरूपनें, ते पण कहे धरी प्रीति ॥ व्र० ॥ ॥ १६ ॥ शो योजन ते नगर इहांथकी, पद्मकूटगिरि पास ॥ राजा पद्म रथ तिहां राजियो, कोइ न जोडी ठे तास ॥ व्र० ॥ १७ ॥ रूप ऐश्वर्यें जींते इंद्रनें, चंद्र उज्ज्वल गुण जास ॥ पण ते नास्तिक धर्मी आकरो, चंद्र कलंक परें तास ॥ व्र० ॥ १८ ॥ सांनली कुमरें तास विसर्जिया, दे ई इच्छित दान ॥ तिण नगरी जावानुं चित्त धरी, नारीनें कहे सावधान ॥ ॥ व्र० ॥ १ए ॥ तीरथ नमीनें आवुं जिहां लगें, रहेजो मातानी पास ॥ अड पुर धननुं दान देजो सदा, करजो कलानो अन्यास ॥ व्र० ॥ २० ॥ खेद लही पण आणा पालवी, एह पतिव्रताधर्म ॥ मान्युं तव ते बेशी

ढोलीये, गगनें चाल्यो सुशर्म ॥ व्र० ॥ २१ ॥ पद्मकूट गिरि पोहोतो रंग शुं, त्रीजे खंर्मे रे ढाल ॥ पद्मविजयें रंगें कही सोलमी, सुणो हवे वात रसाल॥ व्र० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ५२४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ पल्यंक किहां एक गोपवी, रूप करे कुरूप ॥ भिल्ल काष्ठ भारो धरी, चाल्यो मन धरी चूंप ॥ १ ॥ पद्मपुरमां पाधरो, आव्यो चहुटे आप ॥ वेचण लगो वेगशुं, पण मनुं मूरति पाप ॥ २ ॥

॥ ढाल सत्तरमी ॥ कर्म न छूटे रे प्राणीया ॥ ए देशी ॥

॥ राजपुरुष तिहां आविया, देखे भिल्लनें ताम ॥ कुंतल पीत जाडा घणुं, होठ लांबा वली श्याम ॥ १ ॥ कर्म न छूटे रे आतमा ॥ ए आंकणी ॥ मस्तक कडाह तलिया समुं, दंतुरनें स्थूल पाय ॥ आंख्यो पीलीनें श्यामलो, नाक चिपुट वेसी जाय ॥ क० ॥ २ ॥ स्थूल नसाजाल देखीयें, कंकाल भैरव रूप ॥ कुलक्षण सवि अंगनां, मानुं पिशाच सरूप ॥ क० ॥ ॥३॥ वीटी माथे रे वेलडी, वस्त्र ते कोपीन एक ॥ देखी थु थु करे सवे, बोले एणी परें छेक ॥ क० ॥ ४ ॥ बोलावे तुज नृपति, चालो सभा मझार ॥ ते कहे हुं किहां राजा किहां, हुं नवि आवुं केवार ॥ क० ॥ ५ ॥ जो तुम काष्ठनो खप होये, तो ल्यो काष्ठनो भार ॥ पण तिहां हुं नवि आवशुं, त व ते बोले विचार ॥ क० ॥ ६ ॥ बीहीक म कर तुं रे बापडा,राजा करशे पसाय ॥ तेहनी साथें तव चालियो,देखाडयो तेह राय ॥ क० ॥ ७ ॥ भें टणुं काष्ठभारा तणुं, करीनें उभो किरात ॥ पूछे भूपति एणी परें, कोण तुं किहांथी आयात ॥ क० ॥ ८ ॥ नाम किश्युं तुज किहां वसे, ते कहे पिवर मुज नाम ॥ पद्मकूटगिरिमां वसुं, माहरे रहेवा नहीं धाम ॥ क० ॥ ॥ ए ॥ काष्ठनो भार वेची करी, आजीविका करुं स्वामि ॥ नृप कहे दुःखियो मुज नगरमां, केम तुं रहे छे रे आम ॥ क० ॥ १० ॥ ते कहे तुम पुर स्वर्ग ज्युं, हुं दुःखीयो वसुं एम ॥ सरोवर पाणी भर्युं घणुं, चातक तरण्यो रहे नेम ॥ क० ॥ ११ ॥ नृप कहे माग जे जोइयें, ते कहे उदर तुं पूर ॥ काष्ठथकी सुखमां होये, भाग्यथी अधिकुं होय दूर ॥ क० ॥ ॥ १२ ॥ तुमें तूठा मुज खप नही, चीवर दोलत दाम ॥ पण नही धान्यनी रंधनी, आपो तो होय काम ॥ क० ॥ १३ ॥ नृप कहे देउं रंधनी,

एम कही बोलावे ताम ॥ विजय सुंदरी निज सुता, कहे तेहनें नृप आम ॥ ॥ क० ॥ १४ ॥ जिनधर्मे तुज सुख होये, तो नोगवो नोग रसाल ॥ ए तुज नर्त्ता में आपियो, कर्म फल्यां ततकाल ॥ क० ॥ १५ ॥ एहथी तुजनें बहु सुख थशे, तव बोली तेह वाणि ॥ ताततुं वचन प्रमाण छे, खेद नहीं इण गण ॥ क० ॥ १६ ॥ कुलस्त्रीनो एह धर्म छे, तातें दीधो जे कंत ॥ जाणे देव तणी परें, आराधे मन संत ॥ क० ॥ १७ ॥ पूरवनवना संबंध थी, जो पण दीठो कुरूप ॥ पण तस प्रेम घणो धरे, निन्न पण तदनुरूप ॥ क० ॥ १८ ॥ कोइक ज्योतिषी तिहां रह्यो, ज्ञानी कहे एम वात ॥ एह मुहूर्त्ते परणे जिके, ते होये चक्री विख्यात ॥ क० ॥ १९ ॥ राणी होये ते तेहनी, स्त्रीमां उत्तम नार ॥ एहनी खबर न को पडे, शुं फल होशे ए वार ॥ क० ॥ २० ॥ ईर्ष्या कोपथी नृपति, साहस अतिशय धार ॥ राय सना मांहे एम कहे, सांजलजो निरधार ॥ क० ॥ २१ ॥ वरना वेषनें सारिखो, लावो वधूनो रे वेष ॥ तव ते पुरुष लेवा गया, रायनी आण विशेष ॥ ॥ क० ॥ २२ ॥ वलय लाव्या रे कथीरनां, सोहासणीनुं निशाण ॥ कोईक नीचना घरथकी, साडी लाव्या पुराण ॥ क० ॥ २३ ॥ पूरव वेश मूकी करी, नवलो पहेरो ते वेष ॥ निन्न कहे तव रायनें, शी ए वात नरेश ॥ ॥ क० ॥ २४ ॥ मणिघंटा नवि सोहियें, रासन केरे रे कंठ ॥ काणी कूडी नें सामली, दासीयो योग्य वंठ ॥ क० ॥ २५ ॥ कागनें योग्य ते कागडी, हंसली पामे न सोह ॥ निन्न कहे पण रायनें, नवि लागो पडिबोह ॥ ॥ क० ॥ २६ ॥ विजयसुंदरी ए धन्य छे, कीधो नवि मन खेद ॥ एहवी नीड पडे थके, नवि पामी निरवेद ॥ क० ॥ २७ ॥ सत्तरमी त्रीजा खंमनां, पद्मविजय कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां, सुणतां मंगलमाल ॥ ॥ क० ॥ २८ ॥ सर्व गाथा ॥ ५५४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ रूपसार रंनातणुं, करी धाता लेई केलि ॥ तेहनें पवनसी लघु तुमें, निन्न कहे करि मन नेलि ॥ १ ॥ चंद्रमुखी चोशठ कला, पद्मनेत्रापि कराव ॥ धर्मजाण धर्मचारिणी, नाग्यवंती नलो नाव ॥ २ ॥ राजहंस गति राजती, रति जींते रूपेण ॥ विनयादिक गुणवंत ए, सोनागी सुस्वरेण ॥ ३ ॥ निन्न किहां दोनागीयो, कठीयारोनें कुरूप ॥ लक्षण हीण ल

खी मनें, भिल्लनें केम द्यो नृप ॥ ४ ॥ खेद लहे बहु परखदा, हा हा ए शुं होय ॥ मंत्री कहेणनी नहीं मणा, कहे एणी परें सहु होय ॥ ५ ॥ अपत्य उपर अति क्रोध थयो, दुःख आगल देनार ॥ विपदा लहियें विरुद्ध थी, नृपति जणे तिवार ॥ ६ ॥ दोष शाने मुज दाखवो, जैनधर्मिणी जेह ॥ मंत्री दोष न माहरो, आपें वरियो एह ॥ ७ ॥

॥ ढाल अढारमी ॥ घरें आवो जी आंबो मोहोरी यो ॥ ए देशी ॥

॥ कहे नृपति सांजलो मंत्रवी,नरपतिनी रीति छे एह ॥ निज जाग्य प्रमाणें पति वरे, साखी मात्र पिता होये जेह ॥ १ ॥ जवि दृष्टिराग तुमें परिहरो, दृष्टिराग अनर्थनो गय ॥ दृष्टिरागें नृपति कहे जिल्लनें, में दीधी ते फेर न थाय ॥ ज० ॥ २ ॥ कलावंतीशुं सुख जोगव सुखें, तुज सा हेव तूठो जाण ॥ कहे पुत्रीनें पंमित माननी, करी कुल आचारनी हाण ॥ ज० ॥ ३ ॥ अवज्ञा पितानी करी घणी, जिल्ल आपें वरियो एह ॥ तेहनां फल जोगवो मोजशुं, करो अरिहंत धर्मशुं नेह ॥ ज० ॥ ४ ॥ कहे विजयसुंदरी तातनें, इहां वांक नहीं तुम रेख ॥ सुख दुःख जे जगमां पामीयें, ते कर्म तणा छे विशेष ॥ ज० ॥ ५ ॥ यतः ॥ सव्वो पुव्व कयाणं, कम्माणं पावए फल विवागं ॥ अवराहे सुगुणे सुअ, निमित्त मित्तं परो होइ ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ तुम कुल अजुवालीश तातजी, एह जर्त्ता इंद्र समान ॥ ते सांजली नृप क्रोधें चढ्यो, जेम अग्निमां घृत असमान ॥ ज० ॥ ६ ॥ विष जावित तांबूल आपियुं, त्रण पोहोरें अंध ते थाय ॥ जोजन अंतें निज पुत्रीनें, वरनें दीधुं सुधि जाय ॥ ज० ॥ ७ ॥ नृप कहे जाउ निजथानकें, सांजली चाल्यो निज थान ॥ गयानी परें नृपनंदिनी, चाली जरता अनुमान ॥ ज० ॥ ८ ॥ राजा कहे सहुनें सांजलो, जे जाशे एहनी साथ ॥ अथवा धन आपशे एहने, तो मारीश तेहनें हाथ ॥ ज० ॥ ए ॥ नृपक्रोधथी मौन करी रह्या, सचिवादिक पुरनां लोक ॥ दैवनें उलंजो आपता, धरता मनमां अति शोक ॥ ज० ॥ १० ॥ पुर बाहिर आव्यां दंपती, देवकुलमां कीध आवास ॥ पतिपद उत्संगें लेइ करी, उल्लासें निज करें तास ॥ ज० ॥ ॥ ११ ॥ ते देखी दूरथी नृप जयें, स्तवना करे नारीनी ताम ॥ नृपनी निंदा करे सहु जना, नृप माहा अधर्मनुं धाम ॥ ज० ॥ १२ ॥ हवे पूछे जिल्ल निज नारिनें, तुं रूपें रंजसमान ॥ केम मुजनें आपी तुज पिता, तव सुं

एम कही बोलावे ताम ॥ विजय सुंदरी निज सुता, कहे तेहनें नृप आम ॥ ॥ क० ॥ १४ ॥ जिनधर्मे तुज सुख होये, तो जोगवो जोग रसाल ॥ ए तुज जर्त्ता में आपियो, कर्म फल्यां ततकाल ॥ क० ॥ १५ ॥ एहथी तुजने बहु सुख थशे, तव बोली तेह वाणि ॥ तातनुं वचन प्रमाण छे, खेद नहीं इण गण ॥ क० ॥ १६ ॥ कुलस्त्रीनो एह धर्म छे, तातें दीधो जे कंत ॥ जाणे देव तणी परें, आराधे मन संत ॥ क० ॥ १७ ॥ पूरवजवना संबंध थी, जो पण दीठो कुरूप ॥ पण तस प्रेम घणो धरे, निह्न पण तदनु रूप ॥ क० ॥ १८ ॥ कोइक ज्योतिषी तिहां रह्यो, ढानी कहे एम वात ॥ एह मुहूर्त्तें परणे जिके, ते होये चक्री विख्यात ॥ क० ॥ १९ ॥ राणी होये ते तेहनी, स्त्रीमां उत्तम नार ॥ एहनी खबर न को पडे, शुं फल होशे ए वार ॥ क० ॥ २० ॥ ईर्ष्या कोपथी नृपति, साहस अतिशय धार ॥ राय सजा मांहे एम कहे, सांजलजो निरधार ॥ क० ॥ २१ ॥ वरना वेषनें सारिखो, लावो वधूनो रे वेष ॥ तव ते पुरुष लेवा गया, रायनी आण विशेष ॥ ॥ क० ॥ २२ ॥ वलय लाव्या रे कथीरनां, सोहासणीनुं निशाण ॥ कोईक नीचना घरथकी, साडी लाव्या पुराण ॥ क० ॥ २३ ॥ पूरव वेश मूकी करी, नवलो पहेरो ते वेष ॥ निह्न कहे तव रायनें, शी ए वात नरेश ॥ ॥ क० ॥ २४ ॥ मणिघंटा नवि सोहियें, रासन्न केरे रे कंठ ॥ काणी कूडीनें सामली, दासी द्यो योग्य वंठ ॥ क० ॥ २५ ॥ कागनें योग्य ते कागडी, हंसली पामे न सोह ॥ निह्न कहे पण रायनें, नवि लागो पडिबोह ॥ ॥ क० ॥ २६ ॥ विजयसुंदरी ए धन्य छे, कीधो नवि मन खेद ॥ एहवी जीड पडे थके, नवि पामी निरवेद ॥ क० ॥ २७ ॥ सत्तरमी त्रीजा खंम मां, पद्मविजय कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां, सुणतां मंगलमाल ॥ ॥ क० ॥ २८ ॥ सर्व गाथा ॥ ५५४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ रूपसार रंजातणुं, करी धाता लेई केलि ॥ तेहनें पवनसी लघु तुमें, निह्न कहे करि मन जेलि ॥ १ ॥ चंद्रमुखी चोशठ कला, पद्मनेत्रापि कराव ॥ धर्मजाण धर्मचारिणी, जाग्यवंती जलो जाव ॥ २ ॥ राजहंस गति राजती, रति जींते रूपेण ॥ विनयादिक गुणवंत ए, सोजागी सुस्वरेण ॥ ३ ॥ निह्न किहां दोजागीयो, करीयारोनें कुरूप ॥ लक्षण हीण ल

दरी तणा ॥ सा० ॥ गुण स्तवे मलि मलि थोक ॥ गु० ॥ ३ ॥ पण वीजी कन्या हसें ॥ सा० ॥ पेखे नरपति ताम ॥ गु० ॥ कारण पूछे नृपति ॥ ॥ सा० ॥ हसवुं शे थयुं आम ॥ गु० ॥ ४ ॥ कुमरी कहे कांइ नही ॥ ॥ सा० ॥ तव आग्रह करे नृप ॥ गु० ॥ विजयसुंदरी तव कहे ॥ सा० ॥ सांजलो तात अनूप ॥ गु० ॥ ५ ॥ बृहस्पति जींत्यो बुद्धिथी ॥ सा० ॥ नीति शास्त्रना जाण ॥ गु० ॥ तुमें अति निपुण बो लोकमां ॥ सा० ॥ जं गमां अधिक विन्नाण ॥ गु० ॥ ६ ॥ मुज नगिनी पद सांजली ॥ सा० ॥ मोद लह्या अतिरेक ॥ गु० ॥ तत्त्व न समजे ए सना ॥ सा० ॥ प्रशंसे अ विवेक ॥ गु० ॥ ७ ॥ तत्त्व अजाणने आगलें ॥ सा० ॥ जाण ते वर्त्ते केम ॥ गु० ॥ एहवुं अचरज देखीने ॥ सा० ॥ मुज हसवुं थयुं एम ॥ गु० ॥ ॥ ८ ॥ राय कहे कुमरी सुणो ॥ सा० ॥ तुमें तत्त्वनां जाण ॥ गु० ॥ पू रो समस्या हवे तुमें ॥ सा० ॥ जोइयें तुम विन्नाण ॥ गु० ॥ ए ॥ नृप आणा हवे सही करी ॥ सा० ॥ तत्त्ववासित मति जास ॥ गु० ॥ हरखी समस्या पूरती ॥ सा० ॥ जैनागम अन्यास ॥ गु० ॥ १० ॥ डुहो ॥ जि णवर जसु हियडे वसे, जिण मुणि जिण तत्ताइं ॥ ते पंमिय जिण नन य नव, पिरकइ सुरक सयाइं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ एह समस्या सांजली ॥ ॥ सा० ॥ पातक पाम्या हर्ष ॥ गु० ॥ सनालोक पण कोइ जना ॥ सा० ॥ हरख्या अति उत्कर्ष ॥ गु० ॥ ११ ॥ पण नृपतिना नयथकी ॥ सा० ॥ मौ न करी रह्या तेह ॥ गु० ॥ चमत्कार चित्त पामीया ॥ सा० ॥ अतिशय ध रता नेह ॥ गु० ॥ १२ ॥ नृप पूछे सहु लोकनें ॥ सा० ॥ बोलो तुमें सहु साच ॥ गु० ॥ केहनी समस्या तत्त्वनी ॥ सा० ॥ केहनी रूडी वाच ॥ गु० ॥ ॥ १३ ॥ कहे ते आद्य साची कही ॥ सा० ॥ अनुनव सिद्ध ए अर्थ ॥ गु० ॥ विजयसुंदरीनें कहे ॥ सा० ॥ नृपति तें कयुं व्यर्थ ॥ गु० ॥ १४ ॥ रे कटु नाषिणी तुं सुता ॥ सा० ॥ बोले लोक विरुद्ध ॥ गु० ॥ पुत्री वैरिणी ना वथी ॥ सा० ॥ एम बोले नृप क्रुद्ध ॥ गु० ॥ १५ ॥ कुमरी कहे में तुम क ह्युं ॥ सा० ॥ तत्त्व न जाणे लोक ॥ गु० ॥ हाजी हा सघला करे ॥ सा० ॥ रूडुं मनावे फोक ॥ गु० ॥ १६ ॥ कोपें राजा कलकली ॥ सा० ॥ कहे तुं कोण पसाय ॥ गु० ॥ सुख नोगवे तव में कह्युं ॥ सा० ॥ कर्म प्रसादें राय ॥ गु० ॥ १७ ॥ सहुये निज निज कर्मथी ॥ सा० ॥ सुख डुःख लहे

दरी कहे धरी शान ॥ न० ॥ १३ ॥ कहे महोटी कथा ते एहनी, सांजलो पद्मरथ नूपाल ॥ पद्मपुरमां राज्य करे सदा, अरि काल सबल करवाल ॥ न० ॥ १४ ॥ प्रजानें सुखदायी सदा, पण नास्तिक मतमां सोय ॥ राणी दोय अतिशय वालही,पदमा कमला नामें होय ॥ न० ॥ १५ ॥प दमा पतिधर्म ते आचरे, कमला जैन गुरु उपदेश ॥ वली श्रावककुलमां ऊपनी, तेणें जैनधर्म सुविशेष ॥ न० ॥ १६ ॥ पद्म नामें पुत्र पद्मा तणो, जयसुंदरी पुत्री एक ॥ कमलानें तो एक पुत्रिका, नामें विजयसुंदरी सुवि वेक ॥ न० ॥ १७ ॥ दोय कुमरी धाव पाली जती, वधतां थइ नणवा यो ग्य ॥ मिथ्यात्वी पाठकनी कनें, पद्मा मूके ते अयोग्य ॥ न० ॥ १८ ॥ जे जै नकलाचारय होय, निज पुत्री कमला मूके ॥ तस पासें शास्त्र अन्यासवा, कांय विनय विवेक न चूके ॥ न० ॥ १९ ॥ जयसुंदरी मात संयोगथी, ते म अध्यापक अज्ञान ॥ तेणें कौलधर्मी थइ आकरी, वीजी जैनधर्मे वि ज्ञान ॥ न० ॥ २० ॥ ते पाठक विहुं तस मातनें, सोंपे लही यौवन वेद ॥ धन आपे अध्यापक प्रत्यें, करे प्रीतिवंत गतखेद ॥ न० ॥ २१ ॥ त्रीजे खंमें अढारमी, कही पद्मविजय वर ढाल ॥ दृष्टिराग तजो तुमें नविज ना, दृष्टिरागथी बहुजंजाल ॥ न० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ५८३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ शणगारी बेंहू सुता, पाठकशुं नृप पास ॥ चिंता वरनी चिंतवी, नण वानो अन्यास ॥ १ ॥ जोवा मूके जालवी, माता मनमां आण ॥ पोहोती नरपति पाउले, सकलकला गुन जाण ॥ २ ॥ बेसाडी उत्संग बिहु, पूछे पा व स्वरूप ॥ पाठक बोलावी पछे, नव नव प्रश्न अनूप ॥ ३ ॥

॥ ढाल उगणीशमी ॥ साहेलडीयांनी देशी ॥

॥ पूछे नृप निजनंदिनी ॥ साहेलडीयां ॥ पद समस्यानुं एक ॥ गुण वे लडीयां ॥ कहे तमें जो निज शास्त्रमां ॥ सा० ॥ मति कीधी होये छेक ॥ गु० ॥ १ ॥ (समस्यापदं यथा ॥ पेस्कई सुरक सयाइं) ते जयसुंदरी सांजली ॥ ॥ सा० ॥ तात धरममां जेह ॥ गु० ॥ पद समस्यानुं पूरती ॥ सा० ॥ सांन लो आगल तेह ॥ गु० ॥ २ ॥ उक्तो ॥ तुह संकर तुह बंन निव, तुह पुरि सुत्तम ताय ॥ तुझ पसाइण सव पया, पेस्कई सुरक सयाइं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ सांनली राजा रंजियो ॥ सा० ॥ सहु परखदनां लोक ॥ गु० ॥ पाठकनें सुं

दरी तणा ॥ सा० ॥ गुण स्तवे मलि मलि थोक ॥ गु० ॥ ३ ॥ पण बीजी कन्या हर्शे ॥ सा० ॥ पेखे नरपति ताम ॥ गु० ॥ कारण पूछे नृपति ॥ ॥ सा० ॥ हसवुं शे थयुं आम ॥ गु० ॥ ४ ॥ कुमरी कहे कांइ नही ॥ ॥ सा० ॥ तव आग्रह करे नृप ॥ गु० ॥ विजयसुंदरी तव कहे ॥ सा० ॥ सांजलो तात अनूप ॥ गु० ॥ ५ ॥ बृहस्पति जींत्यो बुद्धिथी ॥ सा० ॥ नीति शास्त्रना जाण ॥ गु० ॥ तुमें अति निपुण गो लोकमां ॥ सा० ॥ जगमां अधिक विन्नाण ॥ गु० ॥ ६ ॥ मुज नगिनी पद सांजली ॥ सा० ॥ मोद लह्या अतिरेक ॥ गु० ॥ तत्त्व न समजे ए सना ॥ सा० ॥ प्रशंसे अविवेक ॥ गु० ॥ ७ ॥ तत्त्व अजाणने आगलें ॥ सा०॥ जाण ते वर्त्ते केम ॥ गु० ॥ एहवुं अचरज देखीने ॥ सा० ॥ मुज हसवुं थयुं एम ॥ गु० ॥ ॥ ८ ॥ राय कहे कुमरी सुणो ॥ सा० ॥ तुमें तत्त्वनां जाण ॥ गु० ॥ पूरो समस्या हवे तुमें ॥ सा० ॥ जोइयें तुम विन्नाण ॥ गु० ॥ ९ ॥ नृप आणा हवे सही करी ॥ सा० ॥ तत्त्ववासित मति जास ॥ गु० ॥ हरखी समस्या पूरती ॥ सा० ॥ जैनागम अन्यास ॥ गु० ॥ १० ॥ डुहो ॥ जिणवर जसु हियडे वसे, जिण सुणि जिण तत्ताइं ॥ ते पंमिय जिण जनय नव, पिरकइ सुरक सयाइं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ एह समस्या सांजली ॥ ॥ सा० ॥ पातक पाम्या हर्ष ॥ गु० ॥ सनालोक पण कोइ जना ॥ सा० ॥ हरख्या अति उत्कर्ष ॥ गु० ॥ ११ ॥ पण नृपतिना नयथकी ॥ सा० ॥ मौन करी रह्या तेह ॥ गु० ॥ चमत्कार चित्त पामीया ॥ सा० ॥ अतिशय धरता नेह ॥ गु० ॥ १२ ॥ नृप पूछे सहु लोकनें ॥ सा० ॥ बोलो तुमें सहु साच ॥ गु० ॥ केहनी समस्या तत्त्वनी ॥ सा० ॥ केहनी रूडी वाच ॥गु०॥ ॥ १३ ॥ कहे ते आद्य साची कही ॥ सा० ॥ अनुनव सिद्ध ए अर्थ ॥गु०॥ विजयसुंदरीनें कहे ॥ सा० ॥ नृपति तें कह्युं व्यर्थ ॥ गु० ॥ १४ ॥ रे कटु नाषिणी तुं सुता ॥ सा० ॥ बोले लोक विरुद्ध ॥ गु० ॥ पुत्री वैरिणी नावथी ॥ सा० ॥ एम बोले नृप क्रुद्ध ॥ गु० ॥ १५ ॥ कुमरी कहे में तुम कह्युं ॥ सा० ॥ तत्त्व न जाणे लोक ॥ गु० ॥ हाजी हा सघला करे ॥सा०॥ रूडुं मनावे फोक ॥ गु० ॥ १६ ॥ कोपें राजा कलकली ॥ सा० ॥ कहे तुं कोण पसाय ॥ गु० ॥ सुख नोगवे तव में कह्युं ॥ सा० ॥ कर्म प्रसादें राय ॥ गु० ॥ १७ ॥ सहुये निज निज कर्मथी ॥ सा० ॥ सुख डुःख लहे

दरी कहे धरी शान ॥ ज० ॥ १३ ॥ कहे महोटी कथा ने एहनी, सांजलो पद्मरथ जूपाल ॥ पद्मपुरमां राज्य करे सदा, अरि काल सबल करवाल ॥ ज० ॥ १४ ॥ प्रजानें सुखदायी सदा, पण नास्तिक मतमां सोय ॥ राणी दोय अतिशय वालही,पदमा कमला नामें होय ॥ ज० ॥ १५ ॥प दमा पतिधर्म ते आचरे, कमला जैन गुरु उपदेश ॥ वली श्रावककुलमां ऊपनी, तेणें जैनधर्म सुविशेष ॥ ज० ॥ १६ ॥ पद्म नामें पुत्र पद्मा तणो, जयसुंदरी पुत्री एक ॥ कमलानें तो एक पुत्रिका, नामें विजयसुंदरी सुवि वेक ॥ ज० ॥ १७ ॥ दोय कुमरी धाव पाली जती, वधतां थइ जणवा यो ग्य ॥ मिथ्यात्वी पाठकनी कनें, पद्मा मूके ते अयोग्य ॥ ज० ॥ १८ ॥ जे जै नकलाचारय होय, निज पुत्री कमला मूके ॥ तस पासें शास्त्र अन्यासवा, कांय विनय विवेक न चूके ॥ ज० ॥ १९ ॥ जयसुंदरी मात संयोगथी, ते म अध्यापक अज्ञान ॥ तेणें कौलधर्मी थइ आकरी, वीजी जैनधर्म वि ज्ञान ॥ ज० ॥ २० ॥ ते पाठक बिहुं तस मातनें, सोंपे लही यौवन वेद ॥ धन आपे अध्यापक प्रत्यें, करे प्रीतिवंत गतखेद ॥ ज० ॥ २१ ॥ त्रीजे खंमें अढारमी, कही पद्मविजय वर ढाल ॥ दृष्टिराग तजो तुमें जविज ना, दृष्टिरागथी बहुजंजाल ॥ ज० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ५०३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ शणगारी बेंहू सुता, पाठकशुं नृप पास ॥ चिंता वरनी चिंतवी, जण वानो अन्यास ॥ १ ॥ जोवा मूके जालवी, माता मनमां आण ॥ पोहोती नरपति पाउले, सकलकला गुन जाण ॥ २ ॥ बेसाडी उत्संग बिहु, पूछे पा ठ स्वरूप ॥ पाठक बोलावी पछे, नव नव प्रश्न अनूप ॥ ३ ॥

॥ ढाल उगणीशमी ॥ साहेलडीयांनी देशी ॥

॥ पूछे नृप निजनंदिनी ॥ साहेलडीयां ॥ पद समस्यानुं एक ॥ गुण वे लडीयां ॥ कहे तमें जो निज शास्त्रमां ॥ सा० ॥ मति कीधी होये छेक ॥गु० ॥ १ ॥ (समस्यापदं यथा ॥ पेखई सुख सयाइं) ते जयसुंदरी सांजली ॥ ॥ सा० ॥ तात धरममां जेह ॥ गु० ॥ पद समस्यानुं पूरती ॥ सा० ॥ सांज लो आगल तेह ॥ गु० ॥ २ ॥ उहो ॥ तुह संकर तुह बंन निव, तुह पुरि सुत्तम ताय ॥ तुज्झ पसाइण सव पया, पेखई सुख सयाइं ॥१॥ पूर्वढाल॥ सांजली राजा रंजियो ॥ सा० ॥ सहु परखदनां लोक ॥ गु० ॥ पाठकनें सुं

जणाउ एम रे ॥ न० ॥क०॥२॥ अंधनें आपो निन्ननें रे लो, ए पूरव नव वाणि रे ॥ न० ॥ आलोयुं ने पडिक्कम्युं रे लो, पश्चात्ताप बहु आणि रे ॥ ॥ न० ॥ क०॥३॥ पण एक नवें जे नोगवे रे लो, तेटलुं रह्युं तस शेप रे ॥न०॥ कर्म कस्यां बूटे नहीं रे लो,नोगव्या विण ते अशेप रे ॥न०॥क०॥ ॥ ४ ॥ निन्ननें दीधी आंख्यो गई रे लो, एणे नवें आव्युं कर्म रे ॥न०॥ आशातना मुनिराजनी रे लो,महा डुःखदायी अधर्म रे ॥ न०॥ क०॥ ५ ॥ रायें मूक्या मानवी रे लो,ठाना जोवा काज रे ॥न०॥ सर्व वृत्तांत जई कह्युं रे लो, सांनली हरख्यो राज रे ॥ न०॥क०॥ ६ ॥ क्रोधी निर्दयीनें कदा रे लो, नवि होये पश्चात्ताप रे ॥ न० ॥ कमला पूरवें मोकली रे लो,कार्य उ देशी आप रे ॥न०॥क०॥७॥ इष्ट विघन शंका धरी रे लो, कपट कस्युं एम राय रे ॥ न० ॥ कार्य करी आवी हवे रे लो, वात सुणे सवि माय रे ॥ ॥न०॥क०॥ ८ ॥ मूर्छा पामीनें पडी रे लो,शीतादिक उपचार रे ॥न०॥ दा सीयें कीधो तेहथी रे लो, पामी चैतन्य तेवार रे ॥न०॥क०॥९॥ करिय विलाप रुदन करे रे लो,पुत्री जोवा काम रे ॥न०॥ रातें दोय दासी लइ रे लो, पोहोती तिणहिज ठाम रे ॥न०॥क०॥१०॥ दूरथी जोइ पाठी वली रे लो, क्रोधनें डुःख अपार रे ॥ न० ॥ रायनें कहे धिग डुर्मति रे लो, सर्व विरु६ करनार रे ॥न०॥क०॥११॥ चंमाल पण न करे कदा रे लो,निज संतानशुं द्वेप रे ॥ न० ॥ पुत्री विटंबी माहरी रे लो, वली अंधित सुविशेप रे ॥ न० ॥क०॥१२॥ वात यथार्थ तुजने कही रे लो, श्यो कीधो अन्याय रे ॥ न० ॥ निंदित कर्मथी तुजनें रे लो, नरकें निश्चय ठाय रे ॥ न०॥क०॥ ॥१३॥ पेट बुरी नाखी मरुं रें लो,एम कही नाखे जाम रे ॥ न०॥ ते बुरी उदाली लिये रे लो,नरपति वलथी ताम रे ॥न०॥क०॥१४॥ नृप कहे सुण सुंदरी रे लो, क्रोधें ए कस्युं काम रे ॥ न० ॥ हवे लोक सचिव निंदा करे रे लो, पग पग माहरी आम रे ॥न०॥क०॥१५॥ ताहरी पण प्रेरणाथकी रे लो, पश्चात्ताप घणो थाय रे ॥ न० ॥ विहाणे शोध करावशुं रे लो, आण शुं आपणे ठाय रे ॥न०॥क०॥१६॥ औषध माहरे ठे वली रे लो, अंधापो जेणें जाय रे ॥ न० ॥ ते औपधें साजी करुं रे लो, चिंता न कर तुं कांय रे ॥न०॥क०॥१७॥ देशुं कोइ नृप पुत्रनें रे लो, क्रोधें जे कस्युं काम रे ॥न० ॥ तेह प्रमाण नहीं कदा रे लो, आश्वासें नृप वाम रे ॥न०॥क०॥१८॥ राति

संसार ॥ गु० ॥ तुम प्रसाद जो सुख होये ॥ सा० ॥ केइ डुःखीया केम धार ॥ गु० ॥ १७ ॥ तव राजा क्रोधें चढ्यो ॥ सा० ॥ कहे नरता कोण तुऊ ॥ गु० ॥ में कह्युं जे तुमें आपशो ॥ सा० ॥ देव समान ते मुऊ ॥ ॥ गु० ॥ १९ ॥ कर्म प्रमाणें आपशो ॥ सा० ॥ तुमें पण मुज नरतार ॥ ॥ गु० ॥ क्रोधें कहे मुज जा परी ॥ सा० ॥ आवजे तेडुं तेवार ॥ गु० ॥ ॥ २० ॥ निज थानक वेहु अमें गया ॥ सा० ॥ निज नटनें कहे राय ॥ गु० ॥ डुःखीयो जे कोइ नयरमां ॥ सा० ॥ ते लावो मुज पाय ॥ गु० ॥ ॥ २१ ॥ ते पण तुमनें लावीया ॥ सा० ॥ आगल जाण्यो सर्व ॥ गु० ॥ एम सांजली विस्मय लह्यो ॥ सा० ॥ निन्न कहे अहो गर्व ॥ गु० ॥ २२ ॥ निज अपत्यनें कपरें ॥ सा० ॥ केवुं अकारय कीध ॥ गु० ॥ नास्तिकनें कहो केम होये ॥ सा० ॥ जैनविवेक प्रसिद्ध ॥ गु० ॥ २३ ॥ निन्न विचारे चित्तमां ॥ सा० ॥ शील तथा वली स्नेह ॥ गु० ॥ जोउं दृढता एहमां ॥ सा० ॥ धर्मस्नेह वली जेह ॥ गु० ॥ २४ ॥ त्रीजे खंमें ए कही ॥ सा० ॥ उंगणीशमी वर ढाल ॥ गु० ॥ पद्मविजयें सोहामणी ॥ सा० ॥ धर्में मंगलमाल ॥ गु० ॥ २५ ॥ सर्वगाथा ॥ ६११ ॥

॥ दोहा ॥

॥ तांबूल नखिगुं तेहवुं, विष व्याप्युं विकराल ॥ आंख व्यथा थइ आकरी, निन्ननें कहे जुउ नाल ॥ १ ॥ नृप पासें विष छे नवल, जेहथी आंख्यो जाय ॥ त्रण पोहोरमां तत्क्षणें, वेदन अति वेदाय ॥ २ ॥ विश्वासी वैरी नणी, आपे अवनीपाल ॥ तंबोलमांहे तेहनें, कोपें थई कराल ॥ ३ ॥ में परसाद जाण्यो मनें, खाधुं तंबोल खांत ॥ कर्म शुनाशुन कीधलां, आवे उदय एकांत ॥ ४ ॥ आंख्यो जाशे आफणी, दैवें अंधापो दीध ॥ केम तुम सेवा करणनो, थशे मनोरथ सिद्ध ॥ ५ ॥ नारनूत तुमने नई, वधि वेदन तेणी वार ॥ रोवे तेम रोवरावती, वनमां पशुनां बाल ॥ ६ ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ कोयलो पर्वत धूंधलो रे लो ॥ ए देशी ॥

॥ कर्म म करजो प्राणीया रे लो, कर्म कर्यां नवि जाय रे ॥ नविकजन ॥ वचन योगें करी बांधीयां रे लो, काययोगें नोगवाय रे ॥ न० ॥ १ ॥ कर्म म करजो प्राणीया रे लो ॥ ए आंकणी ॥ मंत्रीनी स्त्रीयें मुनिनें कह्युं रे लो, नवि सूजे तुम केम रे ॥ न० ॥ एहवा सूर्य प्रकाशमां रे लो, अंध

जणाउं एम रे ॥ ज० ॥क०॥२॥ अंधनें आपो निज्ञनें रे लो, ए पूरव जव वाणि रे ॥ ज० ॥ आलोयुं ने पडिक्कम्युं रे लो, पश्चात्ताप बहु आणि रे ॥ ॥ ज० ॥ क०॥३॥ पण एक जवें जे जोगवे रे लो, तेटलुं रह्युं तस शेष रे ॥ज०॥ कर्म कस्यां बूटे नहीं रे लो,जोगव्या विण ते अशेष रे ॥ज०॥क०॥ ॥ ४ ॥ निज्ञनें दीधी आंख्यो गई रे लो, एणे जवें आव्युं कर्म रे ॥ज०॥ आशातना मुनिराजनी रे लो,महा डुःखदायी अधर्म रे ॥ ज०॥ क०॥ ५ ॥ रायें मूक्या मानवी रे लो,ठाना जोवा काज रे ॥ज०॥ सर्व वृत्तांत जई कह्युं रे लो, सांजली हरख्यो राज रे ॥ ज०॥क०॥ ६ ॥ क्रोधी निर्दयीनें कदा रे लो, नवि होये पश्चात्ताप रे ॥ ज० ॥ कमला पूरवें मोकली रे लो,कार्य उ देशी आप रे ॥ज०॥क०॥७॥ इष्ट विघन शंका धरी रे लो, कपट कस्युं एम राय रे ॥ ज० ॥ कार्य करी आवी हवे रे लो, वात सुणे सवि माय रे ॥ ॥ज०॥क०॥ ८ ॥ मूर्बा पामीनें पडी रे लो,शीतादिक उपचार रे ॥ज०॥ दासीयें कीधो तेहथी रे लो, पामी चैतन्य तेवार रे ॥ज०॥क०॥ए॥ करिय विलाप रुदन करे रे लो,पुत्री जोवा काम रे ॥ज०॥ रातें दोय दासी लइ रे लो, पोहोती तिणद्विज गाम रे ॥ज०॥क०॥१०॥ दूरथी जोइ पाठी वली रे लो, क्रोधनें डुःख अपार रे ॥ ज० ॥ रायनें कहे धिग डुर्मति रे लो, सर्व विरुद्ध करनार रे ॥ज०॥क०॥११॥ चंमाल पण न करे कदा रे लो,निज संतानशुं द्वेप रे ॥ ज० ॥ पुत्री विटंबी माहरी रे लो, वली अंधित सुविशेप रे ॥ ज० ॥क०॥१२॥ वात यथार्थ तुजने कही रे लो, श्यो कीधो अन्याय रे ॥ ज० ॥ निंदित कर्मथी तुज्ञनें रे लो, नरकें निश्चय जाय रे ॥ ज०॥क०॥ ॥१३॥ पेट बुरी नाखी मरुं रें लो,एम कही नाखे जाम रे ॥ ज०॥ ते बुरी उदाली लिये रे लो,नरपति बलथी ताम रे ॥ज०॥क०॥१४॥ नृप कहे सुण सुंदरी रे लो, क्रोधें ए कस्युं काम रे ॥ ज० ॥ हवे लोक सचिव निंदा करे रे लो, पग पग माहरी आम रे ॥ज०॥क०॥१५॥ ताहरी पण प्रेरणाथकी रे लो, पश्चात्ताप घणो थाय रे ॥ ज० ॥ विहाणे शोध करावशुं रे लो, आणशुं आपणे ठाय रे ॥ज०॥क०॥१६॥ औषध माहरे ठे वली रे लो, अंधापो जेणें जाय रे ॥ ज० ॥ ते औषधें साजी करुं रे लो, चिंता न कर तुं कांय रे ॥ज०॥क०॥१७॥ देशुं कोइ नृप पुत्रनें रे लो, क्रोधें जे कस्युं काम रे ॥ज० ॥ तेह प्रमाण नहीं कदा रे लो, आश्वासें नृप वाम रे ॥ज०॥क०॥१८॥ राति

संसार ॥ गु० ॥ तुम प्रसाद जो सुख होये ॥ सा० ॥ केइ दुःखीया केम धार ॥ गु० ॥ १८ ॥ तव राजा क्रोधें चढ्यो ॥ सा० ॥ कहे नरता कोण तुऊ ॥ गु० ॥ में कह्युं जे तुमें आपशो ॥ सा० ॥ देव समान ते मुऊ ॥ ॥ गु० ॥ १९ ॥ कर्म प्रमाणें आपशो ॥ सा० ॥ तुमें पण मुज नरतार ॥ ॥ गु० ॥ क्रोधें कहे मुज जा परी ॥ सा० ॥ आवजे तेडुं तेवार ॥ गु० ॥ ॥ २० ॥ निज थानक वेहु अमें गया ॥ सा० ॥ निज नटनें कहे राय ॥ गु० ॥ दुःखीयो जे कोइ नयरमां ॥ सा० ॥ ते लावो मुज पाय ॥गु०॥ ॥ २१ ॥ ते पण तुमनें लावीया ॥ सा० ॥ आगल जाणो सर्व ॥ गु० ॥ एम सांनली विस्मय लह्यो ॥ सा०॥ निन्न कहे अहो गर्व ॥ गु० ॥ २२॥ निज अपत्यनें कपरें ॥ सा० ॥ केवुं अकारय कीध ॥ गु० ॥ नास्तिकनें कह्यो केम होये ॥ सा० ॥ जैनविवेक प्रसिद्ध ॥ गु० ॥ २३ ॥ निन्न विचारे चित्तमां ॥ सा० ॥ शील तथा वली स्नेह ॥ गु० ॥ जोउं दृढता एहमां ॥ सा० ॥ धर्मस्नेह वली जेह ॥ गु० ॥ २४ ॥ त्रीजे खंमें ए कही ॥सा०॥ उगणीशमी वर ढाल ॥ गु० ॥ पद्मविजयें सोहामणी ॥ सा० ॥ धर्मे मंगलमाल ॥ गु० ॥ २५ ॥ सर्वगाथा ॥ ६११ ॥

॥ दोहा ॥

॥ तांबूल नखियुं तेहवुं, विष व्याप्युं विकराल ॥ आंख व्यथा थइ आकरी, निन्ननें कहे जुउ नाल ॥ १ ॥ नृप पासें विष ठे नवल, जेहथी आंख्यो जाय ॥ त्रण पोहोरमां ततक्षणें, वेदन अति वेदाय ॥ २॥ विश्वासी वैरी नणी, आपे अवनीपाल ॥ तंबोलमांहे तेहनें, कोपें थई कराल ॥ ३ ॥ में परसाद जाण्यो मनें, खाधुं तंबोल खांत ॥ कर्म शुनाशुन कीधलां, आवे उदय एकांत ॥ ४ ॥ आंख्यो जाशे आपणी, दैवें अंधापो दीध ॥ केम तुम सेवा करणनो, थशे मनोरथ सिद्ध ॥ ५ ॥ नारनूत तुमने नई, वधि वेदन तेणी वार ॥ रोवे तेम रोवरावती, वनमां पशुनां बाल ॥ ६ ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ कोयलो पर्वत धूंधलो रे लो ॥ ए देशी ॥

॥ कर्म म करजो प्राणीया रे लो, कर्म कर्यां नवि जाय रे ॥ नविकजन ॥ वचन योगें करी बांधीयां रे लो, काययोगें नोगवाय रे ॥ न०॥ १ ॥ कर्म म करजो प्राणीया रे लो ॥ ए आंकणी ॥ मंत्रीनी स्त्रीयें मुनिनें कह्युं रे लो, नवि सूजे तुम केम रे ॥ न० ॥ एहवा सूर्य प्रकाशमां रे लो, अंध

ही घणो, गदगद बोले वाणि प्रीतम ॥ शुं बोल्या ए स्वामिजी, वज्राघात समान प्रीतम ॥ का० ॥ ६ ॥ कुलवंती कन्या होये,एकज वार देवाय प्रीतम ॥ जेह पितायें पति दियो, प्राणांतें न ठंमाय प्रीतम ॥ का० ॥ ७ ॥ तुमें पति तुमें मति तुमें गति, जेहवा होय ते प्रमाण प्रीनम ।। शरण तुमारुं आदर्युं,अवर ते भ्रात समान प्रीतम ।। का०॥ ८ ॥ जो तुमें ठांमी मुजनें, तो संयम आधार प्रीतम ॥ अथवा अगनि शरण करुं, वीजो को न विचार प्रीतम ॥ का० ॥ ए ॥ वात सुणी निज्ञ चिंतवे, दृढशीलनें वली स्नेह सुंदरी ॥ आनंदनर निज्ञ वोलियो, सांजलजे कहुं जेह सुंदरी ॥ का० ॥ ॥ १० ॥ तूठी तुज कुलदेवता, वली मातानी आशीष सुंदरी ॥ पुण्य जागतां तादृशां, तादृशी चढती जगीश सुंदरी ॥ का० ॥ ११ ॥ कारिमो निज्ञ हुं कारणें, स्वाजाविक जो रूप सुंदरी ॥ देखाडुं तुज माहरुं, जो हवे शुद्ध स्वरूप सुंदरी ॥ का० ॥ १२ ॥ एम कही स्वाजाविक करे, अप्सरा मोहे जास सुंदरी ॥ तो नारीनुं कहेवुं किश्युं, देदीप्यमान आजास सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ १३ ॥ रत्नोद्योतें देखी करी, आणंद अंग न माय सुंदरी ॥ विजयसुंदरी एम कहे, ए शुं कौतुक थाय प्रीतम ॥ का० ॥ १४ ॥ नाना रूपें सुरपरें, मुंजवो केणी परें स्वामि प्रीतम ॥ कुमर कहे सुण सुंदरी, क्षत्रियसुत अजिराम सुंदरी ॥ का० ॥ १५ ॥ देश जमुं कौतुकथकी, कला विज्ञाननें हेत सुंदरी ॥ विविध देश जमतां थकां, थयो वहु कला उपेत सुंदरी ॥ का० ॥ १६ ॥ विविध महिमावंत औषधि, पाम्यो वली देवें दीध सुंदरी ॥ आकाशगामि ढोलीयो, जिणथी मुज प्रसिद्ध सुंदरी ॥ का० ॥१७॥ गिरि नगरादिक वहु जोउं, रत्नपुरें एकदिन्न सुंदरी ॥ नृपपुत्री रतिसुंदरी, परण्यो पूरव पुण्य सुंदरी ॥का०॥१८॥ नृप दीधा आवासमां जोगवुं जोग रसाल सुंदरी ॥ स्वप्न दीठुं में अन्यदा,निक्रूप विकराल सुंदरी ॥का०॥१ए॥ सुपन विघातनें कारणें, निज्ञरूप कर्युं एह सुंदरी ॥ राजपुरुष मुज लावीया, तुं जाणे सवि तेह सुंदरी ॥का०॥२०॥ वात कही ते सांजली, हर्षे विकश्वर देह सुंदरी ॥ ज्ञानी वचन साचुं थयुं, एम कहे अहो न संदेह प्रीतम ॥का०॥॥२१॥ सुणो एक दिन उद्यानमां,आव्या ज्ञान निधान प्रीतम ॥ गुरु गुणवंत दासीयें कह्या, हुं गई तेह उद्यान प्रीतम ॥का०॥२२॥ माता सहित वंदन करी, देशना अंतें मात प्रीतम ॥ मुज पुत्री वर कोण थशे,

गई डुःखनी तिहां रे लो, विजयसुंदरीनां नयण रे ॥ न०॥ कामलो हवे निज कर्मनें रे लो,निंदे डुःखिणी वयण रे ॥न०॥क०॥१९॥ के जिनवर आशातना रे लो, अथवा गुरु गुणवंत रे ॥ न० ॥ गर्हा करी अथ संयनें रे लो, उपड्व कीध अनंत रे ॥न०॥क०॥२०॥ हा मुज जनम शाने थयो रे लो, शानें पाली मुऊ रे ॥ न०॥ केम नवि मूइ बालक थकां रे लो,पण ए कर्म तुं गुऊ रे ॥न०॥क०॥२१॥ एम ते विलपती देखिनें रे लो,कृपा उपनी तव जिह्न रे ॥ न० ॥ औषधि पाणीयें सऊ करे रे लो, आंख्यो थइ ते नवह्न रे ॥न०॥क०॥२२॥ वेदना नागी सर्वथा रे लो,दिव्य नेत्र थई तेह रे ॥न०॥ चिंतवे कर्मथकी लह्यो रे लो, एहवो नरता एह रे ॥ न०॥क०॥२३॥ त्रीजे खंमें वीशमी रे लो, पद्मविजय कही ढाल रे ॥न०॥ श्रीजयानंदना रासमां रे लो, पुएयें मंगल माल रे ॥ न० ॥ क० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ६४१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ देवसानिध्य पण दोहली,एहवो औषधि एह ॥ जिह्न कहे जमतां थकां, गिरि उपर गुणगेह ॥ १॥ काष्ठनें अर्थे किहांयके,वृद्ध शबरनें वयण॥ औषधि महिमा उलखुं,निरखी चिन्हें नयण ॥ २ ॥ लीधी विधि पूर्वक लता, राखी रूडी रीति ॥ हमणां ते सफली हुइ, नेत्रदाननें नीति ॥ ३ ॥ पण दरिड्री कदरूप हुं, जघन्य अछे कुलजात ॥ उत्तम कुल तुं कपनी, ताहरो नृपति तात ॥ ४ ॥ जिह्न हुं नर्त्ता योग्य नहीं, नवि वटलावूं नाम ॥ तुं रूपें रंना जिसी, केम करुं पाप निकाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ वारी हुं गोडी गामने ॥ ए देशी ॥

॥ तूं सुकुमाल शरीर छे,रविकर परस्या नाहिं सुंदरी ॥ तो केम काष्ठ वही के, जा नृप पास उछांहिं सुंदरी ॥ १ ॥ काम विचारी कीजीयें ॥ ए आंकणी ॥ रोष शम्यो होशे हवे, मावित्रनें जे क्रोध सुंदरी ॥ नवि बहु काल लगें रहे, वली अपवादें लह्यो बोध सुंदरी ॥ का० ॥ २ ॥ तुज माता हर्षित थशे, राजकुमर कोइ सार सुंदरी॥ तस परणावशे उत्सवें, सफल थशे अवतार सुंदरी ॥ का० ॥ ३ ॥ करग्रह मात्रज मुज वरी, हुं आणा देवं तुऊ सुंदरी॥ दोष नहीं तुज कोइ इहां, अधिक संबंध न मुऊ सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ ४ ॥ तुज मूकूं नृपने घरें, जेम नवि जाणे कोय सुंदरी ॥ हुं जाईश छानो वली, परगट वात न होय सुंदरी ॥ का० ॥ ५ ॥ सांजली खेद ल

ही घणो, गदगद बोले वाणि प्रीतम ॥ शुं बोल्या ए स्वामिजी, वज्राघात समान प्रीतम ॥ का० ॥ ६ ॥ कुलवंती कन्या होये,एकज वार देवाय प्रीतम ॥ जेह पितायें पतिं दियो, प्राणांतें न बंधाय प्रीतम ॥ का० ॥ ७ ॥ तुमें पति तुमें मति तुमें गति, जेहवा होय ते प्रमाण प्रीतम ॥ शरण तुमारुं आदरयुं, अवर ते भ्रात समान प्रीतम ॥ का०॥ ८ ॥ जो तुमें बांमी मुजनें, तो संयम आधार प्रीतम ॥ अथवा अगनि शरण करुं, बीजो को न विचार प्रीतम ॥ का० ॥ ए ॥ वात सुणी निज्ञ चिंतवे, दृढशीलनें वली स्नेह सुंदरी ॥ आनंदभर निज्ञ बोलियो, सांभलजे कहुं जेह सुंदरी ॥ का० ॥ ॥ १० ॥ तूठी तुज कुलदेवता, वली मातानी आशीष सुंदरी ॥ पुण्य जागतां ताहरां, ताहरी चढती जगीश सुंदरी ॥ का० ॥ ११ ॥ कारिमो निज्ञ हुं कारणें, स्वाभाविक जो रूप सुंदरी ॥ देखाडुं तुज माहरुं, जो हवे शुद्ध स्वरूप सुंदरी ॥ का० ॥ १२ ॥ एम कही स्वाभाविक करे, अप्सरा मोहे जास सुंदरी ॥ तो नारीनुं कहेवुं किश्युं, देदीप्यमान आभास सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ १३ ॥ रत्नोद्योतें देखी करी, आणंद अंग न माय सुंदरी ॥ विजयसुंदरी एम कहे, ए शुं कौतुक थाय प्रीतम ॥ का० ॥ १४ ॥ नाना रूपें सुरपरें, मुंजवो केणी परें स्वामि प्रीतम ॥ कुमर कहे सुण सुंदरी, क्षत्रियसुत अभिराम सुंदरी ॥ का० ॥ १५ ॥ देश भमुं कौतुकथकी, कला विज्ञाननें हेत सुंदरी ॥ विविध देश भमतां थकां, थयो बहु कला उपेत सुंदरी ॥ का० ॥ १६ ॥ विविध महिमावंत ओषधि, पाम्यो वली देवें दीध सुंदरी ॥ आकाशगामि ढोलीयो, जिणथी मुज प्रसिद्ध सुंदरी ॥ का० ॥१७॥ गिरि नगरादिक बहु जोउं, रत्नपुरें एकदिन्न सुंदरी ॥ नृपपुत्री रतिसुंदरी, परण्यो पूरव पुण्य सुंदरी ॥का०॥१८॥ नृप दीधा आवासमां भोगवुं भोग रसाल सुंदरी ॥ स्वप्न दीठुं में अन्यदा,निन्नरूप विकराल सुंदरी ॥का०॥१ए॥ सुपन विघातनें कारणें, निन्नरूप कर्युं एह सुंदरी ॥ राजपुरुष मुज लावीया, तुं जाणे सवि तेह सुंदरी ॥का०॥२०॥ वात कही ते सांभली, हर्षे विकश्वर देह सुंदरी ॥ ज्ञानी वचन साचुं थयुं, एम कहे अहो न संदेह प्रीतम ॥का०॥॥२१॥ सुणो एक दिन उद्यानमां,आव्या ज्ञान निधान प्रीतम ॥ गुरु गुणवंत दासीयें कह्या, हुं गई तेह उद्यान प्रीतम ॥का०॥२२॥ माता सहित वंदन करी, देशना अंतें मात प्रीतम ॥ मुज पुत्री वर कोण थशे,

गई डुःखनी तिहां रे लो, विजयसुंदरीनां नयण रे ॥ न०॥ कामला हवे निज कर्मनें रे लो,निंदे डुःखिणी वयण रे ॥न०॥क०॥१९॥ के जिनवर आशातना रे लो, अथवा गुरु गुणवंत रे ॥ न० ॥ गर्हा करी अथ संघनें रे लो, उपड्रव कीध अनंत रे ॥न०॥क०॥२०॥ हा मुज जनम शाने थयो रे लो, शाने पाली मुज्क रे ॥ न०॥ केम नवि मूइ बालक थकां रे लो,पण ए कर्म नुं गुज्क रे ॥न०॥क०॥२१॥ एम ते विलपती देखिनें रे लो,कृपा उपनी तव जिह्न रे ॥ न० ॥ औपधि पाणीयें सज्क करे रे लो, आंख्यो थइ ते नवल रे ॥न०॥क०॥२२॥ वेदना नागी सर्वथा रे लो,दिव्य नेत्र थई तेह रे ॥न०॥ चिंतवे कर्मथकी लह्यो रे लो, एहवो नरता एह रे ॥ न०॥क०॥२३॥ त्रीजे खंमें वीशमी रे लो, पद्मविजय कही ढाल रे ॥न०॥ श्रीजयानंदना रासमां रे लो, पुरुंस मंगल माल रे ॥ न० ॥ क० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ६४१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ देवसानिध्य पण दोहली,एहवी औपधि एह ॥ जिह्न कहे नमतां थकां, गिरि उपर गुणगेह ॥ १॥ काष्ठनें अर्थे किहांयके,वृद्ध शवरनें वयण॥ औपधि महिमा उलखुं,निरखी चिन्हें नयण ॥ २ ॥ लीधी विधि पूर्वक लता, राखी रूडी रीति ॥ हमणां ते सफली हुइ, नेत्रदाननें नीति ॥ ३ ॥ पण दरिड्री कदरूप हुं, जघन्य अछे कुलजात ॥ उत्तम कुल तुं रूपनी, ताहरो नृपति तात ॥ ४ ॥ जिह्न हुं नर्त्ता योग्य नहीं, नवि वटलावूं नाम ॥ तुं रूपें रंना जिसी, केम करुं पाप निकाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ वारी हुं गोडी गामने ॥ ए देशी ॥

॥ तूं सुकुमाल शरीर छे,रविकर परस्या नाहिं सुंदरी ॥ तो केम काष्ठ वही के, जा नृप पास उलांहिं सुंदरी ॥ १ ॥ काम विचारी कीजीयें ॥ ए आंकणी ॥ रोप शम्यो होशे हवे, मावित्रनें जे क्रोध सुंदरी ॥ नवि बहु काल लगें रहे, वली अपवादें लह्यो बोध सुंदरी ॥ का० ॥ २ ॥ तुज माता हर्पित थशे, राजकुमर कोइ सार सुंदरी ॥ तस परणावशे उत्सवें, सफल थशे अवतार सुंदरी ॥ का० ॥ ३ ॥ करग्रह मात्रज मुज वरी, हुं आणा देउं तुज्क सुंदरी ॥ दोष नहीं तुज कोइ इहां, अधिक संबंध न मुज्क सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ ४ ॥ तुज मूकूं नृपने घरें, जेम नवि जाणे कोय सुंदरी ॥ हुं जाईश छानो वली, परगट वात न होय सुंदरी ॥ का० ॥ ५ ॥ सांजली खेद ज

ही घणो, गदगद बोले वाणि प्रीतम ॥ शुं बोल्या ए स्वामिजी, वज्राघात समान प्रीतम ॥ का० ॥ ६ ॥ कुलवंती कन्या होये,एकज वार देवाय प्रीतम ॥ जेह पितायें पति दियो, प्राणांतें न ठंमाय प्रीतम ॥ का० ॥ ७ ॥ तुमें पति तुमें मति तुमें गति, जेहवा होय ते प्रमाण प्रीतम ॥ शरण तुमारुं आदरयुं, अवर ते भ्रात समान प्रीतम ॥ का०॥ ८ ॥ जो तुमें ठांमी मुजनें, तो संयम आधार प्रीतम ॥ अथवा अगनि शरण करुं, बीजो को न विचार प्रीतम ॥ का० ॥ ए ॥ वात सुणी निज चिंतवे, दृढशीलनें वली स्नेह सुंदरी ॥ आनंदन्नर निज बोलियो, सांनलजे कहुं जेह सुंदरी ॥ का० ॥ ॥ १० ॥ तूठी तुज कुलदेवता, वली मातानी आशीष सुंदरी ॥ पुण्य जागतां तादृशां, तादृशी चढती जगीश सुंदरी ॥ का० ॥ ११ ॥ कारिमो निज हुं कारणें, स्वान्नाविक जो रूप सुंदरी ॥ देखाडुं तुज मादरुं, जो हवे शुद्ध स्वरूप सुंदरी ॥ का० ॥ १२ ॥ एम कही स्वान्नाविक करे, अप्सरा मोहे जास सुंदरी ॥ तो नारीनुं कहेवुं किश्युं, देदीप्यमान आन्नास सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ १३ ॥ रत्नोद्योतें देखी करी, आणंद अंग न माय सुंदरी ॥ विजयसुंदरी एम कहे, ए शुं कौतुक थाय प्रीतम ॥ का० ॥ १४ ॥ नाना रूपें सुरपरें, मुंजवो केणी परें स्वामि प्रीतम ॥ कुमर कहे सुण सुंदरी, क्षत्रियसुत अन्निराम सुंदरी ॥ का० ॥ १५ ॥ देश न्नमुं कौतुकथकी, कला विज्ञाननें हेत सुंदरी ॥ विविध देश न्नमतां थकां, थयो बहु कला उपेत सुंदरी ॥ का० ॥ १६ ॥ विविध महिमावंत औषधि, पाम्यो वली देवें दीध सुंदरी ॥ आकाशगामि ढोलीयो, जिणथी मुज प्रसिद्ध सुंदरी ॥ का० ॥ १७॥ गिरि नगरादिक बहु जोउं, रत्नपुरें एकदिन्न सुंदरी ॥ नृपपुत्री रतिसुंदरी, परण्यो पूरव पुण्य सुंदरी ॥का०॥१८॥ नृप दीधा आवासमां न्नोगवुं न्नोग रसाल सुंदरी ॥ स्वप्न दीठुं में अन्यदा,निजरूप विकराल सुंदरी ॥का०॥१ए॥ सुपन विघातनें कारणें, निजरूप कर्युं एह सुंदरी ॥ राजपुरुष मुज लावीया, तुं जाणे सवि तेह सुंदरी ॥का०॥२०॥ वात कही ते सांनली, हर्षे विकश्वर देह सुंदरी ॥ ज्ञानी वचन साचुं थयुं, एम कहे अहो न संदेह प्रीतम ॥का०॥॥२१॥ सुणो एक दिन उद्यानमां,आव्या ज्ञान निधान प्रीतम ॥ गुरु गुणवंत दासीयें कह्या, हुं गई तेह उद्यान प्रीतम ॥का०॥२२॥ माता सहित वंदन करी, देशना अंतें मात प्रीतम ॥ मुज पुत्री वर कोण थशे,

गई डुःखनी तिहां रे लो, विजयसुंदरीनां नयण रे ॥ ज०॥ कामलां हवे निज कर्मनें रे लो,निंदे डुःखिणी वयण रे ॥ज०॥क०॥१ए॥ के जिनवर आशातना रे लो, अथवा गुरु गुणवंत रे ॥ ज० ॥ गर्हा करी अय संचनें रे लो, उपद्रव कीध अनंत रे ॥ज०॥क०॥२०॥ हा मुज जनम शाने थयो रे लो, शानें पाली मुऊ रे ॥ ज०॥ केम नवि मूइ बालक थकां रे लो,पण ए कर्म नुं गुऊ रे ॥ज०॥क०॥२१॥ एम ते विलपती देखिनें रे लो,कृपा उपनी तव निल्ल रे ॥ ज० ॥ औषधि पाणीयें सऊ करे रे लो, आंख्यो थइ ते नवल्ल रे ॥ज०॥क०॥२२॥ वेदना नागी सर्वथा रे लो,दिव्य नेत्र थई तेह रे ॥ज०॥ चिंतवे कर्मथकी लह्यो रे लो, एहवो जरता एह रे ॥ ज०॥क०॥२३॥ त्रीजे खंमें वीशमी रे लो, पद्मविजय कही ढाल रे ॥ज०॥ श्रीजयानंदना रासमां रे लो, पुण्यें मंगल माल रे ॥ ज० ॥ क० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ६४१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ देवसानिध्य पण दोहली,एहवी औषधि एह ॥ निल्ल कहे नमतां थकां, गिरि उपर गुणगेह ॥ १॥ काष्ठनें अर्थे किहांयके,वृद्ध शबरनें वयण॥ औषधि महिमा उलखुं,निरखी चिन्हें नयण ॥ २ ॥ लीधी विधि पूर्वक लता, राखी रूडी रीति ॥ हमणां ते सफली हुइ, नेत्रदाननें नीति ॥ ३ ॥ पण दरिडी कदरूप हुं, जघन्य अठे कुलजात ॥ उत्तम कुल तुं कपनी, ताहरो नृपति तात ॥ ४ ॥ निल्ल हुं नर्त्ता योग्य नहीं, नवि वटलावूं नाम ॥ तुं रूपें रंजा जिसी, केम करुं पाप निकाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ वारी हुं गोडी गामने ॥ ए देशी ॥

॥ तूं सुकुमाल शरीर ठे,रविकर परस्या नाहिं सुंदरी ॥ तो केम काष्ठ वही के, जा नृप पास उछांहिं सुंदरी ॥ १ ॥ काम विचारी कीजीयें ॥ ए आंकणी ॥ रोष शम्यो होशे हवे, मावित्रनें जे क्रोध सुंदरी ॥ नवि बहु काल लगें रहे, वली अपवादें लह्यो बोध सुंदरी ॥ का० ॥ २ ॥ तुज माता हर्षित थशे, राजकुमर कोइ सार सुंदरी ॥ तस परणावशे उत्सवें, सफल थशे अवतार सुंदरी ॥ का० ॥ ३ ॥ करग्रह मात्रज मुज वरी, हुं आणा देउं तुऊ सुंदरी ॥ दोष नहीं तुज कोइ इहां, अधिक संबंध न मुऊ सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ ४ ॥ तुज मूकूं नृपने घरें, जेम नवि जाणे कोय सुंदरी ॥ हुं जाइश ठानो वली, परगट वात न होय सुंदरी ॥ का० ॥ ५ ॥ सांजली खेद ज

ही घणो, गदगद बोले वाणि प्रीतम ॥ शुं बोल्या ए स्वामिजी, वज्राघात समान प्रीतम ॥ का० ॥ ६ ॥ कुलवंती कन्या होये,एकज वार देवाय प्रीतम ॥ जेह पितायें पति दियो, प्राणांतें न बंम्हाय प्रीतम ॥ का० ॥ ७ ॥ तुमें पति तुमें मति तुमें गति, जेहवा होय ते प्रमाण प्रीतम ॥ शरण तुमारुं आदखुं,अवर ते भ्रात समान प्रीतम ॥ का०॥ ८ ॥ जो तुमें गंमी मुजनें, तो संयम आधार प्रीतम ॥ अथवा अगनि शरण करुं, बीजो को न विचार प्रीतम ॥ का० ॥ ए॥ वात सुणी निम्न चिंतवे, दृढशीलनें वली स्नेह सुंदरी ॥ आनंदनर निम्न बोलियो, सांनलजे कहुं जेह सुंदरी ॥ का० ॥ ॥ १० ॥ तूंही तुज कुलदेवता, वली मातानी आशीष सुंदरी ॥ पुल्य जागतां ताहरां, ताहरी चढती जगीश सुंदरी ॥ का० ॥ ११ ॥ कारिमो निम्न हुं कारणें, स्वान्नाविक जो रूप सुंदरी ॥ देखाडुं तुज माहरुं, जो हवे शुद्ध स्वरूप सुंदरी ॥ का० ॥ १२ ॥ एम कही स्वानाविक करे, अप्सरा मोहे जास सुंदरी ॥ तो नारीनुं कहेवुं किश्युं, देदीप्यमान आनास सुंदरी ॥ ॥ का० ॥ १३ ॥ रत्नोद्योतें देखी करी, आणंद अंग न माय सुंदरी ॥ विजयसुंदरी एम कहे, ए शुं कौतुक थाय प्रीतम ॥ का० ॥ १४ ॥ नाना रूपें सुरपरें, मुंजवो केणी परें स्वामि प्रीतम ॥ कुमर कहे सुण सुंदरी, क्षत्रियसुत अनिराम सुंदरी ॥ का० ॥ १५ ॥ देश नमुं कौतुकथकी, कला विज्ञाननें हेत सुंदरी ॥ विविध देश नमतां थकां, थयो बहु कला उपेत सुंदरी ॥ का० ॥ १६ ॥ विविध महिमावंत औषधि, पाम्यो वली देवें दीध सुंदरी ॥ आकाशगामि ढोलीयो, जिणथी मुज प्रसिद्ध सुंदरी ॥ का० ॥१७॥ गिरि नगरादिक बहु जोउं, रत्नपुरें एकदिन्न सुंदरी ॥ नूपपुत्री रतिसुंदरी, परण्यो पूरव पुल्य सुंदरी ॥का०॥१८॥ नृप दीधा आवासमां नोगवुं नोग रसाल सुंदरी ॥ स्वप्न दीठुं में अन्यदा,निकुरूप विकराल सुंदरी ॥का०॥१ए॥ सुपन विघातनें कारणें, निम्नरूप कखुं एह सुंदरी ॥ राजपुरुष मुज लावीया, तुं जाणे सवि तेह सुंदरी ॥का०॥२०॥ वात कही ते सांनली, हर्षें विकश्वर देह सुंदरी ॥ ज्ञानी वचन साचुं थयुं, एम कहे अहो न संदेह प्रीतम ॥का०॥॥२१॥ सुणो एक दिन उद्यानमां,आव्या ज्ञान निधान प्रीतम ॥ गुरु गुणवंत दासीयें कह्या, हुं गई तेह उद्यान प्रीतम ॥का०॥२२॥ माता सहित वंदन करी, देशना अंतें मात प्रीतम ॥ मुज पुत्री वर कोण थशे,

नास्तिक कुमरीतात प्रीतम ॥ का० ॥ २३ ॥ हुं मुज पुत्री जैन छुं, तात ने अल्प छे राग प्रीतम ॥ मुनि कहे धर्मशीला सुणो, जेह थशे महाजाग प्रीतम ॥ का० ॥ २४ ॥ अर्द्ध जरतनो अधिपति, तुज पुत्री जरतार प्रीत म ॥ फरी कहे केम मलशे कहो, तव जाखे अणगार प्रीतम ॥का०॥२५॥ इहां उद्यानें रूपजनुं, चैत्य अछे तेहमांहि प्रीतम ॥ चक्रेश्वरी छे तेहनी, पूजाथी मलशे उत्साहें प्रीतम ॥ का०॥ २६ ॥ ते दिनथी पूजा करी, मानुं ते तुष्टमान प्रीतम ॥ स्वप्नादिक सवि तेणें कह्युं, मेलव्यो जोग समान प्री तम ॥ का० ॥ २७ ॥ कुमर कहे जिनधर्मथी, सघलुं थाय कल्याण सुंद री ॥ योग आपणें शुज जडयो, सांजलो हवे कहुं वाण सुंदरी ॥ का० ॥ ॥२८॥ त्रीजे खंमें पूरण थइ, एकवीशमी ए ढाल प्रीतम ॥ पद्मविजय कहे धर्मथी, होवे मंगलमाल प्रीतम ॥ का० ॥ २९ ॥ सर्वगाथा ॥ ६७५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ सांजली वात सोहामणी, नवि जाणे कोइ नाम ॥ तेम इहांथी चालो तुमें, गवके जइयें गाम ॥ १ ॥ शिक्षा देउं सारी परें, तुज तातनें त्यां सी म ॥ प्रगट न थाउं प्रेयसी, सांजली ए मुज नीम ॥ २ ॥ परगट नहीं उपा य ते, शिक्षा मानें साम ॥ अवसरे शिक्षा देइ असें, धर्म तणो करुं धाम ॥ ॥ ३ ॥ अरिहंत धर्म उंलखावशुं, कौलपणुं करुं दूर ॥ उपकार करवो अव रनें, सज्जननुं ए शूर ॥ ४ ॥ उपकार धर्म उपर नहीं, करुं एहनें उपकार ॥ औषधिबलथी इहां रहे, विघ्न रहित इणवार ॥ ५ ॥ पल्यंक आजरण गो पव्यां, लेई आवुं व्हार ॥ वस्त्र लावुं तुज वासते, नयरीथी निरधार ॥ ६ ॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ जटीयाणीनी देशी ॥

॥ मानी नारियें वात, औषधी देई चाल्यो हो तिहां लेई पल्यंक आजूष णां ॥ पहेरी गयो पुरमांहि, चोहटामांहे दीठां हो कांय व्यवहारीनां आप णां ॥ १ ॥ कोइ शेठनें हाट, बेसी मागे वस्त्र हो वली, आजरणां घणुं दीप तां ॥ बमणां मूलां रत्न, आपीनें लीये तेह हो, कांय स्वर्ग संबंधी जींपतां ॥ २ लोजें वाणिक जाति, आप्यां वस्त्र अमूलां हो वली नारीनां आजूष ण घणां ॥ नवां कराव्यां तेह, इव्यें शुं नवि सीजे हो धरे मनमां जे होये कामणां ॥ ३ ॥ देवकुलें जई तेह,नारीनें पहेरावे हो ते वस्त्र आजूषण सो हतां ॥ पल्यंकें सूतां दोय,ब्राह्म मुहूर्तें जागे हो तव वयण कहे मन मो

हतां ॥ ४ ॥ जइयें आकाशपंथ, नारी कहे किहां जाशुं हो तव कुमर कहे सुणो सुंदरी ॥ रत्नपुरें छे गाम, तुज सरखी मुज नारी हो घणुं प्यारी छे रतिसुंदरी ॥ ५ ॥ विजयसुंदरी कहे ताम, तुमें उपकारी महोटा हो तेणें वात सुणो एक माहरी ॥ कमलपुरें छे नृप, कमलप्रन्न मुज मामो हो दीन अनाथनो वाहरी ॥ ६ ॥ प्रीतिमती प्रिया आद्य, तेहनें सुत जयशूर हो रोगीनें दोनागीयो ॥ वली अन्यायी कूर, अप्रिय बोले नित्यें हो नहीं सज्ज न कोइ पामीयो ॥ ७ ॥ नोगवती बीजी नारि, सोनागिणी मुज माता हो दाता प्रिय वल्लन घणुं ॥ तेहनें पुत्री एक, कमलसुंदरी रूडी हो रूप धर्में मुज सम घणुं ॥ ८ ॥ वय पण मुज सम तास, पुत्र विजयशूर नामें हो दाता विनयी पराक्रमी ॥ एकदिन पूछे राय,निमित्तियाने नांखे हो राज्य योग्य कोण उद्यमी ॥ ए ॥ ते कहे जे लघु पुत्र, गुणवंतो ते योग्य हो सांनली राजा हरखियो ॥ निमित्तियो देइ दान,विसर्ज्यो ने जाणी हो प्रीतिमती विषवरषीयो ॥ १० ॥ चिंतवे एणी परें चित्त, विजयशूर नीरोगी हो गुणवंतो छे जिहां लगें॥ रोगी माहरो पुत्र, अविनयीनें केहवी हो राज्यनी आशा तिहां लगें ॥ ११ ॥ अविनीतने दौनाग्य, नृपनें पण नहीं राग हो वली निमित्तियो एम कहे ॥ चांदे क्षारनो क्षेप, राजा तो ए धर्मी हो अवसर लही दीक्षा ग्रहे ॥ १२ ॥ मुजथी तो न लेवाय, शक्ति अनावें तेणें हो शोक्यपुत्र थाये राजीयो ॥ देखीनें न खमाय, मुज सुत दुःखीयो देखी हो यद्यपि ए गुण गाजीयो ॥ १३ ॥ मारुं कोई उपाय, अथवा अंगें हीणो हो करुं जेम राज्य न ए लहे ॥ कोई कपालिणी देखि,चूरण योगादिक जाणे हो तेहनें एकदिन एम कहे ॥ १४ ॥ सेवा करे तस नित्य, ते कहे श्यानें सेवो हो तुज काम होये ते नांखीयें ॥ ए कहे मुज सुत शाल,काढो एहज काम हो घणुं घणुं शुं तुम दाखीयें ॥ १५ ॥ कहे ए कपालिनी अल्प, खाधुं करपद थंने हो दिउं तुज चूरण एहवुं ॥ नोजनमांहे आपि, ताहरा अर्थनी सिद्धि हो थाशे चित्त छे जेहवुं ॥ १६ ॥ सांनली हरखी तेह, चूरण लीधुं तेणीयें हो करी सतकार तेहने घणो॥ शोक्य उपर घणो नेह,सुत उपर दाखवे हो वली ते विश्वासी पणुं ॥ १७ ॥ अधिक अधिक धरे स्नेह, दुर्जननी गति नांति हो सज्जन किमही नवि लहे ॥ एकदिन कांयक पर्व, पामीनें ते शोक्य हो तिम तस पुत्रनें एम कहे ॥ १८ ॥ चालो नोजन का

म, आज परवनो दाहाडो हो सज्जन ते नेलां जिमे ॥ सरल सजाती तेह, जोजन अर्थे आव्यां हो आसन मांमचां मनगमे ॥ १९ ॥ गौरव नक्ति दे खाय, प्रीतिमती घण नेहें हो विधियें सर्व कारय करे ॥ मोदक प्रमुख जे सार, कपालिनी दत्त चूरण हो कुमरनें सहित दे शुजपरें ॥ २० ॥ त्रीजे खंमें ढाल, बावीशमी पद्मविजयें हो जांखी एह सोहामणी ॥ श्रीजयानंदनें रास, डर्जन सज्जन पटंतर हो एम जाणी सज्जन थाउ गुणी ॥ २१ ॥ सर्व गाथा ॥ ६०२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ जमी उठ्या जोपें करी,वली सत्कार विशेष ॥ आव्या घर आणंदशुं, लख्युं जे थाये लेख ॥ १ ॥ हलुये हलुये हाथ पग, थंनाये जेम थंन ॥ चूरणनां ए चिन्ह छे, आवे सहुनें अचंन ॥ २ ॥ करथी कांइ न करी शके, पगें न चाले पंथ ॥ कर्मतणी गति केहवी, आगें न चले अंथ ॥ ३ ॥ राय राणी व्याकुल रूवे, करे विविध प्रतिकार ॥ वैद्य औषध करे नव नवां,गुण नवि थाय लगार ॥ ४ ॥ प्रीतिमती विना सहु प्रजा, डुःख पामी खेदाय ॥ शंका आवी सर्वनें प्रीतिमती ए उपाय ॥ ५ ॥

॥ ढाल त्रेवीशमी ॥ राग धन्याश्री ॥ गिरुवा रे गुण तुम तणा ॥ ए देशी ॥

॥ चेष्टा प्रीतिमती तणी, वली जोजन दिन संजारी रे ॥ निमित्तियानें पूछीयुं, कहो ए केम कर्मनो जारी रे ॥ १ ॥ कर्म प्रमाणें फल लहे ॥ ए आंकणी ॥ निमित्तियो कहे नारीथी, थयो डुष्ट चूर्णसंयोग रे ॥ विविध औषधिथी नहीं टले,पण आगें थाशे नीरोग रे ॥ क० ॥ २ ॥ निमित्तियाने विसर्जियो, देइ घणो सत्कार रे ॥ दासी कह्याथी जाणीयो, प्रीतिमती कपालिनी प्यार रे ॥ क० ॥ ३ ॥ सुजट मूकी कपालिनी, तेडीनें ताडना कीधी रे ॥ तव ते बोली साचछुं, चूर्णादिक वस्तु जे दीधी रे ॥ क० ॥ ४ ॥ कह्यो धिक्कार सहु जनें, प्रीतिमतीनें नरपति काढे रे ॥ पीयर गई ते पाधरी, तिहां पण लोक निंदे गाढें रे ॥ क० ॥ ५ ॥ घोर कटुक फल जोगवे, पाप इह पर जव डुःखदायी रे ॥ पण ए असार संसारमां, एक धर्मज थाय सहायी रे ॥ क० ॥ ६ ॥ जे अन्यनें माठुं चिंतवे,परनें तो जजना जाणो रे ॥ पण एहने अनिप्रायथी,होये डुर्गति डुःखनी खाण्यो रे ॥ क० ॥ ७ ॥ नृपतिनें राजवर्गीया,पुरलोक मली कहे वातो रे ॥ अहो अहो स्त्रीना हृदयनें,डुष्टतानें

साहसघातो रे ॥क०॥८॥ धिक् इह लोकनुं सुख अणु, तेहनें अर्थें करे प्राणी रे ॥ विविध प्रकारना कर्मनें, करे जिणथी लहे दुःखखाणी रे ॥क०॥ ॥ ए ॥ हवे नूप पडह वजडावतो, कोइक परदेशी आवे रे ॥ अथवा कोइ निज देशनो, आवीनें परगट थावे रे ॥ क० ॥ १० ॥ जे मुज पुत्र साजो करे, तेहनें आपुं एक देश रें ॥ कमलसुंदरी कन्या देउं, वली कहे ते करुं विशेष रे ॥ क० ॥ ११ ॥ एम त्रण त्रण दिन वजाडतो, पनर पनर दिन अंतें रे ॥ मामे मुज तेडी घरे, घणुं मुज उपर प्रीतिवंते रे ॥ क० ॥१२॥ सांनल्युं में मोशालमां, ए नांख्युं ते वृत्तांत रे ॥ कमलसुंदरीशुं माहरे,घणी प्रीति हती एकांत रे ॥ क० ॥ १३ ॥ माहरे एहनें एक पति, करवो एम कीध विचार रे ॥ पण नाईना शोकथी, नवि वात करी लगार रे ॥ क०॥१४॥ विजयसुंदरी कहे तेणें तुमें;ते नगर जई सुख कीजें रे ॥ मोशाल सहु सुखीयुं थशे, जगमां जश मोहोटो लीजें रे ॥ क० ॥ १५ ॥ मुज लोचन दीधा थकी, तुममां निश्चय छे शक्ति रे ॥ शी एहवी वस्तु जगें, कल्पवृक्ष करे नहीं व्यक्ति रे ॥ क० ॥ १६ ॥ पर उपकार परम थशे, एह साजो थाशे कुमार रे ॥ परजानें सुख आपशे, न्याय धर्मी शुन आचार रे ॥ क० ॥ १७ ॥ ए तुमनें सवि जश अछे, नारीनां सुणी वयण कुमार रे ॥ तिहां जावुं अंगी करे, करवा तेहनें उपकार रे ॥ क० ॥ १८ ॥ निज नाग्य परीक्षा एम करी, पाम्या एणी रीतें नारी रे ॥ श्रीजयानंद मुदित थया, जे नित्य नित्य पर उपकारी रे ॥ क० ॥ १ए ॥ त्रीजे खंमें त्रेवीशमी, ढाल नांखी चढते रंगें रे ॥ त्रीजो खंम पूरण थयो, ए रासमां रंग अनंगें रे ॥ क०॥ २० ॥ सत्यविजय पन्यासना, वर कपूरविजय पन्यास रे ॥ खिमाविजय शिष्य तेहना, पूरव मुनि मुद्रा जास रे ॥ क० ॥ २१ ॥ जिनविजयो जगमां जयो, जेहना छे शिष्य अनेक रे ॥ तेहमां उत्तम विजयजी, थया पंमित वारु विवेक रे ॥क०॥ ॥२२॥ तस पदपंकज अलि समो, शिष्य पद्मविजय जसु नाम रे ॥ तास कृपाथी नांखीयो, खंम त्रीजो ए अनिराम रे ॥ २३ ॥ सर्वगाथा ॥ ७२ए ॥

॥ इति श्रीमत्संविग्न पक्षीय पंमित प्रवर पंमित श्रीउत्तमविजयजीगणि विनेय पंमित पद्मविजयगणिविरचिते प्राकृतप्रबंधे श्रीश्रीजयानंद केवलि चरित्रे श्रीजयानंदकुमारस्य देशांतरचर्यायां गंगदत्तपरिव्राजकोपकार मलयमालक्षेत्रपालजय तदर्पितसमहिममहौषधिपंचकप्राप्ति तत्पूर्वमंत्रिनवपत्नी

व्यजीव रतिसुंदरी विजयसुंदरी महावदातमहोत्सवपाणिग्रहणलक्ष्मीपुंज दृष्टांत तृतीयव्रतपालनादि फलदर्शन कमलसुंदरीकरग्रहणप्रस्तावनादि व र्णनोनामा तृतीयःखंडः समाप्तः ॥

॥ प्रथम खंडे गाथा ॥ ४४४ ॥ द्वितीयखंडे गाथा ॥ ८६६ ॥ तृतीयखं डे गाथा ॥ ७२८ ॥ सर्वमली गाथा ॥ २१३८ ॥ तथा प्रथमखंडे उक्त श्लो क ॥ १३ ॥ द्वितीयखंडे उक्त श्लोक ॥ १८ ॥ तृतीखंडे उक्त श्लोक॥११॥ सर्व मली उक्तश्लोक ॥४३॥ तथा सवईयो एक,समस्या बे ॥ इति ॥ तथा प्रथम खंडे ढाल ॥ १५ ॥ द्वितीयखंडे ढाल ॥ ३३ ॥ तृतीयखंडे ढाल ॥ २३ ॥ सर्व मली ढाल ॥ ७१ ॥ थई छे.

॥ इति तृतीयखंडः संपूर्णतामगमत् ॥

॥ अथ चतुर्थखंडः प्रारभ्यते ॥

॥ दोहा ॥

॥ शासन नायक शिवकरण, वंडुं श्रीवर्द्धमान ॥ चोथा खंडतुं चोंपशुं, वर्णवशुं व्याख्यान ॥१॥ सांभलजो श्रोता सवे, आलस दूर उतार ॥ निद्रा विकथा नवि करो, वाधे जिणथी विकार ॥ २ ॥ प्रिया सहित पल्यंकथी,चा ल्यो गगन विचाल ॥ आव्यो कमलपुरें कुंअर, करे वंछित ततकाल ॥ ३ ॥ पल्यंक किहांएक गोपव्यो, उद्यानें एकंत ॥ बुद्धिनिधि शाबर तणुं, रूप करें रुचिवंत ॥ ४ ॥ प्रिया शाबरी रूपथी,साथें लेई सार ॥ वेष धरी वैद्यज तणो भमतां स्त्री भरतार ॥ ५ ॥

॥ ढाल पहेली ॥ चोपाईनी देशी ॥

॥ उषधिनी हवे ग्रंथि करी, चाल्यो काखमांहे ते धरी ॥ अलंकार प हेख्या बहु मूल, बिहुं जण धरतां सबल डुकूल ॥ १ ॥ पेठो नयरीमां अ भिराम, साथें लेइ पोतानी वाम ॥ पोहोतो एक शेठनें घर द्वार, शेठनें कहे सांभलो एणी वार ॥ २ ॥ चित्रशाला द्यो रहेवा भणी, भाडुं आपुं तुमनें गणी ॥ शेठ कहे तुमें कोण छो कहो, किहांथी आव्या किहां वासें रहो ॥ ॥ ३ ॥ ते कहे निश्च हुं वैद्य सुजाण, टालुं रोग विविध डुःख खाण ॥ कौतुकथी भमुं देशांतरें, नारी साथ राखुं शुभ परें ॥ ४ ॥ नयर दीठुं ए ऋद्धितुं गाम, वसवा मागुं तुमचुं धाम ॥ शेठ कहें कोपें कलकल्यो, जि

छ्नवाडे जा तुं इलफल्यो ॥ ५ ॥ निह्न अशुचिनें अन्नाण, किहां मुज घरमां रहेवा गाण ॥ किहां मीयांने किहां महादेव, किहां वाणिग घरें तुं रहे देव ॥ ६ ॥ अर्द्ध लक्ष ल्यो नाडुं तुमो, थोडा दिन रहेशुं इहां अमो ॥ एम कही आप्युं एक रत्न, शेठ विचार करे शुन यत्न ॥ ७ ॥ धनद हशे के वि द्याधरो, के ईश्वर दानें आकरो ॥ एहवी दान लीला किहां होय, इव्य देखि चित्त चलियो सोय ॥८॥ शेठ निह्ननें आदर करी,कहे ल्यो चित्रशाला मन हरी ॥ शुचि अशुचि न जाति विचार, गुण ते पवित्र अछे संसार ॥ ए ॥ नारी सहित चित्रशालायें रहे, शेठ देखी चित्तमां गहगहे ॥ रत्नें घर वा खरी तस दिये, आणंद शेठने न माये हिये ॥ १० ॥ रत्नें मनोरथ पूरा करे, नारी रूपें रंना हरे ॥ तेहशुं नोगवे नवला नोग, श्रीजयानंद ते शुन संयोग ॥ ११ ॥ विविध लोकनां औषध करे,लोक तणा बहु रोगज हरे ॥ शबर वैद्य परगट कह्युं नाम, नवि लिये कोइ पासेंथी दाम ॥ १२ ॥ वीणा प्रमुख वजावे आप, राग तणा वली करे आलाप ॥ वीण वजावे कोइ दिन नारि, गायन पासें सुणे केइवार ॥ १३ ॥ नाच करावे नाटकणी पास, अढलक दान दीये वली तास ॥ नाम शबर वैश्रमण ते कह्युं, लोकें हर पथकी चित्त लह्युं ॥ १४ ॥ ए नामें थयो लोक प्रसिद्ध, स्वेछायें विलसे जेम सिद्ध ॥ एकदिन नगर उद्यान मकार, एक ब्राह्मण उत्तम शिरदार ॥१५॥ नरतें कीधा जे आरय वेद, छात्र नणावे बहु गत खेद ॥ महाबुद्धिवंत ते खोले विप्र,विप्र विना वेद नापे क्षीप्र ॥ १६ ॥ एम चिंतिनें पूछे शेठ, जाशुं अमें हवे इहांथी नेठ ॥ घर वाखरी सोंपी लेई नारी, नीकलीयो हवे रात मकार ॥ १७ ॥ रात रह्यो हवे तेह उद्यान, विप्ररूप कीधुं असमान ॥ ब्रा ह्मणीरूपें नारी करी, हेतु तास कह्यो चित्त धरी ॥ १८ ॥ यौवनवय पहेस्रो अलंकार, पेठ विहाणें नगर मजार ॥ वणिकगृहें पूरवनी परें, नाडुं आपी रहे शुन परें ॥१९॥ घर वाखरी तेणें पण दीध,बहु दास दासी तिहां वली कीध ॥ परीक्षा करी वृद्ध स्त्री वलीएक, राखी नारी पासें सुविवेक ॥२०॥ विनय उपाध्यायनो करी हवे, पूजा करवा रतन ते ठवे ॥ उपाध्याय नणावे तास, वेद ते नीति धरम प्रकाश ॥ २१ ॥ चोथे खंमें पहेली ढाल, श्रीज यानंदनुं चरित्र रसाल ॥ पद्म कहे सुणो बाल गोपाल, सुणतां होवे मंगल माल ॥ २२ ॥ सर्व गाथा ॥ २७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ भाग्यथी अल्प दिनें भण्यो, प्रज्ञावंत प्रधान ॥ पदानुसारिणी पामी यो, सकल वेद सावधान ॥ १ ॥ प्रशंसा बहु पामीयो, गुरु पूजे गुरुदान ॥ दानें छात्र प्रमोदिया, चमक्या सहु पहिचान ॥ २ ॥ भोग रसाला भोगवे, पूरव परें प्रसिद्ध ॥ ब्रह्मवैद्य विख्यातथी, सहुमां थयो समृद्ध ॥ ३ ॥ करे उपकार कोडथी घणे, गीत नाटकनें गान ॥ राजपंथें रलीयामणो, देवे अतिशय दान ॥ ४ ॥ वैद्य वैश्रमण कह्यो वली, दानें अतिदातार ॥ रूप सुवर्णनें रत्ननुं, लेखुं नहीं लगार ॥ ५ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ भाव श्रावकना भांखीयें ॥ ए देशी ॥

॥ पटह वाजतो एकदिनें, सांभलीयो निज कानें रे, बहुमानें रे, नवि आव्यो राजाकनें ए ॥१॥ कन्या लोभ शंका धरी, हवे लोक कहे शुं ए देव रे, नहीं टेव रे, अधर जावानी एहने ए ॥ २ ॥ अश्वनीपुत्र ए पण नही, एह रहे नित्य एक रे, सुविवेक रे, दाता एह धनद जिस्यो ए ॥३॥ भेषज दान लीला वली, सकल कला भंडार रे, भूठे प्यार रे, एहवा दीठ न सांभल्या ए ॥ ४ ॥ पहेलां भिल्ल एक एहवो, दीठो तेहवो एह रे, गुणगेह रें, मानुं रूपांतरें आवियो ए ॥ ५ ॥ एम विकल्प सहु करे, एकदा बहुजन परिवारें रे, शुभ वारें रे, बेठो राज्यपंथें जइ ए ॥६॥ वीणा वजावे कौतुकी, बहु मित्रशुं गावे हर्षें रे, श्रुति वर्षे रे,अमृत रस शुभ स्वरथकी ए ॥ ७ ॥ दासी वृंद हवे जायती, पाणी भरवा काम रे, ताम रे, कुब्जा दासी एक छे ए ॥ ८ ॥ गीत रसें ऊभी रही, पूछे ब्राह्मण तास रे, किहां वास रे, ताहरोनें तुं कोण छे ए ॥ ए ॥ दासी कहे सुण साहेबा, भोगवती नृप राणी रे, तस जाणी रे, हुं कुब्जा दासी घरें ए ॥ १० ॥ किम कुब्जा ब्राह्मण भणे, सा कहे मुज वायुदोषें रे, विप्र भाषे रे, वैद्य कह्ो कोइ नवि मल्यो ए ॥ ११ ॥ सा कहे बहु उषध कस्यां, पण न मल्यो तुम सम कोइ रे, मुज होइ रे, भाग्य मंद ते कारणें ए ॥ १२ ॥ तेडी दासी ढूकडी, जोइ नसा जाल मर्म रे, शुभ कर्म रे, मुष्टियें हणी हणी सज करी ए ॥ १३ ॥ तेह सरल थई हरपती, बोले एम ते वाणी रे, बहु प्राणी रे, भाग्यथकी तुमें आविया ए ॥ १४ ॥ आवो नरपतिनें घरें, तस पुत्र नीरोगी कीजें रे, लीजें रे, पूजा भूपति लोकनी ए ॥ १५ ॥ द्विज कहे जा ताहरे घरे, नहीं राज्य

कुलें मुज काम रे, राणी धाम रे, आवी ते उतावली ए ॥१६॥ राणी कहे तुं कोण छे, कहे हुं कुब्जा तुम दासी रे, नहिं हांसी रे, राणी कहे केम स रल तुं ए ॥१७॥ तव कहे वैद्य वैश्रवणनी, वात ते अचरजकारी रे, मनो हारी रे, सांजली वात राणी वदे ए ॥१८॥ किहां छे तव दासी कहे, श्री पंथें छे तेह रे, नेह रे, आणीनें राणी कहे ए ॥१९॥ पुत्र साजो करे के नहीं, तव दासी कहे जग ते नहीं, जे अहीं नहीं, शक्ति ते अद्भुत देखीयें ए ॥२०॥ राणी कहे जई रायनें, राजा मूके परधान रे, बहुमान रे, करीने तेहनें तेडवा ए ॥ २१ ॥ तव आव्यो नृप परषदा, उषधिगांठडी लेई रे, सुखसेंई रे, यज्ञोपवीतादिक धरी ए ॥ २२ ॥ आशीष दीये नरनाथनें, हित मितनक्की वामशायी रे, निर्माथी रे, गदपरें शत्रुजय करो ए ॥ २३ ॥ यतः ॥ जुंजा नोहितमितपक्कमेव सात्म्यं कुर्वाणः, श्रमसुपसीह वामशायी । स्त्रीसेवा नि लमलमूत्रशल्यमुंचन्, नूतांतर्गेदगणवक्ष्यारिचक्रम् ॥ १ ॥ पूर्व ढाल ॥ आ शीर्वादमां सांजली, नैषज्यतत्त्वनी वात रे, हर्ष जात रे, कनक आसन बेसाडीयो ए ॥ २४ ॥ नृप पूछे नइ कोण छो, आव्या किहांथी बुद्धिनि धान रे, पुरवान रे, तुम आवें वाध्यो घणुं ए ॥ २५ ॥ ते कहे ब्राह्मण छुं अमें, गिरिपालें वसे मुज तात रे, तस ज्ञात रे, उपदेशें बहु उषधि ए ॥ २६ ॥ पर्वत वनमां बहु नम्यो, ओलखी उषधि बहु लीधी रे, कीधी रे, नी रोगी जन श्रेणीनें ए ॥ २७ ॥ गाम नगर फरतो फरुं, एक कौतुक परउप कार रे, आगार रे, आव्यो एणी परें तुमतणे ए ॥ २८ ॥ चोथे खंमें ए क ही, पद्मविजय वर ढाल रे, रसाल रे, बीजी सुंदर रासमां ए ॥ २९ ॥ ६१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ राय कहे रुडुं कर्युं, आव्या पर उपकार ॥ बोल्या ते पालो वली, तुम उत्तम अवतार ॥ १ ॥ माहरे सुत महा रोगीयो, संकोचाणुं शरीर ॥ औ षध शक्ति अचिंत्यथी, परी करो मुज पीड ॥ २ ॥ तुम आकार वचन तथा, महाशय प्रकृति महंत, उपकारी अवनीतलें, प्रगटया तुमें पुण्यवंत ॥ ३ ॥ नंदन तुमचो निरखीयें, वाडव बोले वाणि ॥ साध्य हशे तो साधशुं, प्रथम करुं पहिचाण ॥ ४ ॥ मंत्री राय वाडव मुखा, साथें लेइ सनूर ॥ निजनंदन निरखाववा, हितथी कर्यो हजूर ॥ ५ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ झांझरिया मुनिवर धन्य धन्य तुम अवतार ॥ ए देशी ॥
॥ माया विप्र कहे सुणोजी, रोग ए विषम विकार ॥ उंषधि साध्य के वल नहींजी, जोइयें मंत्र प्रकार ॥ १ ॥ सुविवेक साजन, जूउं जूउं शक्ति अचिंत्य ॥ ए आंकणी ॥ मंत्र उंषध प्रकारथीजी, टालशुं रोग महंत ॥ मंत्रपूजामां जोइयेंजी, उपकरणां अत्यंत ॥ सु० ॥ २ ॥ राजायें पण आणीयोजी, पूजानो सामान ॥ वंधावी परअचि वलीजी, आमंवर अस मान ॥ सु० ॥ ३ ॥ लोक करावी वेगलाजी, मंमल रचियुं ताम ॥ चंदन होमी अग्निमांजी, मंत्र बोले हवे आम ॥ सु० ॥ ४ ॥ ॐ नमो अर्हते वलीजी, ॐ ह्रीं सिद्ध सनाद ॥ नमो वषट् इत्यादिकाजी, मंत्र उच्चरे निर वाद ॥ सु० ॥ ५ ॥ ध्यान मुद्रा आसन करेजी, अगर कपूरनें फूल ॥ होम करी वलि नाखतोजी, दश दिश तेह अमूल ॥ सु० ॥ ६ ॥ मंमल पासें थापीयोजी, नंदन नृपनो तेह ॥ औषधि जलधारा थकीजी, सींचे तेहनो देह ॥ सु० ॥ ७ ॥ सज्ज थयो कुंवर हवेजी, परिअचि काढी जा म ॥ कुंवरनें जोवा नणीजी, नरपति आव्यो ताम ॥ सु० ॥ ८ ॥ उठी कुमर साहामो जइजी, प्रणमे नरपति पाय ॥ राजा पण सुत वैद्यनेंजी, गाढ आलिंगन दाय ॥ सु० ॥ ए ॥ सोवन आसन उपरेंजी, त्रिहुं बेग तेणी वार ॥ मंत्री सामंत सहु मल्याजी, हियडे हर्ष अपार ॥ सु० ॥ ॥ १० ॥ विविध वाजित्रना शब्दथीजी, गाजी रह्युं आकाश ॥ गीत गान गायन करेजी, मोद नरे सुविलास ॥ सु० ॥ ११ ॥ सोहासण मंगल तणां जी, गाये गीत रसाल ॥ हरषें माता कुंलणाजी, धरती मोद विशाल ॥ ॥ सु० ॥ १२ ॥ माया विप्र नणी कहेजी, हर्षित ते नृपाल ॥ नाग्य अमारुं मोटकुंजी, जेणें तुमें मलिया दयाल ॥ सु० ॥ १३ ॥ मंत्रवादी तुमें मोटकाजी, अहो उंषधि महिमाय ॥ तुम सम उपकारी नहींजी, जगमांहे कोइ गाय ॥ सु० ॥ १४ ॥ सर्व राज्य तुम आपतांजी, करणीया न थवाय ॥ पण अमें आपुं शक्तिथीजी, लेइ अम्ह हर्ष कराय ॥ सु० ॥ ॥ १५ ॥ जे तुमनें मनमां गमेजी, देश उत्तम ह्यो एक ॥ एम कही नृ पति मंत्रवीजी, बीजा पण जे अनेक ॥ सु० ॥ १६ ॥ वस्त्रादिक बहु मू लनांजी, रत्न तणा अलंकार ॥ देवा तैय्यारी करीजी, विप्र नणे नाकार ॥ सु० ॥ १७ ॥ मायाविप्र कहे सुणोजी, करी परनें उपकार ॥ पुण्य

अर्थें इछे नहीं जी, सज्जन प्रत्युपकार ॥ सु० ॥ १८ ॥ करी चिकित्सा अर्जीयुंजी, पूर्वें धन असराल ॥ करुं निर्वाह तेणें हवेजी, अधिक करुं शुं आल ॥ सु० ॥ १९ ॥ लाभें लोभ वधे घणोजी, संतोष सुखनुं मूल॥ मात्राहीन जिते नहीजी, मात्राधिक प्रतिकूल ॥ सु० ॥ २० ॥ इंद्रथकी अधिको कह्योजी, संतोषी सुखलीन ॥ देश ते माहरा धर्ममांजी, विघन करे अति पीन ॥ सु० ॥ २१ ॥ राजतीर्थमां ए कह्योजी, धर्म वली लोक नें हर्ष ॥ तेहमां केम हवे वरषियें जी, केम अंगारानो वर्ष ॥ सु० ॥२२॥ तो पण अवसरें जाणशुंजी, चोथे खंमें ढाल ॥ त्रीजी पद्मविजय कहीजी, सुणतां मंगलमाल ॥ सु० ॥ २३ ॥ सर्वगाथा ॥ ८९ ॥

॥ दोहा ॥

॥ इत्यादिक वाणी अवल,निरखी वली निरीह ॥ दान अधिक दीपे घणुं, लह्यो धनाढ्यमां लीह ॥ १ ॥ नृपति कहे एमज नखुं, पण कहो एह प्रपंच ॥ किहां रहो तव ते कहे, सघलो नाटकसंच ॥ २ ॥ नारीशुं रहुं हुं नरपति,अवनीपति कहे एम ॥मुजघर रहियें मोजशुं,किहांयें रहो हवे केम ॥ ३ ॥ विप्रें ते मान्युं वचन, नरपति तेडवा नार ॥ सुखासन तव सन्मुखें, मोकले महापरिवार ॥ ४ ॥ तास प्रिया दासी तथा, वस्तु वीणादिक सर्व, चित्रशालः तेहनें उचित, आपे राय अगर्व ॥ ५ ॥ चाकर प्रमुखनें चोपशुं, मोकले सेवा मांहिं ॥ भोजन स्नानादिक भलां,अधिक करे उत्साहिं॥ ६ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ जीरे जी ॥ ए देशी ॥

॥ जीरे म्हारे एकदिन ते नरनाथ, बुद्धिवंत मंत्री मली जीरेजी ॥ जी०॥ भोगवती वली नारि, वेग विचार करे वली जीरेजी ॥ १ ॥ जी० ॥ देशुं महोटो देश, तेहमां कांइ हाणी नही जीरेजी ॥ जी० ॥ कन्या देशुं केम, किहां कत्री ब्राह्मण कहीं जीरेजी ॥ २ ॥ जी० ॥ निशाचर कुलें एह, राज कन्या केम दीजीयें जीरेजी ॥ जी० ॥ विण दीधे जाये बोल, जगमां अप यश लीजीयें जीरेजी ॥ ३ ॥ जी०॥ नरपति वचन अमोघ, व्याघ्र नदी न्याय आवीयो जीरेजी ॥ जी० ॥ कहे मंत्री श्यो खेद, ए मुज मनमां भावीयो जी रेजी ॥ ४ ॥ जी० ॥ विप्र मात्र नही एह, लक्षण शौर्य्य पराक्रमें जीरेजी ॥ जी० ॥ एहना गुण नृप योग्य, बीजे ठाम न होये किमे जीरेजी ॥ ५ ॥ जी० ॥ कमलसुंदरी नाम, कन्या दीजें एहनें जीरेजी ॥ जी० ॥ कन्या भाग्य

प्रमाण, वीजा तो साखी तेहनें जीरेजी ॥ ६ ॥ जी० ॥ नृपें मानी वात, राणी पण अंगीकरे जीरेजी ॥ जी० ॥ नगर पद्मपुर नाम, तिहां एक वात इण अवसरें जीरेजी ॥ ७ ॥ जी० ॥ तिहां पद्मरथ राय, पुत्री रूपवंती घणुं जीरेजी ॥ जी० ॥ ते ऊपर करी रोष, वली अतिशय राजस पणुं जीरेजी ॥ ८ ॥ जी० ॥ तादृश निझनें दीध, बहु ठबको मंत्री दीये जीरेजी ॥ ॥ जी० ॥ राणी पण करे सोर,तव नृप धरे अनुशय हिये जीरेजी ॥ ९ ॥ जी० ॥ निझनें शोधवा ताम, निझवाडे नर नीकल्या जीरेजी ॥जी०॥ शोध करी बहु तास, पण नवि कोइ थानकें मल्या जीरेजी ॥ १० ॥ जी० ॥ नाना पुरवर गाम, पालि गिरि वन निजनरें जीरेजी ॥ जी० ॥ शोध करावे राय, पण नवि लाधा कोइ परें जीरेजी ॥ ११ ॥ जी० ॥ स्नेह सुतानो आणि, शोच करे नृप दुःख धरी जीरेजी ॥ जी० ॥ अनुक्रमें वारी शोक, बेगे बे परपद करी जीरेजी ॥ १२ ॥ जी० ॥ एणे अवसर नरसिंह, नयर पुरंदरनो धणी जीरेजी ॥जी०॥ नर कुंजर तस पुत्र,आव्या तिहां सेवा जणी जीरेजी ॥ १३ ॥ जी० ॥ जयसुंदरी नृप धूय, राग थयो तेह उपरें जीरेजी ॥ जी० ॥ रायें दीधी तास, उत्सव मांझ्यो जली परें जीरेजी ॥ १४ ॥ ॥ जी० ॥ निजनयरें गयो तेह, जोग जोगवे तेहशुं जीरेजी ॥ जी० ॥ कमला नयणें देख, दुःख शलक्युं घण नेहशुं जीरेजी ॥ १५ ॥ जी०॥ निज पुत्रीनी शोध, नवि लाधी वली शोक्यनी जीरेजी ॥ जी० ॥ पुत्रीनो विवाह, देखि वियोग विलोकिनी जीरेजी॥ १६ ॥ जी० ॥ रुदन करी बहु काल, राय ऊपर क्रोधें जरी जीरेजी ॥ जी० ॥ पुत्री विडंबी मुझ, कांइ मिलन आशा धरी जीरेजी ॥ १७ ॥ जी० ॥ केइक दिवस गमाय, देखी जयसुंदरी तणो जीरेजी ॥ जी०॥ विवाह शोकनें मोद, वाजित्रादि उत्सव घणो जीरेजी ॥ १८ ॥ जी० ॥ क्रोध ईर्ष्यानें शोक, दुःखथी तिहां नवि रही शकी जीरेजी ॥ जी० ॥ लेई निज परिवार, रायतणी आज्ञा थकी जीरेजी ॥ १९ ॥ ॥ जी० ॥ चाली तातनें गेह, नयर उद्यानें आवी रही जीरेजी ॥ जी० ॥ दासी मोकली ताम, निज जाई पासें वही जीरेजी ॥ २० ॥ ॥ जी० ॥ अंतेउर परिवार, लेई नृप साहमो गयो जीरेजी ॥ जी० ॥ प्रणामे बहेनना पाय, देखी दुःखीयो अति थयो जीरेजी ॥ २१ ॥ जी० ॥ दुःखथी रोती ताम, नृपति अशासन करे जीरेजी ॥ जी० ॥ नृपति पूछे

एम, केम आव्या तुमें एणी परें जीरेजी ॥ २२ ॥ जी० ॥ रुदन करो केम एम, तव मूलथी मांभी कहे जीरेजी ॥ जी० ॥ सांनली नृप खेदाय, दुःख तेहथी अधिकुं लहे जीरेजी ॥ २३ ॥ जी० ॥ निंदे नगिनीनाथ, नास्तिक वादि शिरोमणि ॥ जीरेजी ॥ जी० ॥ मंत्र्यादिक तस मूढ, निंदे सहुनें अवगणी जीरेजी ॥ २४ ॥ जी० ॥ खेद न कीजें बहेन, देशुं शिक्षा अव सरें जीरेजी ॥ जी० ॥ कर्म तणो अपराध, बीजा निमित्त पणुं धरे जीरे जी ॥२५॥जी०॥ एम आश्वासी तास, चोथे खंमें ए कही जीरेजी ॥जी०॥ चोथो ढाल रसाल, पद्मविजय गुरुथी लही जीरेजी ॥ २६ ॥ १२१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एहवो ए अपराधीयो, शिक्षा देशुं तास ॥ सघले शोध करावशुं, पुत्री तुम चिहुं पास ॥ १ ॥ नाणेजी लावी नली, प्रगुण करावुं प्राय ॥ ब्रह्म वैश्रवण वारू अछे, दक्ष ते आवे दाय ॥ २ ॥ पूछे कोण तत्र नृपति, सघलो कहे संबंध ॥ निज सुत कर्यो नीरोगीयो, पनणे तेह प्रबंध ॥ ३ ॥ सांनली तेह संबंधनें, आणंद अंग न माय ॥ पुत्री दुःख पाछुं पडशुं, सुखनी वात सुणाय ॥ ४ ॥ नोगवती सुख नामिनी, प्रणमे नणदना पाय ॥ आलिंगन आशीष ये, हियडे हर्ष न माय ॥ ५ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ देश मनोहर मालवो ॥ ए देशी ॥

॥ थापी सुखासनें बहेनीनें, लावे निज आवास ललनां ॥ महा महो त्सव अति गौरवें, रायनें हर्ष उल्लास ललनां ॥ १ ॥ पुण्यें सवि आवी म ले ॥ ए आंकणी ॥ विजयशूर नत्रीज जे,फइनें प्रणमे पाय ल० ॥ आशीष देइ शिर चुंबती, लुंछणां बलीय कराय ल० ॥ पु० ॥ २ ॥ मणिमुक्ताफलथी करे, वर्धापन सुविशेष ल० ॥ कुल नाग्यादिक वर्णवे, ब्रह्म वैश्रवण विशेष ल०॥पु०॥३॥ सर्वनें सतकारी करी,रहे सुखें नाइनें गेह ल० ॥ ब्रह्म वैश्रवण प्रिया प्रत्यें, देखी उपजे नेह ल० ॥ पु० ॥ ४ ॥ पासें राखे ब्राह्मणी, वात करावे प्रेम ल० ॥ मातने उलखी ब्राह्मणी, मात न उलखे नेम ल० ॥ पु० ॥ ५ ॥ हवे नरपतियें निमित्तियो, तेडयो पूछवा हेत ल० ॥ पूरव परि चित रायनो, पुत्र निमित्त संकेत ल० ॥ पु०॥६॥ नाणेजी शुद्धि पूछतो,ते कहे सांनलो राय ल० ॥ कालें निजपति रुद्धिशुं, मलशे इंणहिज गाय ल० ॥ पु० ॥ ७ ॥ अधिक न जाणुं एहथी, रायें करी सतकार ल० ॥ वि

प्रमाण, वीजा तो साखी तेहनें जीरेजी ॥ ६ ॥ जी० ॥ नृपें मानी वात, राणी पण अंगीकरे जीरेजी ॥ जी० ॥ नगर पदमपुर नाम, तिहां एक वात इण अवसरें जीरेजी ॥ ७ ॥ जी० ॥ तिहां पदमरथ राय, पुत्री रूपवंती घणुं जीरेजी ॥ जी० ॥ ते ऊपर करी रोष, वली अतिशय राजस पणुं जीरे जी ॥ ८ ॥ जी० ॥ तादृश भिल्लनें दीध, बहु ठवको मंत्री दीये जीरेजी ॥ ॥ जी० ॥ राणी पण करे सोर, तव नृप धरे अनुशय हिये जीरेजी ॥ ९ ॥ जी० ॥ भिल्लनें शोधवा ताम, भिल्लवाडे नर नीकल्या जीरेजी ॥जी०॥ शोध करी बहु तास, पण नवि कोइ थानकें मल्या जीरेजी ॥ १० ॥ जी० ॥ नाना पुरवर गाम, पालि गिरि वन निजनरें जीरेजी ॥ जी० ॥ शोध करा वे राय, पण नवि लाधा कोइ परें जीरेजी ॥ ११ ॥ जी० ॥ स्नेह सुतानो आणि, शोच करे नृप डुःख धरी जीरेजी ॥ जी० ॥ अनुक्रमें वारी शोक, वेगो छे परपद करी जीरेजी ॥ १२ ॥ जी० ॥ एणे अवसर नरसिंह, नयर पुरंदरनो धणी जीरेजी ॥जी०॥ नर कुंजर तस पुत्र, आव्या तिहां सेवा भणी जीरेजी ॥ १३ ॥ जी० ॥ जयसुंदरी नृप धूय, राग थयो तेह उपरें जीरेजी ॥ जी० ॥ रायें दीधी तास, उत्सव मांड्यो भली परें जीरेजी ॥ १४ ॥ ॥ जी० ॥ निजनयरें गयो तेह, भोग भोगवे तेहशुं जीरेजी ॥ जी० ॥ क मला नयणें देख, डुःख शलक्युं घण नेहशुं जीरेजी ॥ १५ ॥ जी०॥ निज पुत्रीनी शोध, नवि लाधी वली शोक्यनी जीरेजी ॥ जी० ॥ पुत्रीनो विवा ह, देखि वियोग विलोकिनी जीरेजी ॥ १६ ॥ जी० ॥ रुदन करी बहु का ल, राय ऊपर क्रोधें भरी जीरेजी ॥ जी० ॥ पुत्री विडंबी मुझ, कांइ मिल न आशा धरी जीरेजी ॥ १७ ॥ जी० ॥ केइक दिवस गमाय, देखी जयसुं दरी तणो जीरेजी ॥ जी० ॥ विवाह शोकनें मोद, वाजित्रादि उत्सव घणो जीरेजी ॥ १८ ॥ जी० ॥ क्रोध ईर्ष्यानें शोक, डुःखथी तिहां नवि रही शकी जीरेजी ॥ जी० ॥ लेई निज परिवार, रायतणी आज्ञा थकी जीरेजी ॥ १९ ॥ ॥ जी० ॥ चाली तातनें गेह, नयर उद्यानें आवी रही जीरेजी ॥ जी० ॥ दासी मोकली ताम, निज भाई पासें वही जीरेजी ॥ २० ॥ ॥ जी० ॥ अंतेउर परिवार, लेई नृप साहमो गयो जीरेजी ॥ जी० ॥ प्र णमे बहेनना पाय, देखी डुःखीयो अति थयो जीरेजी ॥ २१ ॥ जी० ॥ डुःखथी रोती ताम, नृपति अशासन करे जीरेजी ॥ जी० ॥ नृपति पूछे

कहे नटनें इश्युं, सातमे दिन तुमें सर्व ॥ आवजो एम कही वांजिया, ग
या ते धरता गर्व ॥ ४ ॥ नटपेटकमां निरखीनें, कुमरे काढ्या केई ॥ युवती
युवान यथा मति, सहुनें आदरसेंई ॥ ५ ॥

॥ ढाल ७ठी ॥ माली केरा बागमां ॥ ए देशी ॥

॥ हवे तेहनें सवि चातुरी, कला शीखवे सार रेलो ॥ अहो कला शीख
वे सार रेलो ॥ सामग्री सवि मेलवी, करी सवि शणगार रेलो ॥ अ० ॥१॥
रायनें कही सातमे दिनें, आव्या सभा मजार रेलो ॥ अ० ॥ रंगमंमपमां
उपविशे, नृप नृपपरिवार रेलो ॥ अ० ॥ २ ॥ नगरलोक सवि तेडिया,
तिम नटपरिवार रेलो ॥ अ० ॥ बहेन कन्या निज राणीयो, यव
न्यंतर गार रेलो ॥ अ० ॥ ३ ॥ बिहुं ते सवि जोयती, हवे नाटक मांमे रे
लो ॥ अ० ॥ वंश वीणादिक वाजतां, मृदंग वली ताडे रेलो ॥ अ० ॥ ४ ॥
नाटकिणी थानें ठवी, निजनारी सुजाण रेलो ॥ अ० ॥ पात्र बीजां तस
नूमिका, अनुसार प्रमाण रेलो ॥ अ० ॥ ५ ॥ गंधर्व गीत मधुर ध्वनि, गाये
मनोहार रेलो ॥ अ० ॥ तालनें लयना तानशुं, माया बहु विस्तार रे
लो ॥ अ० ॥ ६ ॥ मांमयुं चरित्र ते आपनुं, जय विजय दो नाथ रेलो ॥
अ० ॥ विजयपुरीना राजीया, पुत्र एकेक थाय रेलो ॥ अ० ॥ ७ ॥ सिंह
सार सुत प्रथमनो, अन्यायी तेह रेलो ॥ अ० ॥ श्रीजयानंद बीजा तणो,
ते गुणगणगेह रेलो ॥ अ० ॥ ७ ॥ राते पर्वत ऊपरें, केवलीनें पासें रेलो ॥
अ० ॥ धर्म पामी देशांतरें, जाता उल्लासें रेलो ॥ अ० ॥ ए ॥ विशालपुरें
विद्या लह्या, परण्या नृपकन्या रेलो ॥ अ० ॥ प्रतिबोधी गिरिमालिनी, देवी
थई धन्या रेलो ॥अ०॥१०॥ कनकपुरें जूवटुं रम्या, परण्या नृप कुमरी रेलो ॥
अ० ॥ प्रतिबोधि देवी रेहणी, ते अतिशय सुमरी रेलो ॥ अ० ॥ ११ ॥
सूअर युद्ध कर्युं तेणें, कर्यो तापस बोध रेलो ॥ अ० ॥ तस पुत्री परण्या
वली, शूरवीर ते योध रेलो ॥अ०॥१२॥ मलयमाल क्षेत्र देवता,साथें युद्ध
कीधुं रेलो ॥ अ० ॥ जीत्या तेहशुं जेटले, उरवि वर दीधुं रेलो ॥ अ० ॥
॥ १३ ॥ रत्नपुरें नाटक वली, रतिसुंदरी केरो रेलो ॥ अ० ॥ पाणी
ग्रहण कर्युं तिहां, भिन्नरूप भलेरो रेलो ॥ अ० ॥ १४ ॥ ते सवि अभि
नय विधियकी, नाटकमां देखावे रेलो ॥ अ० ॥ पद्मपुरें नृप भिन्ननें, क
न्या परणावे रेलो ॥ अ० ॥ १५ ॥ देवकुलें ते आंधली, भिन्न औषधि योग

सज्यो निमित्तियो, धरतो हर्ष अपार ल० ॥ पु०॥ ८ ॥ बहेन जणी आवी कहे, ते पण हर्षित थाय ल० ॥ निज चर चिहुं दिशि मोकले, ग्राम पुरा दिक ठाय ल० ॥ पु० ॥ ए ॥ दूत मूक्या वली चिहुं दिशें, पण नवि लाधी शुद्धि ल० ॥ उग्रस्थनें पासें थका, पण नवि चाले बुद्धि ल०॥ पु०॥१०॥ ब्रह्म वैश्रवण ते जाणतो, शोध निवारे न तेह ल०॥ नास्तिक शिक्षा दीधा विना, प्रगट थाउं नहीं रेह ल० ॥ पु० ॥ ११ ॥ एहवी प्रतिज्ञा धारतो, प्रगट न थाये तेह ल० ॥ एणें अवसर परदेशियो, आव्यो कला गुणगेह ल० ॥ पु०॥ १२॥ नाट्यकला मद आकरो, आप समो परिवार ल० ॥ जे मुज जींते हुं तेहनो, दास थाउं निरधार ल० ॥ पु० ॥ १३ ॥ एहवी प्र तिज्ञा प्रसिद्धथी, चारि तथा वली नीर ल० ॥ राजद्वारें ठवे दर्पथी, राय कहे सुण धीर ल० ॥ पु० ॥ १४ ॥ नाटक देखाडो तुमें, जोउं कला अमें जेण ल० ॥ नाटक सूचि असि कुंतना, अग्रनागें कखुं तेण ल० ॥ पु० ॥ १५ ॥ देखी रीज लही सजा, अभिनय वीर चरित्र ल० ॥ नवरस दे खाडे तथा, सहु तन्मय थाय चित्र ल० ॥ पु० ॥ १६ ॥ राय प्रमुख सहु ए सजा, विस्मय लही दीये दान ल० ॥ लोक प्रशंसा बहु करे, तास कला नहीं मान ल० ॥ पु० ॥ १७ ॥ ब्रह्मवैश्रवण तदा जणे, मुख मरडीनें वाणि ल० ॥ विपरीत जूजंगादिका, देखाडे जड ठाण ल० ॥ पु० ॥ १८ ॥ निज नाटकिया मेलवी, जांखे एम जूपाल ल० ॥ एहनें जींते एहवो, बे कोइ मुज पुर जाल ल० ॥ पु० ॥ १ए ॥ रायनें नाटकिया घणा, विविध क लाना जाण ल० ॥ पण नीचुं मुख करी रह्या, जींतवा तास अजाण ल०॥ पु० ॥ २० ॥ ब्रह्मवैश्रवण कहे सुणो, शी कला एहमां जूप ल० ॥ ली लायें जींतुं एहनें, जूउ तमें अनुरूप ल० ॥ पु० ॥ २१ ॥ चोथे खंडें ए कही, परवडी पंचमी ढाल ल० ॥ पद्मविजय कहे सांजलो, आगल वात रसाल ल० ॥ पु० ॥ २२ ॥ सर्व गाथा ॥ १४८ ॥

॥ दोहा ॥

॥ ब्रह्म वैश्रवण वदे इश्युं, पुरुष नारी परिवार ॥ नाटकीयामां निरखीनें, आपो इणहिज वार ॥१॥ तुम इछायें ल्यो तुरत, वातें न करो वार ॥ नृप कहे नटपेटकथकी, लेई शीखवो लार ॥ २ ॥ कुमर कहे करशुं अमें, नाटक सातमे दिन्न ॥ जिम एहनो मद गली जशे,आखुं तुम आसन्न ॥३॥ नरपति

पण आप न लेवे, तेहनुं दारिद्र कापे ॥ सा०॥ ५ ॥ विस्मय पाम्या तेहनी देखी, कला कलावंत सबला ॥ सायर आगल कूप तणी परें, हंस आगल जेम बगला ॥ सा० ॥ ६ ॥ पूरवलो नाटकियो चमक्यो, बटु नाटकीयो देखी ॥ हाख्यो बटुकनें पाये लाग्यो, बीजुं सर्व उवेखी ॥ सा० ॥ ७ ॥ कहे ताहारो हुं दास हुं साचो, तें मुजनें आज जीत्यो ॥ कोइ मुजनें नवि जीत्यो नाई,एटलो काल व्यतीतो ॥ सा० ॥ ८ ॥ सूरय किरणें हिम गले जिम, तिम मुज मद तें गलीयो ॥ परिकर सहित हुं ताहारो चाकर.तुंहि शिरोमणि मलियो ॥ सा० ॥ ९ ॥ बटुक कहे मुज नहीं प्रयोजन, जाउ आपणे गाम ॥ अधिक कला जगमांहे दीसे, मद करवो केणे काम ॥सा०॥ ॥ १०॥ रायें विसर्ज्यो नाटकीयो हवे, पोहोतो आपणे गाम ॥ सना विसर्जी नरपति बटुनें, पूछे एम अनिराम ॥ सा० ॥ ११॥ कमला पासें राखी पूछे, नृप अंगज कोण एह ॥ जेहनो अभिनय तें देखाड्यो, नाटकमां धरी नेह ॥ सा० ॥ १२ ॥ निज्ञ ते देवकुलमांथी विहाणें, गयो किहां लेई नारी ॥ तव कहे बटुउ सांनल नरपति, आगल कहुं अधिकार ॥सा०॥१३॥ प्रिया सहित हुं कौतुक जोतो, पृथिवीमांहि नमतो ॥ विचित्र प्रकारनां नाटक करतो, नोगपुरें गयो रमतो ॥ सा० ॥ १४ ॥ रहेवा स्थानक बीजे न जड्युं, देवकुलमां कस्यो वास ॥ निज्ञ दंपती दोय विपरीत देखी, मनमां थयो विखास ॥ सा०॥१५॥ निज्ञनें पूछ्युं तुं कुरूपी,एह देवांगना नारी ॥ ताहारे हाथें केणीपरें आवी,कहे तुं तास विचार ॥ सा० ॥ १६ ॥ त्यारें तेणें सघलुं नांख्युं, चरित्र पोतानुं एह ॥ कोण नवि आदरे एह सुणीनें, चित्रकारी होये जेह ॥ सा० ॥ १७ ॥ सुखनिड्रायें सहुये सूतां, विहाणुं विहायुं ज्यारें, जागीनें अमें जोयुं ततक्षण, नवि दीठुं कोइ त्यारें ॥सा०॥१८॥ प्रिया सहित हुं नमतो नमतो, आव्यो तुमचे गाम ॥ चित्रकारी ए चरित्र जाणीनें, नाटक कीधुं आम ॥ सा० ॥ १९ ॥ आगल वात तो तेहज जाणे, चोथे खंमें ढाल ॥ सातमी पद्मविजय कहे सुणजो, आगल वात रसाल ॥ सा० ॥ २० ॥ सर्वगाथा ॥ २०१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ सुणी राजा विस्मय लह्यो, कमला कमल विकाश ॥ अहो वटु एम चिंतवे, श्यो ए वचन विलास ॥ १ ॥

रेलो ॥अ० ॥ नव लोचना करो ततक्षणें,काढयो तस रोग रेलो ॥ अ० ॥ ॥ १६ ॥ जेम नीपन्युं तेम नाटकें, प्रत्यक्ष देखावे रेलो ॥ अ० ॥ निज पासें ते कुंअरी, सहुनें भ्रम आवे रेलो ॥ अ० ॥ १७ ॥ माता देखे ठिइथी, संकल्प मन थाय रेलो ॥ अ० ॥ नाम परावर्त्तन करे, पद्मपुरनें गाय रेलो ॥ अ० ॥ १८ ॥ भोगपुरें छे राजीयो,नास्तिक भोगदत्त रेलो ॥ अ० ॥ सुजया विजया दोय छे,राणीयो वरगत रेलो॥अ०॥१९॥ सुदामा सुभगा थई, दोय पुत्री तास रेलो ।।अ०॥ पहेली दीधी कोइ रायनें, बीजी निज सकाश रेलो ॥ अ० ॥ २० ॥ नाम परावर्त्तन सुण्युं, पण निजनें पासें रेलो ॥ अ० ॥ विजयसुंदरी सत्य देखीनें, माय हर्ष उल्लासें रेलो ॥ अ०॥ २१ ॥ यवनिकामांथी नीकली, पुत्रीनें गले वलगी रेलो ॥ अ० ॥ भाग्यथी दीठी तुज प्रत्यें, किहां गईती अलगी रेलो ॥ अ० ॥ २२ ॥ इत्यादिक कहेतां थकां, चोथे खंमें ढाल रेलो ॥ अ०॥ छठी पद्म कहे सुणो,आगें वात रसाल रेलो ॥ अ०॥२३॥१७६॥

॥ दोहा ॥

॥ एहवे ब्राह्मण आवीया, करी ब्राह्मणी ततकाल ॥ कहे माता कां इम करो, भ्रांतें अवलुं भाल ॥ १ ॥ ए माहारी नारी अछे, सुभगा गामें सार ॥ पण तुम ए पुत्री नहीं, सरिखे रूप संभार ॥ २ ॥ रूप नाटकमां जे कर्युं, केम प्रमाण कराय ॥ अद्भुत व्रीडा खेद एम, व्याकुल तस व्यवसाय ॥ ३ ॥ मूकी दीधी मनथकी,करे विचार अनेक ॥ शुं रूपांतरें ए हशे, अथवा सदृश अनेक ॥ ४ ॥ दीठे एहनें दरिशणे, वधतो स्नेह विशेष ॥ ब्राह्मणनी वनिता किमु,आगल लहिशुं अशेष ॥ ५ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ बेडले भार घणो छे राज,वातां केम करो छो ॥ ए देशी ॥

॥ सुभगा थई देवकुलमां साजी, तिहां लगें नाटक कीधुं ॥ पण तिहां सर्व सभानुं तेणें, चित्तडुं चोरी लीधुं ॥१॥ साजन प्रेम धरीनें एह, नाटक नवलुं देखो ॥ ए आंकणी ॥ वलिय विशेषें अचरज हेतें,नाटक नवलुं करतो ॥ कुंताग्रे सूचि मांमी तसपरें, फूल एक वर धरतो ॥ सा० ॥ २ ॥ ते ऊपर नाटक ते करतो, एम जे जे रस पोखे ॥ ते ते रसमां तन्मय सहुये, न रहे चित्त कोइ धोखे ॥ सा० ॥ ३ ॥ माह्यि पुरुषें नाटक मांहे,पण नवि दोष ते दीठो, भूजंगादिक सूक्ष्म पण कोइ, जोतां नहींअ अनिठो ॥ ॥ सा० ॥ ४ ॥ नृपमंत्रीमुख दान दीये ते, नटपेटकनें आपे ॥ महादान

॥सा०॥ चढती जास जगीश तो॥१७॥ राय कहे ब्राह्मण प्रत्यें॥सा०॥ रूपें रंन समान तो॥ कन्या मुज सुलक्षणी॥सा०॥ परणो देउं बहु मान तो॥१८॥ पुत्र साजो जे मुज करे ॥सा०॥ तेहनें कन्या दान तो॥ करशुं एह प्रतिज्ञा जे॥सा०॥ न चले मेरुपरें धार तो॥१९॥ वटु बोले ए साचलुं॥सा०॥ पण एक सांनलो वात तो॥ धान्यनी रांधणी ब्राह्मणी॥सा०॥ ठे माहरे सुजात तो॥२०॥ अधिक प्रिया नवि जोइयें॥सा०॥ जेह सामान्य नर होय तो॥ मदन कथानें सांनली॥सा०॥ दोय प्रिया न करे कोय तो॥ २१॥ कोण ते मदन कह्यो तुमें॥सा०॥ वाडव नांखे ताम तो॥ सरस कथा तुमें सांनलो॥सा०॥ मदन कथा कहुं आम तो॥ २२॥ चोथे खंर्न ए कही ॥सा०॥ पद्मविजय वर ढाल तो॥ आठमी अधिके रंगशुं॥सा०॥ सुणतां मंगलमाल तो॥ २३॥ सर्व गाथा ॥ २२५॥

॥ दोहा ॥

॥ सुखइछक सहु जीव ठे, जाणे सुख नवि कोय॥ जिहां आत्मिक सुख नीपजे, ते शिवमंदिर होय॥ १॥ डर्बुद्धि सुखन्रांतिथी, रमे विषयमां लीन॥ न गमे सज्जन पुरुषनें, जास सुकृत मति पीन॥२॥ तेह विषय साधन अठे, मुख्यथकी वर नार॥ तेतो क्रूर कुटिल कही, सापण परें निरंधार॥ ३॥ जूठी क्रोध मुखी घणुं,निर्दयी साहस वंत॥ कलहकारी कपटी वली, पार लहे नहीं संत॥ ४॥ कटुकविपाक परिणामथी, सुणजो इहां दृष्टांत॥ मदन तथा धनदेवनुं,विवरी कहुं वृत्तांत॥ ५॥ चरित्र देखी नारी तणुं,विरम्या जेह महंत॥ ते सुखीया संसारमां, ते थाये गुणवंत॥६॥ तेपण ए दृष्टांतथी, जाणो सुगुण निधान॥ केम आदरी ठांमी वली,जाणी डुःख निदान॥ ७॥ कौतुकनें वैराग्यनो, वात घणुं सुविनोद॥ सांनलतां सुख ऊपजे, पूरण लहे प्रमोद॥ ८॥

॥ ढाल नवमी॥ माली केरा बागमां, दोय नारिंग पक्के रेलो॥
अहो दोय नारिंग पक्के रेलो॥ ए देशी॥

॥ जंबूद्वीप लख जोयणो, जगतीशुं सोहे रेलो॥ अहो जगतीशुं सोहे रेलो॥ मेरुपर्वत मध्यन्नागमां,देखी मन मोहे रेलो॥अ०॥१॥ तेहथी दक्षिण दिश नलुं, क्षेत्र नरत देदारु रेलो॥ अ०॥ वचमां नग वैताढ्य ठे,रूपानो वारू रेलो॥अ०॥२॥ तेहथी दक्षिण नरतमां, साहे सन्निवेश रेलो॥अ०॥

॥ ढाल आठमी ॥ तेह नगरमांहि वसे, साहेलडी रे ॥ ए देशी ॥

॥ नाइ नगिनी एम चिंतवे ॥ साहेलडी रे ॥ एहनां रूप अनुसार तो ॥ दा न धनादिक नवि घटे ॥ सा० ॥ वरसे जेम जलधार तो ॥१॥ विप्ररूपें जि नज हशे ॥ सा० ॥ अथवा उत्तम कोइ विप्र तो ॥ चेष्टा गहन एहनी घ णुं ॥ सा० ॥ मालिम न पडे क्षीप्र तो ॥ २ ॥ ब्राह्मणी रूपें मुज सुता ॥ ॥ सा० ॥ के अथवा अन्य एह तो ॥ कलावंतनां चरित्रनी ॥ सा० ॥ को ण जाणे गति जेह तो ॥ ३ ॥ ए हो के अथवा अन्य हो ॥ सा०॥ पण एक निश्चय थाय तो ॥ कलावंत कोइ नाग्यनिधि ॥ सा० ॥ परण्यो मुज सुता आय तो ॥ ४ ॥ दिव्यनेत्रवंती थई ॥ सा० ॥ हरख तणो बहु ठाय तो ॥ एह बटु इहां रहेतां ॥ सा०॥ जाणशुं आगें जे थाय तो ॥ ५ ॥ क मला एणीपरें चिंतवी ॥ सा० ॥ नांखे नाइनें एम तो ॥ कमलसुंदरी दीजी यें ॥ सा०॥ पूरो प्रतिज्ञा नेम तो ॥ ६ ॥ जिम तिम राखो एहनें ॥सा०॥ एणी परें करीय विचार तो ॥ नरपति बटु तेडी कहे ॥ सा०॥ तुम विज्ञान अपार तो ॥७॥ जे नवि दीठी न सांनली ॥सा०॥ तेह कला तुम पास तो॥ एरुज नाटकनी कला ॥ सा० ॥ देखाडी सुविलास तो ॥ ८ ॥ माहारी उन्नति बहु करी ॥सा०॥ बहोंत्तेर कला निधान तो ॥ शोल कलायें चंद्रमा ॥सा०॥ नवि होये तुम समान तो ॥९॥ रहेवुं मुज पासें तुमें ॥सा०॥ इष्ट दर्शन तुम मुज्झ तो ॥ अंगीकार बाडव करे ॥सा०॥ पण नवि लहे कोइ गुज्झ तो ॥१०॥ सहु निज निज थानक गया ॥सा०॥ स्तवता तास विज्ञान तो ॥ वधते प्रेमें बटुप्रिया ॥सा०॥ कमला करी सनमान तो ॥ ११ ॥ राखे पुत्रीनी परें ॥सा०॥ करे नित्य प्रीति आलाप तो ॥ राज्य लानादिकथी घ णो ॥सा०॥ लहे संतोषनो व्याप तो ॥ १२ ॥ कमलसुंदरी हवे एकदा ॥सा०॥ कहे निज मातनें एम तो ॥ ब्राह्मणनें मुज नरपति ॥सा०॥ हजीअ न आपे केम तो ॥ १३ ॥ आप प्रतिज्ञा पूरवा ॥सा० ॥ सज्जन न करे वार तो ॥ नाटकथी रीझी तेणें ॥सा०॥ बटु वांछे नरतार तो ॥१४॥ राणीयें कह्यो रा यनें ॥सा०॥ निजपुत्री अनिप्राय तो ॥ नूपति सांनली हरखियो ॥सा०॥ तस आशय शुन ठाय तो ॥१५॥ एक दिन शेठ सेनापति ॥सा०॥ मंत्री सामंत परिवार तो ॥ बेठो पूरीने सना ॥सा०॥ दीपतो नूनरतार तो ॥ १६ ॥ ब्रह्म वैश्रवण ते आविया ॥सा०॥ देई नृपनें आशीष तो ॥ बेठो रायनें ढूकडो

ते मुनिराजनें, दूर ठंमी नार रेलो ॥ अ० ॥ संयम लेइ सुखीया थ या, पाम्या नवपार रेलो ॥ अ० ॥ २० ॥ नवमी चोथा खंममां, नांखी ए म ढाल रेलो ॥ अ० ॥ पद्मविजय कहे सांजलो,आगें वात रसाल रेलो ॥ अ० ॥ २१ ॥ सर्वगाथा ॥ २५४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रचंमायें दीगे प्रबल, जुजंगम जयकार ॥ आंगणा आगल आवीयो, कीनाशनें अनुकार ॥ १ ॥ क्रोधें ते देखी करी, तनु उद्वर्त्तन ताम ॥ करी मलपिंमनी गोलिका, नाखे सन्मुख जाम ॥ २ ॥ नकुल थया ते ततक्षणें, नाग कस्यो नवखंम ॥ चमक्यो मदन ते चित्तमां, चंमाथीआ प्रचंम ॥३॥ जोतां जोतां नोलीया,सर्व थया विसराल॥ नाना रस वेदे मनें,चिंते मदन रसा ल॥४॥ अहो चंमाना कोपथी,आव्यो प्रचंमा पास ॥ शरण थइ ए मुजनें, राख्यो देइ आश्वास ॥ ५ ॥ पण जो दैवयोगें करी, कोपे प्रचंमा एह ॥ तो कोण शरण हवे तदा, जाउं केहनें गेह ॥ ६ ॥ वाहालो पण कोपे न ही, एहवो उर्लज कोय ॥ तो नारीनें कुजारजा, नवि कोपे केम होय ॥७॥ ए राक्षसिणी दोय जणी, ठांमी जाउं परदेश ॥ आप कुशलनें कारणें, त्य जीयें राज्यनें देश ॥ ८ ॥ यतः ॥ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ॥ ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १ ॥

॥ ढाल दशमी ॥ पुण्य प्रगट थयुं ॥ ए देशी ॥

॥ एम चिंतवीनें नीकल्यो रे सुहजन ॥ साथें बहु धन लेय ॥ पुण्य प्रगट थयुं ॥ मदन जमे देशांतरें रे सु० ॥ स्वेछायें गत खेय ॥ पु० ॥ १ ॥ केइक वासर वही गया रे सु० ॥ पृथिवी जोतां तास ॥ पु० ॥ जमतो जमतो आ वियो रे सु०॥ नगर नाम संकाश ॥पु०॥ २ ॥ जीते निज लखमीथकी रे सु०॥ सुरपुरी लंकावास ॥ पु०॥ तेह नगर उद्यानमां रे सु०॥ वेगे अशोक सकाश ॥ पु० ॥ ३ ॥ इण अवसर एक आवियो रे सु०॥ जानुदत्त एणें ना म ॥ पु० ॥ शेठमांहे शिरोमणि रे सु०॥ बोले ते हवे आम ॥ पु० ॥ ४ ॥ म दन सुखें तुं आवियो रे सु० ॥ कुशल अठे सुखशात ॥ पु० ॥ चालो निजघर जाइयें रे सु०॥ मानो अमची वात ॥ पु०॥ ५ ॥ नाम सुणी चित्त चमकियो रे सु०॥ शुं जाणे मुज नाम ॥ पु०॥ चाल्यो नगरमां तेहशुं रे सु०॥ पोहोतो तेहनें धाम ॥ पु० ॥ ६ ॥ शेठ करावे तेहनें रे सु० ॥ स्नान जोजन जलि

नाम कुशस्थल जाणीयें, बहु पुण्य प्रवेश रेलो ॥ अ० ॥ ३ ॥ तिहां कुल पुत्र सोहामणो, रूपें जिस्यो काम रेलो ॥ अ० ॥ मदन नामें प्रसिद्ध जे, लखमीनुं धाम रेलो ॥ अ० ॥ ४ ॥ किहांहीथकी बालकालथी, विद्या बहु पामी रेलो ॥ अ० ॥ क्रोधमुखी कुटिला घणुं, नारी गुणें जामी रेलो ॥ ॥ अ० ॥ ५ ॥ नारी दोय सोहामणी.जाणीयें रति प्रीति रेलो ॥ अ० ॥ चंडा प्रचंडा नामथी, तेम गुणथी प्रतीति रेलो ॥ अ० ॥ ६ ॥ प्रेम घणो त्रि हुं उपरें, तेहनें पण प्रेम रेलो ॥ अ० ॥ पण बेहु शोक्यो कलह करे, शो क्य धर्म ए नेम रेलो ॥अ०॥७॥ यतः ॥ दोहो ॥ शोक्य वैर अति आकरां, जेहवां तीखा तीर ॥ भालां शूल तणीपरें, परें परें दाखे पीर ॥ १ ॥ पूर्वढा ल ॥ मदन वारे पण नवि रहे,कोपनें वली मान रेलो ॥ अ० ॥ राखी प्र चंडा नारिनें, पासें गामने थान रेलो ॥ अ० ॥ ८ ॥ एक एक दिनना निय मथी, रहे मदन तेवार रेलो ॥ अ० ॥ मदन ते नियम चूके नहीं,एम क रतां केवार रेलो ॥ अ० ॥ ए ॥ कारण कोइक पामीनें, परचंडा गेह रेलो ॥ अ० ॥ एक दिन अधिको तिहां रह्यो, धरी तास सनेह रेलो ॥ अ० ॥ ॥ १० ॥ आव्यो चंडानें घरे, कण खांमती तेह रेलो ॥ अ० ॥ आवतो दीगे निजपति, क्रोधें नरी देह रेलो ॥ अ० ॥ ११ ॥ मुशलुं नाख्युं सन मुखें,मुखें एणीपरें नास रेलो ॥ अ० ॥ रे रे दुष्ट अनागीया,तुज नहिं इहां वास रेलो ॥ अ० ॥ १२ ॥ दुष्ट प्रचंडा तुजनें, घणुं प्राण आधार रेलो ॥ अ० ॥ जा तेहने घर सुखथकी, रहेजे धरी प्यार रेलो ॥ अ०॥१३ ॥ ते देखो बीहिनो अति, नागो तेणीवेला रेलो ॥ अ० ॥ थोडी नूमिका ज ई करी, पूठें जूवे हेला रेलो ॥ अ० ॥ १४ ॥ सर्पनयंकर देखीयो, फणा टोप विशाल रेलो ॥ अ० ॥ स्थूल मूशल सम आवतो, जाणीयें महा काल रेलो ॥ अ० ॥ १५ ॥ नागो सविशेषें वली, परचंडा पास रेलो ॥ अ० ॥ दीगे तेणीयें आवतो, नवि माये श्वास रेलो ॥अ०॥१६॥ पूछे केम नयभ्रांत तुं, आव्यो ततकाल रेलो ॥ अ०॥ मदन कहे चंडा च री, पूठें तुं नाल रेलो ॥ अ० ॥ १७ ॥ सांनली परचंडा कहे, मत नय मन आण रेलो ॥ अ० ॥ तुं मुज प्राणथी वालहो, हुं करशुं त्राण रेलो ॥ अ० ॥ १८ ॥ धीरो था कांय नय नथी, एहनो श्यो नार रेलो ॥अ०॥ एम कही आश्वास्यो तेणें, नारीचरित्र अपार रेलो ॥अ०॥१ए॥ धन्य धन्य

ग दुर्गम कचरे ॥ गिरि नदीयो अति विषम ले वाटें, जावा चित्त केम पसरे ॥ स्वा० ॥ ७ ॥ शरद कालें जब पाउस उतरे, तव जाजो तुमें स्वामी ॥ वात सुणीनें मान्युं मदनें, स्त्रीने वश होये कामी ॥ स्वा० ॥ ८ ॥ भोगसुखें हवे काल गमावे, शरद रुतु जब आवे ॥ तब जावा उत्कंठित पूछे, जाउं जो तुं फरमावे ॥ स्वा० ॥ ए ॥ कांइ विचार करीनें मान्युं, संबल साथें आपे ॥ करी सुंगधि करंबो विधिशुं, मदननें साथें थापे ॥ स्वा० ॥ १० ॥ कुशस्थल भ णी चाल्यो वेगें, लेइ करंबो तेह ॥ जातां थयो मध्यान्ह समय तव, कोइ गामें गयो एह ॥ स्वा० ॥ ११ ॥ तास उद्यानें सरोवर तीरें, तरुमूलें विश्रा म ॥ नाही देवगुरु संभारी, इछे भोजन काम ॥ स्वा० ॥ १२ ॥ चिंतवे जो कोइ आवे अतिथि, नयणें इणहिज काल ॥ तो तस ग्रास अर्द्ध आपीनें, पुण्य करुं ततकाल ॥ स्वा० ॥ १३ ॥ परनें शब्द करीनें भुंजे, जगमां ते ध न्य प्राणी ॥ अतिथि संविभाग कर्युं तेणें, लखमी करतल आणी ॥स्वा०॥ ॥ १४ ॥ एम चिंतवतां दीठो पासें, देवकुलथी नीकलतो ॥ जटा मुकुटनें भस्म विलेपित, गाम भणी सल सलतो ॥ स्वा० ॥ १५ ॥ तपसी देखी हरख्यो हृदयें, वोलाव्यो बहु मानें ॥ आप्यो करंबो आहार प्रमाणें, वली वलियो निजथानें ॥ स्वा० ॥ १६ ॥ भूख्यो तपसी खावा बेठो, तेह सरो वर तीरें ॥ खावा मदन आरंभे जेते, लेई समीप ते नीरें ॥स्वा०॥ १७॥ एहवे ठीक थई तव चिंते, कांइ विलंब ते कीजें ॥ एहवे योगी बकरो हूउ,करंब प्रभाव वदीजें ॥ स्वा० ॥ १८ ॥ श्रीगुरु उत्तमविजयप्रभावें, चोथे खंमें ढा ल ॥ बारमी पद्मविजय कहे पुण्यें, होवे मंगलमाल ॥ स्वा० ॥ १ए॥ ३३॥

॥ दोहा ॥

॥ बें बें करतो बोकडो, चाल्यो नगर सकाश ॥ मदन लह्यो विस्मय घणुं, देखी तेह विलास ॥ १ ॥ किहां जाये ले बोकडो, जोउं पूठें जाय ॥ एम चिंतीनें चालीयो, कौतुक मन नवि माय ॥ २ ॥ मदन बोकडो बिहु जणा, पोहोता नयर मकार ॥ पेठो बकरो भवनमां, जिहां विद्युतलता नार ॥३ ॥ मदन जोवा ठानो रह्यो, कोइ थानक ते पास ॥ जोउं बकरो शुं करे, पेशी नें आवास ॥ ४ ॥ बकरो आव्यो जाणीनें, विद्युतलता दीये द्वार ॥ लेइ लकुटनें मारवा, उठी बंधी नार ॥ ५ ॥ बूंब पाडे ते बोकडो, तव बोले

ते नार ॥ निरपराध मुजनें त्यजी,रे तुज पडो धिक्कार ॥६॥ बहुकालें पण पूर्व नी, नारीथी विरम्यो नांहि ॥ चाल्यो त्यां उत्कंठथी, शुं जोइ आव्यो आंहि॥७॥

॥ ढाल तेरमी ॥ करेलडां घड देनें ॥ ए देशी ॥

॥ नारी कहे मुसलें करी, दया करीनें आज ॥ मारुं नहीं जरता जणी, जाणी महोटुं अकाज ॥ १॥ जविकजन सुणजो रे ॥ नारीचरित्र विचित्र, हृदयमां मुणजो रे ॥ ए आंकणी ॥ बीहीनो चंमा मुशलथी, गयो प्रचंमा पा स ॥ मुज मारतां हवे कहो, चित्तमां केहनी आश ॥ ज० ॥ २ ॥ कहीक हीनें एम मारती, मलीयो लोक अपार ॥ मदन विचारे चित्तमां, अहो अहो चरित्र अपार ॥ ज० ॥ ३ ॥ करंवो जो खातो कदा,माहारी पण ए रीत॥ लोक बुंबारव सांजली,देखी एह अनीत ॥ ज० ॥४ ॥ रे रे मूढ पशुजणी, मारे छे तुं केम ॥ वणिक कुलें तुं उपनी, केम हिंसा करे एम ॥ज० ॥५॥ तव पाणी मंत्री करी, छांटयुं तेहनें जाम ॥ जस्मगुंम्फित जटा धरो, जरण योगी थयो ताम ॥ ज० ॥६॥ लोक देखी पूछे इश्युं, जगवन् शी ए वात ॥ तव ते आंसु नाखतो,जांखे निज अवदात ॥ ज० ॥ ७ ॥ बीहीकें तपसी ना सतो, विस्मय पाम्यो लोक ॥ विद्युतलतानें उपन्यो, मनमांहे घणुं शोक॥ ॥ ज० ॥ ८ ॥ धिग धिग निरपराधी ए, तपसी मास्यो आज ॥ नवि जाणुं किहांही गयो, पति जाणी ए अकाज ॥ ज० ॥ ए ॥ मलशे अथवा नहीं म ले, ते माहारो जरतार ॥ में जाण्युं शिक्षा देई,जोग जोगवशुं सार ॥ज०॥ ॥ १० ॥ मनना मनोरथ मनमां रह्या, जनमां थयो अपवाद ॥ पतिविरहि णी हुं थई,किहां करुं शोरनें दाद ॥ ज० ॥ ११॥ पहोंक खवाणो पण न हीं, हाथें दाधो जेम ॥ ए उखाणो मुज थयो,कहो हवे करियें केम ॥ज०॥ ॥ १२ ॥ मदन विचारे देखीनें,निज चरित्रें करी एह ॥ चंमा प्रचंमा बेहु ज णी, जीती कपटणी गेह ॥ ज० ॥ १३ ॥ योगीनें पण गम्य नहीं, नारीच रित्रनो अंत ॥ धिग धिग विषयी जीवनें, तो पण तिहां राचंत ॥ज०॥१४॥ राक्षसणी सापण वली,वाघणी जीती एण ॥ जे विश्वास करे नरा,ते पशु नर रूपेण ॥ज०॥१५॥ पुण्यें त्रणथी छूटीयो,हवे करुं निज काज॥एम चिंतवतो आवीयो, नाम हसंती पुरी पाज ॥ज०॥१६॥यतः॥ पथ्यंते लंघने रोगाः, फलं कालेन पच्यते ॥ कुमित्रे पच्यते राजा,पापी पापेनपच्यते॥१॥ पूर्वढाल॥ तेरमी चोथा खंमनां, पद्मविजयकही ढाल ॥ पुण्यें मति सबली हुवे,पुण्यें मंगलमाल॥

॥ दोहा ॥

॥ गौरी घर घर वारणे, ईश्वर मानुष्य मात ॥ रंजा वन वन देखीयें, धनदनी केइ कहुं वात ॥ १ ॥ गौरी ईश्वर रंजा धनद,सहुने हसती तेह ॥ नाम हसंती तेहनुं,सुरपुरी अधिक ठे एह ॥ २ ॥ तस उद्यानमां चैत्य ठे, जाणे मेरुगिरिंद ॥ कनकथंज पंचालिका, जिहां श्रीरूषन जिणंद ॥३॥

॥ ढाल चौदमी ॥ नवि तुमें वंदो रे, सुमतिनें शांति जिणंदा ॥ ए देशी॥

॥ मदन देउलमां पेठो हरखें,रूपन्न जिनेसर दीठा॥ जनम मरण टाले नवि जननां, मनमां लागा मीठा ॥ १ ॥ जिणवर निरखी लाल,हियडे हर्ष धरीजें ॥ जिनगुण परखी लाल, नरनव सफल करीजें ॥ ए आंकणी ॥ नवसायरमां नमता जननें, आलंबन जिनराया ॥ देवनो देव सुरासुर वंदित, पूरव पुण्यें पाया ॥ जि० ॥ २ ॥ हाथें नही हथियार न माला,नहीं उत्संगें वामा ॥ अविकारी अकषायी मुद्रा, निर्जयीनें गुणधामा ॥ जि० ॥ ॥ ३ ॥ एह सरूप न जगमां दीसे, सफल थयो अवतार ॥ नयन कृतारथ माहारां हूआं, धन्य हुं जग शिरदार ॥ जि० ॥ ४ ॥ नवसायरनो पार हुं पाम्यो, डुर्लन जिनपद पामी ॥ नवखय कारण नवडुःख वारण, हवे थयो शिवगतिगामी ॥ जि० ॥ ५ ॥ एम बहु मानें जिनवर प्रणमी, बेठो तिण हिज ठाम ॥ वणिकपुत्र इण अवसर आव्यो, धनदेव तेहनुं नाम ॥ जि० ॥ ६ ॥ तेपण परमातम प्रणमीने, मनमां उल्लसित नावें ॥ मदननें धनदेव रंग मंमपमां,हरखें बिहु जण आवे ॥ जि०॥ ७ ॥ पूछे धनदेव स्नेह धरीनें, साधर्मिक तस जाणी ॥ नइ तमें आव्या कहो किहांथी, जिन मुख जोवा जाणी ॥ जि० ॥ ८ ॥ डुःख हृदयमां तुम बहु देखुं, तव चिंते ते एम ॥ कोइ महातमा मुजनें पूछे, आणी बहुलो प्रेम ॥ जि० ॥ ९ ॥ बोल्यो मदन नइ हुं आव्यो, नगरसंकाशथी जाणी ॥ डुःख कारण मुज हृदयनुं पूछ्युं, ते सांजल गुणखाणी ॥जि०॥१०॥ वात लज्जा जेहवी ठे तो पण, तुमचुं दरिसण देखी ॥ स्नेह घणो दीठो तेणें नांखुं, बीजुं सर्व उवेखी ॥जि०॥११॥ यतः ॥ वरं न राज्यं न कुराजराज्यं, वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रं ॥ वरं न दारा न कुदारदारा, वरं न शिष्योन कुशिष्यशिष्यः ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥ निजवृत्तांत सर्वे तेणें नांख्युं, धनदेव बोल्यो तिहारें ॥ केटलुं मुज डुःख आगल ताहारुं, तुजथी अधिक डुःख माहारे ॥ जि० ॥ १२ ॥

माहारी वात घणी अचरजनी सुणतां अचरज थाय ॥ नार्या माहारे तुज थी अधिकी, सुणतां तुज दुःख जाय ॥ जि०॥ १३ ॥ मदन कहे कहो तुम नार्यानी, वात ते विस्मयकारी ॥ धनदेव कहे ते कहियें सुणजो, हर्ष धरी नरनारी ॥ जि० ॥ १४ ॥ चोथे खंमें चौदमी नांखी, श्रीजयादनें रास ॥ पद्मविजय कहे गुणिगुण सुणतां, होये लील विलास ॥जि०॥१५॥३७५॥

॥ दोहा ॥

॥ इण नयरीमांहे वसे, धनपति नामें शेठ ॥ निश्चल श्रीजिनधर्ममां, बीजुं जाणे वेठ ॥ १ ॥ मुनिजननी सेवा करे. करे वली पर उपकार ॥ गुण रागी गिरुउ घणुं, श्रीमंतमां शिरदार ॥२॥ लखमी नाम सोहामणुं, नाम तिस्यो परिणाम ॥ लखमी घर आंगण वसे,सकल कलानुं धाम ॥३॥ एह वी नारीशुं शेठजी, उनय लोक अविरुद्ध ॥ साधंतां सुत दोय थया, तेह सदा सुविशुद्ध ॥ ४ ॥ तिहां पहेलो धनसार छे, बीजो छे धनदेव ॥ यौवन वय आव्या बिहुं, स्वामी कार्त्तिक महादेव ॥ ५ ॥

॥ढाल पंदरमी॥ गेव सागरनी पाल,उन्नी दोय नागरी माहारा लाल॥ए देशी॥

॥ दोय कला हवे शीख्या, यौवनवय आवीया माहारा लाल ॥ रूप लावण्य विशिष्ट, कन्या परणावीया मा०॥ नित्य नित्य निज व्यापार,करे ते बेहु जणा मा०॥ काल गमावे एणी परें,सहुए एकमना मा०॥१॥जीवलोकनें मरण, अंतें आवे सदा मा०॥ समय समय विणासे रस, रूपनें संपदा मा०॥ धनपति शेठ आयु निज, अथिर जाणी करी मा० ॥ शत्रु मित्र समनाव, हृदयमांहे धरी मा० ॥ २ ॥ थई विरक्त संसारथी, सहु जीव खामणां मा०॥ मन एकाग्रे पंच, परमेष्टि सुमरणां मा०॥ पंथ साध्यो परलोकनो, धनपति वाणीये मा० ॥ मरण लह्युं एम उत्तम,श्रावक जाणीयें मा० ॥ ३ ॥ निज नरतार वियोग, शोक हवे बहु करे मा० ॥ लखमी पण घरवास, बीहामणुं चित्त धरे मा०॥ बहु संवेग विषयथी,विमुखी नित्य रहे मा०॥ तपथी विशेषें शोषवी, काय मरण लहे मा० ॥ ४ ॥ मात पिताना मरणथी, शोक करे घणो मा०॥ नवि सुख पामे किणही, ठाम चित्त दोय तणो मा०॥ तजीयो सकल व्यापार,हवे एणे अवसरें मा०॥ श्रीमुनिचंद मुणींद, आव्या पुर परिसरें मा० ॥ ५ ॥ तेणें उपदेश कह्यो एम, नोनो केम करो मा० ॥ एवडो शोक संनार, धरो चित्तमां खरो मा० ॥ नवि संसार सरूप,

निरूपण चित्त करो मा० ॥ अथिर सकल संसारमां, सर्वने यम ह रो मा ० ॥ ६ ॥ नित्यपंथी ए प्राण, शरीर ए चल थछे मा० ॥ यौवन चपल मरण ध्रुव, अनुक्रमें सवि गछे मा० ॥ एक जिनेश्वरजाषित, शरण ते धर्म छे मा० ॥ तेह आधार गति स्थिति, अवर अधर्म छे मा०॥ ७ ॥ तेह सुणीनें शोक,मंद करी घर गया मा० ॥ निजघर कार्य व्या पारमां, बिहुंये सक्त थया मा०॥ बिहुंनी नारी ते घरमां, नित्य कलह करे मा० ॥ वेहु जण समजो जिन्न, जिन्न राखे घरें मा०॥ ८ ॥ जाते दिन एक दिन, पूछ्युं वृद्ध जाइयें मा०॥ केम उदवेग सहित तुज मनडुं पाइयें मा०॥ तव लघु जाइ कहे मुज, नारीनुं दुःख घणुं मा० ॥ तेणें मुज उदवेग थाय, तनु दुर्बलपणुं मा० ॥ ए ॥ महोटो जाइ कहे तुं,मन मत दुःख करे मा०॥ कन्या बीजी परणावुं,तेहथी सुख धरे मा ०॥ लघु जाई कहे एमज, करो जेम सुख-लहुं मा०॥ एह वात तुम आगल, जाजी शी कहुं मा०॥ १० ॥ तव वृद्ध जाइयें कोइक, कुलवंती कनी मा०॥ परणाव्यो धनदेवनें, बीजी शोना बनी मा० ॥ चोथे खंमें ढाल, पंदरमी ए कही मा०॥ पद्मविजय कहे श्रीगुरु, उत्तमथी लही मा०॥ ११ ॥ सर्व गाथा ॥ ३ए१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ अजिनव परणी नारिशुं,जोगवे नवला जोग ॥ जावि जावना योगथी, सरखो मल्यो संयोग ॥ १ ॥ स्वेछाचारी नारि ते, पहेली सरखी एह ॥ चित्त संतोष न उपन्यो, धनदेवनें तिहां रेह ॥ २ ॥ मन चिंते निर्जाग्य हुं, घर उछो गयो रत्न ॥ तिहां पण जावि जावथी, लागी वहोत अगन्न ॥ ३ ॥ तास परीक्षा कारणें, जोवे तास चरित्र ॥ एक दिन वेगो धूजतो, ना रीनें कहे एणि रीत ॥ ४ ॥ शीतज्वर मुज आवियो, वेशी न शकुं तेण ॥ ॥ वहेली शय्या पाथरो, शयन करुं हुं जेण ॥ ५ ॥ प्रगुण करी शय्या तेणें, धनदेव सूतो जाम ॥ पावरण सीरप प्रमुख, उढाड्यां तस ताम॥६॥ ॥ ढाल शोलमी ॥ ऊांऊरीया मुनिवर, धन्य धन्य तुम अवतार ॥ ए देशी ॥ ॥ तेणे समे सूरय आथम्योजी,रातें थयो अंधकार॥ आछादे सवि दोषनें जी, घुघड करे घुतकार ॥ १ ॥ सोनागी सयणा, सांजलो नारीचरित्र ॥ ए आंकणी ॥ घोरनाद कपटें करीजी, उंघे तिहां धनदेव ॥ तव मोहोटी ल घुनें कहेजी, सांजल रे तुं हेव ॥ सो० ॥ २ ॥ तुं परवार उतावलीजी,

आपणनें ठे काम ॥ तव ते काम उतावलीजी, करीनें प्रगुण थइ ताम ॥ ॥ सो० ॥ ३ ॥ घोर निद्रा आव्यो वहीजी, जाणी ते बोय नारि ॥ घरमां थी ते नीकलीजी, घर उद्यान सहकार ॥ सो० ॥ ४ ॥ ते उपर बोई चढी जी, पाठलथी धनदेव ॥ तेनें अनुसारें गयोजी, हलुवे हलुवेहेव ॥सो०॥५॥ तेहज आंबे वस्त्रथीजी, बांधुं आप शरीर ॥ वेगे पृथिवी उपरेजी, साह स धरीनें धीर ॥ सो० ॥ ६ ॥ मंत्र संजाख्यो तेणीयेंजी, शक्ति अचिंत्य ठे मंत्र ॥ कडीनें आंबो गयोजी, चाल्यो ते गगनांत ॥ सो० ॥ ७ ॥ जलजंतु बीहामणोजी, रयणायर मध्यनाग ॥ रत्नद्वीप रलियामणोजी, अवरद्वीप वडनाग ॥ सो० ॥ ८ ॥ तस शिर मुकुट मणिसमुंजी, नगर रयणपुर त ठ ॥ रतनें मंमित घर घणांजी, सहस गमे ठे जठ ॥ सो० ॥ ए ॥ विद्या धर वासो जिहांजी, रूपें जीत्यो अनंग ॥ विद्याधरी रूपेंकरीजी, रति हा री एकंग ॥ सो० ॥ १० ॥ तिण नगरी उद्यानमांजी, उतरीयो सहकार ॥ धनदेव तिहांथी नीकलीजी, दूर गयो कोइ गर ॥ सो० ॥ ११ ॥ नार्यांउ पण ऊतरीजी, पेठी नगर मजार ॥ धनदेव पण पूठें थयोजी, तास चरण अ नुसार ॥ सो० ॥ १२ ॥ कौतुक नगरीमां जुवेजी, नानाविध मनोहार ॥ निज इडायें विचरतीजी, पूंठे तस नरतार ॥ सो० ॥ १३ ॥ तेह चरित्र जोतां थकांजी, चित्तमां चमक्यो एह ॥ जाणे स्वर्गमां आवीयोजी, स्वपन परे लहे तेह ॥ सो० ॥ १४ ॥ चोथे खंमें ए कहीजी, शोलमी ढाल रसा ल ॥ पद्मविजय कहे पुण्यथीजी, होवे मंगलमाल ॥ सो० ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एणे अवसर ते नयरमां, श्रीपुंज नामें शेठ ॥ बीजा सहु व्यवहारिया, मानुं एहथी हेठ ॥ १ ॥ चार पुत्र उपर सुता, श्रीमती नामें तास ॥ तिलक समी त्रिहुं लोकमां, रूप लावण्यनो वास ॥ २ ॥ एहवी नारी न पामीयो, क्षीणदेह तेणें काम ॥ हलुये हलुये अनंग थयो, ते दुःखथी मानुं आ म ॥ ३ ॥ विद्या कला सरवे तिहां, स्पर्द्धायें कस्यो वास ॥ सौनाग्य स्था नक ए समुं, नवि लाधुं कोइ पास ॥ ४ ॥ सार्थवाह वसुदत्त तिहां, तेहना पुत्रने तेह ॥ कस्यो विवाह हवे परणवा, मांमयो उत्सव गेह ॥ ५ ॥

॥ ढाल सत्तरमी ॥ राग खंनाती ॥ हवे श्रीपाल कुमार ॥ ए देशी ॥

॥ सारथवाहनो पूत, वस्त्र अमूलिक अंगें धरेजी ॥ रयणतणा अलं

कार,तास किरण अति विस्तरेजी ॥१॥ सांबेला श्रीकार, पहेस्यां वाघा जरक शीजी ॥ नाटक करे वर पात्र, जाणे रंना उर्वशीजी ॥ २ ॥ वाजे विवध वाजित्र, सरणाइ टहके घणीजी ॥ साजन मलियो साथ, मंगल गावे जान णीजी ॥ ३ ॥ बोले विरुद अनेक, लोक जोवा बहु आवीयो जी ॥ श्रीफलनें वली पान, वरराजा कर नावीयोजी ॥ ४ ॥ वींजे चामर पास, छत्र धर्युं शिर उपरेंजी ॥ नोबत्त गडगडे ठंदि, चहुटे चाले एणी परेंजी ॥ ५ ॥ देखी नारीचरित्र, धनदेव चिंते इण समेजी ॥ वलशे जव ए नारि, तव व लशुं हुं अनुक्रमेंजी ॥६॥ जोतो उत्सव तेह, श्रीपुंजशेठ घर आंगणेजी ॥ उनो तोरणें तेह, दीसे ते रलीयामणेजी ॥ ७ ॥ एण अवसर वरराय, तुरंग चढयो शोनें घणुंजी ॥ वसुदत्त सुत श्रीपुंज,शेठनुं सोहावे आंगणुंजी ॥ ८ ॥ लोक तणी नीडनाड, जोवा मलीयो बे घणोजी ॥ यंत्र ते फगीयो ताम, तीखी धार तोरण तणोजी ॥ ए ॥ पडीयो तिर्ठो तेह, नवितव्यता योगें करी करीजी ॥ लाग्यो ते उत्तमांग,वर ततकाल गयो मरीजी ॥ १० ॥ वसुदत्त परिजन जेह, तेह शोकातुर बहु थयोजी ॥ रोवे सवि परिवार, शिर कूटे पीटे हियोजी ॥ ११ ॥ सहु गया ते निजघेर, हवे श्रीपुंज चित्त चिंत वेजी ॥ श्यो आव्यो अंतराय, कहो हा शुं करीयें हवेजी ॥ १२ ॥ शी गति होशे धूय, खेद करे चित्त आपणजी ॥ निजपरिवारनें साथ, चिंतवे एणी परें मापणेंजी ॥ १३ ॥ यतः ॥ प्रारब्धमन्यथा कार्यं, दैवेन विदधेऽन्यथा ॥ कोवेत्ति प्राणिनां प्राच्य, कर्म्मणां विषमां गतिम् ॥१ ॥ पूर्व ढाल ॥ परणे नहीं जो आज, लगनें तो ए अनागणीजी ॥ एम लोकें परसिद्ध, सकलंकी कन्या नणीजी ॥ १४॥ नहीं परणे नर कोय,सहुनें जीवित वालहुंजी ॥ पर णावुं कोइ आज,कन्यानाग्य शास्त्रें कह्युंजी ॥१५॥ सयण कहेकाहिं खेद,तुम नें करवो नवि घटेजी ॥ विण नावी नवि होय,नावि नाव ते नवि मटेजी ॥ ॥ १६ ॥ वीजानें द्यो एह, सांनली चित्तमां हरखियोजी ॥ निजनरनें करे आण, लावो कोइ नर परखियोजी ॥ १७ ॥ ते नर ततक्षण ताम, वर जो वानें नीकल्याजी ॥ राजमार्गे सवि ठाम, जोतां कोइनें नवि मल्याजी ॥१८॥ इण अवसर धनदेव, नयणें पडियो तेहनेंजी ॥ दिव्यरूपधर जेह, आव्यो ते नर यौवनेंजी ॥ १९ ॥ लाव्या शेठनें पास, निजपुत्री सम निरखि योजी ॥ प्राथेना करे तास, शेठीयो हैडे हरखीयोजी ॥ २० ॥ चोथे खंमें

आपणनें ठे काम ॥ तव ते काम बतावलीजी, करीनें प्रगुण थइ ताम ॥ ॥ सो० ॥ ३ ॥ घोर निद्रा आव्यो वहीजी, जाणी ते बोय नारि ॥ घरमां थी ते नीकलीजी, घर उद्यान सहकार ॥ सो० ॥ ४ ॥ ते उपर दोई चढी जी, पाठलथी धनदेव ॥ तेनें अनुसारें गयोजी, हलुवे हलुवे हेव ॥ सो० ॥ ५ ॥ तेहज आंबे वस्त्रथीजी, बांध्युं आप शरीर ॥ वेगे पृथिवी उपरेजी, साहस धरीनें धीर ॥ सो० ॥ ६ ॥ मंत्र संजाख्यो तेणीयेंजी, शक्ति अचिंत्य ठे मंत्र ॥ कडीनें आंबो गयोजी, चाल्यो ते गगनांत ॥ सो० ॥ ७ ॥ जलजंतु बीहामणोजी, रयणायर मध्यजाग ॥ रत्नद्वीप रलियामणोजी, अवर द्वीप वडजाग ॥ सो० ॥ ८ ॥ तस शिर मुकुट मणिसमुंजी, नगर रयणपुर त ब ॥ रतनें मंमित घर घणांजी, सहस गमे ठे जब ॥ सो० ॥ ए ॥ विद्याधर वासो जिहांजी, रूपें जीत्यो अनंग ॥ विद्याधरी रूपेंकरीजी, रति हारी एकंग ॥ सो० ॥ १० ॥ तिण नगरी उद्यानमांजी, उतरीयो सहकार ॥ धनदेव तिहांथी नीकलीजी, दूर गयो कोइ ठार ॥ सो० ॥ ११ ॥ नार्यांउ पण कतरीजी, पेठी नगर मजार ॥ धनदेव पण पूठें थयोजी, तास चरण अनुसार ॥ सो० ॥ १२ ॥ कौतुक नगरीमां जुवेजी, नानाविध मनोहार ॥ निज इछायें विचरतीजी, पूंठे तस जरतार ॥ सो० ॥ १३ ॥ तेह चरित्र जोतां थकांजी, चित्तमां चमक्यो एह ॥ जाणे स्वर्गमां आवीयोजी, स्वपन परे लहे तेह ॥ सो० ॥ १४ ॥ चोथे खंडें ए कहीजी, शोलमी ढाल रसाल ॥ पद्मविजय कहे पुण्यथीजी, होवे मंगलमाल ॥ सो० ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एणे अवसर ते नयरमां, श्रीपुंज नामें शेठ ॥ बीजा सहु व्यवहारिया, मानुं एहथी हेठ ॥ १ ॥ चार पुत्र उपर सुता, श्रीमती नामें तास ॥ तिलक समी त्रिहुं लोकमां, रूप लावण्यनो वास ॥ २ ॥ एहवी नारी न पामीयो, क्षीणदेह तेणें काम ॥ हलुये हलुये अनंग थयो, ते दुःखथी मानुं आम ॥ ३ ॥ विद्या कला सरवे तिहां, स्पर्द्धायें कस्यो वास ॥ सौजाग्य स्थानक ए समुं, नवि लाधुं कोइ पास ॥ ४ ॥ सार्थवाह वसुदत्त तिहां, तेहना पुत्रने तेह ॥ कस्यो विवाह हवे परणवा, मांमयो उत्सव गेह ॥ ५ ॥

॥ ढाल सत्तरमी ॥ राग खंजाती ॥ हवे श्रीपाल कुमार ॥ ए देशी ॥

॥ सारथवाहनो पूत, वस्त्र अमूलिक अंगें धरेजी ॥ रयणतणा अलं

तोऽन्नागः क च ॥ सूनुर्धनपतेर्नाम्या,धनदेवोऽन्यगात्त्रियं ॥१॥ ढाल ॥ ह संती नगरी किहां सु० ॥ किहां रतनपुर गाम ला० ॥ किहां आंबो गगनें चल्यो सु० ॥ किहां कह्यो धनदेव नाम ला० ॥ १०॥ कांइक कार्य उद्देशीनें सु० ॥ नीकलीयो हवे तेह ला० ॥ आंबे चढी ते दोय जणी सु० ॥ मनमां हर्ष धरेय ला० ॥ ११॥ आंबे पूर्वपरें रह्यो सु० ॥ नारीयें गणियो मंत ला० ॥ चाल्यो आकाशें आंबलो सु०॥ पोहोतो निज घर तंत ला०॥ ॥ १२ ॥ उतस्यो निज उद्यानमां सु० ॥ धनदेव छानो ताम ला०॥ घरमां जई सूतो वली सु० ॥ शय्यायें करी आराम ला० ॥१३॥ उंढी निद्रा नर थयो सु० ॥ आवी हवे दोय नार ला० ॥ नरनिद्रायें देखियो सु०॥ सूनो निज नरतार ला० ॥ १४॥ शंका रहित सूती बेहु सु०॥ जागी क्षणकमां जाम ला० ॥ थयो प्रनात रयणी गई सु० ॥ सूरय उग्यो ताम ला० ॥ ॥ १५ ॥ सवि अंधकार नसाडियो सु० ॥ चंद्रकिरण दिन नाह ला० ॥ वलगी घर कारज नणी सु०॥ धंधो घरनो अथाह ला० ॥ १६ ॥ किमहिंक हवे लघु नारियें सु० ॥ सोड बाहिर रह्यो हाथ ला० ॥ कंकण सहित ते देखीयो सु० ॥ विवाहवंतो नाथ ला० ॥१७ ॥ मोहोटीनें देखाडीयो सु० तव कहे महोटी वाण ला० ॥ तें तिहां कह्युं ते सवि मल्युं सु० ॥ देखी एहनो पाण ला० ॥ १८ ॥ किमहिंक आव्यो तिहां कणे सु० ॥ परण्यो कन्या ताम ला०॥ जाण्युं एणे आपणुं सु०॥ सवि वृत्तांत ते आम ला० ॥ ॥ १९ ॥ मत बीजे मनमांहिथी सु० ॥ करशुं तस प्रतिकार ला० ॥ करवुं तो बिहिवुं किश्युं सु० ॥ सघलुं थाशे सार ला० ॥ २०॥ श्रीजयानंदना रासमां सु० ॥ चोथे खंमें ढाल ला० ॥ अढारमी पद्में कही सु० ॥ आगल वात्त रसाल ला० ॥ २१ ॥ सर्वगाथा ॥ ४६६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ त्रिहिक म कर तुं बापडी, करुं एहनो उपचार ॥ सात गांठ देइ मंत्रीनें, दोरो कस्यो तैय्यार ॥१॥ धनदेवनें मावे पगें, नारियें बांध्यो ताम ॥ मूरखनें निर्दयीपणुं, कूड कपटनुं धाम ॥ २ ॥ मंत्र तणा प्रनावथी,सूडो थयो ततखेव ॥ देखी निज सूडापणुं,दीन वदन धनदेव ॥ ३ ॥ नवि छोडयुं कंकण करें, नवि सांनरियुं जेण ॥ धनदेव मनमां चिंतवे, शंका आवी तेण ॥ ४ ॥ रातिवृत्तांत जाणी करी, सूडो कीधो आम ॥ एणे चरित्रें ए नारिनें,

ढाल, सत्तरमी शोहामणीजी ॥ पद्मविजय कही एह, श्रीजयानंद रास तणीजी ॥ २१ ॥ सर्व गाथा ॥ ४३७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रार्थना सुणी शेठनी, चिंते चित्त मझार ॥ ए रूपवंती देखीयें, जेहवी पूरव नार ॥ १ ॥ क्षेम कुशल निज वांछते, पूरव छंमवी नार ॥ पण नारी विण माहारो, अफल थयो संसार ॥ २ ॥ अतिथिनें वली प्राहुणा, न लहे आदर मान ॥ नारी विना हाली समो, पुरुष ते विटल समान ॥ ३ ॥ तात करे एम प्रार्थना, आदर करी अपार ॥ एहवी केम छंमुं हवे, नारी रति अनुहार ॥ ४ ॥ एम करी हाकारो नण्यो, न्हवराव्यो धनदेव ॥ करिय विलेपन चंदनें, वस्त्र पहेर्यां ततखेव ॥ ५ ॥ आनूषण अंगें धर्यां, पहेरीनें फुलमाल ॥ श्रीमती कन्या परणियो, हर्ष थइ उजमाल ॥ ६ ॥ शेठ कन्या धनदेवनें, आणंद वर्त्यो एम ॥ देखी जमाई रूअडो, शेठ धरे बहु प्रेम ॥ ७ ॥

॥ ढाल अढारमी ॥ वाडी फूली अति नली, मन नमरा रे ॥ ए देशी ॥

॥ धनदेव चिंतातुर थयो, सुणो सयणां रे ॥ बेगो देखे बाहार, लाल सुणो वयणां रे ॥ दोय नार्यां धनदेवनी सु० ॥ फरि फरि नयर मझार ला० ॥ १ ॥ सांजली कौतुक अजिनवुं सु० ॥ विवाह जोवा काज ला० ॥ महोटी न्हानीनें कहे सु० ॥ रात घणी छे आज ला० ॥ २ ॥ जोइयें उत्सव हे जगुं सु० ॥ लघुयें पडिवज्युं तेह ला० ॥ जोवे बेहु जणी रंगशुं सु० ॥ लघु बोली सुणो एह ला० ॥ ३ ॥ देव देवी सम मनहरू सु० ॥ वरवहू अतिहि उदार ला० ॥ आर्यपुत्र सम देखीयें सु० ॥ महोटी कहे तव नार ला० ॥ ४ ॥ नोली तुं कांहिं नवि लहे सु० ॥ सरखा नर बहु होय ला० ॥ आर्यपुत्रनें सारिखो सु० ॥ दीसे बीजो कोय ला० ॥ ५ ॥ शीतज्वरें करी पीडियो सु० ॥ तेतो सूतो गेह ला० ॥ निद्रामांहे आवीयो सु० ॥ नही विद्याबल एह ला० ॥ ६ ॥ किहांथी आव्यो होय इहां सु० ॥ क्षण एक रही तेणे गय ला० ॥ कौतुक देखी बेहु जणी सु० ॥ सहकार साहामी जाय ला० ॥ ७ ॥ उंच गोंखें बेगो हवे सु० ॥ नवपरिणित स्त्री युत ला० ॥ धनदेव शंका धारतो सु० ॥ गमन नारीनुं युत्त ला० ॥ ८ ॥ श्रीमती वस्त्रनें छेहडे सु० ॥ श्लोक ते लखियो एक ला० ॥ कुंकुम रसथी सहिनाणी सु० ॥ करी निपुणाइ छेक ला० ॥ ९ ॥ यतः ॥ कहसंती कवारल, पुरं चू

तोऽभ्रागः क च ॥ सूनुर्धनपतेर्नाम्या,धनदेवोऽन्यगात्श्रियं ॥१॥ ढाल ॥ ह
संती नगरी किहां सु० ॥ किहां रतनपुर गाम ला० ॥ किहां आंबो गगनें
चल्यो सु० ॥ किहां कहो धनदेव नाम ला० ॥ १०॥ कांइक कार्य उद्देशी
नें सु० ॥ नीकलीयो हवे तेह ला० ॥ आंबे चढी ते दोय जणी सु० ॥ म
नमां हर्ष धरेय ला० ॥ ११॥ आंबे पूर्वपरें रह्यो सु० ॥ नारीयें गणियो
मंत ला० ॥ चाल्यो आकाशें आंवजो सु०॥ पोहोतो निज घर तंत ला०॥
॥ १२ ॥ उतस्यो निज उद्यानमां सु० ॥ धनदेव छानो ताम ला०॥ घरमां
जई सूतो वली सु० ॥ शय्यायें करी आराम ला० ॥१३॥ उंढी निद्रा नर
थयो सु० ॥ आवी हवे दोय नार ला० ॥ नरनिद्रायें देखियो सु०॥ सूनो
निज भरतार ला० ॥ १४॥ शंका रहित सूती बेहु सु०॥ जागी क्षणकमां
जाम ला० ॥ थयो प्रभात रयणी गई सु० ॥ सूरय उग्यो ताम ला० ॥
॥ १५ ॥ सवि अंधकार नसाडियो सु० ॥ चंद्रकिरण दिन नाह ला० ॥ व
लगी घर कारज भणी सु०॥ धंधो घरनो अथाह ला० ॥ १६ ॥ किमहिंक
हवे लघु नारियें सु० ॥ सोड बाहिर रह्यो हाथ ला० ॥ कंकण सहित ते
देखीयो सु० ॥ विवाहवंतो नाथ ला० ॥१७॥ मोहोटीनें देखाडीयो सु०
तव कहे महोटी वाण ला० ॥ तें तिहां कह्युं ते सवि मल्युं सु० ॥ देखी
एहनो पाण ला० ॥ १८ ॥ किमहिंक आव्यो तिहां कणे सु० ॥ परण्यो
कन्या ताम ला०॥ जांण्युं एणे आपणुं सु०॥ सवि वृत्तांत ते आम ला०॥
॥ १९ ॥ मत बीजे मनमांहिथी सु० ॥ करशुं तस प्रतिकार ला० ॥ कर
वुं तो विहिवुं किशुं सु० ॥ सघलुं थाशे सार ला० ॥ २०॥ श्रीजयानंदना
रासमां सु० ॥ चोथे खंमें ढाल ला० ॥ अढारमी पभ्रें कही सु० ॥ आग
ल वात रसाल ला० ॥ २१ ॥ सर्वगाथा ॥ ४६६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ त्रिहिक म कर तुं बापडी, करुं एहनो उपचार ॥ सात गांठ देइ मं
त्रीनें, दोरो कस्यो तैय्यार ॥१॥ धनदेवनें भावे पगें, नारियें बांध्यो ताम ॥
मूरखनें निर्दयीपणुं, कूड कपटनुं धाम ॥ २ ॥ मंत्र तणा प्रभावथी,सूडो
थयो ततखेव ॥ देखी निज सूडापणुं,दीन वदन धनदेव ॥ ३ ॥ नवि छोडयुं
कंकण करें, नवि सांभरिसुं जेण ॥ धनदेव मनमां चिंतवे, शंका आवी तेण
॥ ४ ॥ रातिवृत्तांत जाणी करी, सूडो कीधो आम ॥ एणे चरित्रें ए नारिनें,

असंनाव्य नहीं काम ॥ ५ ॥ मन चिंते हा हारियो, मानवनो अवतार ॥ पशुपणुं हुं पामियो, एम ध्याये तेणी वार ॥ ६ ॥ कडवा जाये जेटले, क रथी चांप्यो तास ॥ एणि परें बोले पापिणी, क्रोध तणो आवास ॥ ७ ॥

॥ ढाल ओगणीशमी ॥ बटाउनी देशी ॥

॥ आंखे समजावे अन्यनें रे, करे वली अन्यशुं वात ॥ अन्य हृदयमां धारती, कांइ नारी कुटिल कुजात रे, जो होये पोतानो भ्रात रे, वली जो होये निजनो तात रे, तेहने पण वंचवा जात रे, एहवा गुण जगत वि ख्यात रे ॥ १ ॥ सयण सलूणे सांनलो मेरे लाल ॥ ए आंकणी ॥ कोयनी न होये ए कदा रे,मूकी निजपति राय ॥ रांक साथें रमे रंगशुं,तस जाणे जी वित प्राय रे,नदीनी परें नीची जाय रे,सापण परें कुटिल सदाय रे,राक्षसिणी परें खावा धाय रे, जिहां मन मान्युं त्यां उजाय रे ॥स०॥२॥ क्षण एक रोवे क्ष ण हसे रे,क्षण देखावे राग ॥ क्षणमां विरागिणी थइ रहे,क्षणमां कहे मीठी वाग रे,क्षणमां कटु वचननो लाग रे, क्षण रूसे तूसे अथाग रे, क्षणमां करे निजघर ताग रे, क्षणमां दिये निजपति दाग रे ॥स०॥३॥ निजपति परदेशें जतां रे, परम होये सुख देह ॥ मुख कहे तुम विण केम रहुं रे, आ सूनुं ढंढेर छे गेह रे, तुमशुं मुज अतिश सनेह रे, घडी वरस समी मुज एह रे, हवे थाशे कहो करुं तेह रे, हवे दुःखना वरसशे मेह रे ॥ स० ॥ ४ ॥ नारीरंग पतंग श्यो रे, जातां न लागे वार ॥ जेम वादलनी ढांहडी, जेम वीजलीनो चमकार रे, जेम राज्यमान अल्पवाररे, जेम कपटी ध्यान विचार रे, नहीं साचुं वचन किवार रे, अशुचि अपवित्रनंमार रे ॥स० ॥५॥ पंखी पगलुं आकाशमां रे,जलमां मत्स्यपद जोय ॥ तेम नारीना हृदयनो, जन न लहे मारग कोय रे, बुद्धें सुरगुरु यदि होय रे, तारानुं गणित करे लोय रे, एहनो पार न पामे सोय रे, क्षण हसती क्षणमां रोय रे स०॥६॥ धीठ हृदय नारी हवे रे,बोले एणी परें वाण ॥ अम चरित्र जोवा नणी, तें कीधुं एम मंमाण रे, सूतो जूठो ज्वर आण रे, अम साथें परद्वीप गाण रे,आवी पक डघो कनी पाण रे, आवी सूतो ढंढशुं वस्त्र ताण रे ॥ स०॥ ७ ॥ तेहनुं फल हवे देखजे रे, ते विण न वले शान ॥ एम करी पांजरे घालियो, सूडानें देइ अपमान रे, बहु वचन प्रहारनुं दान रे, सांनले सूडो निजकान रे, लघु मोटीनुं करे बहु मान रे, तुम सम नहीं अवर को गाम रे ॥ स०॥८॥ घर

परिजन देखी घणुं रे, शुक करे पश्चात्ताप ॥ धिग् मुज सूडानो नव लह्यो, मुज आवी पोहोतुं पाप रे, न कर्यो परमेष्टीनो जाप रे. तेणें पाम्यो एम संताप रे,हवे परवश शुं करुं आप रे,नवि आमां आवे माय बाप रे स०॥ ॥ ए ॥ घर कारय करतीथकी रे, रांधे जब ते नार ॥ तव नाजी ठमकावती, तेहना होये ठमकार रे,लावी सूडो तेणी वार रे,विह्वरावे शस्त्रनी धार रें, कहे सांजल तुं निरधार रे, करुं एहवो तुज परकार रे ॥ स०॥१०॥ तुजने मारी एणी परें रे, एक दिन एह हवाल ॥ ठमकावीशुं तुजने, एम बोले ते विकराल रे, सुणी पामे नय असराल रे, नित्य नित्य ए दुःखजं जाल रे, लहेतो काढे कोइ काल रे, जाणे मलीया ठे नरकपाल रे स०॥ ॥ ११ ॥ धन्यधन्य ते नर राजिया रे, जाणी एहवी नारि ॥ दूर रह्या महा नाग्य ते, जाणो जेम जंबूकुमार रे, वली वयरस्वामी अणगार रे, चोथे खंमें ए सार रे, ढाल उगणीशमी अधिकार रे, कहे पद्मविजय धरी प्यार रे ॥ स० ॥ १२ ॥ सर्व गाथा ॥ ४७५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ हवे जे रत्नपुरें थयो, ते सुणजो अधिकार ॥ शेठें जाण्युं किहां गयो, श्रीमतीनो नरतार ॥ १ ॥ गयो ते पाठो नावियो, खोलाव्यो बहु गाम ॥ विहाणे दीठो जे लख्यो, श्लोक मनोहर ताम ॥ २ ॥ तथाहि ॥ हसंती पुरें धनपति, शेठनो सुत धनदेव ॥ व्योम मार्गे आवी करी, परणी गयो ततखेव ॥ ३ ॥ तेय सुणी शेठें हवे, श्रीमती रोती जेह ॥ आशासना देइ एम कहे, इहां तेडावुं तेह ॥ ४ ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ वींठीयानी देशी ॥

॥ एकदिन एक सारथपति, सागरदत्त नामें शेठ रे ॥ व्यापारनें अरथें तिहां जतो,हसंती पुरी जिहां ठेठ रे ॥ १ ॥ जूउ जूउ कर्मविटंबना ॥ ए आंकणी ॥ तेहने श्रीपुंजें आपियो, बहुमूल्य रयण अलंकार रे ॥ कहे धनदेवनें तुमें आपजो, करी आदर अति सतकार रे ॥ जू० ॥ २ ॥ कहेजो संदेशो एणी परें, तुमें आवो एणे गाम रे ॥ निजनारी संनालो मोदशुं, तुम न घटे एहवुं काम रे ॥ जू० ॥ ३ ॥ हवे सागरदत्त पण चालियो, उल्लंघ्यो सागर जहाज रे ॥ पोहोतो हसंती नयरीयें, तिहां करे व्यवसायनां काज रे ॥ जू० ॥ ४ ॥ धनदेव घर गयो अन्यदा रे, नवि दीठो

असंजाव्य नहीं काम ॥ ५ ॥ मन चिंते हा हारियो, मानवनो अवतार ॥ पङ्कपणुं हुं पामियो, एम ध्याये तेणी वार ॥ ६ ॥ कडवा जाये जेटले, क रथी चांप्यो तास ॥ एणि परें बोले पापिणी, क्रोध तणो आवास ॥ ७ ॥

॥ ढाल ओगणीशमी ॥ वटाउनी देशी ॥

॥ आंखे समजावे अन्यनें रे, करे वली अन्यशुं वात ॥ अन्य हृदयमां धारती, कांइ नारी कुटिल कुजात रे, जो होये पोतानो भ्रात रे, वली जो होये निजनो तात रे, तेहने पण वंचवा जात रे, एहवा गुण जगत वि ख्यात रे ॥ १ ॥ सयण सलूणे सांजलो मेरे लाल ॥ ए आंकणी ॥ कोपनी न होये ए कदा रे,मूकी निजपति राय ॥ रांक साथें रमे रंगशुं,तस जाणे जी वित प्राय रे,नदीनी परें नीची जाय रे,सापण परें कुटिल सदाय रे,राक्षसिणी परें खावा धाय रे, जिहां मन मान्युं त्यां उजाय रे ॥स०॥२॥ क्षण एक रोवे क्ष ण हसे रे,क्षण देखावे राग ॥ क्षणमां विरागिणी थइ रहे,क्षणमां कहे मीठी वाग रे,क्षणमां कटु वचननो लाग रे, क्षण रूसे तूसे अथाग रे, क्षणमां करे निजघर ताग रे, क्षणमां दिये निजपति दाग रे ॥स०॥३॥ निजपति परदेशें जतां रे, परम होये सुख देह ॥ मुख कहे तुम विण केम रहुं रे, आ सूनुं ढंढेर ठे गेह रे, तुमशुं मुज अतिघ सनेह रे, घडी वरस समी मुज एह रे, हवे थाशे कहो करुं तेह रे, हवे डुःखना वरसशे मेह रे ॥ स० ॥ ४ ॥ नारीरंग पतंग श्यो रे, जातां न लागे वार ॥ जेम वादलनी ठांहडी, जेम वीजलीनो चमकार रे, जेम राज्यमान अल्पवाररे, जेम कपटी ध्यान विचार रे,नहीं साचुं वचन किवार रे, अशुचि अपवित्रजंमार रे ॥स० ॥५॥ पंखी पगलुं आकाशमां रे,जलमां मत्स्यपद जोय ॥ तेम नारीना हृदयनो, जन न लहे मारग कोय रे, बुद्धें सुरगुरु यदि होय रे, तारानुं गणित करे जोय रे, एहनो पार न पामे सोय रे, क्षण हसती क्षणमां रोय रे स०॥६॥ धीठ हृदय नारी हवे रे,बोले एणी परें वाण ॥ अम चरित्र जोवा नणी, तें कीधुं एम मंमाण रे, सूतो जूठो ज्वर आण रे, अम साथें परद्वीप ताण रे,आवी पक डयो कनी पाण रे, आवी सूतो ठंढशुं वस्त्र ताण रे ॥ स०॥ ७ ॥ तेहनुं फल हवे देखजे रे, ते विण न वले शान ॥ एम करी पांजरे घालियो, सूडानें देइ अपमान रे, बहु वचन प्रहारनुं दान रे, सांजले सूडो निजकान रे, लघु मोटीनुं करे बहु मान रे, तुम सम नहीं अवर को गाम रे ॥ स०॥८॥ पर

परिजन देखी घणुं रे, शुक करे पश्चात्ताप ॥ धिग् मुज सूडानो नव लह्यो, मुज आवी पोहोतुं पाप रे, न कर्यो परमेष्टीनो जाप रे, तेणें पाम्यो एम संताप रे.हवे परवश शुं करुं आप रे,नवि आमां आवे माय वाप रे स०॥ ॥ ए ॥ घर कारय करतीथकी रे, रांधे जब ते नार ॥ तब नाजो ठमका वती, तेहना होये ठमकार रे,जावी सूडो तेणी वार रे,विहिवरावे शस्त्रनी धार रे, कहे सांजल तुं निरधार रे, करुं एहवो तुज परकार रे ॥ स०॥१०॥ तुजने मारी एणी परें रे, एक दिन एह हवाल ॥ ठमकावीशुं तुजने, एम बोले ते विकराल रे, सुणी पामे नय असराल रे, नित्य नित्य ए दुःखजं जाल रे, लहेतो काढे कोइ काल रे, जाणे मलीया ठे नरकपाल रे स०॥ ॥ ११ ॥ धन्यधन्य ते नर राजिया रे, जाणी एहवी नारि ॥ दूर रह्या महा नाग्य ते, जाणो जेम जंबूकुमार रे, वली वयरस्वामी अणगार रे, चोथे खंमें ए सार रे, ढाल उगणीशमी अधिकार रे, कहे पद्मविजय धरी प्यार रे ॥ स० ॥ १२ ॥ सर्व गाथा ॥ ४७५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ हवे जे रत्नपुरें थयो, ते सुणजो अधिकार ॥ शेठें जाण्युं किहां गयो, श्रीमतीनो नरतार ॥ १ ॥ गयो ते पाठो नावियो, खोलाव्यो बहु गाम ॥ विहाणे दीठो जे लख्यो, श्लोक मनोहर ताम ॥ २ ॥ तथाहि ॥ हसंती पुरें धनपति, शेठनो सुत धनदेव ॥ व्योम मार्गे आवी करी, परणी गयो ततखेव ॥ ३ ॥ तेय सुणी शेठें हवे, श्रीमती रोती जेह ॥ आशासना देइ एम कहे, इहां तेडावुं तेह ॥ ४ ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ वींठीयानी देशी ॥

॥ एकदिन एक सारथपति, सागरदत्त नामें शेठ रे ॥ व्यापारनें अर थें जिहां जतो,हसंती पुरी जिहां ठेठ रे ॥ १ ॥ जूउ जूउ कर्मविटंबना ॥ ए आंकणी ॥ तेहने श्रीपुंजें आपियो, बहुमूल्य रयण अलंकार रे ॥ कहे धनदेवनें तुमें आपजो, करी आदर अति सतकार रे ॥ जू० ॥ २ ॥ कहेजो संदेशो एणी परें, तुमें आवो एणे गाम रे ॥ निजनारी संनालो मोदशुं, तुम न घटे एहवुं काम रे ॥ जू० ॥ ३ ॥ हवे सागरदत्त पण चालियो, उलंघ्यो सागर जहाज रे ॥ पोहोतो हसंती नयरीयें, तिहां करे व्यवसायनां काज रे ॥ जू० ॥ ४ ॥ धनदेव घर गयो अन्यदा रे, नवि दीठो

धन देव रे ॥ तव पूछे तेहनी नारिनें, नांखो मुजनें ततखेव रे ॥ जू० ॥ ५ ॥ धनदेव किहां छे दाखवो, तव बोली ते सुणो नार रे ॥ देशांतरें व्यापारें गयो, आवशे ते दिन दश बार रे ॥ जू० ॥ ६ ॥ कहे सार्थवाह नारी प्रत्यें,श्रीपुंजें दीयो अलंकार रे ॥ धनदेव जमाइने कारणें,श्री मती फूरे तस नार रे ॥ जू० ॥ ७ ॥ ते कारण तेडया छे तिहां, तव बोली ते वेहु नार रे ॥ ए वात तो तेहुं कहेता हता, उत्सुकता चित्त बहु धार रे ॥ जू० ॥ ८॥ पण कार्यवशें देशांतरें, जावुं पडियुं ततकाल रे ॥ जातां ते णें एणी परें नांखीयुं, धरी हर्षनें थईउजमाल रे ॥ जू० ॥ ए ॥ रत्नपुर थी आवे जो कोइ, आपजो तस ए शुकराज रे ॥ मुज नारी नवोढा रम णनें,वली प्रेम उपावण काज रे ॥ जू० ॥ १० ॥ लेजो वली ससरो मोक ले, एम कही आप्युं तस हाथ रे ॥ शुक सहित रूडुं ते पांजरुं, लीधीं अ लंकृतिनी आथ रे ॥ जू० ॥ ११ ॥ हवे सागरदत्त ते नयरमां, करी क्रय वि क्रय व्यवहार रे ॥ चढीयो घर जावा प्रवहणें, क्रमें सागर पाम्यो पार रे ॥ ॥ जू० ॥ १२ ॥ उतरी हवे नयरमां संचस्यो, पोहोतो श्रीपुंजनें गेह रे ॥ कह्युं सर्व वृत्तांत ते शेठनें, जे नारीयें नांख्युं तेह रे ॥ जू० ॥ १३ ॥ आ शुकपिंजर तेणें आपियुं, नारीनें रमवा हेत रे ॥ ते लेइनें अति मोदशुं, नि जपुत्रीनें देइ संकेत रे ॥ जू० ॥ १४ ॥ नरतार प्रसाद ए पामीनें, शुकशुं र मती सुरसाल रे ॥ चोथे खंमें ए वीशमी, पद्मविजयें नांखी ढाल रे ॥ जू० ॥

॥ दोहा ॥

॥ रमतां रमतां एकदा, दवरक दीठो पाय ॥ विस्मय पामी त्रोडीयो, त व तिहां अचरिज थाय ॥१॥ मूलरूपें धनदेव ते, देखी हर्ष न माय ॥ वि स्मय लइने पूछती, प्रणमी निजपति पाय ॥ २ ॥ स्वामी ए अद्भुत कि इयुं, कहो मुजने अवदात ॥ ते कहे जिम देखो तुमें, तिमहिज छे ए वात ॥ ३ ॥ हमणां अधिक म पूछशो, सांनली एह विचार ॥ हर्षे जई निज तातनें, नांख्यो तेह प्रकार ॥ ४ ॥ सर्वगाथा ॥ ५०८ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ आवो जमाई प्राहुणा जयवंताजी ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीपुंजशेठ हवे हर्षशुं जयवंताजी ॥ जोइ जमाई रूप गुणवंताजी ॥ अति हर्षित सहु कुटुंब ते ॥ ज० ॥ सांनली तेह स्वरूप ॥ गु० ॥१ ॥ अ ति आदर सन्मानथी ज०॥ रहेवाने आवास गु० ॥ आप्यो स्वर्ग विमान

श्यो ज० ॥ बहु धन पूरित ग्राम गु० ॥ २ ॥ तिहां धनदेव सुखें रहे ज० नवपरिणित लेइ नार गु० ॥ स्वेच्छायें अति स्नेहथी ज० ॥ भोगवे भोग श्रीकार गु० ॥ ३ ॥ जाणे पुण्य उदयथकी ज०॥ पाम्यो फरी अवतार गु० करे व्यवसाय घणा तिहां ज० ॥ सकलकला भंमार गु० ॥ ४ ॥ लाभ घणो तेहमां थयो ज० ॥ द्रव्यपात्र हुउ ताम गु० ॥ काल केतोइक निर्गमे ज० ॥ रहेतां तिणद्दिज गाम गु० ॥ ५ ॥ इंद्रजाल सुपना समो ज०॥ एह अनित्य संसार गु० ॥ आयुःक्षयें तिणें कारणें ज०॥ शेठ गया यमद्वार गु० ॥ ६ ॥ भाई भोजाई एकमनां ज० ॥ श्रीमती ऊपर राग गु० ॥ अरूप थयो तिहां अनुक्रमें ज० ॥ विरुई बोले वाग गु० ॥ ७ ॥ यतः ॥ स्त्री पीयर नर सासरें, संयमीया सहवास ॥ एता होय अलखामणा, जो मंमे थिर वास ॥ १ ॥ ढाल ॥ श्रीमती निज भरतारशुं ज० ॥ जाबानें परिणाम गु० ॥ मन चिंते भरतारनुं ज० ॥ केहवुं रहेवा गाम गु० ॥ ७ ॥ केहवी होय नारी अछे ज० ॥ जोउ तास स्वरूप गु०॥ उत्कंठित चित्त तेहशुं ज० ॥ कहे पतिने करी चूंप गु० ॥ ए ॥ जनकनुं घर निज स्वामीजी ज० ॥ नवि देखाडो केम गु० ॥ सासरे रहेवुं नारीने ज० ॥ जनकगृहें नर नेम गु० ॥१०॥ यश कीर्त्ति पामे घणी ज०॥ अन्यथा होये अपमान गु० ॥ तव बोल्यो धनदेव ते ज०॥ अवसरें मेलशुं तान गु० ॥ ११ ॥ धीरजवंती श्रीमती ज० ॥ मौन करी रही ताम गु० ॥ वली कालांतरें एकदा ज० ॥ श्रीमती कहे सुणो स्वामि गु० ॥ १२ ॥ त्रण जातिना पुरुष छे ज० ॥ जघन्य उत्तम नर जात गु० ॥ त्रीजा मध्यम जाणीयें ज० ॥ प्रथम श्वसुर गुणें ख्यात गु० ॥ १३ ॥ निजगुण ख्यात उत्तम कह्या ज० ॥ मध्यम बाप गुणेण गु० ॥ तेणें तुमनें रहेतां इहां ज०॥ श्वसुर तणे द्रव्येण ॥गु०॥ १४॥ उत्तमता नवि एहमां ज०॥ वली सुणो त्रण प्रकार गु०॥ बाप गुणें उत्तम कह्या ज०॥ मध्यम मात प्रकार गु०॥ १५॥ नारीगुणें जे विस्तस्या ज०॥ तेह जघन्य कहेवाय गु०॥ यद्यपि गुणवंता तुमें ज०॥ सकल कलाना गाय गु० ॥ १६ ॥ समरथ द्रव्य उपार्जवा ज० ॥ तो पण एम कहेवाय गु०॥ जमाई श्रीपुंज शेठनो ज०॥ कहे जननो समवाय गु०॥ ॥ १७ ॥ तेणें जो उत्तम पुरुषना ज० ॥ मारगनी करो चाह गु० ॥ जनमभूमि तो अनुसरो ज०॥ शुं कहियें घणुं नाह गु०॥ १७ ॥ खंम चोथे एक

धन देव रे ॥ तव पूछे तेहनी नारिनें, जाखो मुजनें ततखेव रे ॥ जू० ॥ ५ ॥ धनदेव किहां छे दाखवो, तव बोली ते सुणो नार रे ॥ देशांतरें व्यापारें गयो, श्रावशे ते दिन दश बार रे ॥ जू० ॥ ६ ॥ कहे सार्थवाह नारी प्रत्यें,श्रीपुंजें दीयो श्रलंकार रे॥ धनदेव जमाइने कारणें,श्री मती फूरे तस नार रे ॥ जू० ॥ ७ ॥ ते कारण तेड्या छे तिहां, तव बोली ते वेहु नार रे॥ ए वात तो तेहुं कहेता हता, उत्सुकता चित्त बहु धार रे ॥ जू० ॥ ८॥ पण कार्यवशें देशांतरें, जावुं पडियुं ततकाल रे ॥ जातां ते णें एणी परें जाखीयुं, धरी हर्षनें थईउजमाल रे ॥ जू० ॥ ए ॥ रत्नपुर थी श्रावे जो कोइ, श्रापजो तस ए शुकराज रे ॥ मुज नारी नवोढा रम णनें,वली प्रेम उपावण काज रे ॥ जू० ॥ १० ॥ लेजो वली ससरो मोक ले, एम कही श्राप्युं तस हाथ रे ॥ शुक सहित रूडुं ते पांजरुं, लीधी श्र लंकृतिनी श्राथ रे ॥ जू० ॥ ११ ॥ हवे सागरदत्त ते नयरमां, करी क्रय वि क्रय व्यवहार रे ॥ चढीयो घर जावा प्रवहणें, क्रमें सागर पाम्यो पार रे॥ ॥ जू० ॥ १२ ॥ उतरी हवे नयरमां संचस्यो, पोहोतो श्रीपुंजनें गेह रे ॥ कह्युं सर्व वृत्तांत ते शेठनें, जे नारीयें जाख्युं तेह रे ॥ जू० ॥ १३ ॥ श्रा शुकपिंजर तेणें श्रापियुं, नारीनें रमवा हेत रे ॥ ते लेइनें अति मोदश्युं, नि जपुत्रीनें देइ संकेत रे ॥ जू० ॥ १४ ॥ जरतार प्रसाद ए पामीनें, शुकशुं र मती सुरसाल रे ॥ चोथे खंमें ए वीशमी, पद्मविजयें जाखी ढाल रे ॥ जू० ॥

॥ दोहा ॥

॥ रमतां रमतां एकदा, दवरक दीठो पाय ॥ विस्मय पामी त्रोडीयो, त व तिहां अचरिज थाय ॥१॥ मूलरूपें धनदेव ते, देखी हर्ष न माय ॥ वि स्मय लइने पूछती, प्रणमी निजपति पाय ॥ २ ॥ स्वामी ए अद्भुत कि श्युं, कहो मुजने श्रवदात ॥ ते कहे जिम देखो तुमें, तिमद्विज छे ए वात ॥ ३ ॥ हमणां अधिक म पूछशो, सांजली एह विचार ॥ हर्षे जई निज तातनें, जाख्यो तेह प्रकार ॥ ४ ॥ सर्वगाथा ॥ ५०८ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ श्रावो जमाई प्राहुणा जयवंताजी ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीपुंजशेठ हवे हर्षशुं जयवंताजी ॥ जोइ जमाई रूप गुणवंताजी ॥ अति हर्षित सहु कुटुंब ते ॥ ज० ॥ सांजली तेह स्वरूप ॥ गु० ॥१ ॥ अ ति श्रादर सन्मानथी ज०॥ रहेवाने श्रावास गु० ॥ श्राप्यो स्वर्ग विमान

चाल्यूं जाय, अनुक्रमें घूंटी पग वोलाय ॥ रू० ॥ १५॥ ढांचणें आव्युं रे साथलो वूडती रे, कटितटनें वली नाभि प्रमाण, उदर हृदयनें कंठने मा ण रू० ॥ १६ ॥ वधतुं वधतुं रे नासायें अडशुं रे, धनदेव मनमां अति खेदाय, केम थाशे जल वधतुं जाय ॥ रू० ॥ १७ ॥ श्रीमती नांखे रे न य मन माणजो रे,करुं एहनो हवे हुं प्रतिकार,जो जो माहारो ए चमत्कार ॥ रू० ॥ १८ ॥ घुटडे एकें रे ते जल पी गई रे, जेम नवि धरतीयें जल देखाय, एक बिंडु नवि तेणें गाय ॥ रू० ॥ १९ ॥ वेहु ते नारी रे श्रीमती पाय पडे रे,शक्तियें जीती तें एणी वार.तुं विद्या गुणनो भंमार ॥रू०॥२०॥ तुजनें आराधुं रे स्वामिनीनी परें रे, त्रणे प्रीति परस्पर जोडी, काम करे घ रनां मन कोड ॥ रू० ॥ २१ ॥ क्षुद्र विद्यायें रे त्रणे वरावरी रे,प्रीति घ णी नित्य वधती जाय, सरिखे शीलें सहु सम गाय ॥ रू० ॥२२ ॥ दोय सम त्रीजी रे स्वेछाचारिणी रे, अवगुणी संगें अवगुण थाय,गुण सघला तस नाशी जाय ॥ रू० ॥ २३ ॥ यतः ॥ अंवस्सय निंवस्सउ, दोएहवि समा गयाइं मूलाइं ॥ संसग्गीय विणठो, अंवो निंवत्तणं पत्तो ॥१॥ढाल॥ धनदेव चिंते रे मनमां एणी परें रे, जो ए वे सम त्रीजी थाय, तो हुं शरण करुं किहां जाय ॥ रू० ॥ २४ ॥ राक्षसी सरखी रे त्रणनें गंमीनें रे, करुं हवे आतम केरुं हित, जेम नवि होय मुज एहवी नीत ॥ रू० ॥ २५ ॥ चोथे खंमें रे ढाल वावीशमी रे, पद्मविजयें एम भांखी सार,धनदेव पाम शे जयजयकार ॥ रू० ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ ५५६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कांइक कारय मिश करी,घर ठोडणने हेत ॥ ऋषभदेवनें देहरे,आव्यो धर्मसंकेत ॥ १॥ ते धनदेव हुं जाणजे,वेगो ताहारी पास ॥ मूडापणुं में अ नुभव्युं, केवल डुःख आवास ॥ २ ॥ पशुता आवी ढूकडी, पण कोइ देव संयोग ॥ पशुपणुं नवि पामीया, तेणें तुमें सुखीया लोग ॥ ३ ॥ में तो म हारा तनुथकी, डुःख अनुभवियुं जोर ॥ तेणें तुमथी मुज आकरां,जाणो कर्म कठोर ॥ ४ ॥ मदन सुणी रीझ्यो घणुं, विस्मय लही कहे एम ॥ तु म डुःख जाणी कीजीयें,आतम हित विहुं प्रेम ॥ ५ ॥

॥ ढाल त्रेवीशमी ॥ वे वे मुनिवर विहरण पांगस्या जी ॥ ए देशी ॥

॥ इंण अवसर तिहां मुनिवर आवीयाजी, विमलवाहु जसु नाम रे ॥

वीशमी ज० ॥ पद्मविजयें कही ढाल गु० ॥ श्रीजयानंदना रासमां ज० ॥ सुणतां मंगलमाल गु० ॥ १७ ॥ सर्व गाथा ॥ ५२७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ धनदेव नारी वयणथी, बोले एणी परें बोल ॥ श्वसुर तणे घर जे रहे, जाणुं तेह निटोल ॥ १ ॥ पण ठमका नाली तणा, नवि वीसरिया मुऊ ॥ हैडामां खटके घणा, शुं नांखुं हुं तुऊ ॥ २ ॥ ते सांजली श्रीमती कहे, ठमकानी कहो वात ॥ तव ते धुरथी सवि कहे, ठमकानो अवदात ॥ ३ ॥

॥ढाल बावीशमी ॥ रूडीनें रढीयाली रे, वाहाला ताहारी वांसली रे ॥ एदेशी॥

॥ रूडीनें रढीयाली रे, सुगुणा श्रीमती रे, हसीनें बोली तव तेणी वार, एहनो श्यो गणवो चित्त नार ॥ रू०॥ १ ॥ मुजनें देखावो रे ते तुम ना रजा रे, शक्ति हुं जोउं केहवी तास, मुजनें जोवा अति पीपास ॥ रू० ॥ ॥ २ ॥ शंका मूकी रे चालो निजघरें रे, तुमने बाधा नहीं लगार, मुज स रिखी पासें थकां नार ॥ रू० ॥ ३ ॥ तेह सुणीने रे धीरय धारतो रे, इ व्य करी सहु नेलुं ताम, सार्थे लेई पोतानी वाम ॥ रू० ॥ ४ ॥ सयणनें पूढी रे धनदेव चालियो रे, सागर कतरी पाम्यो पार, पोहोतो हसंतीनयरी मजार ॥ रू०॥५॥ बहुधन देतो रे दीन अनाथनें रे, गंधहस्तीपरें पोहोतो द्वार, विस्मय पामी तव बेहु नार ॥ रू० ॥६॥ ए श्यो अचंनो रे आव्यो किहांथकी रे, शुक टलियो केम धरे संदेह, मलपतो आव्यो ए निजगेह ॥ ॥ रू० ॥ ७ ॥ एम विचारी रे बेहु ऊनी थई रे, जाणीयें हैयडे हर्ष न मा य, करे मंगल उपचार बनाय ॥ रू० ॥८॥ गौरव करती रे विनय देखावती रे, चित्रशालीमां लावी ताम, सिंहासन मांड्युं तेणें ठाम ॥ रू० ॥ ए ॥ धनदेव बेठो रे सार्थे श्रीमती रे, कुशल खेमनी पूढे वात, धनदेव कहे मु ज ढे सुखशात ॥ रू० ॥ १० ॥ मोहोटी नांखे रे न्हानीनें सुणो रे, जल थी पखालो पियुना पाय, लघु पण शीघ्र थई जल लाय ॥ रू० ॥ ११ ॥ नक्तिथी न्हानी रे पाय पखालती रे, त्रांबाकूंमीमांहे तेह, ते जल महो टी ग्रही ससनेह ॥ रू० ॥ १२ ॥ मंत्रें मंत्री रे तिम आगोटीयुं रे, पृथिवी उपर बलथी ताम, मंत्रनो महिमा अचिंत्य ढे आम ॥ रू० ॥ १३ ॥ वध वा लाग्युं रे पाणी वेल ज्युं रे, नय पाम्यो धनदेव अत्यंत, श्रीमती साहामुं जोवे तंत ॥ रू० ॥ १४ ॥ श्रीमती नांखे रे मत बीहीजे मनें रे, पाणी वधतुं

दीधी ताम रे ॥ ग्रहण आसेवना शिक्षा विहुं ग्रहेजी, द्वादशांगी धरें जेम निज नाम रे ॥ इं०॥ १६ ॥ तीव्र तप चरण आराधे बिहुं मुनिजी, बिहुं जण स्नेह परस्पर धार रे ॥ गुरुकुल वासें वसता विहुं जणाजी, प्रायें ते साथें करता विहार रे ॥ इं०॥ १७ ॥ अनशन आराधि गया सोहमेंजी, पंच पल्योपम आयु रसाल रे ॥ खंम चोथे त्रेवीशमी ए कहीजी, पद्मविजय वर ढाल रे ॥ इं० ॥ १८ ॥ सर्व गाथा ॥ ५७ए ॥

॥ दोहा ॥

॥ देवनवें प्रीतिज घणी, करता कार्य अशेष ॥ तिहांथी चवी हवे कप नां, ते सांजलो सुविशेष ॥ १ ॥

॥ ढाल चोवीशमी ॥ करकंकुनें करुं वंदना हुं वारी लाल ॥ ए देशी ॥

॥ मदनजीव हवे कपनो हुं वारिलाल, महाविदेह मजार रे हुं वारिला ल ॥ नयर विजयपुर शोहतुं हुं० ॥ अलकापुरी अनुहार रे हुं० ॥ १ ॥ समरसेन तिहां राजीयो हुं० ॥ विजया वली तस नार रे हुं० ॥ मणिप्रन नामें ते थयो हुं० ॥ सकल कला शिरदार रे हुं० ॥ २ ॥ यौवन पा म्यो जेटले हुं० ॥ परणाव्यो तस ताम रे हुं० ॥ पलि देखी प्रतिबूजीयो हुं० ॥ थाप्यो सुत निज ठाम रे हुं० ॥३॥ मणिप्रन राज्यनें पालतो हुं० वश कीधा वहु राय रे हुं० ॥ सांमत मंत्रीश्वर घणा हुं० ॥ प्रेमें प्रणमे पा य रे हुं० ॥ ४ ॥ काल गयो एम केटलो हुं० ॥ गज चढीयो एक दिन्न रे हुं० ॥ रयवाडीयें नीकल्यो हुं० ॥ करी एकाग्र मन्न रे हुं० ॥ ५ ॥ एक स रोवर मोटकुं हुं० ॥ कमल विकस्वर मांहि रे हुं०॥ गगन तारा गणनी परें हुं० ॥ शोने अतिशय त्यांहि रे हुं० ॥ ६ ॥ देखी रमणिकता घणी हुं० ॥ जोइ रह्यो चिरकाल रे हुं० ॥ पायक पासें अणाविउं हुं०॥ एक कमल त तकाल रे हुं० ॥ ७ ॥ राय गयो हवे आगलें हुं० ॥ वलियो तेहज मग्ग रे हुं० ॥ तेह सरोवर देखियुं हुं० ॥ शोना गइ ते अलग्ग रे हुं० ॥ ॥ ८ ॥ अहो अहो ए कहो शुं थयुं हुं० ॥ पूढे परिजन राय रे हुं० ॥ परिजन कहे सुणो नरपति हुं० ॥ जेम शोना कमलाय रे हुं०॥ए ॥ कमल एकेकुं सहु लीये हुं० ॥ तव ए नीपनुं एम रे हुं० ॥ सुणी राजा मन चिंत वे हुं०॥ अहो ए सरोवर जेम रे हुं०॥१०॥ राजक्रुद्धि विण नर तथा हुं०॥ न वि शोने कोइ काल रे हुं० ॥ क्रुद्धि अशाश्वती जाणीयें हुं०॥ सुपननें जे

बहु मुनिवरनें वृंदें परिवस्याजी, साधुगुणें अभिराम रे ॥ ई० ॥ १ ॥ पंच स
मिति सुमता सदाजी, त्रण गुपतिनः धार रे ॥ दशविध साधु धर्म आ
राधताजी, जावना जावता वार रे ॥ ई० ॥ २ ॥ जिनवर चैत्यमां जिनवर
वांदीयाजी, स्तवना करीनें स्तवियां देव रे ॥ तेह मंमपमां मुनिवर आवी
याजी, जिहां मदन धनदेव रे ॥ ई० ॥ ३ ॥ शिष्यें कंबल प्राशुक थान
केंजी, पाथर्यु आवी वेग ताम रे ॥ जक्तियी विहुं जणे मुनिवर वंदीयाजी,
करिय पंचांग प्रणाम रे ॥ई०॥४॥ धर्मलाज दीयो मुनिवरेंजी,ज्ञानें करी जा
णी तास चरित्र रे ॥ धर्मदेशना दीये प्रतिबोधिनीजी,सांजलो प्राणी कर्म वि
चित्र रे ॥ ई० ॥ ५ ॥ जीवित तटिनीपूर समुं कह्युंजी, नटपेटक सम एह
कुटुंब परिवार रे ॥ शरदना अन्नसमी लखमी कहीजी, धर्ममां जे मुंजे ते
गमार रे ॥ ई०॥ ६ ॥ आपद कालें शरण न को होयेजी, स्वारथ तत्पर ए
परिवार रे ॥ सडन पडन विध्वंसी ए तनुजी, ललना कूड कपट आगार
रे ॥ ई०॥ ७॥ एणी परें विघ्न जस्या संसारमांजी, जीवने सुख नहीं लवलेश
रे ॥ विषयनुं सुख अणुसम ते मानतोजी, ते ललना आयत छे सुविशेष
रे ॥ ई०॥ ८ ॥ ललना तो आपदानी छे प्रिय सखीजी, सापण वाघण रा
क्षसिणीनें तोल रे ॥ स्वर्गनी जोगल नरकनी दीपिकाजी,राचे कोण पंमित
जेह अमोल रे ॥ ई०॥ ए ॥ कार्य अकार्य न गणे प्राणियोजी, विविध प्र
कारनां करतो पाप रे ॥ तेहथी ए संसारमांहे जमेजी, खमतो ते चिहुं ग
तिनां डुःख आपा रे ॥ ई०॥ १० ॥ ते कारण तुमें धर्म समाचरोजी, विष
यथी विरमी महानुजाव रे ॥ सर्व विरति रूडी अंगीकरोजी, धर्म कार्यमां
आणी जाव रे ॥ ई०॥ ११ ॥ निग्रह कीजें सर्व कषायनोजी, इंद्रिय जे छे
चपल तुरंग रे ॥ डुर्दम दमीयें तपथी तेहनेंजी, गुरु कुलवासें वसीयें रंग
रे ॥ ई०॥ १२ ॥उपसर्गनें वली सहियें परिसहाजी,तो जवसायर तरियें ज
व्य रे ॥ जनम जरा कल्लोलें न बूडियेंजी,निर्मल होय शुद्धात्तम डव्य रे ॥
ई०॥१३॥ सकल संसारिक डुःखने वामताजी,अकल अबाधित लहे निर्वाण
रे ॥ निर्द्वंद्वी शाश्वत सुखनें अनुजवेजी,विलसे वर केवल दंसणनाण रे ॥
॥ ई०॥ १४ ॥ देशना सांजली मन संवेगीयाजी, मदननें धनदेव प्रणमी
पाय रे ॥ कहे जव अंधकूआथी उद्धरोजी, दीक्षा कर आलंबनें गुरु
राय रे ॥ ई०॥ १५॥ करो उपकार स्वामी अम रांकनेंजी, गुरुयें पण दीक्षा

तेणें, पांम्या यौवन वेश ॥ परणाव्या बेहु पुत्रनें, रत्नचूड सुविशेष ॥ ७ ॥ योग्य जाणीनें खगपति, रत्नचूडनें ताम ॥ पदवी दिये युवराजनी, राज्य न्नारनां काम ॥ ८ ॥

॥ ढाल पच्चीशमी ॥ जगतगुरु हीरजी रे ॥ ए देशी ॥

॥ इणे अवसर हवे एकदा रे,अशुन करमनें योग ॥ पूर्व निकाचित उ दयथी रे, राणीनें थयो रोग ॥१॥ देखो गति कर्मनी रे,कर्में सुख डुःख होय ॥ दे० ॥ ए आंकणी ॥ रतनमाला राणी तणे रे, अंगें ज्वर असराल ॥ नूख गइ अन्न नवि रुचे रे, टलवले जेम मत्र जाल ॥ दे०॥२ ॥ दाह घ णो अंगें थयो रे, बलती फूरे जोर ॥ क्षण पण निड़ा नवि लहे रे, थिर न रहे एक ठोर ॥ दे० ॥ ३ ॥ मुख कुंमलाणुं मालती रे, फुल ते जेम कुमलाय ॥ राजवैद्य बहु तेडीया रे, विकल्प बहु करे रा य ॥ दे० ॥ ४ ॥ औषध विविध प्रकारनां रे, करता तेह उपाय ॥ ॥ मंत्रवादी मंत्रे घणा रे, पण ते गुण नवि थाय ॥ दे० ॥ ५ ॥ रा णीनें रोग व्यापीयो रे, वैद्यें जाणी असाध्य ॥ हाथ खंखेरी उठिया रे,को इ उपाय न लाध ॥ दे० ॥ ६ ॥ अनुक्रमें आयु अथिरथी रे,ठांम्यां तेणी यें प्राण ॥ तव आक्रंद ते उछल्यो रे, रोवे सहु तिणे ठाण ॥ दे० ॥ ७॥ राय आंसु नर लोयणे रे, करतो अनेक विलाप ॥ हा देवी तुं मुऊनें रे, केम नवि आपे जबाप ॥ दे० ॥ ८ ॥ पोक मेली राजा रूवे रे,बोले रोतो वाणि ॥ कंकेली दल रातडा रे, हा तुज चरणनें पाणि ॥ दे० ॥ ए ॥ ने त्र ते कमलनां दलसमां रे, चंद वयणी दे बोल ॥ कुंद सुंदर दंत ताह रा रे, विडुम अधर अमोल ॥ दे० ॥ १० ॥ तुजने किहां हवे देखशुं रे, त्रिज्ञुवन शून्युं आज ॥ नासे तुज विण मुजनें रे,एम रोवे महाराज ॥दे० ॥ ११ ॥ दाघ देइ हवे तेहनें रे, दोय पुत्रशुं राय ॥ रोतो न रहे कोयथी रे, न करे कांय व्यवसाय ॥ दे० ॥ १२ ॥ राज काज सवि ठांमीयों रे,रहे योगीश्वर रीति ॥ मंत्री प्रमुख सवि रायनें रे, एम समजावे नीति ॥दे० ॥ ॥ १३ ॥ तुम सरिखा धीर पुरुपनें रे,न घटे करवो शोक ॥ राज्य सीदायें तुम तणुं रे,डुःखीयो होयें लोक ॥दे०॥१४॥ उत्पत्तिलययुत सर्व ठे रे,थिर नही जगमां कांय ॥ समजाव्यो समजे नही रे, अधिक धरे डुःख राय ॥ ॥ दे० १५ ॥ राणी सांनरे क्षण क्षणें रे,डुःख धरे तास वियोग ॥ शाता

म इंद्रजाल रे हुं० ॥ ११ ॥ रमणिक जिम किंपाकनां हुं०॥ फल कडुआं परिणामरे हुं० ॥ इत्यादिक चिंता परो हुं०॥ चाल्यो आगल जाम रे हुं०॥ ॥ १२ तव दीठा उद्यानमां हुं० ॥ सूरिजिनेश्वर नाम रे हुं० ॥ धर्म कथा कहेतां थकां हुं० ॥ कीधो तास प्रणाम रे हुं० ॥१३॥ देशना सांजली द पंशुं हुं० ॥ सुतनें सोंपी राज्य रे हुं० ॥ संयम लिये सूरिकने हुं० ॥ आप थया ऋपिराज रे हुं० ॥ १४ ॥ तीव्र तपस्या आदरी हुं० ॥ पाले शुद्ध आचार रे हुं० ॥ गगनगामिनी उपनी हुं० ॥ लब्धि बीजी प ण सार रे हुं० ॥ १५ ॥ अवधिनाण वली उपनुं हुं० ॥ जाणे जगत स्वना व रे हुं० ॥ विचरी पृथिवी पावन करे हुं० ॥ लब्धि तणें परजाव रे हुं० ॥ ॥ १६ ॥ धनदेव हवे उपनुं हुं० ॥ ते सुणजो अधिकार रे हुं० ॥ नग वैता ढय शोहे घणुं हुं० ॥ जोयण पचाश विस्तार रे हुं० ॥ १७ ॥ जोयण पच्ची श उंचो वली हुं० ॥ गगनशुं करतो वात रे हुं०॥ निर्जर कण शीतल घणा हुं० ॥ फरशी पवन आयात रे हुं० ॥ १८ ॥ तेणे सुर किन्नर यक्षनां हुं० सुखीयां मिथुन उद्यान रे हुं० ॥ रयणीयें औषधि दीपती हुं०॥ दीपे दीप समान रे हुं० ॥१९॥ तिहां नयर वर नामथी हुं०॥ रथनेउर चक्रवाल रे हुं० ॥ प्रतिजवनें जिहां धूपना हुं० ॥ धूम्र ते मेघनी माल रे हुं० ॥२०॥ रयण मणि पंक्तितणां हुं० ॥ प्रजा तें इंद्रचाप रे हुं० ॥ गगनें विद्याधर मणि तणा हुं० ॥ किरण ते विजली व्याप रे हुं० ॥२१॥ चोथे खंमें चो वीशमी हुं० ॥ श्रीजयानंदनें रास रे हुं० ॥ ढाल पभें कही पुण्यथी हुं०॥ होये लीलविलास रे हुं० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ६०२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ विद्याधर चक्री वडो,महेंद्र सिंह अनिधान ॥ बहुविद्याधर पय नमे, तेह महेंद्र समान ॥ १ ॥ दश दिशि जस कीर्त्ति घणी, करतो सबलो न्या य ॥ बंधुनें पण परिहरे, जो जाणे अन्याय ॥ २ ॥ न्यायवंतनें बंधुपरें, जाणे तेह नरिंद ॥ परनामाथी परमुहो, गुणगण केरो वृंद ॥३॥ राणी र यणमाला नली,पाणी पद्म समान॥ खाणी सोहग गुण तणी,वाणी कोकि ल मान ॥ ४ ॥ रायहाणी कंदर्पनी, पहिचाणी मुखचंद॥ रीसाणी दोषा वली,जाणी लोयण अरविंद ॥ ५ ॥ सुख नोगवतां दंपती,दोय पुत्र थया तास ॥ रत्नचूड मणिचूड तिम, करे कला अन्यास ॥६॥ साधि विद्या बहु

तव गुरु बोल्या ज्ञानथी, ठे तुज मुज संबंध रे ॥ एम कही धनदेव मदन नो,सर्व कह्यो प्रबंध रे ॥ ए० ॥ १४॥ धनदेव ते तुं उपन्यो, मदन ते मुजनें जाण रे ॥ सोहमथी आव्या बिहुं,ए संबंध प्रमाण रे ॥ ए० ॥ १५ ॥ तुज प्रतिबोधन कारणें, हुं आव्यो सुण राय रे ॥ आपण मित्र पूरव जवें, नारी तुं डुःख चित्तलाय रे ॥ ए०॥१६॥ संयम लेइ गुरुकुलें वस्या, उपन्या एक विमान रे ॥ नारी तणें हवे कारणें,केम डुःख धरे अमानो रे ॥ए०॥१७॥ सांजली ईहापोह थयो,जातिस्मरण पायो रे ॥ नरपति गुरुने वीनवे,जगवन् सत्यं कहायो रे ॥ ए० ॥ १८ ॥ मुज उपर अनुग्रह करी, पाउधाख्या मुनिराय रे ॥ जवसायरमां बूडतां,कीधो मुज सुपसाय रे ॥ ए० ॥ १९ ॥ रत्नचूडनें थापियो, उत्सवथी निज ठाम रे ॥ विरचावे जिनमंदिरें, पूजा अति अजिराम रे ॥ ए० ॥ २० ॥ गुरुपासें दीक्षा ग्रही,श्रुत सायर लह्या पार रे ॥ तप तपता अति आकरा,अजिग्रह अनेक प्रकार रे ॥ ए० ॥ २१ ॥ विद्याधर मुनि अनुक्रमें,लब्धि तणा जंमार रे ॥ बिहुं मुनि अनुक्रमें विचरता,शुक्लध्यान लहे पार रे ॥ ए० ॥ २२ ॥ क्षपकश्रेणि मांमी करी,पाम्या केवलज्ञान रे ॥ सकल कर्मनो क्षय करी,पाम्या शाश्वत थान रे ॥ ए० ॥ २३ ॥ चोथे खंमें छवीशमी,पद्मविजय एम ढाल रे ॥ ब्रह्मवैश्रवण वदे वली, आगल वात रसाल रे ॥ ए० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ६५४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ धनपति मदन डुविध तणुं,चरित्र विचारे जेह ॥ इहजव परजव डुःख दीये, तरुणी केम ग्रहे तेह ॥ १ ॥ सांजली सहु विस्मय लह्या, चमक्या चातुर लोक ॥ राय कहे चित्त रीजीयुं, हृदयथी वाणी रोक ॥ २ ॥ वात कही वारू परें,नारीचरित्र निदान ॥ डुःखें तजाये देवता,मांमयुं जेणें घर मान ॥ ३ ॥ निंदनीक सघली नही. अबलां ए एकांत ॥ मुगतें गई महिला घणी,पुष्ट घणुं ते पंत ॥ ४ ॥ कर्मवशें सहु कोयनें, गुणनें दोष गणाय ॥ आश्रव तस कारण अठे,निंदा आश्रव न्याय ॥ ५ ॥

॥ ढाल सत्तावीशमी ॥ सुंदर पापस्थानक तजो शोलमुं ॥ ए देशी ॥

॥ सुंदर तुमें अमनें धुरें जांखियुं, वयण संजालो आप हो ॥ सुंदर सामान्यनें घर नवि घटे, दोय प्रिया संताप हो ॥ १ ॥ सुंदर तुमें अम बहु उपकारिया ॥ ए आंकणी ॥ सुंदर नहीं सामान्य पुरुष तुमें, जेहनें पीठे

क्यांहिए नवि लहे रे,कठिन कर्मनो जोग ॥ दे०॥१६॥ चोथे खंमें ए कही रे, पंचवीशमी ढाल ॥ पद्म कहे मुनि आवशे रे, दुःख पाशे विसराल ॥ ॥ दे० ॥ १७ ॥ सर्वगाथा ॥ ६२७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ गगनगामिनी लब्धियी, मणिप्रज जे अणगार ॥ गगन मारगथी आवीया, तास उद्यान मझार ॥ १ ॥ कुमर सहित वंदन जणी, जाय विद्याधर राय ॥ परम हर्ष धरतो थको,प्रणमे मुनिवर पाय ॥२॥ वेठो निज उचितासनें, मुनिवर दीये उपदेश ॥ जव्यजीव समजाववा,वली विशेष नरेश॥३॥

॥ ढाल छवीशमी ॥ वात म काढो हो व्रत तणी ॥ ए देशी ॥

॥ अंग चार कह्यां दोहिलां, तिहां मानव अवतार रे ॥ दश दृष्टांतें दोहिलो, जमतां एणे संसार रे ॥ १ ॥ एमजाणीव्रत आदरो ॥ ए आंकणी ॥ ते पामे पण दोहिलुं, सांजलवुं सिध्धांत रे ॥ घांची मोची आहेडी तणा, जव वली म्लेछमां हूंत रे ॥ ए० ॥ २ ॥ वाघरी माछी कसाइना, ढीपारनें सूत्रधार रे ॥ सांजलवुं किहांथी होये,पामी एह अवतार रे ॥ए०॥३॥ कुल पामे रोगी घणा, निरोगी कदी थाय रे ॥ सांजले श्रध्धा दोहिली,मिथ्यामति मुंजाय रे ॥ ए०॥ ४ ॥ श्रध्धा पुण्यें पामीयो, डुर्लन संयम सार रे ॥ विषय कषायमां राचियो, वली आरंन अपार रे ॥ ए०॥ ५ ॥ अणवाहालां आवी मले, तेम वाहालांनो वियोग रे, तेहनुं डुःख धरतो थको, न लहे तत्त्व संयोग रे ॥ ए०॥ ६ ॥ मोहें आकुल व्याकुलो, करे विषाद अनेक रें ॥ नवि जाणे इंड जाल ए, सुपनथकी अतिरेक रे ॥ ए० ॥ ७ ॥ तीर्थंकर चक्री जिस्या, बलदेवनें वासुदेव रे ॥ कालें कोइ रह्या नही,जस करता सुर सेव रे ॥ ए० ॥ ८ ॥ कुश अग्र जल बिंडुउ,चपल जीवित तेम जोय रे ॥ नेत्र कटाक्षने सारिखा,प्रिय संगम तेम होय रे ॥ ए० ॥ ए ॥ गिरि नदी कल्लोल सारिखी,लखमी अथिर असार रे ॥ यौवन गज कर्ण सारिखुं,रूप संध्यारंग धार रे ॥ ए० ॥ १० ॥ देशना सुणी कहे खगपति, स्वामी सुणो मुज वात रे ॥ तुम देखी मुज हियडले, हर्ष आणंद न मात रे॥ रे० ॥ ११ ॥ शोक गयो मुज वेगलो, हियडुं हसवा जाय रे॥ तुम मुखचंद विलोकवा, अधिक पिपासा थाय रे ॥ ए० ॥ १२ ॥ वात न जाये ते कही,शुं कारण तस होय रे ॥ तुमशुं पूरव जव तणो, स्वामि संबंध छे कोय रे ॥ ए० ॥ १३ ॥

कांयक उचित प्रकार हो ॥ सुं० ॥ तु०॥ १८॥ सुं०॥ जगिनी जो दीधी कौ लनें, तो ए अनरथ कीध हो ॥ सुं० ॥ देउं जो पुत्री तस कुलें,तो अनरथ प्रसिद्ध हो ॥सुं०॥तु०॥१७॥सुं०॥ ए नृप शूरवीर घणो, कोश सैन्य बलसार हो॥सुं०॥ मीठे वयणे निषेधीयें,न्याय युक्ति अनुहार हो॥सुं०॥तु०॥२०॥सुं०॥ एम विचार करी कहे, जइ करीमें शोध हो ॥ सुं० ॥ भिक्षकुमरी कोइ था नकें, नवि पाम्यो तस बोध हो ॥ सुं०॥ तु०॥ २१॥ सुं०॥ कुमरनें जे साजो करे, निजपुत्री देउं तास हो ॥ सुं० ॥ एह प्रतिज्ञा कारणें, दीधी ब्राह्मणनें खास हो ॥सुं०॥तु०॥२२॥सुं०॥ कुमरीनें पण ए गम्यो, देखी कला विलास हो ॥सुं०॥ ए सम अवर न को गुणी,जोतां जोडी न जास हो ॥सुं०॥तु०॥ ॥ २३ ॥ सुं० ॥ चोथे खंमें ए कही, सत्तावीशमी ढाल हो ॥ सुं० ॥ पद्मवि जय कहे सांजलो, सुणतां मंगलमाल हो ॥ सुं०॥ तु०॥ २४ ॥ सर्व ॥६८३॥

॥ दोहा ॥

॥ भिक्षुकनें जली दीकरी,दूत कहे केम दीध ॥ नृप कहे भिक्षज जणी, पूरवें अर्पण कीध ॥१ ॥ ब्राह्मण वारु भिक्षथी,वदे दूत तव वाणि ॥ क्रोधवशें ए कीधलुं,जगतीपति कहे जाणि ॥२॥ प्रतिज्ञा अमें पालवा, कीधुं एहवुं काम ॥ दक्षपणे दूतज कहे,अवलुं कीधुं आम ॥ ३ ॥ राजकुमर अंतरंग छे, ब्राह्मण बाह्य सरूप ॥ मारग पाधरो मूकीनें, विरुद्ध करो विरूप ॥ ४ ॥ रूपें हरव्यो रतिपति, किहां ए कुमर स्वरूप ॥ नटविद्या प्रमुखें नि खर, किहां ए ब्रह्म कुरूप ॥५॥ उपकारीनें आपीयें,दक्षिणा धननुं दान ॥ राजकुमरी ए विप्रने, पण देवी न प्रधान ॥ ६ ॥

॥ ढाल अठावीशमी ॥ उलंगडी आदिनाथनी जो ॥ ए देशी ॥

॥ दूतनें कहे हवे नरपति जो, करी प्रतिज्ञा तेह जो ॥ तेह युगांतें नवि फरे जो, निर्वेहवुं धरी नेह जो ॥ ॥ दू०॥१ ॥ यतः ॥ दिग्गजकूर्म्मकुलाचल, फणिपतिविधृतापि चलति वसुधेयं ॥ प्रतिपन्नममलमनसां, न चलति पुंसां युगांतेपि ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ सहु सम्मत में ए कर्युं जो, हवे न करो अन्य विचार जो॥ दूत कहे हेत तुम कहुं जो,मानो वचन ए वार जो॥दू०॥ ॥ २ ॥ बलीयाशुं सज्जनपणुं जो,राखीयें तो सीझे काज जो ॥ कन्या राज कुमारनें जो, नहीं आपो तो नहीं रहे लाज जो ॥ दू० ॥ ३ ॥ बलथी लेशे जो कदा जो, कोण वारणहारो तास जो ॥ शूरवीर ते नृप

नारि हो ॥सुं०॥ प्रार्थनाभंग करे नहीं,सज्जन कोइ प्रकार हो॥सुं०॥तु०॥१॥ सुं०॥ मुज पुत्री अंगी करो,तव बोले नृदेव हो ॥सुं०॥ एम छे तो पण पर खीयें, अवसरें जाणशुं देव हो सुं०॥ तु०॥ २ ॥ सुं०॥ कायक प्रतिज्ञा मा हरे, ते जिहां नवि पूराय हो ॥ सुं० ॥ तिहां लगें तुमें नवि बोलवुं, एम सुणी चुप रह्यो राय हो ॥ सुं० ॥ तु० ॥ ४ ॥ सुं० ॥ राय मंत्री मुख हर खिया,सांजली कन्या तेह हो ॥ सुं० ॥ मोद लही मनमां घणुं, अंगीक री ससनेह हो ॥ सुं० ॥ तु० ॥ ५ ॥ सुं० ॥ एक दिन राय सजा करी, बेठा सहु परिवार हो ॥ सुं०॥ तेणे समे प्रणमी वीनवे, आवीने प्रतिहार हो ॥ सुं०॥ तु०॥ ६ ॥ सुं० ॥ दूत आव्यो पद्मरथ तणो, ते आवे के जाय हो ॥ सुं० ॥ मोकल वहेलो तेहनें, एणी परें बोले राय हो ॥ सुं०॥तु०॥७॥ सुं०॥ मोकल्यो दूत ते आवियो, परपद देखे ताम हो ॥ सुं० ॥ रत्न आजूषण जलकतां, रूपें जेहवो काम हो ॥ सुं०॥ तु०॥ ८ ॥ सुं०॥ मंत्री सामंतनें शो जीया, सेनापति सत्नवाह हो ॥ सुं० ॥ अंग रक्षक विविधायुधें, परिवर्यो नृप उत्साह हो ॥ सुं०॥ तु०॥ ९ ॥ सुं० ॥ बेगे कनकसिंहासनें, चामर छत्र धरंत हो ॥ सुं० ॥ ब्रह्म वैश्रवण पासें रह्यो. दूत ते नृप प्रणमंत हो ॥ सुं०॥ तु० ॥ १० ॥ सुं०॥ पंमित कथकनें डुर्द्धरा,बकतरीआ वड वीर हो ॥ सुं०॥ शोजा अधिकी इंद्रथी, चमक्यो देखी नृप नीर हो ॥ सुं०॥तु०॥११॥ ॥सुं०॥ दृष्टि संज्ञायें बेसाडीयो, पूछे नृप सुखशात हो ॥ सुं० ॥ नगिनीपतिनें वली कहे,तुज आगमनी वात हो ॥ सुं०॥तु० ॥ १२ ॥ सुं० ॥ ते कहे तुम पसायथी, मुजनें छे सुखशात हो ॥ सुं०॥ तुम नगिनीपति सुखें रहे, हवे सुणो मुज अवदात हो ॥ सुं० ॥ तु० ॥ १३ ॥ सुं०॥ तुम पासें मुज मोक ल्यो. सांजलो कारण तेह हो ॥सुं०॥ दैवयोगें क्रोध उपनो, पुत्री उपर मुज देह हो ॥ सुं० ॥ तु०॥ १४ ॥ सुं० ॥ विजय सुंदरी दीधी निह्ननें, तेह गयां कोइ गाम हो ॥ सुं० ॥ खोल करी घणी तेहनी,वन वाडी पुर गाम हो ॥ सुं०॥ तु०॥ १५ ॥ सुं०॥ खबर न लाधी तेहनी, तेणे नित्य खेद ते थाय हो ॥ सुं०॥ तुमें पण तस जोवरावजो, विविध प्रकारनां गाय हो ॥ सुं०॥ तु०॥१६॥सुं०॥ वात सुणो एक माहरी, छे तुम पुत्री जेह हो ॥सुं०॥ पद्म दत्त मुज पुत्रनें, परणावो तुमें तेह हो ॥ सुं० ॥ तु० ॥ १७ ॥ सुं० ॥ तेह वचन श्रवणें सुणी, नरपति करे विचार हो ॥ सुं० ॥ उत्तर एहनें आपीयें,

सघलो तेह्नो अवदात जो ॥ नरपति सुणी कोप्यो घणुं जो, अग्निमा मधु नो पात जो ॥ दू० ॥ २० ॥ चोथे खंमें ए कही जो, अठावीशमी रुडी ढाल जो ॥ पद्म कहे मद ठांमीयें जो, मदथी होये बहु जंजाल जो ॥ दू०॥२१॥

॥ दोहा ॥

॥ सैन्य मेल्युं तिहां सामटुं, वाज्यां रण वाजित्र ॥ गजवर वेगे गेलशुं, चाल्यो सैन्य विचित्र ॥ १ ॥ अति उत्साह इलापति, छत्र चामर ढाजंत ॥ गाजे वाजित्रें गगन, हैयडे दर्प धरंत ॥ २ ॥ शब्द शकुन वारे सकल, पण न रह्यो पल एक ॥ कमलप्रन्न नृपनें निकट, आव्यो अति अविवेक ॥ ३ ॥ हाथी त्रीश हजारशुं, रथ पण त्रीश हजार ॥ त्रीश लाख वली तुरंगशुं, चंचल पवन प्रचार ॥ ४ ॥ त्रीश कोडी पायक तुरत, आव्यो मेली आम ॥ सांजली निज मंत्री सहित,करे विचार एह काम ॥ ५ ॥

॥ ढाल उंगणत्रीशमी ॥ जीहो जाणुं अवधि प्रयुंजीने ॥ ए देशी ॥

॥ जीहो कमलप्रन्न कहे मंत्रीनें, लाला बलीयाशुं नरी बाथ ॥ जी हो कोप मानशुं बोलीया,लाला केम रहेशे एह साथ ॥ १ ॥ नविकजन जोजो पुण्य प्रकार॥ ए आंकणी॥ जीहो मंत्री कहे जे कीधलुं,लाला अण कीधुं नवि होय ॥ जीहो पर परान्नव न सही शके,लाला क्षत्रीकुलनो कोय ॥ न० ॥ २ ॥ जीहो दोष देखी नास्तिक कुलें, लाला कन्या नवि देवराय ॥ जीहो अणघटती ए कांइ नथी,लाला सैन्य करो समुदाय ॥ न० ॥ ३ ॥ जी हो वप्र सज्ज करी जूफीयें, लाला नरीयें कणने नीर ॥ जीहो नृप कहे न गरथी नीकली, लाला युद्ध करुं इण तीर ॥ न० ॥ ४ ॥ जीहो गढमां रहीनें जूफीयें, लाला देशनंग निज थाय ॥ जीहो शत्रु देशनें आक्रमे, लाला वीरथी केम सहेवाय ॥ न० ॥ ५ ॥ जीहो ब्रह्मवैश्रवण कहे त दा,लाला नृपें कही सत्य वात ॥ जीहो नय मनमां मत राखजो,लाला जय थाशे सुखशात ॥ न० ॥ ६ ॥ जीहो जीतशुं हुं ए एकलो,लाला रहो सघ ला सुखमांहिं ॥ जीहो नाटकनी परें देखजो,लाला संगर मुज उत्साहिं॥न०॥ ॥७॥ जीहो सांनली नरपति हरखियो,लाला मेली सैन्य अपार ॥जीहो पंच परमेष्टी समरतो,लाला करे मंगल उपचार ॥न० ॥ ८॥ जीहो चामर छत्र धरावतो,लाला वेगे ते गजराज ॥ जीहो शुन शकुनें ते नीकल्यो, लाला पुरबाहिर नरराज ॥ न० ॥ ९ ॥ जीहो विविध आयुद्ध धरी रथ चढ्यो,ला

ति जो, प्रतिवीर ते तृण छे जास जो ॥ दू० ॥ ४ ॥ तेहनां सैन्य समु द्रमां जो, तुम बल साथुचूर्ण प्रमाण जो॥ तेह आक्रमशे तुजनें जो, तव नवि थाशे कोइ त्राण जो ॥ दू० ॥ ५ ॥ तेमाटे तुज राज्यनी जो, जी ववानी जो होये चाह जो ॥ तो कन्या द्यो नृपकुमरनें जो,एहज सीधो छे राह जो ॥ दू० ॥६॥ सांजली रायनें उपन्युं जो, बहु क्रोध तथा अनिमान जो ॥ कहे रे दूत तुं बोलवा जो,घणो निपुण ने वली सावधान जो ॥दू० ॥ ७ ॥ मुज आगल पण बोलतो जो, धीठाई धरीनें जोर जो ॥ पण निज स्वामीनें नवि कहे जो, उपदेश वचन करी सोर जो ॥ दू०॥ ८॥ क्षत्री कुल मेलुं करे जो, ते क्षत्री पंक्तिमां नांहीं जो ॥ नास्तिकमां अग्रेसरी जो, केम अंतर केम उल्साहि जो ॥ दू० ॥ ए ॥ तेहशुं सज्जनता करे जो, कुलवंतनें आवे लाज जो ॥ पापी अन्यायीनें नहीं रहे जो, चिरकाल लखमीनें राज्य जो ॥ दू०॥ १० ॥ यतः ॥ तरुवत्तटिनी तटोन्नतं, प्रमदाहृतगुह्यमंत्रवत् ॥ जल वच्च मृदामनाजने, न चिरं तिष्ठति पापिषु श्रियः ॥ १ ॥ पूर्व ढाल ॥ शूरता ते निज गेहमां जो, पण शूरता नहीं संग्राम जो ॥ सहेजें तृण सरिखा थशे जो, गली जाशे सघलुं धाम जो ॥ दू०॥ ११॥ तेहनां सैन्यने सायरें जो, साथुचूर्ण ते बीजा राय जो ॥ पीवा ते सायर नणी जो, मुज वडवानल सम काय जो ॥ दू०॥ १२ ॥ कोण बीहे छे एहथी जो, निज जी वित रूठो एह जो ॥ तो सन्नद्ध थइ आवजो जो, संग्रामें जोइशुं तेह जो ॥ दू० ॥ १३ ॥ निग्रह योग्य छे माहरे जो, मुज नाणेजीनें अपमान जो ॥ कीधुं पण में राखियुं जो, स्वाजन्यपणुं बहु मान जो॥ दू० ॥ १४ ॥ म दमातो ठकुराइथी जो, जो लोपे स्वज्जनपणुं तेह जो ॥ तो खीरखांम घृत नोजनें जो, नूख्याने आव्युं एह जो ॥ दू०॥१५॥ जा वहेलो निज स्वामीनें जो, कहेजे तुं माहारी वाण जो ॥ कौलकुलें नवि दीजीयें जो, ए कन्या अनरथ जाण जो ॥ दू० ॥ १६ ॥ करजो जेम जाणो तुमें जो, तव बोल्यो ब्राह्मण वाणि जो ॥ अहो राजन अतिशय क्षमा जो, तुमची दीठी गुण खाण जो ॥ दू०॥ १७ ॥ एम कहे पण दूतनें जो, हजी गल हस्त न कीध जो ॥ कोइक सुनटें ते सांजली जो,दूतनें गल हस्त ते दीध जो ॥दू०॥१८॥ दूतनें क्रोध चढयो घणो जो, देखी निज अपकार जो ॥ चाल्यो पाछो वेग शुं जो, अमरष धरतो अपार जो ॥ दू० ॥१ए॥ पद्मरथ राजानें कह्यो जो,

हित केइ थया,लाला कर पद रहित अनेक ॥ जीहो निजसैन्यें औषधि व
ळें, लाला सज्ज करे ते छेक ॥न०॥२६॥ जीहो चक्र गदा मुजर वली, ला
ला खड्ग ते थयां अर्कतूल ॥ जीहो शत्रु सैन्य लही त्रासने, लाला देखी
ते प्रतिकूल ॥ न० ॥ २७ ॥ जीहो केइक मुखें तरणां दीये, लाला केइक
मूके शस्त्र ॥ जीहो केइ जलाश्रयें केइ वली,लाला पहेरे नारीनां वस्त्र ॥
॥ न० ॥ २८ ॥ जीहो केइक गव्हरमां गया,लाला केइ लीये जपमाल ॥
जीहो केइक शरण तेह्नुं करे, लाला मारो रखे कृपाल ॥ न० ॥ २९ ॥
जीहो नमो अरिहंताणं कहे, लाला कपट श्रावक थई तेह ॥ जीहो मूके
तेह्नें जीवता, लाला कुमर कृपानो गेह ॥ न० ॥ ३० ॥ जीहो अरिहंत
नामें विशेषथी,लाला मूके आणी प्यार ॥ जीहो पुण्यें जयलक्ष्मी वरे, लाला
कोइ न लोपे कार ॥ न०॥ ३१ ॥ जीहो चोथे खंमें एणीपरें,लाला उगण
त्रीशमीढाल ॥ जीहो पद्म कहे श्रोता घरें,लालाहोजो मंगलमाल॥न०॥३२॥

॥ दोहा ॥

॥ सैन्य विसंस्थल निज सबल, देखी तेह नरिंद ॥ उठी क्रोधें आवियो,
सुभटनां साथें वृंद ॥ १ ॥ ब्रह्म वैश्रवण प्रत्यें वदे,आज सुगाल अनंत ॥
भिक्षा कण दीये भामिनी, मागी खाउ मरणांत ॥२॥ ताम्रभाजन देउं ति
णवती, पर कामें केम प्राण ॥ हांमे ठोकरवादथी, एहवो केम अयाण
॥ ३॥ ब्रह्म जाणी उवेखियो,मारंतां तुज मुज्झ ॥ लाजे बाण ते लोकमां,
तेणें नवि मारुं तुज्झ ॥ ४ ॥ नाथ अछुं सेना तणो, मारे तेह्नें केम ॥
क्रोध करी तव द्विज कहे, पृथिवीपति सुणो प्रेम ॥ ५ ॥ जिहां पराक्रम जो
इयें, तिहां ब्रह्म क्षत्री न हेत ॥ कुलनुं काम ताहारे किश्युं, जाण श्युं युद्ध
संकेत ॥ ६ ॥ परनिंदानो प्रेम तुज, माहारे पराक्रम प्रेम ॥ सेना नाथ त
णो हवे, आणुं अंत हुं एम ॥ ७ ॥ ताहरां प्राणथकी तुरत, सारो करुं
सगाल ॥ प्रेतपति घर प्रेमथी,जाय सहु जंजाल ॥ ८ ॥ विधि भिक्षा देशे
भली, ताहारुं राज्य तैय्यार ॥ नहीं ताम्रपात्रनुं काम मुज, वली सांभलो
विचार ॥ ९ ॥ पुत्री वधथी पापीया, नवि बीहिनो मनमांहि ॥ ब्रह्महत्या
नी वातथी, समजावे शुं आंहिं ॥ १० ॥ ब्रह्म जाणी उवेखियो, ए कायर
अवदात ॥ परउपकार पराक्रमें, करवो मुज एकांत ॥ ११ ॥ रविद्रुम चंद
वारिद वली, दृष्टांतें तुं देख ॥ धर्म द्वेषें करी आंधली,निजपुत्री निरवेप

ला नृपनें पूछें जाय ॥ जीहो ब्रह्मवैश्रवण शोभे घणो,लाला युद्ध सामग्री समजाय ॥ न० ॥१०॥ जीहो पूरवें कमलायें कह्युं,लाला तुमें कोइ अगम सरूप ॥ जीहो मुज जरतार मत मारजो,लाला यद्यपि आग अनूप ॥ ॥ न० ॥ ११ ॥ जीहो निजनारी पण एम कहे,लाला मत मारेजो रे तात ॥ जीहो ब्रह्मवैश्रवणें अंगीकर्युं, लाला तास वचन विख्यात ॥न०॥१२॥ जीहो शीघ्र थइ साहामो जई,लाला जे निज देशनी सीम ॥ जीहो ह य गय रह नट अर्द्ध ठे,लाला पण उत्साह अनीम ॥ न० ॥१३ ॥ जीहो बिहुं दल सुनट उत्सव परें,लाला माने निजनिज गाम॥ जीहो शस्त्रजाग रिका जागता, लाला सूर उदय थयो ताम ॥ न० ॥१४ ॥ जीहो रण वा जिंतर वाजीयां,लाला दोय सैन्यमां ताम ॥ जीहो नारदें त्रिज फणी सल सल्या,लाला गज गया गव्हर गाम ॥ न० ॥ १५ ॥ जीहो कौतुक जोवानें मल्या,लाला राक्षसनें नूत प्रेत ॥ जीहो सन्नद्ध बद्ध थई मल्या, लाला दोय सुनट रण हेत ॥ न० ॥ १६ ॥ जीहो हय गय रथ नट बिहुं तणा, लाला निजनिज गाम रहंत ॥ जीहो अग्रसेनानी बिहुं तणा, लाला मांहो मांहे मिलंत ॥ न० ॥ १७ ॥ जीहो गजवर शोहे गिरि समा, लाला रथ ते जाणुं विमान ॥ जीहो सुनट पडे वली उछले,लाला दीसे सिंह समान ॥ न० ॥ १८ ॥ जीहो गरुड परें हय हींसता,लाला गज गर्जारव जोर ॥ जीहो रथ चित्कार घणा होये,लाला सुनट तणा बहु शोर ॥ न०॥१९॥ जीहो अट्टाट्ट हास्य नूत व्यंतरा, लाला फूट्युं मानुं आकाश ॥ जीहो नट मुगरें हस्ती पड्या, लाला पक्षछेद नग खास ॥ न० ॥ २० ॥ जीहो पाय ड परें रथ नांजता,लाला बाण मंमप तिहां होत ॥ जीहो आतप तिहां पसरे नही,लाला शस्त्र अग्नि उद्योत ॥ न० ॥ २१ ॥ जीहो एम नैरव सं ग्राममां,लाला हार्युं कमलप्रन सैन्य ॥ जीहो कमलप्रन उठे हवे,लाला रातो रोष रसेन ॥ न० ॥ २२ ॥ जीहो ब्रह्मवैश्रवण वदे तदा, लाला श्यो तुम उद्यम एह ॥ जीहो मुज बेगां सुखमां रहो,लाला एम वारी नृप तेह ॥ न० ॥ २३ ॥ जीहो रथ बेगो विविधायुधें, लाला चाल्यो वरसे बाण ॥ जीहो कवच सहित हणे सुनटनें,लाला केश्कनां शिरत्राण ॥ न० ॥२४॥ जीहो लोहत्राणशुं हाथीया,लाला पाखर सहित तुरंग ॥ जीहो समकालें सहस्रो गमे,लाला लागे अलक्षित अंग ॥ न० ॥ २५ ॥ जीहो मस्तक र

॥ शू० ॥ १७ ॥ शूरवीर जय इछता, थाको नृपति ताम रे ॥ माया विप्र थाको नहीं, गजशुं हरि जिम हाम रे ॥ शू० ॥ १८ ॥ मुष्टियें मार्यो हृद यमां, मूर्छा लह्यो तव नृप रे ॥ मुखथी तेम लोही वमे, पडियो काष्ठ स रूप रे ॥ शू० ॥ १९ ॥ शूर सुनट लाखो गमे, नृपनें लेवा आवे रे ॥ तव वाडव वर्षा तिहां, बाण तणी वरसावे रे ॥ शू० ॥ २० ॥ शस्त्र सवे तस नांजीयां, नाग मृग परें तेह रे ॥ बाणें आकुल व्याकुला, अति उत्सुक प ण जेह रे ॥ शू० ॥ २१॥ संग्रामें रूप कालमां,स्वामीनें न लेवाय रे ॥ भ्रू संज्ञा करी सुनटनें, प्रेरे कमलप्रन राय रे ॥ शू० ॥ २२ ॥ पद्मरथ राजा प्रत्यें, बांधी निज रथें घाले रे ॥ तेहना सुनट देखी करी,चिंतवे एम तेणें कालें रे ॥ शू० ॥ २३ ॥ हवे जूऊवुं शे कारणें,एहनुं शरण करीजें रे ॥ ए म करी द्विजशरणुं करे, द्विज पण तास वदीजें रे ॥ शू० ॥ २४ ॥ बीहिक म करो स्वामी अछुं,एम आशासना देवे रे ॥ जयजय शब्द थया तिहां,पु ष्पवृष्टि सुर खेवे रे ॥ शू०॥ २५ ॥ डुंडुनि वाजे आकाशमां, जयवाजां बहु वाजे रे ॥ कमलप्रन नृप सैन्यमां, जयजय शब्द विराजे रे ॥ शू० ॥ २६॥ अरिहा देव गुरु निःस्पृही, धर्म केवलीनो नांख्यो रे ॥ जेहना हृदयमांहे व स्या,जय पण तेहनो दाख्यो रे ॥ शू० ॥ २७ ॥ चोथे खंमें त्रीशमी, पद्म विजय कही ढाल रे ॥ धर्म करो नवि प्राणीया,धर्मथी मंगल माल रे ॥२८॥

॥ दोहा ॥

॥ त्रण तत्त्व जस चित्त नहीं, ते लहे डुःख अनंत ॥ सुखनाजन न वि संनवे, केम करे कर्मनो अंत ॥ १ ॥ सासू वयण संनारीने, वली निज वधूनी वात ॥ औषधिथी कीधो अवल, वाडवें जग विख्यात ॥ २ ॥ निग डित करीनें नाखीयो, पिंजरमां नूपाल ॥ मत नास्तिकनो मूकशे, ढोडीश तव ढोगाल ॥३॥ शत्रुसैन्य निजसैन्यमां,सऊ कर्या सवि जीव ॥ औषधि जल सींची एणें,ते लह्या हर्ष अतीव ॥४॥ अहो स्वपर सरिखा अछे,उत्तम करे उप कार ॥ एम स्तवना अतिशय करे, प्रमुदित थई अपार ॥ ५ ॥

॥ ढाल एकत्रीशमी ॥ जीरे म्हारे जाग्यो कुंवर जाम ॥ ए देशी ॥

॥ जीरे म्हारे कमलप्रन हवे राय, कुमरनें आलिंगन करे जीरे जी ॥ जी० ॥ स्तवना करे एम तास,तुम सम कोण अम उपगरे जीरेजी ॥ १ ॥ जी० ॥ अहो तुम शक्ति अगाध, अहो शूरवीर गंनीरपणुं जीरे जी ॥

॥ १२ ॥ वली नास्तिक थइ वांछतो,पुत्री आछनी प्रेम ॥ तस फल देखाडुं तनें, जो तुं करियें जेम ॥ १३ ॥ सर्वगाथा ॥ ७५० ॥

॥ ढाल त्रीशमी ॥ धवल शेठ लइ भेटणुं ॥ ए देशी ॥

॥ क्षत्रीवट हवे दाखवो, गुण तो फलथी जणाय रे ॥ उत्तम नर लव नवि करे, सांजल तुं नरराय रे ॥ १ ॥ शूरपणुं जूउं शूरनुं ॥ ए आंकणी॥ क्रोध अग्नि दीप्यो घणुं, वरसे जडोजड बाण रे ॥ व्रह्मवैश्रवण करे तदा, खंमो खंम प्रमाण रे ॥ शू० ॥ २ ॥ सुजट नृपतिनां कोडगो गमे, बाण मूके समकाल रे ॥ ते सहुनें व्रह्म एकलो, बाणे वींधे ततकाल रे ॥ शू० ॥ ॥ ३ ॥ व्याधथी मृगपरें नासता, जाय दिशो दिश जागा रे ॥ लेता मूकता बाणनें,नवि देखे कोइ लागा रे ॥ शू० ॥ ४ ॥ अद्भुत शक्ति देखी करी, सहुये विस्मय पाया रे ॥ जाग्य तणी स्तवना करे,अहो वल अतिशय जाया रे ॥ शू० ॥ ५ ॥ कमलप्रजना सुजटनें, अति वधिउ उत्साह रे ॥ नर ह्या वाह्या ते सहु, पेठा संगरमांह रे ॥ शू० ॥ ६ ॥ कुमरने नृप वेढु लडे, जूझे सैन्य ते दोय रे ॥ सुजट मस्तक वहु गगनमां,राहुमय परें होय रे ॥ शू० ॥ ७ ॥ शस्त्र मूकी जा मूकीयो, कायरनें नवि मारुं रे ॥ जो क्षत्री पणुं धारतो, तो वल जोउं ताहारुं रे ॥ शू० ॥ ८ ॥ वाल तुं फोकट कां मरे, जा तुं मूक्यो जाणी रे ॥ वीर तुं शर वींध्यो थको,जूझे छे एम बाणी रे ॥ शू० ॥ ए ॥ उगो उगो मारो तुमें, मारो मारो एम जांखे रे ॥ शोर बकोर घणो थयो,कविजन केतुं दाखे रे॥शू०॥१०॥ रायनुं धनुष छेद्युं हवे, छत्र चामर शिरत्राण रे ॥ राय ग्रहे अजिनव धनु, तेहथी चलावे बाण रे ॥शू० ॥ ११ ॥ धनुष वाडवनुं छेदीयुं, वाडव आणी रीश रे ॥ लेइ मोघर रथ जांजीयो, हवे कोपे पृथिवीश रे ॥ शू०॥ १२ ॥ विप्रनो रथ खंमो खंम कस्यो, गदा करी चकचूर रे ॥ ब्राह्मणें धनुष द्विधा कर्युं, आणी अतिशय शूर रे ॥ शू० ॥ १३ ॥ खड्गघात तव नृप करे, ते ब्राह्मण वंचावे रे ॥ खड्ग वाडवनुं छेदीयुं, उलट पालट एम थावे रे ॥ शू० ॥ १४ ॥ अमर्ष धरी ब्राह्मण तदा, नृपनें एम बोलावे रे ॥ मल्लयुद्ध करीयें बिहु, नृप पण सन्मुख आवे रे ॥शू०॥१५॥ जुजास्फोट पदघातथी, ते पृथिवी कंपावे रे ॥ कुर्कुट परें उपडे पडे, विस्मय सहु तिहां पावे रे ॥ शू० ॥ १६ ॥ तर्जना करे गाजे घणुं, उठे आजोटे दोय रे ॥ उपर अध थाये वली, वलगे विछडे दोय रे

अपराधी नरतार, पतिव्रता सेवुं अमें ॥ जीरे जी ॥ १८ ॥ जी० ॥ नृप कहे एह अनाथ, दीनशुं क्रोध घटे नहीं जीरे जी ॥ जी०॥ प्रणामांत होय क्रोध, सज्जन ते कहीयें सही जीरे जी ॥१९॥जी०॥ क्रोध शांति तुम दीठ, हवे प्रसाद ते दाखवो जीरे जी ॥ जी० ॥ कीजें नृपस्वरूप, ए अम वच न ते राखवो जीरे जी ॥ २०॥ जी०॥ विप्र कहे जो एह, जैनधर्म चित्तथी करें जीरे जी ॥ जी०॥ तो करुं मूलस्वरूप, पूछो एहने दील खरे जीरे जी ॥ ॥ २१ ॥ जी० ॥ पूछ्युं तेहनें ताम, चेष्टायें कहे ए खरुं जीरे जी ॥ जी०॥ मूकुं नास्तिक वाद, जैनधर्म साचो करुं जीरे जी ॥ २२ ॥ जी० ॥ ब्रह्मवै श्रवणें कीध, मूलगुं रूप औषधियकी जीरे जी ॥ जी० ॥ निगड भंजावी ताम, आश्वासना दीये प्रतीतकी जीरे जी ॥ २३ ॥ जी० ॥ सिंहासनें ते राय, बेसाड्यो आनंद थयो जीरे जी ॥ जी० ॥ कमलप्रभ मुख राय, प्रणमे चित्र हृदय नयो जीरे जी ॥ २४ ॥ जी० ॥ सोंप्युं सघलुं सैन्य, ते प्रणमे अति नेहशुं जीरे जी ॥जी०॥ बोले तव नृपाल, नीचुं मुख करी तेह शुं जीरे जी ॥ २५ ॥ जी० ॥ एकत्रीशमी ढाल, चोथे खंडें ए कही जीरे जी ॥जी०॥ पद्मविजय सुरसाल, भांखी जिम शास्त्रें लही जीरे जी॥२६॥

॥ दोहा ॥

॥ गदगद स्वरथी नृप वदे, नमवा योग्य हुं नांहि ॥ महा पाप पंकिल मनें, केम जाणुं जश्युं क्यांहिं ॥ १॥ दीठुं सांभल्युं नहीं कदा, कीधुं कर्म कठोर ॥ पुत्री हत्या करी पापीयें, अंध करी वली ढोर ॥ २ ॥ जिह्वनी कीधी भामिनी, किहांये गइ कोइ ठाय ॥ ए पातक उदय थयुं, कीधुं कर्म न जाय ॥३॥ उग्रपाप पुण्य उदयथी, आव्युं तुरत अचान ॥ सहसगमें भट साखथी, पकड्यो वाडवें पाण ॥ ४ ॥ मर्कट कीधो मानवी, ए दुःखनो श्यो अंत ॥ मरण श्रेय मुजनें अछे, सर्वप्रकारें संत ॥ ५ ॥ प्रगुण करो चय पेशीयें, एम सुणी अवनीपाल ॥ कमलप्रभ कहे सांभलो, रूडी वात रसाल ॥ ६ ॥

॥ ढाल बत्रीशमी ॥ कर्म न छूटे रे प्राणीया ॥ ए देशी ॥

॥ वटुयें जींत्यो एम जाणीयें, कुमलाठे मत स्वामी ॥ भर्तादिक पराभव लह्या, बाहुबली सुख पामि ॥ १ ॥ कर्म तणी गति एहवी ॥ ए आंकणी ॥ वटुठे मात्र म जाणजो, दिव्य पुरुष कोइ एह ॥ तेतो अवसरें जाणशुं, तव बोले द्विज तेह ॥ क० ॥ २ ॥ एतो फूल उग्यां अछे, फल तो नारकमांहि ॥ व

जी० ॥ पूरवपुण्य पसाय, अमें कृतार्थ थया घणुं जीरे जी ॥ २ ॥ जी०॥ घुणाक्षरनें न्याय,तुमें एक विधि निपजावीया जीरे जी ॥जी०॥ नृप चढ्यो गजवर खंध,साथें कुमर वेसारीया ॥ ३ ॥ जी० ॥ पेसे नगरीमांहे, विविध वाजित्र वजावतो जीरे जी ॥ जी० ॥ ब्राह्मण शत्रु सैन्य, नगर आसन्न ते थापतो जीरे जी ॥ ४ ॥ जी० ॥ मंत्री सेनानी मुख्य, परिकर सार जोइ क री जीरे जी ॥ जी० ॥ राखे तेहमांथी आप, सेवा कारण चित्त धरी जीरे जी ॥५॥जी०॥ घर घर तोरण माल,स्वस्तिक मुक्ताफलें करे जीरे जी ॥जी०॥ नाटक नव नव नांति, ध्वज आपण घरने शिरें जीरे जी ॥ ६ ॥ जी० ॥ पृथिवीपति द्विजयुक्त, चामर छत्र धरावता जीरे जी॥जी०॥ महा महोत्सव मंमाण,नृप मंदिर क्रमें पावता जीरे जी ॥ ७ ॥ जी० ॥ मंत्री सामंत सहु लोक, विसर्ज्या निजघर गया जीरे जी ॥ जी० ॥ परिवर्यो निज परिवार, द्विज पण निजघर आवीया जीरे जी ॥ ८ ॥ जी० ॥ राजवर्गी पुर लोक, ब्रह्मवैश्रवणना गुण स्तवे जीरे जी ॥जी०॥ रणकथा तेह संनारि, करे आ लाप ते नव नवे जीरे जी ॥ए॥जी०॥ पंजर रथमां थापि,तेडाव्यो पद्मरथ प्रत्यें जीरे जी ॥ जी० ॥ हुकम करी द्विजराज, नुंजाव्यो अवसर थते जीरे जी ॥ १० ॥ जी०॥ बीजे दिन हवे नूप, वेग अर्द्धासनें द्विज मली जीरे जी ॥ जी० ॥ मेली सन्ना तेणी वार, तेड्यो पद्मराजा वली जीरे जी ॥११॥जी०॥ काढी पंजर बाहेर, बोलावी द्विज एम कहे जीरे जी॥जी०॥ पुत्री विटंबण पाप, तुज सरिखा एणी परें लहे जीरे जी ॥ १२ ॥ जी० ॥ हजीय न आव्यो अंत, फल देखावुं ते हवे जीरे जी ॥ जी० ॥ औषधि मस्तकें थापि, मंकड कीधो वाडवें जीरे जी ॥ १३ ॥ जी० ॥ लोह शृंख ला आणी,घाली गले कौतुक करी जीरे जी ॥जी०॥ सन्ना लोक सहु देखि, होंशें जोवे फरी फरी जीरे जी ॥ १४ ॥ जी०॥ निज नरनें कहे विप्र, राय मार्गे त्रिक चाचरें जीरे जी ॥ जी० ॥ फेरवो घर घर हाट, जेम वली फ री न समाचरे ॥ जीरे जी ॥ १५ ॥ जी०॥ मारो कोरडा तास, ते सहु नर अंगीकरे जीरे जी ॥ जी० ॥ लेई जाये जाम, तव कमला आंसु फरे जीरे जी ॥ १६ ॥ जी० ॥ पतिविडंबना देखी, कहे निज नृप भ्राता नणी जीरे जी ॥जी०॥ मुज तुज थाय अपवाद,वात वारो अनरथ तणी जीरे जी॥१७॥ जी०॥ कमला कहे सुणो वत्स, मात वचनें मूको तुमें ॥ जीरे जी ॥ जी०॥

मुज एह ॥ तातक्रोध ते ततक्षणें, हितकारी हुउं देह ॥ २ ॥ सांजली व यण सनेहथी, आलिंगे अवनीश ॥ बोले वेसारी खवर, पूछे जव पृथिवीश ॥ ३ ॥ निन्न जणे तव सांजलो, जिम उलखी निज जात ॥ मुज उलखे कांइ महीपति, तव कहे पृथिवी तात ॥ ४ ॥ लक्षालक्ष तुमें लखुं, स्या द्वाद जेम सूत्त ॥ रूप कमलाने क्षिद तुम, केम लहीयें आकूत ॥ ५ ॥ पंमित पण परखे नहीं, शक्ति तुमारी स्वामि ॥ पुत्री जे आपी प्रथम, रू पें ते अनिराम ॥ ६ ॥ कमलप्रन मुख एम कहे, कीधुं कारिमुं रूप ॥ नि न्न तणुं तेम वंनलुं, नारीनुं तेमज अनूप ॥ ७ ॥ विप्र वखत एहवुं नही, लक्षणें लखीयें एम ॥ तव पद्मरथ बोलतो, आणी अधिको प्रेम ॥ ८ ॥

॥ ढाल तेत्रीशमी ॥ मनमोहन मनमोहन पावन देहडीजी ॥ ए देशी ॥

॥ स्वामी अरज स्वामी अरज सुणो एक अम तणीजी, कहे पद्म कहे पद्मरथ राजान हो ॥ जेम कीधुं जेम कीधुं स्वरूप ते निन्ननुं जी, तेम दा खवो तेम दाखवो मूल संस्थान हो ॥स्वा०॥१॥ मुंजावो मुंजावो केटलुं अम प्रत्येंजी, मायानिन्न मायानिन्न ते बोले तब हो ॥ जव चूरणें जव चूरणें आंधली निज सुताजी, करी तहारे करि तहारे में साजी सुलब हो॥स्वा०॥२॥ तिहां कीधी तिहां कीधी प्रतिज्ञा क्रोधथी जी, देउं शिक्षा देउं शिक्षा ए नरराय हो ॥ तिहां सुधी तिहां सुधी प्रगट न थायवुं जी ॥ निजरूपें निज रूपें में कांइ राय हो ॥स्वा०॥३॥ ते कीधुं ते कीधुं धाखुं जे हतुं जी, तुम दीधुं तुम दीधुं डःख असराल हो ॥ ते खमजो ते खमजो पूज्य तुमें अछेजी, हवे थयो हवे थयो प्रतिज्ञा पाल हो ॥ स्वा० ॥ ४ ॥ हवे परगट हवे पर गट थाउं एम कहीजी, निज दाख्युं निज दाख्युं मूल स्वरूप हो ॥ निज प रनें निज परनें नानारूप करणथी जी, नवि जाणे नवि जाणे प्रजा तेम नूप हो ॥ स्वा० ॥ ५ ॥ रूप देखी रूप देखी नृपादिक हरखीयाजी, मोद पामी मोद पामी स्तवे गुणरूप हो ॥ अहो नाटक अहो नाटक एणेहि ज कीधलुं जी, वरणवीयें वरणवीयें शुं गुणकूप हो ॥स्वा०॥६॥ लाज मूकी लाज मूकी आवी सुणी वारता जी, धरी हर्ष धरी हर्षनें लई वरमाल हो ॥ नृपकुमरी नृपकुमरी कुमर तणे गले जी, नाखे अति नाखे अति प्रेम वि शाल हो ॥स्वा०॥७॥ रुडो वरियो रुडो वरियो सहु एम नांखतां जी, वाज्यां तव वाज्यां तव मंगल तूर हो ॥ वंदिजन वंदिजन बोले बिरुदावली जी,

चनें कहेवाये ते नहिं, एहवां जोगवशो त्यांहि ॥ क० ॥ ३ ॥ आ जव परज व सुख दीये, आदरो श्रीजिनधर्म ॥ दीठां पापनां फल तुमें,मूको नास्तिक कर्म ॥ क० ॥ ४ ॥ राणी मनावो रूठी तुमें, जोगवो आपनुं राज्य ॥ श्रीजिन धर्म प्रजावथी,सरशे सघलां रे काज ॥ क० ॥ ५ ॥ नृप सांजली तस वयण डां,चित्तमां पाम्यो समाधि ॥ कहे पुत्रीशुद्धि पामीनें, करशुं वचन आराधि ॥ क० ॥ ६ ॥ पामी आणा जरतारनी, वडुजार्या कहे एम ॥ जयसुंदरी कह्युं ते खरुं, किं विजयसुंदरीयें केम ॥ क० ॥ ७ ॥ राय चिंते ए जाणे किश्युं,ज्ञानीयें जांख्युं होय एह ॥ अथवा विजय ए सुंदरी,रूपांतरथी रहेह ॥ क० ॥ ८ ॥ अथवा कमलापासें रहे, सांजलीयुं तस पास ॥ नृप कहे संकटमां हुं पड्यो,ते न रखाणो रे खास ॥ क०॥ ए ॥ तो परजा मुज थी सुखी,केम कहेवाये रे एम ॥ पुएयें सुखीया रे बहु परें, पापें मुज सम नेम ॥ क० ॥ १० ॥ सा कहे जो एम तो तुमें,पुण्य करो नही केम ॥ पुत्री पीडा जो तुम नडे, तो पूछो वडु प्रेम ॥ क० ॥ ११ ॥ निमित्त बलें कहेशे सवे, अतीत अनागत वात ॥ पूछे नृप मलशे कदा, पुत्री थाशे सुख शात ॥ क० ॥ १२ ॥ करी आमंबर बडु कहे, क्लेश न कीजें नृपाल ॥ लगन बलें एम तुम कहुं, मलशे ते ततकाल ॥ क० ॥ १३ ॥ पण अम दंपतीनें तुमें,कांइ उलखो छो के नांहि ॥ नृप कहे तुम गुणें उलखुं,तुमें अधिका जगमांहि ॥ क० ॥ १४ ॥ तव विवाहनें अवसरें,जेहवुं जिह्ननुं रूप ॥ प्रगट करीनें जजो रह्यो, पत्नीमूल स्वरूप ॥ क० ॥ १५ ॥ रूपवती शिरसुंदरी, कुरूपी जिह्न एह ॥ क्रोधने मानें विडंबीयो,दीधी जिह्ननें जेह ॥क०॥ ॥ १६ ॥ सा कहे हवे मुंज उलखो, तव नृप वदन नमाय ॥ उलखुं हुं हुं जली परें,बोले एणि परें राय ॥ क० ॥ १७ ॥ डबुद्धिमांहे शीरोमणि, शुं देखाडुं हुं मुख ॥ विस्मय खेद चिंता जस्यो, वली कांइ आणंद सुख ॥ क०॥ १८ ॥ विविधरसें जस्या रायना,प्रणमे सुंदरी पाय ॥ बोले सुंदरी जे हवे, ते आगल कहेवाय ॥ क०॥ १ए ॥ चोथे खंमें बत्रीशमी, पद्मविजय कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां, सुणतां मंगलमाल ॥क०॥२०॥

॥ दोहा ॥

॥ म म करो खेद महीपति, कस्यो तुमें जे क्रोध ॥ सुखदायक मुज सामटो, थइ रह्यो थिर थोज ॥ १ ॥ क्रोध न जो मुजनें करत, तो केम पति

हो ॥ कमलप्रन कमलप्रन गौरव बहु करे जी, नृपनें ये नृपनें ये वस्त्र अलंकार हो ॥ स्वा० ॥ २० ॥ पद्मरथनें पद्मरथनें छत्र चामर दीये जी, पामी आणा पामी आणा कुमरनी ताम हो ॥ निज सेना निज सेनामां पोहोंचिया जी, हवे कमल हवे कमल सुंदरी नाम हो ॥ स्वा० ॥ २१ ॥ निज पुत्री निज पुत्री कमलप्रन राजीयो जी, परणावे परणावे करी मनो हार हो ॥ देश आपे देश आपे पराणे कुमरनें जी, नवोढानें नवोढानें दीये ते सार हो ॥ स्वा० ॥ २२ ॥ गज घोडा गज घोडा तो लीधा नहीं जी, रहे नृपना रहे नृपना दीधा आवास हो ॥ रतनें करी रतनें करी दान देतो थकोजी, पूरवपरें पूरवपरें करे विलास हो ॥ स्वा० ॥ २३ ॥ पद्मरथ पण पद्मरथ पण आपे जमाइनें जी, विवाह समय विवाह समय उचित एक देश हो ॥ आपे तस आपे तस पुत्रीनें देश ते जी, कमलानें कम लानें मनावे नरेश हो ॥ स्वा० ॥ २४ ॥ नाइयें पण नाइयें पण सत्कारी घणुं जी,कमलप्रन कमलप्रन कुमर ए दोय हो ॥ पूजीनें पूजीनें विदाय क रे हवे जी,सैन्यशुं ते सैन्यशुं ते प्रिया लेइ सोय हो ॥स्वा०॥२५॥ निज न यरें निजनयरें पोहोतो ते नृपतिजी, गुरु पासें गुरुपासें सुणी उपदेश हो ॥ शुनन्नावें शुनन्नावें धर्म अंगीकरे जी,श्रावकनां श्रावकनां व्रत धरे देश हो ॥ स्वा०॥२६॥ चिंतामणि चिंतामणि पाम्यो हुं मानतो जी, वंधादिक वंधादिक पाम्यो जेह हो ॥ ते आपद ते आपद तत्त्वथी संपदा जी, धर्मपाम्या धर्म पाम्याथी माने तेह हो ॥ स्वा० ॥२७॥ रतिप्रीति रतिप्रीतिशुं काम परें रमे, जी, दोय नारी दोय नारीशुं कुमर विलास हो ॥ मूल अनिधा मूल अनि धा कोइ जाणे नहीं जी,गुणथी कहे गुणथी कहे नाम ते तास हो ॥स्वा०॥ ॥२८॥दानलीला दानलीला धन ठकुराइथी जी,बलरूप बलरूप कला गुणग्रा म हो ॥ लोक क्षत्रीनुं लोक क्षत्रीनुं तेज देखी घणुंजी,कहे क्षत्र कहे क्षत्र वै श्रवण ते नाम हो ॥ स्वा० ॥२९॥ बहुमित्र बहुमित्र स्नेही थया कुमरनेंजी, नक्तिवंतो नक्तिवंतो सहु परिवार हो ॥ लोक रीझे लोकरीझे देखी एहनी जी, लखमीनें लखमीनें पर उपगार हो ॥३०॥ एम चोथे एम चोथे खंमें तेत्रीशमी जी,ढाल पूरी ढाल पूरी थइ चोथे खंम हो ॥ सत्यविजय सत्यविजय पन्यास संवेगीया जी,ज्ञानक्रिया ज्ञानक्रिया जास प्रचंम हो ॥ स्वा० ॥ ३१ ॥ तस शिष्य तस शिष्य कपूरविजय कवि जी,क्षमाविजय क्षमाविजय ते तेहना

सहुनें मुख सहुने मुख वाध्यां नूर हो ॥ स्वा०॥ ७ ॥ आवी कमला आवी कमला राणी ते सुणी जी,विजय सुंदरी विजय सुंदरी प्रणमे पाय हो ॥ मातानें मातानें हर्षे आलिंगती जी, आंसु आवे आंसु आवे हर्षे जराय हो॥ स्वा०॥ए॥ जन्म सफलो जन्म सफलो आज अमारडो जी, थया पूरा थया पूरा मनोरथ आज हो ॥ गई आपद गई आपद सुख संपद मली जी,आज सीधां आज सीधां सघलां काज हो ॥स्वा०॥१०॥ सासूनें सासूनें कुमर नमे वली जी, आशीष दीये आशीष दीये बहु सास हो ॥ लही कुमर लही कुमरनी आणनें पुत्रीशुं जी,पोहोती ते पोहोती ते निज आवास हो ॥स्वा०॥ ॥ ११ ॥ सहु देखी सहु देखी शीश धूणावतां जी, हवे कमल हवे कमल प्रज राजान हो ॥ मंमाव्यो मंमाव्यो उत्सव नयरमां जी, जेट लेवे जेट लेवे देवे दान हो ॥ स्वा०॥ १२ ॥ खमावी खमावी श्वसुरनें प्रणमतो जी ॥ प्रतिबोधन प्रतिबोधन काजें कुमार हो ॥ कहे सेवक कहे सेवक अन्य राजा तुमें जी, तुमें दाता तुमें दाता अन्य याचनार हो ॥ स्वा० ॥ १३ ॥ फल पुण्यनें फल पुण्यनें पापनां ए सवे जी,घरलखमी घरलखमी याचक करे शंस हो ॥ हृदयें बुद्धि हृदयें बुद्धि शरीरें सौजाग्यता जी,यश दश दिश यश दश दिश बल होय अंश हो ॥स्वा०॥१४॥ एह जिनना एह जिनना धर्मेशुं फल अछे जी,नीच कुलमां नीच कुलमां जन्म दोनाग्य हो ॥ रोगनिर्धन रोगनिर्धननें कुकुटंबता जी,वध अपजश वध अपजशनें नहीं ताग हो ॥स्वा० ॥ १५ ॥ अणवाहलां अणवाहलां सहेजें आवी मले जी, वाहालांनो वाहालांनो थाय वियोग हो ॥ ए पाप ए पाप तणां फल देखजो जी, परानवनें परानवनें वली बहु शोग हो ॥स्वा०॥१६॥ विपुलाशय विपुलाशय शास्त्रना जाणछो जी, सुकुलीना सुकुलीना अतिय विवेक हो ॥ करो सफलो करो सफलो नव जिनधर्मेथी जी, इह परजव इह परजव जिनधर्म छेक हो ॥स्वा०॥१७॥ पुण्यनां फल पुण्यनां फल पामी तुम सुताजी,तुमें दीठुं तुमें दीठुं नयणें साक्षात हो ॥ हवे करवी हवे करवी ढील न धर्ममां जी,नृप बोले नृप बोले सत्य ए वात हो ॥स्वा०॥१८॥ प्रतिबूझ्यो प्रतिबूझ्यो तुम वयणथी जी,गुरुपासें करुं गुरुपासें अंगीकार हो ॥ मत करजो मत करजो संशय एहमां जी, धन्य तुमनें धन्य तुमनें कहे कुमार हो ॥ स्वा० ॥ १९ ॥ आपदायें आपदायें पण बूझे नहीं जी, डुर्जननें डुर्जननें कहे बहु वार

आ० ॥ एम बावन चैत्यो चौमुखांजी ॥ ३ ॥ एकसो चोवीश जिनजाण, एक एक देहरे जाण, आ० ॥ अडतालीशनें चोशठ सयांजी ॥ ४ ॥ शोल अठे वली नइ, सोहम ईशान जे इंड, आ०॥ अड अड तस अग्र महीषी नाजी ॥ ५ ॥ शोल प्रासाद वली तेह, प्रणमो आणी नेह, आ० ॥ शोना तस केती कहुंजी ॥ ६ ॥ आगममां विस्तार, कहेतां नावे पार,आ०॥ मान प्रमाण तणो बहुजी ॥७॥ अठाइ महोत्सव त्यांहि,करशे अति उत्साहि, आ० ॥ चैत्रमास ठे ते वतीजी ॥ ८ ॥ मलशे सुरनां वृंद,तिम विद्याधर इंड, आ० ॥ उत्सव महोत्सव बहु थशेजी ॥ ए ॥ अठाइनुं पर्व, विद्याधर सुपर्व, आ० ॥ शाश्वतुं जाणी आराधशेजी ॥ १० ॥ धन्य तेह नर नार, शाश्वतुं पर्व ए धार, आ० ॥ त्रिकरण शुद्धें आराधशेजी ॥ ११ ॥ ते कारण ए लोक, जाये जिनवर उंक, आ० ॥ सांनली कुमर ते चिंतवेजी ॥ १२ ॥ क्रीडायें काढुं काल, हुं पण प्रणमुं दयाल. आ० ॥ घर जइ नारीनें एम कहेजी ॥ १३ ॥ वृद्ध नारीशुं दोय, चित्त समाधि जेणें होय, आ०॥ करजो धर्म कथा सदाजी ॥ १४ ॥ नंदीश्वरनी यात्र, करवा निर्मल गात्र, आ० ॥ विद्याधर साथें जशुंजी ॥ १५ ॥ रहेजो तुमें सुखमांहिं, तुरत आवुं हुं आंहिं, आ० ॥ साथ जाये ठे उतावलोजी ॥ १६ ॥ नक्ति विनयथी ताम, माने वचन दोय वाम, आ० ॥ बेशी पल्यंकें चालीयोजी ॥ १७ ॥ खेचर उंचा जाय, कुमर पल्यंक खलाय,आ०॥ जंबूद्वीपनी जगतीयें जी ॥ ॥ १८ ॥ जाणे धर्म अंतराय, कुंअर मन खेदाय, आ० ॥ गगनगामिनी इबतो जी ॥ १ए ॥ विद्या जो होय पास, जाउं मन उल्लास, आ० ॥ एम चिंती पाठो वल्यो जी ॥ २० ॥ एक नगर उद्यान, चैत्य सोवन शुजवान, आ० ॥ मणिकलशें गगनें अडयुंजी ॥ २१ ॥ तीर्थ उल्लंघन थाय, आशातना चित्त लाय, आ० ॥ उतस्यो हेठो धरतीयेंजी ॥ २२ ॥ चैत्यमां पेठो तेह, विधिपूर्वक ससनेह, आ० ॥ रयणमयी रूपन प्रजुजी ॥२३ ॥ देखी करे परणाम, स्तवना करे अनिराम, आ० ॥ रोम रोम तनु उल्लसेजी ॥२४॥ पांचमे खंमें ढाल,नांखी प्रथम रसाल,आ०॥ पद्मविजय पुण्यें करीजी॥२५॥

॥ दोहा ॥

॥ चैत्य बाहेर चित्त चमकतो, नीकलीयो निरधार ॥ देखे तिहां दृष्टें करी, रूडा राजकुमार ॥ १ ॥ वीणा वंश करे वरु, रसिकनें रसनुं नाण ॥

शिष्य हो ॥ जिनविजय जिनविजय विबुधवर तेह्ना जी,जस जगमां जस जगमां चढती जगीश हो ॥स्वा०॥२१॥ तस शिष्य तस शिष्य उत्तमविजयो ज यो जी,सिद्धांत शिरोमणि सिद्धांत शिरोमणि सार हो ॥ तस सेवक तस सेवक पद्मविजय कहेजी, सुणतां होय सुणतां होय जयजयकार हो ॥स्वा०॥२२॥

॥ इतिश्रीमदुत्तमविजयगणि विनेय पंमित पद्मविजय गणिविरचिते श्री श्रीजयानंद केवलिचरित्रे प्राकृतप्रबंधे गगनगतिपल्यंकवलसकलत्रकमलपुर प्राप्ति कमलप्रन्ननृपपुत्राद्युपकारस्वपुत्रीविजयसुंदरीपितृपद्मरथजयपूर्वकप्र तिबोध कमलसुंदरीपरिणयन वर्णनोनामा चतुर्थः खंमः समाप्तः ॥ खंम त्रण मलिने गाथा ॥२१२७॥ चतुर्थखंमे गाथा ॥७७६॥ सर्वगाथा ॥२०१५॥खंम त्रय उक्तश्लोक ॥४३॥ चतुर्थे उक्तश्लोक ॥१०॥सर्वे थइ उक्त श्लोक ॥ ४७ ॥ सवइयो एक,समस्या एक,दोहो एक,सर्वढाल ॥१०४॥ चतुर्थखंमः संपूर्णः॥

॥ अथ ॥

॥पंचमखंम प्रारंनः॥

॥ दोहा ॥

॥ नंदीश्वर प्रमुखें नमुं, शाश्वतजिन शुन ध्यान ॥ रुषन चंडानन रु ष्ठडा, वारिषेण वर्द्धमान ॥१॥ पंचम खंम प्रेमें करी,श्रोता सुणो सुजाण॥ आगें आगें रस अवल, चिंत्तमां जूउ पहिचाण ॥ २ ॥ एकदिन क्रीडा उ द्यानमां, क्रीडा करवा काज ॥ मानिनीनें निज मित्रशुं, सघलो लेइ साज ॥ ३ ॥ दीठा तिहां विद्याधरा, मानातीत विमान ॥ देवपरें तिहां देखतो, आकाशें असमान ॥ ४ ॥ किहां जाये कोडथी गमे, चित्तमां करे विचार॥ एक विद्याधर आवीयो, वावीमां पीवा वारि ॥५॥ पाणी पाय प्रिया प्रत्यें, तव जइ तिहां कुमार ॥ पूछे तेहनें प्रेमशुं,कहो ए किश्यो विचार ॥ ६ ॥ कहो जाये केणे कारणें, एवडा खेचर एह ॥ तेह कहे तुमें सांजलो, जि ण कारण जाय जेह ॥ ७ ॥

॥ ढाल पहेली ॥ आठे लालनी देशी ॥

॥ द्वीप नंदीसर नाम, आठमो ते अनिराम,आठे लाल ॥ बावन चौमु खें सोहतो जी ॥ १ ॥ चार दधिमुख सार, एक अंजनगिरि धार, आ०॥ रतिकर आठ मनोहरु जी ॥ २ ॥ एकदिशें ए तेर,चिहुं दिशें नहीं कांइ फेर,

मरी आगल सहु खलीया हो राज ॥ सां० ॥ १९ ॥ ते कुमरोनें शीखवा सारु, नृपें धन आप्युं अति वारू, उपाध्याय यथा देदारू हो राज ॥सां०॥ ॥ २० ॥ कहे क्षत्रि कुमार शीखावो, उद्यानमां जाइ रखावो, पण लोकनें घणुं न देखावो हो राज ॥ सां० ॥ २१ ॥ तेणें उद्यानें उपाध्याय, शिखवे छे कला इणे गाय, अन्यास शुवान कराय हो राज ॥ सां० ॥ २२ ॥ म हीनें महीनें नूपाल, परीक्षा करे सुविशाल, कुमरी आगें सहु बाल हो राज ॥ सां० ॥ २३ ॥ केइ शीखतां नागा जाय,केइ शीखवानें स्थिर थाय, तेणें गत आगत करे न्याय हो राज ॥सां०॥ २४ ॥ तुमें पूछो ते में नांखी, कांहीं नवि ऊणीम राखी,कुमर पण थाय अभिलाखी हो राज ॥सां०॥२५॥ पल्यंक छव्यो गुप्त ठामें, वज्रादिक आयुध वामें, कौतुक करवानें कामें हो राज ॥ सां० ॥ २६ ॥ औषधीथी वामण रूप, लोकनें होय हास्य सरूप, अलंकारनें वस्त्र अनूप हो राज ॥ सां० ॥ २७ ॥ पाठकनें कीध प्रणाम, आ शीष दीधी तेणें ताम, पूछे पाठक हवे आम हो राज ॥सां०॥ २८ ॥ खंम पांचमे बीजी ढाल, कही पद्मविजय सुरसाल, सुणतां होय मंगलमाल हो राज ॥ सां० ॥ २९ ॥ सर्व गाथा ॥ ६४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कोण छो आव्या किहांथकी, शे कामें कहो साच ॥ पाठक एम पूछे थके, वामन बोले वाच ॥ १ ॥ नयर देश नेपालमां, विजय पत्तन वर नाम ॥ क्षत्रीय अंगज हुं खरो, वामन कर्म ए वाम ॥ २ ॥ कुंकुणक नाम कह्यो मुनें, यौवन पाम्यो जाम ॥ कला नहीं कोइ मुज कनें, धन तो तातने धाम ॥ ३ ॥ कोइ न दीये कन्या कदा, वामन रूप विचार, पण तातनें प्रिय अति घणो, आप्या वस्त्र अलंकार ॥ ४ ॥ कला ग्रहण कामें चल्यो, आव्यो फरतो आंहिं ॥ नाट्यादिक मुजनें कला, आपो धरी उत्साहिं ॥ ५ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ थारा माथा उपर मेह, ऊबूके वीजली हो लाल ॥ ऊबूके वीजली ए ॥देशी॥

॥ तेह सुणीनें राज, कुमर हसता सहु हो लाल ॥ कु० ॥ अहो अहो आव्यो छात्र, नाग्य गुरुनुं बहु हो लाल ॥ना०॥ एहनें नणावे नूप, कन्या देशे खरी हो लाल ॥क०॥ तेहथी संतोष दान, देशे गुरु घर नरी हो लाल ॥ दे० ॥ १ ॥ कन्या केरुं नाग्य, घणुं ए वर मल्यो हो लाल ॥घ०॥ ए

करे अभ्यास कला तणो, गीत नृत्य गुण जाण ॥ २ ॥ जाणुं गंधर्व जन मल्या,जाता आवता जाण ॥ पूछे कोइक पुरुषनें,कहो इहां किश्युं मंडाण॥३॥

॥ ढाल बीजी ॥ सत्तरमुं पापनुं थान ॥ ए देशी ॥

॥ कहे पुरुष ते सांभलो वाण, लखमीपुर नयर ते जाण, उपमान न ही कोइ गाण हो राज ॥ १ ॥ सांभलो वयण रसालां ॥ ए आंकणी ॥ छे श्रीपतिनामें राय, देखी वक्रराइ अचरिज थाय, श्रीपति पण लाजें नराय हो राज ॥ सां० ॥ २ ॥ त्रण कन्या तेहनें थाय, तेहनी जूदी जूदी माय, नरप तिनें आवे दाय हो राज ॥ सां० ॥ ३ ॥ स्त्री सर्वेनुं लेइ परमाणुं, सारसा रथी ए घडी जाणुं, तेणें सर्व स्त्री लाजनुं गाणुं हो राज ॥ सां०॥ ४ ॥ पूर्वे पुण्य उंबुं कीधुं, तेणें एहनुं रूपं न सीधुं, देवी चिंतवे दान न दीधुं हो राज ॥ सां० ॥ ५ ॥ फरी लहीयें मनु अवतार,तप दान दीजें अपार, एहवुं रूप लहीयें निरधार हो राज ॥ सां० ॥ ६ ॥ विप्र नामकला विलास, कला वेदि अनुत्तर खास, जैनधर्ममां मति छे जास हो राज ॥ सां० ॥ ७ ॥ गंभीर घणो गुणवंत, धन आपी तस नृकंत, भणवा कुमरी दिये खंत हो राज ॥ सां० ॥ ८ ॥ जैनधर्मी मातनें तात, उपाध्याय जैन विख्यात,जैनधर्मी कुमरीयो थात हो राज ॥ सां० ॥ ए ॥ भणी थोडा दिनमां तेह, ते प्रज्ञानुं मानुं गेह, त्रण रूपें सरसती एह हो राज ॥ सां० ॥ १० ॥ पहेली नाटयकलानी धार, नृप नाम दीये श्रीकार, नाटयसुंदरी जगमां सार हो राज ॥ सां० ॥ ११ ॥ नाटकथी जीते कोय, वली जैनधर्म जग होय, वरुं करीय प्रतिज्ञा सोय हो राज ॥ सां० ॥ १२ ॥ बीजी गीत कलायें रूडी, गीतसुंदरीनाम न कूडी, तस एह प्रतिज्ञा उंडी हो राज ॥ सां० ॥ १३ ॥ जैनगीत कला मुज जीतें, वरुं तेहनें जग वदीते, करी एह प्रतिज्ञा नीतें हो राज ॥ सां० ॥ १४ ॥ नृप नादसुंदरी दीये नाम, त्रीजीनुं अति अभिराम, तेतो वीणा नाद गुणधाम हो राज ॥ सां० ॥ १५ ॥ मुज नाद कलायें जीपे, वली जैनधर्मी अति दीपे, वरुं एह प्रतिज्ञा समीपें हो राज ॥ सां० ॥ १६ ॥ नृप पडह वजावे ताम, मुज कन्या प्रतिज्ञा आम, ए वात विस्तरी गाम गाम हो राज ॥सां०॥१७॥ निज परराज्यें दूत मूके, वात संभलावे नवि चूके, सुणी ते पण आवी ढूके हो राज ॥ सां० ॥ ॥ १८ ॥ सहु क्षत्री कुमर तें मलीया, मन गमता अभ्यासमां भलीया, कु

एह सीपारश माहारी, करो तुमें वेगशुं हो लाल ॥ क० ॥ सा पण दान वशीकृत, ठे अतिरेगशुं हो लाल के ॥ ठे० ॥ १० ॥ कहेशुं मुजपति नें तव,निज थानक गयो हो लाल के ॥नि०॥ चाडे लेइ घर दास, दासी परिवृत्त नयो हो लाल ॥ दा० ॥ जिनपूजादिक रक्त,आवे पाठक कनें हो लाल ॥ आ०॥ पाठकनें कहे नारी, सुणो तुमें एक मनें हो लाल ॥ सु०॥ ॥ ११ ॥ जेहनुं अद्भुत दान,जणावो वामणो हो लाल ॥ ज० ॥ एहवो नही दानेसरी, जन मन कामणो हो लाल के ॥ज०॥ सहु मली आपे तो पण, इण समोवड नहीं हो लाल के ॥ इ० ॥ बहु मूकी तुमें एक, जणा वो रही अहीं हो लाल ॥ ज०॥ १२ ॥ पाठक कहे नवि जगमां,कंकण ए हवुं हो लाल के ॥ कं० ॥ पूर्वें दीधुं मुजनें, ए पण तेहवुं हो लाल के ॥ ॥ ए० ॥ आप्युं नारीनें ते पण, पहेरे दोय करें हो लाल के ॥ प०॥ निज आतमनें माने, अप्सरा उपरें हो लाल के ॥ अ० ॥ १३ ॥ पाठक कहे हुं जणावीश, एहने यत्नथी हो लाल के ॥ए०॥ पण नवि समजे कांइ, बहु प्रयत्नथी हो लाल ॥ ब० ॥ सा कहे अंग लालित्यनें, स्वर वली जोइयें हो लाल के ॥ स्व०॥ नाटक गीत आवे तव, सहु मन मोहियें हो लाल के ॥ स० ॥ १४ ॥ वीणानो अभ्यास, करावो केम नहीं हो लाल ॥क०॥ पाठक कहे त्रणे चंग, वात वेगें वही हो लाल ॥ वा० ॥ तंति डुर्बल जूनुं तुंबडुं, होशे सा कहे हो लाल के॥ हो० ॥ सडीयो दंड होये ते, केणी परें निर्वहे हो लाल के ॥ के० ॥ १५ ॥ नविन वीणा देउं एम कही, एकांतें रही हो लाल के ॥ ए० ॥ शीखवे तेहनें गात्र, हांसी चित्तमां लही हो लाल ॥ हां० ॥ आव्यो परीक्षा समय, हवे सहु आवीया हो लाल ॥ ह० ॥ राय परिछद नगरनां, लोक ते चावीयां हो लाल के ॥ लो० ॥ १६ ॥ आवे पाठक गात्र, सहुशुं परवरी हो लाल ॥ स०॥ तव वामण कहे वात, सुणो एक मुज खरी हो लाल ॥ सु० ॥ आवुं तुमची साथ, पासें वेसाडजो हो लाल ॥ पा० ॥ नाटयादिक अवसरें मुज, मत वीसारजो हो लाल के ॥ म० ॥ १७ ॥ पाठक कहे तुज पास, वेगं लाजुं घणो हो लाल ॥ वे० ॥ आण करुं केम नहीं, अभ्यास कला तणो हो लाल ॥ अ० ॥ कोडी मूल्य नो हार, पाठकनें आपियो हो लाल ॥ पा० ॥ तव मान्युं सवि तेह, हर्ष बहु व्यापीयो हो लाल ॥ ह० ॥ १८ ॥ मन चिंते सवि जनमां, एहवुं न

हवुं रूप न विश्वमां,तेणें सहु जय टल्यो हो लाल ॥ते०॥ सांजली गात्रनां वयण,गुरु लाज्यो घणुं हो लाल ॥ गु० ॥ गुरु कहे पात्र कला नहीं,तुम योग्यतापणुं हो लाल के॥तु०॥२॥ करथी उतारी कंकण,पाठकनें दीये हो लाल के ॥पा०॥ लाख सवानुं देखी,ते गुरु हरख्या हइये हो लाल ॥ते०॥ शीखवे नाट्यकला गुरु तेहनें आदरें हो लाल के ॥ते०॥ पण ते कुंजार परें, मृत्तिकामर्दन करे हो लाल ॥ मृत्ति० ॥ ३ ॥ पदघातें कंपावे, पृथिवी उछले हो लाल के ॥ पृ० ॥ कंडुक परें वली गिरि, शिला परें खलजले हो लाल ॥ शि० ॥ पदना करे धबकार, तेणें जन सहु हसे हो लाल ॥ ते० ॥ शीखवतां दिन दोय, त्रण एम नीकसे हो लाल ॥ त्र० ॥ ४ ॥ खेद लही गुरु कहे तुज, नाट्य न आवडे हो लाल के ॥ ना० ॥ जण तुं गीत कहे तव, ते मुज आवडे हो लाल के ॥ते०॥ गुरु कहे तुजनें केहवुं, आवडे तव कहे हो लाल के ॥आ०॥ विकृत मुख ध्वनि करी कहे, जिम हास्यता लहे हो लाल के ॥ जि० ॥ ५ ॥ यतः ॥ पंच नियंठा सुरइं पविठा, कविठस्स हिठा, तउ संनिविठा ॥ पंमिअं कविठं जग्गं एगस्स सीसं, अघो हसंती किल तीह सेसा ॥१॥ पूर्वढाल ॥ सांजली गीतनें गात्र,सहु खडखड हसे हो लाल ॥स०॥ अहो अहो गीतनें गाननुं, माहापण चिंतवसे हो लाल ॥मा०॥ एणे गीतें नृप कुमरी, परणशे एहनें हो लाल ॥ प० ॥ अधिक जण्यानुं काम, ते शुं छे जेहनें हो लाल के ॥ ते० ॥ ६ ॥ तो पण अधिक दानथी,पाठक हरखता हो लाल के ॥ पा० ॥ ग्राम रागादिक यत्नथी, तेहनें वरखता हो लाल के ॥ ते० ॥ पण नवि समजे कांइ,घणे यत्नें करी हो लाल ॥ घ० ॥ खेद लही दृण षट दिनें,गुरु कहे हितधरी हो लाल ॥गु०॥७॥ वीण कला तुम शीखवुं, ल्यो वीणा करें हो लाल के ॥ ल्यो० ॥ एम करी शीखवे वीण, कला गुरु गुनपरें हो लाल ॥ क० ॥ ततदृण त्रूटी तांत. बीजी वीणा दीये हो लाल ॥वी०॥ नाख्युं तुंबडुं जांजी, तदा त्रीजी लीये हो लाल ॥ त०॥ ८ ॥ दंम जाज्यो त्रीजी वार,गुरु तव कुःख धरे हो लाल ॥गु० तुजनें न आवडे कांइ, वीसर्ज्यो ततपरें हो लाल ॥ वी०॥ चाल्यो कलागुरु गेह,-पाठकणीनें मल्यो हो लाल ॥ पा०॥ कंकण आपी अन्य, हेजें ते हशुं हल्यो हो लाल ॥ हे० ॥ ए ॥ पामी विस्मय ताम, पूछे कारण किश्युं हो लाल ॥ पू० ॥ ते कहे तुजपति मुज्क, जणावे नेहशुं हो लाल ॥ ज०॥

नाटयसुंदरी, नाचवानें काम ए ॥ चित्त हरती विश्वनां तिहां, जाणना मद गालती ॥ नाटक विविध प्रकार करती, कुमर दोष देखावती ॥ ६ ॥ढाल॥ नासा अधरनें रे, नयन तारा पयोधर वली ॥ चलावती रें, तेमज कपोलनें सलसली ॥ देखी विपरीत रे,कपोल नयन तारा नंग ए ॥ वामन तव रे, वारें तुमुल उछरंग रे ॥ ७ ॥ त्रुटक ॥ बोले वामन सुणो सुंदरी, प्रथम शास्त्र रीतें कर्युं,पढी तो विपरीत कीधुं,नयन तारा नंग धर्युं ॥ एहवो नाव शास्त्रें कह्यो ढे, तव चमकी कहे सा सुणो ॥ नरतशास्त्रें विधि कह्यो ढे, एहमां दोष न को गणो ॥ ८ ॥ ढाल ॥ कहे वामन रे, मत कहो एहवी वात रे ॥ कंठे माहरे रे, नरतशास्त्र आयात रे ॥ मुनि नरतें रे, नवि नांख्यो ए नाव रे ॥ तेहना श्लोक रे वामन बोल्यो ताव रे ॥ ए ॥ त्रुटक ॥ तव कहे सुंदरी न्रांति थइ हशे, वामन कहे होये नहीं ॥ न्रांति सूक्ष्म विज्ञानमांहि,पण जाणुं एण विध सही ॥ परीक्षार्थें कर्युं एणी परें, पण सन्नामां मृग वसे ॥ नहीं सूक्ष्म विज्ञान ज्ञाता, जे देखी हैडुं हसे ॥१०॥ढाल॥ लोक नांखे रे,गुरु अनुग्रह एहनें अढे, नाटयसुंदरी रे, दोष निहाली निज पढें ॥ करे नाटक रे,नह्याग्रें धरी फूल रे ॥ उपर नाचती रे, वात घणी अमूल रे ॥ ११ ॥ त्रुटक ॥ कला करीनें सर्वे जीत्या, जय जय रव तव उछल्यो, वर चिंतातुर नृप बोले, उपाध्यायजी सांनलो ॥ परीक्षा विण कोइ तुमचो,ढात्र ढे के नहीं हवे ॥ हवे दानप्रीणित कहे पाठक,एह वामन संनवे ॥ १२ ॥ ढाल ॥ नृप चिंतवे रे, वामनमां नवि संनवे ॥ कदी संनवे रे, मत जीतो कोइ कैतवें ॥ मुज पुत्री रे, वामननें वरशे कदा, डुःख थाशे रे, मुज मनमांहे बहु तदा ॥ १३ ॥ त्रुटक ॥ तोहे संदेह टालवानें, वामननें आणा करी ॥ नाटयकला जो जाणतो होये, तो उठो चित्तमां धरी ॥ बुजुक्षितनें जेम परमान्नें, निमंत्रणा कोइ करे ॥ वामन नाटक करण उठे, हर्ष हैयडे अति धरे ॥ १४ ॥ ढाल ॥ कला सघली रे, करी हवे शी करशे कला ॥ नथी मृत्तिका रे, खुंदशे एम चिंतवे खला ॥ हांसी करतां रे,केइक नांखे एणी परें ॥ ढो नाचतो रे,शाने निषेधो परपरें ॥१५॥ ॥ त्रुटक ॥ हास्य थाशे लोकनें घणुं, वगोवाशे ए खरो ॥ ते सुणी वामन सहु उवेखी, नाटय करवा तत्परो ॥ पंच परमेष्ठी नमीनें, गायन वादक मानवी ॥ परीक्षा करी सङ्ग करतो, कला करवा अजिनवी ॥ १६ ॥ ढा

पामीयो हो लाल के ॥ ए० ॥ ते एणें एक पलकमां, मुजनें धामीयो हो लाल के ॥ मु० ॥ ए आश्चर्य सहित गुरु वामन लेइनें हो लाल के ॥ वा० ॥ वेग परीक्षा मंमपें. आशीष देइनें हो लाल के ॥ आ० ॥ १९ ॥ नृपना कुंवर सवे राज, वर्णीय आवीया हो लाल के ॥ व० ॥ निज निज परिछद लेई, कन्या चित्त नावीया हो लाल ॥ क० ॥ वारे तव कोलाहल, नृप आणा लही हो लाल के ॥ नृ० ॥ कहे प्रतिहार सुणो सना, लोक आव्या अहीं हो लाल के ॥ लो०॥ २०॥ नाट्यकला निज दाखवी, जीते जे कुंअरी हो लाल ॥ जी० ॥ तेहज परणे नृपनी, ए नाट्यसुंदरी हो लाल के ॥ ए० ॥ पंचमे खंमें ढाल, त्रीजी ए मन वसी हो लाल ॥त्री०॥ पद्मविजय कहे सांनलो, नविजन उह्लसी हो लाल के ॥ न० ॥ २१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ सामग्री सवि साथ लइ, आव्या कुमर अनेक ॥ एक एकथी अधिक रस, विज्ञानी सुविवेक ॥ १ ॥ नाचे नव नव नांतशुं, कौतुककारी केम ॥ वरणवीयें वयणें करी, पण कहुं कांइक प्रेम ॥ २ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ एकवीशानी देशी ॥

॥ढाल॥ एक नाचे रे, धनुष पणछ उपर रही ॥ एक नाचे रे, खड्ग धारा उपर सही ॥ कोइ बाणाग्रें रे,कोइ नह्लाग्रें जाणीयें ॥ हवे कोइक रे, जल नाजन शिर आणीयें ॥ १ ॥ त्रुटक ॥ आणी जलनें हाथ गोलक, चलावे तेम पगथकी चक्र नमाडे नाच करतो, हस्तादिकें सहु रह्या चकी ॥ को इक करनें दंत मांहे, खड्ग त्रण ग्रही करी, किरणें करीनें न्रमण करतो, अलातपरें चित्तमां धरी ॥ २ ॥ ढाल ॥ कोई अधोमुख रे, ऊर्ध्वपादें मुश लां धरे ॥ रमतां तिहां रे,गोल नचावे निज करें ॥ निज मस्तके रे, नाटक करतो एणीपरें ॥ खड्ग नमाडे रे, कोइक मेली दोय करें ॥ ३ ॥ त्रुटक ॥ वली पादांगुलें चक्र फेरवे, शिर धरी जल नाजनं ॥ बिहुं खंध उपर दीपि का धरी, नालीयें नूंगल वादनं ॥ मणि व्रात जीव्हाग्रें परोवे, करे नाटक एणीपरें,राय प्रमुख सहु लोक देखी,शिर धूणी शंसा करे ॥४॥ढाल॥ हस्त कादिकें रे,नाट्यसुंदरी विपर्यास रे ॥ देखावे रें,दूषण तेहमां तास रे ॥ वा मन पण रे,मुख मरडे करे हास्य रे ॥ रूडुं कीधुं रे,तुम सम कोण करे खा स रे ॥५॥ त्रुटक ॥ हवे सुंदर वेष धरीनें, नूप आणा पामी ए ॥ सामग्रीशुं

मंदादिन्नेदतः॥ तस्याश्छिद्रकसंस्पर्शे, वर्शेनोत्पद्यते किल ॥२॥एवं वेणोपि वीणाया, नालशुद्धिस्तु वर्जनात् ॥ शल्यादीनां तथा तुंब, शुद्धिर्वृत्तादिकैगु णैः ॥३॥ तंत्रीशुद्धिर्वलिस्नायु, वालाद्युचिततत्कृतेः ॥ इत्यादि वेणुसारंगी, त्रिसर्यादिष्वपीष्यते ॥ ४ ॥ दोहा॥ इत्यादिक शास्त्रे अति,विस्तर ले व्याख्या न ॥ केतुं कहियें इहां कह्यो, गांधर्वनुं सुणो गान ॥ ए ॥ नहीं डुर्बल शूलज नहीं, गल मुख रोग न होय॥ यौवन मुदित निरुज वली,कहियें गायन को य ॥ १० ॥ तिल कलमाषने तेल गुड, खाय नहीं वली खाय ॥ साकर दू ध संगत पिये, गहगही तेहज गाय ॥ ११ ॥ सात प्रकारें स्वर वली, त्र ण ग्राम वली तह ॥ ग्रामें ग्रामें सग गणो ॥ एकवीश मूर्बना एह ॥१२॥ साते षटरागें सहित, एम वेंतालीश एह ॥ श्रीरागादिक षट सवे, रागिणी षट्क करेह ॥ १३ ॥ षट्रागिनी षटत्रीश होय,रागिणी रंग मजार ॥ नेद घणा तेहमां जाणो,अनिनव होय विचार ॥ १४ ॥ अनुक्रमें हुं जणियो अ बुं, कालें ते कहेवाय ॥ प्रायें निंदा स्तुतिपणें, गीत सकल गवराय ॥१५॥

॥ ढाल पांचमी ॥ राग सारंग ॥ हम मगन जए प्रन्नुध्यानमां ॥ ए देशी ॥

॥ सहु मगन जए तस गानमां,सज्जन मुख निंदा नवि होवे, शुं कहि यें ते मानमां ॥ स्तुति पण द्विविध ठता अठता गुण,ते सुणजो सहु शान मां ॥ सहु० ॥ १ ॥ विवाहादिक कारणें अठता,गुण गाये अनिमानमां ॥ ते पण मरयादोषथी सज्जन, नवि नांखे निज वाणिमां ॥ सहु० ॥ २ ॥ अठता गुण केइ विविधप्रकारें, गावे देव अज्ञानमां ॥ केइक अंगना धरे उ त्संगें, केइ धरे शस्त्र पाणिमां ॥ स० ॥ ३ ॥ केती वात कहुं अज्ञानकी, द ष्टिरागना तानमां ॥ बुधजन अंगीकरे नहीं कोई, सम्यक् दृष्टि ज्ञानमां ॥स०॥ ॥ ४ ॥ अरिहंत शासनमां जे नीरागी,जेह ठता असमानमां ॥ ते गुणथी पावन जीह्वा करुं, सांजलो तुमें सहु कानमां ॥ स० ॥ ५ ॥ दोष अढार रहित जे देवा, गुरु निस्पृह रह्या ध्यानमां ॥ एम कही सहुनी हांसी अ वगुणी, निज सम पुरुष ले तानमां ॥ स० ॥ ६ ॥ वामन गीत गाये ह वे एहवां, अधिक सुधारस पानमां ॥ हाहा हूहू देव गायन जे, श्रोतानें करे अपमानमां ॥ स०॥ ७ ॥ एक ध्यानें सवि लीन थइनें, श्रोता रहे ते णे टाणमां ॥ उत्कृष्ट रसें गान थयुं तव,निड़ा लही अचानमां ॥स०॥८॥ नृप प्रमुखनां शस्त्र अलंकृति, लेई मूक्या कोइ थानमां ॥ वली हांसीका

ल ॥ सामग्री युत रे, विश्वमोहन नाटक करे ॥ जल ताकता रे, मात्र अनेक परें परें ॥ पण दूषण रे, हस्तकादिकमां नवि लहे ॥ एक चित्तें रे, जोवे सना चित्त गहगहे ॥ १७ ॥ त्रुटक ॥ करी नाटक वली जलाग्रें, फूल उपर सूची धरी ॥ तेह उपर कुसुम उपर, नाचतो रंगें करी ॥ वामेतर दा दश किरण दिये, आंखे फूल लीये तदा ॥ हर्षे बोले सहु सना तिहां, जी त्यो जीत्यो ए सदा ॥ १८ ॥ ढाल ॥ जय जय रव रे, वाजित्र नाद बहु थया ॥ वंदि बोले रे, गायन गीत तत्पर नया ॥ अर्थीनें रे, दान दीये अडलक पणे ॥ नाट्यसुंदरी रे, रीजी लही कौतुक घणे ॥ १९ ॥ त्रुटक ॥ नाट्य सुंदरी वरे वामन, देव कहे साधु वखुं ॥ नृप चिंतवे खेद धरीनें, हे हे देव अवखुं कखुं ॥ एणे वामन वखो हवे दोय, राजकुमरनें जो वरे ॥ प्रतिहारनें हवे तुमुल रोकी, एणी परें आज्ञा करे ॥ २० ॥ ढाल ॥ नृप आणथी रे, कुमारोनें एणी परें उच्चरे ॥ गीतसुंदरी रे, एह कलामां सहु धुरें ॥ जेह जीते रे, कर ग्रहण एहनुं करे ॥ गीतकुशला रे, सांजली जैनधर्मी शिरें ॥ २१ ॥ त्रुटक ॥ सांजली जिन सामग्री संयुत, गावे अतिहर्षे करी ॥ चोथी ढाल ए खंम पंचम, पद्मविजयें चित्त धरी ॥ नांखी जे जे रसें गावे, तन्म यता सघला थया ॥ जाण पुरुष ते गीत लीना, नूख तृषादिक गत नया २२

॥ दोहा ॥

॥ चडते रस ते चतुर नर, गातां विरम्या गीत ॥ निजपुत्रीनें नरपति, प्रे रे धरतो प्रीत ॥ १ ॥ गीतसुंदरी हवे गायतां, मनुज थया रसमग्न ॥ नि द्रा पाम्या नर सवे, अतिमूर्छित जेम अज्ञ ॥ २ ॥ संकेतित दासी सवे, आ युध प्रमुख अपार ॥ नृपादिकना नली परें, लेइ गोपवे लगार ॥ ३ ॥ गाइ रही गीतसुंदरी, तव ते जाग्या ताम ॥ खड्गादिक खोले खरा, मन जाणे गइ माम ॥ ४ ॥ मान देइनें मानिनी, आपे सघला आण ॥ जय जयरव जीत्या तणो, प्रगट्यो जग परमाण ॥ ५ ॥ पूछे नृप पावक प्रत्यें, वर नवि पामी वाम ॥ वरमालाशुं वामणो, देखाड्यो उद्दाम ॥ ६ ॥ वामननें नरपति वदे, गाइ जाणे गीत ॥ तास स्वरूप कहो तुमें, राखी सखरी रीत ॥ ७ ॥ गुरुप्रसादें गीतनुं, सखरुं लहुं स्वरूप ॥ संक्षेपें तुमनें सवे, नांखुं सुणजो नृप ॥ ८ ॥ तथाहि श्लोकः ॥ गांधर्वं त्रिसमुत्थानं, तंत्रीवेणुनरोद्भवं ॥ वी णात्रिसरिका सारं, व्याख्यातंत्र्यात्वनेकधा ॥ १ ॥ रागोविजृंनमाणोनु, हृदि

कन्या जीती एम जय जय रव, लोकें कस्यो स्वयमेव ॥ तु० ॥ ६ ॥ खेद ज
हीनें राजा पूछे, उपाध्यायनें जाम ॥ पूरव परें वामन देखाडे, उपाध्याय
पण ताम ॥ तु० ॥ ७ ॥ वामन दोय मालायें रमणिक, उनो आगल आय ॥
वीणा वजाववा वामननें तव, नृपति आणा थाय ॥ ॥ तु० ॥ ८ ॥ तव वा
मन तिहां वीणा मागे, रायपुरुष तव एक ॥ वीणा आपे नृपवयणथी,
वामन कहे सुविवेक ॥ तु० ॥ ए ॥ वीणादंममांहे छे कीडो, पाम्यो कौतुक
नृप ॥ नांगीनें ते कीट देखाव्यो, सहुयें दीठो अनूप ॥ तु० ॥ १० ॥ बीजी
वीणा आपी तेहनुं, तुंबडुं कडुउं नांखे ॥ ते पण नांगी तास देखाव्युं, प्रत्य
क्ष जाणी साखें ॥ तु० ॥ ११ ॥ त्रीजी वीणा तांत मांहे छे, सूक्ष्म दे
खो वाल ॥ चोथीनो दंम जलमां नीनो, तेह रह्यो घणो काल ॥तु०॥१२॥
एम अनेक दूषवी वीणा, लीधी कोइक सार ॥ अलवे वीण वजावे वामन,
लोक लहे चमत्कार ॥ तु० ॥१३॥ शुं कानें अमृत ए वरश्युं, अथवा मूक्यो
इंद ॥ पृथिवी लोकनें सुख देवानें, ए तप महिमावृंद ॥ तु० ॥ १४ ॥ लय
आणंदें सुख अद्वैतें, निंद्रा पाम्यो लोक ॥ पूर्व संकेतित महावत गजनें, म
दिरा पाई बोक ॥ तु० ॥ १५ ॥ कान बांधीनें हाथी मूक्यो, आव्यो सना
आसन्न ॥ पण आव्यो नवि जाण्यो कोइयें, उनो रह्यो चासन्न ॥तु०॥१६॥
अंकुशनें प्रहार पडे पण, नवि चाले मगमात ॥ घात देइ देइनें थाका,
तव माहावतना व्रात ॥ तु० ॥ १७ ॥ जय जय शब्द करे तव महावत,
लोकें पण तव कीध ॥ वीणा नाद रह्यो तव सुंदरी, वरमाला गले दीध ॥
॥ तु० ॥१८॥ नादसुंदरी एम विचारे, जीताणी हुं आज ॥ फूलवृष्टि देवी
शिर करती, जय जय वामनराज ॥ तु० ॥ १ए ॥ दान दीये याचकनें
वांछित, लोक वखाणे दान ॥ अहो कलानें अहो चतुराई, वामन गुण नि
धान ॥ तु० ॥ २० ॥ गुणवंतो एहवो नें रूपें, वामन छे ए दोष ॥ विधिनें
जराजीर्णतानो ए, दोष तणो थयो पोष ॥तु०॥२१॥यतः॥ शशिनि खलु
कलंकः कंटकाः पद्मनाले, प्रियुवतिवियोगोडुर्नगत्वं सुरूपे ॥ जलधिजल
मपेयं पंमिते निर्धनत्वं, धनवति कृपणत्वं रत्नदोषी कृतांतः ॥१॥ पूर्वढाल ॥
अथवा वामन रूपें कोइक, दीसे दिव्य सरूप ॥ वादलथी जेम ढांक्यो दी
से, अद्भुत जिम दिन नूप ॥ तु० ॥ २२ ॥ वामनमां एहवा गुण न धरे,
विधि जिम अमृत सार ॥ काचा कुंनमांहे जिम न धरे, जाण पुरुष निरधा

रक नर मस्तक,मूंके जे पंच प्रधानमां ॥ स० ॥ ए ॥ वेदें रसांतर नहीं ते ह्ज रस, कोइ न जाणे तेणें करी ॥ गाई रह्यो तव चमतकार लही,जीत्यो जीत्यो कहे फरी फरी ॥ स० ॥१०॥ सहु मगन थइ कहे चित्त धरी ॥ ए आंकणी ॥ जय वाजित्र वाज्यां जय जय रव थयो,वामनें मुज कला हरी ॥ एम चिंती वरमाला नाखे, वामन गले गीतसुंदरी ॥ स० ॥ ११ ॥ नृप कुलदेवीयें बहु परशंस्यो, विहुं शिर पुष्पवृष्टि नरी ॥ निज शिर मुंमित देखी लाज्या, नाशी गया हांसी खरी ॥ स० ॥ १२ ॥ आयुध वस्त्र अलंकृति आपे,दासीयो धन आदरी ॥ दासीयो पण वामन प्रशंसे,अमनें पण एणें उध्धरी ॥स० ॥ १३ ॥ नृप चिंते हलकाइ मुज थइ, वेहु पुत्री वामन वरी ॥हरखुं जो कोइ राज्यकुमर वरे, जीतीनें नाद सुंदरी ॥ स० ॥१४॥ एम विचारी उद्घोषणा करे, वामनें वरी दोय कुमरी ॥ जीते कोइ कुमर नाद सुंदरी, सहुमां थइ अग्रेसरी ॥स०॥ १५ ॥ पंचम खंमें पंचमी ढालें, पद्म विजय उत्तम चरी ॥ श्रीजयानंदना रासमां नांख्युं, आगल सुणो श्रोता वरी ॥ स० ॥ १६ ॥ सर्व गाथा ॥ १४५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वामनें अमनें लाजव्या,एम मन आणी खेद ॥ नृप तथा कुमर नला, अधिको धरत उमेद ॥ १ ॥ नाना राग निपजावता,तेहनें नादें तेह ॥ परिहरी सर्व व्यापारनें, सना थया ससनेह ॥ २ ॥

॥ ढाल उठी ॥ तुम तो नलें बिराजोजी ॥ सिद्धाचलके ॥
॥ वासी साहेब,नले बिराजोजी ॥ ए देशी ॥

॥ तुमें तो जोजो जोजो रे,वीणाने बजावे ॥ तुमें तो०॥ सहुये अनुक्रमें तेह बजावे, सांनले सहु लय लाय ॥ एक एकथी चढीयाती वाजे, चित्र परें थंनाय ॥ तु० ॥ १ ॥ निद्रितनी परें सहुये घूमे, कोइक बजावे ताम॥ उत्कृष्टं रसें तेह कला थई, कुमर तणे परिणाम ॥तु०॥२॥ पूर्वसंकेतित महावत महागज,मूके बूटो जाम ॥ गर्ज्जारव करतो ते आवे,नाठी सना तेणें ठाम ॥ तु० ॥ ३ ॥ नादना रसथी वाहालुं सहुनें, जीवित अतिशय होय ॥ नादसुंदरीनें हवे आणा, नरपति आपे सोय ॥ तु० ॥ ४ ॥ वीण बजावे नादसुंदरी, कानें अमृत समान ॥ गज थंनाणो सना लोक पण, थंनाणा गई शान ॥ तु० ॥ ५॥ विरम्यो नाद तदा तिहां महावत,गज खेंचे ततखेव ॥

एणें एम ॥ समकालें कला दाखवी हो जाई, कन्या लीधी त्रण नेम रे, सुणो मोरा जाई ॥वा०॥२॥ फोकट पारनो श्रम कस्यो हो जाइ,जो जाणता ए वात ॥ तो आगलथी मारता हो जाई, तो उपद्रव नवि थात रे ॥ सु०॥ ॥ ३॥ हजीय गयुं कांही नथी हो जाइ, ए निराश्रय छे एक ॥ कन्या लीये ते न खमी शकुं हो जाइ, मारीयें धरी मन टेक रे ॥ सु० ॥ ४ ॥ कुल शील कोइ जाणे नहीं हो जाइ, कन्या लीये कुरूप ॥ हांसी पामीयें पंच मां हो जाइ, शुं करशे एह जूप रे ॥ सु०॥ ५ ॥ माया अपराधी एहनें हो जाइ, मारंतां नवि दोष ॥ मारंतां देखी मूकशे हो जाइ,वरमाला करी शोष रे ॥ सु० ॥ ६ ॥ करिय विचार आणा लइ हो जाइ, शूरपाल एक राय ॥ मुख्य कहे वामन प्रत्यें हो जाइ, सांजल तुं हितदाय रे ॥ सु० ॥ ७ ॥ सहाध्याय छे श्रम तणो हो जाइ, तेणें कहियें हित वात ॥ नाटक तो छे सोहिलुं हो जाइ, मर्कट मोर विख्यात रे ॥ सु० ॥ ८ ॥ कोकिल चांमालादिक घणुं हो जाइ, गाय मनोहर गीत ॥ वीण ताल वजावता हो जाइ, एतो सर्व प्रतीत रे ॥ सु०॥ ए ॥ पण राय कन्या नवि वरे हो जाइ, तेम तुं पण नहीं योग्य ॥ सुवर्ण घंटा नवि सोहियें हो जाइ, खरकंठें संयोग रे ॥ सु०॥ १०॥ क्षीर जोजन नवि श्वाननें हो जाइ, उंटगले मणिहार ॥ तेम तुजनें राजकन्यका हो जाइ,नवि सोहे किरतार रे ॥ सु०॥ ॥ ११ ॥ माला मूक ते कारणें हो जाइ, वर तुज योग्य जे नार ॥ नाटकिया परें कला करी हो जाइ,जीव तुं एणे संसार रे ॥ सु०॥ १२ ॥ अन्यथा तुज मरवुं थशे हो जाई, जाणे तुं सवि तेह ॥ तव क्रोधें वामन कहे हो जाई, सांजलो हुं कहुं जेह रे ॥ सु० ॥ १३ ॥ जाग्य कला नहीं तुम्हमां हो जाई, हजी श्र न जाणो केम ॥ कलावादें नकारा कस्या हो जाई, रणजीवित लेउं तेम रे ॥ सु० ॥ १४ ॥ मुज नारी जेह निरखशे हो जाई, तस जोशे जमराय ॥ शूरपाल कहे वामणा हो जाई, जो होंशें रण कराय रे ॥ सु०॥ १५ ॥ तो ले शस्त्र तुं हाथमां हो जाई,वामन बोले ताम ॥ सुर असुरपति जे होवे हो जाई, आघा आवो आम रे ॥ सु० ॥१६॥ शस्त्र परिश्रम तुमें कस्यो हो जाई, मुज जीतणनें काज ॥ पण चपेटो मुज हाथनो हो जाई, नवि खमी शके सुरराज रे ॥ सु०॥ १७ ॥ तो तुम शशला उपरें हो जाई, शस्त्र तणुं शुं काम ॥ ऐरावत शुंढापरें हो जाई, मुज कर शस्त्रनें ठाम रे ॥ सु० ॥१८ ॥

र ॥ तु० ॥२३ ॥ कन्यानी ए धिक् प्रतिज्ञा,धिक् विधिनिंदित काम ॥ धिक् मुजनें जेणें आणा दीधी, धिग् ए कुमर निकाम ॥ तु०॥ २४ ॥ एके क न्या रूप अनोपम, वाहाली जीवन प्राण ॥ दैवथकी वामण ए वरियो,जो कर्मादे हुइ हाण ॥ तु० ॥ २५ ॥ कांइ थयुं नें कांइ चिंतव्युं उलंघे कोण दैव ॥ दैव प्रमाणें आत्मपरिणति, चाले जेह सदैव ॥ तु० ॥ २६ ॥ य तः ॥ प्रारब्धमन्यथा कार्य,मिदं निर्व्यूढमन्यथा ॥ इदं जातमसंनाव्यं, दैवं को लंघितुं क्षमः ॥१॥ अन्नह चिंतियमाणं,उदय पतंगेण अन्नहा जायं॥ चिंतोदय विवरीयं, तम्हा नो चिंतए मुणिंदा ॥२॥ अवश्यनावेह्यऽनवग्रहग्र हाः,यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा ॥ तृणेन वात्येव तयानुगम्यते,जनस्य चि त्तेन नृशा वशात्मता ॥३ ॥ यन्मनोरथगतेरगोचरो,यत् स्पृशंति न गिरः क वेरपि ॥ स्वप्नवृत्तिरपि यत्र डुर्लना,हेलयैव विदधाति तद्विधिः॥४॥ पूर्वढाल ॥ एम चिंतातुर राजा पूछे,कला गुरुनें एम ॥ देश जाति कुल एहनी नांखो, जाणो यथारथ जेम ॥ तु० ॥ २७ ॥ पंचम खंमें उठी ढालें, श्रीजयानंदनें रास ॥ पद्मविजय कहे सुणतां होवे,घर घर लील विलास ॥ तु०॥२८ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मास मातेरो मुज कनें,आव्यानें थयो आज ॥ पूछ्युं गुरु कहे में प्र थम,कोण तुं आव्यो शे काज ॥१॥ विषय नेपाल विजयपुरें, क्षत्रीपुत्र हुं खांत ॥ कला शीखवा कारणें, आव्यो छुं एकांत ॥२ ॥ अधिक स्वरूप न एहनुं, जाणे कोइ सुजाण ॥ दिव्य अलंकरणादिकें,दानें धनद प्रमाण॥३॥ कला प्रयत्न घणुं करी, शीखवियो साक्षात् ॥ अमनें मूर्खपणुं अति,एटला दिन आख्यात ॥ ४ ॥ हमणां तो एणें होंशथी, कला देखावी कोय ॥ जे देखीनें सहु जना, चमत्कार चित्त होय ॥ ५ ॥ अलख स्वरूप ए उलखो, गुरु कहे एहनुं गूढ ॥ चतुर होय ते चिंतवे, मानवी न लहे मूढ ॥ ६ ॥ वाणी सुणी विकल्प करे, नरपति चित्त अनेक ॥ वैरी परें ए वामणो, अमनें थयो अतिरेक ॥ ७ ॥ सर्वगाथा ॥ १८२ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ जिनवचनें वैरागीयो हो धन्ना ॥ ए देशी ॥

॥ राजकुमर हवे चिंतवे हो नाई,सघला मली लही खेद ॥ वामणे आ पण विगोविया हो नाई, कीधो नाकनो छेद रे, सुणो मोरा नाई ॥ १ ॥ वामणे ठगीया वे ॥ ए आंकणी ॥ मूर्खपणुं देखावीयुं हो नाई,आगलथी

गयुं सवि नाजी ॥ सहुनें प्राण पोतानां वाह्लां,कोइ न उरयो गाजी के ॥ आ० ॥ १२ ॥ श्रीपति राजानो सेनानी,सेना नागी जाणी ॥ राय आणा यी शस्त्र नरीनें, रथ लाव्यो तिहां ताणी के ॥ आ० ॥ १३ ॥ तेहनें उठं नें वली उरया, निज निज सेना लेइ ॥ क्रोधें चडिया चंमपालादिक, युद्ध करण आव्या केइ के ॥ आ० ॥ १४॥ थंन नमाडे निज अंग पाखलि, शत्रु शस्त्र न लागे ॥ शत्रुसेना हणतो तिहां चाल्यो, पकडे सुनटनें पागें के ॥ आ० ॥ १५ ॥ चक्रपरें नमाडी उठाले, दूर पडयो तस लेई ॥ नूमि पडाडी मूर्छित कीनो,वली नर मोकले केइ के ॥ आ० ॥ १६॥ मूर्छित तेडावी चिकित्सा करे, वली कोइ रथ शस्त्रें नरियो ॥ तिहां बेशी सारथीनें प्रेरे, शत्रु सैन्यें संचरियो के ॥ आ० ॥ १७ ॥ चंमपालादिक बाण वरसता, ते नट रथनें रूंधे ॥ वामन चोक फेर वरसे शर,मानुं सुनट निज नूंधे के ॥ आ० ॥१८ ॥ हय गय नट वींधे संग्रामें, रथ नांगी धनु छेदे ॥ चंमपालनुं तुंम मुंम बिहुं, मुंमे क्षुरप्रें खेदें के ॥ आ० ॥ १९ ॥ वामन उपर खड्ग लेइनें, चंमपाल करे घात ॥ वामन वंचावी ते खड्गनें, जूंटीनें करे मुष्टिघात के ॥ आ० ॥ २० ॥ मूर्छा पमाडी तेहनें वस्त्रें, बांध्यो फकडी जाम ॥ दृढरथ कउयो वामन साथें,बाण वरसे बिहुं ताम के ॥ आ०॥२१॥ क्षुरप्रें वामन तस मुंमे, लज्जायें नागो तेह ॥ एणी परें सात मुंम करी मूक्या, नाग सहु गतनेह के ॥ आ० ॥ २२ ॥ बीजा पण कुमरोयें विचार्युं,वामणे सहुनें हणिया ॥ नहीं कोइ गरास वधारे न कीर्त्ति,मरणमां किम जाउं गणिया के ॥ आ०॥ २३ ॥ एम जाणी जीवितना इछक, नाग जीवित लेइ ॥ तास सेनानें धीरय आपे,आशासना घणी देइ के ॥आ०॥२४॥ फूलवृष्टि करे वामन उपर, व्यंतर देव रसाल ॥ पद्म कहे ए पंचम खंमें, आठमी ए थइ ढाल के ॥ आ०॥ २५ ॥ सर्व गाथा ॥ २२८ ॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीपतिराजा सज्ज हुवे, एहवुं देखी एथ ॥ आवी प्रधान आखे इयुं, कहो जाशो तुमें केथ ॥ १ ॥ एम उद्धतपणुं आचरी, आवरु जाशे आज ॥ मुंमे मस्तक वामणो, केम करो तेहशुं काज ॥ २ ॥ ए वामननें आगलें, सहु नट तृणा समान ॥ मरवानुं केम मन करो,समजण आणो शान ॥ ३ ॥ सैन्य सहित समजावशे,वामन वारु रीत ॥ शी कीर्त्ति थाशे

विक्रम ते वक्तर नलुं हो नाई, नाग्य सखाई जाण ॥ रे तुमें मुज नवि उंलख्यो हो नाई, हजीश्र लगी रो श्रजाण रे ॥ सु० ॥ १ए ॥ सातमी पांचमा खंममां हो नाई, पद्मविजयें कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां हो नाई, थाशे मंगलमाल रे ॥ सु० ॥ २० ॥ सर्वगाथा ॥ २०२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ सन्नद्ध थाउ तुमें सवे, शस्त्र लियो संग्राम ॥ कौतुक तुम पूरुं करुं, देखो तुमें उद्दाम ॥ १ ॥

॥ ढाल श्राठमी ॥ पारी रे जातनुं फूल स्वरगथी ॥ ए देशी ॥

॥ डुर्जय जाणी सहु सन्नद्ध थया, निज निज बल लेइ साथें ॥ मुंमित शिर पांच श्रावी श्रागल, टोप श्राछादित माथे कें ॥ १ ॥ श्रावो के श्रडियें के, साहामा सहु पहेलां के, हारें वाहाला श्रमें लडशुं एह साथें रे ॥ एह साथें एह साथें श्रम वयरी, देखो पराक्रम केहवुं रे ॥ ए श्रांकणी ॥ क्रोधें बलतां पांच ते बोले, एहनें हाथे हणशुं ॥ निज सेना लेइ श्राव्या ववमां, श्रमें शरम नवि गणशुं के ॥ श्रावो के० ॥ २ ॥ हांसी करतो वामन बोले, मुंमित शिर लज्जाणा ॥ श्राव्या ते रुंडुं कर्युं हवे तुम, लाज ठेडुं जाउ उजाणा के ॥ श्रा० ॥ ३ ॥ एम सांजली क्रोधें चढ्या पांचे, वरसे बाणनी श्रेणी, व्योम पूरे बीजा पण बाणें, ठाया करी मानुं तेण के ॥ श्रा० ॥ ४ ॥ वामन सिंह उठ्यो तव साहामो, पंच परमेष्टि संजारी ॥ थंन उपाडी ते मृग उपर, धाइ चोट करे नारी के ॥ श्रा० ॥ ५ ॥ गिरि शृंग परें गजनें तिहां पाडे, माहावतनें ते नमाडी ॥ पारेवा परें गगनें उछाले, केईक नूमि पछाडी के ॥ श्रा० ॥ ६ ॥ मूर्ढावंतनें दयालु न मारे, पापड परें रथ नांजे ॥ धनुष मोघर नालां श्रसिनें गदा, चूरण करतो गाजे के ॥ श्रा० ॥ ७ ॥ क्षण गगनें क्षण धरतीयें दीसे, सैन्य श्रागें क्षण मांहे ॥ क्षणमां श्रंतें रिपुबल हणतो, वीर्यवंत उत्साहें के ॥ श्रा० ॥ ८ ॥ थंन मुष्टि पदघात करीनें, सादि निषादिनें मारे ॥ पडतां उपडतां नवि लखीये, मार पडे संनारे के ॥ श्रा० ॥ ए ॥ मारवा उठ्यानें हवे वामन, घातें मूर्ढा श्रापे ॥ कक्षास्कंध पाद हय विचमां, ते पांचेनें थापे के ॥ श्रा० ॥ १० ॥ उठाली पल्लीनें ते सोंपे, मानुं थापण कीधी ॥ दासीयो पासें ते बंधावे, वली पतियें श्राणा दीधी के ॥ श्रा० ॥ ११ ॥ शीतल उपचारें जीवाड्या, सैन्य

हूउ, हवे नृपति कहे वात ॥ म० ॥ १५ ॥ जेम गुण प्रगट कस्या तुमें पोतें, तेम प्रगटावो रूपजी ॥ दाक्षिणथी ओषधी प्रभावें,कीधुं शुद्ध स्वरूप ॥ ॥ म०॥१६॥ ते देखी सहु विस्मय पाम्या,आनंद अंग न मायजी ॥ जय जय शब्द कोलाहल हूउ, वाजित्र गीत गवाय ॥ म० ॥ १७ ॥ इण अवसर कोइ दूरथी आव्यो, बंदी उलखी भाषेजी ॥ भाग्यें भमतां दीठा तुमनें, छत्र वैश्रवण प्रकासे ॥ म० ॥ १८ ॥ लखमी वरषी जग तृप्तो कस्यो, ते सुणी पूछे रायजी ॥ छत्र वैश्रवण कहो कोण भांख्यो,अम मन कौतुक थाय ॥ म० ॥ १ए ॥ तव बंदी पद्मरथ राजानी,पुत्री परणवा आदेंजी ॥ कमलप्रभ नृपालनी पुत्री, परण्या लगें अविवादें ॥ म० ॥ २० ॥ चित्रकारी चरित्र कह्युं सघलुं, तव सहु करे विचारजी ॥ आपण नवि हास्या पामरथी,एतो मोहोटो कुमार ॥ म० ॥ २१॥ सहु भेला मली कुमरनें कहे, अपराध कीध अजाणेंजी ॥ ते खमजो अपराध तुमारुं, कोइ स्वरूप न जाणे ॥ म० ॥ २२ ॥ कुंवर पण अपराध खमावे, प्रीति वधि मांहो मांहिजी ॥ कन्या एह स्वरूप देखीनें,हर्ष धरे उत्साहिं ॥ म० ॥ २३ ॥ नृपति निज चित्रशालामांहि, देइ परिवारनें राखेजी ॥ एक दिन पाणीग्रहणनें हेतें, नरपति एणी परें भाखे ॥ म० ॥ २४ ॥ पाणीग्रहण करो कन्यानुं, कुंवर कहे तव वाणीजी ॥ माहारे नाही प्रयोजन एहनुं,माहारे छे बहु राणी ॥ ॥ म० ॥ २५ ॥ कलाकरण रणजय तो केवल, कौतुकथी में कीधुंजी ॥ अण जाणे कुलें पुत्री देवी, ए नवि किहांये प्रसिद्धुं ॥ म० ॥ २६ ॥ कलावंत कोइ राजकुमरनें, कन्या आपो एहजी ॥ एहनी पण महेनत थाये सफली, तव नृपति कहे तेह ॥ म० ॥ २७ ॥ रुडुं कस्युं एम देवीयें भाख्युं, प्रतिज्ञा पण पूरीजी ॥ बलात्कारथी एम मनावी, विघ्न सवे चकचूरी ॥ म० ॥२८॥ शुभलगनें परणावे त्रणे, महामहोत्सवथी रायजी ॥ गज रथ घोडा पायक आपे, सुंदर मंदिर ठाय ॥ म०॥२ए॥ घर वाखरो वली देश ते आपे, क्रीडा करे स्त्रीसंगेंजी ॥ साते क्षेत्रें धन ते वावरे, देव गुरु पूजे रंगें ॥ म०॥३० ॥ आय प्रमाणें वय ते करतो,एहनां पुण्यथी वाधेजी॥ राज्य राजानुं जन गुण गाये, नित्य नित्य एम आराधे ॥ म० ॥ ३१ ॥ परदेशें पण जयश्री पामे, पुण्यवंत जे प्राणीजी ॥ आदर करीने पुण्य करो भवि, जिनशासन एम जाणी ॥ म० ॥३२॥ नवमी ढाल ए पंचम खंमें,पंचम खंम पण हूउ जी ॥

कहो, जो न थई तुम जीत ॥ ४ ॥ जीवता मूकशे जाणिनें, ससरो वामन सत्य ॥ मुख केम दाखशो मानमां, मोटी राखो मत्य ॥ ५ ॥

॥ ढाल नवमी॥ सांजल रे तुं सजनी म्हारी,रजनी किहां रमी आव्यां जी ॥ ए देशी ॥

॥ सांजल रे तुं राजन वयणां,मंत्रीश्वर एम नापेजी ॥ प्रनु होय ते हित कारी जाणे, सेवक सत्य प्रकाशे ॥ १ ॥ मर नवि धरियेंजी ॥ पूर्व अपर स वि वात, चिंतवी करियेंजी ॥ ए आंकणी ॥ शस्त्र विना एकलडे एणें, कुमर वि डंव्या सवलाजी ॥ एहनें आगल शक्र सरीखा, दीसें अतिशय नवला ॥ ॥ म० ॥ २ ॥ कलावंतनें वलीयो एहवो, कन्या नाग्यें पाम्योजी ॥ वर ए ह पेनुं थानक पामी, खेद कहो केम जाम्यो ॥ म० ॥ ३ ॥ एह पराक्रम एह कला वली, एह दयानें दानजी ॥ वामनमां गुण विण नवि संनवे, सत्य क हुं राजान ॥ म० ॥ ४ ॥ विद्यादिक शक्तें करी वामन, क्रीडा करे धरतीयें जी ॥ महापुरुष कोइ इछारूपी, ए अनुमान वरतीयें ॥ म० ॥ ५ ॥ कुल देवी पण कुसुमवृष्टि करे, एह अर्थ पण धारोजी ॥ प्रारथीयो कलापरें कर शो, सहजरूप निरधारो ॥ म० ॥ ६ ॥ प्रार्थना करो तेहनी एहनें, वाणी सुणी हितकारीजी ॥ हर्ष लही वाजित्र वजडावे, नरपति चित्त विचारी ॥ ॥ म० ॥ ७ ॥ वंदी बिरुदावली बोलंते, गायन गीत ते गावेजी ॥ मंत्रीप्रधा न सहित हवे नृपति, वामन पासें आवे ॥ म० ॥ ८ ॥ दान देतो तेहनें ते वामन, रथथी उतरी प्रणमेजी ॥ श्वसुर आशीष दीये जमाइनें, आलिंग न दीये क्षणमें ॥ म० ॥ ए ॥ कनकासन उपर बेसाडी, सुख जय पूछे रा यजी ॥ वामन कहे संग्राम कलामां, हुं नवि जीत्यो प्राय ॥ म० ॥ १० ॥ पण मुज हृदयें पंच परमेष्ठी, मंत्र वसे छे मोहोटोजी ॥ सुर पण वश हो य ग्रह पण न नडे, विघन तणो थाय त्रोटो ॥ म० ॥ ११ ॥ उपद्रव न होये डुष्ट नृपनो,जखमो चाली आवेजी ॥ सांजली पर्षदा जैनधरमनें, स्तव ता अतिशय नावें ॥ म० ॥ १२ ॥ वीर बांध्या ते संघला मूक्या,मुंममुंमित चंमपालजी ॥ तेहनी हांसी करतो कुंवर, हास्य करें नरपाल ॥ म० ॥ ॥ १३ ॥ चंमपाल हसतो तव बोले, पंचशुं डुःख नवि धरीयेंजी ॥ औष धी जलथी हय गय नट सहु, वामनें साजा करीयें ॥ म० ॥ १४ ॥ प्रायें कृपालु सुनटनें उपरें, सापेक्ष मूक्या घातजी ॥ तेणें बहु जननो घात न

एम विचारी दया करे,मूकावी तेह चोर ॥ घर लावी न्हवरावीयो, तेम जो जन शुन गोर ॥ चो० ॥ १० ॥ क्षण रहीनें तस पूछिडं, कोण तुं केम करे चोरी ॥ कुमरनें उंलखी चोर ते, जरी हैयामां होरी ॥ चो० ॥ ११ ॥ नीचुं मुख करीनें रहे,तव बोले कुमार ॥ अनय दीधुं तव बोलियो,गद गद वय ण प्रकार ॥ चो० ॥१२॥ पापीनुं चरित्र सुणावबुं, योग्य नहीं शुं नांखुं ॥ रूपस्वरें करी उंलखी, कुमर कहे सुण आखुं ॥ चो० ॥ १३ ॥ बांधव माहारो रूअडो, नामें सिंह कुमार ॥ एहवी अवस्था केम लह्या, नांखो तेह विचार ॥ चो० ॥ १४ ॥ स्नेहें आलिंगन करी, वेशी पूछे वात ॥ पा लीनुं राज्य किहां गयुं, केम त्रणनो व्रात ॥ चो० ॥ १५ ॥ कपट पोतानुं गोपवे, कहे कल्पी वात ॥ सुता तुमें देवी मंदिरें,हुं पोहोरीयो रात ॥चो०॥ ॥ १६ ॥ सिंह दीठो में आवतो, तेहनें करवा त्रास ॥ पूठें दूर गयो वही, पाछो वलीयो उल्लास ॥ चो० ॥ १७ ॥ नमतां मारग नूलीयो, थयो जव परजात ॥ देवी देहरे तव आवियो, मनमां धरी भ्रांत ॥ चो० ॥ १८ ॥ तु मनें नवि दीठा तदा,जोया पर्वत पालि ॥ जलधिमां रत्न गया परें,आशा त्रू टी नाली ॥ चो० ॥१९॥ तुज वियोगें पाछुं पालिनें,इण समय महासेन ॥ मुज धरतीनें दावतो, आव्यो लेई सेन ॥ चो० ॥ २० ॥ हुं पण साहामो निकल्यो, युद्ध एहवुं कीधो ॥ मुज लसकर हारी गयुं, मुज बांधी लीधो ॥ ॥ चो० ॥ २१ ॥ जाजरो कीधो प्रहारथी,नाख्यो बंदीखाणे ॥ राज्य करें वे पालिनुं, मन मद बहु आणे ॥ चो० ॥ २२ ॥ चामडे मढीयो मुजनें, गिरि टुक चढावी ॥ नाख्यो पलाशपत्रें पडशो, कर्मे होय जे जावी ॥चो०॥२३॥ नावी नावथी वरसीयो, मेघ अकालें ताम ॥ चरम गंध तव उठल्यो,आवी शीयाल ते ठाम ॥ चो० ॥२४॥ चरम नख्युं तेणें वायरो, आव्यो चेतना पामी ॥ मूर्छा गइ अनाग्यथी, डुःख तणो विशरामी ॥ चो० ॥ २५ ॥ डुः खीयानें मरण ते दोहिलुं, नमतो पुरवर गाम ॥ इहां आवी जिक्षा नमुं, त्रणें जर्जर आम ॥ चो० ॥ २६ ॥ नूख्यां त्रण दिन वही गया, जिक्षा न वि लाधी ॥ चोरी कीधी एणी परें,नूखें देहडी दाधी ॥ चो० ॥ २७ ॥ यतः बुभुक्षितः किं न करोति पापं, क्षीणानरा निःकरुणा नवंति ॥ आख्याहि नद्रे प्रियदर्शनस्य, न गंगदत्तः पुनरेति कूपं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ आगल तु में जाणो सवे,जीवाड्यो बहु वार ॥ उरणीयो न थाउं किमे,दासपणे पण

एकापिमनी पुण्यप्रनावें, उपराजण तमें जुउं ॥ म० ॥ ३३ ॥ श्रीगुरु उत्तम विजय पसायें, पद्मविजय एम नापेजी ॥ श्रीजयानंदना रासमां जाणो, दिन दिन अधिक उल्लासें ॥ म० ॥ ३४ ॥ सर्वगाथा ॥ २८७ ॥

॥ इति श्रीमडुत्तमविजयगणि विनेय पंमित पद्मविजयगणिविरचिते श्री श्रीजयानंदकेवलिचरित्रे प्राकृतप्रबंधे नाटयसुंदरी,गीतसुंदरी,नादसुंदरी,परिणयन नामा पंचमः खंमः समाप्तः ॥ चतुष्कखंम मलिने गाथा ॥३२१५॥ पंचमखंमे गाथा ॥२६७॥ सर्वगाथा ॥३२८२॥ पूर्वखंमचतुष्के उक्तश्लोक ॥४०॥ पंचम खंमे उक्तश्लोक ॥१०॥ सर्वश्लोक ॥५०॥ सवईउ एक,समस्या एक,डुहो एक॥

॥ अथ षष्ठखंम प्रारंनः ॥

॥ दोहा ॥

॥ शांतिनाथ प्रनु शोलमा, दान अनय दातार ॥ पदकज प्रणमुं पासनां, चिंता चूरणहार ॥ १ ॥ पंच खंम पूरण कस्या, चढते रंगें चंग ॥ हवे बहो कहुं होंशथी, आणी मन उन्नरंग ॥ २ ॥ क्रीडा वनमां क्रीडतां, धर्म करंतां धीर ॥ काल केतो एक काढतो,व्यवहारें वड वीर ॥ ३ ॥

॥ ढाल पहेली ॥ कडुआं फल ढे क्रोधनां ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन रमवा निकल्यो, श्रीजयानंद कुमार ॥ रमवानें उद्यानमां, तिहां देखे तेणी वार ॥ १ ॥ चोरी व्यसन ढे आकरुं ॥ ए आंकणी ॥ खर उपर अवले मुखें, शिर पटियां पाडी ॥ बेसाडी राख चोपडी, मुखें मेश लगाडी ॥चो०॥ २॥ आक्रोश ताडना बहु करे, ढोकरां धूल उमावे ॥ कांकरा नाखे अति घणा,फूटुं वाजुं वजावे ॥चो०॥३॥ व्रण जर्जरित नूख्यो घणुं, नरक वानकी आवे ॥ पापनी मूर्त्ति ते बनी,मारवा लेइ जावे ॥ चो०॥४॥ वध्य मंमन देखी करी, कोटवालनें पूढे ॥ कोण ए केम विटंबना, एहनें द्यो शुं ढे ॥ चो० ॥ ५ ॥ तेह कहे आज रातिमां, व्यवहारी गेह ॥ खातर देइ इव्य काढीयुं, जन जाग्या तेह ॥ चो० ॥ ६ ॥ लोकें कोलाहल कस्यो, अमें पोहोता ताम ॥ रायनी आणथकी अमें, मारवा जाउं आम ॥ चो० ॥ ॥ ७ ॥ पापनां फल एहवां कह्यां, चोरनी गति पण एह ॥ तव कुंअर मन चिंतवे, एह अनित्यनुं गेह ॥ चो० ॥ ८ ॥ दाता नाम ढे माहरुं, ए चोरी करे एम ॥ पीडा पामे अति घणी, वांक तेह माहारो नेम ॥ चो० ॥ ९ ॥

करे रे,एवडो कुंअर आदर मान ॥ एहनें नाई रे एहवा नवि होये रे,वली की धुं बहु धननुं दान ॥ड०॥८॥ एक दिन पूछे रे कुमरनें नृपति रे, एहनें केम करो आदर मान ॥ गुणथी अधिका रे बीजा छांमीनें रे,सिंह शीयालनें एह उपमान ॥ ड०॥९॥ कुमर कहे नाई माटे आदर करुं रे,पण नवि माने ते राय ॥ एक दिन राय पूछे सिंहसारनें रे, कौतुकथी निरमाय ॥ ड०॥१०॥ ते पण अवसर पामी माया करी रे, बोले एणी परें वाण ॥ में उपकार कस्यो पूर्वें घणो रे, माने छे तेह जाण ॥ ड० ॥ ११ ॥ वधती वात कहे वाये नहीं इहां रे,सम दीधा छे ते माट ॥ कुमरें निषेध्यो छे वली तुमनें रे, डुःख थाये इण वाट ॥ ड० ॥ १२ ॥ नृपति कौतुक आशंका नस्यो रे, नृप कहे तोहे नांख ॥ जो मुज मानतो होय कोइ रीतिथी रे, तो कांइ छानुं म राख ॥ ड० ॥ १३ ॥ कुमरथकी तुम आणा मोटकी रे, स्वामीद्रोहनुं पाप ॥ में सांनलिपुं छे तेणें नाखियें रे, सांजलो कहुं ते आलाप ॥ ड०॥ ॥ १४ ॥ विजयपुरें जय नाम राजा तणो रे,सुत हुं त्यागी अथाग ॥ ते कारण चोरी पण हुं करुं रे, तव नृप कहे धरी राग ॥ ड० ॥ १५ ॥ अहो निज दोष कहे छे केहवो रे, सत्यवादी शिरदार ॥ एणी परें राय विचारे निज मनें रे, हवे आगल कहे सिंहसार ॥ ड० ॥ १६ ॥ मधुगीत नामें गायन रूअडुं रे, उपनो कुल ते चंमाल ॥ मधुर स्वरें करी रायनें रीजवे रे, करे प्रसाद नृपाल ॥ ड० ॥ १७ ॥ सुरगीत नामें सुत थयो तेहनें रे, सो नागी शूरवीर ॥ बालपकी पण सुस्वर अति घणो रे, प्रज्ञावंत सुधीर ॥ ड० ॥ १८ ॥ सौनाग्यादिक गुण आगर थयो रे, पंकजमां जेम गंध ॥ नीचकुलें पण तेहनें तस पिता रे, शीखवे ते रागबंध ॥ ड० ॥ १९ ॥ मुज आगल गाये सुस्वरें रे, दान देवें सुविशाल ॥ बीजी कला इछे पण को नहीं रे, पावे जाणी चंमाल ॥ ड० ॥ २० ॥ देशांतर जावानुं मन करे रे, पण धन नहीं निज पास ॥ मुज पासें माग्युं धन में तदा रे, चिंतव्युं करे ए अन्यास ॥ ड० ॥ २१ ॥ शीखी कला मुजनें देखाडशे रे, आप्युं में धन कोडी ॥ जइ विशालपुरें विद्या नएयो रे, धन आपी मन कोडि॥ ड०॥२२॥ छत्रीपणुं निज लोकमां दाखतो रे, दाखवी कलानें विज्ञान ॥ कोइक इष्ट आराधी सुर लिये रे, औषधि जाज्वल्यमान ॥ ड० ॥ २३ ॥ इष्टरूप करतो पृथिवी नमे रे, रीजवे लोकनां वृंद ॥ मनोवांछित धन मेल्युं लोकथी

धार ॥ चो० ॥ २० ॥ पद्मविजय पहेली कही, नहे खंडें ढाल ॥ श्रीजया नंदना रासमां, आगल वात रसाल ॥ चो० ॥ २९ ॥ सर्वगाथा ॥ ११॥

॥ दोहा ॥

॥ वचन अगोचर वालहा, पूरवलुं मुज पाप ॥ पामुं आपद पग पगें, अधम संगति लही आप ॥ १ ॥ यतः ॥ अधमसंगतिडर्मतिडुःस्थता, प्रतिपदं वधबंधपराजवः ॥ प्रियवियुक्त्यरिजीतिडरापदः, खलु फलानि हि डष्कृतशाखिनः ॥१॥ दोहा ॥ कुमर सुणी किरपालुउ, कहे तुमें न करो खेद ॥ सहुनें विपद संसारमां, न लहे पण निर्वेद ॥ २ ॥ रमणिक राज्य नें कृद्धि ए, ताहारुं जाणी तहत्ति ॥ लखमी पण तेहज लहो, निजशुं जुं जे निरत्ति ॥ ३ ॥ व्रण टाल्यां औषधि वनें,आपे वस्त्र अलंकार ॥ दाता क ल्पपादप परें, गंजीर गुण गणधार ॥ ४ ॥ नाईपणुं जनमां नणुं, परगट राखे पास ॥ सोंप्यां काम एहनें सवे, आदर करी उल्लास ॥ ५ ॥ लहीयें धन लखो गमे, न मले नाइ निदान ॥ निजदेश चिंतक नारिनें, अनु मत करे अचान ॥ ६ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ तट यमुनांनुं रे अति रलियामणुं रे ॥ ए देशी ॥

॥ कुमरें दीधुं रे धन विलसे सदा रे, लोकमां मान थयो सिंहसार ॥ संपदा कुमरनी देखी चित्त बले सदा रे, निज आपद संजारे गमार ॥ १ ॥ डर्जन ते सज्जन न होये कदा रे ॥ ए आंकणी॥ देखी देखी डबलो ते होय रे, जेम जवासो वरषा काल ॥ देखी तेज कुमरनुं रविपरें रे, अस्त वांछे जेम घूक ते काल ॥ ड० ॥ २ ॥ मन चिंते संपद मुज नवि मली रे, तो हरुं एहनी कोय उपाय ॥ शत्रुवध तो उवेखुं नहीं रे, मारुं तो ए सवि मुज थाय ॥ ड० ॥ ३ ॥ नूपसेवाथी काम सिद्धे सवे रे, एम चिंती हवे कुमरनी साथ ॥ जइनें रायनी सेवामां रहे रे, अनुक्रमें नरपति कीधो हा थ ॥ ड० ॥ ४ ॥ डष्टनो आशय मालम नवि पडे रे,कचरामां जेम कंटक होय ॥ मुखथी मीठो धीठो हृदयमां रे,तेहनी रीति न जाणे कोय ॥ड०॥५॥ जाण कुमर प्रिया जाणी डष्टता रे, कुमरनें कहे पण माने नांहि ॥ सज्ज न ते सहुनें सज्जन लहे रे,डष्ट तेनें सहु गणे डष्ट मांहि ॥ड०॥६॥ सूर्य अजु आलुं देखे सदा रे,घूक ते देखे नित्य अंधकार ॥ जे जेहवो होये ते तेहवो होये रे, चोर तथा शाहुकार ॥ ड० ॥ ७ ॥ लोक विचारे रे चोरनें केम

तें, राजमार्गें थइ जाते रे ॥ धि० ॥ बेहु जण मलीनें मारजो तेह, कोइ आगल कहे जो म एह रे ॥ धि० ॥ ६ ॥ अंगीकार करी ते आदेश, रह्या शुनक परें ते देश रे ॥ धि० ॥ सावधान थई वगर विचारें, रहे ते ताकी तेवारें रे ॥धि०॥७॥ कोइ नर मूके श्रीजय पासें, ते जइ एम प्रकाशें रे ॥ धि० ॥ कांइक कार्यनो करवा विचार, नृप तेडे एणी वार रे ॥ धि० ॥ ८ ॥ सरलपणे सुणी श्रीजयानंद, धरतो विनय अमंद रे ॥ धि० ॥ मूकी शय्या धरी विशवास, जव जावानें उल्लास रे ॥ धि०॥ ए ॥ निपुण स्त्रीयो तव कुमरनी बोले, सरल नहीं तुम तोले रे ॥ पियु प्राण आधारा ॥ नीतिशास्त्रना जाण कहाउ, नविअ विचार मन लाउ रे ॥ पि० ॥ १० ॥ श्यो अवसर आ आलोच केरो, पाछली रात अंधेरो रे ॥ पि० ॥ तेडवानो नहिं अवसर स्वामी, तुमें गुणगणना धामी रे ॥ पि० ॥ ११ ॥ नर नारीनी न शंसा करियें, सरलपणुं नित्य धरियें रे ॥ पि० ॥ वनसपति जे फूले अकालें,अरिष्ट थाये शरवाले रे ॥ पि० ॥ १२ ॥ दुष्ट कारण विण इंणहिज वेला, तेडे न एम एकेला रे ॥ पि० ॥ नृपचित्त जूडनें जूडी वाणी, किरिया जिन्न वखाणी रे ॥ पि० ॥ १३ ॥ जूडुं फल वेश्यानी रीतें, खबर पडे नहीं चित्तें रे ॥ पि०॥ ते कार्य कहो केणी परें करीयें, जेह्मां संशय धरीयें रे ॥ पि० ॥ १४ ॥ नृप विश्वास न करीयें विशेषें, त्रण अवगुण जस देखे रे ॥ पि० ॥ सर्व कार्य करता सिंहसार,मोकलो तस इंण वार रे ॥ पि० ॥ १५ ॥ श्ये कामें कहो आवशे एह, इण अवसर जाशे न जेह रे ॥ पि० ॥ न्याय युक्त ए सांजली वात, कुंमर चित्त हरखात रे ॥ पि० ॥ १६ ॥ तेडी सिंहने जांखे एम, नृप तेडे तुम नेम रे ॥ पि० ॥ पूछवा तेडयो मुजनें राय, घात कुमरनो उपाय रे ॥पि०॥१७॥ जांखिश मन मान्युं तिहां जाई, सिंह चिंते एम जाई रे ॥ पि० ॥ तुरगारूढ थइ हवे चाल्यो, अर्द्धमारगें जइ माह्याल्यो रे ॥ पि० ॥ १८ ॥ दोय पासें दोय बाणथी मार्यो, पडियो मूर्छायें घार्यो रे ॥ पि० ॥ जाई डोहलुं फल एह पायो, पर चिंतव्युं निज थायो रे ॥ पि० ॥ ॥ १ए ॥ ते पुरुषें जइ राजानें आख्युं, काम कर्युं तुमें जांख्युं रे ॥ पि० ॥ प्रायें नृपनें न होय विवेक, हर्ष लह्यो अतिरेक रे ॥ पि० ॥ २० ॥ यतः ॥ विवेकोऽर्जनः प्रायो, विशेषो महतामिह ॥ धनाढ्यनृपदैवेषु, स मनागपि नेक्ष्यते ॥ १ ॥ पूर्व ढाल ॥ कोलाहल सुणी कोटवाल आयो,बाहार मोकले

रे, करी उपकार अमंद ॥ डु० ॥ २४ ॥ कोइ उत्कृष्ट कलाथी परणावो रे, राजकन्या गाम गाम ॥ भाग्यकला गुण आगल कोण जूए रे,जातिनें कुल अनिराम ॥ डु० ॥ २५ ॥ मुज संगतिथी शीख्यो दाननें रे, दानें दोष ढंकाय ॥ फरतो फरतो इहां आव्यो पछें रे, तुमथी गानुं न कोय ॥ डु०॥ ॥२६॥ छठे खंमें बीजी ढालमां रे,डुर्जन एहवा होय ॥ पद्मविजय कहे तस विश्वासडो रे, मत करजो तुमें कोय ॥ डु० ॥ २७ ॥ सर्व गाथा ॥ ६५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ विण उलखे वारू परें,मूकाव्यो एणें मुऊ ॥ लाव्यो निजघर लक्षणें, उलख्यो मुज ए गुऊ ॥१॥ देई धन दोलत तदा, सहुमां कस्यो सतकार॥ एकांतें मुज आखियुं,सुण रें तुं सिंहसार ॥२॥ मुज कुल मत परकाश जे,सम दीधा सो वार ॥ वचनें एम विलखो थई, बांध्यो बहु प्रकार ॥३॥ राखे पासें रीतिशुं,विणचिंते विशवास ॥ करे बहु मान मन कातियें,आपे नहीं अवकाश ॥४॥ तुम आणा वशथी तुरत,गोप्य कह्युं गोस्वामि ॥ गुणवंत कुल गणियें नहीं, अप्रसन्न मत हो आम ॥ ५ ॥ सांनली नृप विस्मय लह्यो, मनमां क्रोध न माय ॥ वांछित फल्यां विचारीनें, सिंह उल्लास सवाय ॥ ६ ॥ सिंह विसर्ज्यो शुनपरें, क्रोधें नृप अकुलाय ॥ जैन नृपनें पण जुर्ज, दोष त्रण डुःखदाय ॥ ७ ॥ यतः ॥ तस्मिन् डुर्बलकर्णत्व, मविमृश्य विधायता ॥ स्वैरत्वं चेति जैनेपि, संति दोषास्त्रयोनृपे ॥ १ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ माहारी सही रे समाणी ॥ ए देशी ॥

॥ नरपति चिंते क्रोध नरायो,जूर्ज मुज कुल एणे वटलायो रे ॥ धिक् धिक् ए जमाइ ॥ पापीयें बहु नृपकुल वटलाव्यां, सहुनें डुःख एणी परें आप्यां रे ॥ धि० ॥ १ ॥ कुल नवि पूछ्युं रानस वृत्तें,कुमरीयो दीधी मन प्रीतें रे॥ धि० ॥ पंक्तियें बेशीनें नोजन करीयें, कहो केम एणी परें पिंम नरीयें रे॥ धि०॥२॥ कुत्र वैश्रवण ए नाम धरावी,करी धूर्त्तविद्या एणें गावी रे ॥धि०॥ पद्मरथ पद्मप्रन नेतरीया, महारां पण वस्त्र वेतरियां रे ॥ धि० ॥ ३ ॥ राज्यांतरमां वात विस्तरशे, तो मुज निंदा करशे रे ॥ धि० ॥ कुल मुज तजशे ने हांसी करशे, ए केम मुज प्रवहण तरशे रे ॥ धि० ॥ ४ ॥ आजज मारीयें रयणीयें एह, तो आबरु रहे रेह रें ॥ धि०॥ एम चिंतवे दोय घायक तेडे, विश्वासीनें तेडी नेडे रे ॥ धि० ॥ ५ ॥ तुरगारूढ जे आजनी रा

पामे मनमां खेद,चिंते रे विपरीत कारज केम थयुंजी ॥ चिंतव्युं कांय नें नीपन्युं कांय,दैववांकें सहु वांकुं थइ गयुंजी ॥३॥ यतः ॥ अन्नह चिंतियमाणं, उदय पउंजेण अन्नहा जायं ॥ चिंतोदय विवरीयं,तम्हा नो चिंतए मुणिंदा ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ मारण योग्य न आव्यो एह, पालन योग्य ते हितुउं एम मुउंजी ॥ गोप्य जे वात ते थइ परगट,काम न सीधुं माहारुं किम हूउंजी ॥ ४ ॥ खाधुं अनह्वयनें न गयो रे ताव, व्रतनो रें भंग थयो ए चित्त दहेजी ॥ गोत्रनो ध्वंस कस्यो वली राज्य, बलीया रे वयरी आवीनें ग्रहेजी ॥५॥ हाथ बल्या नें न खवाणो पोंक,ए दृष्टांत ते माहारे नीपन्युं जी॥ मारवो प्रगटपणे करी जोर, एहवुं रे नरपति चित्तमां उपन्युं जी ॥ ६ ॥ सुभट सहस गमे सन्नद्ध बद्ध, मोकले सूतो मारो एहनेंजी ॥ सहस गमे मली आव्या रे तेह, कुमरनी पोलें मद बहु जेहनेंजी ॥ ७ ॥ लोह मोघरथी भांजे रे पोल, तेटले पोल उघाडी कुमरभटेंजी ॥ तेहशुं रे करवा मांमयुं युद्ध, वींटया रे तेहने बलनें उत्कटेंजी ॥ ८ ॥ कुमरभटें बहु देखाड्यों त्रास, नाठा रे नृपभट नृपना गेहमांजी ॥ कुंजमां जेम पेसे रे शीयाल, शक्ति न रही लव लेश ते देहमांजी ॥ ९ ॥ कुमर भटें अम नसाव्या रें स्वामि, रविकर जेणी परें महोटुं तम हणेजी ॥ सांभली क्रोधें चडियो रे राय, भेरी वजडावे विहाणें मद घणेजी ॥ १० ॥ युद्ध करणनें मलियुं रे सैन्य, जाग्यो रे कुमर कृत्य विहाणां तणांजी ॥ करीनें रे रमवा सोगठ पास, बेसे रे नारीनें कहि वयणां घणां जी ॥ ११ ॥ सैन्य सहित नृप आवतो जाण, तूरीनो कटुक ध्वनि सुणी कानमांजी ॥ भयथी रे भ्रांत थइ कहे वाणी, सांभलो स्वामी कहुं ते शानमांजी ॥ १२ ॥ नृपभट तुम भटें भगव्या रे स्वामि, क्रोधें रें नूप भराणो आवियोजी ॥ तुमचो रे निग्रह करवा काज, सैन्य लेइने केम नवि भावियोजी ॥ १३ ॥ क्रीडानो अवसर नहीं इण वार,ल्यो करवाल ते शत्रु कारणें जी ॥ अमने रे रमवा मन नवि थाय, बीहींकें रे मन नवि रहे अम धारणें जी ॥ १४ ॥ बोले रे लीलायें हसीनें कुमार, शस्त्र विना बहु कुमरनें जीतीया जी ॥ वलीया रे बलशुं आव्याता तेह,माहारी भुजायें सहुये विगूतीया जी ॥ १५ ॥ क्रीडा करो तुमें निर्भय चित्त, क्रीडा रे करवा वेरी पण मनेंजी ॥ स्त्रीना स्वभावथी शंका रे धार, सैन्य सजावे दाखवी नयननेंजी ॥ १६ ॥ कुमरनां मं

नररायो रे ॥ पि० ॥ कोइक नरें कही कुमरनें वात, सांजली मन सेवात रे ॥ पि० ॥ २१ ॥ नारियो कहे स्वामी तमें दीठुं, नृपनुं कार्य अनीठुं रे ॥ पि० ॥ मान्युं न होत जो अमचुं वयण, शी गति होत अम सयण रे ॥ पि० ॥ २२ ॥ आजथी रहेजो हवे सावधान, राजडुर्बल होय कान रे ॥ पि० ॥ खलसंगति थई रायनें जूंमी, एह वात नहीं कूडी रे ॥ पि० ॥ २३ ॥ सरस्वती स्त्री तेणें तुम चित्त खेले, नरनें दूरें मेहेले रे ॥ पि० ॥ कुमर कहे स्त्रीनें एम वयणां, तुमें मुज ठो जेम नयणां रे ॥ पि० ॥ २४ ॥ नारीनें एम आनंद पमाडी, वचनयुक्ति कही जाडी रे ॥ पि० ॥ पतिव्रता जे जामिनी होय, जर्त्ता सम नहीं कोय रे ॥ पि० ॥ २५ ॥ ठठे खंमें त्रीजी ढाल, सुणतां मंगलमाल रे ॥ पि० ॥ पद्मविजय कहे आगल देखो, डुर्जन स ज्ञन विशेषो रे ॥ पि० ॥ २६ ॥ सर्व गाथा ॥ ए७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ जीवतो सिंह होयें यदि, तो लावो ततकाल ॥ मोकलें एम कही मानवी, श्रीजयानंद संजाल ॥ १ ॥ लाव्या सास लेतो थको, औषधि जल तव आण ॥ सज्ज कियो ठांटी छुजपरें, उत्तम नर एम जाण ॥ २ ॥ यतः ॥ उपकारिणि वीतमत्सरे वा, सदयत्वं यदि तत्र कोऽतिरेकः ॥ अहिते सहसापराधलुब्धे, सदयं यस्य मनः सतां स धुर्यः ॥ १ ॥ दोहा ॥ मरण आवे क्षण क्षण मनें, मूकावे ए मुज्क ॥ एहथी शी आपद अधिक, सिंह विचारे सुज्क ॥ ३ ॥ धातायें आपद धरी, अन्यस्थानक अण पाम ॥ पुण्य रहित मुज उपरें, मानुं मूकावी माम ॥ ४ ॥ दूबली वाडें देखीयें, अथवा ठिद्र अनेक ॥ अथवा काम एणें कर्युं, अंधारे अविवेक ॥ ५ ॥ एहज अर्थें एणें कस्यो, बहु सत्कार बनाव ॥ जाण्यो धूर्त्त में आजथी, जेणें कस्यो एह जमाव ॥ ६ ॥ उपकारनें लहे अपक्रिया, तेह नीच तेणि वार ॥ सूर्य किरण जास्वर घणुं, तम लहे घूक तेवार ॥ ७ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ रह्यो रे आवास दूवार ॥ ए देशी ॥

॥ जीवाडी सिंहनें सूतो कुमार, निर्जय थइनें सिंहपरें तदाजी ॥ सूतो न बीहे मृगथी रे सिंह, पण तस पत्नी शंक धरे सदाजी ॥ १ ॥ सुजटोनें कहे तुमें थाउ सावधान, जालवो पोल प्राकार जली परेंजी ॥ रायनें जइ कहे कोइक वात, सिंह मास्यो कोइ वैरीयें एणी परेंजी ॥ २ ॥ राजा रे

॥ हांरे माहारे महापराक्रमी वासुदेव सम कोय जो, कुलतो गुण ल क्षणनें नाग्यथी जाणीयो रे लो ॥ हां० ॥ एहने मस्तक थई कुसुमनी वृ ष्टि जो, कुलदेवीयें घोष करी जे वखाणीयो रेलो ॥ १ ॥ हां० ॥ ए सवि वीसरियुं केम राजन तुम जो, अविवेकें असमंजस करवा मांमियुं रे लो ॥ हां० ॥ नरमां तुमें नृप तेम गुणमांहे विवेक जो, दोपमां तेम अविवेक ए, माहापण ठांमियुं रेलो ॥ २ ॥ यदुक्तं ॥ सगुणमपगुणं वा कुर्वता का र्यजातं परिणतिरवधार्या, यत्नतः पंमितेन ॥ अतिरनसकृतानां, कर्मणा माविपत्ते, र्नवति हृदयदाही शल्यतुल्योविपाकः ॥ १ ॥ तथा ॥ सहसा विदधीत न क्रिया,मविवेकः परमापदां पदम्॥ वृणुते हि विमृश्यकारिणं,गु णलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥ २ ॥ पूर्वढाल ॥ हां० ॥ लीलायें क्रीडा कर तो वेगो तेह जो,एणि परें तुमें तो उद्यम मांमयो ठे वृथा रे लो ॥हां० ॥ लीलायें तुम बल नगवे जास सुनट जो, नाग्य परीक्षा कीजें एणी रीतें यथा रेलो ॥ ३ ॥ हां० ॥ तुम सेनाशुं डुर्जय जाणो एह जो, यूथ सहि त करी सिंहने जीते केणी परें रेलो ॥ हां०॥ कुमर ससैन्य संग्रामें जीत्या एण जो, तेम सेनापतिने पण ए विलखो करे रेलो ॥ ४ ॥ हां० ॥ एह दया जो न करे तेणें काज जो, जीवतो कोण रहे एह वात विचारीयें रे लो ॥ हां०॥ राज्यधणी कह्यो तुमें पण केणीपरें होत जो, कुमर विटंवणा थइ ते सवि संनारीयें रेलो ॥ ५ ॥ हां० ॥ बिरुदावली बंदी बोल्यो के णी रीत जो, कोटि अनेक सुनटशुं पन्नरथ जे हतो रे लो ॥ हां० ॥ जी त्यो वामण रूपें एकण पिंम जो, तेहशुं रण करीने कोण जगमां जीततो रें लो ॥ ६ ॥ हां०॥ सैन्यनें मारशे क्रोध चढ्यो जब एह जो,निंदा पामशो सकल नृपमांहे तुमें रे लो ॥ हां० ॥ जीववुं दोहिलुं तेणें तुम अ मनें खेम जो,वांछो तो तजो एह अकारय कहुं अमें रे लो ॥ ॥ ७ ॥ हां० तुमनें हणतां अमें जीवाशे केम जो, सांनली सचिवनी वाणी ज्ञिहिनो मनमां घणुं रे लो ॥ हां०॥ सिंहनी वात ते कूडी हृदयमां धारि जो, बोले रे तव नरपति वयण सोहामणुं रे लो ॥ ॥ ८ ॥ हां०॥ तुमें प्रद्युन्न का मुकतुं नांख्युं वयण जो, पण ते पापीयें माहारो स्नेह उतारीयो रे लो ॥हां०॥ मनडुं माहारुं न मले एहशुं कोय जो,वली तुमें जातां मुजनें एणी परें वारियो रे लो ॥ ए ॥ हां० ॥ जइनें पूठो सम्यग् कुल अवदात जो,

दिर सन्मुख ताम, जातां रे देखे सचिवादिक सहुजी ॥ काज आवे जब मो धानें ताम, जाय रे वाघरीवाडे ते वहुजी ॥ १७ ॥ आवीने प्रणमे नृपना पाय, वीनवे कर जोडी एम रायनेंजी ॥ सैन्यशुं चाल्या कोण अरि हार, कोनें रे मारशो एणी परें धायनेंजी ॥ १८ ॥ रायें रे नांख्युं सवि विरतं त,सिंहें जे नांख्युं सघलुं ते सुणीजी ॥ नांखे रे सचिव ते खलनी रे वा णि, सांनली अवगुणो केम न तुमें गुणीजी ॥१९॥ कारण विण खल श त्रु कहाय, धरतो रे मत्सर परगुण देखीनेंजी ॥ कांटा रे साहामो जाये कं ट, फल फूलें पूरी वाडी उवेखीनेंजी ॥२०॥ यतः ॥ खलोमृगयते दोषान, गुणपूर्णोपि वस्तुनः ॥ वने पुष्पफलाकीर्णे, करनः कंटकानिव ॥ १ ॥ पू र्व ढाल ॥ पापी रे खल पण तेहथी अधिक,खलनी जे वात सुणो कानें क रीजी ॥ खलनी रे पूंठ पूरे तेह जीव, मानुं रे डुर्गति जातां मन धरीजी॥ ॥ २१ ॥ महोटा ते विरुद्ध न सांनले कान,आपें उपानकें मुख नांजे तदा जी ॥ कंटक सरिखा खलनें रे जाणी,आदर न दीये संत खलनें सदाजी॥ ॥ २२॥ यतः ॥ कंटकानां खलानां च,सद्दश्येव प्रतिक्रिया ॥ उपानन्मुखनं गोवा, दूरतोवा विसर्जनं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ सांनलें सज्जन खलनी न वात, जो कदी सांनलें पण चित्त नवि धरेजी॥ कुंननी परें नवि वासे का सार, जोजो रे सहुये नुजगतणे गरेंजी ॥ २३ ॥ बठे रे खंमें चोथी ढाल, नांखी रे पद्मविजय सोहामणीजी ॥ श्रीजयानंदना रासमां सार, सज्जन गुण अंगीकरो ए सुणीजी ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ १२९ ॥

॥ दोहा ॥

॥ तेजोमयी पूजित जनें, पण मले लोह प्रसंग ॥ अग्नि कूटाये आफ णी,ए खल संग एकंत ॥ १ ॥ खलसंगें आपद खरी, पामे महोटा प्राय ॥ कांकरी घट छिद्रित करे, जल नें शोना जाय ॥ २ ॥ तुंब ते जलमां जाय त लें, मध्यम मृत्तिका संग ॥ तेणें नवि सांनलवुं तुमें, वयण जे खलनुं व्यं ग ॥ ३ ॥ असंनाव्य नवि आखियें, जोइयें युक्तायुक्त ॥ वारु कुल वध्य चोरनुं, संनालो वली सूक्त ॥४॥ यतः॥ खलःसत्क्रियमाणोपि,ददाति कलहं सतां॥ दुग्धधौतोपि किं याति,वायसः कलहंसतां ॥ १ ॥दोहा॥ गिरुउने गुणवं त ए,जामाता एह जाण ॥ दुष्ट कुल तस दाखियुं,पण केम थाय प्रमाण ॥५॥ ॥ ढाल पांचमी ॥ हांरे मारे जोबनीयानो लटको दाहाडा चार जो ॥ए देशी ॥

॥ दोहा ॥

॥ तातजी सैन्य तणो तुमें, अकस्मात् आरंन ॥ रण करवानें रीजथी, आव्या एह अचंन ॥ १ ॥ सिंहवात सवि सामटी,मूलथकी मंमाण ॥ कही ते सांजली कुमरियो, बोली बुद्धिनी खाण ॥ २ ॥ सकल शौर्य संपन्न ए, धैर्यादिक गुण धार ॥ लक्षणें चक्री ए लख्यो, सवि सज्जन शिरदार ॥ ॥ ३ ॥ नीचकुलें जो नर हुश्या,कोण कहो कुलवंत ॥ मुखाश्यें मरवा तणी, कहो कोण होंश करंत ॥ ४ ॥ चिंतामणि सरिखो चतुर,परिगल पुण्यें पामी ॥ उपरांगो करो आफणी, घहेलो दीसे निगाम ॥ ५ ॥ डुर्जन एह डुरात्मा, सिंह ते जाणो शियाल ॥ अमें तो पूर्वें उलख्यो,जली परें नूपाल ॥ ६ ॥ वार वार अमें विनयथी, कह्युं विचित्र प्रकार ॥ पण सौजन्यपणा थकी, माने नहीं कुमार ॥ ७ ॥ कपटथकी एणे कुमरनें, रीजवीयो नरराय ॥ न त्यजे नोलो नाह ए,जेम शशि कलंक न जाय ॥ ८ ॥ तुमें पण मान्यो तेणें तुमें, आपद लह्या अपार ॥ जिहां कपोत वेसे जदा, शाखा सूके तिवार ॥ ए ॥ यतः ॥ कपटी चित्त न दीजीयें,पेट पेशी बुध लेत ॥ पेली थाग बनायकें, पीठें गोथां देत ॥ १ ॥ काज विचारी कीजीयें, जेम नोलं वर दृष्टांत ॥ शुद्धसंगम रुतु नेहनृप, नट तिय श्वानप्रधान ॥ कटत जटत उग्रत ग्रहत,फिर पीठें पठतान ॥ २ ॥

॥ ढाल ठही ॥ हरणी जव चरे लाललनां ॥ ए देशी ॥

॥ कर जोडी कुमरी कहे लाललनां ॥ ललां हो तात वयण अवधार ॥ ए वर वारू रे लाललनां ॥ इछो जो निज पर कुशलनें लाललनां ॥ ल० ॥ तो रीजवो ए कुमार ॥ ए० ॥ १ ॥ अमें हित कहीयें तुम तणे ला० ॥ ल० ॥ कटु पण मानो वाण ॥ ए० ॥ रोग शमाववा कारणें ला० ॥ ल० ॥ कटु औषध करे आण ॥ ए० ॥ २ ॥ राय कहे कुमरी सुणो ला० ॥ ल० ॥ आमंबर कस्यो एह ॥ ए० ॥ मूकतां लाज आवे घणी ला० ॥ ल० ॥ मान नडे वहु देह ॥ ए० ॥ ३ ॥ तात नक्ति तुम चित्त होये ला० ॥ ल० ॥ तो पति कुल निरधार ॥ ए० ॥ पूठीनें मुजनें कहो ला० ॥ ल० ॥ तो थाय जयजय कार ॥ ए० ॥ ४ ॥ तात वचन मानी करी ला० ॥ ल० ॥ विनय नक्ति धरी स्नेह ॥ ए० ॥ पूठे कुल तव ते कहे ला० ॥ ल० ॥ केहेशे सिंह ते एह ॥ ए० ॥ ॥ ५ ॥ नारी कहे सुणो स्वामीजी ला० ॥ ल० ॥ एणें कस्यो सर्व उपाधि

जेम मन निर्मल थाय विघन दूरें टले रे लो ॥हां०॥ सचिव कहे केम उत्तम नांखे नाम जो,तो केम कुल कहेशे वली शूर घणो बलें रे लो॥१०॥ हां० ॥ तो पण तुम आणायें जाशुं तह जो, कहेशे तो आवी तुमनें नां खशुं रे लो ॥ हां० ॥ प्रणमी नृप गया कुमरनी पास प्रणाम जो, करी नें कहे तुम उत्तरें अमृत चाखशुं रे लो ॥ ११ ॥ हां० ॥ तुमें शत्रुनें शि क्षा देवा शूर जो, गुरुजनना जक्ता नतवत्सल ठो सदा रे लो ॥ हां० ॥ जंगम कल्पवृक्ष सम तुम जो जोप जो,अर्थीने देतां तुमें नवि थाको कदा रे लो ॥ १२ ॥ हां० ॥ निजकुल नांखो प्रार्थना न करो लोप जो, दुष्ट पापी कोइयें नृपनें जरमावियो रे लो ॥हां०॥ तुम वयणें करी सहुना संशय जाय जो, अमें तुम पूठुं जे नृपें फरमावियो रे लो ॥ १३ ॥ हां० ॥ कु मर कहे सुणो न करुं प्रार्थना जंग जो,मुज कुल मुज कर नांखशे संग्रामें करी रे लो ॥ हां० ॥ उत्तम नर ते फलथी दाखवे वंश जो,पण नवि नांखे कोइ कालें कंठें धरी रे लो ॥ १४ ॥ हां० ॥ वैरी केरो थाशे तिहां वि नाश जो, तुम सरिखा सज्जन ते वृद्धिपणुं लहे रे लो ॥ हां० ॥ सज्जन थइनें सैन्य सहित नूपाल जो, आवो तुमें जेम मुज जुजा मुज कुल कहे रे लो ॥ १५ ॥ हां० ॥ सांजली प्रणमी नूपनी पासें आय जो, संजलाव्युं ते सुणीनें नृप मन खेदियो रे लो ॥ हां० ॥ आमंबर करी आव्यो केम जवाय जो, युद्धें पण नवि सिद्धि एम मन वेदीयो रे लो ॥ १६ ॥ हां० ॥ थयो उजयथी च्रष्ट कहो गति कोण जो, एम चिंतातुर देखी सचिव ते बोलीया रे लो ॥हां०॥ इंड समाणो संग्रामें अति शूर जो,कुल केम प्राणे नांखे जग तृण तोलीया रे लो ॥१७॥हां०॥ कुल पूठे शुं गुणथी सर्व जणाय जो,रत्नाकरथी उपन्यो मणि तेजें कहे रे लो ॥हां०॥ जो तुम आणा होय तो मीठे वयण जो, दीर्घ रोष टालुं जेम प्रसन्नपणुं लहे रे लो ॥ १८ ॥ हां० ॥ लावुं कुमरनें स्वामी तुमचे पास जो, इण अवसर तिहां कुमर आण लही करी रे लो ॥ हां० ॥ आवी पुत्री त्रणे राय हजूर जो, प्रणमी पाद पिताना संज्रम बहु धरी रे लो ॥ १९ ॥ हां० ॥ कुमरी कहे हवे तात नें निपुण वचन्न जो, ते कहेवाये आगल सुणजो रंगथी रे लो ॥ हां० ॥ ठठे खंमें पांचमी ढाल रसाल जो, पद्मविजय कही श्रीगुरु उत्तमसंगथी रे लो ॥ २० ॥ सर्व गाथा ॥ १५४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ तातजी सैन्य तणो तुमें, अकस्मात् आरंन ॥ रण करवानें रीजथी, आव्या एह अचंन ॥ १ ॥ सिंहवात सवि सामटी,मूलथकी मंमाण ॥ कही ते सांनली कुमरियो, बोली बुध्धिनी खाण ॥ २ ॥ सकल शौर्य संपन्न ए, धैर्यादिक गुण धार ॥ लक्षणें चक्री ए लख्यो, सवि सज्जन शिरदार ॥ ॥ ३ ॥ नीचकुलें जो नर इश्या,कोण कहो कुलवंत ॥ मुखाइयें मरवा तणी, कहो कोण होंश करंत ॥ ४ ॥ चिंतामणि सरिखो चतुर,परिगल पुएयें पामी ॥ उपरांठो करो आफणी, घहेलो दीसे निगाम ॥ ५ ॥ डुर्जन एह डुरात्मा, सिंह ते जाणो शियाल ॥ अमें तो पूर्वे उंलख्यो,नली परें नूपाल ॥ ६ ॥ वार वार अमें विनयथी, कह्युं विचित्र प्रकार ॥ पण सौजन्यपणा थकी, माने नहीं कुमार ॥ ७ ॥ कपटथकी एणे कुमरनें, रीजवीयो नरराय ॥ न त्यजे नोलो नाह ए,जेम शशि कलंक न जाय ॥ ८ ॥ तुमें पण मान्यो तेणें तुमें, आपद लह्या अपार ॥ जिहां कपोत बेसे जदा, शाखा सूके तिवार ॥ ९ ॥ यतः ॥ कपटी चित्त न दीजीयें,पेट पेशी वुध लेत ॥ पेली थाग बनायकें, पीछें गोथां देत ॥ १ ॥ काज विचारी कीजीयें, जेम नोज बर दृष्टांत ॥ शुध्धसंगम रुतु नेहनूप, नट तिय श्वानप्रधान ॥ कटत जटत उप्रत प्रहत,फिर पीछें पछतान ॥ २ ॥

॥ ढाल छठी ॥ हरणी जव चरे लालनां ॥ ए देशी ॥

॥ कर जोडी कुमरी कहे लालनां ॥ नलां हो तात वयण अवधार ॥ ए वर वारू रे लालनां ॥ इछो जो निज पर कुशलनें लालनां ॥ ल० ॥ तो रीजवो ए कुमार ॥ ए० ॥ १ ॥ अमें हित कहीयें तुम तणे ला० ॥ ल० ॥ कटु पण मानो वाण ॥ ए० ॥ रोग शमाववा कारणें ला० ॥ ल० ॥ कटु औषध करे आण ॥ ए० ॥ २ ॥ राय कहे कुमरी सुणो ला० ॥ ल० ॥ आमंबर कर्यो एह ॥ ए० ॥ मूकतां लाज आवे घणी ला० ॥ ल० ॥ मान नडे बहु देह ॥ ए० ॥ ३ ॥ तात नक्ति तुम चित्त होये ला० ॥ ल० ॥ तो पति कुल निरधार ॥ ए० ॥ पूछीनें मुजनें कहो ला० ॥ ल० ॥ तो थाय जयजयकार ॥ ए० ॥ ४ ॥ तात वचन मानी करी ला० ॥ ल० ॥ विनय नक्ति धरी स्नेह ॥ ए० ॥ पूछे कुल तव ते कहे ला० ॥ ल० ॥ केहेशे सिंह ते एह ॥ ए० ॥ ॥ ५ ॥ नारी कहे सुणो स्वामीजी ला० ॥ ल० ॥ एणें कर्यो सर्व उपाधि

॥ ए० ॥ पापी नाम छुं उच्चरो ला० ॥ ल० ॥ नामें होये माहा व्याधि ॥ ॥ ए० ॥ ८ ॥ तातनी वात सवे कही ला० ॥ ल० ॥ सुणी कहे ताम कुमा र ॥ ए० ॥ शुं एहवो ए खल अछे ला० ॥ल० ॥ में तो कस्यो सत्कार ॥ए० ॥ ७ ॥ ए केम एहवुं आचरे ॥ ला० ॥ ल० ॥ त्यजवो दूरथी तेह ॥ए०॥ एम चिंती कहे नारीनें ॥ ला० ॥ ल० ॥ सांजलो कहुं ते जेह ॥ए० ॥७॥ औषधी ल्यो ए मुजथकी ला० ॥ल० ॥ पूतली शिर आरोप ॥ ए० ॥ जे म न माने ते पूछियें ला० ॥ ल० ॥ ते नवि करशे लोप ॥ ए० ॥ ए ॥ अती त अनागत सहु कहे ला०॥ल०॥सांजली अचरिज थाय ॥ए०॥ औषधी ले ई तातनें ला० ॥ ल० ॥ पासें आवी सुखसाय ॥ ए० ॥ १० ॥ सर्व सजा जोतां थकां ला० ॥ ल० ॥ शिर औषधि ठवी ताम ॥ ए०॥ पूछे पूतलीनें हवे ला० ॥ ल० ॥ कुमरनुं कुल नाम गाम ॥ ए०॥ ११ ॥ मानुषिणीनी परें कहे ला० ॥ ल० ॥ विजयपुराधिप राय ॥ए०॥ विजय राय सुत सुंदरु ला० ॥ ल० ॥ श्रीजयानंद कहाय ॥ ए० ॥ १२॥ वर क्षत्री कुल उपन्यो ला० ॥ल० ॥ गुणनिधि महिमा निधान ॥ ए० ॥ सांजली हरख्या सहु ज ना ला० ॥ ल० ॥ चमक्यो सुणी राजान ॥ ए० ॥ १३ ॥ मंगलवाजां वाजी यां ला० ॥ ल० ॥ जय जय जणे नर नार ॥ ए० ॥ मान मूकी नरपति ह वे ला० ॥ ल० ॥ आम खमावे कुमार ॥ ए० ॥ १४ ॥ निजपुत्रीनें खमा वतो ला० ॥ ल० ॥ निज अपराध जूपाल ॥ ए० ॥ सहु निज निज था नक गया ला० ॥ ल० ॥ एकदिन सजा विचाल ॥ ए० ॥ १५ ॥ पूछे मं त्रीनें नरपति ला० ॥ ल० ॥ कहो शुं ए इंद्रजाल ॥ ए० ॥ पूतली बोली नवि सुणी ला० ॥ ल० ॥ ए अचरिज असराल ॥ ए० ॥ १६ ॥ मंत्री कहे ए कुमरना ला० ॥ ल० ॥ जाग्यथी औषधि पाम ॥ ए० ॥ देव पेसे ते ब लथकी ला० ॥ ल०॥ पूतली बोले आम ॥ ए० ॥१७॥ तो पण जो संशय होये ला० ॥ ल० ॥ तो शतबुद्धि प्रधान ॥ ए० ॥ बुद्धिचंद्र सुत तेहनो ला० ॥ ल० ॥ द्विज बुद्धि असमान ॥ ए० ॥ १८॥ ज्योतिष प्रमुख जाणे घणुं ला० ॥ ल० ॥ निपुण नें तुम जक्तिवंत ॥ ए० ॥ विजयपुरें तस मोक ली ला० ॥ ल० ॥ निर्णय कीजें महंत ॥ ए० ॥ १९॥ सांजली नृप हर्षि त थयो ला० ॥ ल० ॥ शीखवी मोकल्यो तास ॥ ए० ॥ नवमे दिन फरी आववुं ला० ॥ ल० ॥ करिय प्रतिज्ञा खास ॥ ए० ॥ २० ॥ सात पुरुषथी

वालीयो ला० ॥ ल० ॥ करनें बेशा वेगवंत ॥ ए० ॥ शो योजन उपर रह्युं ला० ॥ ल०॥ विजयपुरें पोहोचंत ॥ ए० ॥ २१ ॥ वेप निमित्तियानो करी ला० ॥ ल० ॥ पुस्तक राखी पास ॥ ए० ॥ प्रतिहार राय आणायकी ला० ॥ ल० ॥ पेसवा दीधो तास ॥ए०॥ २२ ॥ छठी छग खंमर्मा ला०॥ ल० ॥ पद्मविजय कही ढाल ॥ ए० ॥ निमित्तियो विस्मय लह्यो ला० ॥ ल० ॥ देखी सना विशाल ॥ए०॥ २३ ॥ सर्व गाथा ॥ १०६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ सौधर्मा सरिखी सना, स्फटिक नीत अति फार ॥ रत्नधरा रलीयामणी, मनगमती मनोहार ॥ १ ॥ बेगा बांधव वेहु तिहां, सेनानी सामंत ॥ शेठ मंत्रीश्वर सामटा, मलीया बहु माहंत ॥ २ ॥ सोहे मणि सिंहासणे, पायक सेवे पाय ॥ इंड समा अवनीपति, सुर जेम सर्व सखाय ॥३ ॥ आयुध्नें अलंकारशुं, अंगरक्षक अनिराम ॥ ऊर्ध्वे आयुध्थी उद्यमी, करे रक्षा नृप काम ॥ ४ ॥ सौधर्मनें ईशान सम, चामर ढलके चार ॥ नाना देशथी नवनवां, प्राभृत आवे अपार ॥ ५ ॥ छत्र शिरें छाजे घणुं, राय तथा युवराय ॥ जयने विजयशुं जोडलुं, शशि सूरय समजाय ॥ ६ ॥ आशीर्वाद देई इश्यो,सर्वज्ञ आपो सिद्धि ॥ नव ग्रह सुख द्यो नवनवां,वली विशेषें वृद्धि ॥ ७ ॥ यतः ॥ सर्वज्ञः शिवमातनोतु सविता, चारोग्यमिंडुः श्रियं ॥ नौमः शत्रुजयं बुधश्चविशदं बोधं धियं गीःपतिः॥ सौनाग्यं नृगुजः शनिश्चविशुतां,राहुः प्रतापंश्च यं,केतुः कीर्त्तिततीः सुखानि च गुरुस्तुन्यं सदा नूपते ॥१॥

॥ ढाल सातमी ॥ प्रथम जिनेसर पूजवा ॥ ए देशी ॥

॥ नूसंज्ञायें आपतो ॥ साजन महारा ॥ वेसवा आसन ताम हो ॥ वेगे निज परिवारशुं ॥सा०॥ पूछे तव धरा स्वामि हो ॥१॥ नलें नलें आया तुमें, अम मन नाया तुमें, पंमित राया तुमें प्रीछियें ॥ साजन माहारा नांजो अम्ह संदेह हो ॥ ए आंकणी ॥ किहांना वासी किहांथी आवीया ॥ सा०॥ जावुं किहां कहो तेह हो ॥ शुं शुं जाणो शास्त्रथी ॥ सा० ॥ अम मन पूछवुं एह हो ॥न०॥२॥ विप्र कहे सुणो राजीया ॥सा०॥ वसियें सुरंगपुर गाम हो ॥ देश जोतां आव्या इहां ॥ सा० ॥ निरखवा तुमचुं गाम हो ॥ न० ॥३॥ नयन कतारथ अम थयां ॥ सा० ॥ दीठो तुम देदार हो ॥ जाणुं अष्टांग निमित्त वलें ॥ सा० ॥ त्रण काल सुविचार हो ॥ न० ॥ ४ ॥ फल मूकी

तस आगलें ॥सा०॥ अतिशय करी बहुमान हो ॥ बे त्रण प्रश्न पूछी करी ॥ सा० ॥ पूछे ते तत्त्वविज्ञान हो ॥ न० ॥ ५ ॥ देहमात्रथी भिन्न छुं ॥ ॥ सा० ॥ दोय अमें सुत दोय हो ॥ सिंहसार छे प्रथमनें ॥ सा० ॥ श्रीजयानंद बीजो होय हो ॥ न० ॥ ६ ॥ पहेलो अन्यायकारी घणो ॥ सा० ॥ काढी मूक्यो अमें वास हो ॥ डुर्गंध मल अंगें उपज्यो ॥ सा०॥ केम नवि ल जीयें तास हो ॥ न० ॥ ७ ॥ बीजो निमित्तिये भाखीयो ॥ सा० ॥ राज्य योग्य गुणवंत हो ॥ सहु जननें घणुं वालहो ॥ सा० ॥ ॥ जीवथी अधिक कहंत हो ॥ न० ॥ ८ ॥ कल्पवृक्ष अंकूर ज्युं ॥ सा० ॥ राखीयें यत्न अपार हो ॥ पण कूड कपटथी भाइनें ॥ सा० ॥ लेई गयो सिंहसार हो ॥ ॥ न० ॥ ए॥ ते पण सरल हृदयथकी ॥ सा० ॥ वगर कहे तेह साथ हो ॥ चाल्यो खोल करी घणी ॥ सा० ॥ पण आव्यो नवि हाथ हो ॥ न० ॥ ॥१०॥ विशालपुरें तेह सांभल्या ॥ सा० ॥ करता कला अभ्यास हो ॥ उवेख्या अमें सहजथी ॥सा०॥ तिहांथी गया कोइ वास हो ॥ न० ॥ ११ ॥ खबर न लाधी तेहनी ॥ सा० ॥ काम नहीं सिंहसार हो ॥ श्रीजयानंद जड्यो नही ॥ सा० ॥ जेम समुडें रत्नसार हो ॥ न० ॥ १२ ॥ तेणें अमें डुःखीया बहु अछुं ॥ सा० ॥ निमित्त प्रमुख जोइ जाण हो ॥ मिलन आशायें जीवियें ॥ सा० ॥ स्वास मात्र धरुं प्राण, हो ॥न०॥१३ ॥ निमित्त शकुनने स्वपननी ॥सा०॥ अंग फुरण वली जेह हो ॥ देव उपासनथी कहो ॥ सा० ॥ क्षेम प्रमुख होये तेह हो ॥ न० ॥ १४ ॥ आव्यो नही घर ए वली ॥सा०॥ शुद्धि मात्र नवि लद्ध हो ॥ आवे तो राज्य थापी अमें ॥सा०॥ तपोवन दृष्टिबद्ध हो ॥ न० ॥ १५ ॥ साथें नीकलवा कारणें ॥ सा० ॥ राज्य लीये नवि नाथ हो ॥ तप वय जाप अमारडुं ॥ सा० ॥ तेणें अम मन खेदाय हो ॥ न० ॥ १६ ॥ हय गय रथ गयां वाहुडे ॥ सा० ॥ इव्य कुटुंब परिवार हो ॥ पण नरभव नवि वाहुडे ॥सा०॥ तेणें विनति अवधार हो ॥ न० ॥ १७ ॥ जीवे छे के नही ते कहो ॥सा०॥ किहां छे ते मलशे केम हो ॥ मलशे केवारें ते कहो ॥सा०॥ आणी अम पर प्रेम हो ॥ ॥न०॥१८॥ एम कही पुत्र वियोगथी ॥सा०॥ रुदन करे नरराय हो ॥ दग्ध पत्तर जलयोगथी ॥ सा० ॥ जेणी परें धूम वमाय हो ॥ न० ॥ १ए ॥ चडबुद्धि आमंबर करी ॥सा०॥ मांमी लगन धरी ध्यान हो ॥ कहे नृपने

खेद कां करो ॥ सा० ॥ पुत्रवियोग चित्त आण हो ॥ न० ॥ २० ॥ पुत्र सुखी छे तुम तणो ॥सा० ॥ नांखुं लगन विन्नाण हो ॥ चोथाना स्वामीना योगथी ॥ सा० ॥ सुख पामे अप्रमाण हो ॥न०॥२१ ॥ दशमपतिनी दृष्टि छे ॥सा०॥ भोगवे राज्य महंत हो ॥ वली तेम सप्तम पति देखे ॥सा०॥ तेम त्रण ग्रह देखंत हो ॥न०॥२२॥ नरपति पुत्री त्रणनो ॥ सा० ॥ ए जोगें भरतार हो ॥ सांभली नृप आणंदियो ॥ सा० ॥ पूछे वलीय विचार हो ॥ न० ॥ २३ ॥ कहो किहां छे तव निमित्तियो ॥ सा० ॥ मेषादिक गणी राशि हो ॥ होठ फरकावी बोलीयो ॥सा० ॥ लखमीपुर वसे वास हो ॥ ॥ न०॥२४ ॥ पूतलीनें नृप वयण ते ॥सा०॥ मलियो एकाकार हो ॥ वर्ण संस्थाननें वय कहे ॥ सा० ॥ सांभली हर्ष अपार हो ॥ न० ॥ २५ ॥ दो य भाई तव वरसता ॥ सा० ॥ कनकमणि अलंकार हो ॥ वस्त्र तथा फल फूलनी ॥सा० ॥ वृष्टि करी श्रीकार हो ॥ न० ॥ २६ ॥छठे खंमें सातमी ॥ ॥ सा० ॥ श्रीजयानंदनें रास हो ॥ पद्मविजयें कही ढाल ए ॥सा०॥ सुण तां लील विलास हो ॥ न० ॥ २७ ॥ सर्वगाथा ॥ २२० ॥

॥ दोहा ॥

॥ राय विसर्ज्यो रीतिशुं, चंडबुद्धि चल्यो जाय॥ महीपतिनी ते मार्गमां, श्लाघा करे समवाय ॥ १ ॥ अहो उदारता एहनी, अहो अम्ह भाग्य अ मान ॥ अद्भुत वचन कला इसी, दाखवी जेणें लह्युं दान ॥ २ ॥ लखमी पुरें लीलाथकी, श्रीपतिराय सकाश ॥ नवमे दिन आवी नमे, पूछे नृप तस पास ॥ ३ ॥ हर्षवंत होंशें करी, वारू कह्युं वृत्तांत ॥ दानभिन्न भिन्न दाखवे, धनद परें धीवंत ॥ ४ ॥ बाप तिस्या बेटा होये, एह वात खरी अत्र ॥ कुमर दानमांहें किश्युं, चित्रकारी जे चरित्र ॥ ५ ॥ कहे हांसीथी केई जना, ए सघलो आरंभ ॥ हेतें चित्रबुद्धि हतो, एहमां नांहि अचंभ ॥६॥

॥ ढाल आठमी ॥ साहेबजी श्रीसिद्धाचल भेटीयें हो लाल ॥ ए देशी ॥

॥ साहेबजी॥ खेद आणंद विस्मय घणो होजी,बहु रस मय थयुं चित्त साहेबजी ॥ साहेबजी ॥ नृपति नवि बोली शके होजी,एणे समे सुणो शुभ रीत सा० ॥१ ॥सा०॥ पुण्यवंत एम परखीयें होजी ॥ ए आंकणी ॥ सा०॥ श्रीजयानंदनें तेडवा होजी, पुरुष आव्या परधान सा० ॥ सा० ॥ श्रीजय रायें मोकल्या होजी, उभा गोपुर थान सा० ॥ २ ॥ सा०॥ पुण्य०॥ सा०॥

एम पोलीये नृप वीनव्यो होजी, नृप कहे मोकल वेग सा०॥ सा०॥ चेत्री सहित ते आविया होजी, वस्त्र आजरणें सतेग सा० ॥ ३॥ सा० ॥ पु०॥ सा० ॥ नृप नमी उचितासनें होजी, बेठा तव नरराय ॥ सा० ॥ सा०॥ क्षेम कुशल पूछे तदा होजी, प्रीति घणी परखाय सा०॥ ४ ॥ सा०॥ पु०॥ सा० ॥ ते नृपनें एम विनवे होजी, तुम मित्र नृप युवराय ॥ सा०॥ सा०॥ कुशली पुरजनशुं अछे होजी, वरते छे सुख साय सा० ॥ ५ ॥ सा०॥ पु० ॥ सा० ॥ तेहुयें एम कहेवराविशुं होजी, सांजलो स्नेह रसाल ॥ सा० ।। सा० ॥ श्रीजयानंद अम जीव छे होजी, कल्पवृक्षनी माल सा०॥ ॥ ६ ॥ सा० ॥ पु०॥ सा० ॥ तुमें उन्नति एहनी करी होजी, निमित्तियानें वयण सा० ॥ सा० ॥ जाण्युं अमें जली रीतिशुं होजी, तुमें अमचा खरा सयण सा० ॥ ७ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ चंद सूरय लगें थिर करी हो जी, अम्ह कुलशुं तुम प्रीति सा०॥ सा०॥ मोकलो अम पासें हवे होजी, तो मानुं दीध जीवित सा० ॥ ८ ॥ सा० ॥पु० ॥ सा० ॥ अमें वियोगें त पाड्या होजी, शीतल करो तुमें ज्रात सा० ॥ सा० ॥ नहीं उपकार वीसारीयें होजी, त्रीजा ज्रात अम ख्यात सा० ॥ ए ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ अम्ह सम काम कहेजो सदा होजी, सांजली कहे जूपाल सा० ॥ सा० ॥ तुम वच अमृत अजिनवुं होजी, पीतां थांउं तृपाल सा० ॥ १० ॥सा०॥ ॥ पु० ॥ सा० ॥ तुमें कह्युं ते रूडुं थशे होजी, रयण अमूलक सार सा० ॥ सा० ॥ जेटणुं लेवे नरपति होजी, जे तेणें कीधुं उदार सा० ॥ ११ ॥ ॥सा०॥पु०॥सा०॥ तास उतारो करावियो होजी,मोकल्या कुंअर पास॥सा० ॥ सा० ॥ प्रतिहारें जणाव्युं सवे होजी, कुमरनें धरो उल्लास सा०॥१२॥ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ प्रणमे ते नर जेटले होजी, कुमर सजामां ताम सा० ॥ सा० ॥ उजा थई मलिया सहु होजी, जिन्न जिन्न उलखी नाम सा० ॥ १३ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ हर्ष तणा आंसु जरे होजी,आसनें बेशीने वात सा० ॥ सा० ॥ पितृ पितृज्राता जणी होजी, पूछे कुशल सु खशात सा० ॥ १४ ॥ सा० ॥पु० ॥ सा० ॥ साते सुख छे तेहनें होजी, पण एक तुम वियोग सा० ॥ सा० ॥ ते पीडे नृपनें घणुं होजी, संजारे बहु लोग सा० ॥ १५॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ जाणजो पत्रथकी सहु होजी, एम कही आपे लेख सा० ॥ सा० ॥ कुमर चढावी मस्तकें होजी,

वांचे हर्ष विशेष सा० ॥ १६ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ स्वस्तिश्री नमी देवनें होजी, जे सर्वज्ञ महेश सा० ॥ सा० ॥ होंशें विजय पाटणपकी होजी, श्रीजयनाम नरेश सा० ॥१७॥ सा०॥ पु० ॥ सा० ॥ श्रीविजयनाई सह लिख्यो होजी, लखमी पुरवर गाम सा० ॥सा० ॥ मंदिर मालिये सोहतुं होजी, तिहां श्रीजयानंद नाम सा० ॥ १८ ॥ सा० ॥ पु० ॥सा० ॥ तेह कुमरनें स्नेहथी होजी, हर्षे आलिंगन देय सा० ॥ सा० ॥ नांखुं खेम कुशल अछे होजी, तुम खेम कुशलनुं ध्येय ॥ सा० ॥१९ ॥ सा०॥ पु० ॥सा०॥ समाचार एक प्रीछजो होजी, विगर जणावें अम सा० ॥ सा०॥ सिंहसार साथें गया होजी, करवुं न घटे तुम सा० ॥ २० ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ खलसंग करवो नवि घटे होजी,सज्जननें दुःखदाय सा० ॥ सा० ॥ राज्यनो जीवित तुं अछे होजी, खेद घणो अम थाय सा० ॥ २१ ॥ सा०॥पु०॥ ॥ सा० ॥ संपदा तुं पाम्यो घणी होजी, अम संनारे न केम सा० ॥ सा० ॥ जगत्नो एह स्वनाव छे होजी, पण तुज न घटे एम सा० ॥ २२ ॥ सा० ॥ ॥ पु० ॥ सा० ॥ महोटा मोहोटा लही होजी, अधिक पुष्टि करे तात सा०॥ ॥ सा० ॥ अधिक उदय लही चंद्रमा होजी, समुद्र पुष्ट करे जात सा० ॥ ॥ २३ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ कष्टें दिवस अमें काढीयें होजी, तुज विरहो दुःखदाय सा० ॥ सा० ॥ राज्यधुरा नवि वही शकुं होजी, गलियो बलद जेम गाय सा० ॥ २४ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ सहाय करो आवी हवे होजी, जो होय अह्म परें नक्ति सा० ॥ सा० ॥ तो महा नृपनपरें तुमें होजी, देखाडो निज शक्ति सा० ॥ २५ ॥ सा० ॥ पु० ॥ सा० ॥ वांची पत्रनें आवजो होजी, पाणी पीजो अम देख सा० ॥ सा० ॥ ए लिख्युं सहस्स गुणुं जाण जो होजी, शुं घणुं लखीयें विशेष सा० ॥ २६ ॥ सा०॥ पु०॥ ॥ सा० ॥ छठे खंडे आठमी होजी, पद्मविजय कही ढाल सा० ॥ सा० ॥ श्रीजयानंदना रासमां होजी,सुणतां मंगलमाल सा०॥ २७॥सा०॥पु०॥२५३॥

॥ दोहा ॥

॥ वांची पत्र विवेकशुं, चिंतवे चित्त मझार ॥ तातनें दुःख देवा तणुं, कारण थयो करार ॥ १ ॥ वारू अचेतन वृक्ष ते, पत्र पल्लव पथराय ॥ पंथी रविकर तापिया,सघलानें सुखदाय ॥२॥ संपदा लही स्वपिता नणी, सुखकर न थयो सङ्ग ॥ दुःख वियोगनुं दाखियुं, रह्यो नहुं निज रङ्ग ॥

॥ ३ ॥ जइ सुख करियें जोपणुं, एणी पेरें करी आलोच ॥ स्नान नोजन साथें करे,वर पुरुषाणुं विकोच ॥४॥ वेत्रीयें वात सवे वदी,नरपतिनें निर्धार॥ राजा चिंते रागथी,किमहिक जाशे कुमार ॥५॥ मुज नरें कही ते सहु नली, तेहे पितरियो तात ॥ रहेशे नहीं मुज राज्यनो, वृद्धि कारक विख्यात ॥६॥

॥ ढाल नवमी ॥ सासू पूछे रे वहुअर वात,माला किहां छे रे ॥ ए देशी ॥

॥ राजा चिंते स्वजनके वयरी,वाला महारा॥कोण जाणे थशे केहवो रे ॥ सोनागी प्रियदर्शन सुखकर, जगमां न जडे एहवो रे ॥ १ ॥ कहो केम करीयें रे, जेम तेम करीनें एह,समजावी धरीयें रे ॥ ए आंकणी ॥ चिंतामणि मुज हाथें चढीयो,वा० ॥ में मूर्ख ते हाखो रे ॥ अज्ञानें अमृत ढांकीनें, प्रतिकुल कखो न विचाखो रे ॥ क० ॥ २ ॥ महाप्रनावी विश्वमां नूषण,वा० ॥ पुरुष रतन नवि जाएयो रे ॥ पूतली जेह अचेतन ते पण, स्तवती मन नवि आएयो रे ॥ क०॥३॥ पुत्री विधवा आपद न गणी, वा०॥ राज्यविरोध अनेक रे ॥ पुरुष चिंतामणि हाणी में न गणी, सघलो गयो विवेक रे॥ क० ॥ ४ ॥ एम चिंतवतां हृदय संघटथी, वा० ॥ मूर्छा पाम्यो राय रे ॥ पडियो पृथिवीयें सिंहासनथी, मंत्री प्रमुख अकुलाय रे ॥ क०॥ ॥ ५ ॥ शीतल उपचारें थयो साजो, वा० ॥ पूछे सहुशुं एह रे ॥ नरपति निज कुकर्म ते निंदे, परपदमां कहे तेह रे ॥ क०॥ ६ ॥ सुणो सहु क्रूर हुं कुकर्म करतां, वा० ॥ अविवेकी अज्ञान रे ॥ कृतघ्नी मुज सरिखो नहीं जग मां, ए सम नहीं परधान रे ॥ क० ॥ ७ ॥ मुज अपराधीनी नहीं शुद्धि, वा० ॥ मरण विना कोइ रीतें रे ॥ खड्ग काढीनें मरण करेवा, वा०॥ मूके निज गले नीतें रे ॥ क० ॥ ८ ॥ सचिवें फूंटावी खड्ग ते लीधुं,वा० ॥ शत बुद्धि तव बोले रे ॥ शुं असमंजस राजन मांड्युं,कोइ नहीं तुम तोलें रे॥ क० ॥ ए ॥ न्यायी धर्म उन्नति तुमें करता, वा० ॥ विश्वतणो आधार रे ॥ नोलाशे मरवा केम इछो, कर्म तणा सहु प्रकार रे ॥ १० ॥ यतः ॥ कस्य त्राम्यति नो बुद्धिः,कर्मणा को न खंमितः ॥ नामुंचत् त्रातरं हंतुं, चक्रि किं नरताधिपः ॥ १ ॥ पूर्व ढाल ॥ शास्त्र जाण पण करमें मुंजे, वा०॥ निंदा प्रशंसा थाय रे ॥ पापनी शुद्धि मरणें न होये, तपथी कर्म सवि जाय रे ॥ क० ॥ ११ ॥ आत्मप्रदेशें कर्म रह्युं छे, वा० ॥ मरण शरीर विनाश रे॥ पाप टालो प्रायश्चित्त आदरी, जाई गुरुनें पास रे ॥ क० १२ ॥ जीवतां ए

सवि वात निपजाये, वा० ॥ तेणें चिरंजीवो स्वामी रे ॥ एम कह्युं पण नाना विकल्प, न करे जोजन पामी रे ॥ क० ॥१३॥ ते सांजलीनें पुत्रीयो आवी, वा० ॥ प्रणमी एणी परें जासे रे ॥ न घटे तात ए तुमनें करवुं,दोष नहीं तुम पासें रे ॥ क० ॥१४॥ ए कारय सवि खलसंगतिनुं, वा०॥ नित्य वहे गिरिमां पाणी रे ॥ कठिन हतो पण खाडा पाडे,ए केम वात न जाणी रे ॥ क० ॥ १५ ॥ नीचुं वदन करी कहे राजा वा० ॥ दूर रहीनें बोलो रे ॥ मुख न देखाडी शकीयें तुमनें,केम मुजनें तुमें जीलो रे ॥क० ॥१६॥ में तुम विधवापणुं उवेखी, वा० ॥ काम कर्युं में जूंमुं रे ॥ तुमनें जमाइनें मुखशुं देखाडुं, कहो में कर्युं शुं रूडुं रे ॥क०॥ १७ ॥ कुमरी कहे श्यो खेद करो हो, वा०॥ तुमें धन खरची अमनें रे ॥ कला जणावी निपुण करी घणुं, ए शोजा सवि तमनें रे ॥ क० ॥ १८ ॥ अमची प्रतिज्ञानो जे सागर वा० ॥ विश्वोत्तम ए टाली रे ॥ कोण पूरत ए वातनो मनमां,हरख करो हो संजाली रे ॥ क० ॥ १ए॥ ठोरु कठोरु होये पण मावित्र, वा० ॥ हीणां न होये क्यारें रे ॥ ते विपरीत करंतां नृप कहे, संतोष्यो सुप्रकारें रे ॥क०॥२०॥ पण लाजुं हुं जमाईथी अधिको, वा० ॥ सांजली गइ पति पासें रे ॥ वात सुणावी मोकले पतिने,ते पण आवे उल्लासें रे ॥क०॥ २१ ॥ लज्जानम्र नृपतिनें प्रणमी वा०॥ कहे मुख एणी परें वाणी रे ॥ कन्या त्रणनें राज्य दीधुं तुमें, सागर सम तुमें प्राणी रे॥ क० ॥ २२ ॥ एक खलित खलना प्रेखाथी, वा० ॥ विधिवशथी थयुं एहवुं रे ॥ ज्रांतिथकी कहो कोण न जूले,तो डुःख करवुं केहेवुं रे ॥क०॥ २३ ॥ पश्चात्तापें कर्म खपे वली,वा० ॥ जेम बाहुबली जरत रे ॥ घात उद्यम ते पश्चात्तापें, कर्म विलय थया तरत रे ॥क०॥२४ ॥ म करो खेद नें काम करो निज,वा०॥ स्वस्थ तुमें जब थाउ रे ॥ परजा स्वस्थ थाये तब सघली, एह विचार मत लाउ रे ॥क०॥ २५॥ एहवां वयण सुणी कहे नृपति, वा० ॥ तुम अमृत सम वाणी रे ॥ सांजली डुःखनो ताप गयो मुज, तुम सम को नहीं नाणी रे ॥ क० ॥ २६ ॥ जाग्यवंत तुं हुं अविवेकी, वा० ॥ जगमां जोडी न लाधे रे ॥ खलसंगति मूको तुमें कहुं छुं,ए अम हृदयमां बाधे रे ॥ क० ॥ २७॥ कुमरें मान्युं नृप प्रणमीनें, वा०॥ निजघर गया कुमार रे ॥ ठठे खंमें नवमी ढालें, पद्मविजय कहे जयकार रे ॥ क० ॥ २८ ॥ सर्वगाथा ॥ २८७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ अशन करे अण इछतो,करे न राज्यनुं काम ॥ पाप शुद्धि करवा प्रथम, धारीनें रहशो धाम ॥ १ ॥ सिंह मारवा सुजटनें, आण करे अवनीश ॥ चोर परें खर चाडीनें, राखशो मां करी रीश ॥ २ ॥ तेमज करे ते तुरतमां, जाणुं कुमरें जाम ॥ तव चिंते डुःख ताततें, उपजशे बहु आम ॥ ३ ॥ कही प्रधान मुखें कुमर, मूकावे महाजाग ॥ प्रेरणा करे प्रधान तव, लही अवसरनो लाग ॥ ४ ॥

॥ ढाल दशमी ॥ अम घर मांहव सीअलो ए ॥ ए देशी ॥

॥ कुमर पूछे तव रायनें ए, राय कहे सुणो वात ॥ साहेब सुणो सुखकरु ए ॥ प्राण अमारा लेइ चलो ए,तुम विण ते न रहात ॥सा०॥१॥ लह्या उद्वेग मुज पापथी रे, मानुं न रहे मुज पास ॥ सा० ॥ कुमर कहे तव वीकथी रे, करवा नृप उल्लास ॥ सा० ॥ २ ॥ तुमथी अधिक न तात छे ए, रहेशुं सुख आवास ॥सा०॥ करिय प्रणाम घरें गयो रे, चिंतवे ज्ञान प्रकाश ॥ सा० ॥ ३ ॥ जाणुं जो नृप उवेखीनें रे, तो करशे निजघात ॥ ॥सा०॥ राज्यनो इछक पण नथी ए, एम नजरें आयात ॥ सा० ॥ ४ ॥ जीवे मुज गुणवातथी ए, तेणें नवि मूकी जवाय ॥ सा०॥ सिंह अर्थी छे राज्यनो ए, तेणें ए करे छे उपाय ॥सा०॥५॥ तात पदें पुत्रज रहे ए, एहमां कांइ न विचार ॥ सा० ॥ संतोषाशे खल वली ए, एम चिंतवी सुप्रकार ॥सा०॥ ६ ॥ सिंहनें कहे जाई सांजलो ए, तुमें जाउ निजधाम ॥ ॥ सा० ॥ राज्य पितानुं जोगवो ए, माहारे नहीं राज्यकाम ॥ सा० ॥७॥ हुंतो रहेशुं तेणें इहां ए,एम करी मोकले तास ॥ सा० ॥ युक्ति करी सम जावीया ए, तेह प्रधाननें खास ॥सा०॥८॥ पत्र लखे निज ताततें ए, आपे प्रधाननें एह ॥ सा० ॥ सत्कारी विसर्जिया ए, सिंह संघातें तेह ॥सा० ॥ ॥ ए ॥ विजयपत्तन पोहोता वली ए, रायनें करे परणाम ॥ सा० ॥ हेतु नवि आव्या तणो ए, जांखे विस्तारें ताम ॥ सा० ॥ १० ॥ श्रीपति आग्रह सवि कह्यो ए, कुमरनां वयण रसाल ॥सा० ॥ सिंहसारनें बोलावता ए, योग्य वयणें नृपाल ॥ सा०॥ ११ ॥ आपे प्रधान कागल प्रत्यें रे, वांचतां हर्ष न माय ॥सा०॥ स्वस्तिश्री जिनवर नमी ए, विजयपत्तन वर ठाय ॥ सा० ॥ १२ ॥ पूज्य आराध्य काका प्रत्यें ए, तेम श्रीविजय निज तात

॥ सा० ॥ लखमीपुरवरथी लखे ए, श्रीजयानंद तुम जात ॥सा०॥१३॥ प्रणमी साष्टांगें भक्तिथी ए, अंजलि करी शिर गाय ॥सा०॥ विधियें विनयपथकी नमी ए, विनति करे चित्त लाय ॥सा०॥१४॥ पूज्य प्रसादें कुशल अछे ए, शुभ चिंतन अनुभाव ॥सा०॥ पूज्यप्रसाद पत्र दीजीयें ए, जेम उल्लसे मुज भाव ॥ सा० ॥ १५ ॥ कार्य सुणो समाचारनुं ए,तापित तात वियोग ॥ सा० ॥ अमृत सींचे जीवियो ए, जे तुम पत्र संयोग ॥ सा० ॥ १६ ॥ जीवीशुं हवे आगलें ए, ते तुमचे सुपसाय ॥ सा० ॥ मुज वियोग न सही शके ए, ते समजावी राय ॥ सा०॥ १७॥ थोडादिन मांहे आवशुं ए,प्रणमशुं तातना पाय ॥सा०॥ ध्यान करुं नित्य तातनुं ए, लीलामां दिन जाय ॥ सा० ॥१८॥ सिंहसारनें मोकल्यो ए, ते स्थानक उद्देश ॥सा०॥ शीखामण नित्य कहावजो ए,शिर धरुं तुम आदेश ॥सा०॥१९॥ विज्ञप्तिनें आव्या नहीं ए, हर्ष खेद घणो थाय ॥सा०॥ परिकरनें दोय बांधवा ए, सुख दुःख मिश्रित पाय ॥सा०॥२०॥ पूछयाथी तेह पुरुष कहे ए, श्रीपद्मरथ भूपाल ॥ सा० ॥ पुत्री पाणीग्रहणथी ए, मांमी कहे सुरसाल ॥ सा० ॥ २१ ॥ चरित्र कुमारनुं सांभली ए, (दुःखदायी सिंहसार,) पर्षदा तेम दोय राय ॥ सा० ॥ चित्र आनंदमयी थइ रे,कुमर प्रशंस कराय ॥ सा० ॥ २२॥ सिंहसार निंदे सहु ए,हवे नरपति देइ मान ॥सा०॥ विसर्ज्या सिंहसारशुं ए,सहु गया निज निज थान ॥सा०॥२३॥ दशमी छठा खंडमां ए,पद्मविजय कही ढाल ॥सा० ॥ श्रीजयानंदना रासमां ए,सुणतां मंगलमाल ॥सा०॥२४॥ सर्वगाथा॥३१५॥

॥ दोहा ॥

॥ एक दिन जयराजा इश्युं, चिंते चित्त मझार ॥ भाइनें राज्य भावे नहीं, कहो नवि आव्यो कुमार ॥ १ ॥ अथवा निज करें अरजतो, राज्य लखमी रणमांहि ॥ आवे केम ते इंहां कणे, आदर धरी उत्साहिं ॥ २ ॥ परअर्जित नवि मांस पण,सिंह लीये ज्युं शीयाल ॥ वय ते तप विण व्यतिक्रमे, आ भव जाये आल ॥ ३ ॥ एह राज्यनो ए धणी, निमित्तिये निरधार ॥ भाख्यो छे ते भली परें,वितथ न थाय किवार ॥ ४॥ आखे पराक्रम एहनुं, एहज अरथ अवछ्न ॥ होशे मोकल्यो सिंहनें,नृप थावाने नवछ्न ॥ ॥ ५ ॥ आपी आपद बहु एणें, महोटी जे मरणंत ॥ पापी दूरें पेखीयो, दुःखदायी जे दुरंत ॥ ६ ॥

॥ ढाल अगीयारमी ॥ गो वाछरूआं चारती, आहिरनो अवतार ॥ रूडुं गोकलीयुं ॥ ए देशी ॥

॥ आपुं राज्य हुं एहनें, चाइनें मूकुं पास ॥ एहज रूडुं ते ॥ शिक्षा देशे एहनें, मार्गे चलावशे तास ॥ ए० ॥ १ ॥ जो परजानें पीडशे,तो न वि सहेशे कुमार ॥ ए० ॥ एम चिंतवीनें थापीयो,राज्यें ते सिंहसार ॥ए० ॥ २ ॥ चाइने प्रार्थना करी, राख्या घरमां तेह ॥ ए०॥ सिंह पण आग्रह करी, काको राख्या गेह ॥ ए० ॥ ३॥ पुत्रमिलन आशयें रह्या, हवे श्री जय राजान ॥ए०॥ महाजट गुरु पासें करे, तापस व्रत आदान ॥ ए० ॥ ॥ ४ ॥ नाम रतनजट आपियुं, हवे श्रीपति जे राय ॥ ए० ॥ राज्य चिंता कांइ नवि करे, धर्मे काल गमाय ॥ ए०॥ ५ ॥ वनपालक हवे एकदा, कहे आवी राजान ॥ ए० ॥ धर्मप्रच्च सूरिवरू, पाउ धारीया उद्यान ॥ ए० ॥६॥ पूर्वें वैरागी हता, वली सांजली एह वात ॥ ए० ॥ दूधमांहे साकर परें,म नमां हर्ष न मात ॥ ए० ॥ ७ ॥ दान आपी संतोषियो, वेगे गजवर खं ध ॥ ए० ॥ कुमर सामंत मंत्री मुखा, छत्र चामर संबंध ॥ ए०॥ ८ ॥ अंते उरशुं आवीया, पंचाजिगम प्रकार ॥ ए० ॥ त्रण प्रदक्षिणा देइनें, गुरुनें करे नमस्कार ॥ ए० ॥ ए ॥ धर्मलाज गुरुयें दियो, बेसे यथोचित गय ॥ ए० ॥ धर्मदेशना गुरु दीये, धर्म सदा सुखदाय ॥ ए० ॥ १० ॥ आपद नासे वेगली, शिवसुख करतल आय ॥ ए०॥ बाह्य अंतर अरि मित्र जे, जवमां नवि उलखाय ॥ ए० ॥ ११ ॥ मोह अंतर शत्रु अछे, बाह्य जन कादिक होय ॥ए०॥ तेह तज्यां सुख उपजे,तेणें तजीयें सहु कोय ॥ए०॥१२॥ संवेगादिक मित्र जे,अंतरगुरु ते बाह्य ॥ए०॥ इह जव परजव सुख दीये,एहज जाणो ग्राह्य ॥ ए० ॥ १३ ॥ इत्यादिक सुणी देशना, अवधिज्ञानी गुरु पा स ॥ ए० ॥ प्रतिबोध्या बहु जव्यनें, पाम्या जिनधर्म वास ॥ ए० ॥ १४ ॥ केइ श्रावक केइ संयमी,केइक समकितवंत ॥ ए० ॥ केइ कंदादिक अजिग्रही, जद्रकनें गुणवंत ॥ ए० ॥ १५ ॥ नृप अति संवेगायो, चित्तमां करे वि चार ॥ए०॥ बाह्य अरि मित्रन उलख्या, अंतर वात अपार ॥ए०॥१६॥ बाह्य अंतर परिग्रह प्रत्यें, तेणें छांमी जंजाल ॥ ए० ॥ जैन दीक्षा अंगी करुं, अंतरशत्रुनें टाल ॥ ए० ॥ १७ ॥ एम चिंती गुरुनें कहे, लेउं दीक्षा तुम पास ॥ ए० ॥ पुत्र जलावें कुमरनें, थापे राज्य उल्लास ॥ ए०॥१८॥

दीक्षा लेवरावे तदा, उत्सव करी अपार ॥ ए० ॥ अमारि पढा मह्हीना लगें, संघपूजा करी सार ॥ ए० ॥ १७ ॥ अठाई मह्होत्सव करे,देइ दीननें दान ॥ ए० ॥ सूरि वचन वैराग्यनां, सांजलीयां जेणें कान ॥ ए० ॥ २० ॥ पांचशें राजकुमर तदा, तेम राणी शत पांच ॥ ए० ॥ निर्मम राज्य विषय त्यजी, मोह्ह तणो परपंच ॥ ए०॥ २१ ॥ स्नानादिक मंगल करी, वस्त्र आ जरण अनेक ॥ ए० ॥ चामर छत्र धरावतो, गज बेठो सुविवेक ॥ ए०॥ २२॥ तूर अनेक वाजी जते, अढलक देता दान ॥ ए० ॥ लोक प्रशंस करी जते, आव्या नृप उद्यान ॥ ए० ॥ २३ ॥ मंगल धवल गाई जते, गज रथ जट बहु कोडि ॥ ए० ॥ बंदी बिरुद बोली जते, देइ आशीष कर जोडि ॥ ए०॥ ॥ २४ ॥ सरवे लोक खमावीनें, लोच करी गुरुपास ॥ ए० ॥ कहे जवसा यर तारीयें, करुणानिधि आवास ॥ ए० ॥ २५ ॥ आगम विधियी दाखीया, देइ तेह्हनें उपदेश ॥ ए० ॥ किरिया शिक्षा जली परें,शास्त्र जणे सुविशेष ॥ ए० ॥ २६ ॥ जूपनें घणुं स्तवता थका, पोह्होता निज निज गेह्ह ॥ ए० ॥ श्रीजयानंद गुण रागीया, मुनि पर धरता नेह्ह ॥ ए० ॥ २७॥ ह्वे सिद्धांत जणता थका, करता उग्र विहार ॥ ए०॥ तप द्वादश जेदें करे,गीतारथ पद धार ॥ ए० ॥ २८ ॥ योग्य जाणी सूरिपद दीये, परिकर दीधो सर्व ॥ ए०॥ जव्यजीव प्रतिबोधता, विचरे मह्ही निर्गर्व ॥ ए० ॥ २९॥ जिनशासन पर जावता, लब्धि तणो जंमार ॥ ए० ॥ केवलज्ञान लही करी,शिववधू वरिया सार ॥ ए० ॥ ३० ॥ श्रीजयानंदना रासमां, छठे खंमें ढाल ॥ ए० ॥ पद्म कहे अग्यारमी, सुणतां मंगलमाल ॥ ए० ॥ ३१ ॥ सर्वगाथा ॥ ३५२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीजयानंदनी नृप सवे, सेवा करे सुखदाय ॥ विविध देशनें वश करी, राज्य वधारे राय ॥ १ ॥ जिनमत प्रौढता जगतमां, पुण्यवंत पृथिवीश॥ कर टाले न्यायज करे, दान दिये निश दीश ॥ २॥ प्रजा सुखी तव संपजे, सुर तिम सुरनो स्वामि ॥ तृण समान गणे ते तदा,मद अहंकार उदाम ॥३॥

॥ ढाल बारमी ॥ सुगुण सुगुण सोजागी जंबूद्वीपमां ह्होजी ॥ ए देशी ॥

॥ एकदिन एकदिन नृपनें वीनवे ह्होजी, आवीनें वनपाल ॥ माविंत्र मावित्र तुमचा उद्यानमां ह्होजी, आव्या छे एणे ताल ॥ ए०॥१॥ सायें सायें परिकर योडलो ह्होजी, सांजली हर्ष न माय ॥ दान दान दीये तस ह्

पेनुं होजी. अंगें पुलकित थाय ॥ ए० ॥ २ ॥ चाल्यो चाल्यो नृप पालो प को होजी,हय गय विण परिवार ॥ उत्सुक उत्सुकतायें टक्या नहीं होजी, गया उद्यान मकार ॥ए०॥३॥ हर्ष हर्ष आंसुयें पखालतो होजी, प्रणमे मा वित्र पाय ॥ देइ देइ आलिंगन चुंबता होजी, आशिष बहु दीये माय ॥ ए० ॥ ४ ॥ आनंद आनंद लहीनें पूढता होजी, खेम प्रश्नादिक वात ॥ रा णी राणी त्रणे जाणी करी होजी,आवी करे प्रणिपात ॥ ए०॥ ५ ॥ वहुरो वहुरो देखी आणंदीयां होजी,आव्यो हवे परिवार ॥ तातनें तातनें गज बेसा रिया होजी, मात सिंहासन धार ॥ ए० ॥ ६ ॥ पोतें पोतें ढत्र नृपनें धरे होजी, गौरव करी बहु मान ॥ लाव्या लाव्या नृप निजमंदिरें होजी. बेग विष्टर थान ॥ ए० ॥ ७ ॥ पाठ पाठ पीठें वेशी करी होजी, उत्संगें पद लाय ॥ देखी देखी सजा अति रीजती होजी, सहुनें करे विदाय ॥ ए० ॥ ॥ ८ ॥ पूजा पूजानें स्नान जोजन करे होजी, सायें सहु परिवार ॥ अव सरें अवसरें पूढे तातनें होजी, स्नेह जक्ति अपार ॥ए०॥ए॥ रुद्धि रुद्धिनें परिकर थोडले होजी, आववुं केम अकस्मात ॥ आंसु आंसु मिश्र आंखें कहे होजी, सांजल वत्स तुं वात ॥ ए० ॥ १० ॥ राज्य राज्य देइ सिंहसा रनें होजी, ज्राता तापस थाय ॥ थातां थातां तापस मुज वारियो होजी, सिंहें विनय देखाय ॥ ए० ॥ ११ ॥ जक्ति जक्ति देखावे तेहवी होजी, वीतो केतोक काल ॥ माया मायावीनुं मन नवि लह्युं होजी, डुष्टनुं मन विक राल ॥ ए० ॥ १२ ॥ एकदिन एकदिन आलोचन मिषें होजी, तेड्यो मुज नें एकांत ॥ हुं पण हुं पण विश्वासें गयो होजी, एकज धरी मन खांत ॥ ए०॥ १३ ॥ पूर्वें पूर्वें रचित सामग्रीयें होजी, बांधी बंधन मुज्ज ॥ बंदी बंदी खानें मुज नाखीयो होजी, तिमहिज माता तुज्ज ॥ ए०॥ १४ ॥ महारा म हारा वस्ता नाखीयां होजी,बांधी गुप्तज थान ॥ केश्क केश्क नाशीनें गया होजी, पामी अवसर तान ॥ ए० ॥ १५ ॥ माहारुं माहारुं घर लूट्युं एणें होजी, निज वश कीधलो देश ॥ चोकी चोकीमांहे हुं रहुं होजी, विवर न लहुं लवलेश ॥ ए० ॥ १६ ॥ परजा परजा बहु मुज रागिणी होजी, जाणी राज्यनो नाश ॥ तेणें ए तेणें ए काम कर्युं तृथा होजी, मिथ्या मि थ्या निवास ॥ए०॥१७॥ सेवक सेवक सुरदत्त माहरो होजी,बीजो वीरदत्त नाम ॥ माहरा माहरा जक्तिवंता घणा होजी, नाशी गया कोइ गाम ॥

ए० ॥ १७ ॥ सेवक सेवक पण मुज मित्र छे होजी, नामें नरपति धीर ॥ तेहनें तेहनें घर ते विहुं रह्या होजी, साहस वड गंभीर ॥ ए० ॥ १ए ॥ दीधी दीधी सुरंग तिहांथकी होजी, यावत गुप्ति थान ॥ काळें काळें स ज्जन नर परखीयें होजी कीधी मुज तेणें शान ॥ ए०॥ २० ॥ प्रिया प्रिया सहित मुज काढीयो होजी, लाव्या रात्रियें गेह ॥ स्वामी स्वामीनी भक्ति एम जाणीयें होजी, न गणे प्राणनो नेह ॥ ए० ॥ २१ ॥ पूर्वें पूर्वें सामग्री करी होजी, नाशी आव्या मुज संग ॥ सर्वे सर्वे सत्त्व धरी करी होजी, धरता चित्त उमंग ॥ए०॥ २२ ॥ धीर धीर शूरवीरशुं चल्या होजी,कोइक स्था नक पाम ॥ आव्या आव्या संकेतिक नर सहु होजी,यानादिकशुं ते गाम ॥ ए० ॥ २३ ॥ सज्जन सज्जन सघले माहरा होजी, आव्या अनुक्रमें एथ ॥ स्वजन स्वजन केइक छे गुप्तिमां होजी, दुःखीया छे हजी तेथ ॥ ए० ॥ २४ ॥ तेहनें तेहनें मूकाववा योग्य तुं होजी, सांभळो तेह कुमार ॥ खेद खेद प्रमोद आश्चर्यथी होजी,चिंते चित्त मझार ॥ ए० ॥ २५ ॥ कीधो कीधो उपकार में केटलो होजी,पण दुर्जन सिंहसार ॥ प्राण प्राण बहु वार उगारियें होजी, खल नवि निज निरधार ॥ ए०॥ २६ ॥ यतः ॥ धूमः पयो धरपदं कथमप्यवाप्य, वर्षांबुभिः शमयति ज्वलनस्य तापं॥दैवादवाप्य खल नीचजनःप्रतिष्ठां, प्रायः स्वबंधुजनमेव तिरस्करोति ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ खेद खेद करो शे मुज छतां होजी,करशुं सर्वनी सार ॥ देशुं देशुं शिक्षा भलि भा तिशुं होजी, जे कर्त्ता अपकार ॥ ए० ॥ २७ ॥ करशुं करशुं प्रसाद ते उपरें होजी, जेणें तुम कस्यो उपकार ॥ त्रणे त्रणे सुभट बोलाविया होजी,गुण स्तवे वारं वार ॥ए०॥२७॥ स्वामी स्वामी भक्ता तुम सत्त्वनें होजी,वरणवीयें कहो केम ॥ तेहना तेहना कुटुंबनें तेडीनें होजी,करे सत्कार ते एम ॥ए० ॥२ए॥ वस्त्र वस्त्र आभरणादिक घणां होजी,दीये प्रत्येकें तास ॥ देश देश एकेक दिये त्रणनें होजी, ते लह्या हर्ष उल्लास ॥ए०॥३०॥ यतः ॥ सुवर्ण पुष्पां पृथिवी, मुच्चिन्वंति नरास्त्रयं॥शूरश्चकृतविद्यश्च,यश्चजानाति सेवितुं॥१॥ ॥ पूर्वढाल ॥ निजवश निजवश देश ते जइ करे होजी,सेवे दोय राजान॥ बीजा बीजा साथें आव्या तेहनें होजी,करता ग्रासनुं दान ॥ए०॥३१॥ छठे छठे खंमें बारमी होजी, पद्में भाखी ए ढाल ॥ सुणजो सुणजो श्रीजयानं दना होजी, रासमां वात रसाल ॥ ए० ॥ ३२ ॥ सर्वगाथा ॥ ३०७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ शीखामण सिंहसारनें, श्रीजयानंद सनूर ॥ माणस निज मूकावबा, दूत मोकले दूर ॥ १ ॥ विसंजयपुरें जइ वेगणुं, कहेजे एणीपरें काम ॥ राज्य भ्रंश नप राखीनें, हाथें थयो हराम ॥ २ ॥ तें दीधुं डुःख तातनें,लोपी सहुनी लाज ॥ राज्य थाप्यो में रंगणुं, कीधुं अवलुं काज ॥३॥ देइनें आदान करुं, वारू नहीं ए वात ॥ मूकजे स्वजन ते माहरां, आगल सुणी अवदात ॥ ४ ॥ हरिनुं मांस जंबूक हरे, कहेवी वात कहाय ॥ न मूके तो निग्रह करुं, एहमां नहीं अन्याय ॥ ५ ॥ कूतरो पय कुत्सित करे, ताडना पामे तेह ॥ लेख लखी एम मोकले, आगल कहुं वली एह ॥ ६ ॥

॥ ढाल तेरमी ॥ मनमोहन मनमोहन पावन देहडीजी ॥ ए देशी ॥

॥ वली सुणजे वली सुणजे महारा तातनुंजी, लूंटयुं धन लूंटयुं धन तें अणी वंध हो ॥ तिम स्वजन तिम स्वजननें सत्कारी घणुंजी, मोकलजे मोकलजे टाली धंध हो ॥ १ ॥ जगमांहे जगमांहे श्रीजयानंद जयोजी ॥ ए आंकणी ॥ एम न करे एम न करे तो युद्धने सज थजे जी, दूतमुखथी दूतमुखथी जाणे सिंहसार हो ॥ वांची पत्र वांची पत्रनें कंप्यो हृदयमां जी, नयनीत नयनीत थयो ते अपार हो ॥ ज० ॥ २ ॥ श्रीविजय श्रीविजयरायनुं धन सवेजी,वली स्वजन वली स्वजननें दिये बहुमान हो ॥ वली भेटणुं वली भेटणुं श्रीजयानंदनेंजी, लखे लेख लखे लेख मूकी अभिमान हो ॥ ज० ॥ ३ ॥ देश नृपनो देश नृपनो पाछो आपीयोजी, दूतनें कहे दूतनें कहे नरम वचन्न हो ॥ दूत स्वजन दूत स्वजन पोहोता सहु नृपकनेजी, वात सघली वात सघली सुणे नृप कन्न हो ॥ज०॥४॥देखी जाणी देखी जाणीनें हरखें ते बिहुंजी,नृप आपे नृप आपे स्वजननें देश हो ॥ एक दिवसें एक दिवसें श्रीजयानंदनेंजी, माय ताय माय ताय पूछे सुविशेष हो ॥ ज० ॥ ५ ॥ विजयपुरथी विजयपुरथी गया ते दिनथकीजी, कहो चरित्र कहो चरित्र जे निपन्युं तुम्म हो ॥ इछाविण इछाविण तात आणाथकी जी, कहे कुमर कहे कुमर चरित्र सुणो अम्म हो ॥ ज०॥ ६ ॥ सुणी मावित्र सुणी मावित्र आणंदमय थयांजी, सुतनकें सुतनकें श्रीविजय राय हो ॥ चित्त चमक्या चित्त चमक्या बहु नृप सेवतांजी, काढे सुखमां काढे सुखमां काल अमाय हो ॥ ज० ॥ ७ ॥ सतांग सतांग राज्यनें पालता

जी, निज अर्जित निज अर्जित राज्य विशाल हो ॥ निज तातनें निज तातनें आग्रह बहु करीजी,राज्य आपे राज्य आपे सुत नूपाल हो॥ज०॥७॥ नृप उत्तम नृप उत्तमनें निरीह घणो जी ॥ पुत्र प्रेम पुत्र प्रेम दाक्षिण्यें तेह हो॥ करे अंगी करे अंगीनें श्रीजयानंदनेंजी, युवराज्यें युवराज्यें ठवे ससनेह हो ॥ज०॥ ए ॥ कोइ आणा कोइ आणा न लोपे ते बिहु तणीजी, समसिंहासनें समसिंहासनें बेसंत हो ॥ वेष नूपण वेष नूपण न्याय तेजें करीजी, दोय सरिखा दोय सरिखा महापुण्यवंत हो ॥ज०॥१०॥ नीमकांत नीमकांत गुणें दोय सोहताजी, चंद सूरय चंद सूरय के दोय इंद हो ॥ पिता पुत्र पिता पुत्रस्नेही सुखमां रहेजी ॥ एक दिवस एक दिवस श्रीश्रीजयानंद हो ॥ ज० ॥ ११ ॥ देश साधवा देश साधवानी इछा करीजी, राज्य चिंता राज्यचिंता पिता शिर थापी हो ॥ शक्र विक्रम शक्रविक्रम राज्य चूडामणिजी, सहु नृपमां सहु नृपमां अति परताप हो ॥ ज०॥ १२ ॥ मध्य खंमें मध्यखंमें लीलायें साधीयोजी, चक्रपुरनो चक्रपुरनो नृप चक्रसेन हो॥ जयपुरनो जयपुरनो जयी शत्रुजय करेजी, अति बलीयो अति बलीयो जीतायें केन हो ॥ ज० ॥ १३ ॥ जयंती जयंती नयरीनो धणी जी, जयंत जयंत शत्रु करे अंत हो ॥ पुरंदरपुर पुरंदरपुर पति नरकेशरी जी, नीमराजा नीमराजा नोगवती कंत हो ॥ ज० ॥ १४ ॥ सुमंगल सुमंगल कौशलनो पति जी, नंदीपुरनो नंदीपुरनो नरपति नंद हो ॥ सूर्यपुरनो सूर्यपुरनो सुरमही पतीजी, वली पृथिवी वली पृथिवीचंद कलाचंद हो ॥ज०॥१५॥ रूपराजा रूपराजा प्रमुख सेवक कस्याजी, एम साधी एम साधी नूप अनेक हो ॥ सैन्य सायर सैन्य सायर लइनें आवीयाजी, मध्यखंम मध्यखंम साधी सुविवेक हो॥ज०॥१६॥ तात प्रणमे तात प्रणमे निजपुर आवीनें जी, सेवा करता सेवा करता निर अहंकार हो ॥ राजराजा राजराजा नो बिरुद वहेतो थकोजी, प्रसिद्धि प्रसिद्धि लहे सुविस्तार हो ॥ ज० ॥ ॥ १७ ॥ ससरानें ससरानें पासेंथी तेडावतो जी, निजपरणी निजपरणी पूरवली नारि हो ॥ लेखमांहे लेखमांहे निशानी प्रमुख लखीजी, ससरा पण ससरा पण सुणीअ तिवार हो ॥ ज० ॥ १८ ॥ प्रछुरीतें प्रछुरीतें सेववो एहनें जी, सज्जनाइयें सज्जनाइयें सेववो सार हो ॥ एम चिंतवी एम चिंतवी सहु लइ नेटणां जी, निजकुमरी निजकुमरी लेई हार हो ॥ज०॥

॥१९॥ मणिमंजरी मणिमंजरी लेइ आवीयो जी,श्रीविशाल श्रीविशाल पुरनो नाथ हो ॥ अंतेउर अंतेउरशुं आवी नमेजी, दीये पुत्री दीये पुत्री हाथो हाथ हो ॥ ज० ॥ २० ॥ हेमपुर हेमपुर धणी सौनाग्यमंजरी जी, पद्मर थनृप पद्मरथनृप आवे वेग हो ॥ निज विजय निज विजयसुंदरी लावि यो जी, अंतेउर अंतेउर लेइ सतेग हो ॥ ज०॥ २१ ॥ कमलप्रन कमलप्रन लेइ निज कुंवरीजी, कमलसुंदरी कमलसुंदरी रति अनुहार हो ॥ श्रीजय प ण श्रीजय पण आदर आपता जी, वासग्राम वासग्राम आपे तस सार हो ॥ ज० ॥ २२ ॥ रमणीशुं रमणीशुं रमतो नित्यप्रत्येंजी, राज्य सोंपी रा ज्य सोंपी तातनें ताम हो ॥ श्रीजय पण श्रीजय पण नूपति रंगशुंजी, सुख नोगवे सुख नोगवे अति उद्दाम हो ॥ ज० ॥ २३ ॥ तस शोना तस शोना सिरिवल देखीनेंजी, ससरादिक ससरादिक लहे चमत्कार हो ॥ बठे खंमें बठे खंमें ढाल ते तेरमीजी,कहे पद्म कहे पद्म सुणो जयकार हो॥२४॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीजयानंद सना करी, तातशुं वेगा ताम ॥ ससरा प्रमुख मलि स वे, अचरिज लहे अनिराम ॥ १ ॥ एणे अवसर तिहां आवीयो,दूरदेशथी दक्ष ॥ गायन पेटक गुणी घणुं, सुकंठ तेहमां सुलक्ष ॥ २ ॥ मधुरध्वनि गाये मोजमां,वली एक तेहनें वाम ॥ सर्वकला सावधान जे,गीतना स्वरनें ग्राम ॥ ३ ॥ नरताशुं गावा नणी,तुरत मेलवे तान ॥ राजसनामां रंगशुं, आव्या अवसर जाण ॥ ४ ॥

॥ ढाल चौदमी ॥ मोहनगारा हो राज, रूडा माहारा सांजल सुगुणा सूडा ॥ ए देशी ॥

॥ सुगुण सौनागी हो राज, वारू म्हारुं गीत सुणो सुखकारू ॥ ए आं कणी ॥ पदमरथ राजा तणीजी, पुत्री दोय निधान ॥ लघु आपी तिहां निलनें जी,इतर दीधी राजान के ॥ सु० ॥ १ ॥ तिहांथी मांमीनें कहेजी, गायन घर गई जाव ॥ सुख डुःख पूर्वेनुं सांनखुंजी, रुदन कर्युं तेणें ताव के ॥ सु० ॥ २ ॥ सुकंठ कहे रोवे किश्युंजी, रंगमांहें करे नंग ॥ आ अवसर ठे दाननोजी, साजन मलियो संग के ॥ सु० ॥ ३ ॥ यतः ॥ तुह गीय गु णेण रंजिआ, सुचिरं सुंदरी कामदायया ॥ कह रोइसि डब्रया खया, व सरे नो सुलहो खणो पुणो ॥१॥ पूर्वढाल ॥ रोवुं मूकी गायतीजी, किम

कहि गदगद वाणी ॥ गीतनां बलथी सर्वनेंजी, चित्रकारी गाय गान के ॥ ॥ सु० ॥ ४ ॥ तथाहि ॥ किहपउम पुर किह पउमपहु, किह पिअडा नं गिण निन्न गहु ॥ जयसुंदरि गायण घरिहिं गया, इह गायइ धणकज्जि द इव हया ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ निज नरतार अनिधा सुणी जी,विस्मित पद्म रथ राय ॥ चोंपथी जूवे नृप जेटले जी, निजसुता उलखे ताय के ॥ सु० ॥ ॥ ५ ॥ वत्स वत्स रे तुं किहांजी, केम आवी इंण गाय ॥ एम विलपती वलगी गलेजी, आवी एहनी माय के ॥ सु० ॥ ६ ॥ वेहु परस्पर रोवतां जी, आव्यो तेहनो ताय ॥ ते पण उलखी रोवतां जी, प्रणमे तातना पाय के ॥ सु० ॥ ७ ॥ करुणामय ते सन्ना थइजी, जाणवा तत्त्वस्वरूप ॥ नृपनें पूछे ए किश्युं जी, तव नांखे एम नृप के ॥ सु० ॥ ८ ॥ वे कन्या मुज तेह नें जी, आपी समस्या एक, पूरी अनुकूल पहेलीयें जी, चित्तमां धरीय वि वेक के ॥ सु० ॥ ९ ॥ वीजी प्रतिकूल पूरती जी, रीश चढी मुज ताम ॥ कारिमा निन्ननणी तदा जी, आपी हीणे गाम के ॥ सु० ॥ १० ॥ तूठे ज यसुंदरी नणीजी, नरकेशरी नृप जात ॥ आपी हर्षे राखीयो जी, केइक दिन वहीजात के ॥ सु० ॥ ११ ॥ शीख दीधी में एकदा जी, लेइ प्रिया ग यो वेर ॥ गातां हमणां उलखी जी, जयसुंदरी एणी पेर के ॥ सु० ॥ १२ ॥ स्वर अनुसारें जाणीयें जी,पुत्री दुःखमां लीन ॥ आगल हुं जाणुं नहीं जी, एहज कहेशे अहीन के ॥ सु० ॥ १३॥ नृप आणाथी सा कहे जी, नर्त्ताशुं निज सहेर ॥ नोग क्रीडा मुजशुं करेजी, अति आसक्त निजवेर के ॥ सु० ॥ १४ ॥ वसंत ऋतुमां अन्यदा जी, कुसुमाकर उद्यान ॥ दोय गाउ ते नय रथी जी, रमवा गयां तेणे थान के ॥ सु० ॥ १५ ॥ क्रीडाघर तिहां सुंदरु जी, ढांकी कुसुमनी माल ॥ रंनास्तंनें सोहतुं जी, दीसे शय्या सुकुमाल के ॥ सु० ॥ १६ ॥ नोग सामग्री लेइ सवे जी, दोय मासनें काज ॥ दूर सु नट चोकी रह्या जी, दासी वृंद चिहुं पाज के ॥ सु० ॥ १७ ॥ गीत नाटक वारांगना जी, करती अतिहिं रसाल ॥ नोगालक्तमां एणी परेंजी, काढे रीज मां काल के ॥ सु० ॥ १८ ॥ एणें अवसर हवे अन्यदा जी, सहसकूटनो स्वामी ॥ सैन्य सहित तिहां आवीयो जी, महासेन एणें नाम के ॥ सु० ॥ ॥ १९ ॥ लुंटवा कोइक गामनें जी, पण तस हुवो जाण ॥ खाली आव्या ते फरीजी, आव्या अम तेणें टाण के ॥ सु० ॥ २० ॥ तुम जमाइ लडवा ग

याजी, रात्रि समे तव तेह ॥ नाठो जमाइ तुम तणोजी, लूंटशुं कलीनुं गेह के ॥ सु० ॥ २१ ॥ मुज पकडी लेइ गयो जी, कहे मुज करशुं नार ॥ शील भंगना जयथकी जी.त्रण दिन कीधो न आहार के ॥सु०॥२२ ॥ पल्लिपति कहे तुऊने जी, आपशुं तुज जरतार ॥ धन लेइ तेणें कारणे जी, कर हुं सुखमां आहार के ॥ सु०॥ २३ ॥ जाणी समाधान में कह्युंजी, आहार धरी विशवास ॥ हवे जे आगल नीपजे जी, ते सुणो कर्म विलास के ॥ सु० ॥ ॥ २४ ॥ छठे खंमें चौदमी जी, पद्मविजयें कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रा समां जी, आगल वात रसाल के ॥ सु० ॥ २५ ॥ सर्वगाथा ॥ ४४६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ पल्लीपतिनी जे प्रिया,शोक्य ए माहारुं शाल ॥ पर्वतमांथी पाथरी,औष धी लावी आल ॥१॥ जोजनमां जेली दीये,जलोदर वाध्युं जोर ॥ वैद्य औषध विण गद कह्यो, केम टले कर्म कठोर ॥ २ ॥ सुकंठ उपर समजणे, देवारी कें दान ॥ गीत सुणी रंगें करी, शोक्यनी आणी शान ॥ ३ ॥ पल्लिपति पोतें तदा,धारी एहवुं ध्यान ॥ शाता करवा सोंपतो, विजयसुंदरी शुज वान ॥ ४॥ रूप लोनें रंगें ग्रही, सज करशुं एम शान ॥ पसखंम पत्तन पामीयो,इव्य त णुं करी दान ॥ ५ ॥ वारु सुमति वैद्य ठे, मालम करी गद मूल ॥ रेच प्रमु ख देइ रोगनें, उपशम करे अनुकूल ॥ ६ ॥ सुमतिनें संतोपीयो, मानिनी कीधी मुज्ऊ ॥ गीत शीखव्यां गेलशुं, गाउं गीत ए गुज्ऊ ॥ ७ ॥ नूपादिकनें न ली परें,रीजवी लेउं रिद्धि ॥ महाधनी मुजपति थयो, सर्वकला परसिद्ध ॥ ८॥

॥ ढाल पंदरमी ॥ संजवजिन अवधारीयें ॥ ए देशी ॥

॥ जाणी श्रीजयानंदनें, मलीय बहुला राय सोजागी ॥ आव्या तव तुमें जाणीयां, उल्लस्यो दुःख समवाय सोजागी ॥ १ ॥ मद मत करजो मानवी ॥ ए आंकणी ॥ चरित्र पोतानुं जणाववा, गायुं गीत नवीन ॥ सो० आगल वात सवे लही, शुं कहुं तुमें ठो प्रवीण सो०॥ म० ॥ २ ॥ विजयसुं दरी निह्ननें, दीधी शुं थयुं तास सो० ॥ किहां ठे खबर न तेहनी, बहु दुःखनो आवास सो० ॥म०॥३॥ निह्न नहीं ते नृप कहे, एतो राजकुमार सो० ॥ जाग्य परीक्षा कारणें, तादृशरूपनो धार सो० ॥ म० ॥४॥ मुज जीत्यो जगजीत तो, श्रीविजयनृप पूत सों ॥ राजेंद्र श्रीजयानंदजी, जे राखे घरसूत सो० ॥ म० ॥ ५ ॥ झावे पासें ए रही, नूपतिनुं बहु मान

सो० ॥ विजयसुंदरी वहेनडी, ताहरी जो असमान सो० ॥ म० ॥ ६ ॥ अंगुलीयें देखाडतो, मलवा जाये जाम सो० ॥ वलगी कंठें तहीनें,विजय सुंदरी ताम सो० ॥ म० ॥ ७ ॥ रोवे तव ते बिहुं जणी, रुंधी रुदन तिवा र सो० ॥ विजयसुंदरी एम कहे, धन्य तुज शीयल आचार सो० ॥ म० ॥ ॥ ८ ॥ तेहिज वात साची कही,ते दिन सना मझार सो० ॥ देव गुरु धर्म तत्त्वनो, महिमा अगम अपार ॥सो०॥म०॥ए॥ में समस्या पूरी तदा, तेह अतात्त्विक जाण सो० ॥ फल विहुनें तेहवां थयां, कार्य कारण परमाण सो० ॥ म० ॥ १० ॥ नास्तिकवादें हुं हणी, रुडुं मनाववा तात ॥सो०॥ पूरी समस्या तेहनुं,फल आपद आयात सो० ॥ म० ॥ ११ ॥ नृप प्रसन्न अप्रसन्नथी,न होय सुख इःख कोय सो० ॥ सुख इःख पुण्यनें पापथी, इहां दृष्टांत अम होय सो० ॥ म० ॥ १२ ॥ वात सुणी ते बेहु तणी, ए म कहे श्रीजयानंद सो० ॥ परषदानें समजाववा, शुणतां धर्मजिणंद सो० ॥म०॥१३॥ विस्मय लोक लह्यां घणो,हवे सुकंठ बोलाय ॥ सो० ॥ इछित धन आपी करी, विजयसुंदरी आदाय सो० ॥ म० ॥ १४ ॥ आपी तेहना तातनें,ते पण घरमां लाय सो० ॥ शास्त्रविधें तस शुद्ध करी, घरमां राखे ताय सो० ॥ म० ॥ १५ ॥ तेहना नगरथी तेडियो, नरकुंजर जे रा य सो० ॥ ठवको देइ बहु आपतो, विजयसुंदरी सुपसाय सो० ॥ म० ॥ ॥ १६ ॥ ससरादिकथी लाजतो, लेइ प्रिया निज पाणि सो० ॥ वीर नंद्य निजपुरें गयो, हर्ष घणो मन आणि सो० ॥ म० ॥ १७ ॥ प्रीति वधारी सहु प्रत्यें,करी आदर सत्कार सो० ॥ वोलज्यां निजपुरें गया, करता धर्म विचार सो० ॥ म० ॥ १८ ॥ राज्य सोंपी निज तातनें, कुमर प्रियाशुं के लि सो० ॥ करता धर्म लोपे नहीं, चित्तडुं तेहमां नेली सो० ॥म०॥१ए॥ वनपालक आवी कहे, फूल्यो नृप वसंत सो० ॥ कोकिलडा टहुका करे, चंदनवास वसंत ॥ सो० ॥ म० ॥ २० ॥ चंपक चोखा फूलीया, तेम पु न्नागनी श्रेणि सो० ॥ अली झंकार करी रह्या, करुं विनति तुम तेण सो० ॥ म० ॥ २१ ॥ नृप श्रीविजय ते सांजली, कहे निजपुत्रनें एम सो० ॥ वय वीत्युं क्रीडातणुं, तेणें रमवा जाउं केम सो० ॥ म० ॥ २२ ॥ तेणें तुमें नीकलो क्रीडवा, तुम विण जन नहीं जाय सो० ॥ तात आ णा शिर उपरें, धारी कुंवर राय सो० ॥ म० ॥ २३ ॥ अंतेउर परिवारशुं,

सामग्री सवि लेय सो० ॥ नगर लोकशुं निकव्या, देता दान अमेय सो० ॥ ॥म०॥ २४ ॥ ठठे खंडें ए कही, पन्नरमी वर ढाल ॥ सो० ॥ पद्मविजय कहे सांजलो, आगल वात रसाल सो० ॥ म० ॥२५॥ सर्वगाथा ॥४७॥

॥ दोहा ॥

॥ निज निज रूद्धें नीकव्या, पुरजन बहु परिवार ॥ वाजित्र बहुविध वाजते, नवरंग गीत गाय नार ॥ १ ॥ नाटकीया बहु नाचता, खेला खेले खांत, खजूर प्रमुख खाय खायनें, तरुण रमे एकांत ॥ २ ॥ रंनाघर रंगे सूवे, प्रतिपादपपुष्प पाणि ॥ वसंत किणविध वरणवुं, जिहां बहु कामनुं जाण ॥३॥ क्रीडासरें बहु क्रीडतां, नर नारी निर्वाण ॥ सींचे जल शृंगी घणुं, गाये वसंतनां गाण ॥ ४ ॥ क्रीडा करी कांठे रह्या,शोनावें सरपाल॥ सिंहासनें सोहे अति, नरनारीशुं नृपाल ॥ ५ ॥

॥ ढाल शोलमी ॥ शारद बुद्धि दायी ॥ ए देशी ॥

॥ ढाल ॥ इण अवसर आव्यो, निल्ल एक कर चाप ॥ व्याघ्रचर्म ते पहेर्यां, दीन करे आलाप ॥ श्वान रज्जुयें बांध्यो, मोरपिच्छ धर्यां माथे ॥ बाणजाथा बिहुं दिश, केइ निल्ल तस साथें ॥ १ ॥ त्रुटक ॥ तेहमांथी एक आवी प्रणमे, नरपति पूछे ताम ॥ कोण तुमें तव निल्ल कहे सुणो, माहारी वात ते आम॥ चंमसिंह पल्लिपति राज्यें, यमडुर्ग पर्वत स्वामि ॥ सिंहव्याघ्र नामें सुत तेहने,तात ते परजवगामि ॥२॥ढाल॥ चिहुं जाइयें लीधुं, वहेंची राज्य उदार ॥ सिंह लीये तव बलथी,राज्य तथा वर नारि ॥ ते डुःखथी जमतो, वनमां मृगें जीवंतो, तुम पासें आव्यो, ते हुं अरज करंतो ॥ ३ ॥ त्रु० ॥ ते जाइ मुज क्रीडा करतो,सिंह आव्यो इण वनमां ॥ मुज पत्नीशुं रमतो बलीयो, हुं पण बलुं घणुं तनमां ॥ डुर्बलनुं बल राजा जाणी, आव्यो हुं तुम पासें ॥ तुम सैन्यनो कोलाहल सुणीनें, रखे ते इहांथी नासे ॥ ४ ॥ उक्तं च ॥ डुर्बलस्य बलं राजा,बालस्य रुदनं बलं॥ बलं मूर्खस्य मौनत्वं, तस्करस्यानृतं बलं ॥ १ ॥ डुर्बलानामनाथानां, बालवृद्धतपस्विनां ॥ अनार्यैर्परिजूतानां,सर्वेषां पार्थिवोगतिः ॥२॥ शकटं पंचहस्तेन दशहस्तेन वाजीनः ॥ कुंजरः शतहस्तेन, देशत्यागेन डुर्जनः ॥ ३ ॥ आचारः कुलमाख्याति, देशमाख्याति जाषितं ॥ संभ्रमः स्नेहमाख्याति, वपुराख्याति जोजनं ॥ ४ ॥ दूधेंतो धात वधे,घीयें वधे कोपरी ॥ गोळें तो गुंदर व

धे, घेऽसें वधे उफरी ॥ १ ॥ ढाल ॥ तेणें कारण चालो, एकाकी तुमें राय ॥ जो शक्ति होवे,तो विलंब बहु थाय ॥ ते इष्टनें मारी,माहारी प्रिया मूंकावो, सज्जन उपकारी, माहारुं राज्य अपावो ॥ ५ ॥ त्रु० ॥ सज्जन पर आपद देखीनें, अधिकुं सौजन्य धारे ॥ ग्रीषमें तरु नव पल्लव होवे, आतप सहुनो वारे ॥ ते सांजलीनें राजा कोप्यो, मुज धरतीमां अन्याय ॥ केम करे एहवुं माहारा राज्यनें, मोहोटुं कलंक ते थाय ॥६॥ढाल॥ देखाड तुं मुजने, एहवो नियह कीजें ॥ क्षण मात्र न सहीयें,एणी परें राय वदीजें ॥ ढाना निकलिया, जिल्लछुं लेइ समशेर ॥ महोटा जे बोले, तेहमां न पडे फेर ॥ ७ ॥त्रु० ॥ वन निकुंजनें मुख जई बोले,जिल्लरायनें एम ॥ आ वनमां ठे माहारो जाई,तेणें हुं पेसुं केम ॥ बीहीक लागे तेथे इंहांहिज रहेछुं, एम सुणी पेसे राय ॥ वनमां सघले खोल्यो पण ते, न लह्यो किणही ठाय ॥ ८ ॥ ढाल ॥ नृप पाठो आव्यो, जिल्ल तिहां नवि देखे, नृप एम विचारे, इंद्रजाल ए लेखे ॥ पुरजणी जव आवे, गगनथी एक विमान ॥ आव्युं तेहमांथी, नीकल्यो खेचर प्रधान ॥ ए ॥ त्रु०॥ आवि नूपने प्रणमी बोले, शाने करो विचार ॥ ए सघली माया ठे माहारी, हुं लाव्यो एणें ठार ॥ तेहनुं कारण सांजल नरवर, वैताढ्यें नगर पचाश ॥ दक्षिणदिशि तेहमां रथनूपुर, चक्रवाल ते खास ॥१०॥ ढाल ॥ तिहां पवनवेग हुं,बहुविद्याधर स्वामी ॥ दक्षिणदिशि खग सहु, माहारी आणाना कामी ॥ वज्रवेग माहारे सुत, बहुविद्या जेणें साधी ॥ कयुं पाणीग्रहण, कीर्त्ति जगमां वाधी ॥ ११ ॥ त्रु० ॥ हेमगिरिशृंगें हेमपुर थाप्युं, तिहां क्रीडे सुविशाल ॥ ठठे खंमें पद्मविजयें कही, रंगें शोलमी ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां रूडी, सुणतां मंगलमाल ॥ पुण्यनां बलथी आगल वातो, सुंदर घणुं सुरसाल ॥ १२ ॥ सर्वगाथा ॥ ४एद ॥

॥ दोहा ॥

॥ बलियो विद्याबलथकी, परिवृत बहु परिवार ॥ वसे जालंधर पुर वडुं, सुवर्ण मणियह सार ॥ १ ॥ सार सूरि तस स्वामिनी,कामाक्षी श्रीकार ॥ योगिनी वृंद पूजे जिका, परिछदरूप अपार ॥ २ ॥ नगर मध्ये जुवनें रही, तेह जुवनपुर ताम ॥ पीठ सुवर्ण मणिमय प्रवर, योगिनी पीठ जग नाम ॥ ३ ॥ आराधक तिहां आवीनें, साधि योगिनी सहित ॥ पीठनें चिहुं दिशि

परिसरें, वसे योगिणी वडचित्त ॥ ४ ॥ चोशठ ऋद्धिवंती चतुर, परगट बहु परिवार ॥ नाम ए तेह्नां निरखीयें, सुणजो तास विचार ॥ ५ ॥

॥ ढाल सत्तरमी ॥ हांरे हांरे साहेबा रे, गोकुल गामनें गोंदरे, उजला नंदकिशोर रेलाल ॥ ए देशी॥

॥ हांरे हांरे साहेबा रे, १ वाराहीने वली २ वामनी रे, ३ गारुडी ४ इंद्राणी नाम रे लाल ॥ ५ आग्नेयी ६ व्यामा वली रे, ७ नैरुती सातमे नाम रे लाल ॥१॥ योगिणी जगमां जागती रे लाल ॥ ए आंकणी ॥हां०॥ ८ वारुणी ए वायव्या कही रे,१० सौम्या ११ ईशानी जाण रे लाल ॥ १२ ब्राह्मणी १३ वैष्णवी तेरमी रे,१४ माहेश्वरी मन आण रे लाल ॥योगि०॥२॥ हां० ॥ १५ वैनायकीनें १६ शिवा सुणी रे, १७ शिवदूती शिरदार रे लाल ॥ १८ चामुंमी १ए जया जाणीयें रे, २० विजया २१ अजिता धार रे लाल ॥योगि०॥३॥हां०॥ २२ अपराजिता २३ हरसिद्धिनें रे, २४ कालिका २५ चंडाविचार रे लाल ॥ २६ सुचंमा छवीशमी रे, करे उपकार अपकार रे लाल ॥ यो० ॥ ४ ॥ हां० ॥ २७ कनकदंता २८ सुनता २ए उमा रे, ३० घंटा ३१ सुघंटा सार रे लाल ॥ ३२ मांसप्रिया ३३ आशापुरी रे, ३४ लोहिता ३५ अंबा उदार रे लाल ॥ यो० ॥ ५ ॥ हां० ॥ ३६ अस्थिनक्षी ३७ नारायणी रें, ३८ नारसिंही सुप्रसिद्ध रे लाल ॥ ३ए कौमारी ४० वानरतीसुरी रें, ४१ अंगा ४२ वंगा रिद्धि ईद्ध रे लाल ॥ यो०॥ ६ ॥ हां० ॥ ४३ दीर्घदंष्ट्रा ४४ सुदंष्ट्रा वली रे, ४५ प्रजा ४६ सुप्रजा वरदाय रे लाल ॥ ४७ लंबा ४८ लंबोष्ठी ४ए नडा वली रे, ५० सुनडा वर काय रे लाल ॥ यो० ॥ ॥ ७ ॥ हां०॥ ५१ काली ५२ रौद्री ५३ रौद्रमुखी रे, ५४ कराली वली तेम रे लाल ॥ ५५ विकराला ५६ साक्षी वली रे, ५७ विकटाक्षी धरे प्रेम रे लाल ॥ यो० ॥ ८ ॥ हां० ॥ ५८ तारा ५ए सुतारा ६० रजनीकरी रे, ६१ रंजना ६२ श्वेता सुजाण रे लाल ॥ ६३ नद्रकालीनें ६४ क्षमाकरी रे, ए चोशठ मंमाण रे लाल ॥ यो० ॥ ए ॥ हां० ॥ काम रूपी ए पूजे जिके रे, ते जगमां पूजाय रे लाल ॥ विविध प्रकार वरदायिनी रे, दुःख दारिद्र पलाय रे लाल ॥ यो० ॥ १० ॥ हां० ॥ अणिमा लघिमा ऐश्वर्यता रे, वशिता गरिमा आदि रे लाल ॥ शक्ति विविध छे तेह्नी रे, नवि पोहोंचे कोइ वादी रे लाल ॥ यो० ॥ ११ ॥ हां० ॥ पर्वत वननें समुद्रमां रे, इह

नदीनें कासार रे लाल ॥ द्वीप प्रमुखमां ए रमे रे, दिव्य शक्ति सा धार रे लाल ॥ यो० ॥ १२ ॥ हां० ॥ कोपी नर लोकमां करे रे, मरकी प्रमुख उप सर्ग रे लाल ॥ तूठी दीये बहु संपदा रे, पुत्र कलत्रना वर्ग रे लाल ॥ यो० ॥ १३ ॥ रांकनें बीहिवरावे घणुं रे, महोटानें दीये मोद रे लाल ॥ वेपक्रिया बहु जातिनी रे, करती विविध विनोद रे लाल ॥ यो० ॥ १४ ॥ हां०॥ हेम शृंगगिरि क्रीडा तणुं रे,योगिणीनुं छे ठाम रे लाल ॥ मुजपुत्रें अणजाणतां रे, तिहां वास्युं वर गाम रे लाल ॥ यो० ॥ १५ ॥ हां० ॥ योगिणीयो को पी तदा रे, मरकी अतिशय कीध रे लाल ॥ लोक नाठां उपद्रवथकी रे, लेइ निज निजनी रूद्धि रे लाल ॥ यो० ॥ १६ ॥ हां० ॥ योगिणी वश क रवा जणी रे, श्रीपर्वतमां जाय रे लाल ॥ वज्रवेग विद्याधरू रे, तिहां ज्वालामालिनी ठाय रें लाल ॥ यो० ॥ १७ ॥ हां० ॥ तेहनी दृष्टि आगल रही रे, करे तिहां जापनें ध्यान रे लाल ॥ लाख बीलां होमे तिहां रे, करे मन इछित दान रे लाल ॥ यो० ॥ १७ ॥ हां० ॥ एह रीति देवी तणी रे, वज्रवेग पण ताम रे लाल ॥ सामग्री सवि मेलीनें रे, वेगे जापनें ठाम रे लाल ॥यो०॥ १ए ॥ हां० ॥ योगिणी जाणे ते सवे रे, सातमे दिन तिहां आय रे लाल ॥ करे प्रतिकुल उपसर्गनें रे, पण न खोजाणो जाय रे ला ल ॥ यो० ॥ २० ॥ हां०॥ छठे खंमें ए कही रे,सत्तरमी वर ढाल रे लाल॥ पद्मविजय कहे सांजलो रे, आगल वात रसाल रें लाल ॥ यो० ॥ २१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ जालिम तुमें योगिणी कहे, रूप अनोपम धार ॥ तूठी छुं तुम उपरें, साहसिकमां शिरदार ॥१॥ जर्त्ता तुम करी जोगवुं,जोग जला मन जावि ॥ रूप लखमी सफली करुं, परगट अवसर पावि ॥२॥ सेवा करशुं साचली, डुर्लज दैवत जोग ॥ नर रूपें जोगवी नवल, शुज पामी संयोग ॥३॥ क्लेश फोकट कहो कोण करे,ध्यान तपादिक धार ॥ मोदक पामी मानवी,वाल न रांधे किवार ॥४॥ आलिंगन दे उठि तुं,रागिणी अमें रसाल ॥ खारां जल पीधां खरां, जलां अमृत तुं जाल ॥ ५ ॥ एम कही नाटक आदर्युं, गाये मोहन गीत ॥ नेउर कंकण रण जणे, चमके जिणथी चित्त ॥ ६ ॥ काम उद्दीपन कारिसुं, सांजली लागो स्वाद ॥ कंदर्पनें वश थई करी, नवि बोले

ज्यां नाद ॥ ७ ॥ हसती बांधे दोरशथी, निगडित करीनें नार ॥ निज भवन मां नाखियो, क्रीडा करे किवार ॥ ८ ॥ सर्वगाथा ॥ ५३० ॥

॥ ढाल अढारमी ॥ तुं कुलमांहे रूपनी, उपजीनें तें खोपुं हो परियागतनुं पाणी हो राज ॥ ए देशी ॥

॥ में ते जाणी वातडी, विविध प्रकारें पूजा हो, स्तवना पण बहु कीधी हो राज ॥ पुत्र मूकावण कारणें, संतोषी घणुं तेहनें हो, पण नवि जाये लीधी हो राज ॥ १ ॥ हवे वैताढ्यनो अधिपति, उत्तरश्रेणिमां सार हो, गगनवल्लनपुर राजे हो राज ॥ चक्रायुध तिहां राजियो, सर्व विद्याधर स्वामी हो, चक्री नाम ते ठाजे हो राज ॥ २ ॥ ज्योतिषीमां सूर्य परें, कल्प वृक्ष जेम तरुमां हो, हरि जेम मृगमां वलियो हो राज ॥ मेरु जेम पर्वत मांहे, तेम ए सम अथ अधिको हो, बल विद्यायें न कलीयो हो राज ॥ ॥ ३ ॥ विद्याधरमां को नहीं, नूचरनी शी वात हो, उनय श्रेणि तस सेवे हो राज ॥ मुजरो करी में विनव्यो, मुज सुतनें मूकावो हो, तव मुज उत्तर देवे हो राज ॥ ४ ॥ मूकावीश तुज पुत्रनें, योगिणीनो शो नार हो, एणी परें मुजनें नाख्यो हो राज ॥ एम बहु वार में प्रेरीया, एहनो एहज मुजने हो, उत्तर फरि फरि दाख्यो हो राज ॥ ५ ॥ विषयादिक परमादथी, महोटानें शुं कहीयें हो, शक्तिनो संनव आवे हो राज ॥ पण मुज सरिखा मानवी, शक्ति अशक्ति न जाणे हो, कार्यें सहु चित्त नावें हो राज ॥ ६ ॥ वज्रसुंदरी माहरे, सुर सुंदरीने सरखी हो, सुर जूवे अनिमेष नयणें हो राज ॥ पुत्रनी अनुजा तेह छे, सर्वगुणें करी सरखी हो, शुं कहुं जाजुं वयणें हो राज ॥ ७ ॥ जैन धर्म रुचि तेहनें, जैनकलामां कुशला हो, नाट्यकला सुविशेषें हो राज ॥ नंदनवननी धरतीयें, बहुतरुमांहे कल्प हो, वृक्षनी श्रेणिनें लेखे हो राज ॥ ८ ॥ चक्रायुध ते सांनली, दूतमुखें मुज याचे हो, तव में चित्त विचार्युं हो राज ॥ बहु पत्नी होये जेहनें, त्रिगुणाधिक जस वर्षे हो, तेहनें देवी न धार्युं हो राज ॥ ९ ॥ यडुक्तं ॥ वपुः शीलं कुलं वित्तं, वयो विद्या सनाथता ॥ एतानि यस्य विद्यंते, तस्य देया निजा सुता ॥ १ ॥ मूर्ख निर्धन दूरस्थ, बहुनार्याशिवार्थिनां, त्रिगुणाधिकवर्षाणां, चापि देया न कन्यका ॥ ॥ २ ॥ पूर्वढाल ॥ जेम तेम ना न कही शकुं, पृथिवीनो पति वलीयो हो, दूतनें उत्तर वाल्यो हो राज ॥ योगिणीयें मुज पुत्रनें, राख्यो छे ते डुःख हो,

मुज हृदयमां साल्यो हो राज ॥ १० ॥ सांजरे नहीं विवाहनी, वात ते मुजनें स्वामी हो, सुत मूकावो माह्यारो हो राज ॥ सर्व पडी सारुं थशे, दूतें पण जई नांख्युं हो,दीधो छे एम लाहरो हो राज ॥ ११ ॥ माह्यारी सजा मां एकदा, निमित्तियो एक आव्यो हो, नाव्यो चित्तमां काजें हो राज ॥ फल पुष्पादिक ढोइयां, देइ सत्कारने पूछ्युं हो, कारय दोय मुज राज्यें हो राज ॥ १२ ॥ मुज सुत कोण मूकावशे, कोण मुज पुत्री वरशे हो, कहो ते चित्तमां धारी हो राज ॥ निमित्तियो कहे ए बिहुं, एकज प्राणी करशे हो,में कह्युं ताम विचारी हो राज ॥ १३ ॥ उलखशुं कहो केणी परें,निमित्तियो कहे सुणजो हो,बांधी पद्मरथ नूप हो राज ॥ जेह पमाडशे धर्मनें, वली श्रीपतिनृप जींते हो, निजकला दाखी अनूप हो राज ॥ १४ ॥ कन्या त्रण तस परणशे, ते तुज सुत मूकावी हो, तुज पुत्री पण वरशे हो राज ॥ सांनली बहु आणंदियो, ए जाण्युं एह काम हो,एवडां महोटां करशे हो राज ॥ १५ ॥ फल अलंकारें तोषियो, में हवे कीधी तेहनी हो, शुध्धि ते सघले जाणी हो राज ॥ ज्ञानी वचननें लक्षणें,तुजने उलखी निश्च हो, मिश करी लाव्यो ताणी हो राज ॥१६॥ मात पिता जो तुज जाणे,तो जावा नवि आपे हो,लाव्यो तेणें एकाकी हो राज ॥ पुत्र मूकावो माहरो,अवनीमां उपकारी हो, मूकी सर्व ते वाकी हो राज ॥ १७ ॥ नदी जल वहे पण नवि पिये, वृक्ष फले नवि खावे हो, नोगवे रयण न खाणी हो राज ॥ पर उपकारनें कारणें, संतना जनम ते कीधा हो, एहवी ग्रंथें वाणी हो राज ॥ १८ ॥ क्लेश पोतानो नवि गणे, पर उपकारनें माटें हो, सज्जन तरुवर सरिखा हो राज ॥ छाया फल दीये पर नणी, खमे तडकानें शीत हो,वली खमे अतिशय वरषा हो राज ॥१९॥ हुं दुःखियामां शिरोमणि,समरथ परदुःख हणवा हो, तुं मल्यो बिहुनो योग हो राज ॥ हवे निज उचित करो तुमें, सांनली चिंते राजा हो, परउपकारी लोग हो राज ॥ २०॥ शूरनें जेम संग्रामनो, नैयायिकनें साहमो हो, वादी आवे जेम हो राज ॥ दानशाला मली क्षुधितनें, रोगीने मल्यो वैद्य हो, दुर्गतिनें निधि प्रेम हो राज ॥ २१ ॥ अवसर पर उपकारनो,महोटा पुरुषनें आवे हो, उत्सव सरिखो जाणे हो राज ॥ एक दिशि पर उपकारनें,बीजी दिशि सहु पुण्य हो, तोले सुर कोइ टाणे हो राज ॥ २२ ॥ पर उपकार वधे·ग्रणो,संविनाग नवि

कीजें हो, पुण्य उपार्जन वेला हो राज ॥ शोना मात्र ने शूरनें, सेवको परिवार हो, काम करे एकेला हो राज ॥ २३ ॥ एम विचारीनें कहे, पर उपकारनें काजें हो, हुं समरथ हुं एक हो राज ॥ एम कही खेट विमानमां, वेशी चाल्यो साथें हो, महोटो धरिय विवेक हो राज ॥ २४ ॥ लेख सहित कोइ खेटनें, पवनवेग ते मूके हो, नृपना तातनी पासें हो राज ॥ धीरज देवा कारणें, श्रीनगें पोहोता तेह हो, आगल मंगल थाशे हो राज ॥२५॥ उठे खंमें अढारमी,श्रीजयानंदनें रासें हो,पद्मविजयें कही ढाल हो राज॥ सुणतां शाता उपजे,पुण्यवंतनी वात हो,दिन दिन रंग रसाल हो राज २६

॥ दोहा ॥

॥ पवनवेग कहे नृपप्रत्यें, विद्यावारु एक ॥ मुज पासें ठे मोटकी, साधो ते सुविवेक ॥१॥ साधवा हुं समरथ नहीं,ज्वालामालिनी जोर ॥ वश थाशे विद्यायकी, नमशे करी निहोर ॥ २ ॥ योगिणी पण वश जेहनें, साह सथी ते सधाय ॥ तेणें ए ल्यो तुमें तुरतमां, साधन विधि समुदाय ॥ ३ ॥ नृप लेइने एम नणे, बीजांदिक बहु वार ॥ कोण होमशे मुजनें कहो, पापी पाप अपार ॥ ४ ॥ सत्त्वें विद्या सिजशे, सत्त्व धरी सहु सार ॥ एम कही विधें आराधवा, ततक्षण थया तैय्यार ॥ ५ ॥ सर्वगाथा ॥ ५६१ ॥

॥ ढाल उगणीशमी ॥ पत्नीसंयुत पोसह लीधो ॥ ए देशी ॥

॥ स्नानादिक करी उपवास कीधो, देवीनी पूजा करीजी ॥ साधर्मिणी बुद्धें विविध प्रकारें, नक्ति घणी चित्तमां धरीजी ॥ १ ॥ क्षेत्राधिष्ठायक प्रमुखनां काउस्सग्ग, करीनें सुख पूरवदिशेंजी ॥ आतम रक्षा करी परमेष्ठी पदथी, देवी मंदिरें उपविशेजी ॥ २ ॥ ध्यानें आसन पद्मासन करी, विद्या जाप हवे करेजी ॥ मन थिर राखी ध्यान धरीनें, मुद्रा प्रमुख विधि धरेजी ॥ ३ ॥ बीजे दिन हवे योगिणी जाणी, आवे तिहां शंका करेजी ॥ जो ए विद्या सिद्ध ते थाशे, तो अमें वश थाशुं खरीजी ॥ ४ ॥ प्रतिकुल उपसर्ग करवा मांमे, खोजना करवा कारणें जी ॥ साप सहिकडो महोटी काया, फुत्कारा नस धारणेजी ॥ ५ ॥ वींटी वींटी करडे नृपनें, दाढयो नांगे निर्विष होयजी ॥ नांगे हाडनें मणि पण त्रूटे, उतरे तिहां न फरी जूयेजी ॥ ॥ ६ ॥ जैननी रक्षाने परजावें, परानव करी शकीया नहींजी ॥ पंच परमेष्टि पण मंत्र ते मोहोटो,एहवो महिमा जग नहीं कहींजी ॥ ७ ॥ गजारव

करता गज मूके, वींधें दंतुसलें करीजी ॥ शुंढानें वली उरणे मर्दे, पण न चाल्या दृढता धरी जी ॥ ८ ॥ घोर शब्द करता वाघ मूके, तींखी दाढें विदारताजी ॥ नखथी घात करी करी थाका, पण रोम पण न संचारता जी ॥ ए ॥ ज्वलती अग्नि विकूर्वे योगिणी, त्रट त्रटकार घणा करेजी ॥ धूं आडाथी अंधित दिशिगण, ज्वाला चिहुं दिशि संचरेजी ॥ १० ॥ मह्रा तापें पण ध्यानें न चलीयो, अचलपरें नरराजीयोजी ॥ रौद्ररूप करी आवे ते ह्वे, नादथी पर्वत गाजीयोजी ॥ ११ ॥ ज्वलती आंख्यो नयंकर दाखे, वदनें अगनि ते वरसतीजी ॥ पर्वत दरि सम वदन देखाडे, सत्त्ववंत सत्त्वकर सतीजी ॥ १२ ॥ मम मम वाजे ममरुक वाजुं, पडछंदा उठे घणाजी ॥ अट्टाट हास्यथी फेत्कार मूके, बंध तूटे गगन तणाजी ॥ १३ ॥ हाथमां नालां खड्गनें तोमर, मोघर कंपावे घणुंजी ॥ पदघातें करी धरती कंपावे, वयण बोले मुखें ते नणुंजी ॥ १४ ॥ अम्ह पूज्या विणु विद्या साधे, रे मूढ उठ तुं जा परोजी ॥ नहीं तो मारशुं तुजनें कहेती, दाखवें नय तस आकरोजी ॥ १५ ॥ मारवा दोडे करे प्रहार, लागें तस अंगें नहींजी ॥ ध्यान एकाग्रें जैननी रह्या, सत्त्व धरे चित्त गहगहीजी ॥ १६ ॥ तेह पुरुषथी देवें न चाले, कोण मातर ते योगिणीजी ॥ १७ ॥ त्रण दिवस एम उपसर्ग कादया, रोम मात्र पण नवि चल्योजी ॥ खेद लहीनें चिंतवे चित्तमां, एतो मेरु सम अटकल्योजी ॥ १८ ॥ दिव्यांगनानां रूप करीनें, सवे अलंकारें सोहतीजी ॥ चंदा वयणी कमल पांखडी, आंख डीयी मनमोहतीजी ॥ १९ ॥ कंचन वरणी रूप यौवन वय, सुनग आ कार सवि अंगनाजी ॥ कंचुकवी पीनस्तनी वली, पहेर्यां वस्त्र नाना रंगनां जी ॥ २० ॥ हंसगति जस कोकिल स्वरथी, गीत गाये एम उच्चरेजी ॥ जयजय स्वामी अहो तुज धीरज, सत्व शौर्य गुण सहु शिरेंजी ॥ २१ ॥ अम अपराध ते खमजो स्वामी, उपसर्ग कारणें अमें कस्योजी ॥ हेतु सां नल नर अमें खोळुं, रूप यौवनथी अलंकस्योजी ॥ २२ ॥ सत्ववंत तुं उ पसर्गे न चल्यो, स्वामी करी क्रीडा करुंजी ॥ अम नारीपणे अंगीकर तुं, तुज आणा अमें शिर धरुंजी ॥ २३ ॥ नरनें उर्लन नोग ते सुरना, स्वेच्छायें तुमें नोगवोजी ॥ ताहारे वश अमें सघली जाणे, जन्म लगें ते जोगवो जी ॥ २४ ॥ धन धन श्रीजयानंद नृपतिनें, इणे वचनें पण थिर रह्याजी ॥

प्रतिकूल अनुकूल विविध प्रकारें, कीधा उपसर्ग सहु सह्याजी ॥ २५ ॥ छठे खंमें उंगणीशमी ए,ढाल पद्मविजयें कहीजी ॥ योगिणीयो वली जे जे बोले, ते सांजलो आगल सहीजी ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ ५०७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ क्लेश विद्या साधन करे, ज्ञानें अमें तुं सिद्ध ॥ सहु विद्या अमथी सधे, निपजे वली नवनिध ॥ १ ॥ आपुं बहु विद्या अमें, पाठसिद्ध सम नाव ॥ जेहथी वश करी जगतनें, जुगतें पाड़ो जमाव ॥२॥ मनवंछित मनो हारिणी, नारी परणो अनेक ॥ आकरपुं जगनें अमें, उपल जे होये ठेक ॥ ३ ॥ दूर ते पासें दाखवुं, अम नोगनो अनुनाव ॥ जरा न आवे तस ज रा, वलक्ष्यनो न बनाव ॥ ४ ॥ हानि न इंड्रियनी होये, आमय नावे अं ग ॥ काम सेवे कंदर्प वधे, रूडो करियें रंग ॥ ५ ॥ सुख नोगव अम साथ तुं, शक्रनें डुर्लन सोय ॥ बहुरूपें युगपत् बहु, होंशें रमवुं होय ॥ ६ ॥ विविध वचन एहवां सुणी,जगतनें मोहे जेह ॥ नरीयें जलनृत कुंनमां, तेम नृप न ठव्यो तेह ॥ ७ ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ वेण म वाइश रे, विठल वारुं तुजने ॥ ए देशी ॥

॥ हृदयनें स्तन आगल कांइ नीडे, कांइक चुंबन करती ॥ कांइक आ लिंगन वली करती, नयणें नेह धरंती ॥ १ ॥ अमें नलें दीठ रे, मनमो हन प्रजु तुमनें ॥ ए आंकणी ॥ वीणावंशने पडह वजावे, नाटक करे अंग वाली ॥ गीत गाये एम मोहन केरां, फूदडी दीये दीये ताली ॥अमें०॥२॥

॥ अथ गीतं ॥ आवी चोशठ योगिणी, नित्य विलसुं नवनव नोगिणी ॥ अमें कामज्वर रोगिणी, रति न लहुं तुम वियोगिणी ॥ १ ॥ एम गाये रंगें कामिणी, नव यौवन नचे योगिणी ॥ अमें रंना गोरीअ अंगिणी, सोना गी नरशुं रंगिणी ॥ २ ॥ तुम रूप सौनाग्यें राचती, इहां आवी हर्षे ना चती ॥ तुं प्रियतम पामी मलपती, नवि मूंकुं कहमवि जीवती ॥ ३ ॥ वर चंपक सोवन गोरडी, गुण गाती नांनर नोलडी ॥ पयसेव करेशुं तोरडी, अमें बुं सोहग उरडी ॥ ४ ॥ अम अंग सुगंधें महमहे, दिशि पसरें परि मल जे वहे ॥ नव पउमणी मालती केवडी, हिमवालुअ मृगमद बेवडी ॥ ५ ॥ अम पायें नेउर रणऊणे, कर कंचन कंकण रणरणे ॥ उरें मो तीहार सुलहलहे, तुम देखी हैयडां गहगहे ॥ ६ ॥ अम कानें कुंमल ऊल

हलें, तनु मनमथ कंमू खल नले ॥ अम माथें ऊलके राखडी,गले ऊबकती माणिक पदकडी ॥ ७ ॥ अति शोहती निलवट तिलकडी, मणिमेहलें मोहें कडितडी ॥ नुजें अंगद ज्युं अलि मणि जडी, अम सांनल पियुडा वातडी ॥ ८ ॥ अम अंगुली दीपे मुइडी, तुम विरहें नावे निइडी ॥ मणि सोवन खलकती चूडली, प्रिय पामीअ पुण्यें रूअडी ॥ ए ॥ उत्कंठित आवी वहेल डी, पण लाम ते प्रेम गहेलडी ॥ रंगें नाचुं लोडत बांहडी, तुम करशुं हाथे ठांहडी ॥ १० ॥ अमें कंत तुमारी दासडी, शिर वहेशुं तुमची खासडी ॥ तुम लोपुं आण न लीहडी, उर धरशुं तोरी शीखडी ॥ ११ ॥ अम सा हामुं जोय ने सामिया, ते अलवें अमें सवि पामियां ॥ अमें देवदेवीनी सामिणी,तुज आवी ठे वर कामिणी ॥ १२ ॥ उठ उठनें कंता करी कृपा, अम परण तुं मेहेली हवे त्रपा ॥ अमें तेवड तेवडी वेहेनडी, सवि एकमनी सवि नानडी ॥ १३ ॥ अमें काल विलंबण नवि सहुं, तुम आगल परमठ हवे कहुं ॥ अम जीवितनें धरि हाथडी, कर तेडीनें आपण साथडी ॥१४॥ सुरसुंदरी चंग सोनागिणी, कंत कां ऊवेखे सुरागिणी ॥ अमें जीवुं शरणें तुम तणे, हवे पडिवज जोइणि एम नणे ॥ १५ ॥ इति गीतं ॥

॥ पूर्वढाल ॥ सुस्वर जनकुतुहलनें काजें, नृपनुं जे वड शील ॥ दृढता कहेवा गीत ए नांख्युं, जिनधर्मे प्रियनी लील ॥ अ० ॥ ३ ॥ सना जोइनें कहेवुं सघले, जेम तेम कहेवुं नाहीं ॥ राग वसंतादिक वर ढालें, गावा सु स्वरें आहिं ॥अ०॥ ४ ॥ अंग हारादिक विश्वनें मोहन, मृतकंदर्प जगावे ॥ एहवां त्रण दिवस लगें गाइ, तनमय तान लगावे ॥अ०॥५॥ गाइ गाइनें थाकी सघली,नाची नाची खेदाणी ॥ वज्रनें टंक न लागे तेम नृप,रोम न च लियुं जाणी ॥ अ०॥६ ॥ सातमे दिन हवे तूठी देवी,महाज्वाला अनिधानें॥ शिर उपर करे सूरय उदयें, पुष्पवृष्टि बहु मानें, मेंतो नलें दीठो रे॥म०॥७॥ ए आंकणी ॥ करती दश दिशिमां अजुआलुं, रूप प्रगट देखावे ॥ सिद्ध वि याशुं जब ते आवी, योगिणी नाठी जावे ॥ में०॥८ ॥ महाज्वाला मधुरे स्व र बोले, हूं तूठी तुज राय ॥ शील ध्यान थिरता तुज देखी,पण सुण तुं थिर थाय ॥ में० ॥ ए ॥ हे वत्स वर देइ नवि शकीयें, विधि कीधा विणु तुजनें ॥ जो वर इछे तो विधि कर तुं, नृप कहे विधि कहो मुजनें ॥ में० ॥१०॥ एक जीवनुं मांस जो आपे, तो मुज उपजे प्रीत ॥ राय कहे हुं जैन हुं जा

चो, सहु जीव माहारा मित्त ॥ में० ॥ ११ ॥ विण अपराधी जीव न मारुं, जो तुज जोइयें मांस ॥ तो मुज तनु छेदीनें आपुं, श्यानें करे विखास ॥ ॥ में० ॥ १२ ॥ देवी कहे तो एमज कर तुं, तव नृप लीये करवाल ॥ छेदे उरु तव खड्ग उलाली, लीये देवी उजमाल ॥ में० ॥ १३ ॥ देवी कहे हुं पण छुं जैनी, मांसनो खप नहीं माहारे ॥ दया सत्वनें जैन धर्म तुज, परख्यो में धरी प्यारें ॥ में० ॥ १४ ॥ जगत वीर साधर्मिक माहारो, पा ठसिद्धि देउं विद्या ॥ योगिणी प्रमुख आकर्षणी ले तुं, तव नृप प्रणमे अनिंद्या ॥ में०॥१५॥ पूजा देई विधि पूर्वक विद्या,लिये हर्षे नृपाल ॥ देव ता प्रमुख त्रिविध हरे उपद्रव, बाजुबंध तेणें ताल ॥ में०॥ १६ ॥ सूर्यहा स वली खड्गने आपे, चक्र दिये वर धार ॥ वैरी चक्र निकंदन करवा, शस्त्र शिरोमणि सार ॥ में० ॥ १७ ॥ शक्ति शस्त्र आपीनें देवी, अदृश्य मान ते थाय ॥ दिव्य मूर्ति हवे पूजे राजा, स्तवना करे सुखदाय ॥ में० ॥ ॥ १८ ॥ ज्वालामालिनी विद्या बोले, लक्षादिक जप होम ॥ करतां पण को इकनें सीझुं, बहुनें थाउं जेम व्योम ॥ में० ॥ १९ ॥ ताहरे अल्प प्रयासें सीधी, दृढधर्मा तुज जाणी ॥ आकर्ष्या सुर आवशे ताहरे, विद्या सिकशे शाणी ॥ में० ॥ २० ॥ एम कही रायनां दिलमां पेठी, इङ्गित आपे समरी ॥ विश्वमां अर्थ ते आपे रूठी, बलवंती ए अमरी ॥ में० ॥ २१ ॥ हवे दे वीनी मूर्ति पूजी, वली जे देव होय पासें ॥ वली प्रमुखें संतोषी निसरे,देव गृहथी उल्लासें ॥ में० ॥ २२ ॥ छठे खंडें वीशमी नांखी, पद्मविजय कहे ढाल ॥ सुंदर ए तुमें श्रोता सुणजो, आगल वात्त रसाल ॥ में० ॥ २३ ॥ ए ढालना दोहा सात अने वच्चमां गीतनी गाथा पंदर मली . पीस्तालीश गाथा थइ सर्व गाथा ॥ ६३२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ विद्याधर परिवारशुं, प्रणमे आवी पाय ॥ सिद्ध विद्या थइ सुखथकी, प्रश्न नृप पूछाय ॥ १ ॥ नृप पधारयथी जणे,चमत्कार लह्या चित्त ॥ स्तव ना नृपनी सहु करे, परगट धरता प्रीति ॥ २ ॥ पूजी जिन प्रणमी गुरु,सा गर सम गंभीर ॥ आहार करे दिन आठमे, विद्याधरशुं वीर ॥ ३ ॥ अपर विद्या आपे वली, शुभ मुहूर्त्त शुभवार ॥ आकाशगामिनी आदि दे, सि द्धविद्या श्रीकार ॥४॥ मासे सिझे मेहनतें, ते साधे ततकाल ॥ शील तथा

वली सत्वनें,परजावें नरपाल ॥ ५ ॥ धरणीधव जालंधरें, पवनवेगशुं पत्त ॥ पोतें रही विद्या प्रगट, संजारे धरी सत्त ॥ ६ ॥ तस अनुजावें ते तुरत, आकर्षणी आय ॥ जगतीपति कहे योगिणी,सांजलो रे सुखदाय ॥७॥ पवनवेगना पुत्रनें, मूको हृदये मानि ॥ नहीं तो हुं मूकुं नहीं, सुणजो साची वाणि ॥ ८ ॥ अंगदना अनुजावथी, उपद्रव न कस्यो अंश ॥ मूकुं कहे मूको तुमें, स्वामी तुमें शुनवंश ॥ ए ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ धणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

॥ मूके श्रीजयानंदजी रे, योगिणी गइ निज ठाम ॥ मनना रंगी ॥ वेडी नांगी तेहनी रे,लावी नृप पुर ताम ॥ १ ॥ सुखना संगी ॥ आवो आवो रे सजन सुखसंगी, कीजें वात एकांतें सुरंगी, गुणीसंगें वाधे प्रीति ॥मन० ॥ ए आंकणी ॥ नृपतिनें वली तातनें रे, चरणे लागो तेह ॥म०॥ पवनवेग निजपुत्रनें रे, आलिंगे घणे नेह ॥ सु० ॥आ०॥ २ ॥ पुत्र आगल सघलो कहे रे, निज उद्यम अवदात ॥ म० ॥ नृपनें लाव्यो एणी परें रे, ते सघली कही वात ॥ सु० ॥ आ०॥ ३ ॥ कोइ न मूकावी शक्यो रे, योगिणी घरथी तुज ॥ म० ॥ राजराजायें मूकावियो रे, मेहेर करी बहु मुज ॥सु०॥आ०॥४॥ प्राण दीयां वत्स तुजनें रे, वज्रवेग सुणी एम ॥म०॥स्तवना करे नर रायनी रे, वज्र वेग धरी प्रेम ॥ सु० ॥ आ० ॥ ५ ॥ जाये गगनें जे टले रे, योगिणी बोले ताम ॥ म० ॥ नाग्यें अम तुम पामीया रे, आवो अमचे धाम ॥ सु० ॥ आ० ॥ ६ ॥ प्राहुणा गति करुं तुम तणी रे, नृपति करे विचार ॥ म० ॥ प्रार्थना नंग न कीजीयें रे, एम करी कहे हाकार ॥ सु० ॥ आ० ॥ ७ ॥ योगिणी निज हाथें करी रे, स्नानादिक प्रतिपत्ति ॥ ॥ म० ॥ अमृत सम आहारें करी रे,करती अतिशय नक्ति॥सु०॥आ०॥८॥ गीत नाटकें संतोषिया रे, हवे रहेवानें रात ॥ म० ॥ वाराही जुवनें नृपति रे,राख्या जगत विख्यात ॥ सु० ॥ आ० ॥ ए ॥ विद्याधर त्राह्मी घरें रे, रातें राख्या दोय ॥ म० ॥ शय्या सुगंधी मृडु घणी रे, तिहां सूआस्या सोय ॥ सु० ॥ आ० ॥ १० ॥ कामाक्षा स्वामिनी कन्हे रे,जोगिणी जइ कहे तेह ॥ म० ॥ निज परानव आकर्षवुं रे, हवयी लीधो जेह ॥ सु०॥ आ०॥ ॥ ११ ॥ कामाक्षा कहे क्रोधथी रे, शीलभ्रष्ट करुं तास ॥ म०॥ तुमनें सोंपुं बांधिनें रे, इच्छित करो करी दास ॥ सु०॥ आ०॥ १२ ॥ हरि हर ब्रह्मादिक

सवे रे, देखी माहारुं रूप ॥ म० ॥ मूंकाइ रहे मनथकी रे, कोण मातर नर नूप ॥ सु० ॥ आ० ॥ १३ ॥ एम आश्वासना देइनें रे,आवी जिहां छे नूप ॥ म० ॥ विश्वमोहन परगट करे रे, कामाक्षा निज रूप ॥ सु० ॥ ॥ आ० ॥ १४ ॥ काम जगावे योगिणी परें रे, एहवी चेष्टा करंत ॥ म०॥ चार पोहोर नोग प्रार्थना रे, करी पण नवि खोनंत ॥ सु०॥ आ० ॥१५॥ शील अमृत जेणें स्वादीयुं रे, ते केम गोमयुं खाय ॥ म० ॥ जैन जीवित तजे आपणुं रे, परस्त्रीयें पण न लेपाय ॥ सु० ॥ आ० ॥ १६ ॥ थाकी प्रात समय हवे रे,शीलथी अचरिज थाय ॥ म० ॥ स्तवना करती आपी यो रे, लोह मोघर वज्रकाय ॥ सु० ॥ आ० ॥ १७ ॥ अक्षय बाण नाथा विहु रे, वज्रपृष्ठ धनु दाय ॥ म० ॥ आग्नेय नाग पाशादिका रे, दिव्य श स्त्र समुदाय ॥सु० ॥आ०॥ १८ ॥ आप्यां अनेक शस्त्र नूपनें रे, ठठे खंमें ढाल ॥म०॥ एकवीशमी पद्में कहीरे,शीलथी मंगल माल ॥सु०॥आ०॥१९॥

॥ दोहा ॥

॥ कुष्ट ज्वर कंमू हरे, वन्हिदाह व्रण जाय ॥ शीत आतप जल क्लेद सवि, संहरे उपजे साय ॥ १ ॥ सर्व अंगें सुख दे फरस, अविनाशी उ द्योत ॥ नहीं मलिन नंगुर नही, जेहनी जागती ज्योत ॥२॥ एहवां वस्त्र ते आपती, वारु करी वखाण ॥ आपे बहु अलंकारनें,पुण्य तणे परिमाण॥३॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ हमचडीनी देशी ॥

॥ मरकी वारवा मुकुट ते आपे, कुंमल ज्वरने टाले ॥ कुष्टादिक व्याधि हरे तेहवा, कंठ आनूषण आले रे ॥१॥ हमचडी ॥ फेर हरण मुद्रा ते आपे, वली केयूर उदार ॥ शाकिणी माकिणी व्यंतर प्रमुखना, दोषने टा लण हार रे ॥ ह० ॥ २ ॥ घातनां व्रण पूराये सहेजें, कटक जडाव ते आपे ॥ सर्व वश थाये वली एहवो, हार गलामां थापे रे ॥ ह० ॥ ३ ॥ जे वांकां होय ते थाये सरलां, आपे कटि कंदोरो ॥ एम सप्रनाव अलंकृत दे तां, वाध्यो पुण्यनो जोरो रे ॥ ह०॥ ४ ॥ देवता तूठा शुं नवि आपे, वली रायनुं शील ॥ तास प्रनावथकी होये सघले, जयजयकार सलील रे ॥ह० ॥ ५ ॥ अर्घ्यपूजा दीधी जव रायें, तव ते अदृश थाय ॥ जइ योगिणीनें कामाक्षा कहे, हैयडेहर्ष न माय रे ॥ ह० ॥ ६ ॥ शील चलाववा हेतें एह नो, बहु उद्यम में कीधो ॥ पण न चलावी शकी हुं एहनें, एह केम जाये

लीधो रे ॥ ह० ॥ ७ ॥ वायुथकी जेम मेरु न चले, तेम ए धर्मे धीर ॥ आ
राधी सत्कार करो तुमें, एह महा वडवीर रे ॥ ह० ॥ ८ ॥ उत्तम क्षेत्र ए
हनें जाणी, वावो बीज ए गाम ॥ फलवंतुं ए बोहोलुं थाशे, आवशे आग
ल काम रे ॥ ह० ॥ ए ॥ तास वचन प्रमाण कर्युं तव, तेह गइ गुण का
म ॥ कामाक्षा निज थानक पोहोती, शुद्ध वासना धाम रे ॥ ह० ॥ १०॥
तेह पीठ उपर क्षण वेग, दोय विद्याधर राय ॥ योगिणीयो मुख आगल
आवे, चमत्कार चित्त लाय रे ॥ ह० ॥ ११ ॥ सघली चेली मली खमावे,
आपे ते अलंकार ॥ दिव्य वस्त्र तेम जिन्न जिन्न सवि, आपे अति धरी
प्यार रे ॥ ह० ॥ १२ ॥ ते सघलुं अंतेउर काजें, दिव्य शस्त्र दिये ताम ॥
अदृश प्रमुख शक्ति बहु आपे, करती सहु गुणग्राम रे ॥ह०॥१३॥ पूजा
स्तवना करी संतोषी, वज्रवेगें सुरनारी ॥ तेहवें मत्सर रहित थइ वली,
रायनुं दाक्षिण्य धारी रे ॥ह०॥१४॥ हेमकूट गिरि उपरें आपे, नृप वयणें
तस गाम ॥ अर्घ्य दिये तव अदृश थाये, जाये निज निज धाम रे ॥ ह०॥
॥ १५ ॥ सरसां गीत ए नृप चरित्रनां, बांधे रासा बंध ॥ गिरि वन प्रमुखें
क्रीडा करती, योगिनी गाय प्रबंध रे ॥ ह० ॥ १६ ॥ खेचरी योगिणी पासें
शीखे, एह चरित्र रसाल ॥ खेचरी पास मनुष्यणी शीखे, चित्त धरी प्रेम
विशाल रे ॥ ह० ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध थयुं ए चरित्र जुवनमां, हवे ते त्रिहुं ज
ण आवे ॥ हेमकूट नग उपर हेमपुर, पूरव रीतें वसावे रे ॥ ह० ॥ १८ ॥
शीलगुणें एम विद्या औषधि, पाम्या वली सत्कार ॥ आपद सघली दूर प
लाणी, हूआ जयजयकार रे ॥ ह० ॥ १ए ॥ एम जाणीनें शील धरो तुमें,
इह परजव सुखकारी ॥ शीलें विघन टले वली संपद, आवे अति उपकारी
रे ॥ ह० ॥ २० ॥ छठे खंमें बावीशमी ए, जांखी रूडी ढाल ॥ श्रीजयानं
दना रासमां सुणतां, होवे मंगलमाल रे ॥ ह० ॥ २१ ॥ सत्यविजय प
न्यास संवेगी,कपूरविजय तस शिष्य ॥ तास शिष्य श्रीखिमाविजय वर, च
ढती जास जगीश रे ॥ ह० ॥ २२ ॥ तास शिष्य पंमित जिनविजयो, सो
जागी शिरदार ॥ पंमित उत्तमविजय सोजागी, समता गुण जंमार रे ॥
ह० ॥ २३ ॥ तेहना चरण कमलें अलि सरिखो, पद्मविजय ए जांख्यो ॥
छठो खंम ए पूरण कीधो,गुणिजनें चित्तमां राख्यो रे॥ह०॥२४॥ ६८७ ॥

सवे रे, देखी माहारुं रूप ॥ म० ॥ मूंजाइ रहे मनथकी रे, कोण मातर नर नूप ॥ सु० ॥ आ० ॥ १३ ॥ एम आश्वासना देइनें रे,आवी जिहां छे नूप ॥ म० ॥ विश्वमोहन परगट करे रे, कामाक्षा निज रूप ॥ सु० ॥ ॥ आ० ॥ १४ ॥ काम जगावे योगिणी परें रे, एहवी चेष्टा करंत ॥ म०॥ चार पोहोर नोग प्रार्थना रे, करी पण नवि खोनंत ॥ सु०॥ आ० ॥१५॥ शील अमृत जेणें स्वादाधुं रे, ते केम ढांकधुं खाय ॥ म० ॥ जैन जीवित तजे आपणुं रे, परस्त्रीयें पण न लेपाय ॥ सु० ॥ आ० ॥ १६ ॥ थाकी प्रात समय हवे रे,शीलथी अचरिज थाय ॥ म० ॥ स्तवना करती आपी यो रे, लोह मोघर वज्रकाय ॥ सु० ॥ आ० ॥ १७ ॥ अक्षय बाण नाथा विहु रे, वज्रष्टष्ठ धनु दाय ॥ म० ॥ आग्नेय नाग पाशादिका रे, दिव्य श स्त्र समुदाय ॥सु० ॥आ०॥ १८ ॥ आप्यां अनेक शस्त्र नूपनें रे, ठठे खर्ग ढाल ॥म०॥ एकवीशमी पत्र्में कहीरे,शीलथी मंगल माल ॥सु०॥आ०॥१ए॥

॥ दोहा ॥

॥ कुष्ट ज्वर कंडू हरे, वन्हिदाह व्रण जाय ॥ शीत आतप जल क्लेद सवि, संहरे उपजे साय ॥ १ ॥ सर्व अंगें सुख दे फरस, अविनाशी उ द्योत ॥ नहीं मलिन नंगुर नही, जेहनी जागती ज्योत ॥२॥ एहवां वस्त्र ते आपती, वारु करी वखाण ॥ आपे बहु अलंकारनें,पुण्य तणे परिमाण॥३॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ हमचडीनी देशी ॥

॥ मरकी वारवा मुकुट ते आपे, कुंमल ज्वरने टाले ॥ कुष्टादिक व्याधि हरे तेहवा, कंठ आनूषण आले रे ॥१॥ हमचडी ॥ जेर हरण मुज्ञ ते आपे, वली केयूर उदार ॥ शाकिणी माकिणी व्यंतर प्रमुखना, दोषने टा लण हार रे ॥ ह० ॥ २ ॥ घातनां व्रण पूराये सहेजें, कटक जडाव ते आपे ॥ सर्व वश थाये वली एहवो, हार गलामां थापे रे ॥ ह० ॥ ३ ॥ जे वांकां होय ते थाये सरलां, आपे कटि कंदोरो ॥ एम सप्रनाव अलंकृत दे तां, वाध्यो पुण्यनो जोरो रे ॥ ह०॥ ४ ॥ देवता तूठा शुं नवि आपे, वली रायनुं शील ॥ तास प्रनावथकी होये सघले, जयजयकार सलील रे ॥ह० ॥ ५ ॥ अर्घ्यपूजा दीधी जव रायें, तव ते अदृश थाय ॥ जइ योगिणीनें कामाक्षा कहे, हैयडेहर्ष न माय रे॥ ह० ॥ ६ ॥ शील चलाववा हेतें एह नो, बहु उद्यम में कीधो ॥ पण न चलावी शकी हुं एहनें, एह केम जाये

शल देशल काजें रूडी, साधर्मिणी वर धन्या ॥ न० ॥ ७ ॥ तेणें पण पर णावी नली नांते, सागर ते हवे जाणो ॥ देशलनें ते जेम जेम देखे, डुःख लहे मत्सर आणी ॥ न० ॥ ८ ॥ नामें शेठ तिहां वैश्रमण, तेहनें पुत्र ठे चार ॥ धन धनपतिनें धवल ठे त्रीजो, सुजश चोथो गुणधार ॥ न०॥ ए॥ परणाव्या चारेनें तातें, सोंप्यो सवि व्यापार ॥ शेठ करे निज आतम साधन, पामवा नवोदधि पार ॥ न० ॥ १०॥ काल गयो बहु एणी परें करतां, अंते धर्मना जाण ॥ मरण उचित करणी करवानें, स्वजन तेडे तेणें टाण ॥ न०॥ ११ ॥ सात लाख इव्य साते क्षेत्रें, आपे शेठ ते हर्षें ॥ चार पुत्र बोलावी नांखे, रहेजो प्रीतें सरिखे ॥ न० ॥ १२ ॥ प्रीतें सहु निर्वाह थशे तुम, बाहिर वात न पडशे ॥ नेला रहेतां कोइक कालें, कदी कोइ आथडशे ॥ न० ॥ १३ ॥ त्यारें जूदा रहेवुं पडशें, तव घरनें चिहुं खूणे ॥ कलश एके को दाव्यो ठे में, ईशानादिक कूणे ॥ न०॥ १४ ॥ ते लेहेजो अनुक्रमें वहेंची, पण संक्लेश न करजो ॥ जो संक्लेश करो तो सहुये, शीखामण नली धरजो ॥ न० ॥ १५ ॥ एम शीखामण सहुनें आपी, विधियें धर्म आराधी ॥ दृढता धरीनें शेठें सुरगति, सहेजें सुखमां साधी ॥ न०॥ १६ ॥ चारे पुत्रें प्रीतें काढयो, तातवयणें चिरकाल ॥ नारीना प्रेस्या जूदा थावा, कलश लीये संनाल ॥ न० ॥ १७ ॥ निज निज नामांकित ते लेवे, पहेले मृत्तिका खंम ॥ बीजामां हाड त्रीजामां कागल, हवे चोथामां प्रचंम ॥ न०॥ १८ ॥ कंचन मणि नरियां ते देखी, त्रणें कीध विचार ॥ तात धर्मी पण जूठ ठेतरीया, विश्वासें तेणी वार ॥ न० ॥ १ए॥ लघुनें सघली लखमी आपी, वंचना न होये प्रमाण ॥ लखमी जूदी वहेंची लीजें, चारे नाग समान ॥ न० ॥ २० ॥ वेंचवा लघु पासें त्रण मागे, पण ते लघु नवि आले ॥ साखीया स्वजननें साख पूरावी, क्लेश करे ततकालें ॥ न० ॥ ॥ २१ ॥ स्वजन जोइनें चित्त विचारे, ए शुं कहीयें नाइ ॥ साखी आपण पण अणघटती, वात ते करियें कांइ ॥ न० ॥ २२ ॥ ऊगडो नवि नांग्यो ए कोयथी, स्वजनशुं गया राजद्वार ॥ सघलो व्यतिकर तिहां संनलाव्यो, सांनली करे विचार ॥ न० ॥ २३ ॥ एकें ऊणा पांचशें मंत्री, करवा बेठा न्याय ॥ पण कोइ नहीं समरथ चूकववा, तव चिंतवे ते राय ॥ न० ॥ २४ ॥ सागर प्रमुख ते सघला थाका, पुरमां पडह वजावे ॥ जे कोइ एह विवा

चारण मुनिवर तिहां मल्याजी, ज्ञानी गुरुना नम्या पाय ॥ परिछदशुं तस परिसरेजी, वेगे हुं चित्त लगाय ॥श्री०॥२१॥ मुनिवरें देशना तव करीजी, पुण्यथी देव जिनराय ॥ गुरु मले शुद्ध चारित्रीयाजी. धर्म तस नावित था य ॥ श्री० ॥ २२ ॥ मन अनुजाइ ललना मलेजी, परिछदनें घणे स्नेह ॥ पुत्र विनीत पुण्यें मलेजी, हवे सुणो पापथी जेह ॥ श्री०॥ २३ ॥ नीच कु लें जन्म दरिद्रताजी, वचन निष्ठुर घण रोग ॥ वध पराजव अपयश घणो जी, डुष्ट कुटुंब संयोग ॥ श्री० ॥ २४ ॥ पाप ठांमी ते कारणेजी, धर्म करियें नित्यमेव ॥ इष्ट पामे नें अनिष्ट टलेजी, जस मन श्रीजिनदेव ॥ ॥ श्री० ॥ २५ ॥ सातमे खंम पहेली कहीजी, पद्मविजयें वर ढाल ॥ श्री जयानंदना रासमांजी, धर्मथी मंगलमाल ॥श्री०॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ ३३॥

॥ दोहा ॥

॥ सांजली मुनि वयणां सखर, कहे नृप केंम करुं धर्म ॥ पत्नीवियो ग पीडे घणुं, करुं बंध बहु कर्म ॥ १ ॥ प्रसन्न थइ नांखो प्रजु, कामिनी अपहरि केण ॥कारण शुं नें ठे किहां,जडशे के नही जेण ॥२॥ योग्य पु त्री नरता जीको, नांखो मुज जगवंत ॥ वली तुम देखी मुद वधे, ते कहो सहु विरतंत ॥ ३ ॥ महाजाग्य कहे मुनिवरु, पूरव नव परबंध ॥ जाणुं ज्ञानें जगतनें, सांजलो एह संबंध ॥ ४ ॥ संदेह जाशे सामटो, इणद्विज नरतें आम ॥ शेठ पूरणजद्द सिद्धपुरें, धर्मवंत धनधाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ बेडले नार घणो ठे राज, वातां केम करो ठो ॥ ए देशी ॥

॥ दोय पुत्र तेहनें थया सुंदर, कौशल देशल नाम ॥ बालथकी सम किती व्रतवंता, जैनधर्मेशुं काम ॥ १ ॥ जविजन जाव धरीनें एह, सांजलो चरित्र रसाल ॥ सांजली कर्म न करशो कोइ, जेहथी नवजंजाल ॥ ज० ॥ ॥ २ ॥ गुणदत्त शेठ वसे तिण पुरमां, जैनधर्मी गुणवंत ॥ गुणमाला ना र। गुणसुंदरी, पुत्री बहु रूपवंत ॥ ज०॥ ३ ॥ देव गुरुनी जक्ति करे घणुं, बालथी धर्में राती ॥ देवराज नृपनो एक सागर, मंत्री मिथ्यामति माती ॥ ज० ॥ ४ ॥ चैत्यथकी नीकलतां दीठी, गुणसुंदरीनें तेणें ॥ जाची पण नवि आपी तातें, मिथ्यात्वी ठे जेणें ॥ ज० ॥ ५ ॥ कौशलनें परणावी तातें, कन्या गुणवती नामें, विधिपूर्वक पूर्णजद्द आराधी, पोहोता सुरवर धामें ॥ ज०॥ ६ ॥ कोइक दिवस पठी हवे जाचे, गुणदत्त शेठनी कन्या ॥ को

च्चक्रियां, ए खर कर्म विचार ॥ आ० ॥ १३ ॥ मंत्रीमुद्रा विण नर राजी यो, मुख्यपणे करे तास ॥ सर्व कार्यमां पूछे एहनें, घरनो व्यय दीये खा स ॥ आ० ॥ १४ ॥ बीजा मंत्री बहु ईर्ष्या करे,सागर वली सुविशेष ॥ एक द्रव्यना सहु अनिलाषिया, तिहां ईर्ष्यानें रें द्वेष ॥ आ०॥ १५ ॥ एक दिन मंत्री कहे नररायनें, रिपुमर्दन जेह राय ॥ डुर्दम बलीयो आण माने नहीं, देवगिरि तस ठाय ॥ आ० ॥ १६ ॥ कौशल मोकलीयें तेणें कारणें, संधि करे बुद्धिमंत ॥ ग्रास खाये ते बलवंतो होय, परीक्षा पण होये तं त ॥ आ० ॥ १७ ॥ तेहनें योग्य ते नेटणुं आपीयें, सागरने कहे ताम ॥ एह दिशें अपूर्व ते मोकलो, एटलुं करो अम काम ॥ आ० ॥ १८ ॥ जा त्य अश्व वस्त्रादिक मोकलो, सांनली सहु हरषंत ॥ ईर्ष्यायें तस वधनें इ छतां, करंमीयो एक अर्पंत ॥ आ० ॥ १९ ॥ कनककुंन तेहमां धूलें नख्यो, मुद्रा देइने तास ॥ आप्यो तेणें पण सरलथी ते ग्रह्यो, तेहनो धरी विश्वा स ॥ आ० ॥ २० ॥ कौशल लेइनें रे नृप आणाथकी, देवगिरि पोहोतो ति हां नूप ॥ प्रणमी आगल नेटणुं मूकतो, नृप जाणे ए अनूप ॥आ०॥२१॥ सुखप्रश्नादि करे पूछे नूपति, कौशल कहे सुणो स्वाम ॥ संधि मेल करण मुज मोकल्यो, देवराय मुज आम ॥ आ० ॥ २२ ॥ मित्राइयें करी रे प्रीति धरी घणी, नेटणुं मोकल्युं एह ॥ तव करंमक उघाडी जोईयो, चित्तमां धरी अति नेह ॥आ०॥२३॥ सातमे खंमें रे ढाल त्रीजी कही, श्रीजयानंदनें रा स ॥ पद्मविजय कहे सांनलतां थकां, पामे लीलविलास ॥आ०॥२४॥८९

॥ दोहा ॥

॥धूली नख्यो पृथिवी धरे, दीठो कुंनदेदार ॥ कोप्यो नृप कौशल प्रति, वयण कहे तेणि वार ॥ १ ॥ तुज स्वामी उन्मत्त थयो,मरवानुं करे मन्न ॥ नेटणें धूल नरी करी, प्राचृत जूठ प्रछन्न ॥ २ ॥ क्रोध राक्षसने बलि करुं, तुज परिवार समेत ॥ वध्य नहीं नृप मंत्रवी, शुं करुं ए संकेत ॥ ३ ॥ तुज स्वामीनें जइ तुरत, संनलावे धरी शान ॥ आवुं छुं उतावलो, तेणें युद्धनुं करे तान ॥ ४ ॥ चित्तमां कौशल चिंतवे, नीति में लंघी न्याय ॥ ईर्ष्यायें कर्युं एणी परें, एह मारणनो उपाय ॥ ५ ॥

॥ढाल चोथी॥ यात्रा नवाणुं करीयें विमलगिरि, यात्रानवाणुं करीयें ॥ए देशी॥

॥ नाग्य तुमारुं नारी ॥ नूपति जी॥ नाग्य तुमारुं नारी ॥ हसतो हसतो

दनें भांजे, तस मंत्रि शिर गाजे ॥ भ० ॥ २५ ॥ सातमे खंडें पद्मविजय क ही, बीजी ढाल रसाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां रूडी, सुणतां मंगलमा ल ॥ भ० ॥ २६ ॥ सर्व गाथा ॥६४॥

॥ दोहा ॥

॥ कौशल सांभली कानमां,पडह ग्रहे निज पाणि ॥ नृप आगल नमिनें कहे, सांभलो राय सुजाण ॥ १ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ आठो रंग लाज्यो रे, माणिगर महाराजा ॥ ए देशी ॥

॥ सुणो नरराजा रे.वाद हुं टालशुं, ऊगडो वांको ठे अति एह ॥ कोयनें खबर पडे तो टालजो, हुं टालुं निःसंदेह ॥१॥ आठो न्याय करजो रे, शेठ तुमें सोभागी ॥ ए आंकणी ॥ एम कहे राजा रे तेहनें वयणडुं,तव तेणें ते ब्या ते भाइ चार ॥ पूछे तात तुमारो जीवतां, श्यो श्यो करता व्यापार ॥ आ० ॥ २ ॥ खेती वाडी हुं करतो तदा, पहेलो बोले ए रीति ॥ शेठ कहे अन्न केटलुं तुम्ह थतुं, ते कहे धरी प्रीति ॥ आ० ॥ ३ ॥ लाख मूडा अन्न आवतुं माहरे, पन्नर लाख ते मूल ॥ बीजो कहे हुं आपण माहरे, पशु व्यापार अनुकूल ॥ आ० ॥ ४ ॥ वेचुं तुरगादिक दश सहस्रना,लाभ पनर लाख थाय ॥ त्रीजो कहे हुं व्याज वटंतरें, आपुं मंमलिक राय ॥ आ० ॥ ५ ॥ पनर लाखनो लाभ तेहमां होये, चोथो कहे मुज कोश ॥ सों प्यो हतो तस मूल जो कीजियें, पनर लाखनो जोस ॥ आ० ॥ ६ ॥ कौ शल कहे नृपनें सुणो स्वामी, जे जे कामनो दक्ष ॥ ते ते काम सोंप्युं ए चारनें, सहुनें पन्नर लक्ष ॥ आ० ॥ ७ ॥ माटी कलशथी खेतर जा णीयें, हाड कलशें पशुवृंद ॥ कागलथी नामें लेखे करी, धन पामे सुख कंद ॥ आ० ॥ ८ ॥ परगट दीधी लखमी चोथा प्रत्यें, कोश तणो अधिका र ॥ एहनें हतो तेणें तातें आपियो, नवि आवडे को व्यापार ॥ आ० ॥ ॥ ए ॥ सरिखे भागें सरिखे आपियुं, मूर्ख करे रे विवाद ॥ चारे भाइ सां भली हर्षित थया, सहु गया मूकी विषाद ॥ आ० ॥ १० ॥ कौशलनी बु द्धिनें वरणवे, चारे धरता ते प्रीति ॥ तात उपर बहु आदर उपन्यो, तात जाणे बहु नीति ॥ आ० ॥ ११ ॥ चमत्कार पाम्यो तस बुद्धिथी, राय कहे सुणो शेठ ॥ ल्यो मंत्रीमुद्रा तुमें हर्षेशुं, मंत्री सहु तुम हेठ ॥ आ०॥१२॥ कौशल कहे मुद्रा लेउं नहीं, हुं श्रावक व्रत धार ॥ राज्य नियोगादिक में

परें, सत्य तो तुज वच थाय ॥ नू० ॥ गजने थंनावे देइ आणा, कार्यें कारण जणाय ॥ नू० ॥ १७ ॥ कौशल गयो गजवरनी पासें, लेई परिछद समुदाय ॥ नू० ॥ परगट आण देई निज नृपनी,हृदयमां मंत्र सोहाय ॥नू०॥ ॥ १८ ॥ तास प्रनावथी तेह मतंगज, मंत्रवलें थंनाय ॥नू०॥ चमत्कार पाम्यो ते राजा,मंत्री प्रत्यें बोलाय ॥नू०॥१९॥ तुज धूलि सरखी दिव्य वस्तु नही, महारा घरमां कांय ॥नू०॥ तेहिज हाथी नेटणें आप्यो,बहु सत्कार कराय ॥नू०॥२०॥ एहवी वेला अमनें संनारजो,शुं कहीयें वारं वार ॥ मंत्रीश्वर शुं कहीयें वारंवार ॥ ए आंकणी ॥ परिछद सहित पहेरामणी करतो, वस्त्र तथा अलंकार ॥ मं०॥ २१ ॥ अनुक्रमें सिद्धपुर परिसर पोहोता, तिहां कीधा उतार ॥ मं०॥ पूर्वमंत्रीश्वर सांनली बीहिना, आप करणी संनार ॥ मं० ॥ २२ ॥ साहामा आवीने ते खमावे, बहु पश्चात्ताप धार ॥मं०॥ गजवर आगल करीने चाल्या, नृपनें करे नमस्कार ॥ मं०॥ २३ ॥ नृप पूछे सुखशाता तेहनें, मंत्री करे उच्चार ॥ मं० ॥ तुम परतापें सुखशाता छे, कह्यो सघलो अधिकार ॥ मं० ॥ २४ ॥ धूलिवृत्तांत ते गोपवी राख्यो, सज्जनता अनुसार ॥ मं० ॥ बलीया रायशुं मेल सुण्यो वली, गजवर नेट विचार ॥ मं० ॥ २५ ॥ असंनाव्य एह वात सुणीने, नृपनें हर्ष अपार ॥ मं० ॥ सातमे खंमें चोथी ढालें, पद्मविजय जयकार ॥ मं०॥२६॥१२०॥

॥ दोहा ॥

॥ तुष्टमान तेह उपरें, देशलनाइनें देश ॥ आपे बहु आग्रह करी, लेवे नहीं ते लेश ॥१॥ पांचमुं व्रत पच्चख्युं अछे,ते केम नांगे तेह ॥ सत्कार्यो स्तवना करी, गयो आपणे गेह ॥ २ ॥ मंत्रीमां महोटो थयो, सख्यादिक वली स्नेह ॥ पोहोंचाडे नृप पाधरुं, मोदयकी जेम मेह ॥ ३ ॥ धूल वात धरणीधवें, सांनली कोइक पास ॥ पाप छानुं परगट होये, विरूप लसण जेम वास ॥४॥ यतः ॥ बीज चंद मुंमित छुरे,अब्रह्म लसणनी वास ॥ छानुं पाप जाते दिनें, किमहिक होय प्रकाश ॥ १ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ सोना केरुं बेडलुं, मारुजी वाव खोदाव ॥
रूपला इढाणी हेठ, वावडली पातालनी, पाणीडां नरुं रे तलाव ॥ ए देशी ॥

॥ नरपति चिंतवे एणी परें, नेटणुं जइ गयो धूल ॥ पण कोइ बुद्धि प्रनाव, कारय करी आवीयो,नृपने कह्यो अनुकूल ॥१॥ सर्व नंमार जो दीजीयें,

कौशल बोले, एणे वयणें निरधारी ॥ नू० ॥ च्यार बुद्धिनिधि चतुर विचक्षण, बुद्धि उपनी अति सारी ॥नू०॥१॥ राय कहे तुं एम केम बोले, हृदयें दृढता धारी ॥नू०॥ कनक कुंनमां रज कोण नरशे, चित्तमां जूउं विचारी ॥ नू० ॥ २ ॥ नृप कहे कहो तुमें तेहनुं कारण, कौशल कहे अवधारी ॥ नू०॥ तुम प्रसाद होये तो हुं नाखुं, नृप कहे कहो सहु मारी ॥नू०॥ ३ ॥ मंत्री कहे सिद्धपुरमां जाणो, उपद्रव थइ बहु मारी ॥ नू०॥ अंधलरेव्या देवी आराधि, नरपति थइ उपगारी ॥ नू० ॥ ४ ॥ बहु चौटानी धूल नेली करी, देवीयें तिहां अवतारी ॥ नू०॥तुष्टमान थइ एणी परें नाखे, करजो तिलक सुखकारी ॥नू०॥५॥ मरकी उपद्रव सघलो टलशे,तुमनें कहुं हित आणी ॥ नूपतिजी तुमनें कहुं हित आणी ॥ए आंकणी॥ व्यंतर शाकिनी विविध उपद्रव, विविधनी होशे हाणी ॥नू०॥६॥ रायें पूजा करी रज लीधी, शिर धरी तेहनी आण ॥ नू० ॥ नगरलोक वली अंतेउरनें, तिलक करावे जाण ॥ ॥ नू० ॥ ७ ॥ सहुना उपद्रव पुरमां टलीया, हवे तुम प्राभृत दाण ॥ नू० करवानें तुम पासें मोकल्यो, रज नरी कुंन प्रमाण ॥ नू०॥ ८ ॥ मृगमदथी पण ए बहु मूली,स्यां करुं अतिही वखाण ॥ नू० ॥ वात सांनलीनें ला ज्यो राजा, प्रीति धरे अप्रमाण ॥ नू० ॥ ए ॥ कोइ आगल तुमें वात न करजो, नरपति कहे एम वाण ॥ नू० ॥ राक्षस वृत्तियें में एम नाख्युं, अ विचारें इण ठाण ॥ नू० ॥ १० ॥ तेहनुं तिलक करे निजनालें, बहु गुण तेहनो जाणि ॥ नूपतिजी बहु गुण तेहनो जाणि ॥ ए आंकणी ॥ चपटी चपटी देइ परिवारनें, वली जे अंतेउर राणी ॥ नू०॥ ११ ॥ तुष्टमान थइ कौशलनें कहे,अहो अहो तुं नलो प्राणी ॥नू०॥ तुज स्वामीनें जइने तुं कहे जे,आपणी प्रीति मचाणी ॥ नू०॥ १२ ॥ जावज्जीव अखंभित जाणे,नही जाये ते खंभाणी ॥ नू० ॥ अम सरिखुं जे काम होये ते,कहेवरावजो निज जाणी ॥ नू० ॥ १३ ॥ पूछे नृप तुज रायनी आणा, शक्ति ते केहवी पिछाणी ॥ नू० ॥ कौशल कहे शुं कहीयें तेहनुं, पशुयें पण सुप्रमाणी ॥ नू० ॥ ॥ १४ ॥ मुज नृपनी आणा जो दीजें, गज पण माने वाणी ॥ नू०॥ एणें अवसर तिहां गजवर छूटो, कल कल वाणी संनलाणी ॥ नू० ॥ १५ ॥ सेवकनें नृप पूछे शुं ए, सेवक कहे सुणो राय ॥ नू०॥ गज छूटो अहिरावण सरिखो, उपद्रव बहुत कराय ॥ नू० ॥ १६ ॥ नरपति कहे कौशलनें एणी

खर तस पुत्र, यौवन आव्यो यदा, विद्या कलानो नंमार ॥२०॥ कन्या व त्रीश परणावीयो, नव नव खेले रे खेल ॥ देशज देव चवी थयो, चंद्रगति पणे, तुं ते करतोजी केल ॥ २१ ॥ पूरवनवें जे नामिनी, गुणसुंदरी जे नारि ॥ तुज वियोगें तेह लीये, व्रत तप तपी बहु, वरषां लगें सार ॥ २२ ॥ चोथे स्वर्गें सुर थयो,तिहांथी चवियो रे तेह ॥ ओगनो पुत्र थयो, चंद्रमुख नामें खरो, रूपकला गुण गेह ॥ २३ ॥ धर्मधीर गुरुनें कनें, नोगवी नोग उदार ॥ दीक्षा लेइ सिद्धांत नण्यो, बहु तप तपी, देव थयो श्रीकार ॥२४॥ पांचमे देवलोकें सुखी, तिहांथी चवि तुज नारि ॥ चंद्रमाला अनिधानथी, स्नेह पूरव तणो, इहां तुमनें निर्धार ॥ २५ ॥ सातमे खंमें पांचमी, पद्म विजय कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां, नविजन सांनलो, आगल वात रसाल ॥ २६ ॥ सर्वगाथा ॥ १५० ॥

॥ दोहा ॥

॥ सागर जे पूर्वें सचिव, मिथ्या दृष्टि महंत ॥ आरंन परिग्रह अति करी, प्रथम नरक पहोचंत ॥ १ ॥ नरकमांहेथी नीकली, सारंग प्रमुख अ संख्य ॥ नव कीधा बहु नांतिना, शुं कहुं तेहनी संख्य ॥२॥ दुःखियो ब्रा ह्मण दरिद्रता, परिव्राजक पणुं पाम ॥ हवे सुणो तिहांथी जे हवुं, कही यें तेहनुं काम ॥ ३ ॥

॥ ढाल ठठी ॥ सुण मेरी सजनी रजनी न जावे रे ॥ ए देशी ॥

॥ लवण समुद्रनें वैताढ्य पासें रे, वनराजी घणुं शोहें विकाशें रे ॥ व ज्रकूट पर्वत ठे तत्र रे, बहु देवता क्रीडा करे यत्र रे ॥ १ ॥ त्रण योजन पोहोलो नें लंबाण रे, उंचानुं पण एहिज माण रे ॥ तेहनें गर्नें नुवन ठे एक रे, गाउ उंचुं पोहोलुं सुविवेक रे ॥ २ ॥ लांबो पण एक गाउ जाणो रे, मणिमय कांति उद्योत पिठाणो रे ॥ सरोवर वन वापी तिहां शोहे रे, इंद्रिय सुखकारी मन मोहे रे ॥ ३ ॥ पृथिवीनें पर्वत अर्ध विराजे रे, नर नें अगम्य ते थानक ठाजे रे ॥ चार देवीशुं वज्रमुख नामें रे, क्रीडा करे ते सुर तेणे गमें रे ॥ ४ ॥ तिहां उपजे तस नाम ते एह रे, हवे मंत्री जीव ब्राह्मण जेह रे ॥ परिव्राजक मरी वज्रमुख थाय रे, तुज नारीनें ते ह रि जाय रे ॥ ५ ॥ पूरव अन्यासथी धरतो राग रे, क्रीडा करणनो पामी लाग रे ॥ दृढ संस्कारनुं बीज जे होय रे, जन्मांतरें ते आवे जोय रे ॥६॥

पण न वले उपकार ॥ देशादिक देउं तेह,न लेवे कोइ परें, एणी परें मनमां रे धार ॥ २ ॥ राय प्रसाद बहु धरे, सागर दंऊयो रे सोय ॥ एणद्विज मोकली धूल,ए अपराधी घणो,ए सम पापी न कोय ॥ ३ ॥ सागर चित्तमां चिंतवे, देशलें माहारी वात॥राय आगल कहि तिण,धरें द्वेप आकरे,देशलशुं धरे घात ॥ ४ ॥ नारीनो द्वेप ठे धुरथकी, वली तस अधिको रे थाय ॥ पोतें करी अपराध, ढाले शिर पारके, अधम ते अवगुण गाय ॥ ५ ॥ प्रीतिदान नृप मोकले, एकदिन कौशल गेह ॥ घृतना दश सहस कुंन, मूडा तेम शालीना, आपी अतिशय स्नेह ॥ ६ ॥ व्रतथी वमणा आवीया, बीहिकण व्रतनें रे नंग ॥ देशलनें कहे एम, सहस पांच मोकलो, पाठा व्रतनें रे रंग ॥७॥ अथवा धर्ममां वावरो, पण नवि राखो रे एह ॥ व्रत आपणनुं नंग, थाय तेम मत करो, चूकजो मत तुमें रेह ॥ ८ ॥ एम कही कौशल गया, देशल चिंतवे ताम ॥ राज्यकुलें गयुं जेह, ते पाछुं नहीं फरे, केम मोकलीयें ते आम ॥ ए ॥ एम चिंतवीनें अधिक जे, आपे निज परिवार ॥ यापण हेतें तेह, विश्वास नाइ प्रत्यें,उपजावे धरी प्यार ॥ १० ॥ एम बहुवार कस्यो एणे, व्रतमांहे अतिचार ॥ आयु पूरुं करी देशल, व्यंतर ते थयो, ऋधि अलपनें असार ॥ ११ ॥ तिहांथी दलिद्र ब्राह्मण थयो, वली थयो दलिद्रीनें घेर ॥ वणिककुलें धन काज, उपाय करे अति, क्लेश करे बहु पेर ॥ ॥ १२ ॥ पण नवि पामे पायको, व्रतखंमन फल जोय ॥ कौशल निरतिचारें, श्रावक धर्म पालतो, महावैरागी होय ॥ १३ ॥ धर्मगुप्त गुरुनें कनें, आदरे ते व्रत नार ॥ त्रिकरण योगें आराधी, सातमे कल्पें थया, ऋद्धि तणो नहीं पार ॥ १४ ॥ सत्तर सागर आउखे, तेह थयो सुरराय ॥ व्रत आराधन ए फल, जाणी आराधजो,जेम लहो सुखसाय ॥ १५ ॥ अवधि ज्ञानथी देवता, नाइ तणुं दुःख जाणी ॥ ऋद्धि देखाडी आप, संविज्ञ दीक्षा ग्रहे, जाणी नवदुःख खाण ॥ १६ ॥ तप कीधुं अति आकरुं, सातमे देवलोकें देव ॥ नाइयें कस्यो उपकार, धर्मना रागथी, सुख नोगवे नित्यमेव ॥ ॥ १७ ॥ पूरव नव अन्यासथी, एण नव पण बहु स्नेह ॥ जिनपूजा वली तीर्थ. यात्रा बहु करे,पुण्य संचय करे तेह ॥ १८ ॥ सुखमां चर्वा तेह देवता, कौशलनी सुणो वात ॥ वैताढ्यें मणिमंदिर, पुरनो राजियो, विद्याधर कहेवात ॥ १ए ॥ मणिधर नामें ते थयो, मणिमाला तस नारि ॥ मणिशे

मैं वे तेणें व्रत नावे रे ॥ २२ ॥ लेजे दीक्षा वहेलो नाइ रे,मोक्ष ते लइयें साथें सखाइ रे ॥ सांजली पूर्व नव संजारे रे, आसक्त नहीं पण प्रिया मन धारे रे ॥ २३ ॥ मुनि प्रणमीनें हुं गयो गेह रे, मुनि विचरे बीजे गाम तेह रे ॥ वज्रवेग मूकावण हार रे, ते दिनथी खोळुं हुं प्यार रे ॥२४॥ विद्याधरथी वात हुं जाणी रे, आव्यो तुम पासें मन आणी रे ॥ सातमे खंमें बही ढाल रे, पद्म कहे सुण्यां मंगलमाल रे ॥ २५ ॥ सर्वगाथा ॥१७०॥

॥ दोहा ॥

॥ रखे प्रारथना ए करे, एणी परें मन अवधार ॥ कामकुंनादिक सहु करे, प्रारथनायें प्यार ॥ १ ॥ हुं चेतन अचेतन तणो, अंतर श्यो होय एथ ॥ प्रार्थना विण प्रथमथी, प्रारंन्या शुनपंथ ॥ २ ॥ उत्सव माहरे आवीयो, नाग्य उदय महानाग्य ॥ दोय कार्य इहां देखीयें, पर उपकार परा ग ॥ ३ ॥ बीजुं डुष्ट निग्रह बने, उत्तम तृप्ति उपकार ॥ नृपडव्य द्विज अन्नथी, वणिक लानें व्यवहार ॥ ४ ॥ कामें वेश्या स्त्री कलहें, लांच नियोगी लेय ॥ खल बलथी तृप्तो खरो, दाता दानने देय ॥ ५ ॥ श्रीमंत रोगी सांनली, वैद्य हर्ष लहे वेग॥तेम तुज काम करुं तदा, तृप्ति लहुं अति रेग॥६॥

॥ ढाल सातमी ॥ योगमाया गरबें रमे जो ॥ ए देशी ॥

॥ सांनलो वली एक वातडी जो, केम सहे अन्याय ते नूप जो ॥ देवनो पण बीहीकण थइ जो, तो प्रजानुं शुं स्वरूप जो ॥ १ ॥ धीरजें सहु आवी मले जो ॥ ए आंकणी ॥ जइ परवत चूरण करुं जो, जीतुं सुर डुष्ट ते जाय जो ॥ विजय रायनो उपन्यो जो, तो वाळुं ताहरी जाय जो ॥ धी० ॥ २ ॥ पवनवेग सायें लेइ जो, वली चंडगतिशुं जेह जो ॥ वज्रकूट नग उपरें जो, सात्विक आव्यो सत्वगेह जो ॥ धी०॥ ३ ॥ उच्चस्वरें बोले तिहां जो, रे अधम डुष्ट परनारी जो ॥ लेइ पेठो पातालमां जो, अहि जेम बिलमां लेई हार जो ॥ धी०॥ ४ ॥ सन्नद्धबद्ध थइ आव्य तुं जो, जो समरथ वे संग्राम जो ॥ नहीं तो नारीनें आपीयें जो, अन्यथा फेडुं तुज गाम जो ॥ धी० ॥ ५ ॥ त्रण वार एम बोलीयो जो, पण परगट न थयो देव जो, क्रोधथकी तव धमधम्यो जो, गिरि चूरवा मांम्यो हेव जो ॥ धी० ॥ ॥ ६ ॥ तथाहि ॥ मुजर कामाक्षा दियो जो, जेहनुं बल वज्र समान जो ॥ शृंगशीला पाडे घणी जो, महावृक्ष समूलां थमान जो ॥ धी०॥७ ॥ शृंगशी

राग उल्हायो ते वली जागे रे, संबंधी देखी लय लागे रे ॥ मेघ देखी जेम हुडकवा थाय रे, ते सुर पोहोतो अपने ठाय रे ॥ ७ ॥ प्रार्थना कर तो भोगनी तेह रे, सती अन्य इछे न धरे नेह रे ॥ काल काढवा एणी परें जासे रे, ब्रह्मचर्य व्रत मुज एक मासें रे ॥ ८ ॥ विद्या कामें ए में कीधुं रे, ते केम जाये मेल्युं लीधुं रे ॥ एम करतां जो लोपिश शील रे, तो जीन चांपी मरण लहुं लील रे ॥ ९ ॥ एहमां कांइ संदेह न जाणे रे, सांभली सुर बीहिनो तेणे टाणे रे ॥ भोग आशायें पडख्यो मास रे, आशायें जीवे जाव वनूास रे ॥ १० ॥ जैन सती न चलावीयें देवें रे, जैनधर्मनें जे नित्य सेवे रे ॥ हवें कौशल सुर खेचर जेह रे, मणिशेखर क्रीडा करे तेह रे ॥ ११ ॥ एक दिन धर्मरुचि अणगार रे, आव्या नगर उद्यान मजार रे ॥ प्रणमी तेहना भक्तें पाय रे, धर्म सांभल्यो चित्त लगाय रे ॥ १२ ॥ वैराग्यें वासित थइ लीधी रे, दीक्षा जैननी जेह प्रसिद्धि रे ॥ धीर पुरुष ते न करे ढील रे, धर्मकार्यमां उद्यमशील रे ॥ १३ ॥ सुव्रता गणिनी पासें दीक्षा रे, तेहनी नारी लेइ धरे शिक्षा रे ॥ अनुक्रमें मुनिवर थया चउनाणी रे, ते हुं विचरतो आव्यो जाणी रे ॥ १४ ॥ वियोगथी तुं पीडाणो रे, प्रति बोधवा आव्यो ए टाणो रे ॥ ते पण पूर्वभवनो नेह रे, तुजने पण उपजे छे तेह रे ॥ १५ ॥ बुज तुं विरमी विषय विकार रे, लेइ चारित्रनें था अण गार रे ॥ सातमा देवलोकना भोग रे, भोगव्या विविध ते देवी संयोग रे ॥ ॥ १६ ॥ मनुष्यना भोग तो अशुचि भंडार रे, तेहमां केम मूंज्यो एणी वा र रे ॥ सागरोपम सरिखा जिहां काल रे, तृप्ति न पाम्यो ते भोग रसाल रे ॥ १७ ॥ बिंदु सम नर भोग ते आगें रे, अल्प आयु केम तरप ते भागे रे ॥ ते सांभली में भाख्युं एम रे,बंधु परें तुमें राख्यो प्रेम रे ॥ १८ ॥ कल्पवृक्ष परें तुमें उपकारी रे, तुम वाणी मुजनें हितकारी रे ॥ पण हुं नारीनें स्नेहें बंधाणो रे, वली सुर हरि गयो तेणें पीडाणो रे ॥ १९ ॥ हुं न त्यजी शकुं तेणें मुज दाखो रे, नारी वाल्यानो उपाय ते भाखो रे ॥ कन्या वर कोण थाशे एह रे, कहो मुजनें सघलुं करुं तेह रे ॥ २० ॥ थइ कृतार्थी रही कोइ काल रे, लेशुं दीक्षा परम दयाल रे ॥ मुनि कहे पवन वेग सुत जेह रे, वज्रवेग मूकावशे तेह रे ॥ २१ ॥ योगिणी घरथी स्वशक्तें राय रे, ते तुज पुत्रीनो वर थाय रे ॥ ताहारी नारीनें तेह मूकावे रे, भोग क

॥ दोहा ॥

॥ शीलें नवनिधि संपजे, शीलें सिंह शियाल ॥ शीलें सुरसान्निध करे, शील धरो सुरसाल ॥ १ ॥ शीलें सर्प होय रासडी, शीलें आग शमंत ॥ शीलें थल होये सागरें,शील आनूपण संत ॥ २ ॥ नेत्र ज्वाजल्यें निरख तो, क्रोधीनें महाक्रूर ॥ रे रे कां मरवा तणुं, शरण करे ठे शूर ॥ ३ ॥ शै ल नांजे तुं शूरथी, आणुं ताहारो अंत ॥ मूरख तुं महीपति कहे, तुज क रुं अंत ए तंत ॥ ४ ॥ परस्त्री लेइ पातालमां, उंदर औषधी लेय॥ बिल पे से बलवंत तिम, ठटके केम छुटेय ॥ ५ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ अरणिक मुनिवर चाल्या गोचरी ॥ ए देशी ॥

॥ सांजल रे मुज वात शोहामणी, मुज वेगं अन्याय जीरे ॥ दैववशें तें कीधुं एवडुं, पण तें नवि छूटायजी रे ॥ सां०॥१ ॥ चंड्गति नीरे पत्नी आप तुं, मत कर मरवानुं मन्नजी रे ॥नग चूख्यो पण नवि छूटो थयो, चू रे मोघर तुज तन्न जीरे ॥ सां० ॥ २ ॥ देव कहे क्रोधें करी एहवुं, तुं बा लक नरमात जीरे ॥ सिंहथी मृगली मूकाववा मन करे, तुंहिज मूढ ए णि वात जीरे ॥ सां० ॥ ३ ॥ मोघर उपाडी हणवा नणी, नृप उपर सुर धायो जीरे ॥ पवनवेगादिक बीहीकथी नासता, नृप पुंठे सहु आयो जी रे ॥ सां०॥ ४ ॥ नरपति विद्यायें सहु थंनीया, वज्रमोघर लेइ धाय जीरे ॥ घात मोघरना रे मांहो मांहे पडे, मानुं गगन फोडाय जीरे ॥ सां० ॥ ५ ॥ बहु वेला एम मोघरे जूऊीया, निज मोघरें नरराय जीरे ॥ सुर मोघर ते रे चूरी नाखीयो, तव ते क्रोधें नराय जीरे ॥ सां० ॥ ६ ॥ ज्वलती लेइ करवालनें दोडीयो,सूरय हासें नूप जीरे ॥ रंनास्तंनपरें खंमित करी,लीला यें धरी चूंप जीरे ॥ सां० ॥ ७ ॥ दिव्य त्रिशूल गदादिक शस्त्रथी, युद्ध करे ते अनेक जीरें ॥ नागपाशथी रे बांधे परस्परें, सघले नृप जय टेक जीरे ॥ सां० ॥ ८ ॥ समकेत शीलनें जिनशासनी वली, न परानव करे इंदो जीरे ॥ तो ए सुर किंकरनुं शुं गजुं, जे पडयो परस्त्री फंदो जीरे ॥ सां०॥९ ॥ नृप मस्तकमां रे तरु लेइ ऊडीयो, पुष्प वेराणां ताम जीरे ॥ मानुं सुर वृष्टि करे फूलनी, कुमर शिरें अनिराम जीरे ॥ सां०॥ १० ॥ नृप पण तरु लेइ तस तरु नांजतो, तव ते शिलायें युद्ध जीरे ॥ युद्ध करे बेहु तेह सुनट थइ,रोषथकी अतिक्रुद्ध जीरे ॥ सां० ॥ ११ ॥ शिलायें वली मुष्टियें चूरतो,

लाना घोषथी जो, विश्वनें पण उपजे त्रास जो ॥ पृथिवी गाजे मेघ ज्युं जो, फलके सायर जलराशि जो ॥ धी०॥८॥ त्रास लहे जलचर बहु जो, उछले तिहां जलकल्लोल जो ॥ ज्योतिषी नासे वेगला जो, करता मांहो मांहे हलबोल जो ॥ धी० ॥ ए ॥ नदी द्रह जल बहु उछले जो, उन्मार्गे चाले तेह जो ॥ गाम नगर वहेवरावता जो, बहु वायरे उडे खेह जो ॥ धी०॥१०॥ शिला चूर्ण बहु उछले जो,तेणे दिशा अंधारी थाय जो॥ सूरय जांखो देखीयें जो, मानुं नृप प्रतापें हराय जो ॥ धी० ॥ ११ ॥ धूज्या बहु बीजा गिरि जो, मानुं नयथी कंप्या जोर जो॥ निर्करणां आंसु करे जो, निजजातिनुं दुःख धरे घोर जो ॥ धी० ॥ १२ ॥ पर्वत चूरतां कंपती जो, क्षय थाय छे निज आधार जो॥ वसुमती मानुं ते नयें जो,केम थाशे एम अवधार जो ॥ धी० ॥ १३ ॥ शृंग पडयाना शब्द जे जो, पृथिवी धड धड करे सोर जो ॥ शेषनाग धरे कष्टथी जो, पृथिवीने करी बहु जोर जो ॥ धी०॥ ॥ १४ ॥ पडती शिला चूरण करे जो, वनराजी वृक्ष समुदाय जो ॥ गज सिंह प्रमुख सावज घणा जो,ते नयथी नाग जाय जो ॥ धी० ॥ १५ ॥ व्यंतर किन्नर देवता जो, जे क्रीडा गुफामां करंत जो ॥ शक्रवज्रभ्रांतें करी जो, हा हा करता ते नासंत जो ॥धी०॥ १६ ॥ योगिणी नूतनी अंगना जो,वली व्यंतर प्रेतनी नारि जो ॥ आक्रंद करतां नासती जो, जगनें ते खोजनाकारि जो ॥ धी० ॥१७॥ चार घडी थइ चूरता जो, पोहोतो सुर नवननी पास जो ॥ विद्या नाग्य बल आकरुं जो, नृपनें ब्रह्मचर्यनो वास जो ॥ ॥ धी० ॥ १८ ॥ घोर शब्द सुणी तेहना जो, निज आलय जोइ ताम जो ॥ शीतज्वरें जेम कंपतो जो, वज्रमुखनुं मुख थयुं श्याम जो ॥ धी०॥ १ए॥ ए शुं ए शुं चिंतवे जो, संभ्रांत थइ मन मांहि जो ॥ विभंग ज्ञानें जोवतो जो,ए अद्भुत शुं थयुं आंहि जो ॥ धी० ॥ २० ॥ नवि थयुं नें नवि थायशे जो,क्रोधें धमधमतो देव जो, दोडयो निज परिवारशुं जो,शीघ्र आव्यो तिहां स्वयमेव जो ॥ धी० ॥ २१ ॥ धन्य ए नृपनां धैर्यनें जो,वली शीलवंतो ससनेह जो ॥ वात छे अद्भुत जेहनी जो, नवि कहेवाये मुखें तेह जो ॥ धी० ॥ ॥ २२ ॥ सातमे खंर्मे सातमी जो, ढाल पद्मविजय कही प्यार जो ॥ शीलथी सवि कारय सरे जो, शीलथी होय जयजयकार जो ॥धी०॥२३॥२०७॥

॥ दोहा ॥

॥ शीलें नवनिधि संपजे, शीलें सिंह शियाल ॥ शीलें सुरसान्निध करे, शील धरो सुरसाल ॥ १ ॥ शीलें सर्प होय रासडी, शीलें आग शमंत ॥ शीलें थल होये सागरें,शील आनूपण संत ॥ २ ॥ नेत्र ज्वाजल्यें निरख तो, क्रोधीनें महाक्रूर ॥ रे रे कां मरवा तणुं, शरण करे ले शूर ॥ ३ ॥ शैल नांजे तुं शूरथी, थाणुं ताहारो अंत ॥ मूरख तुं महीपति कहे, तुज करुं अंत ए तंत ॥ ४ ॥ परस्त्री लेइ पातालमां, उंदर औषधी लेय॥ बिल पेसे बलवंत तिम, ठटके केम छुटेय ॥ ५ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ अरणिक मुनिवर चाल्या गोचरी ॥ ए देशी ॥

॥ सांजल रे मुज वात शोहामणी, मुज वेगां अन्याय जीरे ॥ दैववशें तें कीधुं एवडुं, पण तें नवि छूटायजी रे ॥ सां०॥१ ॥ चंडगति नीरे पत्नी आप तुं, मत कर मरवानुं मनजी रे ॥नग चूरयो पण नवि छूटो थयो, चूरे मोघर तुज तन जीरे ॥ सां० ॥ २ ॥ देव कहे क्रोधें करी एहवुं, तुं बालक नरमात जीरे ॥ सिंहथी मृगली मूकाववा मन करे, तुंहिज मूर्ख एणि वात जीरे ॥ सां० ॥ ३ ॥ मोघर उपाडी हणवा नणी, नृप उपर सुर धायो जीरे ॥ पवनवेगादिक बीहीकथी नासता, नृप पुंठे सहु आयो जी रे ॥ सां०॥ ४ ॥ नरपति विद्यायें सहु थंनीया, वज्रमोघर लेइ धाय जीरे ॥ घात मोघरना रे मांहो मांहे पडे, मानुं गगन फोडाय जीरे ॥ सां० ॥ ५ ॥ बहु वेला एम मोघरे जूऊीया, निज मोघरें नरराय जीरे ॥ सुर मोघर तेरे चूरी नाखीयो, तव ते क्रोधें नराय जीरे ॥ सां० ॥ ६ ॥ ज्वलती लेइ करवालनें दोडीयो,सूरय हासें नृप जीरे ॥ रंनास्तंनपरें खंमित करी,लीलायें धरी चूंप जीरे ॥ सां० ॥ ७ ॥ दिव्य त्रिशूल गदादिक शस्त्रथी, युद्ध करे ते अनेक जीरे ॥ नागपाशथी रे बांधे परस्परें, सघले नृप जय टेक जीरे ॥ सां० ॥ ८ ॥ समकेत शीलनें जिनशासनी वली, न परानव करे इंदो जीरे ॥ तो ए सुर किंकरनुं शुं गजुं, जे पडयो परस्त्री फंदो जीरे ॥ सां०॥ए ॥ नृप मस्तकमां रे तरु लेइ फूडीयो, पुष्प वेराणां ताम जीरे ॥ मानुं सुर वृष्टि करे फूलनी, कुमर शिरें अनिराम जीरे ॥ सां०॥ १० ॥ नृप पण तरु लेइ तल तरु नांजतो, तव ते शिलायें युद्ध जीरे ॥ युद्ध करे बेहु तेह सुनट थइ,रोषथकी अतिक्रुद्ध जीरे ॥ सां० ॥ ११ ॥ शिलायें वली मुष्टियें चूरतो,

तास शिलानां वृंदो जीरे ॥ तस रजथी मुख मस्तक पूरियुं, तोपण मूके न दंदो जीरे ॥ सां० ॥ १२ ॥ वज्रवदन हवे शस्त्रनें मूकतो, पामी खेद अपार जीरे ॥ मुष्टियें मुष्टि रे युद्ध करे तदा, मदथी करता होकार जीरे ॥ सां० ॥ ॥ १३ ॥ युद्ध करंता रे मुष्टिघातथी, पृथिवी डुम कंपावे जीरे ॥ चिहुं दिश फरता वेहु नट गाजता, सर्व दिशा गर्जावे जीरे ॥ सां० ॥ १४ ॥ देव म ल्या कौतुकथी गगनमां, वेहु पडता आवे हेठ जीरे ॥ उपडतां ऊंचा जाय देवता, एम करे बहु चेष्टा जीरे ॥ सां० ॥ १५ ॥ नमतां दृष्टि नमे जो नार नी,शूरवीरनी साथ जीरे ॥ कोण न चाले रे बुद्धिमंत कहो,जस हैयुं होय हाथ जीरे ॥सां०॥१६॥ युद्ध करे एम सुर नरराजीयो, एणी परें गयो बहु काल जीरे ॥ दुष्ट अन्यायीयो रे देवता जाणीनें, चिंतवी ते नृपाल जीरे ॥ सां० ॥ १७ ॥ पग पकडीनें रे मस्तकें फेरवी, शिला उपर पछाडे जीरे ॥ वस्त्र धूवे जेम धोबी तेणी परें, वेदनथी बुंब पाडे जीरे ॥ सां० ॥ १८ ॥ छातीयें पग देइनें दृढ रह्यो, बोले एणी परें वाणी जीरे ॥ तुजमां बल हो य तो देखाडजे, रे रे अधम अन्नाणी जीरे ॥ सां० ॥ १९ ॥ ताहारा इष्टनें तुं संभारजे, नहीं तो आप तुं नारि जीरे ॥ आक्रंद करतो रे सुर एणी परें कहे, तुं माहारो आधारो जीरे ॥ सां० ॥ २० ॥ जगतमल्ल हवे मुजनें मूक तुं, ताहारो हुं छुं दास जीरे ॥ तेह कृपालु रे कृपापात्रनें, नरपति मूके ता स जीरे ॥ सां० ॥ २१ ॥ जय जय शब्द करें तिहां देवता, कुसुमवृष्टि तिहां कीधी जीरे ॥ देवता जइनें लाव्यो नारीने, नृपने भेटणे दीधी जीरे ॥सां०॥ २२॥ आठमी ढाल ए सातमा खंममां, श्रीजयानंदनें रास जीरे ॥ पद्मविजय कहे सांभलतां थकां, होवे लील विलास जीरे ॥ सां० ॥ २३ ॥ २३५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ निजअपराध निर्झर हवे,खमावे बहु खांत ॥ पवनवेग सुख पामिया, अतिशय हर्ष एकांत ॥ १ ॥ सहु परिवारशुं सुर हवे, प्रणमे नरपति पाय ॥ कर जोडीनें सुर कहे, तुं समरथ तुं ताय ॥२॥ तुंही पराक्रमी तुं नयी, दा क्षिण्यवंत दयाल ॥ सुर असुरा तुज सारिखो, मनुजमांहे न मयाल ॥ ३ ॥ कोइ न जीत्यो मुज कदा, तुरत जीत्यो तुं मुज ॥ मूक्यो कृपा करी मुझनें, तेणें शुं देउं तुझ ॥ ४ ॥

॥ ढाल नवमी ॥ गरवो केणेनें कोराव्यो के ॥ नंदजीना लाल रे॥ए देशी ॥

॥ तुजनें आपी कृतारथ थाउं के,गुणगण धामरे ॥ एह्वुं जगमां कांइ न पाउं के ॥ तुजवर नाम रे ॥ बोले तव नरपति वाणि के ॥ गु० ॥ माह्रा रे नह्री कांइ प्रमाण के ॥ तु०॥ १ ॥ मिथ्यामत महाडःखकार के ॥गु०॥ ते ज्ञांनो नरकनुं द्वार के ॥ तु० ॥ मुनिन्नाषित जाणुं जेह के ॥ गु० ॥ चंइगतियें कह्युं तस तेह के ॥ तु० ॥ २ ॥ पूरव नव हितनें काजें के ॥ गु० ॥ सांनलीयो ते सुरराजें के ॥ तु०॥ महाकष्टमयी संनारे के ॥गु०॥ आरंन परिग्रह परकारें के॥ तु० ॥ ३ ॥ डुःख बेदवा धर्मनें पूछे के ॥गु०॥ कह्रो सुखकारी धर्म शुं छे के ॥ तु० ॥ त्रण तत्त्व स्वरूप सुणावे के ॥ गु० ॥ तेह्नें मिथ्यात्व वमावे कें ॥तु०॥४॥ नृप वयणथी समकेत पाम्यो के ॥गु०॥ नृपनें तव शिरथी नाम्यो के ॥तु०॥ देव गुरु पूजा करे अंगी के ॥गु०॥ गुणवंत थयो नृप संगी के ॥तु०॥५॥ तुं बोधिनो दाता मुज के ॥गु०॥ शुं आपुं हुं ह्वे तुज के ॥तु०॥ तुज देवा योग्य न दान के ॥गु०॥ तें शिव सुख दीधुं प्रधान के ॥तु०॥६॥ पण आपुं शक्ति प्रमाण के ॥ गु० ॥ चिंतामणि दीये तेणे ठाण के ॥तु०॥ एह्नुं स्वरूप सुणो स्वामि के ॥ गु०॥ एह रयण संनारे नाम के ॥ तु० ॥ ७ ॥ जेह्वां रूप इछे मनमां के ॥ गु० ॥ निज परनां निपजे क्षणमां के ॥ तु० ॥ ते पण निपजे बहु रूप के ॥गु०॥ वली विद्या कामित रूप के ॥ तु० ॥ ८ ॥ साधन सहित आपे तेह के ॥ गु० ॥ नृपें दोय ग्रह्यां ते जेह के ॥ तु० ॥ विधिपूर्वक लेइ राय के ॥ गु० ॥ सुर रायनी स्तवना कराय के ॥ तु० ॥ ए ॥ नृप कहे धन्य तुं सुरराय के ॥ गु० ॥ बोधि पाम्यो ने परस्त्री त्यजाय के ॥ तु० ॥ चंइगतिनें मैत्री कराय के ॥ गु० ॥ सघलो अपराध खमाय के ॥ तु० ॥ १० ॥ अदृश्य थयो ते सुर ताम के ॥ गु० ॥ चंइगतिनें सोंपी वाम के ॥तु०॥ हरषी कहे एणी परें वाणि के ॥ गु० ॥ मुज कन्यानो ग्रहो पाणि के ॥ तु० ॥ ११ ॥ श्रीजयानंद कुंअर राय के ॥ गु० ॥ सहु विसरजे निज ठाय के ॥ तु० ॥ चंइगतिनें पवनवेग ताम के ॥ गु० ॥ कानमां कहे सांनलो आम के ॥ गु०॥ १२ ॥ मुज कन्या पाणिग्रह थाय के ॥ गु० ॥ तुज पुत्री लेइ ते ठाय के ॥ तु० ॥ आवजो तव चंइगति नृप के ॥ गु०॥ नृपनें नमी तस अनुरूप के ॥ तु०॥१३॥ निज धाम गयो प्रिया लेइ के ॥ गु०॥ ते सांनली स्वजन मिलेइ के ॥ तु०॥

तास शिलानां वृंदो जीरे ॥ तस रजथी मुख मस्तक पूरियुं, तोपण मूके न दंदो जीरे ॥ सां० ॥ १२ ॥ वज्रवदन हवे शस्त्रनें मूकतो, पामी खेद अपार जीरे ॥ मुष्टियें मुष्टि रे युद्ध करे तदा, मदथी करता होकार जीरे ॥ सां०॥ ॥ १३ ॥ युद्ध करंता रे मुष्टिघातथी, पृथिवी द्रुम कंपावे जीरे ॥ चिहुं दिश फरता वेहु नट गाजता, सर्व दिशा गर्जावे जीरे ॥ सां० ॥ १४ ॥ देव म ल्ल कौतुकथी गगनमां, वेहु पडता आवे वेग जीरे ॥ उपडतां उंचा जाय देवता, एम करे वहु चेष्टा जीरे ॥ सां० ॥ १५ ॥ नमतां दृष्टि नमे जो नार नी,शूरवीरनी साथ जीरे ॥ कोण न चाले रे बुद्धिमंत कहो,जस दैयुं होय हाथ जीरे ॥सां०॥१६॥ युद्ध करे एम सुर नरराजीयो, एणी परें गयो बहु काल जीरे ॥ दुष्ट अन्यायीयो रे देवता जाणीनें, चिंतवी ते नृपाल जीरे ॥ सां० ॥ १७ ॥ पग पकडीनें रे मस्तकें फेरवी, शिला उपर पछाडे जीरे ॥ वस्त्र धूवे जेम धोवी तेणी परें, वेदनथी वुंब पाडे जीरे ॥ सां० ॥ १८ ॥ छातीयें पग देइनें दृढ रह्यो, वोले एणी परें वाणी जीरे ॥ तुजमां बल हो य तो देखाडजे, रे रे अधम अन्नाणी जीरे ॥ सां० ॥ १९ ॥ ताहारा इष्टनें तुं संभारजे, नहीं तो आप तुं नारि जीरे ॥ आक्रंद करतो रे सुर एणी परें कहे, तुं माहारो आधारो जीरे ॥ सां० ॥ २० ॥ जगतमल्ल हवे मुजनें मूक तुं, ताहारो हुं बुं दास जीरे ॥ तेह कृपालु रें कृपापात्रनें, नरपति मूके ता स जीरे ॥ सां०॥ २१ ॥ जय जय शब्द करे तिहां देवता, कुसुमवृष्टि तिहां कीधी जीरे ॥ देवता जइनें लाव्यो नारीने, नृपने भेटणे दीधी जीरे ॥सां०॥ २२॥ आठमी ढाल ए सातमा खंममां, श्रीजयानंदनें रास जीरे ॥ पद्मविजय कहे सांभलतां थकां, होवे लील विलास जीरे ॥ सां० ॥ २३ ॥ २३५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ निजअपराध निर्जर हवे,खमावे बहु खांत ॥ पवनवेग सुख पामिया, अतिशय हर्ष एकांत ॥ १ ॥ सहु परिवारशुं सुर हवे, प्रणमे नरपति पाय ॥ कर जोडीनें सुर कहे, तुं समरथ तुं ताय ॥२॥ तुंही पराक्रमी तुं नयी, दा क्षिण्यवंत दयाल ॥ सुर असुरा तुज सारिखो, मनुजमांहे न मयाल ॥ ३ ॥ कोइ न जीत्यो मुज कदा, तुरत जीत्यो तुं मुज ॥ मूक्यो कृपा करी मुज्जनें, तेणें शुं देउं तुज्ज ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीमदुत्तमविजयगणि विनेय पंमित पद्मविजयगणिविरचिते श्री श्रीजयानंदराजर्षिकेवलिचरित्रे प्राकृतप्रबंधे पंचमव्रतनिरतिचारसातिचार पालनविषये कौशलदेशललनिदर्शीनगर्जवज्रकूट गिरिचूर्णनवज्रसुखखुरविज यंतचिंतामणि महाविद्या प्रदानवज्रसुंदरीचंद्रसुंदरीपाणिग्रहणवर्णनोनामा सप्तमः खंमः समाप्तः ॥ षट्खंम गाथा ॥३०६७॥ सप्तम खंमे गाथा ॥२६६॥ सर्वगाथा ॥४३३५॥ षट् खंमे उक्त श्लोक ॥७०॥ सप्तम खंमे उक्तश्लोक बे, सर्व उक्त श्लोक ॥ ७० ॥ सवइयो एक, समस्या एक, दोहा बे ॥

॥ अथाष्टमखंमः प्रारभ्यते ॥

॥ दोहा ॥

॥ अभिनव सूरय उगियो, शांतिनाथ भगवान ॥ त्रण जगत्नां छुःख ते, टाले तमोवितान ॥ १ ॥ प्रणमी पदकज तेहनां, आखुं आठमो खंम ॥ सांभलतां जे उंघशे, तेहनें दंम प्रचंम ॥ २ ॥ उंघे ने उंघुं नहीं, कहे तस दोहोढुं पाप ॥ उंघमांहे जूठुं भल्युं, ए महोटो संताप ॥ ३ ॥ जेह जगाडे तेहशुं, उलटो आणे क्रोध ॥ दोष परंपर एणी परें, वाधे जाये बोध ॥४॥ उंघणनुं श्रुत उंघशे, नवि उंघो ते काम ॥ उंघण मृतकनी वानगी, तेहथी अधिको आम ॥ ५ ॥ धूणे भूआनी परें, व्यंतर पेगे जेम ॥ जागंतां हांसी करे, तेणें कहो उंघीयें केम ॥ ६ ॥ तेम विकथा वर्जो वली, विकथा न करो जेण॥विकथा ते वितथा करे, नवि सुणवा दिये जेण॥७॥तेहथी उंघ्यो रूअडो, जे नवि सांभले आप॥स्वपर न सांभलवा दिये, तेणें ए महोटुं पाप ॥ ८ ॥ निद्रा विकथा परहरी, सांभलो चतुर सुजाण ॥ खंम खंम चढतुं अडे, श्रीजय पुण्यप्रमाण ॥ ए ॥

॥ ढाल पहेली ॥ प्रथम गोवाला तणे भवेंजी ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन उपवनमां गयाजी, श्रीजयानंद कुमार ॥ आठ विद्याधर नरपतिजी, आवि करे नमस्कार ॥ १ ॥ भविक जन जुर्ज जुर्ज पुण्य विशेष ॥ दिन दिन चढतुं अशेष ॥ भ० ॥ जु० ॥ ए आंकणी ॥ बेसारे सिंहासनेंजी, पवनवेग नरराय ॥ सुख प्रश्नादिक पूढताजी, मनमां आनंद थाय ॥ भ० ॥ ॥ २ ॥ श्रीजयानंदनें आगलेंजी, ते आठेनुं स्वरूप ॥ पवनवेग नृप वर्णवेजी, सांभलजो तुमें भूप ॥ भ० ॥ ३ ॥ दक्षिणश्रेणी वैताढ्यमांजी, जाणो सघला रे एह ॥ १ ॥ भोगरति ए राजीयोजी, भोगपुरी धणी जेह ॥ भ०॥

उत्सव करे नव नव रंगें के ॥ गु० ॥ हवे श्रीजयतातनें संगें के ॥ तु० ॥ १४ ॥ योगिणी दीधा अलंकार के ॥गु०॥ वली विनति पत्र उदार के ॥ तु० ॥ खेचर साथें ते मूके के ॥ गु० ॥ विश्वास हेतें नवि चूके के ॥ तु०॥१५॥हवे पवनवेगादिक संगें के॥गु०॥वैताढयें आव्या मनरंगें के॥तु०॥ तिहां शाश्वत चैत्यनें वांदे के ॥ गु० ॥ रोमांचित थइ आणंदे के ॥ तु० ॥ ॥ १६ ॥ गौरव करी प्रार्थना करतो के ॥ गु०॥ निज नयर लावे मन हरतो के ॥ तु० ॥ पवनवेग दक्षिण श्रेणें के ॥ गु०॥ चंड्गति बोलाव्यो तेणें के ॥ तु० ॥ १७ ॥ सुता चंड्सुंदरी तास के ॥ गु० ॥ निज वज्रसुंदरी खास के ॥ तु०॥शुन मूहूर्तें दोय परणावे के॥गु०॥बहु आग्रहथी सुख पावे के ॥तु०॥ ॥ १८ ॥ चक्रायुध नये संखेवे के ॥ गु० ॥ बहु गज अश्वादिक देवे के ॥ तु० ॥ शत्रुमर्द्दिनी विद्या एक के ॥ गु० ॥ ते पवनवेग घर ठेक के ॥ तु०॥ ॥ १९ ॥ पण दुःखथी सधाये तेह के ॥गु०॥ नवि साधी शके तेणें एह के ॥तु०॥ शील सत्त्वनें नाग्य विशाल के ॥गु०॥ उत्कृष्ट एहनुं नाल के॥तु०॥ ॥२०॥ नृपनें विधि सहित ते आपे के ॥गु०॥ वली मणिघरमां नृप थापे के ॥तु०॥ दोय नारीशुं नोग विलास के ॥गु०॥ तिहां रहेतां सुख आवास के ॥तु०॥२१॥ चक्रायुधशुं युध थाय के ॥गु०॥ सैन्यशुं तिहां आवजो नाय के ॥तु०॥ एम कहीनें चंड्गतिने वात के ॥ गु० ॥ पवनें मोकल्यो सुखशात के ॥तु०॥२२॥ जैनधर्म प्रनावें राय के ॥ गु० ॥ दोय नारीशुं सुखमां गाय के ॥ तु०॥ कौशल देशल दोय नाय के ॥ गु० ॥ पंचमव्रत केरे पसाय के ॥ तु० ॥ २३ ॥ आराधि विराधि फल पाया के ॥ गु० ॥ तेम श्रीजयानंदजी राया के ॥तु० ॥ चोथा व्रतथी अरि जीपे के ॥ गु०॥ तेम पालो जेम पुण्य दीपे के ॥ तु० ॥ २४ ॥ सातमे खंमें ए नाखी के ॥ गु० ॥ सत्यवचनथी शास्त्र ठे साखी के ॥ तु० ॥ कीर्त्ति जस कपूर समान के ॥ गु० ॥ श्रीजया नंद रास प्रधान के ॥ तु० ॥ २५ ॥ ए नवमी ढाल रसाल के ॥ गु० ॥ ए सातमो खंम विशाल के ॥ तु० ॥ श्रीखिमाविजय गुरु नाम के ॥ गु० ॥ शिष्य जिनविजय गुणधाम के ॥ तु० ॥ २६ ॥ तस उत्तम विजय सुशिष्य के ॥ गु० ॥ कहे पद्मविजय सुजगीश के ॥ तु० ॥ सुणतां होये मंगलमाला के ॥ गु० ॥ वली घर घर लब्धि विशाला के ॥तु०॥ २७ ॥ सर्वगथा ॥२६६॥

॥ इति श्रीमडुत्तमविजयगणि विनेय पंमित पद्मविजयगणिविरचिते श्री श्रीजयानंदराजर्षिकेवलिचरित्रे प्राकृतप्रबंधे पंचमव्रतनिरतिचारसातिचार पालनविषये कौशलदेशलनिदर्शीनगर्नेवज्रकूट गिरिचूर्णनवज्रसुखहुरविज यंतचिंतामणि महाविद्या प्रदानवज्रसुंदरीचंद्रसुंदरीपाणिग्रहणवर्णनोनामा सप्तमः खंमः समाप्तः॥ षट्खंम गाथा ॥३एद्ए॥ सप्तम खंमे गाथा ॥२६६॥ सर्वगाथा ॥४२३५॥ षट् खंमे उक्त श्लोक ॥७ण॥ सप्तम खंमे उक्तश्लो क बे, सर्वं उक्त श्लोक ॥ ७० ॥ सवइयो एक, समस्या एक, दोहा बे ॥

॥ अथाष्टमखंमः प्रारन्यते ॥

॥ दोहा ॥

॥ अनिनव सूरय उगियो, शांतिनाथ नगवान ॥ त्रण जगत्नां डुःख ते, टाले तमोवितान ॥ १ ॥ प्रणमी पदकज तेहनां, आखुं आठमो खंम ॥ सांनलतां जे उंघशे, तेहनें दंम प्रचंम ॥ २ ॥ उंघे ने उंघुं नहीं, कहे तस दोहोहुं पाप ॥ उंघमांहे जूतुं नख्युं, ए महोटो संताप ॥ ३ ॥ जेह जगाडे तेहशुं, उलटो आणे क्रोध ॥ दोष परंपर एणी परें, वाधे जाये बोध ॥४॥ उंघणनुं श्रुत उंघशे, नवि उंघो ते काम ॥ उंघण मृतकनी वानगी, तेहथी अधिको आम ॥ ५ ॥ धूणे नूआनी परें, व्यंतर पेगे जेम ॥ जागंतां हांसी करे, तेणें कहो उंघीयें केम ॥ ६ ॥ तेम विकथा वर्जो वली, विकथा न क रो जेण॥विकथा ते वितथा करे, नवि सुणवा दिये जेण॥७॥तेहथी उंघ्यो रूअ डो, जे नवि सांनले आप॥स्वपर न सांनलवा दिये, तेणें ए महोटुं पाप ॥ ७ ॥ निद्रा विकथा परहरी, सांनलो चतुर सुजाण ॥ खंम खंम चढतुं अछे, श्रीजय पुण्यप्रमाण ॥ ए ॥

॥ ढाल पहेली ॥ प्रथम गोवाला तणे नवेंजी ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन उपवनमां गयाजी, श्रीजयानंद कुमार ॥ आठ विद्याधर नर पतिजी, आवि करे नमस्कार ॥ १ ॥ नविक जन जुउ जुउ पुण्य विशेष ॥ दिन दिन चढतुं अशेष ॥ न० ॥ जु० ॥ ए आंकणी ॥ बेसारे सिंहासनेंजी, पवनवेग नरराय ॥ सुख प्रश्नादिक पूछताजी, मनमां आनंद थाय ॥ न० ॥ ॥ २ ॥ श्रीजयानंदनें आगलेंजी, ते आठेनुं स्वरूप ॥ पवनवेग नृप वर्णवे जी, सांनलजो तुमें नूप ॥ न० ॥ ३ ॥ दक्षिणश्रेणी वैताढ्यमांजी, जाणो सघला रे एह ॥ १ ॥ नोगरति ए राजीयोजी, नोगपुरी धणी जेह ॥ न०॥

॥ ४ ॥ वज्रपुरीनो राजीयोजी, २ चंद्रबाहु नरराय ॥ रत्नपुरीनो ए पतिजी, ३ महाबाहु सुख दाय ॥ न० ॥ ५ ॥ ४ चंद्रवेग चोथो लह्योजी, एहनुं पुर मणिधाम ॥ नगर वीरपुरनो धणीजी, ५ रविप्रन जेहनुं नाम ॥ न० ॥६॥ ६ रत्नचूड नृप पुरतणुं जी, रत्नालय अनिधान ॥ कनककूट पुर सातमुंजी, ७ तडितवेग राजान ॥ न० ॥ ७ ॥ नगरगिरि चूड आठमो जी, ८ श्रीचं द्रान नूपाल ॥ चार चार पुत्री हवीजी, सवि बत्रीश रसाल ॥ न०॥ ८ ॥ माता सहुनी जूजूइजी, सरखी वयनी रे प्राय ॥ सरिखी रूप कला गुणें जी, रूपें रंना हराय ॥ न० ॥ ए ॥ साथें ते नेली नणीजी, मांहोमांहे रे प्रेम ॥ करे प्रतिज्ञा सहु मलीजी, एकपति करणनो नेम ॥ न० ॥ १० ॥ रूप अनुत्तर जाणिनेंजी, ते कन्या बतरीश ॥तेहना तातनें मोकलेजी,दूत चक्रायुध ईश ॥ न० ॥११॥ पुत्र अमारानें दीयोजी, तुम कन्या अनुरूप॥ उत्तर आप्यो तेहनेंजी, सर्वे मली एक रूप ॥न०॥१२॥ मेल लहेणां देवा तणोजी, जोवरावीनें रे स्वामि ॥ आवी उत्तर वालशुंजी, तुम चरणें शिर नामि ॥ न० ॥१३॥ नोगरति नगरें थयाजी,नेला आठे रे मित्र ॥ कहो शुं करवुं आपणेजी, थाउं एकज चित्त ॥ न० ॥ १४ ॥ निन्न नर्त्ता इछे नहींजी, कुमरीयो मनमांह ॥ एक कुमरनें जो दीजीयेंजी, मनमां धरी उत्साह ॥ न० ॥ १५ ॥ बीजी स्त्री ईर्ष्या करेजी,तेऐ नवि सूजे रे कांय॥ जो नवि दीजें सर्वथाजी, तो ए क्रोधें नराय ॥ न० ॥ १६ ॥ राज्य जीवित सहु अपहरेजी,रूठो ए महाराय ॥ संकटमां आवी पड्याजी,उत्तर कहो श्यो कराय ॥ न० ॥१७॥ एण अवसर तिहां आवियोजी,एक निमित्तियो रे जाण ॥ करी बहु माननें पूछियुंजी, विषम कार्य गति ठाण॥न०॥१८॥ निमित्त जोइ निमित्तियोजी, बोल्यो एणी परें वाण ॥ चक्रायुधनो नय तु मोजी, म म करो निमित्त प्रमाण ॥न०॥१ए॥ राज्य अल्पदिन एहनुंजी, तव पूछे फरी तेह ॥ मरण के शत्रु एहनोजी,राज्य जशे कहो केह ॥न० ॥ २० ॥ ज्ञानी कहे ए पामशेजी, महा परानव दुःखखाणी ॥ वात अ संनव सांनलीजी, पूछे फरी तिण ठाण ॥ न० ॥ २१ ॥ कोण शत्रु एहनो थशेजी, ज्ञानी बोले रे ताम ॥ वज्रवेग मूकावशेजी,जे योगिणीनें धाम ॥ ॥ न० ॥ २२ ॥ वज्रकूट नग चूरिनेंजी, चंद्रगतिनी रे नारि ॥ देव वजमु ख जींतीनेंजी, मूकावशे निरधार ॥ न०॥ २३ ॥ तेहनें कन्या आपजोजी,

योग्य जणी ते रे सर्व ॥ राजाधिराज ते थायशेंजी, मोहोटो नृप गतगर्व ॥ ज० ॥ २४ ॥ सांजली हर्षी आपियुंजी, दान विसर्ज्यो रे तास ॥ चंड गति देखी अमोजी, कस्यो निरधार ते खास ॥ ज० ॥ २५ ॥ निज स्वारथ हेतें अमोजी, आव्या तुमची रे पास ॥ ए कन्या परणी तुमोजी, सफल करो अम आश ॥ ज० ॥ २६ ॥ पहेली आगमा खंममांजी, पद्मविजय कही ढाल ॥ पुण्यवंत प्राणी लहेजी, सघले मंगल माल ॥ ज० ॥ २७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ आवो अह्म पुर साहेबा, म म करो प्रार्थना जंग ॥ चक्रायुध जयें परणीयें, एकांतें मनरंग ॥ १ ॥ श्रीजयानंद कहे तदा, चक्रायुध जय धारि ॥ परणवुं जे ठानां रही, स्वाद किश्यो अवधारि ॥ २ ॥ पडखो जय टलवा लगें, एम कही कस्या विदाय ॥ पवनवेग कहे कानमां, सांजलो रे तुमें जाय ॥ ३ ॥ चक्रायुध संगर समे, सैन्य सामग्री समेत ॥ वहेला लइने आवजो, ए तुम अम संकेत ॥ ४ ॥ सहुयें ते अंगीकरी, पोहोता निज निज धाम ॥ हवे वैताढ्यनी उपरें, सिद्धकूट अनिराम ॥ ५ ॥ पवनवेग अनुमति तिहां, आव्या श्री जयानंद ॥ सुर खेचर दीधी तदा, विद्या जे आणंद ॥ ६ ॥ सिद्ध प्रतिमानें आगलें, साधवा मांमे तेह॥विधियी अल्पकालें करी, सिद्ध थइ गुणगेह ॥ ७॥

॥ ढाल वीजी ॥ साहेवा पंचमी मंगल वार, प्रजातें चालवुं रेलो ॥ ए देशी ॥

॥ साहेवा विद्याधर बहु साथ के, परिवृत आवीयो रेलो ॥ साहेवा पवनवेग पुरें खेचरी, वृंदें वधावीयो रेलो ॥ साहेवा सुखथी महोलमां अथवा, सजामां क्रीडा करे रेलो ॥ साहेवा प्रिया सहित मनमोजमां, जेम इछा धरे रेलो ॥ १ ॥ साहेवा पवनवेग दिन बीजे, वेगे सजा करी रेलो ॥ साहेवा चक्रायुधनो दूत, आव्यो तेणी पुरी रेलो ॥ साहेवा आव्यो सजामकार, पवनवेग जवियो रेलो ॥ साहेवा कनकासन देइ हरषें, तास वेसाडियो रेलो ॥ २ ॥ साहेवा सुख प्रश्नादिक वात, पूछे चक्री तणी रेलो ॥ साहेवा आगम कारण पूछे, वीजुं सवि अवगणी रेलो ॥ साहेवा तेह कहे सुणो चक्री, तुम आणा करे रेलो ॥ साहेव वज्रसुंदरी तुम कन्या, मुज स्वयंवरे रेलो ॥ ३ ॥ साहेवा मोकल्यो सांजली एम, के मनमां खलजल्यो रेलो ॥ साहेवा तो पण धीरय धारि, पवन कहे सांजलो रेलो ॥ साहेवा जो तुम मनमां एम, तो केम विलंब कस्यो रेलो ॥ साहेवा श्रीजयें पुत्र मूकावी

॥ ४ ॥ वज्रपुरीनो राजीयोजी, २ चंद्रबाहु नरराय ॥ रत्नपुरीनो ए पतिजी, ३ महाबाहु सुख दाय ॥ न० ॥ ५ ॥ ४ चंद्रवेग चोथो लह्योजी, एहनुं पुर मणिधाम ॥ नगर वीरपुरनो धणीजी, ५ रविप्रन्न जेहनुं नाम ॥ न० ॥६॥ ६ रत्नचूड नृप पुरतणुं जी, रत्नालय अनिधान ॥ कनककूट पुर सातमुंजी, ७ तडितवेग राजान ॥ न० ॥ ७ ॥ नगरगिरि चूड आठमो जी, ८ श्रीचं द्राज नूपाल ॥ चार चार पुत्री हवीजी, सवि बत्रीश रसाल ॥ न०॥ ८ ॥ माता सहुनी जूजूइजी, सरखी वयनी रे प्राय ॥ सरिखी रूप कला गुणें जी, रूपें रंना हराय ॥ न० ॥ ए ॥ साथें ते नेली नणीजी, मांहोमांहे रे प्रेम ॥ करे प्रतिज्ञा सहु मलीजी, एकपति करणनो नेम ॥ न० ॥ १० ॥ रूप अनुत्तर जाणिनेंजी, ते कन्या बतरीश ॥तेहना तातनें मोकलेजी,दूत चक्रायुध ईश ॥ न० ॥११॥ पुत्र अमारानें दीयोजी, तुम कन्या अनुरूप॥ उत्तर आप्यो तेहनेंजी, सर्व मली एक रूप ॥न०॥१२॥ मेल लहेणां देवा तणोजी, जोवरावीनें रे स्वामि ॥ आवी उत्तर वालशुंजी, तुम चरणें शिर नामि ॥ न० ॥१३॥ नोगरति नगरें थयाजी,नेला आठे रे मित्र ॥ कहो शुं करवुं आपणेजी, थाउ एकज चित्त ॥ न० ॥ १४ ॥ निन्न नर्त्ता इछे नहींजी, कुमरीयो मनमांह ॥ एक कुमरनें जो दीजीयेंजी, मनमां धरी उत्साह ॥ न० ॥ १५ ॥ बीजी स्त्री ईर्ष्या करेजी,तेणे नवि सूजे रे कांय॥ जो नवि दीजें सर्वथाजी, तो ए क्रोधें नराय ॥ न० ॥ १६ ॥ राज्य जीवित सहु अपहरेजी,रूगो ए महाराय ॥ संकटमां आवी पडयाजी,उत्तर कहो श्यो कराय ॥ न० ॥१७॥ एण अवसर तिहां आवियोजी,एक निमित्तियो रे जाण ॥ करी बहु माननें पूछियुंजी, विषम कार्य गति ठाण॥न०॥१८॥ निमित्त जोइ निमित्तियोजी, बोल्यो एणी परें वाण ॥ चक्रायुधनो नय तुमोजी, म म करो निमित्त प्रमाण ॥न०॥१ए॥ राज्य अल्पदिन एहनुंजी, तव पूछे फरी तेह ॥ मरण के शत्रु एहनोजी,राज्य जशे कहो केह ॥न० ॥ २० ॥ ज्ञानी कहे ए पामशेजी, महा परानव दुःखखाणी ॥ वात अ संनव सांनलीजी, पूछे फरी तिण ठाण ॥ न० ॥ २१ ॥ कोण शत्रु एहनो थशेजी, ज्ञानी बोले रे ताम ॥ वज्रवेग मूकावशेजी,जे योगिणीनें धाम ॥ ॥ न० ॥ २२ ॥ वज्रकूट नग चूरिनेंजी, चंद्रगतिनी रे नारि ॥ देव वज्रमुख जींतीनेंजी, मूकावशे निरधार ॥ न०॥ २३ ॥ तेहनें कन्या आपजोजी,

देव गुरु तेम धर्म के, जाणो नृपति रेलो ॥ साहेवा शुद्ध वंश उत्पन्न, के अनीति न होय रति रेलो ॥ साहेवा कुलनें कलंक करी, परदारा परिहरो रेलो ॥ साहेवा तस इछा तुम थाय, के लाज न केम करो रेलो ॥ १४ ॥ साहेवा धिग् धिग् मदनने होय, के तुम सरिखा नरा रेलो ॥ साहेवा ज्ञान धर्म धृति कीर्त्ति, के जाणवा तत्परा रेलो ॥ साहेवा तेह कुपंथें जाय, के तेऐं किरपा करी रेलो ॥ साहेवा नक्त वत्सल तुमें तेण, के प्रसन्न ता मन धरी रेलो ॥ १५ ॥ साहेवा सेवकनो अपराध, के एक खमीयें प्रनु रेलो ॥ साहेवा इत्यादिक उपदेश, के सांनली नृविन्नु रेलो ॥ साहेवा कां इक शांत कोपाग्नि, के खेचर पति थयो रेलो ॥ साहेवा पाठो उत्तर तास, के एणी परें वालियो रेलो ॥ १६ ॥ साहेवा आठमे खंडें ढाल, ए वीजी सो हामणी रेलो ॥ साहेवा श्रीजयानंदनें रासें के, पद्मविजय नणी रेलो ॥ सा हेवा जैन मारगना जाण, के आगम सांनले रेलो ॥ साहेवा काममदें नवि देखे, अनरथ आगलें रेलो ॥ १७॥ सर्वगाथा ॥६०॥

॥ दोहा ॥

॥ मध्यवयें हुं आवियो, कामथी न करुं काम ॥ पण लोपी मुज आ णनें, नवि सही शकीयें नाम ॥ १ ॥ अग्नि विना वलवुं कह्युं, शस्त्र विना वध तेह ॥ आणानंग नरेंड्नी, तुमें सवि जाणो एह ॥ २ ॥ पवनवेग तेऐं कारणें, राज्य जीवित खप होय ॥ इछे जमाइ जीवतो, तो कहुं ते करे सो य ॥ ३ ॥ दासी चक्रायुद्ध तणी, एहवा वर्णनी श्रेणि ॥ निजपुत्री कंकणे लिखे, मुज शांति होवे तेण ॥ ४ ॥ चक्रायुद्ध दासीपति, मौलियें लिखुं एणी रीति ॥ ते आपुं हुं एहना, जामातानें प्रीति ॥ ५ ॥ ते पहेरे शिर उ परें, वली मुज पुत्री जेह ॥ चक्रसुंदरी नामथी, ठे कलावंती तेह ॥ ६ ॥ वज्रसुंदरी आवीनें, मुज दत्त कंकण पहेरी ॥ नाटक शीखवे मुज सुता, चित्त राखी वहु पेर ॥ ७ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ श्रीरूपचानन गुणनिलो ॥ ए देशी ॥

॥ वात सुणी चक्री तणी, ते पंमित नें परधान रे ॥ विनीत ॥ हाकारो न णी उठीया, आव्या ते निजपुरथान रे ॥ वि० ॥ १ ॥ पृथिवी पुरुष रयणें नरी ॥ ए आंकणी ॥ संनलावी वात ते पवननें, तिम श्रीजयानंदनें तेह रे ॥ वि०॥ विस्तारें संनलावतां, चक्रायुद्ध वोल्या जेह रे ॥ वि०॥ पृ०॥

के, मुजनें उपगस्यो रेलो ॥ ४ ॥ साहेबा मुज प्रतिज्ञा एह कें, तेहनें हुं कनी रेलो ॥ साहेबा दीधी कन्या तास, के परण्यो ते धणी रेलो ॥ साहेबा पुत्र मूकावो मुज, के एम वहु कह्युं रेलो ॥ साहेबा पण मुज वचन स्वामियें, मनमां नवि लह्युं रेलो ॥ ५ ॥ साहेबा दूत कहे जो परणी, के पण मोक लो तमें रेलो ॥ साहेबा तो तुम तूसशे स्वामि के, वली कहेशुं अमें रे लो ॥ साहेबा पवनवेग कहे ताम, के एम केम बोलीयें रेलो ॥ साहेबा घटती वातनुं वयण, के मुखथी खोलीयें रेलो ॥ ६ ॥ यतः ॥ सकृत् ज ल्पंति राजानः, सकृत् जल्पंति पंमिताः ॥ सकृत् कन्या प्रदीयंते, त्रिण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ साहेबा कन्यानुं मागुं होय, के एहनुं नहीं कदा रेलो ॥ साहेबा दूत कहे ए वलियो, के तुम रुसशे जदा रेलो ॥ सा हेबा ससरा जमाइनी जांखो, के गति तुम शी थशे रेलो ॥ साहेबा पवन कहे जे थानार, के थाशे जावि वशें रेलो॥ ७॥साहेबा प्राण जते पण एह,के नवि थाये किमे रेलो ॥ साहेबा मीठे वचनें एह, के समजावजो तुमें रे लो ॥ साहेबा उक्ति युक्तिथी कहेजो, के जिम रूसे नहीं रेलो ॥ साहेबा तुमें ठो चतुर सुजाण, के गति एहवी अहीं रेलो ॥ ८ ॥ साहेबा दूत गयो हवे ताम, के चक्रीनी कनें रेलो ॥ साहेबा पवन ते मंत्रीनें पूछे, के वली चिंतवी मनें रेलो ॥ साहेबा नाम पटुवाक सार, के कोविद दीपतो रेलो ॥ साहेबा मंत्री मूके वहु साथ, के वादनें जीपतो रेलो ॥ए॥ साहेबा दूतें च क्रीनें वात, के संजलावी यदा रेलो ॥ साहेबा क्रोधथकी धमधमियो, के च क्रायुध तदा रेलो ॥ साहेबा पटुवाक पोहोतो ताम, के प्रणमीनें कहे रे लो ॥ साहेबा इंद्रथी अधिकुं वीर्य, के तुज वाहु लहे रेलो ॥ १० ॥ साहे वा कुलवंतामां धोरी, के जयवंता रहो रेलो ॥ साहेबा तुमथी अनीति अ न्याय, के सहु दूरें रहो रेलो ॥ साहेबा खेचर नर सुर असुर, के शुगम म ली सदा रेलो ॥ साहेबा कनकाचलें तुज गाय, के कीर्त्ति संपदा रेलो ॥ ॥ ११ ॥ साहेबा चंद्र उज्ज्वल तुज कीर्त्ति,के जगमां विस्तरी रेलो ॥ साहे वा नारि कारण ते मलिन, के केम करे तुं फरी रेलो॥साहेबा अद्भुत रू प लावण्य, के कोडीगमें कनी रेलो ॥ साहेबा घर घर दीसे तेह, के रूपें रंजा वनी रेलो ॥ १२ ॥ साहेबा इछायें परणी तेह,के जोगवो सुख घणुं रेलो ॥ साहेबा परस्त्रीथी जाये कीर्त्ति के, आवे लघु पणुं रेलो ॥ १३ ॥ साहेबा

देव गुरु तेम धर्म के, जाणो नृपति रेलो ॥ साहेबा शुद्ध वंश उत्पन्न, के अनीति न होय रति रेलो ॥ साहेबा कुलनें कलंक करी, परदारा परिहरो रेलो ॥ साहेबा तस इच्छा तुम थाय, के लाज न केम करो रेलो ॥ १४ ॥ साहेबा धिग् धिग् मदनने होय, के तुम सरिखा नरा रेलो ॥ साहेबा ज्ञान धर्म धृति कीर्त्ति, के जाणवा तत्परा रेलो ॥ साहेबा तेह कुपंथें जाय, के तेणें किरपा करी रेलो ॥ साहेबा भक्त वत्सल तुमें तेण, के प्रसन्न ता मन धरी रेलो ॥ १५ ॥ साहेबा सेवकनो अपराध, के एक खमीयें प्रभु रेलो ॥ साहेबा इत्यादिक उपदेश, के सांभली नृविभु रेलो ॥ साहेबा कां इक शांत कोपाग्नि, के खेचर पति थयो रेलो ॥ साहेबा पाछो उत्तर तास, के एणी परें वालियो रेलो ॥ १६ ॥ साहेबा आठमे खंमें ढाल, ए बीजी सो हामणी रेलो ॥ साहेबा श्रीजयानंदनें रासें के, पद्मविजय भणी रेलो ॥ सा हेबा जैन मारगना जाण,के आगम सांभले रेलो ॥ साहेबा काममदें नवि देखे, अनरथ आगलें रेलो ॥ १७॥ सर्वगाथा ॥६०॥

॥ दोहा ॥

॥ मध्यवर्यें हुं आवियो, कामथी न करुं काम ॥ पण लोपी मुज आ णनें, नवि सही शकीयें नाम ॥ १ ॥ अग्नि विना बलवुं कह्युं, शस्त्र विना वध तेह ॥ आणाभंग नरेंद्रनी, तुमें सवि जाणो एह ॥ २ ॥ पवनवेग तेणें कारणें, राज्य जीवित खप होय ॥ इछे जमाइ जीवतो, तो कहुं ते करे सो य ॥ ३ ॥ दासी चक्रायुद्ध तणी, एहवा वर्णनी श्रेणि ॥ निजपुत्री कंकणे लिखे, मुज शांति होये तेण ॥ ४ ॥ चक्रायुद्ध दासीपति, मौलियें लिखुं एणी रीति ॥ ते आपुं हुं एहना, जामातानें प्रीति ॥ ५ ॥ ते पहेरे शिर उ परें, वली मुज पुत्री जेह ॥ चक्रसुंदरी नामथी, ठे कलावंती तेह ॥ ६ ॥ वज्रसुंदरी आवीनें, मुज दत्त कंकण पहेरी ॥ नाटक शीखवे मुज सुता, चित्त राखी बहु पेर ॥ ७ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ श्रीरूपभानन गुणनिलो ॥ ए देशी ॥

॥ वात सुणी चक्री तणी, ते पंमित नें परधान रे ॥ विनीत ॥ हाकारो भ णी उठीया, आव्या ते निजपुरथान रे ॥ वि० ॥ १ ॥ पृथिवी पुरुष रयणें भरी ॥ ए आंकणी ॥ संभलावी वात ते पवननें, तिम श्रीजयानंदनें तेह रे ॥ वि०॥ विस्तारें संभलावतां, चक्रायुद्ध बोल्या जेह रे ॥ वि०॥ २॥

॥ २ ॥ हवे पवनवेग मंत्री सहु, श्रीश्रीजयानंद एकांत रे ॥ वि० ॥ वात वि चार करता कहे, श्रीजय मत मन करो भ्रांति रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ ३ ॥ जे चक्रायुधें तुमनें कह्युं, ते करियें अंगीकार रे ॥ वि० ॥ वज्रसुंदरी राखो गो पवी, थोडो काल गेह मझार रे ॥ वि० ॥ ए०॥ ४ ॥ वज्रसुंदरीनुं करी रूप हुं, केटली लेइ साथें नारि रे ॥ वि० ॥ चक्रायुध पासें जइ करी, जणावीश तस कनी सार रे ॥ वि० ॥ ए० ॥५॥ सघलुं करशुं रूडुं अमें, जेम उचित हशे तेम तेह रे ॥ वि० ॥ हुं कार्य करीश सवि एकलो, कांइ फिकर म कर शो एह रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ ६ ॥ एम कही सहु निज निज घर गया, तव चक्रीना पुरुष प्रधान रे ॥ वि०॥ आव्या तस पवनवेग करे, प्रतिपत्ति तथा बहु मान रे ॥ वि० ॥ ए०॥७॥ ते कहे चक्री एणी परें कहे, में केहेवराव्युं छे जेह रे ॥ वि० ॥ वज्रसुंदरी मूको शीखाववा, वली वीजुं कह्युं जेह तेह रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ ८ ॥ जो न करे तो हुं आवीयो, युद्ध करवा थाजे तै यार रे ॥ वि० ॥ राज्य मूकीनें जाजो तुमें, त्रीजी गतिनो नहीं गार रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ ए ॥ कहे पवनवेग शुं बोलीया, कोण नवि माने प्रभु आण रे ॥ वि० ॥ करी सामग्रीनें मोकलुं, आजनो दिन पडखो जाण रे ॥वि०॥ ॥ ए० ॥ १० ॥ उतारो आप्यो एम कही, अशनादिक युक्ति अपार रे ॥ ॥ वि० ॥ संतोष्या नली जातिशुं, अवसर थयो रातनो त्यार रे ॥ वि०॥ ॥ए०॥११॥ तव श्रीजय पांचशें पुरुषनें, परीक्षा करी जेह युवान रे॥वि०॥ शस्त्र शास्त्रमां कुशल जे, काढयो ते करी विज्ञान रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ १२ ॥ वीरांगद महाबाहु जे,सुघोष प्रमुख विदित्त रे ॥वि०॥ स्त्रीनां रूप करे तदा, थया आप समान विचित्त रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ १३ ॥ वस्त्र आजूपण सा रिखां, विद्यायें ते करे रूप रे ॥ वि० ॥ वज्रसुंदरीनां जेहवुं, आप रूप करे नरजूप रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ १४ ॥ चिंतामणि रत्न प्रजावथी, रूडां वस्त्र त था अलंकार रे ॥ वि० ॥ डुर्लन नहीं वज्रसुंदरी, गोपवी वली गेह मझार रे ॥ वि० ॥ ए० ॥१५॥ पवनवेग प्रातःसमे, ते परधाननी साख रे ॥वि०॥ कारिमी पुत्रीनें कहे, सांजलो तुमें महारी जाख रे ॥ वि० ॥ ए० ॥ १६ ॥ नाटक कला शिखावीनें, करजो स्वामी संतोष रे ॥ वि० ॥ सा कहे तात आणा करुं, एहमां नही कांइये मोष रे ॥ वि० ॥ ए० ॥१७॥ शस्त्र गुप्त राखी करी, वेग सहुये विमान रे ॥वि०॥ नाटयसामग्री प्रगट पणे, पोहो

ता चक्रीनें थान रे ॥ वि० ॥ ष्ट० ॥१८॥ मूकी उद्यानमां ते नरा, जइ क हे चक्रीने वात रे ॥ वि० ॥ दासीयो तेडवा मोकले, हैयडे तस हर्ष न मा त रे ॥ वि० ॥ ष्ट० ॥ १९ ॥ पर्वतमां कोइ थानकें जइ, मूके गोपवी ते श स्त्र रे ॥ वि० ॥ कारमी स्त्रीयो मूकी करी, पहेरी अलंकृति वस्त्र रे ॥वि०॥ ॥ ष्ट० ॥२०॥ राय हजूर ते आवीया, ते वदन अधोमुख राखि रे ॥ वि०॥ वज्रसुंदरी उनी रही, हवे लाजथी घूंघट दाखि रे ॥ वि० ॥ ष्ट० ॥ २१॥ बहु नारी घडी घडीनें थयो, धाता विज्ञाननी सीम रे ॥ वि०॥ नीपजावी छे पछी एहनें,जगमां नही एहवुं नीम रे ॥ वि० ॥ ष्ट० ॥२२॥ नरपति एणी परें चित्त चिंतवी,अहो एह रूप प्रमाण रे ॥ वि० ॥ खाण कलानी ए ह शे, नृत्य करवानी आण रे ॥ वि० ॥ ष्ट० ॥ २३ ॥ त्रीजी आठमा खंम मां,वर पद्मविजय कही ढाल रे ॥ वि० ॥ श्रीश्रीजयानंदना रासमां, वात सुणजो हवे सुरसाल रे ॥वि०॥ष्ट०॥२४॥ सर्वगाथा ॥९१॥

॥ दोहा ॥

॥ नृप आणाथी ते हवे,गीत वात मनोहार ॥ सर्वस्त्रीयें करी परवरी, ना टक करे उदार ॥१॥ देखी नृप मुख चमकिया, वस्त्र अनें अलंकार ॥ देखी देखी रीजतो, देवा दान अपार ॥ २ ॥ ग्रास दास्यादिक बहु दीये, देइ आद र मान ॥ रहेवा आवास आपतो, जाणे स्वर्ग विमान ॥ ३ ॥ सोंपी पुत्री शी खवा, चक्रसुंदरी जेह ॥ निज परिवारें परवरी, रहे आवासें तेह ॥ ४ ॥ व ज्रसुंदरी शीखवे, नाटक कला अन्यास ॥ निज सम चक्रसुंदरी प्रत्यें, नित्य नित्य राखी पास ॥ ५ ॥ प्रज्ञायें सरसति समी, सोजागिण सुविनीत ॥ सर लजापिणी गुणवती, शीखे धरती प्रीति ॥ ६ ॥ योगिणीवद ते गावती, श्रीजयकुमर चरित्र ॥ माया नारी सहु मली,स्वर पद वर्ण विचित्र ॥ ७ ॥ च रित्र विचित्र सुणी करी, कन्या कुमरशुं राग ॥ धरती पूछे हे सखी,कोण श्री जय महानाग ॥ ८ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ न्हानोके न्हानो नाहलो रे, न्हानो चांपानो छोड ॥

॥ न्हानो० ॥ ए देशी ॥

॥ जे तुमें गावो गीतमां रे,श्रीजयानंद कुमार ॥ लागी मोहनीरे ॥ चक्री के चक्री समोवडें रे, जग नहीं एहवो उदार ॥ ला० ॥ १ ॥ ते मुज नांखो कोण छे रे, तव ते बोली नारि ॥ला०॥ योगिणीगण गाती थकी रे, पर्वत

केली मजार ॥ ला० ॥ २ ॥ ते अमें सांजली शीखियां रे, पण नवी ऊल खुं तास ॥ला०॥ पण वज्रसुंदरी वर समो रे, उत्तम गुण आवास ॥ला०॥ ॥ ३ ॥ ज्ञानीयें उत्कृष्टो कह्यो रे, इणहीज जरत मजार ॥ला०॥ संजवीयें एम सांजली रे, देखी कलादिक वार ॥ ला० ॥४॥ वज्रसुंदरीशुं रीजती रे, इछे रहेवुं तस पास ॥ ला०॥ जाग्य होये जो माहरुं रे,तो एहवो धव खास ॥ ला० ॥ ५ ॥ वज्रसुंदरी जेली रह्युं रे, पण हवे परण्यो तेह ॥ ला० ॥ ता त धरे द्वेष तेहशुं रे,केम आपे मुज एह ॥ ला० ॥ ६ ॥ तेणें हुं अजागिणी मावडी रे, एम मन धरती शोक ॥ ला० ॥ आमण दूमणी ते रहे रे, रवि विरहें जेम कोक ॥ला०॥७॥ तव ते देखी पूछती रे, कारमी नारीयो एम ॥ ॥ ला० ॥ रे वत्स तुं रंजा समी रे, इछे पुरंदर प्रेम ॥ला०॥८॥ सा कहे सां जलो वेहेनडी रे,चंद्र ग्रहेवा निज पाणि ॥ ला० ॥ हांसी थाये जेम तेणी परें रे, शुं असाध्य वखाण ॥ ला० ॥९॥ नारियो कहे तुं सांजले रे, वज्र सुंदरी एह ॥ ला० ॥ एहनें असाध्य कांइ नथी रे, इछे ते करे जेह ॥ला०॥ ॥ १० ॥ दीधी कला तें जेहवी रे,जगतनें जीतणहार ॥ ला० ॥ तेहवुं परा क्रम जाणजे रे, फेर पडे न लगार ॥ला० ॥११॥ पण मन थिर नवि सं जवे रे, ताहरुं अम मनमांहि ॥ ला० ॥ नारीनुं चित्त चपल होये रे,कपि प रें थिर नही क्यांहि ॥ ॥ ला० ॥ १२ ॥ चपल चित्त अर्थे करे रे, कोण विषम ए काम ॥ ला० ॥ सा कहे रत्नसंगति परें रे, माहारुं मन दृढ ठा म ॥ ला० ॥ १३ ॥ जेम दरिद्री धनरागीयो रे,अमृत रोगी मान ॥ला०॥ तरश्यानें अमृत परें रे, तेम माहारे बहु मान ॥ ला० ॥ १४ ॥ नारियो कहे जो एम छे रे,तो तुं था तैयार ॥ ला० ॥ ते पण आवी उतावली रे, लइ निज धन सुख लार ॥ ला० ॥ १५ ॥ नारियो सहु संजलावती रे, श्रीजयानंदने वात ॥ ला० ॥ ततक्षण रचीया विमानमां रे, बेसाडी ते ख्यात ॥ ला० ॥ १६ ॥ चाल्यो गगनमां तेहवे रे, महोल उपर रही एम ॥ला०॥ उद्घोषणा करे आकरी रे, सुणजो आणी प्रेम ॥ ला० ॥ १७ ॥ रे चक्री रे खेचरा रे, वीर तणुं तुज मान ॥ला०॥ लेइ जाउं चक्रसुंदरी रे, संजलावी तुम कान ॥ ला० ॥ १७ ॥ बलवंता जो हो तुमें रे,तो श्रीजया नंद राय ॥ ला० ॥ पासेंथी मूकावजो रे, छल न करुं एणें ठाय ॥ ला० ॥ ॥ १८ ॥ एम कही नगर उद्यानमां रे, आवी गुप्त हथीयार॥ला०॥ मंगा

वे बहु जातिना रें, श्रीजयानंद कुमार ॥ला०॥१ए॥ आठमे खंडें चोथी क
ही रे, पद्मविजयें वर ढाल ॥ ला० ॥ श्रीजयानंदना रासमां रे, पुण्यें मंग
लमाल ॥ ला० ॥ २० ॥ सर्वगाथा ॥ ११ए ॥

॥ दोहा ॥

॥ ते सांजली विस्मय लह्यो,चिंतवे खेचर राय ॥ अहो पराक्रम नारिनुं,
अहो अनीति कराय ॥ १ ॥ बहु सुनटनें मोकले, कन्या वालवा काम ॥
माया स्त्रीशुं जूझिया, धरता अतिशय माम ॥ २ ॥ हाख्या ते नाठाथका,
आव्या चक्री पाय ॥ स्त्रीयें हरव्या लाजथी, मुखथी नवि बोलाय ॥ ३ ॥
पण रुधिरें खरड्या थका, देखी क्रोध नराय ॥ महाबल मोकले विस्मयें,पा
यकना समुदाय ॥ ४ ॥ केइ विमान मांहे रह्या, केइ वेगा गजराज ॥ तुरग
चढ्या केइ तेजशुं, लेइ निज निज साज ॥ ॥५ ॥ युद्ध करंता तेहशुं, नाठा
सुनट जे नारि ॥ राखो अम्ह कहेता थका, जिहां छे श्रीजयकुमार ॥ ६ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ जाउं जाउं रे रुठडा नाथ, तुमशुं नहीं बोलुं ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंदजी उठीया, कांइ युद्ध करणने काज रे ॥ स्त्रीरूपें आवी
नड्यो, कांइ बलवंतो महाराज ॥ १ ॥ गुणगणवंतो रे, मारो मारो रे करे
हुंकार ॥ गु० ॥ लेइ लेइ रे कर हथियार ॥ गु० ॥ शूरवीर थइ शिरदार ॥
गु० ॥ ए आंकणी ॥ गदा लेइने चूरतो, कांइ पापड परें विमान रे ॥ महाव
लशुं गज पाडतो, कांइ पर्वत शिला समान ॥ गु०॥ २ ॥ गरुड परें हय ले
इने, कांइ गगनें नमाडे तेह रे ॥ चंचा पुरुष तणीपरें, कांइ पाडे सुनटनें
जेह ॥ गु० ॥ ३ ॥ केलिनुं वन जेम हाथीयो, कांइ हिम जिम कमलनी खं
म रे ॥ स्त्रीरूपें कुमरें तदा, कांइ त्रासव्यो तेज प्रचंम ॥ गु० ॥ ४ ॥ मूकी
मन नाशि गया, कांइ जिन्न जिन्न सहु जाय रे ॥ रुधिर जरंता लाजता,
कांइ आव्या जिहां नरराय ॥ गु० ॥ ५ ॥ स्त्रीयें हरव्या ते लाजथी, कांइ
मुख न देखाडे आय रे ॥ तेह स्वरूप चरथी सुणी, कांइ नरपति खेद न
राय ॥ गु० ॥ ६ ॥ खेद लाज विस्मय घणो, कांइ क्रोधथी व्याकुल थाय
रे ॥ पुत्री पाछी वालवा, कांइ उठे पोतें राय ॥ गु० ॥ ७॥ स्त्री उपर ए ना
खतां, कांइ लाजे छे मुज बाण रे ॥ मोहोटो अपजश चिंतवी, कांइ वेगा
तिणहिज ठाण ॥ गु० ॥ ८ ॥ पवनवेग खेचर पति, कांइ नोगरत्यादिक
आव रे ॥ वोलाव्या ते आविया, कांइ बहु बलनो करी ठाठ ॥ गु० ॥

केली मझार ॥ ला० ॥ २ ॥ ते अमें सांजली शीखियां रे, पण नवी उल्ल खुं तास ॥ला०॥ पण वज्रसुंदरी वर समो रे, उत्तम गुण आवास ॥ला०॥ ॥ ३ ॥ ज्ञानीयें उत्कृष्टो कह्यो रे, इणहीज जरत मझार ॥ला०॥ संजवीयें एम सांजली रे, देखी कलादिक वार ॥ ला० ॥४॥ वज्रसुंदरीशुं रीजती रे, इछे रहेवुं तस पास ॥ ला०॥ जाग्य होये जो माहरुं रे,तो एहवो धव खास ॥ ला० ॥ ५ ॥ वज्रसुंदरी जेली रहुं रे, पण हवे परण्यो तेह ॥ ला० ॥ ता त धरे द्वेष तेहशुं रे,केम आपे मुज एह ॥ ला० ॥ ६ ॥ तेणें हुं अजागिणी मावडी रे, एम मन धरती शोक ॥ ला० ॥ आमण दूमणी ते रहे रे, रवि विरहें जेम कोक ॥ला०॥७॥ तव ते देखी पूछती रे, कारमी नारीयो एम ॥ ॥ ला० ॥ रे वत्स तुं रंजा समी रे, इछे पुरंदर प्रेम ॥ला०॥८॥ सा कहे सां जलो वेहेनडी रे,चंड ग्रहेवा निज पाणि ॥ ला० ॥ हांसी थाये जेम तेणी परें रे, शुं असाध्य वखाण ॥ ला० ॥ए॥ नारियो कहे तुं सांजले रे, वज्र सुंदरी एह ॥ ला० ॥ एहनें असाध्य कांइ नथी रे, इछे ते करे जेह ॥ला०॥ ॥ १० ॥ दीठी कला तें जेहवी रे,जगतनें जीतणहार ॥ ला० ॥ तेहवुं परा क्रम जाणजे रे, फेर पडे न लगार ॥ला० ॥११॥ पण मन थिर नवि सं जवे रे, ताहरुं अम मनमांहि ॥ ला० ॥ नारीनुं चित्त चपल होये रे,कपि प रें थिर नही क्यांहि ॥ ॥ ला० ॥ १२ ॥ चपल चित्त अर्थें करे रे, कोण विषम ए काम ॥ ला० ॥ सा कहे रत्नसंगति परें रे, माहारुं मन दृढ ठा म ॥ ला० ॥ १३ ॥ जेम दरिड़ी धनरागीयो रे,अमृत रोगी मान ॥ला०॥ तरश्यानें अमृत परें रे, तेम माहारे बहु मान ॥ ला० ॥ १४ ॥ नारियो कहे जो एम छे रे,तो तुं था तैयार ॥ ला० ॥ ते पण आवी उतावली रे, लइ निज धन सुख लार ॥ ला० ॥ १५ ॥ नारियो सहु संजलावती रे, श्रीजयानंदने वात ॥ ला० ॥ ततक्षण रचीया विमानमां रे, बेसाडी ते ख्यात ॥ ला० ॥ १६ ॥ चाल्यो गगनमां तेहवे रे, महोल उपर रही एम ॥ला०॥ उद्घोषणा करे आकरी रे, सुणजो आणी प्रेम ॥ ला० ॥ १७ ॥ रे चक्री रे खेचरा रे, वीर तणुं तुज मान ॥ला०॥ लेइ जाउं चक्रसुंदरी रे, संजलावी तुम कान ॥ ला० ॥ १७ ॥ बलवंता जो छो तुमें रे,तो श्रीजया नंद राय ॥ ला० ॥ पासेंथी मूकावजो रे, छल न करुं एणें ठाय ॥ ला० ॥ ॥ १८ ॥ एम कही नगर उद्यानमां रे, आवी गुप्त हथीयार॥ला०॥ मंगा

वे बहु जातिना रें, श्रीजयानंद कुमार ॥ला०॥१ए॥ आठमे खंडें चोथी कही रे, पद्मविजयें वर ढाल ॥ ला० ॥ श्रीजयानंदना रासमां रे, पुलें मंगलमाल ॥ ला० ॥ २० ॥ सर्वगाथा ॥ ११ए ॥

॥ दोहा ॥

॥ ते सांजली विस्मय लह्यो,चिंतवे खेचर राय ॥ अहो पराक्रम नारिनुं, अहो अनीति कराय ॥ १ ॥ बहु सुनटनें मोकले, कन्या वालवा काम ॥ माया स्त्रीशुं जूफिया, धरता अतिशय माम ॥ २ ॥ हाख्या ते नागथका, आव्या चक्री पाय ॥ स्त्रीयें हरव्या लाजथी, मुखथी नवि बोलाय ॥ ३ ॥ पण रुधिरें खरडया थका, देखी क्रोध नराय ॥ महाबल मोकले विस्मयें,पायकना समुदाय ॥ ४ ॥ केइ विमान मांहे रह्या, केइ वेग गजराज ॥ तुरग चढया केइ तेजशुं, लेइ निज निज साज ॥ ॥५ ॥ युद्ध करंता तेहशुं, नाग सुनट जे नारि ॥ राखो अम्ह कहेता थका, जिहां ठे श्रीजयकुमार ॥ ६ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ जाउ जाउ रे रुगडा नाथ, तुमशुं नहीं बोलुं ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंदजी उठीया. कांइ युद्ध करणने काज रे ॥ स्त्रीरूपें आवी नडयो, कांइ बलवंतो महाराज ॥ १ ॥ गुणगणवंतो रे, मारो मारो रे करे हुंकार ॥ गु० ॥ लेइ लेइ रे कर हथियार ॥ गु० ॥ शूरवीर थइ शिरदार ॥ गु० ॥ ए आंकणी ॥ गदा लेइनें चूरतो, कांइ पापड परें विमान रे ॥ महावतशुं गज पाडतो, कांइ पर्वत शिला समान ॥ गु०॥ २ ॥ गरुड परें हय लेइने, कांइ गगनें नमाडे तेह रे ॥ चंचा पुरुष तणीपरें, कांइ पाडे सुनटनें जेह ॥ गु० ॥ ३ ॥ केलिनुं वन जेम हाथीयो, कांइ हिम जिम कमलनी खंम रें ॥ स्त्रीरूपें कुमरें तदा, कांइ त्रासव्यो तेज प्रचंम ॥ गु० ॥ ४ ॥ मूकी मन नाशि गया, कांइ निन्न निन्न सहु जाय रे ॥ रुधिर फरंता लाजता, कांइ आव्या जिहां नरराय ॥ गु० ॥ ५ ॥ स्त्रीयें हरव्या ते लाजथी, कांइ मुख न देखाडे आय रे ॥ तेह स्वरूप चरथी सुणी, कांइ नरपति खेद न राय ॥ गु० ॥ ६ ॥ खेद लाज विस्मय घणो, कांइ क्रोधथी व्याकुल थाय रे ॥ पुत्री पाठी वालवा, कांइ उठे पोतें राय ॥ गु० ॥ ७॥ स्त्री उपर ए नाखतां, कांइ लाजे ठे मुज वाण रे ॥ मोहोटो अपजश चिंतवी, कांइ वेगतिणहिज गाण ॥ गु० ॥ ८ ॥ पवनवेग खेचर पति, कांइ नोगरत्यादिक आव रे ॥ बोलाव्या ते आविया, कांइ बहु बलनो करी दाव ॥ गु० ॥

केली मकार ॥ ला० ॥ २ ॥ ते श्रमें सांजली शीखियां रे, पण नवी अंत खुं तास ॥ला०॥ पण वज्रसुंदरी वर समो रे, उत्तम गुण आवास ॥ला०॥ ॥ ३ ॥ ज्ञानीयें उत्कृष्टो कह्यो रे, इणहीज जरत मकार ॥ला०॥ संजवीयें एम सांजली रे, देखी कलादिक वार ॥ ला० ॥४॥ वज्रसुंदरीशुं रीजती रे, इछे रहेवुं तस पास ॥ ला०॥ जाग्य होये जो माहरुं रे,तो एहवो धव खास ॥ ला० ॥ ५ ॥ वज्रसुंदरी जेली रहुं रे, पण हवे परख्यो तेह ॥ ला० ॥ तात धरे द्वेष तेहशुं रे,केम आपे मुज एह ॥ ला० ॥ ६ ॥ तेणें हुं अजागिणी मावडी रे, एम मन धरती शोक ॥ ला० ॥ आमण दूमणी ते रहे रे, रवि विरहें जेम कोक ॥ला०॥७॥ तव ते देखी पूछती रे, कारमी नारीयो एम ॥ ॥ ला० ॥ रे वत्स तुं रंजा समी रे, इछे पुरंदर प्रेम ॥ला०॥८॥ सा कहे सांजलो वेहेनडी रे,चंड ग्रहेवा निज पाणि ॥ ला० ॥ हांसी थाये जेम तेणी परें रे, शुं असाध्य वखाण ॥ ला० ॥ए॥ नारियो कहे तुं सांजले रे, वज्र सुंदरी एह ॥ ला० ॥ एहनें असाध्य कांइ नथी रे, इछे ते करे जेह ॥ला०॥ ॥ १० ॥ दीठी कला तें जेहवी रे,जगतनें जीतणहार ॥ ला० ॥ तेहवुं पराक्रम जाणजे रे, फेर पडे न लगार ॥ला० ॥११॥ पण मन थिर नवि संजवे रे, ताहरुं अम मनमांहि ॥ ला० ॥ नारीनुं चित्त चपल होये रे,कपि परें थिर नही क्यांहि ॥ ॥ ला० ॥ १२ ॥ चपल चित्त अर्थे करे रे, कोण विषम ए काम ॥ ला० ॥ सा कहे स्तनसंगति परें रे, माहारुं मन दृढ ठाम ॥ ला० ॥ १३ ॥ जेम दरिड़ी धनरागीयो रे,अमृत रोगी मान ॥ला०॥ तरश्यानें अमृत परें रे, तेम माहारे बहु मान ॥ ला० ॥ १४ ॥ नारियो कहे जो एम छे रे,तो तुं था तैयार ॥ ला० ॥ ते पण आवी उतावली रे, लइ निज धन सुख लार ॥ ला० ॥ १५ ॥ नारियो सहु संजलावती रे, श्रीजयानंदने वात ॥ ला० ॥ ततक्षण रचीया विमानमां रे, बेसाडी ते ख्यात ॥ ला० ॥ १६ ॥ चाल्यो गगनमां तेहवे रे, महोल उपर रही एम ॥ला०॥ उद्घोषणा करे आकरी रे, सुणजो आणी प्रेम ॥ ला० ॥ १७ ॥ रे चक्री रे खेचरा रे, वीर तणुं तुज मान ॥ला०॥ लेइ जाउं चक्रसुंदरी रे, संजलावी तुम कान ॥ ला० ॥ १७ ॥ बलवंता जो छो तुमें रे,तो श्रीजयानंद राय ॥ ला० ॥ पासेंथी मूकावजो रे, छल न करुं एणें ठाय ॥ ला० ॥ ॥ १८ ॥ एम कही नगर उद्यानमां रे, आवी गुप्त हथीयार ॥ला०॥ मंगा

स्य थयुं जनमांहि ॥ अथवा मुज उत्सव थयो, जेणें आव्यो ए आंहि ॥ ॥ ३ ॥ कंमू जशे मुज कर तणी, मुज प्रताप वर आग ॥ वयरी इंधण पामीनें, अथवा दीपवा लाग ॥ ४ ॥ अथवा स्त्री आगल करी, सुनट जूऊशे जेह ॥ मुज रण कौतुक पूरवा, केम समरथ ठे तेह ॥ ५॥ आप शक्ति अण जाणतो, आव्यो मुज पुर पास ॥ शिक्षा देइ लेउं पुत्रीनें, एहनें करुं निराश ॥६ ॥ एम चिंती चक्री हवे, वजडावे रण नेरि ॥ सुनट सवे तव सज थया, सांनली नादने सेर ॥ ७ ॥

॥ ढाल ठठी ॥ लाल पीयारीनो साहेबो रे ॥ ए देशी ॥

॥ स्वामी मोरा रे, गज उपर चढे जेटले रे, पूर्वाचल जेम सूर लाल॥ मस्तक मुकुट पडि गयो रे, तेटले गयुं मानुं नूर लाल ॥ १ ॥ पुण्य प्रमाणें सहु नीपजे रे ॥ ए आंकणी ॥ स्वा० ॥ लघु वडी नीति साथें करे रे, जयनी परें गजराज लाल ॥ ठींक थइ सन्मुख तदा रे, वारे शकुन ते काज लाल ॥ पु० ॥ २ ॥ स्वा०॥ वस्त्रें पग स्खलिउं तदा रे, चामरधारिणी नार लाल ॥ चामर तस करथी पडयुं रे, सूचवे अतिअ असार लाल ॥पु०॥३॥ स्वा०॥ कारण विण चलियो तदा रे, ठत्र तणो जेह दंम लाल ॥ सचिव तें देखीनें नृपप्रत्यें रे, विनवे तेज प्रचंम लाल ॥पु०॥४॥स्वा०॥ ए अपशकुन ते एम कहे रे, रणयात्रा नवि थाय लाल ॥ सांनलो विनती अम्ह तणी रे, वेसो आसन ठाय लाल ॥ पु०॥५॥स्वा० ॥ वेगा खेचर पति तदा रे, हित कोण माने न सयण लाल ॥ बोले सचिव स्वामी सुणो रे, हितकारी अम वयण लाल ॥ पु० ॥ ६ ॥ स्वा० ॥ शत्रु सैन्य नांज्यां तुमें रे, लीलायें शूरवीर लाल ॥ नवि नांज्युं सैन्य तुम तणुं रे, वलवंत तुम धीर लाल ॥ पु० ॥ ॥७॥स्वा०॥ नारी एह न संनवे रे, परिकर पण नहीं नारी लाल ॥ पवन वेगादिक राजिया रे, स्त्रीनें आवे नवि ल्हार लाल ॥ पु० ॥ ८ ॥ स्वा० ॥ नोगरत्यादिक नृपति रे, विद्याधर तणा वार लाल ॥ महानड मानी आवे नही रे, नारी पूठें अवधार लाल ॥ पु० ॥ ए ॥ स्वा० ॥ वज्रसुंदरी वर एह ठें रे, देवांगना गुण गाय लाल ॥ तुम वचनें परानव लही रे, आव्यो श्रीजयराय लाल ॥ पु० ॥ १० ॥ स्वा० ॥ अपजश आपवा तुम्हनें रे, नारियोनां करी रूप लाल ॥ नारियें जींत्यो ए चक्रीनें रे, एहवुं मन धरी नूप लाल ॥ पु० ॥ ११ ॥ स्वा० ॥ कंकण मौलि अक्षर कदा रे, समरथ क्षत्री

॥ ९ ॥ चंड्गति वली आवीयो, कांइ लेइ बहु परिवार रे ॥ मित्रादिक संबंधथी, कांइ नृप विद्याधर वार ॥ गु० ॥ १० ॥ दक्षिण श्रेणिना राजवी, कांइ पवनवेगशुं मेल रे ॥ तस बोलाव्या आविया, कांइ तन मन तेहमां भेल ॥ गु० ॥ ११ ॥ प्रायें दक्षिण श्रेणिना, कांइ पवनवेग सहु लेय रे ॥ सैन्य घणुं भेलुं करी, कांइ आव्यो पूर्व संकेय ॥ गु० ॥ १२ ॥ चक्रायुध पण खोभियो, कांइ देखी तेह बनाव रे ॥ त्राण रहित जेम भय लहे, कांइ जेम शनि मकर स्थिति दाव ॥ गु० ॥ १३ ॥ काहला त्रट त्रट वाजती, कांइ भीषण उठे नाद रे ॥ शस्त्र लेइ भट धावता, करे बूंबारव सविषाद ॥ गु० ॥ ॥ १४ ॥ कायर सुभट ते नासता, कांइ भय कोलाहल भास रे ॥ केई बालक लेइ रोवती, कांइ तरलाक्षी लेइ त्रास ॥ गु० ॥ १५ ॥ आलान मूल उमेलिनें, कांइ नाग तिहां गजराज रे ॥ अश्वस्वार नाखी दीये, कांइ अश्व ते न खमे ताज ॥ गु० ॥ १६ ॥ भीषण भांकारव करी, कांइ गायो त्रोडी राश रे ॥ वृषभनें महीषी तेम भमे, कांइ भयविव्हल लही त्रास ॥ गु० ॥ १७ ॥ पाणिहारी अंगें कंपती, कांइ फोडे घट समुदाय रे ॥ आभूषण खशीनें पडे, कांइ नारि न जाण्या जाय ॥ गु० ॥ १८ ॥ नासंतां ढोर ते पाडतां, कांइ नरनारीनें पंथ रे ॥ हाल कल्लोल नगरी थइ, कांइ स्थिर नहीं कांइ अंथ ॥ गु० ॥ १९ ॥ त्रुटया हार मोती तणा, कांइ पुंज ते मानुं एह रे ॥ कुंअर आववा कारणें, कांइ स्वस्तिक पूरवा जेह ॥ गु० ॥ ॥ २० ॥ केइ कहे जूउ नारिथी, कांइ नगर खोभाणुं एम रे ॥ कोइ कहे ए भट अछे, कांइ नारी करे एम केम ॥ गु० ॥ २१ ॥ इंद्र तथा लोकपाल ए, कांइ शत्रुपक्षें आय रे ॥ नवि जीताये कोइ कहे, कांइ चक्रायुधें जीताय ॥ गु० ॥ २२ ॥ मत बीयों केइक कहे, कांइ एहनो कहो श्यो भार रे ॥ आपणा स्वामी आगलें, कांइ सहुए तृण अनुहार ॥ गु० ॥ २३ ॥ आठमे खंमें पांचमी, कांइ पद्मविजयें कही ढाल रे ॥ पुण्यपसायें जीवनें, कांइ होवे मंगलमाल ॥ गु० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ १४९ ॥

॥ दोहा ॥

॥ परचक्रागम सांभली, देखी पुरनो क्षोभ ॥ कहे कोण मरवा आवियो, पाडवा घरनो मोभ ॥१॥ चर आवी कहे चक्रीनें, पवनवेगादिक नाम ॥ चक्री कहे रंभा अहो, नगर खोभावे आम ॥ २ ॥ सीमा लंघी माहरी, हा

ठी आठमा खंममां रे, पद्मविजय कही ढाल लाल॥ श्रीजयानंदना रास मां रे, पुण्यथी मंगलमाल लाल॥ पु० ॥ २८ ॥ स्वा० ॥ सर्वगाथा ॥ १८४॥

॥ दोहा ॥

॥ मंत्रि वाणी एम सांजली, बोल्यो खेचर राय ॥ अनिष्ट शंका चित्त मां धरी, स्नेह कारणें कहो आय ॥ १ ॥ परनारी हरथी करी, परणावुं वली एह ॥ श्यो महिमा माहारो रहे, अपत्य न राखे जेह ॥ २ ॥ पवनवेगनी दीकरी, विद्याकला उन्माद ॥ चेष्टा एहवी आचरे, उतारुं एह नाद ॥ ३ ॥ नारीनें न होये बुध्दडी, पूर्वापरनो विचार ॥ अथवा स्त्री रूपें हजो, श्रीज यानंद कुमार ॥ ४ ॥ विद्याधर चक्री किस्यो, एहनो नय करुं मन्न ॥ नय न धरुं मनमां जरा, सांजलजो रे स कन्न ॥ ५ ॥ नृप सुर कीटक प्राय ते, देवीयो कीटिका प्राय ॥ तेणें जीत्या तो शुं थयुं, मुजनें नवि जीताय ॥ ६ ॥ शिलावटपरें चूरीयो, एणे पर्वत तो कांय ॥ दिव्यशस्त्र मुज आगलें, एहथी नवि रहेवाय ॥ ७ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ सुगुण सुगुण सोनागी जंबूद्विपमां होजी ॥ ए देशी ॥

॥ अर्द्ध अर्द्ध नरतमांहे रह्या होजी, नर सुर खेचर कोय ॥ आण आण उलंघे माहरी होजी, दीठो न सांजल्यो सोय ॥ अ० ॥ १ ॥ विद्या विद्या दिव्य शस्त्र जला होजी,बाहुबल मुज जेह ॥ दीठुं दीठुं किहांये तुमें ते कहो होजी, शुं वीरावे एह ॥ अ० ॥ २ ॥ इंद्र इंद्र चंद्र विरोचन यदि होजी, होय जनार्दन जोय ॥ तेहनें तेहनें पण जीतुं सदा होजी, ए कोण मातर होय ॥ अ० ॥ ३ ॥ सेवक सेवक चिरकालें रही होजी, नारी अनुस र्यो जेह ॥ वयरी वयरी पवनवेग देखीनें होजी, मुज चक्र न सहे तेह ॥ ॥ अ० ॥ ४ ॥ त्रास त्रास पमाडुं हुं केहवो होजी, हरि जेम मृगनां बाल ॥ सचिव सचिव बोले ते सांजली होजी, सांजलो तुमें नृपाल ॥ अ० ॥ ५ ॥ सैन्य सैन्य विद्याधरनां सहु होजी, तेडावो धरी नेह ॥ तेज तेजस्वी पण ए कलो होजी, पामे परानव तेह ॥ अ०॥ ६ ॥ फरतो फरतो गगनें एकलो होजी, सूरय राहु ग्रसाय ॥ अल्प अल्प परिछेदें चंद्रमा होजी, पूनमें रा हु ग्रहाय ॥ अ० ॥ ७ ॥ बीजें बीजें बहुपरिवारशुं होजी, राहु न आवे पास ॥ नृप नृप सुणी गरवें करी होजी, वक्र वक्र मुखें सवि स्वास ॥अ०॥ ॥८॥ पण ते पण ते मान्य तेणे करी होजी, मान्युं वचन प्रमाण ॥ एकलो

जे होय लाल ॥ एह पराभव आकरो रे, वीर खमे नहीं कोय लाल ॥ पु० ॥ १२ ॥ ॥ स्वा० ॥ सांजलीयें जनगीतमां रे, एहना तो अवदातें ला ल ॥ श्रीविशाल नृप रीजव्यो रे, बुद्धि पराक्रम वातें लाल ॥ पु० ॥ १३॥ स्वा० ॥ गिरिमालिनी प्रमुखा सूरी रे, वश कीधी प्रतिबोधि लाल ॥ गिरि चूड सुर कोल रूपथी रे, जीत्यो ए लक्ष्योधि लाल ॥ पु०॥ १४ ॥ स्वा०॥ जीत्यो एऐं क्षेत्रपालनें रे, मलयमाल ते देव लाल ॥ औषधियो तेऐं दी धी घणी रें, समकेती थइ करे सेव लाल ॥ पु० ॥ १५ ॥ स्वा० ॥ विप्र रूपें वली जींतीयो रे, पद्मरथ नरराय लाल ॥ कोडघो सुनटशुं एकले रे, नास्तिक नृपनें बंधाय लाल ॥ पु० ॥ १६ ॥ स्वा०॥ वानर करीनें विडंबी यो रे, प्रतिबोध्यो वली तेह लाल ॥ सहु कुटुंब नेलुं कर्युं रे, वाध्यो अति ससनेह लाल ॥ पु०॥ १७ ॥ स्वा०॥ वली वामन रूपें जींतीयो रे, राज कुमार अनेक लाल ॥ श्रीपतिरायनी कन्यका रे, जीती कलायें विवेक ला ल ॥ पु० ॥ १८ ॥ स्वा० ॥ परण्यो तिहां त्रण कन्यका रे, वली योगिनी योयें परख्यो लाल ॥ खोन्यो नहीं तेह देखीनें रे, अंतर आतम हरख्यो ला ल ॥ पु० ॥ १९ ॥ स्वा० ॥ वज्रवेग मूकावीयो रे, बलथी योगिणी पास लाल ॥ महाज्वाला कामाक्षा वली रे, न पडयो तेहनें पास लाल ॥ पु०॥ ॥ २० ॥ स्वा० ॥ योगिणी सहित ते तूषियां रे, दीधां दिव्य ते शस्त्र ला ल ॥ वली शक्ति दीधी नक्तिथी रे, आनूषण वली वस्त्र लाल ॥ पु०॥२१॥ स्वा० ॥ चूर्यो वज्रकूट पाहाडनें रे, जीत्यो वज्रमुख नाम लाल ॥ चंडग तिनी जे नामिनी रे, ते मूकावण काम लाल ॥ पु० ॥ २२ ॥ स्वा० ॥ सा त्विकमांहे शिरोमणि रे, मूकावी तस नारि लाल ॥ स्त्री रूपें ए डुर्जय घणो रे, श्रीजयानंद कुमार लाल ॥ पु० ॥ २३ ॥ स्वा० ॥ कोप म करजो प्रसादथी रे, कन्या कोइने देवी लाल ॥ वर एहवो जडशे नहीं रे, वात कं कण मौलि केहवी लाल ॥ पु० ॥ २४ ॥ स्वा० ॥ वीसारी सवि वातनें रे, कन्या एहनें दीजें लाज ॥ स्वार्थें लाव्यो एहने इहां रे, पवनवेग वदी जें लाल ॥ पु० ॥ २५ ॥ स्वा० ॥ परणी जाशे निज राज्यमां रे, तुम्ह उपर धरी स्नेह लाल ॥ सेवक पवनवेगादिका रे, प्रीति विशेषें धरेह लाल ॥ पु० ॥ २६ ॥ स्वा० ॥ पालो निष्कंटक राज्यनें रे, एकांतें नवि कीजें ला ल ॥ जो रति अवसर जोइनें रे, हितकारी ए कहिजें राज ॥पु०॥२७॥स्वा०॥

तडितवेग कौशल वली, कलाचंद्र हरिवीर ॥ २ ॥ पवन अंगद महाकीर्त्ति तेम, सुजसानें बलवीर ॥ नंदन पृथु सुभीषण वली, कृतांतास्य महाधीर ॥ ३ ॥ धूमकेतु धूमाक्ष तेम, गजरथ वेग एह ॥ नरपति बहुभट परिवर्या, नीसरीया रणनेह ॥ ४ ॥ मदन कासरनें महायशा, कामकेतु वली भीम ॥ तपन प्रताप तथा रमण, नहि पराक्रमनी सीम ॥ ५ ॥ कामनंदन अक्रोन तेम, इत्यादिक नरराय ॥ सिंहयुक्त रथें नीकले, इत्यादिक समुदाय ॥ ६ ॥ सुभट लखो गमे सामटा,देखी बीहे वीर ॥ कायर नवि देखी शके, वली भाखुं माहाधीर ॥ ७ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ मोरा साहेब हो श्रीशीतल नाथ के ॥ ए देशी ॥

॥ हवे व्याघ्र हो जोडया रथ जास के,नाम सुणो तुमें तेहनां ॥ प्रल्हादनें हो शत्रुदम अंकुश के, त्रास दीयें नाम जेहनां ॥ १ ॥ चंद्रवेग हो महापाणि सुचक्र के, वज्रकेतन वली जाणीयें ॥ गदाधरनें हो वली चपल जोधार के, पराक्रमथी वखाणीयें ॥ २ ॥ लखो एहवा हो व्याघ्र रथ संयुक्त के, सहुने तृण सम जे गणे ॥ अश्व रथमां हो वेशानें जाय के, हुकारा मुखथी भणे ॥ ३ ॥ भीष्म क्रोधन हो रणचंद्र महाशूर के, सागरनें वज्रायुधो ॥ सुतेजा हो पूर्णचंद्र महाअस्त्र के, शतायुध कुलिशायुधो ॥ ४ ॥ इत्यादिक हो लक्ष गमे राजान के, अश्वरथें ते नीसरे ॥ उत्साहें हो उज्जलता जेह के, रण उत्सुकता बहु धरे ॥ ५ ॥ बल सिंह हो कामांकुर होय के, धूममाली चोथा वली ॥ शतायुध हो वज्रमाली होय के, विजय डुरंत डुर्द्धर मली ॥ ६ ॥ महाचक्र हो चक्रधारी नाम के, खेचर नृप मानी पणे ॥ इत्यादिक हो विमान आरूढ के, नीकल्या परिवृत भट घणे ॥ ७ ॥ गजसिंह हो गजानंद गजदेव के, गजप्रभ गजवीर दाखीयें ॥ गजप्रीति हो गजध्वज गजकेलि के, गजवेग गजसेन भाखीयें ॥ ८ ॥ गजक्षेम हो गजानन बलवंत के, गजविक्रम प्रमुखा घणा ॥ लखो लेखे हो गजवाहन जास के, शत्रु करे दीयामणा ॥ ए ॥ हयवेग हो महावाजि नरिंद के, हयवाहन खेचरपति ॥ महा अश्व हो हयवीर हयानंद के ॥ हयसार हयोदय नृपतति ॥ १० ॥ अश्ववीर हो अश्वसेन राजान के, अश्वानंद अश्वें चढयो ॥ अश्वविक्रम हो हयसेन हयअस्त्र के, लखो गमे रणमां चढयो ॥११॥ सिंह सिंहगति हो सिंहविक्रमसार के, सिंहवाहन सिंह केस

एकलो जय अर्थी थको होजी, भुजबलनुं बहु माण ॥ अ० ॥ ए ॥ शत्रु शत्रुनें कहेवराविवुं होजी.थाउं हुं अम्ह सऊ ॥ त्रण त्रण दिवस पबखो तुमें होजी, पछे संग्रामनुं कऊ ॥ अ० ॥ १० ॥ साथें साथें मूके बोध श्रे णिमा होजी, दूत नूपालनें ताम ॥ सेना सेना लेइ सहु आवीया होजी, च क्रीनें करे प्रणाम ॥ अ० ॥ ११ ॥ आदर आदर बहु नृपनें दियो होजी, सैन्य सहित हरषंत ॥ तत्पर तत्पर रण करवा नणी होजी, नृपनी शिक्षा सुणंत ॥अ०॥१२॥ चोथे चोथे दिन चक्री हवे होजी, स्नान पूजा विरचंत ॥ नोजन नोजन करे मनमोदशुं होजी, मंगलाचार करंत ॥ अ० ॥ १३ ॥ युद्धनी युद्धनी सामग्री सवे होजी, मेलवी ते नरनाह ॥ गजवर गजवर उपर हरखशुं होजी, वेसे धरत उत्साह ॥ अ० ॥ १४ ॥ छत्र छत्र चामर वींजी जते होजी, निकलीयो घर बाहार ॥ विविध विविध शस्त्रें नस्यो रथ तदा होजी, सन्नद्ध थाइ तैयार ॥ अ०॥ १५ ॥ चक्र चक्रवेग महावेगनें हो जी, वीरांगद एणें नाम ॥ महाबल महाबल सुषेणनें सुमुखा होजी, नंद कुमर अनिराम ॥अ०॥१६॥ धीर धीर सेननें दृढायुधा होजी, महायुद्धने चंद्रसेन ॥ सुधीर सुधीर नानु वज्राननना होजी,नूवीरनें महासेन ॥अ०॥१७॥ शूर शूर वीर रविप्रन नामथी होजी,सिंहनें चंद्रमुख तेम ॥ वज्रा वज्राक्ष वज्र माली वली होजी, शनि महाबाहु सप्रेम ॥अ०॥१८॥ महावीर्य महावीर्य चंद्रकेतन तथा होजी, वली चंद्राज विचार ॥ पुत्र पुत्र इत्यादिक चक्रीना होजी, विक्रमी बार हजार ॥ अ० ॥ १९ ॥ गजरथ गजरथ शार्दूल उपरें होजी, तुरगनें वली वराह ॥ विविध विविध वाहनें आवी मल्या होजी, विविध आयुद्ध धरी चाह ॥ अ० ॥ २० ॥ तूर तूर वाजे समकालमां हो जी, नादें गगन नराय ॥ मेघ मेघ प्रलयना शब्दनें होजी, मानुं उलंघी जाय ॥ अ० ॥ २१ ॥ नगर नगरवासी बहु नट वडा होजी, नीकल्या रण कर णाय ॥ एक एकथी जाये आगलें होजी, पंखी परें ते उजाय ॥अ०॥२२॥ आठमा आठमा खंममां सातमी होजी, ढाल ए नाखी उदार ॥ पद्म पद्म विजय कहे पुण्यथी होजी, होवे जयजयकार ॥अ०॥२३॥ सर्वगाथा॥२१२

॥ दोहा ॥

॥ सेनानी नट कोटिशुं, परवारीयो परिवर ॥ चंद्रवेग सिंहरथें करी, नीसरीयो ते बाहार ॥ १ । वज्र कंठ महाभुज नला, नानुकेतु नरवीर ॥

जंपा करे, मूकी गगनावास ॥ १ ॥ सुनट तणी जे मावडी, तिम वली प्रेयसी नारि ॥ देव देवी लक्ष्यो गमे, मानत करे तिवार ॥ २ ॥ मात जगनीनें प्रिय वहू, जय लखमीनें हेत ॥ मंगल विचित्र प्रकारनां, करे ते वीर संकेत ॥ ३ ॥ नालें तिलक तदा करे, मंगल केरुं मात ॥ नाग्य लखमी रेखा परें, नीसरतां कहे वात ॥ ४ ॥

॥ ढाल नवमी ॥ टेकरी रही रे, शहेर नरुअचकें मेदान ॥ ए देशी ॥

॥ दल दोय मलियां रे चक्री पुरके मेदान ॥ बहु सलसलीयां रे फुरके नेजा नीशान ॥ ए आंकणी ॥ जब संग्राममां जावा शूर, मायनें पय प्रणमे वड नूर, मात नणे बहु स्नेहनें पूर, वीरनी पुत्री रे हुं वली वीरनी नार, वीर ठे भ्राता रें तुं हवे वीरपणुं धार, तो थाउं मातारे माहुं धन्य अवतार ॥ द० ॥ १ ॥ कोइ कहे मुज आणी स्नेह, पूठ म देजे माहरी देह, मरण जीवन ठे ताहरी एह ॥ कोइ कहे नारी रे वीरपत्नी पुत्री मात, हवे थाउं नगनी रे जो थाये वीर तुं भ्रात, तो जग गावे रे ताहरा जस अवदात ॥ द० ॥ २ ॥ माहरे शोक विना हता नोग, हवे संग्रामनो तुज संयोग, जय लखमी अथवा देवलोग ॥ अप्सरा साथें रे शोक्यपणुं मुज थाय, कोइ कहे एहवुं रे पण मुज दुःख नही कांय, पण जयलखमी रे थाय तो अति सुखदाय ॥ द० ॥ ३ ॥ कोइ कहे जाउं हुं तब तेह, बोली शुं जूठुं कहो एह, नवि निकलियो तुं कदी रेह, नीकलीश नाहीं रे माहरा हृदयथी दूर, तुं मुज राखे रे ताहरा हृदय हजूर, तो संग्रामें रे अडियो होये नरपूर ॥ द० ॥ ४ ॥ नमिभ्र कटाक्ष लूंबे जे नाह, ते मुजथी अधिको किण राह, मुजथी अधिको जयश्रीनाह, जग सहु बोले रे जेहनी कीर्त्ति अथाह,ते सुखें लावो रे मुजनें हर्षे उत्साह ॥ मुज पण तेहशुं रे प्रीति धरणनी ठे चाह ॥ द०॥ ५ ॥ आलिंगन देतां कहे कोय, हमणां स्नेह देखावो सोय, जयलखमी वरशो जब तोय, अप्सरा अथवा रे मलशे तुमनें जेवार, खबर ते पडशे रे स्नेहनी तुमची तिवार, साहमुं जोशो रे के नहीं जोशो किवार ॥ द० ॥ ६ ॥ गज कुंनस्थल मोती स्वामि, तुज जयलखमी केरे गाम, स्वस्तिक पूरणनुं मुज काम, लावजो तेणें रे कोइक बोले ए रीति, तो मुज रहेशे रे तुमशुं जनमनी प्रीति, नहींतर रहेशे रे माहारुं मदे एं नित्य नित्य ॥ द० ॥ ७ ॥ इत्यादिक कहेती जे नारि, तेहनें आश्वासना

री॥ सिंहवीर हो महासिंह सिंहास्त्र के, सिंहकेतु जीते अरी॥ १२॥ सिंहमाली हो सिंहकेतन नृप के, नृसिंह सिंहसेन शूरथी॥ चाले रणमां हो सिंहवाहन एह के, साज लेइ संपूरथी॥ १३॥ व्याघ्रमाली हो महा व्याघ्र व्याघ्रास्य के,व्याघ्रविक्रम चाले हवे॥ व्याघ्रसेन हो वाघें चढया एह के, एक एकथी विरुदें स्तवे॥१४॥ शार्दूलो हो हरिशार्दूल नाम के॥ शार्दूलानंद सोहामणा॥ शार्दूलानन हो शार्दूलें चढया जेह के, कदीय न थायें दियामणा॥ १५॥ शार्दूलविक्रम हो चढीया शार्दूल के, केइ चढीया महा अही॥ अष्टापदें हो केइ वाहन वराह के, केइ पाम्हे चढयो ऊक नहीं॥ ॥ १६॥ विविध वाहनें हो विविध हथियार के, विविध चिन्हथी चालीया॥ कोडयो गमे हो पायक नरराय के, उत्सुकता रणे म्हालीया॥ ॥१७॥ परवरियो हो खेचर चक्री राय के, मदथी अशकुन नवि गणे॥ सेनानो वली हो कोलाहल नाद के, तूरनो पोहोतो गयणांगणे॥१८॥ पुर सीमायें हो उतरीया आय के, कुमर सैन्यनें ढूकडा॥ जाणी कुमर हो खेटचक्री सचक्र के, न खसे रणें यदि टूकडा॥ १९॥ कुंवर कटकें हो मल्या खेचरवृंद के, अक्षोहिणी शत मित्त मल्युं॥ चक्रीनें हो एक सहस ते जाण के, अक्षोहिणी माणज कल्युं॥२०॥ यतः॥ सेना चा क्षोहिणी नाम, खागाऽष्टैकद्विकैर्गजैः २१८७० रथैश्वै २१८७० न्योहयैस्त्रिघ्नैः, ६५६१० पंचघ्नैश्च पदातिभिः १०९३५०॥ पूर्वढाल॥ सहस एकवीश हो आठशें सित्तेर के, हाथीनें रथ वर कह्या॥ सहस पांशठ हो छशें दश थाय के, त्रिगुणा हय चरित्रें लह्या॥ २१॥ एक लाखनें हो त्रणशें नव सहस के, पंचास पायक जाणीयें॥ अक्षोहिणी हो एकनुं परिमाण के,पंच गुणा मन आणीयें॥ २२॥ बे कोडिनें हो वली लाख अढार के,सीत्तेर सहस उदर वली॥ गजनें रथें हो सरिखा दोय होय के,तुरग सुणो कहे केवली॥२३॥ छ कोडिनें हो छप्पन वली लाख के, दश हजार चक्री तणा॥ दश कोडीनें हो साडी त्राणुं लाख के, जाणो ए पायक जना॥२४॥ खंड आठमे हो आठमी वर ढाल कें, सांभलो पद्मविजय कही॥ श्रीजयना हो रासमां नवि लोक के, सम्यक रीतें सद्दही॥ २५॥ सर्वगाथा॥ २४५॥

॥ दोहा॥

॥कलकल शब्द ते सांभली, रवि रथ हय लह्या त्रास॥ पश्चिम समुद्र

थाउ रे कर्मशत्रु जय काज, मोह नृप जीतो रे पहेरी चारित्र साज, जीती ने पामो रे नविजन शिवपुर राज ॥ १७ ॥ सर्वगाथा ॥ २६७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वज्रसदृश सन्नाहथी, गजकर परिवृत सार ॥ घूघरी चिहुं दिशि घमकती, पाखर अतिशय फार ॥ १॥ मदिरा पाइ बनमत्त कस्या, शुंडामां दीया तास ॥ मोघर नाला प्रमुख जे, उलाले आकाश ॥ २ ॥ दंतूशलें वांध्यां खड्ग, लोह पंजर बिहु पास ॥ तेहमांहे धनुर्धर रह्या, वड शाखायें अहि राश ॥ ३ ॥ सन्नध्दमहावत उपरें, वेग सोहे जास ॥ पक्षवंता पर्वत शिरें, वेग गरुड संकाश ॥ ४ ॥ पगमां नेउर खणखणे, घंटाना टणकार ॥ करता गुलगुल शब्दनें, सिंदूरें शणगार ॥ ५ ॥

॥ ढाल दशमी ॥ तुंगिया गिरिशिखर सोहे ॥ ए देशी ॥

॥ सुनट एणीपरें करे सजाइ,पाखस्या तेम तुरंग रे ॥ अश्ववार युत मानु गोविंद, गरुड चडियो रंग रे ॥सुन०॥१॥ उछलता पाखस्या दीसें,सायर जेम कल्लोल रे॥नलिनीदल सेवाल संयुत,उछले अति लोल रे ॥सु०॥२॥ गुलगुले गजतुरग हेषे, सन्नध्द करता जाम रे ॥ शकुन मानी गज तुरंगनें,पूजे आदरें ताम रे॥सु०॥३॥ रथवरा वलीकरे वर्मित, मानुं क्रीडा गेहरे ॥ जय श्रीने खेलवाने, दृढकरे घनस्नेह रे ॥४॥ सारथीनें केइ आपे, निज अधिक सन्नाह रे ॥ रथिक युध्दें तेह थाशे, साखीया उछाह रे ॥सु०॥५॥ बकतर मांहे तनु न मायें, संगरनें उठरंग रे ॥ आप वाहन सज्ज करता, विविध मननें उमंग रे ॥ सु० ॥ ६ ॥ स्तंन ध्वजना दृढ करे केइ, निजनिज वाहनें धारिरे ॥ महासुनट हुं प्रगट करवा, ते ध्वज वहु परकार रे ॥सु० ॥ ७ ॥ विविध शस्त्रें रथ नरे नट, रणमां संबल एह रे ॥ चंट बक्तरें नरे केइ, आप वारण तेह रे ॥ सु० ॥ ८ ॥ केइक कंकट नवि पहेरे, नहीतो आवे कलंक रे ॥ वीराधिवीरपणुं रहे नही, एहवी धारी शंक रे ॥ सु०॥९॥ केइ शूरा शस्त्र मूके, मन धरी अनिमान रे ॥ पाहु मुष्टि प्रमुखें लडशुं,साहमा वीर समान रे ॥ सु०॥ १०॥ पखालो जल नरी चाले, प्रपा चालती तेह रे ॥ खाद्य प्रमुखें शकट नरियां, क्षुधित देवा जेह रे ॥ सु० ॥ ११ ॥ औषधि नृत घूंणि लेवे, केइ पर उपकार रे ॥ उत्सुकता ठे पण न चूके, विवेकी कोइ वार रे ॥ सु०॥१२॥ नाटकिया परें शस्त्रधारि, पूंठ अरिनें दीध रे ॥

देइ सार,मह्हा उत्साह ते धरी अपार, जस करी आगें रे नीकल्या शकुन विचार, नारी रूपें रे श्रीजयानंद कुमार, हवे करे रातें रे रणना बहु उप चार ॥ द० ॥ ८ ॥ पवनवेग सुत जे वज्रवेग, सहु खेचर अनुमति सुविवेक, सेनानी थापे वडवेग ॥ वेहु दलमांहे रे शस्त्र जागरिकायें धीर, शस्त्रनें पूजे रे पूर्वे थया वडवीर, जेहनी करे वातो रे जेणें उतार्या अरिनीर ॥ द० ॥ ९ ॥ संग्राममें शस्त्रज परधान, तेणें शस्त्र थापे पट्टनें थान, चक्र खड्ग धनु वज्र स मान, त्रिशूल कुंता रे तोमर मह्लिका सीर, परशुने शक्ति रे नल्लिका धरे व डवीर, नडमाल नामे रे मुष्टि अर्थ गंनीर ॥ द० ॥ १० ॥ त्रुशने छुरिका मूसल नाम, पाश गदा तरवार उद्दाम, घन पट्टिश मुजर अनिराम, डुस्फो ट त्रुटि रे करवालिकानें कुदाल, शंकुनें गुलिका रे कणय कंपन्न सुविशाल, अह गोफणनें रे कर्त्तरी जेह कराल ॥द०॥११॥ परपत्रक यष्टि अनिधान, ए उत्रीश आयुध बहु मान, पवित्र जलें करावता स्नान,चंदन लीपे रे अरचे पुष्पनी माल, धूप उखेवे रे गीत नाटक सुरसाल, वली तस प्रणमे रे स मरे तस रखवाल ॥ द० ॥१२॥ बकतर टोप प्रमुख जे होय,तस संस्का र करे सहु कोय, रात वोलावी एणी परें जोय,मित्र जाणीनें रे कौतुक जो वानें काज,उदयाचलनें रे शिर आव्यो दिनराज, शूरनें देखी रे, शूर थयां अति प्राज ॥ द० ॥१३॥ नेरी मादलनें कंसाल, तलिमा नंना ढक्का ना ल, हुडुक्क मृदंग वाजित्र संनाल, शंखनें कालहा रे जह्लरी पडह प्रकार,ख रमुखी करटी रे डमरुक नानक श्रीकार, दर्दरी वाजे रे त्र्यंबक प्रमुख उदा र ॥ द० ॥ १४ ॥ दोय दलमां एम वाजे तूर, सांनली वाधे सुनटनें शूर, सायर खोनाणो मानुं क्रूर, वज्जें हणीयो रे पर्वतनो जेम नाद,जलजीव त्रा गा रे नाग गज उनमाद, परवत कंप्या रे शलशल्या शेष अविवाद ॥द०॥ ॥ १५ ॥ कह्नप दृढ थइ पृथिवी नार, पूठें धरता कष्टें तिवार, दशदिशा गा ज रही नयकार, गिरिगुफा गाजे रे फूटे मानुं आकाश, सिंह ते पेसे रे दरी मांहे लही त्रास, दूरें पेगा रे महोरग ढांकी आवास ॥द०॥१६॥ वननेसा ते नागा जाय,नांजे वृक्षतणा समुदाय, सुरगण जोवानें तिहां आय, नादें दीप्या रे सुनट ते रण करणाय, उत्साह पामी रे दोय दलना सहु थाय, क्षण क्षण वाधे रे सुनटनें हर्षे न माय ॥ द० ॥१७ ॥ आठमे खंडें नवमी ढाल, नांखी पद्मविजय सुरसाल, जेम ए सुनट थया उजमाला, तेम तुमें

थाउ रे कर्मशत्रु जय काज, मोह नृप जीतो रे पहेरी चारित्र साज, जीती ने पामो रे नविजन शिवपुर राज ॥ १८ ॥ सर्वगाथा ॥ २६८ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वज्रसदृश सन्नाहथी, गजकर परिवृत सार ॥ घूघरी चिहुं दिशि घमकती, पाखर अतिशय फार ॥ १॥ मदिरा पाइ उनमत्त कर्या, शुंमामां दीया तास ॥ मोघर नाला प्रमुख जे, उलाले आकाश ॥ २ ॥ दंतूशलें बांध्यां खड्ग, लोह पंजर बिहु पास ॥ तेहमांहे धनुर्धर रह्या, वड शाखायें अहिराश ॥ ३ ॥ सन्नद्धमहावत उपरें, वेग सोहे जास ॥ पक्षवंता पर्वत शिरें, वेग गरुड संकाश ॥ ४ ॥ पगमां नेउर खणखणे, घंटाना टणकार ॥ करता गुलगुल शब्दनें, सिंदूरें शणगार ॥ ५ ॥

॥ ढाल दशमी ॥ तुंगिया गिरिशिखर सोहे ॥ ए देशी ॥

॥ सुनट एणीपरें करे सजाइ,पाखर्या तेम तुरंग रे ॥ अश्ववार युत मानु गोविंद, गरुड चडियो रंग रे ॥सुन०॥१॥ उछलता पाखर्या दीसे,सायर जेम कल्लोल रे॥नलिनीदल सेवाल संयुत,उछले अति लोल रे ॥सु०॥२॥ गुलगुले गजतुरग हेपे, सन्नद्ध करता जाम रे ॥ शकुन मानी गज तुरंगनें,पूजे आदरें ताम रे ॥सु०॥३॥ रथवरा वलीकरे वर्मित, मानुं क्रीडा गेहरे ॥ जय श्रीने खेलवाने, दृढकरे घनस्नेह रे ॥४॥ सारथीनें केइ आपे, निज अधिक सन्नाह रे ॥ रथिक युद्धें तेह थाशे, साखीया उछाह रे ॥सु०॥५॥ बकतर मांहे तनु न मायें, संगरनें उछरंग रे ॥ आप वाहन सज्ज करता, विविध मननें उमंग रे ॥ सु० ॥ ६ ॥ स्तंन ध्वजना दृढ करे केइ, निजनिज वाहनें धारिरें ॥ महासुनट हुं प्रगट करवा, ते ध्वज बहु परकार रे ॥सु० ॥ ७ ॥ विविध शस्त्रें रथ नरे नट, रणमां संबल एह रे ॥ उंट वक्तरें नरे केइ, आप वारण तेह रे ॥ सु० ॥ ८ ॥ केइक कंकट नवि पहेरे, नहीतो आवे कलंक रे ॥ वीराधिवीरपणुं रहे नही, एहवी धारी शंक रे ॥ सु०॥९॥ केइ शूरा शस्त्र मूके, मन धरी अनिमान रे ॥ पाहु मुष्टि प्रमुखें लडशुं,साहमा वीर समान रे ॥ सु०॥ १०॥ पखालो जल नरी चाले, प्रपा चालती तेह रे ॥ खाद्य प्रमुखें शकट नरियां, क्षुधित देवा जेह रे ॥ सु० ॥ ११ ॥ औषधि नृत घूंणि लेवे, केइ पर उपकार रे ॥ उत्सुकता उे पण न चूके, निवेकी कोइ वार रे ॥ सु०॥१२॥ नाटकिया परें शस्त्रधारि, पूंउ अरिनें दीध रे ॥

देइ सार,महा उत्साह ते धरी अपार, जस करी आगें रे नीकल्या शकुन विचार, नारी रूपें रे श्रीजयानंद कुमार, हवे करे रातें रे रणना बहु उप चार ॥ द० ॥ ७ ॥ पवनवेग सुत जे वज्रवेग, सहु खेचर अनुमति सुविवेक, सेनानी थापे वडवेग ॥ वेहु दलमांहे रे शस्त्र जागरिकायें धीर, शस्त्रनें पूजे रे पूवैं थया वडवीर, जेहनी करे वातो रे जेणें उताखां अरिनीर ॥ द० ॥ ए ॥ संग्राममें शस्त्रज परधान, तेणें शस्त्र थापे पट्टनें थान, चक्र खड्ग धनु वज्र स मान, त्रिशूल कुंता रे तोमर मद्गिका सीर, परशुने शक्ति रे नलिका धरे व डवीर, नडमाल नामे रे मुष्टि अर्थ गंनीर ॥ द० ॥ १० ॥ नुशने छुरिका मूसल नाम, पाश गदा तरवार उद्दाम, घन पट्टिश मुजर अनिराम, डुस्फो ट लुटि रे करवालिकानें कुदाल, शंकुनें गुलिका रे कणय कंपन्न सुविशाल, अह गोफणनें रे कर्त्तरी जेह कराल ॥द०॥११॥ परपत्रक यष्टि अनिधान, ए बत्रीश आयुध बहु मान, पवित्र जलें करावबा स्नान,चंदन लीपे रे अरचे पुष्पनी माल, धूप उखेवे रे गीत नाटक सुरसाल, वली तस प्रणमे रे स मरे तस रखवाल ॥ द० ॥१२॥ बकतर टोप प्रमुख जे होय,तस संस्का र करे सहु कोय, रात बोलावी एणी परें जोय,मित्र जाणीनें रे कौतुक जो वानें काज,उदयाचलनें रे शिर आव्यो दिनराज, शूरनें देखी रे, शूर थया अति नाज ॥ द० ॥१३॥ नेरी मादलनें कंसाल, तलिमा नंना ढक्का ना ल, हुरुक्क मृदंग वाजित्र संनाल, शंखनें कालहा रे जल्लरी पडह प्रकार,ख रमुखी करटी रे मममरुक नानक श्रीकार, दर्दरी वाजे रे त्र्यंबक प्रमुख उदा र ॥ द० ॥ १४ ॥ दोय दलमां एम वाजे तूर, सांनली वाधे सुनटनें शूर, सायर खोनाणो मानुं क्रूर, वज्रें हणीयो रे पर्वतनो जेम नाद,जलजीव त्रा सा रे नाग गज उनमाद, परवत कंप्या रे शलशल्या शेष अविवाद ॥द०॥ ॥ १५ ॥ कछप हढ थइ पृथिवी नार, पूठें धरता कष्टें तिवार, दशदिशा गा ज रही नयकार, गिरिगुफा गाजे रे फूटे मानुं आकाश, सिंह ते पेसे रे दरी मांहे लही त्रास, दूरें पेठा रे महोरग छांमी आवास ॥द०॥१६॥ वननेसा ते नाठा जाय,नांजे वृक्षतणा समुदाय, सुरगण जोवानें तिहां आय, नादें दीप्या रे सुनट ते रण करणाय, उत्साह पामी रे दोय दलना सज्ज थाय, क्षण क्षण वाधे रे सुनटनें हर्षे न माय ॥ द० ॥१७॥ आठमे खंमें नवमी ढाल, नांखी पद्मविजय सुरसाल, जेम ए सुनट थया उजमाला, तेम तुमें

बाण तूंणीर अक्षय बिहु दिश धरे, वज्र पृष्ट धनुष सव्य पाणि धारे ॥ अंजन गिरि समा गजवर उपरें, इंद्रसम सोहतो सुतिथि वारे ॥ श्री०॥ ४ ॥ पांच शे शूर स्त्रीवेपथी तेणी परें, थइ सुसन्नद्ध गजवर आरोहे ॥ सुभट वर विकट कोडथो गमे चिहुं दिशें, परिवस्यो मानुं प्राकार जोहे॥ श्री० ॥ ५ ॥ विचित्र वाहनें रह्या विविध आयुध धरा, विचित्र ध्वजधारका सैन्य राजा ॥ कुमर नरराय ते सर्वशुं परिवस्या, सोहता शूर जेम तेज ताजा ॥ श्री० ॥ ॥ ६ ॥ मेरु गजदंत मुख अचलथी परिवस्यो, अहव भद्रशालवनथी विराजे ॥ तेणी परें कुमर नरराय खगरायशुं, चिहुं दिशें परिवस्यो परम राजे ॥ श्री०॥ ७॥खेट चक्रायुधो चक्री पण श्रावको,श्रीवीतरागनी पूज करतो, नमन स्तवना विधियें करी जिनतणुं,जिनपणुं याद करी ध्यान धरतो॥खेट०॥८॥ ए आंकणी ॥ दीप्रशिरस्त्राण सन्नाह मणि जडित ते, पहेरीयो राहु ग्रया मां चंदो ॥ तेणी परें दीपतो गर्वें करी जीपतो, इंद्रनें चंद्र रवि कुण नागिंदो ॥ खेट० ॥ ए ॥ पार्श्वद्वय सोहतां, बाण भाथे करी, हाथमां धनुष संग्राम सजीयो ॥ श्वेत सामज चढ्यो मानुं अहिरावणें, एह देखीनें मांहेंद्र लजीयो ॥खेट०॥१०॥ कुमर सन्नद्ध थइ विविध वर वाहनें, परिवस्यो तरुवरो जंबू जेम, जंबूवलयें करी सहसगमे कुमरथी, परिवस्यो वीर लखोयें तेम ॥ खे०॥११ ॥ सैन्य चतुरंग संग्राममां सज्ज थइ, वींटीयो जंबूमध्य मेरु रीतें ॥ अहव सायरपरें हय गय जलचरा, चिहुं दिशें नीर कल्लोल नीतें ॥ ॥खे०॥१२॥खेट चक्री यथा श्रीजयानंद तथा,निज निज सैन्य परिवार जुत्ता ॥ दोय तेम दीपता धातकी खंडमां, दोय मेरु निज वन संजुत्ता ॥ खेट चक्री यथा० ॥ ए आंकणी ॥१३॥ कल्पतरुनी परें दान दीये याचकां, सूर्य परें सर्वनां तेज लोपे ॥ निज निज सुभटशुं दृष्टि दीये स्नेहथी, शत्रुनें देखे कल्पांत कोपे ॥ खे० ॥ १४ ॥ महापराक्रमी गणे शत्रुनें तृण परें, शत्रुनें हरिपरें क्रूर नयणें॥छत्रधारीजते चामरें वीजतें, सैन्यमां एम कहे सुणत सयणें ॥ खे० ॥ १५ ॥ आठमे खंड अग्यारमी ढाल ए, श्रीजयानंदनें रास भाषी ॥ पद्मविजयें भली भविजने सांभली, विशद परें कौतुकें चित्त राखी ॥ खे० ॥ १६ ॥ सर्वगाथा ॥ ३१५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ निज निज सैन्यमां एहवो, करता वेहु संकेत ॥ युद्ध करे नहीं तेह

आपकुलमां अजस आप्यो, जनम लही शुं कीध रे ॥ सु० ॥१३॥ तीरथ संगर समुं नाही, जीवतां जस श्री आय रे ॥ मूआं स्वर्ग लहे तेणे करी, ए सम तीरथ न पाय रे ॥ सु० ॥१४॥ दीपे क्षणएक रयणी दीवो, रवि दिनें विधु राति रे ॥ संग्राममें जश जेह पाम्यो, युग लगें कीर्ति अमात रे ॥सु०॥ ॥१५॥ शत्रुजय करतां तुमारा, विघन थाशे दूर रे ॥ वैतालिक एम बिरुद बोले, दान दीये तस पूर रे ॥ सु० ॥ १६ ॥ एम वैतालिक वाणी सुणतां, पूज्यनी आशीष रे ॥ शुकन रूडे हरषिया ते, द्विगुण उत्साह जगीश रे ॥ सु० ॥ १७ ॥ हवे श्रीजयानंद केरा, कटकमां नट जेह रे ॥ संग्राममें वजमालनां कहुं, नाम सुणजो तेह रे ॥ सु० ॥ १८ ॥ ढाल दशमी पद्मविजयें, नाखी ए मनोहार रे ॥ आठमे खंमें रामगिरिमां, सांजलतां जयकार रे ॥ सु० ॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥ २९२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ वज्रवेगना सैंन्यमां, रण रसीया महावीर ॥ सिंह युक्त रथमां रह्या, सहसगमे अतिधीर ॥ १ ॥ व्याघ्र रथें बेठा थका, बलगर्वित योधार ॥ चंडोदय मुख खेचरा, रणमां करे अवतार ॥ २ ॥ गज रथ बेसी नीकल्या, पवनवेगादिक राय ॥ गणता तृणपरें शत्रुनें, सेनानीनो ताय ॥ ३ ॥ तुरग रथें बेठा थका, जोगरत्यादिक नृप ॥ रथ शस्त्रें पूरया घणुं, चाल्या मन धरी चूंप ॥४॥ श्रीधर श्रीपति अरिजयो, कांत दत्तनें नंद ॥ विक्रम जय अपराजिता, अजित तथा आनंद ॥५॥ मणिचूडनें नरव्याघ्र तेम, अचल प्रमुख राजान ॥ गज बेसी सन्नद्ध थइ, मन धरता अजिमान ॥ ६ ॥ गज वाजि हरि व्याघ्र तेम, शार्दूल महीषनें नाग ॥ लक्षोगमे निज वाहनें, खेचर नृप महाजाग ॥ ७ ॥

॥ ढाल अगीआरमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ श्रीजयानंद आनंदमां जगजयो, जामिनी रूपथी शत्रु धूजे ॥ स्नान करी धौत धरी नमन वंदन करी, मोदथी श्रीजिनराज पूजे ॥ श्रीजया०॥१॥ इष्ट परमेष्टि संजारी नवकारनुं, ध्यान धरी हृदयमां लीन थावे ॥ वज्र सन्नाह उत्साहथी पहेरीयो, सर्वदिश मणिय जास्वर सोहावे ॥ श्री० ॥ २ ॥ दीप्त मणि लोह वेष्टित शिरस्त्राणजे, शिर धरे मेरूपरें शृंग सोहे ॥ मेघथी परिवर्यो वीजली सहित मानुं, देखतां सुजटनां चित्त मोहे ॥ श्री० ॥ ३ ॥

णजे, मूक आयुद्ध कहुं एह गूढ ॥ सु० ॥ १० ॥ कहे प्रतिपक्षी तव वच नें शुं राचतो, निज करें आप पराक्रम देखाउ ॥ रूशीयो तुम यमराय एम जणायें, तुम निलाडे विधि एम लखाउ ॥ सु० ॥ ११ ॥ बाण धोरणी तिहां विस्तरी चिहुं दिशें, विचित्र आयुध वरसे तिवारें ॥ पवनथी पक्षीपरें विविध आयुध चले, गगनें मारग जतां कोण वारे ॥ सु० ॥ १२ ॥ गगन ज्रमी वृक्ष उपर पडे पंखीया, वीर उपरें पडे तेम शस्त्र ॥ बाणमय खड्ग मय कुंत गदा चक्रमय, शूलमय शक्तिमय कहीक अस्त्र ॥ सु० ॥ १३ ॥ विविध शस्त्रें तदा घोर संगर थयो, केलि कंडुक परें सुजट पडिया ॥ जूमें आलोटता किहांये मातंग तेम, किहांयक तुरग जमराय नडिया ॥ सु० ॥ १४ ॥ शीर्षनें हस्त पादादि कहीं रडवडे, शत्रु हणवा केइ सैन्य पेसे ॥ जग्नरथें कुसुमनी वृष्टिपरें करी तणा, कुंज जेद्याथी मानुं मोती वरसे ॥सु०॥१५॥ कौतुकी व्यंतरा ज्रमत गगनें फरे, वाजते डमरुकें खेत्र पाला ॥ डाकिनी शाकिनी काकिनी हासिका, कौतुकें केली करती उत्ताला ॥ सु० ॥ १६ ॥ विचित्र रूपें कर ताल देती थकी, योगिणी कौतुकें नाच करती ॥ विकट अट्टाट्टहासें मांस अर्थणी, राक्षस राक्षसी गगन फिरती ॥ सु० ॥ १७ ॥ आमिषगिरधरा गृध्रवर पंखीया, शत्रुशालापरें चिहुंदिशि फिरंता ॥ कुमर कृपानिधि देखी जट तुरग मुख, शस्त्र पीडित तणे करुण करता ॥ सु०॥१८॥ औषधी नीर देइ मोकले खेचरा, सज्ज करें दोय सैन्ये ते नीरें ॥ द्विगुण उत्साहथी तेह फरी जूऊता, काल अनादि अन्यास पीरें ॥ सु० ॥ १९ ॥ पूर्व अन्यासथी विरमें नहीं प्राणिया, कोह अजिमानीउ सुलज एह ॥ धिक् पडो कर्मनें धिक् हो संसारनें, जो करे धर्ममां चित्त रेह ॥ सु० ॥ २० ॥ तो कोण कर्मने कोण संसार ठे, अहव अशुजोदयें मरण पामे ॥ केइ पराजव लहे अंगक्षय केइ लहे, पाप परजावथी सुक्ख वामे ॥ सु० ॥ २१ ॥ घोर रणमांहे पण केइ अक्षत रहे, पुण्यथी जयपताका वरंत ॥ ढाल ए बारमी आठमा खंडमां, जाखी पद्में जय जय करंता ॥ सु० ॥ २२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ केइक पूर्वज निज तणा, तेहना जयनें काम ॥ केइक उरणीआ थवा, निज स्वामीनें नाम ॥ १ ॥ क्रोध अमर्ष अजिमानथी, विविध आयुधना धार ॥ युद्धकरण उठया फरी, डुर्द्धर विविध प्रकार ॥ २ ॥

ने, मारवो नहीं कोइ हेत ॥ १ ॥ वली जे शस्त्र मूकी दीये, अथवा दीन जे होय ॥ अथवा नासतो ने पडघो, तेह न मारशो कोय ॥ २ ॥ समपंक्ति सहुयें रह्या, लही निजस्वामि आण ॥ दुर्द्धर वाजित्र नादथी, सैन्य प्रेरणा जाण ॥ ३ ॥ वाजि क्रम गदा घातथी, पृथिवी नार नराय ॥ शेष नागमां फण सहस, तेहनें पीडा थाय ॥ ४ ॥ कच्छप पृष्ठ कठिन घणुं, प्राणनो संश य तास ॥ दाढ वराहनी दृढ घणी, पामी पीडा राश ॥ ५ ॥ अपूरव संगम जाणीनें, मांहो मांहे मलवा धाय ॥ पूर्वापर सायर परें, एम सहु उत्सुक थाय ॥ ६ ॥ कोइ उत्सुकतायें करी, सहुथी आगल जाय ॥ वाले पाछो तेहनें, प्रतिहारज तवकाय ॥ ७ ॥

॥ ढाल बारमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ सुभट वर विकट कंकट धरी मोदशुं, एक एक आगलें ते उजाये ॥ रेणु पण आगलें सहुथकी दोडती, शत्रुनें अंधपणुं करत प्राये ॥ सु० ॥ १ ॥ चिन्ह हरि करि कपि मेष डुम शिखि तणा, उलखी दूरथी देखी तेह ॥ नाम पूर्वक वरे ते एक एकनें, कीर्त्ति जस पामशुं मारी एह ॥ सु० ॥ २ ॥ काल बहुथी मल्या बांधवनी परें, एक एक शत्रु आह्वान करता ॥ अग्रसे नानी बेहु मांहोमांहें मल्या, मान वश अमरष बहुत धरता ॥ सु० ॥ ३ ॥ पांखवंता गिरिवर समा करिवरा, तुरग ते पाखर्या गुरुड जेम ॥ न्याय युद्धें लडे साहाम साहामा समा, गज तुरग रथ सुभट लडत तेम ॥ सु० ॥ ४ ॥ भूरिरण तूर ढक्का हुडुक्का वली, काहला प्रमुख भंभानें भेरी ॥ तास पडछं दथी गिरि गुफा गाजती, बधिर होवत महा कर्ण सेरी ॥ सु० ॥ ५ ॥ प्रेत जेम मांस भक्षण होये उत्सुका, विविध आयुध धरी वीर धावें ॥ विघन अम मत करो रेणुए संगरें, गज मदें भानु तेहनें समावे ॥ सु० ॥ ६ ॥ कोटिगमे सुभट आव्हान परस्परें करे, जेम भुजास्फोट गजगाज होते ॥ क्रोध आमर्ष दुर्धर्ष भीषण रवें, हेयहेषारव तणा शब्द जोते ॥ सु० ॥ ७ ॥ रथ घणत्कार धनुना टणत्कार जे, खड्ग खाट्कार अट्टहासें ॥ तूरनादे गिरि दरि पडछं दथी, स्फोट ब्रह्मांड सरिखो प्रकाशें ॥ सु० ॥ ८ ॥ जगतनें क्षोभना तेह थी उपजे, कौतुकि जननें आव्हान करता ॥ विविध शब्दें करी, गगन पृ थिवी भरी, जय जय शब्दथी सैन्य फरता ॥ सु० ॥ ९ ॥ आवरे आव उभो रहे रहे इहां, नाशिरे नाशि वहेलो रे मूढ ॥ जूज वहेलो थइ हण्यो हण्यो जा

॥ दोहा ॥

॥ निद्रा सुनट आलिंगीनें, सुखमां करे विलास ॥ रण चिंता शोकज म
नी, तव थयो निद्रा नाश ॥ १ ॥ रण कौतुकीने विघन किम ॥ करियें एम
विचार ॥ पूर्ण कौतुक देखाववा, क्षणदा गइ निरधार ॥ २ ॥ कोण नाठा
कोण जय लह्या, मरण लह्या कोण जीव ॥ उदयाचलें रवि देखवा, आ
व्यो मानुं अतीव ॥३॥ पूरवपरें रण तूर वली, वाज्यां कटकें दोय ॥ महा
उत्साहें उनय ते,रण करवा सज्ज होय ॥ ४ ॥ दोय सेनानी आगल रह्या,
दोय नायक विचमांह ॥ पूर्वपरें मलिया बेहु, धरता अति उत्साह ॥५॥

॥ ढाल चौदमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ बाण विन्नाण महा जाण जे नूवि सुनट, बाणथी तेणें आकाश न
रीयो ॥ काल कल्पांतें मानुं पक्षवंता अही, केइ बाणे रिपु नेद करीयो ॥
॥ बा० ॥ १ ॥ केइ संधा धरे एक शस्त्रज तणी, तेणे गदा मुजर चक्र हणि
या ॥ अहो बली एक बाणे करी शत्रुनां, आवतां शस्त्र मनमां न गणीयां
॥ बा० ॥ २ ॥ बाणें करी शस्त्र सघलां हण्यां शत्रुनां, शत्रु तेहथी उदवे
ग पामे ॥ शस्त्र लेइ मुकवा शक्ति नांही रही, केइ धमता रहे क्रोध धा
में ॥ बा० ॥ ३ ॥ केइ व्याकुल थका शस्त्र लेइ नवि शके, वदनमां तरणां
देइ तेह वेसे ॥ केइ बाणे समपंक्ति स्थित बहु हणे, वाहण हय गज प्र
मुख नूधन पेसे ॥ बा० ॥ ४ ॥ केइ शर शत्रु छेदे निज शरें करी, तेहनां
चाप छेदी ते हणता ॥ वादि प्रतिवादि जेम तर्कशास्त्रें हणे, वादीने उक्ति
प्रयुक्ति नणता ॥बा०॥५॥ वीर धोरी केइ निज कलायें करी, बाणे शत्रु ह
णी गगनें जाये ॥ कष्टथी सुर असुर त्रास पामी करी, नासता चित्त भ्रम
भोल थाये ॥ बा०॥ ६ ॥ सुनट शिर वीर बाणे हण्यां उछले, राहु मानुं देव
स्त्री वदन चंद ॥ देखी ग्रसवा नणी जाय आकाशमां, नीती लहे देव ना
रिनां वृंद ॥ बा० ॥ ७ ॥ केइ बाणें वपु चिहुं दिशें परिवखुं,वेगें उछलता मा
नुं पांख आवी ॥ स्वर्गमां जायवा एह उद्यम करे, वात ए सहु तणे चित्त नना
वी ॥ बा० ॥ ८ ॥ बाण करिवर तनु चिहुं दिशें वलगीयां, शैलेंड्रो सहित चा
लंत दीसे ॥ अहव रुधिर स्रवत निर्झरणां झरे,गिरिवरा सोहता गेरु मि
सें ॥ बा० ॥ ए ॥ पूर्वना नयथकी चक्रीना खेचरा, वरसता विविध आयुध
समीपें ॥ समुद्रवेलायें जेम वेग नदी उसरे, तेम कुमर सैन्य नागुं प्रतापें ॥

॥ ढाल ॥ तेरमी फडखानी देशीमां ॥

॥शूर वडवीर माहाधीर उठ्या फरी, सारथी सहित योधारमारे॥हय नवि मारिया चित्त दया धारिया, तेह रथें आप बेसे तैय्यारें ॥ शू० ॥ १ ॥ केइ मर्दें शस्त्र मूकी निज करें करी, दोय शत्रु दोय हाथ जाले ॥ परस्परें तेह आस्फालीनें पारिया, क्रोधथी प्रेतपतिधाम घाले ॥ शू०॥ २ ॥ उपडेने पडे पत्ति जेम कुर्कुटा,परस्परें बाणथी मरण पामे,गर्वथी केइ मदऊरत लेइ हाथिया, गगनें उगाले मानुं मेघगामे ॥ शू० ॥ ३ ॥ जांगी रथचक्र लेइ हाथ मां अरि हणे, चक्री पणजाणे बहु चक्री आया ॥ सुजट उद्नट महा क्रूर पणें देखीयें, चक्रिजट बहुत आश्चर्य पाया ॥ शू०॥ ४ ॥ रणमहा गोरमां कुमर सैन्यें तदा, चक्रीनुं सैन्य अग्रनुं नसाड्युं ॥ वार्द्धिवेला परें उलख्युं तेह पण, जैत्रवाजित्र देवें वजाड्युं ॥शू०॥५॥ तूररणजीतनां कुमर कटकें थयां, जय जयारव करे सुजट सर्व ॥ शूरनिज नामथी शूर पराजव लही, अपर सायर पडे गलित गर्व ॥शू०॥ ६ ॥ मूकी संग्राम सेनापति आणथी, स्वस्व उतारे सहु सुजट आवे ॥ पंखी जेम नीडमां सर्व संध्या समे, कुमर करुणा हवे चित्त लावे ॥ शू० ॥ ७ ॥ कंठगत प्राण जे सुजट हय गय मुखा, सऊ औषधी जलें करे तिवार ॥ पतित रणनूमिमां शस्त्र घातीत थका, शोध तेहनी करावे कुमार ॥ शू० ॥ ८॥ जीवता जाणी दोय सैन्यमां चिन्हथी, स्वपर अविजागथी ते जीवावे ॥ औषधि जल प्रचुर मोकली निज नरें, परोपकृति सऊन मन सोहावे ॥ शू०॥ ९ ॥ कुमर महामहोत्सवें जय जय रव थके, बंदिजन बिरुद बोले विशेषें ॥ कटकमां नृपति स्त्री मंगल गावतां, परिबर्दे आवे आवास देशें ॥ शू० ॥ १०॥ नरेंड् चक्रायुधो शोधि रणनूमिका, जाय परिवारशुं निज उतारे ॥ जीवता शल्यथी व्यथित जे प्राणीया, कुमरजल छांटियुं तेणें तिवारें ॥ आप मंत्रित जल दीध धारें ॥ शू० ॥ ११ ॥ सऊ हूआ सुजट दोय सैन्य तेणे निशि समे, निद्द करता ते विश्राम पामे ॥ योग्य आहारें करी हय गय सुख लहे, तेरमी ढाल एक ही आरामें ॥ आठमा खंम्मां पद्म नामे ॥ शू० ॥ १२ ॥ सर्वगाथा ॥३५७॥ इतिश्री जयानंदराजर्षिचरित्रे चक्रायुध खेटक चक्रवर्त्ती युद्धाधिकारे सामान्यतो युद्धरूपं प्रथमदिनयुद्धं ॥

धनुष लावी नवुं नोगरति केरडुं, छेदियुं धनुष कर्णांत ताणी ॥ वा० ॥ ४ ॥ नोगरति शस्त्र तामस तणुं मूकतो,तेहथी तास अंधार थाय ॥ दिनकर शस्त्रें उद्योत निज सैन्यमां, करीने बाणें करी गगन छाय ॥ वा० ॥ ५ ॥ तेहथी व्याकुलो नोगरति मूकतो, जलधर शस्त्र सैनानी त्यारें ॥ पवन शस्त्रें करी, तेह जलधर प्रत्यें, आप शक्तें करी दूर मारे ॥ वा०॥ ६ ॥ धनुष छेदी वली कवच तस छेदीयुं, बाणे जर्जरित करी नाग पासें॥ बांधीनें पकडी लीयें ताम नृप कुमरने, आव्यो सेनानी वज्रवेग पासे ॥ वा० ॥ ७ ॥ बाणथी ताडीयो हृदयमां पीडियो,नोगरति मूकी क्रोधें नराणो ॥ वज्रवेगशुं लडे दोय सरिखा मल्या, जयसिरि केरडो मन मोलाणो ॥ वा० ॥ ८ ॥ केहनें हुं वरुं एम संशय पडी, एणी परें आवने पण पिछाणो ॥ पवनवेग आवीनें आठे लेइ गयो, कर्मनी वात कोइ निव्र जाणो ॥ वा० ॥ ए ॥ रायनें आगलें ते ठाव्या तव नृपें, छेदीया पाश अहीना ते रायें ॥ गारुडी विद्यायें सऊ औषधि जलें,हाय फरसें अधिक तेज थाये ॥ वा० ॥ १० ॥ पूर्वथी धैर्य उत्साह वधियो घणो, सूर्यकर स्पर्शथी जेम पाषाणा ॥ पूरव पराजव थकी धावीया ते फरी, करण संग्राम खेदें नराणा ॥ वा० ॥ ११ ॥ देखी सेनानी दोय जूऊता सहु जना, निज निज सैन्य सहु युद्ध करता ॥ केइ शर विफल जाये शत्रुशरें खलितथी, धर्म इछा ज्युं अल्प सत्त्व धरता ॥ वा० ॥ १२ ॥ दोय सेनानी हवे जुद्ध करतां थकां, धनुष वज्रवेगनुं शरथी छेदे ॥ नविन धनुषें करी तेह चंद्रवेगनुं, धनुष छेदे शरें धरीय खेदें ॥ वा० ॥ १३ ॥ चंद्रवेग मदथकी नविन धनु लावीनें, क्षुरप्रशस्त्रें वज्रवेग केरो ॥ नांजी रथ पाडी सारथि सिंहनें हणे, जाम वज्रवेग रथ ले नलेरो ॥ वा० ॥ १४ ॥ ताम बाणे वज्रवेगनें ताडियो, लहीय मूर्छा वली जाम मारे ॥ नोगरति ताम आवी अकस्मातथी, चंद्रवेगनें शरें दीये प्रहारे ॥ वा० ॥ ॥१५॥ चक्रीनो पुत्र मणिमाली तिहां आवियो, चक्रीदत्त जलें करी सऊ कीधो ॥ नोगरति लेइ गयो वज्रवेगनें तदा, श्रीजय रायनें सोंपी दीधो ॥ वा० ॥ १६ ॥ छांटी औषधी जलें सऊ कीधो तिहां, नोगरति विणु हवे सात राजा ॥ सात चक्री तणा राजवी मोटका, जीतिया सबल जे तेज ताजा ॥ वा० ॥ १७ ॥ बांधी निज सैन्यमां मोकले तेह नृप, कर्मथी जीत नें हार पामे ॥ शुन अशुन कर्म फल जाणीनें नवि जना, पुण्य करो जे

वा० ॥ १० ॥ भोगरत्यादि आवे तेह देखीनें, रण करण उठीया बाण वर से ॥ तेह अमरष धरी सैन्य सजा जूझता, जाणे सहु एम कह्यो शुं ए क रशे ॥ वा० ॥ ११ ॥ बाणनी श्रेणीथी शत्रुबल ढांकीयुं, गाज वीजें मानुं मेघ चढीयो ॥ केइ ए बाणने सुभट वंचावता, कोइक सन्मुख आइ भि डीयो ॥ वा० ॥ १२ ॥ शत्रुनां वर्म भेदी ते बाणावली, हृदयमां पेसतां तेम जाणो ॥ जेम मिथ्यात्व तृष्णा प्रत्यें छेदता, शुणगुरु गुरु वचन चित्त आ णो ॥ वा० ॥ १३ ॥ बाण कोइ शत्रुने एक दिशें पेलीनें, नीकले अन्य दिशें आरपार ॥ डुष्ट बुद्धिने जेम गुरुवचन नवि टके, कोइनें नवि ठवे खल प्र कार ॥वा०॥१४॥ भोग रत्यादि तृण परें गणे शत्रुनें, चिहुं दिशें प्रलयरज रीति व्यापे ॥ केइ मदसाथ रथ प्रवर भांजे तदा, केइ केतु भुज साथ कापे ॥वा० ॥ १५ ॥ केइ मनोरथ समा मस्तक छेदता, सत्व साथें केइ धनुष भा गे ॥ विक्रम साथ खंमया केइ शस्त्रनें, पार्श्व परें हृदय केइ शूल लागे ॥वा०॥ ॥ १६ ॥ भोगरत्यादि साथें एम जूझता, उसरे चक्री सेना तिवारें ॥ अभ व्य जेम धर्मथी उसरे तेणी परें, चौदमी ढाल ए भांखी प्यारें ॥ आतमे खंम चित्तथी उदारें ॥ वा०॥ १७ ॥ सर्वगाथा ॥ ३८० ॥

॥ दोहा ॥

॥ चंमवेग सेनापति, भट कोडथोंछुं जेह ॥ सिंहयुक्त रथ बेशीनें, अम रषें देखी तेह ॥ १ ॥ सैन्यने धीरज आपतो, उठयो रण संग्राम ॥ भोग रत्यादिकशुं लडे, एहवा नृप उद्दाम ॥ २ ॥ अक्षोभ कासर रमण नृप, मदन तपनने भीम ॥ नाम प्रतापसिंह रथथकी, युद्ध करणनें भीम ॥३॥

॥ ढाल पंदरमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ बाण बहु माण आणी सेनानी हवे, केइनां कर पद भाजें वींधे ॥ केइनां मुख शिर केइनी नासिका, कोइक सुभट प्रतिशत्रु वींधे ॥बा०॥१॥ भोगरतियें सेनाधिपति रुंधियो, चंडबाहु मदनसाथें लागो ॥ रोकीयो तपनने महा बाहुराजीएं, चंडवेग भीमने करिय रागो ॥बा०॥२॥ चंडचूडरायें परताप नें वींटीउ, रत्नचूडें तेअक्षोभ नृप॥ तेम तडितवेग कासर प्रत्यें वलगीयो, रमण चंडाननें करीय चुंप ॥बा०॥३॥ एम नृपति बहु नृप सहामा अडया, सुभटना बाण तेसपें पीधा॥ वीरनां प्राण वायुशी मदशुं भरया, दंशीनें शत्रु अचेत कीधा ॥बा०॥४॥ भोगरति चाप चंमवेगनुं छेदतो, भव्यमिथ्यात्व जेम गुरुनी वाणी ॥

धनुष लावी नवुं नोगरति केरडुं, ठेदियुं धनुष कर्णांत ताणी ॥ वा० ॥ ४ ॥ नोगरति शस्त्र तामस तणुं मूकतो,तेह्थी तास अंधार थाय ॥ दिनकर शस्त्रें उद्योत निज सेन्यमां, करीने वाणें करी गगन ठाय ॥ वा० ॥ ५ ॥ तेह्थी व्याकुलो नोगरति मूकतो, जलधर शस्त्र सैनानी त्यारें ॥ पवन शस्त्रें करी, तेह जलधर प्रत्यें, आप शक्तें करी दूर मारे ॥ वा०॥ ६ ॥ धनुष ठेदी वली कवच तस ठेदीयुं, वाणे जर्जरित करी नाग पासें॥ वांधीनें पकडी लीयें ताम नृप कुमरने, आव्यो सेनानी वज्रवेग पासे ॥ वा० ॥ ७ ॥ वाणथी ताडीयो हृदयमां पीडियो,नोगरति मूकी क्रोधें नराणो ॥ वज्रवेगशुं लडे दोय सरिखा मल्या, जयसिरि केरडो मन मोलाणो ॥ वा० ॥ ८ ॥ केह्नें हुं वरुं एम संशय पडी, एणी परें आवने पण पिठाणो ॥ पवनवेग आवीनें आवे लेइ गयो, कर्मनी वात कोइ निन्न जाणो ॥ वा० ॥ ए ॥ रायनें आगलें ते गव्या तव नृपें, ठेदीया पाश अह्नीना ते रायें ॥ गारुडी विद्यायें सङ्ग औपधि जलें,हाथ फरसें अधिक तेज थाये ॥ वा० ॥ १० ॥ पूर्वेथी धैर्य उत्साह वधियो घणो, सूर्यकर स्पर्शथी जेम पापाणा ॥ पूरव परान्नव थकी धावीया ते फरी, करण संग्राम खेदें नराणा ॥ वा० ॥ ११ ॥ देखी सेनानी दोय जूऊता सहु जना, निज निज सैन्य सहु युद्ध करता ॥ केइ शर विफल जाये शत्रुशरें खलितथी, धर्म इहा ज्युं अल्प सत्त्व धरता ॥ वा० ॥ १२ ॥ दोय सेनानी हवे जुद्ध करतां थकां, धनुप वज्रवेगनुं शरथी ठेदे ॥ नविन धनुपें करी तेह चंमवेगनुं, धनुष ठेदे शरें धरीय खेदें ॥ वा० ॥ १३ ॥ चंमवेग मदथकी नविन धनु लावीनें, क्षुरप्रशस्त्रें वज्रवेग केरो ॥ नांजी रथ पाडी सारथि सिंहनें हणे, जाम वज्रवेग रथ ले नलेरो ॥ वा० ॥ १४ ॥ ताम वाणे वज्रवेगनें ताडियो, लहीय मूर्ठा वली जाम मारे ॥ नोगरति ताम आवी अकस्मातथी, चंमवेगनें शरें दीये प्रहारे ॥ वा० ॥ ॥१५॥ चक्रीनो पुत्र मणिमाली तिहां आवियो, चक्रीदत्त जलें करी सऊ कीधो ॥ नोगरति लेइ गयो वज्रवेगनें तदा, श्रीजय रायनें सोंपी दीधो ॥ वा० ॥ १६ ॥ ठांटी औपधी जलें सऊ कीधो तिहां, नोगरति विणु हवे सात राजा ॥ सात चक्री तणा राजवी मोटका, जीतिया सवल जे तेज ताजा ॥ वा० ॥ १७ ॥ वांधी निज सैन्यमां मोकले तेह नृप, कर्मथी जीत नें हार पामे ॥ शुन अशुन कर्म फल जाणीनें नवि जना, पुण्य करो जे

हथी अशुन वामे ॥ वा० ॥ १८ ॥ चंद्रवाह्वादि ते वीर तेम जूजीया, चक्रीसेना जेम हार पामी ॥ थाक ते देखतां सूर्यनें संक्रम्यो, शांति छेदन तपन स्नान कामी ॥ वा० ॥ १९ ॥ पश्चिम सायरें मानुं श्रम टालीयो, दोय सेनानि निज सैन्य मांहि ॥ आण करे कर्मथी जय पराजय लहे, जाउ सहु निज निज गम ज्यांहि ॥ वा० ॥ २० ॥ मंद उत्साह कांइ सप्त वीर बंधनें, रणधरा छोडीयो सार लीधो ॥ चक्री खेचरचमू जागते पगथ की, जेम तेम रयणी विश्राम कीधो ॥ वा० ॥ २१ ॥ मंगल पाठकें वीर गु ण बोलते, श्रीजयें औषधी नीर लेइ ॥ पूरव परें सज्ज करे सुनट पक्षहं दनें, चक्री पण निज चमूमांहे देइ ॥ वा० ॥ २२ ॥ मदनमुख राजीया औषधी नीरथी, सज्ज करी लोह पिंजरमें घाते ॥ पवनवेग राजीये ते ज वल गाजीयें, रहे सावधान ते सर्व वातें ॥वा०॥२३॥ पनरमी ढाल ए आठमा खंममां, श्री जयानंदना रासमांहि ॥ चरित्रमांहि लही पद्मविजयें कही, नविजनें सर्दही धरि उछांहि ॥ वा० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ४०७ ॥ इति श्रीश्रीजयानंद केवलीचरित्रे द्वितीयदिने नोगरत्यादिसुहृदष्टकादि जयनामा बाणैरेव युद्धाधिकारः ॥

॥ दोहा ॥

॥ जयश्रीयोग्य राजा अछे, युद्धविना नवि तेह ॥ युद्ध अवकाश देवा नणी, उदयाचल रवि एह ॥ १ ॥ मंगल तूरथी जागीया, रणरसीया महा वीर ॥ पूर्वपरें दोय सैन्यना, सज्ज हुआ साहस धीर ॥ २ ॥ निजसेनानी हुकमथी, उतस्या रण करणाय ॥ दोय सेनानां नट वडा, सन्मुख आव्या धाय ॥ ३ ॥ इंधणे अगनि धनें नृपति, परअन्नें नूदेव ॥ मद्यप मद्यें वीर रणें, तृपति न पामे येव ॥ ४ ॥ चिन्हें उलखी उलखी, बोलावे युद्ध का म ॥ परनिंदे निज गुण स्तवे, उरा आवो आम ॥ ५ ॥ चुजास्फोट करता थका, गगन उछाले बाण ॥ पांखवंता मानुं सर्प ए, युद्ध करे असमाण ॥ ६ ॥ वाहन गजवर प्रमुख जे, युद्ध करे मांहोमांहि ॥ स्वामि पराक्रम निज तणुं, संक्रमिउं ए आंहि ॥ ७ ॥

॥ ढाल शोलमी ॥ धवलशेठ लेइ नेटणुं ॥ ए देशी ॥

॥ शुंढमां खड्ग मोघर मुखा, दंतूशलें करे घाय रे ॥ मेघपरें गाजे घणुं, कोहनें जय नवि थाय रे ॥ १ ॥ रणरंग मंझ्यो एणी परें ॥ ए आंकणी ॥

सिंहनाद सुणी नाजीया, साहामो साहामा सिंह रे ॥ पन्नग फण आफोट ता, नाखे फुंकारा अवीह रे ॥ रण० ॥ २ ॥ मणिसंधि त्रूटी पडे, सूअर क रता कलेष रे ॥ दाढायें हणता थका, घुर्घुर शब्द अशेष रे ॥ रण० ॥ ॥ ३ ॥ इत्यादिक पशुवृंदना, काल अनादि अन्यास रे ॥ वीरसंगें क्रोधें करी, स्वामि प्रेरण पण तास रे ॥ रण० ॥ ४ ॥ प्राण ते तृण समोवड गणे,जि हां लगें शत्रु न मारे रे॥पशु पराक्रम देखीनें, वीर अधिक रस धारे रे ॥ ॥ रण० ॥ ५ ॥ चक्रीसैन्य पराक्रमथकी, नरपति सैन्य ते नागे रे ॥ वीरां गद प्रमुखा बहु, आवी साहामा लागे रे ॥ रण० ॥ ६ ॥ वीरांगद मुख पां चशें, स्वामि निवारी नक्तें रे ॥ स्त्री रूपें जे पराक्रमी, शत्रु बोलावे शक्तें तें रे ॥ रण० ॥ ७ ॥ बाण लेतांने मूकतां, नजरें कोइ न देखे रे ॥ शत्रु शिर उपरें पडे, जाणे नाम विशेषें रे ॥ रण० ॥ ८ ॥ मरण लह्या बहु बाण थी, केइक कपटें सूता रे ॥ मरणनो नय जग मोटको, कोइक रुधिरें चूता रे ॥ रण० ॥ ए ॥ रथविहूणा ते रथी थया, रथि विहूणा रथ थाय रे ॥ तु रग विना सादी थया, तुरगना सादी जाय रे ॥रण० ॥ १०॥ एम हाथी म हावत विना, माहावत गज विण जोय रे ॥ योध विमान विना थया, वि मान योध विण होय रे ॥ रण० ॥ ११ ॥ चक्रीनुं बल ते निर्बल थयुं, गज सिंह तव गज चढीयो रे ॥ देखी नीर करवा नणी, नरपति बलशुं अडी यो रे ॥ रण० ॥ १२ ॥ बलियो होय ते आवजो, एम कहेतो मुख वाणी रे ॥ गजानंद मुख पांचशें, आव्या अवसर जाणी रे ॥ रण० ॥ १३ ॥ नि जसैन्यने आश्वासता, गज बेसीनें आव्या रे ॥ तेहनें वीरांगदादिक मली, रुंधे अवसर फाव्या रें ॥ रण० ॥ १४ ॥ नारी रूपें जूऊता, गजसिंहादिक बोले रे॥ रंना रण योग्यज नहीं, पाणीहारी थाउं मोले रे ॥ रण० ॥१५॥ सूत्र कांतो मांनी रेंटीयो, वैरणी नारी न मारुं रे ॥ तव माया नारी वदे, हसत वदनें वच प्यारुं रे ॥ रण० ॥ १६ ॥ वयरी नारी रंनाविषें, तेणे अ में रंना साची रे ॥ जुद्ध करो अमशुं तुमें, वात करुं खरी राची रे ॥रण०॥ ॥१७॥ जुद्धें तुमनें मारीनें, जलांजलिनें देवा रे ॥ पाणी तैयार कखुं अठे, नवि जाउं जल लेवा रे ॥रण०॥१८॥ वयरी बहुने बांधवा, सूत्र अमारे तै यार रे ॥ शे कारण कांतुं अमें, चित्तमां करजो विचार रे ॥ रण० ॥ १ए ॥ वीरांगद महावीर जे, बाणनो घन वरसावे रे ॥ स्त्रीरूपें जम रायनें, संतो

पे नसे नावें रे ॥रण०॥२०॥ गजसिंह पण निज बाणथी, शत्रु जम धर मूके रे॥ नग विद्यायें वीरांगदो, पर्वत मूके न चूके रे॥रण०॥२१॥ वज्र मूकी गजसिंह ते, पर्वत चूरण कीधो रे॥ सिंह विकूर्वी मूकतो, वयरी ज्यांन गज लीधो रे॥ रण०॥ २२॥ वीरांगद विद्या वलें,अष्टापद सिंहमा थे रे॥ शरनविद्यायें मूकतो, लडतां गजसिंह सार्थे रे ॥रण०॥२३॥ गज सिंह बाण गदा असि, मूके शस्त्र हजारो रे॥ उपडे जाव आकाशमां, त व अष्टापद धारे रे॥ रण०॥२४॥ पाडयो हेठे नखें हणी, वीरांगदें ना गपाश रे॥ बांधी लीधो तेहनें, हवे महाबाहु खास रे॥ रण०॥२५॥ गजानंद सार्थे कखुं, बाणयुद्ध स्त्री रूपें रे॥ ज्वलनवर्षिणी शक्तिथी, वरसे अगनि सरूपें रे॥ रण०॥ २६॥ प्रतिशस्त्रें ते निवारतो, तव महा बाहु तास रे॥ मोहन शस्त्रें मुंजावीनें, बांधी ग्रह्यो वर पास रे॥रण०॥ ॥ २७॥ एम सुघोष मुख वीर जे, वयरीनें देइ खेद रे॥ जर्जर करी थ कव्या घणुं, केता कहुं तस नेद रे॥ रण०॥ २८॥ नागपाशें ते पांच शें, निज शिबिरें सहु लाया रे॥ते देखी बलचक्रीनुं,त्रासने नय बहु पाया रे॥ रण०॥ २९॥ आठमे खंमें शोलमी, ढाल कही सुरसालो रे॥ प द्मविजय कहे रायना, सैन्यमां मंगलमालो रे॥ रण०॥ ३०॥ ४४४॥

॥ दोहा ॥

॥ पांचशें सुनट बांध्या गया,चक्रायुद्ध ते देखी॥ क्रोध मानथी परिनव्यो, ठले सवे उवेखी॥ १॥ मणिमाली त्रीजो तनुज, वीनवे करी परणाम॥ कीडी उपर कटक शुं, रंना उपर राम॥ २॥ उवेखी स्त्री जाणीनें,तेम एणें कस्यो उन्माद॥ एहनें तेम ग्रह्या पुरुषनें, लावुं म करो विषाद॥३॥ तात निषेधी गज चड्यो, चाल्यो परदल मांहिं॥ परदलनें दलतो थको, मारग दीये सहु त्यांहिं॥४॥ कासर जेम कासारमां, मोहलतो आव्यो तह॥ वी रांगदादिक पांचशें, सुनट मल्या ठे जह॥५॥ जइ तेहनें बोलावतो, रे तुमें कपट करंम॥ नक्र ठेडुं शिर मूंमीनें, नवि ठलखो रे रंम॥ ६॥ तिरस्कार सुणी आपणो, युद्ध करे बलवंत॥ महावीरनें सिंह नवि, पर धिक्कार सहंत॥ ७॥ मणिमालीनें रुंधतो, वीरांगद महावीर॥ शरश्रेणि वरसावतो,नग उ पर जेम नीर॥८॥ मणिमाली पण जूऊतो,वीरांगदशुं जोर॥ वीरहाक वाजे तिहां,थइ रह्यों सोर बकोर॥९॥ एके कणापांचशें,किरणमाली मुख ज्ञात॥

शुद्धकरण मणिमालीना, पूरेंथी आयात ॥१०॥ वीरांगद विण सुनट जे, पांचशें तेहशुं लग्ग ॥ गगन धरा दिशि विदिशिमां,शिलिमुख केरा वग्ग॥११॥

॥ ढाल सत्तरमी ॥ करेलणां घडदेने ॥ ए देशी ॥

॥ मणिमाली मूके हवे, शक्ति शस्त्र बहु जाल ॥ वीरांगद प्रतिशक्तिथी, तेह करे विसराल ॥ १ ॥ सुनट मल्ल जूझे रे, जेहनुं पुण्य अगाध, तेहनो जय सूजे रे ॥ ए आंकणी ॥ विद्यायें सूअर प्रत्यें,घुर्घुर शब्द करंत ॥ वीरांगद वयरी नणी, ते उपद्रव सुमहंत ॥ सु० ॥ २ ॥ मणिमाली ते उपरें, मूके सिंह शोंमीर ॥ विद्यायें ते खाइ जाये, वीरांगद तव वीर ॥ सु० ॥ ॥ ३ ॥ सिंह उपरें ते मूकतो, शरन ते आवे ताम ॥ सिंहनुं नक्षण ते करे, जोइ मणिमाली उद्दाम ॥ सु० ॥ ४ ॥ मेघ गर्जारव ते करे, शरन मरण लहे तेह ॥ मणिमाली शरथी हणे, वीरांगद गज जेह ॥ सु० ॥ ५ ॥ पवन वेग आणी दिये, सिंहयुक्त रथ ताम ॥ ते उपर बेसी हवे, मूके शरना ग्राम ॥ सु० ॥ ६ ॥ पाडे गज मणिमालिनो, विद्यारथ तेणी वार ॥ करीनें वेगे शर घणां, वरसे ज्युं मेघ धार ॥ सु० ॥ ७ ॥ वीरांगदनां छेदीयां, अनुक्रमें धनुष ते सात ॥ बाण लेवानें मूकवा, शक्ति न रही तिलमात ॥ सु०॥ ॥ ८ ॥ बाण मूक्युं निद्रा तणुं, तेणे ते उंघी जाय ॥ स्त्री नट सघलां उंघियां, नागपाशें ते बंधाय ॥सु०॥ ए ॥ मणिमाली विद्यापटें, माछी जेम मछजाल॥ लेवा जाये जेटले, पवनवेग तेणें ताल ॥ सु० ॥ १० ॥ बहु खेचर नेला करी, आप्यो तिणहीज ठाम ॥ मणिमाली स्त्री नट तजी, लडवा आव्यो ताम ॥ सु० ॥ ११ ॥ नोगरत्यादिक नूपनें, पवन बोलावे तब ॥ विचित्र शस्त्रथी जूझता, द्विप जेम मृगपति सब ॥सु०॥१२॥ ते एकें निर्मद कस्या, सूर्य जेम ग्रह वग्ग ॥ मणिमालीयें नाइ प्रेरियो, आप संग्रामें लग्ग ॥सु०॥१३॥ बांध्या स्त्री नट लेयवा, किरणमाली ततकाल ॥ चंडगति ते जाणीनें, आव्यो तिहां नूपाल ॥ सु० ॥ १४ ॥ थंनणी विद्यायें थंनीयो,गारुड विद्यायें ताम ॥ नागपाश सवि तूटीया,वली प्रबोधिनी अनिराम ॥ सु० ॥ १५ ॥ विद्याथी सहु जागीया, पट नेदीनें तेह ॥उठी नूप पासें गया, धरता अतीय सनेह ॥ सु० ॥ १६ ॥ यान वस्त्र आपी करी, दीधो बहु सतकार ॥ नूप दयायें छोडतो, किरणमालीनें तिवार ॥ सु० ॥ १७ ॥ थंन्यो मूक्यो जाणीनें, करतो कोप अपार ॥ मणिमाली श्रीजयप्रत्यें, लेइ

देखशो आगल, तेहनी पेर ॥श०॥२५॥ सैम्पनी स्वामिनी नामिनी म जाण, एतो शिक्षा देवा देवता गाण ॥ श०॥ २६ ॥ अकालें क्षय करे तुमचो एह, तेणे ए वचननो फिकर केह ॥ श० ॥ २७ ॥ मुजथी के तुजथी तुज मुज मरण, युद्धमां जाणशुं, केहनुं ठे हरण ॥ श० ॥ २८ ॥ दावानल जेम वधे प्रचंम वाय, तेम चक्रवेग सुणी ज्वलती, निज काय ॥ श० ॥ २९ ॥ पण जस पुण्य तेहनो जय थाय, बीजा तो वचमां, गडथोलां खाय ॥श०॥३०॥ आठमे खंमें अढारमी ढाल, सांजलतां पद्म कहे, मंगलमाल॥ श० ॥३१॥

॥ दोहा ॥

॥ चक्रवेग मूके हवे, अगनि तणुं ते बाण ॥ पवनवेग शर धोरणी, वरसे जलधर जाण ॥१॥ अग्रज जूऊतो देखीनें, महावेग लघु नाय ॥ आव्यो तव तिहां चंड्रगति. तेहनें सन्मुख थाय ॥२॥ त्रीजो मणिमाली वली,आव्यो अवसर जाण ॥ नोग रति साहामो थइ, रुंध्यो तिणहीज गाण ॥३॥ चंम्रवेग सेनानी जे,आव्यो धनुपनो धार॥वज्रवेग सेनानी ते,साहामो थयो तेणि वार ॥ ४ ॥ आठे परस्पर गरजता, दिग्गजपरें रण घोर ॥ बाण छडे सहस्रो गमे, त्रोडे शत्रु तोर ॥ ५ ॥ प्राण गयां जोइ केइनां, केइ पराक्रम धार ॥ कोड्यो गमे नट परस्परें, जूऊे अति जूऊार ॥ ६ ॥

॥ ढाल उगणीशमी ॥ जीहो जाणुं अवधि प्रयुंजीनें ॥ ए देशी ॥

॥ जीहो पवनवेगनां धनुष जे, लाला कापे ते वारं वार ॥ जीहो नव नव धनुष लेइ लडे, लाला चक्रवेगशुं अपार ॥ १ ॥ सज्जन नर जूउ जूउ पुण्य प्रकार ॥ जीहो पुण्यें मनवंछित मले, लाला पुण्यें होये जयकार ॥ ॥ स० ॥ २ ॥ जीहो चक्रवेगनां कापतो, लाला तपथी जेम कर्मजाल ॥ जीहो रथ नांगे ते परस्परें, लाला एम बहु काढे काल ॥ स० ॥ ३ ॥ जीहो पच्चरनें गदा मोघरे, लाला बेहु जण करे चकचूर ॥ जीहो चक्रवेग गगनें जइ, लाला मूके शिला अविदूर ॥ स० ॥ ४ ॥ जीहो जीवनें मोह तृष्णा परें, लाला पवन मोघर लेइ हाथ ॥ जीहो नांगे नवस्थिति दीर्घनें, लाला समकेत लाननें साथ ॥स० ॥ ५॥ जीहो चक्रवेग जे शस्त्रनें, लाला मूके महावडवीर॥ जीहो ते ते पवन निष्फल करे, लाला जाणी चक्रवेग धीर ॥ स० ॥ ६ ॥ जीहो शक्ति शस्त्र संनारतो, लाला ज्वालानो नहीं पार ॥ जीहो आवीनें करमां रह्युं, लाला करतुं त्रट त्रटकार ॥ स०॥ ७ ॥ जी

हो तेह नमाडी मूकतो, लाला पवनवेग परिवार ॥ जीहो तेह निःफल करवा नणी, लाला नाखे विचित्र हथीयार ॥ स० ॥ ८ ॥ जीहो पण ते सवि निःफल गयां, लाला हृदयें हणे तेह शक्ति ॥ जीहो पवन मूर्छा खाइ पडयो, लाला न लहे कांहिये व्यक्ति ॥ स०॥ ए ॥ जीहो शक्ति आवी निज हाथमां, लाला पवन मूर्छागत जाण॥ जीहो नागपाशें ते बांधीयो, लाला स्नेह रागें जेम जाण ॥स० ॥ १०॥ जीहो चंडगति बहुधा लडयो, लाला महावेग मूके शस्त्र ॥ जीहो आग्नेय तेहनें ठलवे, लाला मूकी वारुण अस्त्र ॥ स० ॥ ११ ॥ जीहो त्रिशूल महावेग मूकतो, लाला चंडशरें करे छेद ॥ जीहो लीये गोल यंत्रें करी,लाला महावेग मूके अमेद ॥स०॥१२॥ जीहो चंडगति हृदयें हण्यो, लाला बांध्यो मूर्छा रे वंत ॥ जीहो नागपाशें पवन परें, लाला कर्मनी गति छे अचिंत्य ॥ स० ॥ १३ ॥ जीहो मणिमाली पण एणीपरें, लाला बांधे नोगरति राय ॥ जीहो श्वासोश्वास न लेइ शके, लाला कर्मथी बलियो न थाय ॥ स० ॥१४॥ जीहो चंमवेग सेनानीयें, लाला वज्रवेग पण तेम ॥ जीहो नागपाशें करी बांधीयो, लाला नावि वने ए नेम ॥ स०॥ १५ ॥ जीहो चक्रवेगादिक चारनें, लाला पवनादिकनें रे जाव ॥ जीहो लइ जातां वीरांगदें, लाला श्रीजय विनव्यो ताव ॥ स० ॥ ॥ १६ ॥ जीहो बाणधारा तिहां वरसतो, लाला आवी रुंध्या रे तेह ॥ जीहो बाणें ते सवि पीडिया, लाला चक्रवेगादिक जेह ॥ स० ॥ १७ ॥ जीहो बांध्या मूकी आविया, लाला युद्ध करणनें रे काज ॥ जीहो आकर्षिणी विद्या तिहां, लाला फोरवे श्रीजयराज ॥ स० ॥१८॥ जीहो आकर्षी ते चारनें, लाला लाव्या निजरथमांहि ॥ जीहो नागपाश ते त्रोडीया, लाला गारुड विद्यायें त्यांहि ॥स०॥ १ए ॥ जीहो वीरांगद औषधि जलें, लाला सज्ज करे तेणि वार ॥ जीहो निज निज वाहन वेसी करी, लाल जुद्ध करण योधार ॥ स०॥ २० ॥ जीहो पवनवेग चंमवेगते, लाला श्रीजय सार्थे लडंत ॥ जीहो देखीनें बोलावतो; लाला क्रोधें रद पीसंत ॥ स० ॥ २१ ॥ जीहो ते पण सिंह परें आवीयो,लाला क्रोधें बोले रे वाणि ॥ जीहो कूदें केम पर बलथकी, लाला यद्यपि कंठगत प्राण ॥ स० ॥ २२ ॥ जीहो सूर्य तापें रज उष्ण जे, लाला केतो काल रहंत ॥ जीहो बांधीनें मूकुं नहीं, लाला मुज कर देख तुं तंत ॥ स० ॥ २३ ॥ जोहो जो मुज शक्ति जाणे न

ही, लाला तुज सुत पूछजे तेह ॥ जीहो प्राणसंशय मांहे पडयो,लाला तुज मूकावे जेह ॥ स० ॥ २४ ॥ जीहो जा तुं मूक्यो जीवतो, लाला तुज मुज स्वामि रे एक ॥ जीहो स्वामी द्रोही न थाइयें, लाला धरीयें हृदय विवेक ॥ स० ॥ २५ ॥ जीहो पवन कहे परजयथकी, लाला अथवा जीत्यो रे बाल ॥ जीहो एक वार तेणें माचतो, लाला पूरव वात संजाल ॥ स० ॥ ॥ २६ ॥ जीहो बाल पीडयो तें पापीयें, लाला हुं तुज मारण काम ॥ जीहो निज बालक पीडा नवि, लाला सिंह सही शके नाम ॥ स० ॥ २७ ॥ जीहो चक्ति प्रयुक्ति संग्राममां, लाला करवी न घटे रे कोय ॥ जीहो था साहामो तुजमां यदि, लाला कांय पराक्रम होय ॥ स० ॥ २८ ॥ जीहो सांजली कोपें कलकल्यो, लाला बाणें ढायो रे तेह ॥ जीहो ते पण वरसे बाणने, लाला जेम आषाढो मेह ॥ स० ॥ २९ ॥ जीहो चंद्रवेग थाको तिसे, लाला पवनें मार्युं त्रिशूल ॥ जीहो मूर्छागत अही पाशथी, लाला बांध्यो ते प्रतिकूल ॥ स० ॥ ३० ॥ जीहो निज शिबिरें ते लेइ गयो, लाला श्रीजयानंद कुमार ॥ जीहो चक्रवेगादिकना सवे, लाला रथ नांगे तेणी वार ॥ स० ॥ ३१ ॥ जीहो बाणे श्रोणितछुं नखा, लाला अनुक्रमें बांध्या तेह ॥ जीहो दया धरी नवि मारीया, लाला चंडगतियें ग्रह्या एह ॥ स० ॥ ॥ ३२ ॥ जीहो नृप आणाथी लेइ गयो,लाला निज शिबिरें ततकाल ॥ जीहो किरणमाली हर्ष्यो घणुं, लाला बंधु संगम सुरसाल ॥स०॥३३॥ जीहो सुनट तणा जे उछल्यां, लाला रुधिरें रातो रवि थाय ॥ जीहो पवित्र थावा मानुं कारणे, लाला पश्चिम समुद्रमां जाय ॥ स० ॥ ३४ ॥ जीहो निज निज स्वामी आणाथकी, लाला दोय सैन्य निज गाम ॥ जीहो जयनें शोकना शब्दनो, लाला कोलाहल थयो ताम ॥ स० ॥ ३५ ॥ जीहो सेनानी चक्री करे, लाला महाबलवंत कुमार ॥ जीहो महाबल नामें चक्रीनें, लाला शोक तणो नहीं पार ॥ स० ॥ ३६ ॥ जीहो सुनट हस्त्यादिक सज्ज करे, लाला जे होय कंठगत प्राण ॥ जीहो श्रीजयानंदना सैन्यमां, लाला जय जयकार कल्याण ॥ स० ॥ ३७ ॥ जीहो आठमा खंममांहे कही, लाला उंगणीशमी ए ढाल ॥ जीहो पद्मविजय पुण्यें करी, लाला होवे मंगलमाल ॥ स० ॥ ३८ ॥ सर्वगाथा ॥ ५६६ ॥ इतिश्रीजयानंदराजर्षिचरित्रे श्रीजयानंद खेचरचक्री महा युद्धाधिकारे चतुर्थदिनयुद्धं ॥

॥ दोहा ॥

॥ दान पुण्य न करी शके, रात समे नर कोय ॥ तेणें मानुं क्रोधें अरुण
इ, उग्यो सूरय सोय ॥ १ ॥ वाहन शस्त्रादिक सहु, सुनटनें आपे नूप ॥
ंतामणि परनावथी, महिमा जास अनूप ॥ २ ॥ पूरव परें वेहु सैन्यनां,
ामग्री करी सर्व ॥ मलिया संगर कारणें, चित्तमां धरता गर्व ॥ ३ ॥ शर
ग्राम करी घणो, पवनवेगादिक राय ॥ नागुं चक्री बल तदा, ते सहु ना
 जाय ॥४॥ महाबल सेनानी तदा, उठ्यो पराक्रमें इंद ॥ मार मार करतो
को, नसव्या सुनटनां वृंद ॥ ५ ॥ जीताये नहीं अन्यथी, जाणी श्रीज
ानंद ॥ शत्रुध्वान रवि आवियो, जेहनुं तेज अमंद ॥ ६ ॥

ढाल वीशमी ॥ सुण वांसलडी, वेरण थइ शुं लागी व्रजनी नारने ॥ ए देशी ॥

॥ तिहां धनुष टंकराव ते करतो, वली वरसी बाण मंमप धरतो, तव
रबल त्रासथी सहु मरतो ॥ १ ॥ सुणो सुनटोजी, श्रीजयानंद पराक्रम
रपरें देखो ॥ जग जोतांजी, एहना पुण्य प्रबलनो नावे लेखो ॥ ए आं
कणी ॥ जिण जिण दिशि नाखे ते बाण, तिण दिशि बहु सुनट वमे
ाण, कोण करिवरनें कोण केकाण ॥ सु० ॥ २ ॥ ते बाण घातें बीहिना
ीर, वली महाबल सेनाउं धीर, तिहां न करे कोइ कोइनी नीर ॥ सु० ॥
 ३ ॥ नासतां केइ पडियां वस्त्र, वली केइ सुनटनां केइ शस्त्र, नवि खबर
ाडे लागे अस्त्र ॥ सु० ॥ ४ ॥ सम कालें कुमर सहस वार, पांचे नणा म
हा योधार, बीजा खेचर बहु परिवार ॥सु०॥ ६ ॥ वीर मानी विचित्र आयु
द धार, पांचशें नारी ते कुमार, उपर वरसे शिलीमुख धार ॥सु०॥ ७ ॥ रण
कौतुकी बहु खेचर निरखे, तेम तेम कुमर चित्तमां हरखे, पोतें पण बाण
श्रेणी वरखे ॥ सु० ॥ ८ ॥ एकलो पण बहु वीरनें मारे, पण कांय प्रयास
न चित्त धारे, जेम मृगपति बहु मृगनें मारे ॥ सु० ॥ ए ॥ कांइ आदि मध्य
जमी आकाश, नमतो अरि सेना चिहुं पास, कोय खबर पडे नहीं कि
हां वास ॥ सु० ॥ ए ॥ कोइनें मारे करतल घात, कोइनें वली पाटु प्रहार
लात, कोइनें कूर्परें पृथिवी पात ॥ सु० ॥ १० ॥ गदा मोघर खड्ग तथा दंम,
मांहोमांहे अथडावे परचंम, करे जाजरा मूकी बहु कांम ॥ सु० ॥ ११ ॥
एम विविध आयुधें कस्या निस्त्राण, केइ शस्त्ररहित कंठगत प्राण ॥ दयाथी
नवि मारे केइ जाण ॥सु०॥१२॥ महाबल प्रमुखनें दिये नागपाश, तेम एक

ही, लाला तुज सुत पूछे जेह ॥ जीहो प्राणसंशय मांहे पड्यो,लाला तुज मूकावे जेह ॥ स० ॥ २४ ॥ जीहो जा तुं मूस्यो जीवतो, लाला तुज मुज स्वामि रे एक ॥ जीहो स्वामी द्रोही न थाइयें, लाला धरीयें हृदय विवेक ॥ स० ॥ २५ ॥ जीहो पवन कहे परजयथकी, लाला अथवा जीत्यो रे बाल ॥ जीहो एक वार तेणें माचतो, लाला पूरव वात संभाल ॥ स० ॥ ॥ २६ ॥ जीहो बाल पीड्यो तें पापीयें, लाला हुं तुज मारण काम ॥ जीहो निज बालक पीडा नवि, लाला सिंह सही शके नाम ॥ स० ॥ २७ ॥ जीहो वक्ति प्रयुक्ति संग्राममां, लाला करवी न घटे रे कोय ॥ जीहो था साहामो तुजमां यदि, लाला कांय पराक्रम होय ॥ स० ॥ २८ ॥ जीहो सांभली कोपें कलकल्यो, लाला बाणें छायो रे तेह ॥ जीहो ते पण वरसे बाणने, लाला जेम आषाढो मेह ॥ स० ॥ २९ ॥ जीहो चंद्रवेग थाको तिसे, लाला पवनें मास्युं त्रिशूल ॥ जीहो मूर्छागत अही पाशथी, लाला बांध्यो ते प्रतिकूल ॥ स० ॥ ३० ॥ जीहो निज शिबिरें ते लेइ गयो, लाला श्रीजयानंद कुमार ॥ जीहो चक्रवेगादिकना सवे, लाला रथ भांगे तेणी वार ॥ स० ॥ ३१ ॥ जीहो बाणे श्रोणितशुं भस्या, लाला अनुक्रमें बांध्या तेह ॥ जीहो दया धरी नवि मारीया, लाला चंडगतियें ग्रह्या एह ॥ स० ॥ ॥ ३२ ॥ जीहो नृप आणाथी लेइ गयो,लाला निज शिबिरें ततकाल ॥ जीहो किरणमाली हर्ष्यो घणुं, लाला बंधु संगम सुरसाल ॥ स० ॥ ३३ ॥ जीहो सुभट तणा जे उछल्यां, लाला रुधिरें रातो रवि थाय ॥ जीहो पवित्र थावा मा हुं कारणे, लाला पश्चिम समुद्रमां जाय ॥ स० ॥ ३४ ॥ जीहो निज निज स्वामी आणाथकी, लाला दोय सैन्य निज गाम ॥ जीहो जयनें शोकना शब्दनो, लाला कोलाहल थयो ताम ॥ स० ॥ ३५ ॥ जीहो सेनानी चक्री करे, लाला महाबलवंत कुमार ॥ जीहो महाबल नामें चक्रीनें, लाला शोक तणो नहीं पार ॥ स० ॥ ३६ ॥ जीहो सुभट हस्त्यादिक सज्ज करे, लाला जे होय कंठगत प्राण ॥ जीहो श्रीजयानंदना सैन्यमां, लाला जय जयकार कल्याण ॥ स० ॥ ३७ ॥ जीहो आठमा खंडमांहे कही, लाला उंगणीशमी ए ढाल ॥ जीहो पद्मविजय पुण्यें करी, लाला होवे मंगलमाल ॥ स० ॥ ३८ ॥ सर्वगाथा ॥ ५६६ ॥ इतिश्रीजयानंदराजर्षिचरित्रे श्रीजयानंद खेचरचक्री महा युद्धाधिकारे चतुर्थदिनयुद्धं ॥

जोढा तणो, चक्री गोल विरूप ॥ ए ॥ मूके नरपति उपरें, नरपति पण तेम तेह ॥ मोदकें मोदक जांगीयें, नृप कलानो गेह ॥ १० ॥ सूर्यहास्य चक्री लीये, खड्ग नरेंद्र पण ताम ॥ चंद्रहास्यथी छेदतो, दंम गदायें संग्राम ॥११॥ खड्ग मुष्टि पग मोघरें, युद्ध करे ते दोय ॥ नवि जींते ते दोयमां, फरी शर युद्ध ते होय ॥ १२ ॥ चक्री धरतीयें पाडीयो, रथ जांग्यो ततकाल ॥ नवनव रथथी जूजतो, ते जांगे नृपाल ॥ १३ ॥ एकवीश वार एम जांजीया, रथ चक्रीनां तेण ॥ पण विरमे नही रणथकी, महावीरव्रती जेण ॥ १४ ॥ चक्रीना रथ जांजीया, निजरथ जंजण जीति ॥ लहीनें खे ञांतरें गयो, रवि मानुं चिंतवि चित्त ॥ १५ ॥ विरम्या बेहु संग्रामथी, निजनिज खंधा वार ॥ आवी सहुनें सज्ज कस्या, पूरवपरें निरधार ॥१६॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ राग बंगालो ॥

॥ चक्री चिंतातुर बहु होय, शोकमां आस्थानें रह्यो सोय ॥ साजन सांजलो ॥ पुत्र बंधाणा केम मूकाय, पूछे प्रधाननें खेचर राय ॥सा०॥१॥ कहे परधान सुणो हित आण, तो कहीयें तुम हितनी वाण ॥ साहिब सांजलो ॥ हितकारी मनगमतुं जेह, वयण जगतमां डुर्लन तेह ॥ सा० ॥ २ ॥ स्त्रीरूपें ए श्रीजयानंद, मत जाणो तुमें स्त्रीनो वृंद ॥सा०॥ बंधन करतां तुम सुत सोय, तेणें कदाग्रह मूकवो होय ॥ सा० ॥ ३ ॥ मौलिकंकण मुख जांख्युं जे वयण, तेह खमावी कीजें ए सयण ॥सा०॥ तुम मन आवे जो विश्वास, तो वली आपो कन्या तास ॥ सा० ॥ ४ ॥ ए छे उत्तमनें दयावंत, तुम सुत मूकशे जाणो संत ॥ सा०॥ एटले जाशे आपणे थान, तुम राज्यनो इछक न निदान ॥ सा०॥ ५ ॥ सांजली मन मां धारी मान, विसर्ज्या नृपें तेह प्रधान ॥ सा० ॥ मुज प्रतिज्ञा जाये केम, चक्री शीखवी दूतनें प्रेम ॥ सा० ॥ ६ ॥ पाठव्यो पवनवेगनें पास, पोहोता पवन उतारे आवास ॥ सा० ॥ चक्रीयें जाख्युं ते जांखे तास, तुमें जुना अम्ह सज्जन खास ॥ सा० ॥ ७ ॥ चंदन कापे आपे वास, सेलडी पीले रस दीये तास ॥ सा० ॥ तेम तुमें साचा सेवक अम्ह, एणी परें न घटे करवुं तुम्ह ॥ सा० ॥ ८ ॥ तुमचे जमाइयें मुज सुत बंध, लोक वचनें जाण्यो ए संबंध ॥ सा० ॥ तेहनी संधि करो तुमें एम, मुज सुत मूकावो धरी प्रेम ॥ सा० ॥ ए ॥ मुज कन्या वली पांचशें अन्य, आपुं नृपनी

शो कुमर एकज राश, ते देखी सहुनें पडी नाश ॥ सु० ॥ १३ ॥ उर्वेख्या नासता सहु तेह, नूसंज्ञायें पवनवेग जेह, लेइ चाल्यो सहु बांध्या एह ॥ ॥ सु० ॥ १४ ॥ चोरनी परें खंधा वार जावे, देखी चक्री निज चित्त जावे,अ हो महारा सुत वंध्या जावे ॥ सु० ॥ १५ ॥ वली वीजा सुत नाग आवे, क्रोधें धमधमीयो एम धावे,जइ मूकावुं एम कहेरावे ॥ सु० ॥ १६ ॥ ते रंभा कहो तुमें किहां गई,मस्तक छेडुं तत्पर थई,वली मारुं हुं एहनो पई ॥सु०॥ ॥ १७ ॥ मुज कुमर कहो ते किहां अछे,वीजी सवि वात करुं पछें, एम क ही अरि शिबिर मांहे गछे ॥ सु० ॥१८॥ कोइ खलना तेहनें नवि करे, जा णीयें जम रूपांतर धरे, कोइ सुनट न एह आगल वरे ॥ सु० ॥ १९ ॥ स हु सुनट दिशो दिश नासंता, नयणें चक्रा ते पासंता, वोले एम करुणा वासंता ॥ सु० ॥ २० ॥ रे सुनटो तुम मंगल थाउ, शत्रु होये ते पण कां जाउ, रंभा मुज शत्रुने वतलाउ ॥ सु० ॥ २१ ॥ मुजथी अधिको अथ स म नही, तेहनें नवि मारुं हुं अहीं, पण रंभा ते कहो छे कहीं ॥ सु० ॥२२॥ तव स्त्रीरूपें नरपति आवी,कहे ते रंभा हुं सोहावी,तुज मारुं तुज प्रिया रंभा वी ॥ सु० ॥ २३ ॥ जो पुत्रनें मलवाने कामें,तो मलशो करतां संग्रामें,जब त स सम तुज दिशा पामे ॥ सु० ॥ २४ ॥ आठमे खंडें वेहु मलिया छे, ढाल विशमी वातोमें नलीया छे, कहे पद्म क्रोधें खलनलीया छे ॥ सु० ॥ २५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मरम वचन शस्त्रें करी,वीधाणो खगराय ॥ मूके वाण जडोजडें,जेम वा दलीयें छाय ॥१॥ बाणवंतो लीये तेहनें, दूर करी दिशि सर्व ॥ उज्ज्वल करी नृपें तेणे समे, सुनट थया ते सगर्व ॥२॥ पवनवेगादिक खेचरा, चंडगत्या दिक तेम॥चक्रीसुत साहामा थया, युद्ध करणनें प्रेम ॥३॥ वेहु सेना संगर थतें, पृथिवी नग कंपाय ॥ सागर मर्यादा तजे,दिशि अंधारी थाय ॥४॥ खे चरपति नरपति तणुं, युद्ध मच्युं अति जोर ॥ एक एकनें गंजे नही,नवि छे दाये कोर ॥ ५ ॥ वज्रपृष्ठ धनु जेहनें, अक्षय बाण तूणीर ॥ कामाक्षायें ज श दीउं, केम हारे नृप वीर ॥ ६ ॥ नव नवा शस्त्र वांछित दीये, तेह विद्या जस पास ॥ चक्री पण डुर्जय लह्यो, नवलो दैव विलास ॥ ७ ॥ चक्री चा प खंमित करे, वली चक्री नवलाय ॥ एम शत धनुप ते नवनवां,खंमो खं म करे राय ॥ ८ ॥ शूल मूके खेचर पति, शूलें नेद नूप ॥ सहस्स नार

॥ ढाल बावीशमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ शूरभट क्रूर रण तूर अतिवाजते, चक्र केइ वक्र मूके कराल ॥ शक्ति अतिव्यक्ति उलका सहस मूकती, शस्त्र परस्परथकी अग्नि जाल ॥शू०॥१॥ कहींक मुजर पडे भड अडे चिहुं दिशें, गृद्ध पंखी भमे बहु आकाशें ॥ च क्रीना वीर प्रतिवीरने मारता, कोइ उभो रहे नाहीं पासें ॥ शू० ॥ २ ॥ सु भट संहार निराधार शंका धरी, श्रीजयानंद नारी स्वरूपें ॥ सिंहरथ बेसीनें परदल पेशीनें, तेजथी बहु सुभट कोडी झींपे ॥ शू० ॥ ३ ॥ राय समुदाय बोलावतो चक्री सुत, विसख्या बंध पडियारे भाइ ॥ नाश नाशज करो पा शमां केम पडो, कां मरो मुग्ध जाउ पलाइ ॥ शू० ॥ ४ ॥ कोण सहे तनु दहे मुज चपेटो कहो, सुर असुर कोइ एहवो न देखुं ॥ काष्ठ सम हय ग णुं चित्र सम भट भणुं, मृत्तिका गज सम गज उवेखुं ॥ शू० ॥ ५ ॥ शस्त्र तृण वस्त्रपरें खंम खंमित करुं,मारतां कोइ रक्षक न थाय ॥ मुग्ध तुम जग्ध करशे जमराजीयो, मुज चपेटो न इंद्रें खमाय ॥ शू० ॥ ६ ॥ सांभली वचन ते देहडी तस बली, क्रोधथी मूकतां योध बाण ॥ तृण समा प्राण निज जाणी झंपा करे, श्रीजयानंद तेहनें पिछाण ॥ शू० ॥ ७ ॥ भांजे रथ सब केइ सुभटनें पाडतो,केइ भट लेइ गगनें उछाले ॥ युद्ध करे शुद्ध रणभूमिमां चक्रधर, आवी श्रीजयतणा बाण खाले ॥ शू० ॥ ८ ॥ रोपथी तोष नहीं दोय स्वामी तणे, सैन्य पण दैन्यता छंमी लडता ॥ मुष्टि वाहे असि शक्ति उत्साहथी,युद्ध करतां केइ सुभट पडता ॥ शू०॥ ९ ॥ दर्दरी दडदडे खांमा तिहां खड खडे, ढोल वली ढमढमे तव निसाण ॥ गमगमे वली ददामा तिहां दमदमे, झल्लरी ठम ठमे तिणहि टाण ॥ शू०॥ १० ॥ ममरु वाजित्र योगिणी तिहां ममममे, कोपें करी धम धमें वपरीवग्ग ॥ भूभवा टम टमे कायर कम कमे, दिशो दिश गम गमे पामी खग्ग ॥ शू०॥ ११ ॥ जेम जेम भड भिडे तेम तेम रस चढे, काहला त्रड त्रडे सार सद्दें ॥ बकतर कड कडे भट पडत लडथडे,त्र्यंबक त्रहत्रहे भूरि नद्दें ॥ शू०॥ १२ ॥ भूमि पडि या केइ फडफडे वडवडे, गिरि शिखर खडखडे नीर झलके ॥ बहु शिला रडवडे भूमिका धडहडे, कुंत करवाल बहु तेज चलके ॥ शू० ॥ १३ ॥ गज घटा गडहडे प्रेत बहु हडहडे,धीर तिहां गहगहे चित्तमांहि ॥ तेह बहु जस लहे महा ध्वजा लहलहे, वृक्ष वली कडकडे पडत ढांहिं ॥ शू० ॥ १४ ॥

रूअडी कन्य ॥ सा० ॥ आपुं अर्ध वैताढ्यनुं राज, जामाता समजावो आज ॥ सा० ॥ १० ॥ मोली कंकण मुख दिवस ते सात, मुज आण पाले विख्यात ॥ सा० ॥ तो अम्ह बेहुने वाधे प्रीति, जनम लगें पालुं एह नीति ॥ सा० ॥ ११ ॥ पवनवेग पण सांजली जेह, जइ नरपतिनें नांखी तेह ॥ सा० ॥ नूपतियें जे उत्तर दीध, पवन आवी ते दूतनें कीध ॥ सा० ॥१२ ॥ तुज स्वामीनें कहेजे नेम, तुज सुत बंधव नाखे ठे एम ॥ सा० ॥ नहीं मुज कन्या केरुं काज, वली वैताढ्य अर्धनुं राज ॥ सा० ॥ ॥ १३ ॥ महारा नाम अंकित दिन सात, मुकुट वहे तुज नृप अवदात ॥ सा० ॥ अरधनरत आपुं तुज राय, आपणे मेल ठे कहेजे जाय ॥ सा० ॥ १४ ॥ दूतें जइ संनलावी वात, नूत नराड थयो खग तात ॥ सा० ॥ क्रोधें चक्री चिंतवे ताम, संधि करे नही वयणे साम ॥ सा० ॥ ॥ १५ ॥ जितकाशी ए न गणे कोय, जेहनुं मन गर्वित एम होय ॥ सा० ॥ चक्री शक्रनें कृष्ण न एह मनुष्य मात्र अहंकारनुं गेह ॥ सा० ॥ ॥ १६ ॥ बीजे शस्त्रें न जीत्यो जाय, विद्या शस्त्रें एह जीताय ॥ सा० ॥ ते शस्त्रें हणी लावुं पूत, जे राखे माहारुं घर सूत ॥ सा० ॥ १७ ॥ एम करतां जश माहरुं थाय, अपजश अलछी ते दूर पलाय ॥ सा० ॥ सुनट निद्रा सुख अनुनवे रात, एम करतां थयो हवे परनात ॥ सा० ॥ ॥ १८ ॥ आठमे खंमें नांखी ढाल, एकवीशमी ए राग बंगाल ॥ सा० ॥ पद्मविजय कहे पुण्यविशाल, आगल सांजलो वात रसाल ॥ सा० ॥ ॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥ ६३२ ॥ इति श्रीजयानंद राजर्षिकेवलिचरित्रे श्री जयानंदनृपविद्याधर चक्रियुद्धाधिकारे पंचमदिनयुद्ध ॥

॥ दोहा ॥

॥ रणवाजां वली वाजीयां, बेहुनी सेना मांह ॥ नट जेम नादी शब्दथी, वधीयो नट उत्साह ॥१॥ करी रणसामग्री सुनट, आव्या ते युद्धमान॥अ ल्पशस्त्रें बहु अरि हणे, मानुं कृतांत अनुमान ॥ २ ॥ चक्रीदल नागुं तदा, आव्या चक्री कुमार ॥ समकालें संग्राममां, धावे क्रोधें अपार ॥ ३ ॥ पवन वेगादिक रोकिया, दुष्ट विकल्प शुन ध्यान ॥ नृप नट मानुं क्रूर ग्रह, वक्र थया असमान ॥ ४ ॥ देखी चक्री कुमार ते, फोरवे विक्रम फार ॥ क्रम जंगी उत्क्रम लडे, शत कणा सहस वार ॥ ५ ॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ शूरनट क्रूर रण तूर अतिवाजते, चक्र केइ वक्र मूके कराल ॥ शक्ति अतिव्यक्ति उलका सहस मूकती, शस्त्र परस्परथकी अग्नि लाल ॥शू०॥१॥ कहींक मुजर पडे नड अडे चिहुं दिशे, गृद्ध पंखी नमे बहु आकाशें ॥ च क्रीना वीर प्रतिवीरने मारता, कोइ उनो रहे नाहीं पासें ॥ शू० ॥ २ ॥ सु नट संहार निराधार शंका धरी, श्रीजयानंद नारी स्वरूपें ॥ सिंहरथ बेसीनें परदल पेशीनें, तेजथी बहु सुनट कोडी झींपे ॥ शू० ॥ ३ ॥ राय समुदाय नोलावतो चक्री सुत, विसखा बंध पडियारे नाइ ॥ नाश नाशज करो पा शमां केम पडो, कां मरो मुग्ध जाउ पलाइ ॥ शू० ॥ ४ ॥ कोण सहे तनु दहे मुज चपेटो कहो, सुर असुर कोइ एहवो न देखुं ॥ काष्ठ सम हय ग णुं चित्र सम नट नणुं, मृत्तिका गज सम गज उवेखुं ॥ शू० ॥ ५ ॥ शस्त्र तृण वस्त्रपरें खंम खंमित करुं,मारतां कोइ रक्षक न थाय ॥ मुग्ध तुम जग्ध करशो जमराजीयो, मुज चपेटो न इंद्रे खमाय ॥ शू० ॥ ६ ॥ सांनली वचन ते देहडी तस वली, क्रोधथी मूकतां योध बाण ॥ तृण समा प्राण निज जाणी फंपा करे, श्रीजयानंद तेहनें पिठाण ॥ शू० ॥ ७ ॥ नांजे रथ सब केइ सुनटनें पाडतो,केइ नट लेइ गगनें उठाले ॥ युद्ध करे शुद्ध रणनूमिमां चक्रधर, आवी श्रीजयतणा बाण खाले ॥ शू० ॥ ८ ॥ रोषथी तोष नहीं दोय स्वामी तणे, सैन्य पण दैन्यता ठंमी लडता ॥ मुष्टि बाहे असि शक्ति उल्लाहथी,शुद्ध करतां केइ सुनट पडता ॥ शू०॥ ए ॥ दर्दरी दडदडे खांमा तिहां खड खडे, ढोल वली ढमढमे तव निसाण ॥ गमगमे वली ददामा तिहां दमदमे, जह्मरी ठम ठमे तिणहि टाण ॥ शू०॥ १० ॥ मरु वाजित्र योगिणी तिहां ममममे, कोपें करी धम धमें वयरीवग्ग ॥ जूऊवा टम टमे कायर कम कमे, दिशो दिश गम गमे पामी खग्ग ॥ शू०॥ ११ ॥ जेम जेम नड जिडे तेम तेम रस चढे, काहला त्रड त्रडे सार सद्दें ॥ बकतर कड कडे नट पडत लडथडे,त्र्यंबक त्रहत्रहे नूरि नद्दें ॥ शू०॥ १२ ॥ नूमि पडि या केइ फडफडे बडबडे, गिरि शिखर खडखडे नीर फलके ॥ बहु शिला रडवडे नूमिका धडहडे, कुंत करवाल बहु तेज चलके ॥ शू० ॥ १३ ॥ गज घटा गडहडे प्रेत बहु हडहडे,धीर तिहां गहगहे चित्तमांहि ॥ तेह बहु जस लहे महा ध्वजा लहलहे, वृक्ष वली कडकडे पडत ढांहिं ॥ शू० ॥ १४ ॥

रूअडी कन्य ॥ सा० ॥ आपुं अर्ध वैताढ्यनुं राज, जामाता समजावो आज ॥ सा० ॥ १० ॥ मोली कंकण मुख दिवस ते सात, मुज आणा पाले विख्यात ॥ सा० ॥ तो अम्ह बेहुने वाधे प्रीति, जनम लगें पाळुं एह नीति ॥ सा० ॥ ११ ॥ पवनवेग पण सांजली जेह, जइ नरपतिनें नाखी तेह ॥ सा० ॥ नृपतियें जे उत्तर दीध, पवन आवी ते दूतनें कीध ॥ सा० ॥१२ ॥ तुज स्वामीनें कहेजे नेम, तुज सुत बंधव नाखे ठे एम ॥ सा० ॥ नहीं मुज कन्या केरुं काज, वली वेताढ्य अर्धनुं राज ॥ सा० ॥ ॥ १३ ॥ म्हारा नाम अंकित दिन सात, मुकुट वहे तुज नृप अवदात ॥ सा० ॥ अरधजरत आपुं तुज राय, आपणे मेल ठे कहेजे जाय ॥ सा० ॥ १४ ॥ दूतें जइ संजलावी वात, जूत नराड थयो खग तात ॥ सा० ॥ क्रोधें चक्री चिंतवे ताम, संधि करे नही वयणे साम ॥ सा० ॥ ॥ १५ ॥ जितकाशी ए न गणे कोय, जेहनुं मन गर्वित एम होय ॥ सा० ॥ चक्री शक्रनें कृष्ण न एह मनुष्य मात्र अहंकारनुं गेह ॥ सा० ॥ ॥ १६ ॥ बीजे शस्त्रें न जीत्यो जाय, विद्या शस्त्रें एह जीताय ॥ सा० ॥ ते शस्त्रें हणी लावुं पूत, जे राखे माहारुं घर सूत ॥ सा० ॥ १७ ॥ एम करतां जश माहरुं थाय, अपजश अलछी ते दूर पलाय ॥ सा० ॥ सुनट निद्रा सुख अनुजवे रात, एम करतां थयो हवे परनात ॥ सा० ॥ ॥ १८ ॥ आठमे खंडें नांखी ढाल, एकवीशमी ए राग बंगाल ॥ सा० ॥ पद्मविजय कहे पुण्यविशाल, आगल सांजलो वात रसाल ॥ सा० ॥ ॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥ ६३२ ॥ इति श्रीजयानंद राजर्षिकेवलिचरित्रे श्री जयानंदनृपविद्याधर चक्रियुद्धाधिकारे पंचमदिनयुद्ध ॥

॥ दोहा ॥

॥ रणवाजां वली वाजीयां, बेहुनी सेना मांह ॥ नट जेम नादी शब्दथी, वधीयो जट उत्साह ॥१॥ करी रणसामग्री सुजट, आव्या ते युद्धमान॥ अल्पशस्त्रें बहु अरि हणे, मानुं कृतांत अनुमान ॥ २ ॥ चक्रीदल जागुं तदा, आव्या चक्री कुमार ॥ समकालें संग्राममां, धावे क्रोधें अपार ॥ ३ ॥ पवन वेगादिक रोकिया, डुष्ट विकल्प शुन ध्यान ॥ नृप जट मानुं क्रूर ग्रह, वक्र थया असमान ॥ ४ ॥ देखी चक्री कुमार ते, फोरवे विक्रम फार ॥ क्रम जंगी उत्क्रम लडे, शत कणा सहस बार ॥ ५ ॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ कडखानी देशीमां ॥

॥ शूरनट क्रूर रण तूर अतिवाजते, चक्र केइ वक्र मूके कराल ॥ शक्ति अतिव्यक्ति उल्का सहस मूकती, शस्त्र परस्परथकी अग्नि जाल ॥शू०॥१॥ कहींक मुजर पडे नड अडे चिहुं दिशे, गृद्ध पंखी नमे बहु आकाशें ॥ चक्रीना वीर प्रतिवीरने मारता, कोइ उनो रहे नाहीं पासें ॥ शू० ॥ २ ॥ सुनट संहार निराधार शंका धरी, श्रीजयानंद नारी स्वरूपें ॥ सिंहरथ बेसीनें परदल पेशीनें, तेजथी बहु सुनट कोडी कंपे ॥ शू० ॥ ३ ॥ राय समुदाय जोलावतो चक्री सुत, विसख्या बंध पडियारे जाइ ॥ नाश नाशज करो पाशमां केम पडो, कां मरो मुग्ध लाठे पलाइ ॥ शू० ॥ ४ ॥ कोण सहे तनु दहे मुज चपेटो कहो, सुर असुर कोइ एहवो न देखुं ॥ काष्ठ सम हय गणुं चित्र सम नट जणुं, मृत्तिका गज सम गज उवेखुं ॥ शू० ॥ ५ ॥ शस्त्र तृण वस्त्रपरें खंम खंमित करुं,मारतां कोइ रक्षक न थाय ॥ मुग्ध तुम जग्ध करशे जमराजीयो, मुज चपेटो न इंद्रें खमाय ॥ शू० ॥ ६ ॥ सांनली वचन ते देहडी तस बली, क्रोधथी मूकतां योध बाण ॥ तृण समा प्राण निज जाणी फंपा करे, श्रीजयानंद तेहनें पिठाण ॥ शू० ॥ ७ ॥ नांजे रथ सब केइ सुनटनें पाडतो.केइ नट लेइ गगनें उढाले ॥ युद्ध करे शुद्ध रणनूमिमां चक्रधर, आवी श्रीजयतणा बाण खाले ॥ शू० ॥ ८ ॥ रोषथी तोष नहीं दोय स्वामी तणे, सैन्य पण दैन्यता ठंमी लडता ॥ मुष्टि बाहे असि शक्ति उत्साहथी,युद्ध करतां केइ सुनट पडता ॥ शू०॥ ९ ॥ दर्दरी दडदडे खांमा तिहां खड खडे, ढोल बली ढमढमे तब निसाण ॥ गमगमे बली ददामा तिहां दमदमे, जल्लरी ठम ठमे तिणहि टाण ॥ शू०॥ १० ॥ ममरु वाजित्र योगिणी तिहां ममममे, कोपें करी धम धमें वयरीवग्ग ॥ जूऊवा टम टमे कायर कम कमे, दिशो दिश गम गमे पामी खग्ग ॥ शू०॥ ११ ॥ जेम जेम जड जिडे तेम तेम रस चढे, काहला त्रड त्रडे सार सद्दें ॥ बकतर कड कडे नट पडत लडथडे,त्र्यंबक त्रहत्रहे नूरि नद्दें ॥ शू०॥ १२ ॥ नूमि पडिया केइ फडफडे बडबडे, गिरि शिखर खडखडे नीर फलके ॥ बहु शिला रडवडे नूमिका धडहडे, कुंत करवाल बहु तेज चलके ॥ शू० ॥ १३ ॥ गज घटा गडहडे प्रेत बहु हडहडे,धीर तिहां गहगहे चित्तमांहि ॥ तेह बहु लस लहे महा ध्वजा लहलहे, वृक्ष बली कडकडे पडत ढाहिं ॥ शू० ॥ १४ ॥

वीर कर चलचलें रुधिर वहे खलखले,लोक बहु कलकले खम्युं न जाय ॥ नगरजन खलनले नाला बहु कलहले, जेह जूजार चूके न घाय ॥शू०॥ ॥१५॥ हाथी शृंखलखलके हलके चलें, कायरा हाड श्रंगें टलके ॥ नाशता पूंठथी बाण मूके नही,एक भट तेजथी अति कलके ॥ शू०॥ १६ ॥ यान विण जे थया यान तेहनें दीये,शस्त्र हीणाने आपेते शस्त्र ॥ क्षुधितनें खाद्य जल तृषितने आपता, वस्त्र हीणानें आपे ते वस्त्र ॥ शू०॥ १७ ॥ आठमे खंम अखंम बावीशमी,ढाल कही पद्मविजयें रसाल ॥ चक्रपति नरपति दोय हवे जूफता,सांजलो तेह कहेशुं विशाल ॥शू०॥१८॥ सर्वगाथा ॥६५५॥

॥ दोहा ॥

॥ युद्ध करंता परस्परें,नांजे रथ गदाघाय ॥ बाहुयुद्ध वली मुष्टि युद्ध, करता रोप नराय ॥ १ ॥ चक्री मूके महातरु, नरपति उपर जाम ॥ दां त पीसी रोषें करी, नृप पण तेम करे ताम ॥ २ ॥ पछी महा शिलायें जू जीया, पछी करे रजनी वुष्टि ॥ लोक माने उतपात ए,किम थाशे कहो तु ष्टि ॥ ३ ॥ चक्री गिरिवर मूकतो,नृप उपर तरु साथ ॥ कामाक्षा दत्त मो घरे, नृप चूरे लेइ हाथ ॥४॥ ते चूरणथी करहा परें, पडे पथरना खंम ॥ लोक अकालें मानता, ए श्यो दैवनो दंम ॥५॥ तेहमां तरुअरथी पड्यां, कुसुम ते देवें कीध ॥ पुष्पवृष्टि मानुं हर्षथी, नृप उपर परसिद्ध ॥ ६ ॥

॥ ढाल त्रेवीशमी कडखानी देशीमां ॥

॥ धीर महावीर मुख नीर आणी घणो, क्रुद्ध महा रौद्र ए शत्रु दीसे ॥ एह अजेय अमेय विक्रम धणी, केणी परें जीतुं जेम हीयडुं हीसे ॥ धी र० ॥ १ ॥ करिय वियारथें महारथें बेसीनें, शक्ति मूके महाज्वाल वम ती ॥ तेह निज शक्ति प्रतिशक्तिथी नेदतो, एणी परें नूपमति चित्त रम ती ॥ धी० ॥ २ ॥ चक्रधर चक्र अतिवक्र मूके तदा, नेत्र मीचे सुनट ते ह देखी ॥ मूके प्रतिचक्र नूशक्र तस सन मुखें, कौतुकी नासता तेह पे खी ॥ धी० ॥ ३ ॥ दोय चक्र खड खडे अग्नि कणीया जडे,दाह नीकें सु र असुर नासें ॥ उपडे नें पडे गृद्ध पंखी परें, केहनें चित्त विस्मय न ना से ॥ धी० ॥ ४ ॥ दलित मद शत्रुनो गलित अगनि सवे, दोय प्रतिहत पराक्रम थइनें ॥ विरमीआ जुद्धथी न रमीया शकितथी, रह्यां निज स्वा मी पासें जइनें ॥ धी० ॥ ५ ॥ शस्त्र तामस तणुं जामस नाव लहे, नृप

बिलमां अंधकार थावे ॥ राति अमावासनी जातिथी घन सहित, हय गय सुनट नयणें न आवे ॥ धी० ॥ ६ ॥ स्वपर अविशेष मांहो मांहे हणे, ह य गय तेम पडे रथ ते नांजे ॥ नृप करें रवि करे सर्व उद्योत मय, जेह देखी सहस नानु लाजे ॥ धी० ॥ ७ ॥ वाण विन्नाणथी नृप वरसे तदा, चक्री तव खोजीयो मन्न मांहि ॥ सांधवा मूकवा बाण समरथ नही, जे ह्यो शिरस्त्राणनें वली सन्नाह ॥ धी० ॥ ८ ॥ शत्रु सैन्ये सुनट शिर तिहां रडवडे, क्षुधित जम केरडा कवल मानुं ॥ सुनटशरें मारीया मूर्छायें घा रीया, गृध्र आवे तिहां जाणी खाणुं ॥ धी० ॥ ए ॥ तास बद वायथी आय चेतन वली,नरपतिपत्ति हय गय न कोइ ॥ बाणथी वींधीयो चिंधियो एहवो,सैन्यचक्री तणें नविअ होइ ॥ धी० ॥ १० ॥ प्राण सहु जीवने जा णी वाहालां घणुं, नासता चक्रीना सैन्य वाला ॥ वयर करी कैंरकरें च क्रीबलीया समुं, निंदता स्वामीनें लही जंजाला ॥धी०॥ ११ ॥ खेचरपति नरपतियें बहु वारते, पाडीयो तोहि उठीनें जूझयो ॥ शूर अतिक्रूर तेणें एहज एम अडे, एम सहु लोक चित्तमांहे बूझयो ॥ धी० ॥ १२ ॥ शस्त्रं अंधकार तिरस्कार करी टालतो, माहरी तेह उद्योत जीपे ॥ लाज धरी अस्तगिरिराजमां रवि थयो, पश्चिम समुद्रनें ते समीपें ॥ धी० ॥ १३ ॥ अ हवा परताप मुज तापथी अधिक ए, मित्र मुज चक्रीनें नृपति मारे ॥ ए म गणी अस्त जणी सूर्य पश्चिम गयो, सैन्यमां दोय निज युद्ध वारे ॥ ॥ धी० ॥ १४ ॥ पूर्वपरें सज्ज कस्या जेह घायें नस्या, राति सुख निद्रमां सहु गमावे ॥ ढाल त्रेवीशमी आठमा खंडमां, पद्म कहे हवे रवि पूर्व आवे पुण्य करवा परजात थावे, मंगलतूर सहुये बजावे ॥ धी० ॥ १५ ॥ सर्व गथा ॥ ६७६ ॥ इतिश्रीश्रीजयानंदराजर्षि केवलिचरित्रे श्रीजयानंदनृप च क्रायुद्ध खेटचक्री द्वययुद्धवर्णनो नाम षष्ठदिनांतर्गतो युद्धाधिकारः ॥

॥ दोहा ॥

॥ सूता जाग्या रवि किरणे,गुरु उपदेशें जेम ॥ मोहनिद्रा नवि जीवना, विलयें जाये तेम ॥ १ ॥ जयश्री योग्य ठे नृपति, युद्ध विना नवि तेह ॥ तेणे रवि पूर्वाचल चढयो,मानुं जोवा एह ॥२॥ बेहु सेनामां वाजीया, रण वाजित्र अनेक ॥ मथतां जेम सायर तणी, ध्वनि उठे अतिरेक ॥ ३ ॥ जेम शुद्ध धर्म उद्यम करे,पामी गुरु उपदेश ॥ तेम ते वाजित्र शब्दथी,रण उ

यम सुविशेष ॥ ४ ॥ श्राद्धमां बहु वेला जम्यो, विप्र अतृप्तो होय ॥ युद्ध कथा बहु सुनटें तेम, रण अण तृप्ता होय ॥ ५ ॥ मार मार करता थका, पसस्यो चक्री मार ॥ जखनां बालक जेम गले, पामी बग कासार ॥ ६ ॥ पवन पांचशें स्त्री सुनट, युद्ध करी बहु नांति ॥ विश अग्निम अहिं पासथी, बांध्या ते एकांत ॥ ७ ॥ चंड गत्यादिक खेचरा, जोग रत्यादिक तेम ॥ न गवे सुनट लक्कोगमे, चक्र वर्त्तीना नेम ॥ ८ ॥

॥ ढाल चोवीशमी ॥ कडखानी देशी ॥

॥ चंमडर्दम दोर्दंम दोनुं लहे,खेचरा राय थवाय करतो ॥ आवीयो धावीयो जेम मदें आंधलो, मयगल तरुगण कोडि हरतो ॥ चं० ॥ १ ॥ बहु कुमर रोकतो वचनें अति टोकतो, नूप संहारतो सैन्य आवे ॥ चक्री कहे केम रहे हजीअ मुज आगलें, रे रे रंका न तुं दूर जावे ॥चं०॥२॥ स्त्रीपणे जाणी मन आणी उवेखी में, ताहरा चित्तमां ते न आवे॥शक्र पण तृण प रे अपर कोण मुज शिरे, कोइ मुज आगलें बलें न फावे ॥चं०॥३॥-यतः॥ वैद्याः संति पदेपदे गदगणान् हंतुं क्रमानैपजैः, दानैर्डुर्गतदौःख्यसंस्थितिहृतो, ऽसंख्यापुनर्लक्ष्मणाः ॥ नत्वेपोस्तिजगत्सुयोप्यपनयेदोर्दंमकंडूचयं, शस्त्रैर्मेस्थितवाश्वयोर्युधि यशोदत्तेऽथवा डुर्यशः ॥ १ ॥ मृगैर्मृगारिर्नुजगैर्गुरुत्मान्, सुरैः सुरेंडस्तपनस्तमोनिः ॥ अग्निः पतंगैर्मुरजिच्च दैत्यै, र्यद्वत्तथा हं सुनटैर्न साध्यः ॥ २ ॥ पूर्वढाल ॥ माहरुं बलनिर्बल थाय तुज वधथकी, जातुं मूकी तुज नारि जाणी ॥ नहिंतो विद्या नलें पतंग परे कां बले,नूपति कहे सुणो ताम वाणी ॥ ४ ॥ नूमि तुं लुटीयो ने वली उठीयो, जीवतो तुज सुता वयणें मूक्यो ॥ नारिवध करण रण करण तुं आवीयो, बल निबल वातमां केम शंक्यो ॥चं०॥५॥ तुज सुनट ताहरुं विकट बल देखाडुं, पूर्व षट दिवस पर्यंत मांहि ॥ वली अवशेष विशेष बल होयतो, फोरवो माचवो जेणे उछांहि ॥चं०॥६॥ यतः ॥ शूराः संति सहस्रशो भुजबलप्रोत्सर्पिदर्पोद्धुरा ॥ शस्त्राणि प्रतिवीरजीवतरमालुंटाकवृत्तीन्यपि ॥ कोदंमायतसायके मयिपुनर्निःशूर जन्मा मही, शस्त्रंकतृणमेकमेव चहितं चक्रे धृतं तद्द्विषा ॥१॥ पूर्वढाल॥ सांजली कलकली देहडी चक्रीनी,दोयपरस्परे बाण नाखे ॥ मेघविद्यायें अमोघ वरसी करे, चक्रिनृपसैन्यमा सुपरे दाखे ॥चं० ॥ ७ ॥ पवनविद्यायें ते खवननूपति करे, चक्रीवली पवनविद्या प्रयुंजे ॥

शृंग गिरिचंग करे नृपतितव अहि धरे, लङ्गमे पान करें पवन पूजे ॥चं०॥ ८॥ चक्रधर वक्रतनु सर्प कोमद्यो गमे, नरपति खगपति मूके ताम ॥ वींछी चक्री करे नृपति मयूर धरे, वयरीनो नाश करें ते प्रकाम ॥ चं० ॥ ए ॥ चक्रधर शस्त्र निद्रा श्रमंड्रा धरे,नृपनें अंगद वलें ते न लागे ॥ चक्री सैन्यें हृल्या नि द्रमां नवि गल्या, नृपतिबोध विद्यायें जागे ॥चं०॥१०॥ प्रबलबल सबल चक्री चमुशुं लडे, आग्नेय शस्त्र चक्रधर प्रकाशे ॥ त्रटत त्रटकार करे जलदथी स ह्रे,नृपविद्यातणो छे आवास॥चं०॥११॥ बांधीयो नागपाशें नृपति सांधीयो ते कमलनालपरे तुरत त्रोडे ॥ गरुड चक्री ठवे शत्रुनें जे खवे, नृप गोविंद अस्त्र तास जोडे ॥ चं० ॥ १२ ॥ गरुड नाशि गयो चक्री निःफल थयो मोहन शस्त्र ठवे खेचरेश ॥ मांहोमांहें वढे खबर को नवि पडे, तेह देखी हवे नरवरेश ॥ चं० ॥ १३ ॥ ज्वाला मालिनी वर विद्यायें टालीयुं, एम वि विध चक्रीविद्यानां शस्त्र ॥ नृप साहस धरी उलट विद्या फरी, मूकीनें वा तो तेह अस्त्र ॥ चं० ॥ १४ ॥ उपलमां सफल नवि बीज वाव्युं होये, तेम नृपति उपरें निःफल हुआं ॥ भुजपराक्रम घणुं ज्वालामालिनी तणुं, योगि णीबल भिन्न भिन्न जूआं ॥ चं० ॥ १५ ॥ औषधिबल कामाक्षा तणुं सबल बल, ते कहो केणीपरें हार पामे ॥ खेद लही चक्रि वही चिंतवे एणीपरें जीतीयें केम ए शत्रु ठामें ॥ चं० ॥ १६ ॥ एह अलक्ष्य अध्यक्ष्यपणे देखी यें, नारिरूपें पराक्रमथी इंद्र ॥ एहनें काज शुं राज्यमें अरजिउं, कीडी संचि त तित्तरखविंद ॥ चं० ॥ १७ ॥ अहव संकल्प विकल्प श्यो एहवो, सुज माहरे छे असाध्य ॥ युद्ध करी श्रम धरीनें पछे मारशुं, एहथी कार्य थाशे सुसाध्य ॥ चं०॥ १८ ॥ चक्रधर शक्र विक्रम रथें बेसीनें, नृप उपर बहु बाण वरसे ॥ नृप अनूप शर मूकी उपद्रव करे, व्रणित करे चक्रीनुं अंग हरषें ॥ चं० ॥ १९ ॥ सुजर कर करें रुधिर अंगें फरें, करी पराक्रम दीये नृप मा थे ॥ नयणमींची वयण वंधे मूर्छा लह्यो,सैन्यमांहि हाहाकार साथें ॥चं०॥ ॥ २० ॥ मारीयो धारीयो चित्तमां चक्रीयें, मोद लही उठ्यो फरी घात क रवा ॥ ताम नृपाल तेणें ताल चेतन लही, उठीयो चक्री जमगेह धरवा ॥ चं० ॥ २१ ॥ दीध कामाक्षायें लीध वज्र छेद कर, मूकीयो चक्रिशिर तेणे घाय ॥ लहीय मूर्छा अतुल्ला पडयो धरतीयें, छिन्न ठद वज्रेंजेम शिखरी था य ॥ चं० ॥ २२ ॥ नागपाशें जडयो सुदृढबंधे घडयो, लेइ ते नवि शके था

सोल्लास ॥ सुनट निषेधतो वाणथी बांधतो,ग्रहण नवि करण दीयें नृप ता स ॥ चं० ॥ २३ ॥ शरण करी मरणनुं रणथी विरमे नहीं, निजतणुं सैन्य ते साथ लडतुं ॥ मोहनी मूकतो अवसर न चूकतो,परस्परें अथडाइ नूमि पडतो ॥चं०॥२४॥ तेहनें मारता नृपति वारता, अग्नि बूजे किश्युं धूम कूटे ॥ कंठगत प्राण तस त्राण नृपति करे, हृदयथी करुणता नृपति बूटे ॥चं०॥ ॥२५॥ नृपति आकर्षिणी फटीति चक्रीप्रतें, खेचीनें पवननें सोंपी दीधो ॥ नृपति सैन्ये घणो तृपति आनंद पणो, सुर असुरें जय जय शब्द कीधो ॥चं०॥२६॥ आठमा खंममां रंग अखंममां, ढाल चोवीशमी पूर्ण कीधी ॥ पद्मविजयें नली नविजनें सांनली, श्रीजयानंदनी हुइ सिद्धि ॥ एक ठत्री थइ राजरूद्धि ॥ जगतमां जश कीरति प्रसीद्धि ॥ पुण्यवंता लहे नवे निधि ॥ चं०॥ २७ ॥ सर्वगाथा ॥ ७११ ॥ इतिपंमित प्रवर श्रीपद्मविजय गणि वि रचिते श्रीश्रीजयानंदराजर्षिकेवलीरासके खेचरेंड् श्रीश्रीजयानंदनृपति यु द्धाधिकारे सप्तमदिनयुद्ध युद्धाधिकार समाप्त॥

॥ दोहा ॥

॥ फूलवृष्टि नृप उपरें, देवें कीधी ताम ॥ देव डुंडुनि आकाशमां, वाजे अति अनिराम ॥ १ ॥ वाजां चिहुंदिशें वाजीयां,हूउं ते जयजय कार ॥ मो द न माये अंगमां, श्रीजयानंद कुमार ॥ २ ॥ चक्रायुद्ध नररायनुं, निर्नायक थयुं सैन्य ॥ नयनें खेद विव्हल घणुं,अतिशय करतुं दैन्य ॥३॥ रथीने अ तिरथी सैन्यमां, कोडघो गमेले जोय ॥ नाथ विना सहु रांकडा,खेदनें नय लहे तोय ॥ ४ ॥ राहु ग्रहे अथ आथमें, जब ग्रहपति दिन राज ॥ पण उद्योत न ग्रह करे, दिवस संबंधि व्राज ॥ ५ ॥

॥ ढाल पच्चीशमी ॥ कोडी सोनैये कासिदी मारा वाला जीरे ॥
करनारो नहीं कोय, जइनें कहेजो माहारा वालाजी रे ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंद आणाथकी, साजनीया जीरे, पवनवेग खगराय ॥ सुख मां रहेजो साजनीआ जीरे ॥ चक्रीचमू जे नाशती ॥ सा० ॥ तस आशास ना दाय ॥ सु०॥१ ॥ नासो मां नय मत करो ॥सा०॥ तुम अम स्वामी, ठे एक ॥ सु० ॥ श्रीजयानंद नरराजीयो ॥सा०॥ ते अंगीकरो ठेक ॥सु०॥२॥ निज निजराज्यनें नोगवो सा० ॥ तुम स्वामी पण एह सु०॥ नतवत्सल ठे मूकशे ॥सा०॥ करुणा केरो ए गेह ॥सु०॥३॥ पवननी वात सुणी करी सा०॥

श्रीजयनें करे नाथ सु० ॥ सैन्य खेचर चक्री तणुं सा० ॥ निर्भय रहे सहु साथ सु० ॥४॥ निगडवज्रपंजर दीयो सा० ॥ ज्वालामालिनी जेह सु० ॥ जडीयो निगडें चक्रीनें ॥सा०॥ पंजरमां ठव्यो तेह सु०॥ ५ ॥ औषधि नीरे सज्ज करे सा० ॥ ठोडे वली नागपाश सु० ॥ गारुडविद्यायें करी ॥ सा० करुणानिधिनो आवास सु० ॥६॥ बंधन बीजा नट तणां सा० ॥ ठोडे सवेनां राय सु० ॥ औषधी नीरें सज्ज कस्था सा० ॥ स्वपर विनाश न कांय सु० ॥ ७ ॥ सर्व सैन्य प्रणम्यु हवे सा० ॥ मागध व्रजगुण ग्राम सु०॥ बिरुदावली बोली जते सा० ॥ जयजयरव ठाम ठाम सु० ॥ ८ ॥ आसन्न सेवक पांचशें सा० ॥ स्त्रीरूपें परिवार सु० ॥ वाजित्रनाद सुणीजते सा० ॥खेटचक्रीरथें धार सु० ॥ ए ॥ गज बेशीने आवीयो सा० ॥ निज उतारे आवास सु० ॥ गायन गाये गीतनें सा०॥ विविधप्रकार विलास सु० ॥ १० ॥ खेचरनृप विसर्जिया सा० ॥ उतारे गया सर्व सु० ॥ राय करावे चक्रीनें सा० ॥ भोजन ठांमीनें गर्व सु० ॥ ११ ॥ स्नान पूजा जिननी करी सा०॥ सैन्यशुं भोजन कीध सु० ॥ विविध मंगल उच्छवथकी सा० ॥ दान वंठित बहु दीध सु० ॥ १२ ॥ दिवस राति बोली गया सा० वाज्यां मंगल तूर सु० ॥ सिंहासन बेठा तदा सा० ॥ श्रीजय पवनादिक भूर सु० ॥ १३ ॥ चक्रसुंदरी एणे अवसरे, राजनीया जीरे ॥ वीनवे करी मनोहार सु० ॥ मुको महारा तातने रा० ॥ हृदयें करुणा अवधार सु० ॥ १४ ॥ मुकीशुं नृपति कहे रा० ॥ मोकली खेचर ताम सु० ॥ वज्रपंजर मंगावीयुं रा० ॥ आव्या खेचर स्वामि सु० ॥ १५ ॥ श्रीजय कहे चक्री सुणो रा० ॥ मौलि कंकण तेह सु० ॥ इष्ट नामांकित लावीयें रा० ॥ सहु नृप साखथी एह सु० ॥ १६ ॥ पवन जामातानें सुता रा०॥ पहेरे तुम धरी आण सु०॥ जो नवि घडीया होय तो रा० ॥ घडो हवे समरथ जाण सु० ॥ १७ ॥ पंजरमां पण ठो विछु रा० ॥ उतावल नथी कांय सु० ॥ बंधथी मारवो सोहिलो रा० ॥ पण नवि मारुं ते ठाय सु० ॥ १८ ॥ ते तुजपुत्री वचनथी रा० ॥ समरथ हुं पण मुज सु० ॥ दया भाव चित्तमां वस्यो सा०॥तेणे नवि मारुं हुं तुज सु० ॥ १९ ॥ आठमा खंममांहे कही रा० ॥ पंचीशमी वर ढाल सु० ॥ पद्मविजय कहे पुण्यथी रा० ॥ होवे मंगल माल ॥सु०॥२०॥७३६॥

॥ दोहा ॥

॥ नृप वचन चक्री सुणी, हैयडे दुःख न माय ॥ वज्रपात रणमां थ की, मरम वचन दुःख दाय ॥ १ ॥ रोवे चक्री दुःख थकी, पवनवेग ते देखी ॥ चित्तमां करुणा आणीनें, बोले एम सुविशेष ॥ २ ॥ मत रोवो बहु कालना, तुमे अमचा छो स्वामि ॥ दयावंत नृप बीनवी, मूकावुं हुं आम ॥ ३ ॥ मुकावण प्रयोजन नही,चक्री कहे सुणो वात ॥ जगजीत्यो में जोगव्यो, सुचिर काल विख्यात ॥४॥ सुरनर साखे बांधियो, नारि मा त्रें मुज्क ॥ एह पराजव नवि खमी, शकीयें कहुं हुं तुज्क ॥५ ॥ वीरनें म रण रुडुं कह्युं, जसके स्वर्गनो गार ॥ नविबंधन विटंबणा, वली दुर्जन धिक्कार ॥ ६ ॥ साचो सेवक होय तो, खडग आपी मुज हाथ ॥ बंध मो क्ष करुं करथकी, निज मस्तकनें साथ ॥ ७ ॥ पवनवेग निश्चल लही, च क्री मरणनी वात ॥ कहे तुमे जाण पुरुष थइ, केम कहो ए अवदात ॥ ॥ ८ ॥ तुमनें नारे न बांधीया, श्रीजयानंद कुमार ॥ सर्व विद्या निधि एह छे, देवीदत्तवर सार॥ ए॥

॥ ढाल छवीशमी ॥ तुम्हेतो जलें बिराजोजी ॥ ए देशी ॥

॥ तुमेंतो जलें बिराजोजी, विद्याधरके चक्री तुमें तो जलें बिराजोजी॥ मान मरदियुं योगिणी केरुं, सर्वविद्या आवास ॥ गुण समुदाय ते नारिमां केम, होवे तेह विमास ॥ तु० ॥ १ ॥ महाज्वालानें कामाक्षा वली, वर ते एहनें नाम ॥ वज्रमुखादिक देव ते जीत्या, विक्रम तेजनुं धाम ॥तु०॥ ॥ २॥ अंगना रूप करीनें जीत्यो, ते तुम जणववा हेत ॥ खेद करो मत नारियें बांध्यो, मनमां धरी संकेत ॥ तु० ॥ ३ ॥ एह वचन अमृत छट कावे, कांइक पाम्यो शांति ॥ पवनवेग कहे कर्म तणो इहां, वांक अछे ए कांत ॥ तु० ॥ ४ ॥ गर्व अगनियें बाली नाख्यो, फूल्यो रुंख विवेक ॥ जग त विख्यात ए तुम मंत्रीश्वरें, समजाव्या अतिरेक ॥ तु० ॥ ५ ॥ स्त्री रूपें तुम लशकर जीत्युं, तोही न समज्या कांय ॥ पूर्वे स्वामि धरी में कहेवरा व्युं, सेवक रीति कराय ॥ तु० ॥ ६ ॥ पंमित सुंपरधान मोकल्या, दीधो ब हु उपदेश ॥ ते अमृतथी गर्वहुताशन, नवि शमियो लवलेश ॥ तु० ॥ ॥ ७ ॥ सामान्य जन पण दास नामांकित, सही न शके तो एह ॥ वीर पुरुष निज पत्नी पराजव, खमी शके कहो केह ॥ तु० ॥ ८ ॥ नारिबांध्यो

अपयश देवा, कीधुं नारि स्वरूप ॥ तेणे तुमें क्रोध अमर्ष गर्वादिक, दोष ढांक्यो प्रति रूप ॥तु०॥ ए ॥ मस्तक एहनी आण धरो तुमें, जेम मूके तुम राय ॥ अनन्यगतिक ए वात सुणी तस, आण धरे शिर ठाय ॥तु०॥ १० ॥ पवनवेग जइ राय वीनवे, कीजें कृपा दयाल ॥ शौर्यादिक गुण जेम देखा ड्या, रूप दाखो नृपाल ॥ तु० ॥ ११ ॥ टलवले सहु तुम रूप जोवानें, मुंजवो केटलो काल ॥ बहु विद्याधर पण एम वीनवे,अंजलि करी निज ना ल ॥ तु० ॥ १२ ॥ रूप स्वजावनुं परगट कीधुं, पांचशें सुजटनुं तेम ॥ जो वा मलो तव सुजटनी कोडद्यो, हर्ष आश्चर्य धरी प्रेम ॥ तु० ॥ १३ ॥ तूर प्रमोदनां वाजां सघले, मंगल पाठ बोलाय ॥ चक्रसुंदरी तत्त्वनो निर्णय, करती देखी राय ॥ तु० ॥ १४ ॥ पवनवेगादिक खेटक रायनी, प्रारथनायें नृप ॥ विद्यायें पंजर ज्ञेदीनें, निगड ठेदे करी चूप ॥ तु० ॥ १५ ॥ महोटा पुरुपनें अति विडंबन, अपराधि पण तोय ॥ करवुं न घटे एम विचारी, मू क्यो चक्री सोय ॥ तु० ॥ १६ ॥ चक्रि नृपरूप देखीनें, हियडे हर्ष न मा य ॥ वीसरी गयो ते सर्व पराजव, अचरिज अतिशय थाय ॥ तु० ॥१७॥ चक्रीनें सिंहासन वेसाडे, पवनवेगादिक राय ॥ खेटेश्वर सघला आवीनें, प्रणमे चक्री पाय ॥ तु० ॥ १८ ॥ निज स्वामी मूकाणा जाणी, सैन्यनें हर्ष अपार ॥ चक्रवेगादिक सुत चक्रीना, जे बांध्या तेणी वार ॥तु०॥१ए॥ बीजा पण सहसो गमे बांध्या, मूक्या तेडी तेह ॥ नागपाश ते ठोडी ना ख्या, सऋ कस्या वली जेह ॥ तु० ॥ २० ॥ नृप चक्रीनें प्रणमे सघला, चक्री आणंद थाय ॥ सकल लोक मन अचरिज हूउ, मंगल तूर वजा य ॥ तु० ॥ २१ ॥ आठमे खंडें ठवीशमी ए, पद्मविजयें कही ढाल ॥ श्री जयानंदना रासमां रूडी, सुणतां मंगलमाल ॥तु०॥२२॥सर्वगाथा॥७६७॥

॥ दोहा ॥

॥ हवे तेडी चक्रसुंदरी,सोंपे चक्रीनें राय ॥ द्यो निज इछा दोय तिहां, माहरे अर्थ न कांय ॥१॥ में तो कौतुक मात्रथी,कीधो एह प्रकार ॥ चक्र सुंदरी निज तातनें, प्रणमी कहे विचार ॥ २ ॥ इछायें वर में वरी, तुमनें आपद दीध ॥ पापहेतु निज ठोरुनो, खमो अपराध जे कीध ॥ ३ ॥ चक्रीकहे ताहरो नथी, इहां अपराध लगार ॥ प्रतिपद चंद्रधेनु परें, तें उजरख्यो जरतार ॥ ४ ॥ माहरी कन्या नृपतणी, वरे स्वयंवर सार ॥ विश्वो

॥ दोहा ॥

॥ नृप वचन चक्री सुणी, हैयडे डुःख न माय ॥ वज्रपात रणमां थ की, मरम वचन डुःख दाय ॥ १ ॥ रोवे चक्री डुःख थकी, पवनवेग ते देखी ॥ चित्तमां करुणा आणीनें, बोले एम सुविशेष ॥ २ ॥ मत रोवो बहु कालना, तुमे अमचा ठो स्वामि ॥ दयावंत नृप चीनवी, मूकावुं हुं आम ॥ ३ ॥ मुकावण प्रयोजन नही,चक्री कहे सुणो वात ॥ जगजीत्यो में जोगव्यो, सुचिर काल विख्यात ॥४॥ सुरनर साखे बांधियो, नारि मा त्रें मुऊ ॥ एह पराजव नवि खमी, शकीयें कहुं हुं तुऊ ॥५ ॥ वीरनें म रण रुडुं कह्युं, जसके स्वर्गनो ठार ॥ नविबंधन विटंबणा, वली डुर्जन धिक्कार ॥ ६ ॥ साचो सेवक होय तो, खडग आपी मुज हाथ ॥ बंध मो क्ष करुं करथकी, निज मस्तकनें साथ ॥ ७ ॥ पवनवेग निश्चल लही, च क्री मरणनी वात ॥ कहे तुमे जाण पुरुष थइ, केम कहो ए अवदात ॥ ॥ ८ ॥ तुमनें नारे न बांधीया, श्रीजयानंद कुमार ॥ सर्व विद्या निधि एह ठे, देवीदत्तवर सार॥ ए ॥

॥ ढाल ढवीशमी ॥ तुम्हेतो जलें बिराजोजी ॥ ए देशी ॥

॥ तुमेंतो जलें विराजोजी, विद्याधरके चक्री तुमें तो जलें विराजोजी॥ मान मरदियुं योगिणी केरुं, सर्वविद्या आवास ॥ गुण समुदाय ते नारिमां केम, होवे तेह विमास ॥ तु० ॥ १ ॥ महाज्वालानें कामाक्षा वली, वर ते एहनें नाम ॥ वज्रमुखादिक देव ते जीत्या, विक्रम तेजनुं धाम ॥तु०॥ ॥ २॥ अंगना रूप करीनें जीत्यो, ते तुम जणववा हेत ॥ खेद करो मत नारियें बांध्यो, मनमां धरी संकेत ॥ तु० ॥ ३ ॥ एह वचन अमृत ठट कावे, कांइक पाम्यो शांति ॥ पवनवेग कहे कर्म तणो इहां, वांक अठे ए कांत ॥ तु० ॥ ४ ॥ गर्व अगनियें बाली नाख्यो, फूल्यो रुख विवेक ॥ जग त विख्यात ए तुम मंत्रीश्वरें, समजाव्या अतिरेक ॥ तु० ॥ ५ ॥ स्त्री रूपें तुम लशकर जीत्युं, तोही न समज्या कांय ॥ पूर्वे स्वामि धरी में कहेवरा व्युं, सेवक रीति कराय ॥ तु० ॥ ६ ॥ पंमित सुंपरधान मोकल्या, दीधो ब हु उपदेश ॥ ते अमृतथी गर्वहुताशन, नवि शमियो लवलेश ॥ तु० ॥ ॥ ७ ॥ सामान्य जन पण दास नामांकित, सही न शके तो एह ॥ वीर पुरुष निज पत्नी पराजव, खमी शके कहो केह ॥ तु० ॥ ८ ॥ नारिबांध्यो

म, पण जग जीते ए अचरिज गाम ॥ म० ॥ जाइयें जीत्यो नरतज राय, पण चक्रवर्त्तिपणुं नवि जाय ॥ म० ॥ १३ ॥ खेद तजो तुमें महोटा राय, राज्य जोगवो निज जइ थिर थाय ॥ म० ॥ कोइक कर्में थयो संग्राम, आपणे पण एक सांजलो आम ॥ म० ॥ १४ ॥ मुज मन वाधे अधिको नेह, तुम देखी ज्राता परें एह ॥ म० ॥ तेणें पूरवजव जाणुं एम, मित्र अ ठो ज्ञानी लहे नेम ॥ म० ॥ १५ ॥ खेद पमाड्यो रणमां तुम्ह, ते अप राध खमो तुम्हें अम्ह ॥ म० ॥ श्रीजयवचनें खेद पलाय, खेटचक्री कहे सांजलो राय ॥ म० ॥ १६ ॥ निपजावी विधियें तुम एक, मूर्त्ति गुणवंती सुविवेक ॥ म० ॥ शूरपणुं ने पर उपकार, सज्जनता नय धर्म विचार ॥ म० ॥ ॥ १७ ॥ समरथ गुण स्तववा नहीं इंद, तुमें तो महोटा महाराजेंद ॥ म० ॥ क्रोध अज्ञान अने अजिमान, हुंतो परवश खूतो निदान ॥ म० ॥ १८ ॥ पंमित पवनना ने परधान, शिक्षा दीधी मुज असमान ॥ म० ॥ पण मद अंध हाथीपरें तेह, अंकुश नवि मानी में रेह ॥ म० ॥ १९ ॥ गुणवंता तुमें मानवा योग्य, में अपमान्या कर्म संयोग ॥ म० ॥ तुम अपराध न ठे एम रेप, मुज अपराध खमो सुविशेप ॥ म० ॥ २० ॥ शलज पोतें वले दीपें जेह, दीवानो अपराध न तेह ॥ म० ॥ समरथनें वली तुं लघु बाल, रणमां मार्यो न तें तेणे ताल ॥ म० ॥ २१ ॥ दयाधरम ताहारो अद्भु त, अपराधी उपर ए आकूत ॥ म० ॥ तुज उपर आवे मुज स्नेह, निश्च य परजव मैत्री सनेह ॥ म० ॥ २२ ॥ सत्तावीशमी जाखी ढाल, आठमा खंममांहे सुरसाल ॥ म० ॥ गुणिजन मलिया गुण बहु थाय, पद्म क हे सहु खटपट जाय ॥ म० ॥ २३ ॥ सर्वगाथा ॥ ७९७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ मुज उपर सुप्रसन्न थइ, मुज पुर करो पवित्र ॥ प्रार्थना जंग जीरू तुमें, तुम्ह अदज्जुत चरित्र ॥ १ ॥ कुमरें मानी विनती, हवे खेचर नरराय ॥ सैन्य सहित पुरमां जइ, शणगारे चित्त लाय ॥ २ ॥ माणिक थंजनी श्रेणिमां, पंचाली शुज रूप ॥ चामर श्रेणी वींजती, रंजानें अनुरूप ॥ ३ ॥ फरके ध्व जा तिहां चिहुं दिशें, घर घर तोरण माल ॥ मंचाश्रेणि ते मांमियां, राज्य पंथें सुविशाल ॥ ४ ॥ गीत गान गोरी करे, वाजित्र ध्वनि संगीत ॥ मंच उल्लोचें सोहतां, मुक्ता शुज्र पवित्त ॥ ५ ॥ चंदन जलथी खेचरा, पंथ करे ठरकाव ॥ वस्त्र

त्तम गुणि आश्रयो, तुज गुणनो नही पार ॥ ५ ॥ गर्व दोष माहरे करी, पाम्यो आपद एह ॥ तुज प्रारथनाथी मनें, जीवतो मूक्यो जेह ॥ ६ ॥ तेणें सहु सुखकारी थयुं, साधु वखो नरतार ॥ आणंद लहो ए वातमां, न करो कांइ विचार ॥ ७ ॥

॥ढाल सत्तावीशमी॥ बावा किसनपुरी, तुमविना मढीयां उजड पडी ॥ए देशी॥

॥ वात सुधाथी ताप गमाय, पुत्रीनें हवे चक्रधर राय ॥ मनहरष न माय, मलियाजी जलें रे तुमें अहोजी अहो ॥ ए आंकणी ॥ दासी परिवृत मोकले गेह, निज मातानें मली ससनेह ॥ मनहर्ष०॥ १ ॥ श्याम वदन करी नीचुं जोय, चक्री चिंतातुर बहु होय ॥ म०॥ रे खगराय तुमें म म करो खेद, श्रीजय कहे सुणो तेहनो भेद ॥म०॥ २ ॥ तुमें उत्तम नरमां शिरदार, जय तो थयो काकतालो प्रकार ॥ म० ॥ तुम सम सुभट न जगमां होय, सुर नर मांहे जोतां कोय ॥ म० ॥ ३ ॥ दिव्यबल हुं मुजशुं संग्राम, एटलो काल काढयो तुमें आम ॥ म०॥ एकले विद्याबलथी न कांय, जय पराजय तो कर्मथी थाय ॥ म० ॥ ४ ॥ जय अभ्युदय लाभादिक भाव, पुण्य प्रकृष्टना ए परभाव ॥ म० ॥ तप करतां ऋणिम करी कांय, तेणें पराजय पण एणी परें थाय ॥ म०॥ ५ ॥ हेममां जडे अथवा वींधाय, मणि पण पत्थरनें नहीं कांय ॥ म० ॥ जय पराजय तेम शूरनें थाय ॥ कायर तो मनमां मुंजाय ॥ म० ॥ ६ ॥ एकवार हाखो पण वीर, वीरपणुं नवि जाय सुधीर ॥म०॥ फाल चूक्यो हरि एकज वार, पण मारे गजवरनां वार ॥म०॥ ॥ ७ ॥ सुरवरें मथियो सायर तोय, सागर ऋणिमता नवि होय ॥ म० ॥ अहित मूकाणो जे वली सूर, पण ग्रहगणनो हरतो नूर ॥ म० ॥ ८ ॥ अमावास्या लोपाए चंद, पुष्ट करे अमृतें सुरवृंद ॥ म० ॥ गोधूम रेखा सहित पीडाए, पण सहु कणथी शिरोमणि जाए ॥ म० ॥ ए ॥ घसीयो वैडूर्य न होये काच, हंस मलिन केम कागनी वाच ॥ म० ॥ गोत्रमां चक्र न चाले कोय, पण परनो संहार करे सोय ॥ म० ॥ १० ॥ अगनिनुं जोर न जलमां थाय, पण सहुथी तेजवंत कहाय ॥ म० ॥ महादेव लिंग छेद्युं पण लोक, आराधे जन थोकें थोक ॥ म० ॥ ११ ॥ इंद्रपणुं नवि जाये सार, जो पण हुआं भग हजार ॥ म० ॥ रथ जोडे ऋषि हरिनें नार, दैत्यनें मारे हरि निरधार ॥ म० ॥ १२ ॥ महादेवें बाल्यो छे का

परें सोहाय रे सो० ॥ मल्या खेचरना समवाय रे सो० ॥ निज पर वि
नाग न जणाय रें सो०॥ ज० ॥ ८ ॥ सौधर्म ईशानेंद्र परें रेलो, प्रणमे स
हु तस पाय रे सो० ॥ हवे केइ विद्याधर राय रे सो० ॥ वैताढ्यमां व
स्तु जे थाय रे सो० ॥ सार सार ते नेटणुं लाय रे सो० ॥ हय गय पत्ति
समुदाय रे सो० ॥ ज० ॥ ए ॥ वस्त्र शस्त्र बहु मूलनां रे लो, नेटणां मूके
ताम रे सो० ॥ आदर दीये तस अनिराम रे सो० ॥ विसर्ज्यां ते जाये
निज गाम रे सो० ॥ नृपना करता गुणग्राम रे सो० ॥ अतिशय आनंद
मन पाम रे सो० ॥ ज० ॥ १० ॥ स्नानादिक किरिया करे रे लो,चक्री व
यणें नूपाल रे सो० ॥ चक्री सेवा करे सुरसाल रे सो०॥ चक्री प्रार्थना क
रे तिण ताल रे सो० ॥ चक्रसुंदरी दिये निज बाल रे सो० ॥ मनवंछित
फल्यां ततकाल रे सो० ॥ ज०॥ ११ ॥ पूर्ववचन संनारतां रे लो, नोगर
त्यादिक बत्रीश रे सो०॥ निज कन्या चढत जगीश रे सो०॥ पाणिग्रहण
मानें नरईश रे सो० ॥ बीजा खेचर जेह अधीश रे सो० ॥ चित्त धारी वि
श्वावीश रे सो० ॥ ज० ॥ १२ ॥ निज निज कन्या आपता रेलो,आठ अधि
क मली हजार रे सो०॥ तेतो रूपें रति अनुहार रे सो०॥ तेडयो ज्योतिषी
ज्ञान उदार रे सो० ॥ दिये लगन उत्तम मनोहार रे सो० ॥ शुक्लपक्षनें शुन
तिथिवार रे सो० ॥ ज० ॥ १३ ॥ ग्रहबल जोइ आपियुं रेलो, देइ निमित्ति
आनें दान रे सो० ॥ वली आदरनें बहुमान रे सो० ॥ निजनगरें जइ सा
मान रे सो० ॥ करी आव्या सहु तेणें थान रे सो० ॥ चक्रीनें हर्ष अमान
रे सो० ॥ ज० ॥ १४ ॥ पाणी ग्रहण श्रीजय करें रेलो,करमोचन वेला दी
ध रे सो० ॥ हय गय रथ पत्ति प्रसिद्ध रे सो० ॥ बहु आनूषण समृद्ध रे
सो० ॥ मानुं स्वर्गथी मोलें लिद्ध रे सो०॥ सहु खेटराय दीये निद्ध रे सो०
॥ ज०॥ १५ ॥ सुख विलसे मणिसौधमां रे लो,रमे पत्नीशुं नृप देव रें सो०
जेम देवांगनाशुं देव रें सो० ॥ करे चक्री अहर्निश सेव रे सो० ॥ एहने पर
उपकारनी टेव रे सो० ॥ तेहथी पाम्यो ऋद्धि स्वयमेव रे सो० ॥ज०॥१६॥
श्रीविजयसिंह सूरीसरू रे लो, तेहना सत्यविजय पन्यास रे सो०॥ शिष्य क
पूरविजय तस खास रे सो० ॥ जेहनुं जग नाम प्रकाश रे सो० ॥ तस खि
मा विजय शुनवास रे सो०॥ तेतो क्षमा तणो आवास रे सो०॥ज०॥१७॥
जिनविजय वर तेहना रेलो, तस पंमितप्रवर प्रधान रे सो० ॥ श्रीउत्तमवि

हेम मणि प्रमुखथी,हाट शणगारे साव ॥ ६ ॥ मणि मोतीना पूरीया, स्वस्तिक घर घर वार ॥ धूपघटी बहु महमहे, विविध सुगंध द्रव्य सार ॥ ७ ॥ फूल बिछाया पंथमें, थंचे फूलनी माल ॥ नगर सुगंधमयी थयुं, विस्तर्यो गगन विशाल ॥ ८ ॥ हवे नररायनें तेडवा, खगपति लेइ परिवार ॥ विनवे आवी पधारीयें, लेइ परिवार सुसार ॥ ए ॥

॥ ढाल अठावीशमी ॥ बलद भला छे शोरवी रे लोल ॥ ए देशी ॥

॥ नरपति मानी विनती रे लो, साथें विद्याधर केइ कोडि रे सोभागी॥ वयरीना मद सवि मोडि रे सो० ॥ कोण आवे एहनी तोडि रे सो० ॥ जेहनी नही जगमां जोडी रे सो० ॥ कोण करशे एहनी होडि रे सो० ॥ १ ॥ जय जय भणे नर नारी रे लो ॥ ए आंकणी ॥ श्वेतगजेंद्र उपर चढ्यो रे लो, अहिरावण शिर जेम इंद रे सो० ॥ छत्र मिष सेवायें आव्यो चंद रे सो० ॥ वींजे चामर खेचरी वृंद रे सो० ॥ खीर सायर ऊर्मि अमंद रे सो० ॥ चामर मिष सेवे नरिंद रे सो० ॥ ज०॥ २ ॥ कोडयो गमे तूर वाजते रे लो, जशनी परें व्याप्युं आकाश रे सो० ॥ गायन स्तवे गुण सुविलास रे सो०॥ वंदीबिरुदावली बोले तास रे सो०॥ गाये धवल मंगल स्त्रीउरास रे सो० ॥ थाये नाटक पग पग खास रे सो० ॥ ज० ॥ ३ ॥ खेचर बहु गगनें चले रे लो, मानुं स्वर्गनें पृथिवी एक रे सो० ॥ कल्पवृक्षनी परें धरी टेक रे सो०॥ जाचकने दान अनेक रे ॥सो०॥ एतो धनद कहायो छेक रे ॥सो०॥ धरतो अतिशय सुविवेक रे सो०॥ज०॥४॥ चामर छत्रशुं गज चढ्यो रे लो, विद्याधर चक्रीराय रे सो०॥ तेतो परवर्यो छे जुवराय रे सो०॥ जणिमोतीना समुदाय रे सो० ॥ विद्याधरी वृंद वधाय रे सो० ॥ लुंछणा हेम वस्त्र कराय रे सो०॥ज०॥५॥ अद्भूत रूप शोभा धरे रे लो,पहिर्या दिव्य वस्त्र अलंकार रे सो० ॥ राज्यपंथ उलंघी उदार रे ॥ सो० ॥ आव्या चक्रीनें घरबार रे सो० ॥ उतरे गजवरथी तिवार रे सो० ॥ चक्री करालंबन धार रे सो० ॥ ज० ॥ ६ ॥ स्फटिक भित्ति कोइ स्थानकें रे लो, कहीं वैडूर्यमणिंडो भांति रे सो० ॥ पद्मराग कुट्टिम वन्हिकांति रे सो०॥ मरकत बंध करी भूपांति.रे सो०॥ नरपति जोतो मनखांत रे सो० ॥ पेठा चक्रीनें शांत रे सो० ॥ ज० ॥ ७ ॥ सभा सौधर्म सभा समी रेलो, मणि सिंहासनें नृप ठाय रे सो० ॥ पासें सिंहासनें खेटराय रे सो० ॥ रवि चंद

धार हो सुणो० ॥ १ ॥ तात खेचर चक्री तणा रा० ॥ पाट धास्या ज्यां न हो सु० ॥ बहुपरिवारें परवस्या रा०॥ चक्रबल अनिधान हो सु० ॥२॥ सांजली नृपति हरखिया रा० ॥ आनंद अंग न माय हो सु० ॥ दृपेदान दीये तेहनें रा०॥ शासन उन्नति थाय हो सु०॥ ३ ॥ पूर्वे अति वैरागीया रा० ॥ पाम्या परानव जेण हो सु०॥ गुरु आगमन सुणी तदा रा० ॥ शकेरा पयना एण हो सु०॥ ४ ॥ हर्षथी नृपनें खगपति रा० ॥ अंतेउर प परिवार हो सु०॥ कोडथो गमे खग परिवस्या रा० ॥ गज बेसी छत्रधार हो सु० ॥ ५ ॥ सूरि वांदवा नीकल्या रा० ॥ अनुक्रमें पोहोता उद्यान हो सु० ॥ पंचाजिगम ते साचवी रा० ॥ त्रण प्रदक्षिणादान हो सु० ॥ ६ ॥ वंदे गुरुनें विधियकी रा० ॥ गुरु पण दीये धर्मलाच हो सु० ॥ बेठा सुणवा धर्मनें रा० ॥ उचित थानक उत्साह हो सु०॥ ७॥ धर्मदेशना गुरु दीये रा० ॥ जैनधर्म जगसार हो सु० ॥ आपे त्रिभुवन संपदा रा० ॥ त्रण जगत आधार हो सु० ॥ ८ ॥ सुख अर्थी सवि प्राणिया रा० ॥ पण सुख दोय प्रकार हो सु०॥ अक्षय सुख पहेलुं कह्युं रा० ॥ निरुपाधिक अविकार हो सु०॥ ९ ॥ विपयादिकथी उपनुं रा०॥ बीजुं सुखदुःख रूप हो सु० ॥ उलख्युं जिनशासन जेणें रा० ॥ ते न पडे नवकूप हो सु० ॥१०॥ प्रथमज सुख अंगीकरे रा० ॥ विषयथी चिहुं गति दुःख हो सु० ॥ शीत ताप ज्वर कंडूनां रा० ॥ नरकमां दुःख वली नूख हो सु० ॥ ११ ॥ दुर्गंध फरस कठिन घणो रा० ॥ सुरकृत बहु संताप हो सु० ॥ ते दुःखथी बीहे नही रा० ॥ विपय अर्थे करे पाप हो सु० ॥१२॥ ताडननें वहेवरावबुं रा० ॥ अहोनिशि तापनें शीत हो सु०॥ नूख तरपनें वायरा रा०॥ दुःख सहे तिर्यंच नित्य हो सु० ॥१३ ॥ निज परजातिनो नय घणो रा० ॥ परवशपणुं असराल हो सु०॥ खमीया नें खमशे वली रा०॥ दुःख पण बीहे न बाल हो सु० ॥१४ ॥ ईर्ष्या परानव निबलनें रा० ॥ देखी वली गर्जावास हो सु० ॥ ते दुःखथी लाजे घणो रा० ॥ छं सुख देव आवास हो सु० ॥ १५॥ इष्ट वियोग अनिष्टनो रा० ॥ पामे वली संयोग हो सु० ॥ साते नय वली मनुजमां रा० ॥ कुपुत्रनें वली रोग हो सुं० ॥ १६ ॥ विरसता मानव नवतणी रा० ॥ कहेतां नावे पारहो सु० ॥ सरस करे धर्म आदरी रा० ॥ धन्य तेहनो अवतार हो सु० ॥ १७॥ महा परानव शत्रुप

जय अनिधान रे सो० ॥ तेहनो नाम परिणाम समान रे सो०॥ जेहनुं चि त्त ज्ञानने ध्यान रे सो० ॥ किरिया करता अनिदान रे सो० ॥ ज०॥१७॥ आठमा खंममांहे कही रेलो, ए अठावीशमी ढाल रे सो० ॥ खंम पूरण थयो सुरसाल रे सो०॥ श्रीउत्तमविजयनो बाल रे सो० ॥ कहे पद्मविजय सुविशाल रे सो० ॥ सुणतां होये मंगलमाल रे सो०॥ज०॥१ए॥७२५॥

॥ इतिश्रीमदुत्तमविजयगणि विनेय पंमित पद्मविजयगणि विरचिते श्री श्रीजयानंदमहाराजाधिराजकेवलिचरित्रे प्राकृतप्रबंधे चक्रायुधविद्याधर चक्रवर्त्तिजय चक्रसुंदर्यादि बहुसहस्रकन्यापाणिग्रहणादि पुण्यफलप्रकटनानु नवनादि विवर्णनोनामा अष्टमो खंमः समाप्तः सप्तम खंमे गाथा ॥४२३५॥ अष्टमखंमे गाथा ॥ ७२५ ॥ सर्वगाथा ॥ ५०६० ॥ सप्त खंमे उक्त श्लोक ॥ ७० ॥ अष्टमखंमे उक्तश्लोक ॥ ५ ॥ सर्व उक्त श्लोक ॥ ७५ ॥ सवैयो एक,समस्या एक, दोहा बे ॥ इत्यष्टम खंमः समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ अथ नवमखंमः प्रारज्यते ॥

॥ दोहा ॥

॥ शांतिनाथ प्रजु शोलमा,स्वर्णकाय सुखदाय ॥ मनमां वसतां आपदा, पन्नग दूर पलाय ॥ १ ॥ पुरुषादाणी पासजी,जे टाले नवपास ॥ इह नव पण नवि जीवनी, वंछित पूरे आश ॥ २ ॥ वचन सरस सरसति दीये, गु णगुरु गुरु श्रुत दाय ॥ दीक्षा विद्या गुरु नमुं, नवतारण सुखदाय ॥ ३ ॥ आठ खंम एणी परें कह्या, नवलो नवमो खंम ॥ नवरसमय हुं वर्णवुं, सां नलो तेह अखंम ॥ ४ ॥ सांनलतां जे उंघशे, विकथा करशे जेह ॥ संमू र्छिम परें हारशे, धर्म अर्थ वली तेह ॥ ५ ॥ अधवच उठी मत जशो,मत हुलरावो बाल ॥ आकुं अवलुं मत जूउ, जो सुणो वयण रसाल ॥ ६ ॥ वदन प्रसन्न करी सांनले, समजे रहस्यनी वात ॥ पूर्वापर सवि मेलवे, श्रोता ते कहेवात ॥ ७ ॥

॥ ढाल पहेली ॥ घोडी ते आइ थारा देशमां मारूजी ॥ ए देशी ॥

॥ एकदिन वेग सना करी राजनजी, चक्रीप्रमुख परिवारहो सुणो ध र्मस्नेही प्राणिया राजनजी ॥ वनपालक नूपालनें रा०॥ कहे विनती अव

धार हो सुणो० ॥ १ ॥ तात खेचर चक्री तणा रा० ॥ पाव धारया उद्या न हो सु० ॥ बहुपरिवारें परवस्या रा०॥ चक्रबल अनिधान हो सु० ॥२॥ सांनली नृपति हरखिया रा० ॥ आनंद अंग न माय हो सु० ॥ हर्षदान दीये तेहनें रा०॥ शासन उन्नति थाय हो सु०॥ ३ ॥ पूर्वें अति वैरागीया रा० ॥ पाम्या परानव जेण हो सु०॥ गुरु आगमन सुणी तदा रा० ॥ शर्करा पयना एण हो सु०॥ ४ ॥ हर्षथी नृपनें खगपति रा० ॥ अंतेउर प परिवार हो सु०॥ कोडचो गमे खग परिवस्या रा० ॥ गज बेसी ढत्रधार हो सु० ॥ ५ ॥ सूरि वांदवा नीकल्या रा० ॥ अनुक्रमें पोहोता उद्यान हो सु० ॥ पंचान्निगम ते साचवी रा० ॥ त्रण प्रदक्षिणादान हो सु० ॥ ६ ॥ वंदे गुरुनें विधिथकी रा० ॥ गुरु पण दीये धर्मलान हो सु० ॥ बेग सुण वा धर्मनें रा० ॥ उचित थानक उत्साह हो सु०॥ ७॥ धर्मदेशना गुरु दीये रा० ॥ जैनधर्म जगसार हो सु० ॥ आपे त्रिजुवन संपदा रा० ॥ त्रण जगत आधार हो सु० ॥ ८ ॥ सुख अर्थी सवि प्राणिया रा० ॥ पण सुख दोय प्रकार हो सु०॥ अक्षय सुख पहेलुं कह्युं रा० ॥ निरुपाधिक अविकार हो सु०॥ ९ ॥ विषयादिकथी उपनुं रा०॥ बीजुं सुखडुःख रूप हो सु० ॥ उलख्युं जिनशासन जेणें रा० ॥ ते न पडे नवकूप हो सु० ॥१०॥ प्रथमज सुख अंगीकरे रा० ॥ विषयथी चिहुं गति डुःख हो सु० ॥ शीत ताप ज्वर कंमूनां रा० ॥ नरकमां डुःख वली नूख हो सु० ॥ ११ ॥ डुर्गंध फरस कठिन घणो रा० ॥ सुरकृत बहु संताप हो सु० ॥ ते डुःखथी बीहे नही रा० ॥ विषय अर्थें करे पाप हो सु० ॥१२॥ ताडननें वहेवरावबुं रा० ॥ अहोनिशि तापनें शीत हो सु०॥ नूख तरषनें वायरा रा०॥ डुःख सहे तिर्यंच नित्य हो सु० ॥१३ ॥ निज परजातिनो नय घणो रा० ॥ परवशपणुं असराल हो सु०॥ खमीया नें खमशे वली रा०॥ डुःख पण बीहे न बाल हो सु० ॥१४ ॥ ईर्ष्या परानव निबलनें रा० ॥ देखी वली गर्नावास हो सु० ॥ ते डुःखथी लाजे घणो रा० ॥ छं सुख देव आवास हो सु० ॥ १५॥ इष्ट वियोग अनिष्टनो रा० ॥पामे वली संयोग हो सु० ॥ साते नय वली मनुजमां रा० ॥ कुपुत्रनें वली रोग हो सु० ॥ १६ ॥ विरसता मानव नवतणी रा० ॥ कहेतां नावे पारहो सु० ॥ सरस करे धर्म आदरी रा० ॥ धन्य तेहनो अवतार हो सु० ॥ १७॥ महा परानव शत्रुथ

की रा० ॥ पुत्र कलत्र अविश्वास हो सु० ॥ मरणनीक अति आकरी रा० ॥ वली दुर्ध्यान अन्यास हो सु० ॥ १८ ॥ परिग्रह आरंन बहु करे रा० ॥ पाप करी अति घोर हो सु० ॥ मरण लहीनें परनवें रा० ॥ दुःख खमे अति जोर हो सु० ॥१९ ॥ वलीय कषाय उदीरता रा०॥ चालता राक्षस तेह हो सु० ॥ पूरव पुण्य खाली करे रा० ॥ विषय वेताल वली जेह हो सु० ॥ २०॥ नाश करे विवेकनो रा० ॥ राज्य ते नरकनुं गय हो सु० ॥ माचे राज्यमां पण नही रा० ॥ दुःखत्रायक कोइ थाय हो सु० ॥ २१ ॥ राज्यें मरण न राखीयुं रा०॥ रोगनें नय विध्वंस हो सु०॥ न कस्यो तो मद राज्यनो रा० ॥ करतां होय गुणभ्रंश हो सु० ॥२२ ॥ राज्यमां धर्म न करी शके रा० ॥ राज्यमां बहु जंजाल हो सु० ॥ पुत्र कलत्र सहु स्वारथी रा० ॥ लखमी अनित्य संनाल हो सु० ॥ २३ ॥ मोह त्यजी राजऋद्धिनो रा० ॥ धर्म करो निरावाध हो सु०॥ धर्म ते बेहु नेदें कह्यो रा० ॥ गृही यतिधर्म सुसाध हो सु० ॥२४ ॥ पोहोंचाडे स्वर्ग बारमें रा०॥ अनुक्रमें शिवपद थाय हो सु०॥उत्कृष्टो गृही धर्म ए रा० ॥ बीजो तुरत शिव दाय हो सु० ॥२५ ॥ पण यतिधर्म आराधीयें रा० ॥ तुरत दीये देववास हो सु० ॥ दान पूजा गृही धर्ममां रा० ॥ श्रद्धा व्रत वली खास हो सु० ॥ २६ ॥ आवश्यक संघ पूजना रा० ॥ ए बेहु धर्ममां एक हो सु० ॥ यथाशक्ति अंगीकरो रा० ॥ अंगें धरीय विवेक हो सु० ॥ २७ ॥ नरनव पामी दोहिलो रा० ॥ कोण करे धर्ममां ढील हो सु० ॥ मरण बीहीक केम गइ अछे रा० ॥ आधि व्याधिनी पील हो सु० ॥ २८॥ के फरी आववुं छे नही रा० ॥ के नही दुर्गति दुःख हो सु०॥ उद्यम न करो धर्मनो रा० ॥ जेहथी लहो शिवसुख हो सु० ॥ २९ ॥ नवमे खंर्मे ए कही रा० ॥ पहेली देशना ढाल हो सु० ॥ पद्मविजय सोहामणी रा० ॥ सुणतां मंगलमाल हो सु० ॥ ३०॥ सर्वगाथा ॥३७॥

॥ दोहा ॥

॥ एणी परें सांनली देशना, प्रणमे श्रीगुरु पाय ॥ कर जोडीनें वीनवे, श्रीजयानंदजी राय ॥ १ ॥ शक्ति नथी चारित्रनी, दुष्कर संयम नार ॥ समकेत मूल में आदस्यां,पहेलां अणुव्रत चार॥२॥ नियम ग्रहुं तुम साखथी, पूजा अष्ट प्रकार ॥ वली गुरु योगें प्रणमीने, करशुं नित्य आहार॥३॥ पर

वदिनें नित्य आदरुं, ब्रह्मचर्य मनोहार ॥ आरंन वर्जुं ते दिनें, साधर्मिक सत्कार ॥४॥ चैत्र प्रमुख अठाइयें, वर्त्तावुं अमार ॥ जिनप्रासादनें विंब वली, सहस्र गमे करुं सार ॥ ५ ॥ पुस्तक वली लखावशुं, जिनवर नाषित जेह ॥ संघचतुर्विध पूजशुं, विधि पूर्वक ससनेह ॥ ६ ॥ श्रावक व्रतधारी तणो, कर नवि लेशुं कोय ॥ दानादिक वली आचरुं, दीन अनाथ जे होय ॥ ७ ॥ जिनशासन परजावना, करशुं बहु प्रकार ॥ गुरु कहे राजन सांनलो, पालजो चित्त उदार ॥ ८ ॥ धर्मतत्त्वनुं रहस्य ए, पाले कर्म क्षय थाय ॥ पुण्यानुबंधी पुण्य जे, एहथी बहु बंधाय ॥ ए ॥ निश्चल थइ आराधजो, मोक्षनां सुख होये जाव ॥ प्रणमी नरपति विनवे, अवसर पामी ताव ॥ १० ॥ एणे नव होशे के नही, नगवन चारित्र मुज्ऊ ॥ तव गुरु कहे तुज होयशे, हरख्यो सांनली गुज्ऊ ॥ ११ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ संयमथी सुख पामीयें ॥ ए देशी ॥

॥ खेचर चक्री एम नणे, विनयें वंदी पाय सुगुरुजी ॥ पाम्यो परानव संगरें. कांयक बूज्यो ताय ॥ सु० ॥ १ ॥ तुम वयणां अति मीठडां ॥ ए आंकणी ॥ तुम वयणें हवे बूजीयो, लेशुं संयम नार सु० ॥ राज्यथकी हुं विरमियो, जाण्यो असार संसार सु० ॥ तु० ॥ २ ॥ राज्य स्वस्थ करी आवशुं, तुम पासें निरधार सु० ॥ तावत्काल कृपा करी, रहेवुं मुज उपकार सु० ॥ तु० ॥ ३ ॥ एम कही गुरुना पय नमी, केइक समकेत धार सु०॥ देशविरति केइ आदरी, आवे निज आगार सु० ॥ तु० ॥ ४ ॥ हवे विद्याधर राजियो, मंत्रीशुं करीय विचार ॥ राजनजी ॥ स्नेहथी श्रीजयानंदनें, बोलावे अति प्यार रा०॥ तु०॥ ५ ॥ राज्य तुमें वैताढ्यनुं, मुज जीतीनें लीध रा० ॥ ते कारण तुमनें हवे, करुं अनिषेक प्रसिद्ध रा० ॥ तु० ॥ ॥ ६ ॥ कहे श्रीजय मुज खप नही, निज राज्यें संतोप रा० ॥ आपो निज सुतनें तुमें, योग्य ठे ते सुविशेप रा०॥ तु० ॥ ७ ॥ दूरथकी पण तेहनी, रक्षा करशुं नित्य रा०॥ तुम परें हित धरशुं सदा, चिंता न करवी चित्त रा०॥ तु०॥ ८॥ खेचर पति कहे सांनलो,तुम खोले ठे एह रा०॥ राज्य तो एह तुमारडुं. एहमां नहीं संदेह रा० ॥ तु० ॥ ए ॥ तुमें एहनें वली आपजो, तुम रुचि होये जेह रा० ॥ में पण एहवुं सांनल्युं, सांनलो कहियें तेह रा० ॥ तु० ॥ १० ॥ नरत अर्द्धना अधिपति, तिम वैताढ्य समेत

की रा० ॥ पुत्र कलत्र अविश्वास हो सु० ॥ मरणनीक अति आकरी रा० ॥ वली दुर्ध्यान अन्यास हो सु० ॥ १८ ॥ परिग्रह आरंन बहु करे रा० ॥ पाप करी अति घोर हो सु० ॥ मरण लहीनें परनवें रा० ॥ दुःख खमे अति जोर हो सु० ॥१९ ॥ वलीय कषाय उदीरता रा०॥ चालता राक्षस तेह हो सु० ॥ पूरव पुण्य खाली करे रा० ॥ विषय वेताल वली जेह हो सु० ॥ २०॥ नाश करे विवेकनो रा० ॥ राज्य ते नरकनुं गय हो सु० ॥ माचे राज्यमां पण नही रा० ॥ दुःखत्रायक कोइ थाय हो सु० ॥ २१ ॥ राज्यें मरण न राखीयुं रा०॥ रोगनें नय विध्वंस हो सु०॥ न कस्यो तो मद राज्यनो रा० ॥ करतां होय गुणभ्रंश हो सु० ॥२२ ॥ राज्यमां धर्म न करी शके रा० ॥ राज्यमां बहु जंजाल हो सु० ॥ पुत्र कलत्र सहु स्वारथी रा० ॥ लखमी अनित्य संनाल हो सु० ॥ २३ ॥ मोह त्यजी राजरुद्धिनो रा० ॥ धर्म करो निराबाध हो सु०॥ धर्म ते बेहु नेदें कह्यो रा० ॥ गृही यतिधर्म सुसाध हो सु० ॥२४ ॥ पोहोंचाडे स्वर्ग बारमें रा०॥ अनुक्रमें शिवपद थाय हो सु०॥उत्कृष्टो गृही धर्म ए रा० ॥ बीजो तुरत शिव दाय हो सु० ॥२५ ॥ पण यतिधर्म आराधीयें रा० ॥ तुरत दीये देववास हो सु० ॥ दान पूजा गृही धर्ममां रा० ॥ श्रद्धा व्रत वली खास हो सु० ॥ २६ ॥ आवश्यक संघ पूजना रा० ॥ ए बेहु धर्ममां एक हो सु० ॥ यथाशक्ति अंगीकरो रा० ॥ अंगें धरीय विवेक हो सु० ॥ २७ ॥ नरनव पामी दोहिलो रा० ॥ कोण करे धर्ममां ढील हो सु० ॥ मरण बीहीक केम गइ अछे रा० ॥ आधि व्याधिनी पील हो सु० ॥ २८॥ के फरी आववुं छे नही रा० ॥ के नही दुर्गति दुःख हो सु०॥ उद्यम न करो धर्मनो रा० ॥ जेहथी लहो शिवसुख हो सु० ॥ २९ ॥ नवमे खंडें ए कही रा० ॥ पहेली देशना ढाल हो सु० ॥ पद्मविजय सोहामणी रा० ॥ सुणतां मंगलमाल हो सु० ॥ ३०॥ सर्वगाथा ॥३७॥

॥ दोहा ॥

॥ एणी परें सांनली देशना, प्रणमे श्रीगुरु पाय ॥ कर जोडीनें वीनवे, श्रीजयानंदजी राय ॥ १ ॥ शक्ति नथी चारित्रनी, दुष्कर संयम नार ॥ समकेत मूल में आदस्यां,पहेलां अणुव्रत चार॥२॥ नियम ग्रहुं तुम साखथी, पूजा अष्ट प्रकार ॥ वली गुरु योगें प्रणमीने, करशुं नित्य आहार ॥३॥ पर

वदिनें नित्य आदरुं, ब्रह्मचर्य मनोहार ॥ आरंभ वर्जुं ते दिनें, साधर्मिक सत्कार ॥४॥ चैत्र प्रमुख अट्ठाइयें, वर्त्तावुं अमार ॥ जिनप्रासादनें बिंब वली, सहस्र गमे करुं सार ॥ ५ ॥ पुस्तक वली लखावशुं, जिनवर भाषित जेह ॥ संघचतुर्विध पूजशुं, विधि पूर्वक ससनेह ॥ ६ ॥ श्रावक व्रतधारी तणो, कर नवि लेशुं कोय ॥ दानादिक वली आचरुं, दीन अनाथ जे होय ॥ ७ ॥ जिनशासन परभावना, करशुं बहु प्रकार ॥ गुरु कहे राजन सांभलो, पालजो चित्त उदार ॥ ८ ॥ धर्मतत्त्वनुं रहस्य ए, पाले कर्म क्षय थाय ॥ पुण्यानुबंधी पुण्य जे, एहथी बहु बंधाय ॥ ९ ॥ निश्चल थइ आराधजो, मोक्षनां सुख होये जाव ॥ प्रणमी नरपति विनवे, अवसर पामी ताव ॥ १० ॥ एणे भव होशे के नही, भगवन चारित्र मुझ ॥ तव गुरु कहे तुज होयशे, हरष्यो सांभली गुझ ॥ ११ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ संयमथी सुख पामीयें ॥ ए देशी ॥

॥ खेचर चक्री एम भणे, विनयें वंदी पाय सुगुरुजी ॥ पाम्यो परभव संगरें, कांयक बूज्यो ताय ॥ सु० ॥ १ ॥ तुम वयणां अति मीठडां ॥ ए आंकणी ॥ तुम वयणें हवे बूजीयो, लेशुं संयम भार सु० ॥ राज्यथकी हुं विरमियो, जाण्यो असार संसार सु० ॥ तु० ॥ २ ॥ राज्य स्वस्थ करी आवशुं, तुम पासें निरधार सु० ॥ तावत्काल कृपा करी, रहेवुं मुज उपकार सु० ॥ तु० ॥ ३ ॥ एम कही गुरुना पय नमी, केइक समकेत धार सु०॥ देशविरति केइ आदरी, आवे निज आगार सु० ॥ तु० ॥ ४ ॥ हवे विद्याधर राजियो, मंत्रीशुं करीय विचार ॥ राजनजी ॥ स्नेहथी श्रीजयानंदनें, बोलावे अति प्यार रा०॥ तु०॥ ५ ॥ राज्य तुमें वैताढ्यनुं, मुज जीतीनें लीध रा० ॥ ते कारण तुमनें हवे, करुं अभिषेक प्रसिद्ध रा० ॥ तु० ॥ ॥ ६ ॥ कहे श्रीजय मुज खप नही, निज राज्यें संतोष रा० ॥ आपो निज सुतनें तुमें, योग्य छे ते सुविशेष रा०॥ तु० ॥ ७ ॥ दूरथकी पण तेहनी, रक्षा करशुं नित्य रा०॥ तुम परें हित धरशुं सदा, चिंता न करवी चित्त रा०॥ तु०॥८॥ खेचर पति कहे सांभलो,तुम बोले छे एह रा०॥ राज्य तो एह तुमारडुं. एहमां नहीं संदेह रा० ॥ तु० ॥ ९ ॥ तुमें एहनें वली आपजो, तुम रुचि होये जेह रा० ॥ में पण एहवुं सांभल्युं, सांभलो कहिये तेह रा० ॥ तु० ॥ १० ॥ भरत अर्द्धना अधिपति, तिम वैताढ्य समेत

की रा० ॥ पुत्र कलत्र अविश्वास हो सु० ॥ मरणनीक अति आकरी रा० ॥ वली डुर्ध्यान अन्यास हो सु० ॥ १८ ॥ परिग्रह आरंन बहु करे रा० ॥ पाप करी अति घोर हो सु० ॥ मरण लहीनें परनवें रा० ॥ डुःख खमे अति जोर हो सु० ॥१९ ॥ वलीय कषाय उदीरता रा०॥ चालता राक्षस तेह हो सु० ॥ पूरव पुण्य खाली करे रा० ॥ विषय वेताल वली जेह हो सु० ॥ २०॥ नाश करे विवेकनो रा० ॥ राज्य ते नरकनुं गय हो सु० ॥ माचे राज्यमां पण नही रा० ॥ डुःखत्रायक कोइ थाय हो सु० ॥ २१ ॥ राज्यें मरण न राखीयुं रा०॥ रोगनें नय विध्वंस हो सु०॥ न कह्यो तो मद राज्यनो रा० ॥ करतां होय गुणभ्रंश हो सु० ॥२२ ॥ राज्यमां धर्म न करी शके रा० ॥ राज्यमां बहु जंजाल हो सु० ॥ पुत्र कलत्र सहु स्वारथी रा० ॥ लखमी अनित्य संनाल हो सु० ॥ २३ ॥ मोह त्यजी राजऋद्धिनो रा० ॥ धर्म करो निरावाध हो सु०॥ धर्म ते बेहु नेदें कह्यो रा० ॥ गृही यतिधर्म सुसाध हो सु० ॥२४ ॥ पोहोंचाडे स्वर्ग बारमें रा०॥ अनुक्रमें शिवपद थाय हो सु०॥उत्कृष्टो गृही धर्म ए रा० ॥ बीजो तुरत शिव दाय हो सु० ॥२५ ॥ पण यतिधर्म आराधीयें रा० ॥ तुरत दीये देववास हो सु० ॥ दान पूजा गृही धर्ममां रा० ॥ श्रद्धा व्रत वली खास हो सु० ॥ २६ ॥ आवश्यक संघ पूजना रा० ॥ ए बेहु धर्ममां एक हो सु० ॥ यथाशक्ति अंगीकरो रा० ॥ अंगें धरीय विवेक हो सु० ॥ २७ ॥ नरनव पामी दोहिलो रा० ॥ कोण करे धर्ममां ढील हो सु० ॥ मरण बीहीक केम गइ अछे रा० ॥ आधि व्याधिनी पील हो सु० ॥ २८॥ के फरी आववुं छे नही रा० ॥ के नही डुर्गति डुःख हो सु०॥ उद्यम न करो धर्मनो रा० ॥ जेहथी लहो शिवसुख हो सु० ॥ २९ ॥ नवमे खंडें ए कही रा०॥ पहेली देशना ढाल हो सु० ॥ पद्मविजय सोहामणी रा० ॥ सुणतां मंगलमाल हो सु० ॥ ३०॥ सर्वगाथा ॥३७॥

॥ दोहा ॥

॥ एणी परें सांनली देशना, प्रणमे श्रीगुरु पाय ॥ कर जोडीनें वीनवे, श्रीजयानंदजी राय ॥ १ ॥ शक्ति नथी चारित्रनी, डुष्कर संयम नार ॥ समकेत मूल में आदर्यां,पहेलां अणुव्रत चार॥२॥ नियम ग्रहुं तुम साखथी, पूजा अष्ट प्रकार ॥ वली गुरु योगें प्रणमीने, करशुं नित्य आहार॥३॥ पर

वदिनें नित्य आदरुं, ब्रह्मचर्य मनोहार ॥ आरंन वर्जुं ते दिनें, साधर्मिक सत्कार ॥४॥ चैत्र प्रमुख अठाइयें, वर्त्तावुं अमार ॥ जिनप्रासादनें बिंब वली, सहस्र गमे करुं सार ॥ ५ ॥ पुस्तक वली लखावशुं, जिनवर नाषित जेह ॥ संघचतुर्विध पूजशुं, विधि पूर्वक ससनेह ॥ ६ ॥ श्रावक व्रतधारी तणो, कर नवि लेशुं कोय ॥ दानादिक वली आचरुं, दीन अनाथ जे होय ॥ ७ ॥ जिनशासन परज्ञावना, करशुं बहु प्रकार ॥ गुरु कहे राजन सांनलो, पालजो चित्त उदार ॥ ८ ॥ धर्मतत्त्वनुं रहस्य ए, पाले कर्म क्षय थाय ॥ पुण्यानुबंधी पुण्य जे, एहथी बहु बंधाय ॥ ए ॥ निश्चल थइ आराधजो, मोक्षनां सुख होये ज्याव ॥ प्रणमी नरपति विनवे, अवसर पामी ताव ॥ १० ॥ एणे जव होशे के नही, जगवन चारित्र मुज ॥ तव गुरु कहे तुज होयशे, हरष्यो सांनली गुज्ज ॥ ११ ॥

॥ ढाल बीजी ॥ संयमथी सुख पामीयें ॥ ए देशी ॥

॥ खेचर चक्री एम नणे, विनयें वंदी पाय सुगुरुजी ॥ पाम्यो परानव संगरें, कांयक बूज्यो ताय ॥ सु० ॥ १ ॥ तुम वयणां अति मीठडां ॥ ए आंकणी ॥ तुम वयणें हवे बूजीयो, लेशुं संयम नार सु० ॥ राज्यथकी हुं विरमियो, जाण्यो असार संसार सु० ॥ तु० ॥ २ ॥ राज्य स्वस्थ करी आवशुं, तुम पासें निरधार सु० ॥ तावत्काल कृपा करी, रहेवुं मुज उपकार सु० ॥ तु० ॥ ३ ॥ एम कही गुरुना पय नमी, केइक समकेत धार सु०॥ देशविरति केइ आदरी, आवे निज आगार सु० ॥ तु० ॥ ४ ॥ हवे विद्याधर राजियो, मंत्रीशुं करीय विचार ॥ राजनजी ॥ स्नेहथी श्रीजयानंदनें, बोलावे अति प्यार रा०॥ तु०॥ ५ ॥ राज्य तुमें वैताढ्यनुं, मुज जीतीनें लीध रा० ॥ ते कारण तुमनें हवे, करुं अनिषेक प्रसिद्ध रा० ॥ तु० ॥ ॥ ६ ॥ कहे श्रीजय मुज खप नही, निज राज्यें संतोष रा० ॥ आपो निज सुतनें तुमें, योग्य ठे ते सुविशेष रा०॥ तु० ॥ ७ ॥ दूरथकी पण तेहनी, रक्षा करशुं नित्य रा०॥ तुम परें हित धरशुं सदा, चिंता न करवी चित्त रा०॥ तु०॥८॥ खेचर पति कहे सांनलो,तुम खोले ठे एह रा०॥ राज्य तो एह तुमारडुं, एहमां नहीं संदेह रा० ॥ तु० ॥ ए ॥ तुमें एहनें वली आपजो, तुम रुचि होये जेह रा० ॥ में पण एहवुं सांनल्युं, सांनलो कहिये तेह रा० ॥ तु० ॥ १० ॥ नरत अर्द्धना अधिपति, तिम वैताढ्य समेत

रा० ॥ ज्ञानीयें नाख्युं में सांनल्युं.करुं अनिषेक ते हेत रा०॥ तु०॥ ११ ॥ प्रार्थना नंग न कीजीयें, थाये धर्म अंतराय रा० ॥ मौन करे तव नृप ति, तव खेचरपति राय ॥ रा० ॥ तु० ॥ १२ ॥ थापी मणिसिंहासनें, सामग्री सवि जुग रा०॥ पवनवेगादिक खेचरा, कोडयो गमे संजुत्त रा० ॥ तु० ॥ १३॥ राजानिषेक करे तिहां,मांहा महोत्सव विस्तार रा० ॥ चक्र वेगादिक पुत्रनें, सोंपे सेना नंमार रा० ॥ तु० ॥ १४ ॥ प्रणमे खेटचक्री तदा, तेम सहु खेचर राय रा०॥ इंद्र रूपांतरें आवियो, तेम शोना तस थाय रा० ॥ तु० ॥१५॥ करे अठाइ महोत्सव वली, संघनक्ति सुविशाल रा० ॥ पडह अमारि वजावतो, मास लगें खगपाल रा० ॥ तु० ॥ १६ ॥ आठ सहस खग राजिया, राणीयो शोल हजार रा० ॥ सऊ थयां सहु सामटां, लेवा संयम नार रा० ॥ तु० ॥ १७ ॥ शक्र तीर्थंकरनी परें, उ त्सव श्रीजयानंद रा० ॥ चक्रवेगादिकशुं करे, मंगल स्नान खगेंद रा० ॥ ॥ तु० ॥ १८ ॥ देवदूष्य पहेरावतां, दीपता अति अलंकार रा० ॥ बेठा प्रवर विमानमां, दीक्षा उत्सुक परिवार रा० ॥ तु० ॥ १९॥ अमर छत्र धरावता, चंद्रउज्ज्वल अनुहार रा० ॥ कोडयो सुनटशुं नरपति, चाले आ गल तेणि वार ॥रा०॥तु०॥२०॥ विद्या धरी कोडयो गमे, बेठी चाले विमान रा० ॥ गीत गान करती थकी, देता दीननें दान रा० ॥ तु० ॥ २१ ॥ बंदि बिरुद बोली जते, नाटक नवनव रंग रा० ॥ देवता जय जय रव करे, हर्ष धरी उछरंग रा० ॥ तु० ॥ २२ ॥ वाजे देवनी डुंदनि, पग पग देता दान रा० ॥ आव्या गुरु चरणे क्रमे, नगर बाहिर उद्यान रा० ॥ तु० ॥ २३ ॥ उ तरीया ते विमानथी, सहु साथें करे लोच रा० ॥ गुरुने एणी परें विनवे, ठांमी मन संकोच रा० ॥ तु० ॥ २४ ॥ नव सायरथी तारीयें, गुरुपण ते हने ताम ॥ रा० ॥ विधिपूर्वक दीक्षादीये, सहुने गुरु गुण धाम ॥ रा० ॥ ॥ तु०॥ २५ ॥ वास सुगंध गुरु दीये, सुरसंघनें अनिराम रा० ॥ सहु मली तस मस्तक ठवे, जय जयकार उदाम रा० ॥तु०॥२६॥ हित शिक्षा सवि संघने, देशना दीयें गुरुराय रा० ॥ वंदी गुरुने नरपति, वंदे चक्री रुषिराय रा०॥तु० ॥ २७ ॥ नवमे खंमें बीजी कही, पद्मविजय एम ढाल रा० ॥ उत्सव रंग वधामणां, घर घर मंगल माल रा० ॥ तु० ॥ २८॥ ७६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ चक्रायुधनें खमावता, नरपति निज अपराध ॥ शेष मुनीश्वरने वली, प्रणमे नक्ति अगाध ॥ १ ॥ सहु निज निज थानक गया, गुरु विचख्या अन्य गण ॥ बहुपरिवारें परवख्या, द्विविध शिक्षा दिये दाण ॥ २ ॥ श्रीजयानंद नृपति हवे, बहु विद्याधर वृंद ॥ चक्रवेग पवनादिका, सेवे हर्ष अमंद ॥ ३ ॥ वैताढ्यने अन्य द्वीपमां, वलीवासी वली जेह ॥ अन्य पर्वतना नावीया, सेवा अर्थे तेह ॥ ४ ॥ सेनाशुं जइ तिहां कणे, लीलायें जय कीध ॥ एम विद्याधर चक्रीनी, पदवी थइ परसिद्ध ॥ ५ ॥ सुखमां एम रहेतां थकां, गगन वल्लन पुरमांहि ॥ काल केतो एक काढीयो, धरता अंगउछांहि ॥ ६ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥ दक्षिण दोहिलो हो राज ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन सूतां हो राज, रयणी समयें हो राज, उंघे के जागे रे नाखे सुरवर एणीपरें जी ॥ नृप कहे जागुं हो राज, तव सुर बोले हो राज, गिरिचूड नामे रे,देव हुं आव्यो तुज घरे जी ॥ १ ॥ तें प्रतिबोध्यो हो राज, इहां आव्यो हो राज, तेहनो हेतु रे,सांनल तुजनें हुं कहुं जी ॥ तापस बोधि हो राज, श्रावक कीधा हो राज, फरी तुमें नाव्या रे, वाट जूए तुमची सहुजी ॥ २ ॥ हेमप्रन सूरि हो राज, तेहनी वाणी हो राज, सांनली मनमां रे, तेह घणुं वैरागीयाजी ॥ तापससुंदरी हो राज, विघननो हेतु हो राज, दीक्षा लेवा रे, सहु इहे चित्त जागीयाजी ॥ ३ ॥ ए प्रतिबंधे हो राज, व्रत न लेवाये हो राज, तेणे तिहां आवी रे, निजप्रिया निज पासें करोजी ॥ विघन ते टलशे हो राज, सहु व्रत लेशे हो राज, विण अपराधें रे,नारीवियोग शाने धरोजी॥४॥अष्टम करीने हो राज,मुज आराध्यो हो राज, ज्ञानीनें वचनें रे, जाणीनें आव्यो इहांजी ॥ तुमनें जणव्युं हो राज, गयो एम कहीनें हो राज, गुण संन्नारी रे, पत्नीना नृप चिंतवे तिहांजी ॥ ॥ ५ ॥ मात पितानें हो राज, मलवा मनडुं हो राज, तेणें वर खेचर रे, तेडी विचार करी हवेजी ॥ चक्रीसुतनें हो राज, चक्रवेगनें हो राज, उत्तर श्रेणीनो रे, अधिपति करी राज्यें ठवेजी ॥ ६ ॥ बीजा नाइनें हो राज, उचित ते दीधां हो राज,नगर पुरादिक रे,आपी सहु संतोषीयाजी ॥ अधिपति कीधो हो राज, दक्षिण श्रेणीनो होराज, पवनवेगने रे, नरपतियें घणुं पोषीयोजी ॥ ७ ॥ ग्रास पूरवला हो राज, सहुनें दीधा हो राज,केइनें दीधा

रे, वलीअ नवा सेवक नणाजी ॥ निष्फल न होयें हो राज, कीधी सेवा हो राज, गुणनिधि साहेब रे, संजारे ते सहु तणीजी ॥ ८ ॥ विरुद्ध ख मावी हो राज,योग्य खेचरनें हो राज,पूठी वहुलुं रे,सैन्य सहित नृप चाली याजी ॥ वेशी विमानें होराज,सवि प्रिया साथें होराज,पवनवेगादिक राय रे, चक्रवेगशुं म्हालीयाजी ॥ ए ॥ खगपति कोडयो होराज, साथें चाल्या होराज, अनुक्रमें आव्या रे, तापस आश्रम जिहां कणेजी ॥ प्रतिपत्ति क रीनें होराज, तापस तोप्या होराज, रोती आश्वासें रे, निज प्रियानें धैरय घणेजी ॥१०॥ हेमप्रन्न गुरुजी होराज, ज्ञाने जाणी होराज, व्रतनो अव सर रे, अनुग्रह करीने पधारीयाजी ॥ गिरिचूडदेव हो राज,नरपति मलीनें हो राज, करता उत्सव रे, बहुविध मनमां धारियाजी ॥ ११॥ हेमजट प्र मुख हो राज,तापस सघला हो राज, लेवे दीक्षा रे,शिक्षा गुरुनी चित्त धरे जी ॥ करे प्रशंसा हो राज, तापस केरी हो राज, करकज जोडी रे, विनय धरी बहु आदरेंजी ॥१२॥ मुनिवर प्रणमी हो राज,नारीनें लेइ हो राज,ल खमी पुरनें रे, बाहिर आव्या ते वहीजी ॥ गगन ते ठायुं हो राज,विद्याधर शुं होराज, नरपति विजय रे, जाणे शत्रु आव्यो सहीजी ॥ १३ ॥ युद्ध सामग्री होराज, निकले करीनें होराज, विद्याधर दोय ताम रे, श्रीजयानं दजी मोकलेजी ॥ प्रणमी नाखे होराज,तुम सुत आया होराज,लखमी ली ला रे, श्रीजयानंदनी को कलेजी ॥ १४ ॥ हर्ष आश्चर्य होराज, नृपति पा मे होराज,बहुली ऋद्धि रे, पुत्र आगमन सुणी करीजी ॥ उचित ते आपी होराज, करिवरें बेशी होराज, साहामा आवे रे, चित्त प्रमोद घणो ध रीजी ॥ १५ ॥ उतरे विमानथी होराज, श्रीजयानंद होराज,प्रणमे तात नां रे, चरण सरोज सुहंकरुजी ॥ खेचर सहुए हो राज, सहुप्रिया साथें होराज, प्रणमे नृपनें रे, बोलावे वयण मनोहरुजी ॥ १६ ॥ नवमे खंडें होराज, त्रीजी ढाल होराज, श्रीजयानंदनें रे, रासें पद्मविजय कहीजी॥ हर्षे मलिया होराज, सुखमां जलीया होराज, पुत्रपितायें रे, अंतर प्री ति बहु लहीजी ॥ १७ ॥ सर्वगाथा ॥ एए ॥

॥ दोहा ॥

॥ शक्र जयंत परें बिहु, पेठा नयर मजार ॥ प्रिया सहित माता प्रत्यें, प्रणमे हर्ष अपार ॥ १ ॥ पुत्र पुत्रवधु देखीनें, मनमां हर्ष न माय ॥ श्री

जयपूर्वापर प्रिया, बोलावे चित्त लाय ॥ २ ॥ मधुर वय प्रिय सांजली,धरती अतिशय प्रीति ॥ गौरी गिरीश चंद्रकुमुदिनी,गज रेवानी रीति ॥३॥ श्रीविज यनी परषदा, मांहे अवसर पामि ॥ पवनवेग श्रीजयतणुं, चरित्र कहे अ निराम ॥ ४ ॥ सांजली चित्तमां चमकिया, परषदनें वली ताय ॥ स्तवना करता सहु जना, हैयडे हर्ष न माय ॥ ५ ॥

॥ ढाल चोथी ॥ आबु अचल रलियामणो रे, जिन राजे ठे ॥ ए देशी ॥

॥ मध्यखंम हवे साधवा ॥ जश गाजे ठे ॥ श्रीजयानंद राजान, ठ कुराइ ठाजे ठे ॥ पहेला पूरव दिशजणी ॥ जश० ॥ साथें सामंत प्रधान ॥ ठ० ॥ १ ॥ सेना चतुरंगी करी ॥ ज० ॥ सहु राजवी कीधा जेर ॥ ठ०॥ पूरव सायर तट लगें ॥ ज० ॥ बलवंती जस समसेर ॥ ठ० ॥ २॥ वंग क लंग कालिंगना ॥ ज० ॥ देशना जीत्या सहु राय ॥ठ० ॥ पग पग जश थं न रोपीया ॥ ज० ॥ नाम सांजली नमवा आय ॥ ठ० ॥ ३ ॥ महेंद्रनाथ मुख राजिया ॥ ज० ॥ जे कोइनी न माने आण ॥ ठ० ॥ जोर करी ते जीतीया ॥ ज० ॥ थाप्या पोतें ते ठाण ॥ ठ० ॥ ४ ॥ लीधा दंमनें नेटणां ॥ज०॥ हवे कांठे कांठे जाय ॥ठ०॥ पूगी तांबूल प्रमुखनां ॥ज०॥ वृदें शो नित वनराय ॥ ठ० ॥ ५ ॥ दक्षणदिश आव्या हवे ॥ ज० ॥ कावेर प्रमुख जे देश ॥ ठ० ॥ जीती नेटणे लीधलां ॥ ज० ॥ मुक्ताफल प्रमुख अशेष ॥ ठ० ॥ ६ ॥ जात्यवंत लाखो गमे ॥ ज०॥ मानुं सूरयना केकाण ॥ ठ० सहस्र गमे गजराजीया ॥ ज० ॥ आपे नृप मानी आण ॥ ठ० ॥ ७ ॥ म रिच चंदन नें एलची ॥ ज० ॥ सैन्यनें पण नोगमां थाय ॥ ठ० ॥ सह्य दर्डुर मलयगिरि ॥ ज० ॥ उलंघे श्रीजयराय ॥ठ०॥८॥ केरलादिक नृपजी तिनें ॥ ज० ॥ पश्चिम दिश आव्या जाम ॥ ठ० ॥ युद्ध करीनें जीतीआं ॥ ज० ॥ पारसी परमुख नृप ताम ॥ ठ० ॥ ए ॥ मूके प्रणमी नेटणां ॥ ॥ ज० ॥ जिहां दिनकर तेज घटाय ॥ ठ० ॥ अनिनव सूरय देखीनें ॥ज० मानुं पश्चिम समुद्रमां जाय ॥ ठ० ॥ १० ॥ हवे उत्तरदिश साधतो ॥ ज० ॥ कांबोज नें हूण जे देश ॥ठ०॥ युद्ध परानव बहु लह्या ॥ज०॥ पण जीत्या सर्व नरेश ॥ ठ० ॥११॥ हय गय सार ते नेटणा ॥ज०॥ बहु द्रव्य देइ लख कोडि ॥ ठ० ॥ प्रणमी पदकज सेवता ॥ ज० ॥ सहु सेवे होडाहोडि ॥ठ०॥ ॥ १२ ॥ कैलास रायनें जीतीया ॥ज०॥ हिमाचल नग पर्यंत ॥ ठ० ॥ दोय

खंम दोय पासना ॥ ज० ॥ जीत्या ते दंम आपंत ॥ ठ० ॥ १३॥ अण खंमा धिप थइ करी ॥ ज० ॥ सहु सैन्य युक्ता राजान ॥ ठ० ॥ पाठा वली प्रौढो त्सवें ॥ ज० ॥ सार्थे पागीआनें परधान ॥ ठ० ॥ १४ ॥ निज नगरें आव्या तिहां ॥ ज० ॥ सहु विद्याधर नरराय ॥ठ०॥ करे अनिषेक सुविस्तरे ॥ज० अर्द्धचक्रि पदवी थाय ॥ ठ० ॥ १५ ॥ गुणवंती कन्या गणी ॥ ज० ॥ सह स्रोगमे आपे नूप ॥ ठ०॥ परणे ते जयानंदजी ॥ ज०॥ अप्सरा पण जी ते रूप ॥ ठ० ॥ १६ ॥ राज प्रासादिक सर्वनें ॥ ज० ॥ जेहनें योग्य हुंता जेह ॥ ठ० ॥ तेहनें ते ते आपीया ॥ ज० ॥ थइ प्रसन्न ने आणी नेह ॥ ॥ ठ० ॥१७॥ जे जे जेम परण्या हता ॥ ज० ॥ लघु वृद्ध क्रमें कीधी ता स ॥ ठ० ॥ परिछद प्रासादिक सहु ॥ ज० ॥ नृप आपे योग्य जे जास ॥ ठ० ॥ १८ ॥ चक्रवेगादिक आवीया ॥ ज० ॥ खेचरपतिनें सतकार ॥ ठ० ॥ देई सहु विसर्जीया ॥ ज०॥ सहु गया निज राज्यनें ठार ॥ठ०॥ ॥ १९ ॥ सेवकपणुं श्रीजयतणुं ॥ ज० ॥ धरता जाणी उपकार ॥ ठ० ॥ सुख नोगवता स्वर्गनां ॥ज०॥ नित्य पामे जयजयकार ॥ठ०॥२०॥ नवमा खंममांहे कही ॥ ज० ॥ ए चोथी ढाल रसाल ॥ ठ० ॥ पद्मविजय कहे पुण्यथी ॥ ज० ॥ नित्य पामे मंगलमाल ॥ ठ० ॥ २१॥ सर्वगाथा ॥१२५॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रिया सहस्रोशुं रमें, पण रतिसुंदरी नारि ॥ संनारे नरपति तदा, प ण संदेह लगार ॥ १ ॥ गणिका माता कारणें, मूक्यां बहु थयो काल ॥ शील अद्भुत केम संनवे, एहवुं हृदयें सार ॥ २ ॥ तास परीक्षा कारणें,शू रदत्त अनिधान ॥ रूपकलावंतो घणुं, नृपनो मित्र युवान ॥३॥ स्थानक ते विश्वासनुं, रतिसुंदरीनें पास ॥ करी परीक्षा लावीयें,एम कही मोकल्यो ता स ॥ ४॥ बहुधन देइ वोलावीयो. पल्यंक बेशी जाय ॥ रत्नपुरें पोहोतो व ही,उतरीयो शुन ठाय ॥ ५ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥ धणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

॥ बहुधन देइ परिछद कर्यो रे, नाडे लीधुं गेह ॥ चित्तना रागी ॥ रति माला गृह ढूकडुं रे, वसीयो घरमां तेह ॥ चि० ॥ १॥ आवो आवो रे स यण शुनमित्ता, करियें वात एकांतें एकचित्ता, सयणवातें घणुं सुख थाय ॥ चि० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥ गणिकाने शील किहां थकी रे, स्वामि करे

इहां राग ॥ चि० ॥ महोटानें कह्यो कोण कहे रे, कणमां करुं विराग ॥ ॥ चि० ॥ आ० ॥ ३ ॥ भ्रष्ट करुं शीलथी हवे रे, कोइक करीनें उपाय ॥ चि० ॥ दासी रतिमाला तणी रे, एकांतें बोलाय ॥ चि० ॥ आ० ॥ ४ ॥ धन आपीनें वश करी रे, पूछे एणी परें वात ॥ चि०॥ एहनें घर नवि दे खायें रे, कोइ पुरुष आयात ॥चि०॥आ०॥ ५ ॥ शुं कारण तेहनुं कहो रे, दासी बोलें ताम ॥ चि० ॥ रतिसुंदरीनें परणीयो रे, श्रीविलास जस नाम ॥ चि० ॥ आ० ॥ ६ ॥ आठ नगर नृपें आपीयां रे,ते दीधा निजनारि ॥ ॥ चि० ॥ केटलो काल भोग भोगवी रे, तीरथ नमन मिषकार ॥ चि० ॥ ॥आ०॥ ७ ॥ किहांए गयो ते नावीउ रे, खबर न लाधी कांय ॥ चि० ॥ रतिसुंदरी पासें रही रे, रतिमाला निजमाय ॥ चि० ॥ आ० ॥ ८ ॥ संभा रे नित्य निज कला रे, नहीं इहां पुरुष प्रवेश ॥ चि० ॥ शूरदत्त सुणि च मकीयो रे, अहो किम शील कुल वेश ॥ चि० ॥ आ० ॥ ए ॥ मधुरस्वरें निशि गायतो रे, काम दीपन जेणें थाय ॥ चि०॥ चतुराइ घणी केलवे रे,वे शी गोंखनें ठाय ॥चि०॥ आ० ॥ १० ॥ फल पत्रादिक शुभ करी रे, जेह अपूरव होय ॥ चि० ॥ नित्य दासी करें मोकले रे, प्रीतिकरणनें सोय ॥ ॥ चि० ॥ आ० ॥ ११ ॥ रतिसुंदरी पण सवि लीये रे,देखी ते संस्कार ॥ ॥ चि० ॥ तेह कलाथी चमकती रे, आप कला भंमार ॥ चि० ॥ आ० ॥ ॥ १२ ॥ एकदिन दासीनें पूछतो रे, सांभली माहारां गीत ॥ चि० ॥ रीजे छे तुज स्वामिनी रे,के नवि रीजे चित्त ॥ चि० ॥ आ० ॥ १३ ॥ दासी क हे रीजे खरी रे,पण नवि स्तवती तेह ॥ चि० ॥ देवगुरु विण किम स्तवे रे, सती शिरोमणी जेह ॥ चि० ॥ आ० ॥ १४ ॥ शृंगार रस मय ताहरुं रे, छे सुंदर गीतगान ॥ चि० ॥ पण तेहने चित्त नवि गमे रे, नवि मांमे तेह कान ॥ चि० ॥आ०॥१५॥ शूरदत्त कहे कामिनी रे, तुज स्वामिनी मुज प्रेम ॥चि०॥ कोइ उपायथी कीजीयें रे,सा कहे करीयें केम ॥चि०॥आ०॥१६॥ एह सतीना स्वप्नमां रे, परनर उपर राग ॥ चि० ॥ लेश मात्र आवे नही रे, तेणे नवि आवे लाग ॥ चि० ॥ आ० ॥१७॥ शूरदत्त कहे सांभलो रे, लेइ जाउ मुज तह ॥ चि०॥ सा कहे कोइ नर तिहां कणे रे,पेसी शके न ही जह ॥ चि० ॥ आ० ॥ १८ ॥ तिहां केम लेइ जाउं तनें रे, सांभली मौ न कराय ॥ चि०॥ दासी गइ निज थानकें रे, चिंतवे अन्य उपाय ॥चि०

॥ आ० ॥१ए॥ संजारतां तस सांजलुं रे, श्रीजयें ओषधि दीध ॥ चि० ॥ रूप करी नारी तणुं रे, जाउं वंछित सिद्ध ॥ चि० ॥आ० ॥ २० ॥ एकदिन दासीनें कहे रे, तीरथें जाशुं काल ॥ चि० ॥ गगनगामिनी विद्यायकी रे, जिनवर नमशुं न्हाल ॥ चि० ॥ आ० ॥ २१ ॥ मुज सम रूप कला अछे रे, मधुरस्वरें करे ज्ञान॥चि० ॥ मूकी जाशुं मुज प्रिया रे, सस्नेही इण थान ॥चि०॥ आ० ॥ २२ ॥ पगबंधन पंथें होये रे, तेणे नवि लेउं संग ॥चि० नित्य आवी तुमें तेहशुं रें, रमजो करजो रंग ॥ चि० ॥ आ० ॥ २३ ॥ पांचमी नवमा खंममां रे, पद्मविजय कही ढाल ॥ चि० ॥ सांजलो श्रोता जन सवे रे, आगल वात रसाल ॥ चि० ॥ आ० ॥ २४ ॥ १५३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ दासी हा कही घर गही,तेणे कर्युं नारी रूप ॥ ओषधि बल अति आ करुं, जाएुं न जाय सरूप ॥ १ ॥ निजथानक मधुरस्वरें, गावे गीत रसा ल ॥ दासी पण नित्य आवती, आप वचन संजाल ॥ २ ॥ नित्य विनोद करे तेहशुं, दिवसें गमावे काल ॥ जैनगीत रजनी समे, गावे गुण सुरसाल ॥ ३ ॥ रीजि लहे ते सांजली, रतिसुंदरी धरी प्यार ॥ पूछे दासीनें तदा, को ण ए गावे नार ॥ ४ ॥ जरता परदेशें गयो,धनवंती ए नार ॥ आतम रमा डे आपणो, गीत गान करे सार ॥ ५ ॥ अधिको कांइ जाणुं नही,एहवुं क हेती जाम ॥ रतिसुंदरी तव एम कहे, तेडो एहनें आम ॥ ६ ॥

॥ ढाल छही ॥ देवानंद नरिंदनो रे जिन रंजना लाल ॥ ए देशी ॥

॥ माया स्त्री तेडी हवे रे॥ मनमोहना लाल ॥ आवी करे परणाम रें ॥ चित्त सोहना लाल ॥ दासीयें दीधे आसनें रे ॥ म० ॥ बेठी सुख आराम रे ॥ चि०॥१ ॥ डक्कर गाम जे पामवुं रे ॥म०॥ ते पामी हरषंत रे ॥ चि० ॥ रूप देखी विस्मय लही रे ॥ म० ॥ कंदर्प्पमय एकांत रे ॥ चि० ॥ २ ॥ चातुर चित्तथी गोपवी रे ॥ म०॥ नवि परकाश विकार रे ॥ चि०॥ आदर करी रति सुंदरी रे ॥ म० ॥ पूछे कुशल खेम सार रे ॥ चि० ॥ ३ ॥ रति सुंदरी पूछे हवे रे ॥ म०॥ कहो तुम जेह स्वरूप रे ॥ चि०॥ बहेनी कोण तुम किहां रहो रे ॥ म०॥ किहां परण्यां अनुरूप रे ॥ चि०॥ ४ ॥ सकल करो ते वारता रे ॥ म० ॥ ते कहे सांजलो वात रे ॥ चि०॥ राजकुमरी हुं वालही रे ॥ म० ॥ परण्यो विद्याधर जात रे ॥ चि०॥ ५ ॥ लीलायें इहां

रहेतां थकां रे ॥ म० ॥ देतो अढलक दान रे ॥ चि० ॥ मुजशुं रतिसुख जोगवे रे ॥ म० ॥ काढे काल अमान रे ॥ चि० ॥ ६ ॥ आवुं तीरथ वांदिनें रे ॥ म० ॥ गयो मुज मूकी एथ रे ॥ चि० ॥ इव्य घणुं मूकी करी रे ॥ म० ॥ नवि जाणुं गया केथ रे ॥ चि० ॥ ७ ॥ पूर्वे परदेशी इहां रे ॥ म० ॥ वसतो थो एणे गेह रे ॥ चि० ॥ तेह गयो तव अम्हें रह्यां रे ॥ म० ॥ मूकी मुज अति स्नेह रे ॥ चि० ॥ ८ ॥ इव्य घणुं विलसुं तेणें रे ॥ म० ॥ सुखिणी बहु परिवार रे ॥ चि० ॥ शील पालुं थिर चित्तथी रे ॥ म० ॥ वाट जोउं नरतार रे ॥ चि० ॥ ए ॥ वात सुणी रीजी घणुं रे ॥ म० ॥ साधर्म्मिणी तस जाण रे ॥ चि० ॥ आपणे सखीपणुं जाणजो रे ॥ म० ॥ नित्य आववुं एणें ताण रे ॥ चि० ॥ १० ॥ कथा वार्त्तादिक कही तुमें रे ॥ म० ॥ मुज मन करवो प्रमोद रे ॥ चि० ॥ माया स्त्री ह वे नित्य करे रे ॥ म० ॥ गमनागमन विनोद रे ॥ चि० ॥ ११ ॥ निज घर नररूपें रहे रे ॥ म० ॥ देखी रूप सरूप रे ॥ चि० ॥ संजारे क्षण क्षण प्रत्यें रे ॥ म० ॥ पडियो कंदर्पकूप रे ॥ चि० ॥ १२ ॥ पुरुषपणे प रवश थयो रे ॥ म० ॥ चिंतवे चित्त मजार रे ॥ चि० ॥ अहो एक वार संगम लहुं रे ॥ म० ॥ तो सुख पामुं अपार रे ॥ चि० ॥ १३ ॥ तेणें तस अ रथी थइ करी रे ॥ म० ॥ तस घर रहे चिर काल रे ॥ चि० ॥ विविध कला कौतुक करी रे ॥ म० ॥ रीजवे प्रेम विशाल रे ॥ चि० ॥ १४ ॥ धरम क था पण बहु करे रे ॥ म० ॥ कामकथा विचें थाय रे ॥ चि० ॥ जेम ते म वश करे तेहनो रे ॥ म० ॥ तेम करे जोइ अभिप्राय रे ॥ चि० ॥ १५ ॥ क्षीर आहारमां जेम होये रे ॥ म० ॥ जेग कदन्ननो अंश रे ॥ चि० ॥ पण पुण्य पुष्टि करे घणी रे ॥ म० ॥ तेणे करती परशंस रे ॥ चि० ॥ १६ ॥ हलुयें हलुयें वधारती रे ॥ म० ॥ कामकथा अभिराम रे ॥ चि० ॥ जेम जेम रुचि वधे तेहनी रे ॥ म० ॥ तेम तेम करे कथा काम रे ॥ चि० ॥ १७ ॥ जेम जेम प्रीतिवंती थइ रे ॥ म० ॥ रतिसुंदरी धरी प्रेम रे ॥ चि० ॥ पर वडे वचनें तेहनें रे ॥ म० ॥ रीजवे तस मन तेम रे ॥ चि० ॥ १८ ॥ उही नवमा खंममां रे ॥ म० ॥ पद्मविजय कही ढाल रे ॥ चि० ॥ शीलवंती र तिसुंदरी रे ॥ म० ॥ पामशे मंगल माल रे ॥ चि० ॥ १९ ॥ १७८ ॥

॥ आ० ॥१७॥ संजारतां तस सांजलुं रे, श्रीजयें ओषधि दीध ॥ चि० ॥ रूप करी नारी तणुं रे, जाउं वंछित सिद्ध ॥ चि० ॥आ० ॥ २० ॥ एकदिन दासीनें कहे रे, तीरथें जाशुं काल ॥ चि० ॥ गगनगामिनी विद्यायकी रे, जिनवर नमशुं न्हाल ॥ चि० ॥ आ० ॥ २१ ॥ मुज सम रूप कला अछे रे, मधुरस्वरें करे ज्ञान॥चि० ॥ मूकी जाशुं मुज प्रिया रे, सस्नेही इण थान ॥चि०॥ आ० ॥ २२ ॥ पगबंधन पंथें होये रे, तेणे नवि लेउं संग ॥चि० नित्य आवी तुमें तेहशुं रें, रमजो करजो रंग ॥ चि० ॥ आ० ॥ २३ ॥ पांचमी नवमा खंडमां रे, पद्मविजय कही ढाल ॥ चि० ॥ सांजलो श्रोता जन सवे रे, आगल वात रसाल ॥ चि० ॥ आ० ॥ २४ ॥ १५३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ दासी हा कही घर गही,तेणे कखुं नारी रूप ॥ ओषधि बल अति आ करुं, जाणुं न जाय सरूप ॥ १ ॥ निजथानक मधुरस्वरें, गावे गीत रसा ल ॥ दासी पण नित्य आवती, आप वचन संजाल ॥ २ ॥ नित्य विनोद करे तेहशुं, दिवसें गमावे काल ॥ जैनगीत रजनी समे, गावे गुण सुरसाल ॥ ३ ॥ रीजि लहे ते सांजली, रतिसुंदरी धरी प्यार ॥ पूछे दासीनें तदा, को ण ए गावे नार ॥ ४ ॥ जरता परदेशें गयो,धनवंती ए नार ॥ आतम रमा डे आपणो, गीत गान करे सार ॥ ५ ॥ अधिको कांइ जाणुं नही,एहवुं क हेती जाम ॥ रतिसुंदरी तव एम कहे, तेडो एहनें आम ॥ ६ ॥

॥ ढाल छठी ॥ देवानंद नरिंदनो रे जिन रंजना लाल ॥ ए देशी ॥

॥ माया स्त्री तेडी हवे रे॥ मनमोहना लाल ॥ आवी करे परणाम रें ॥ चित्त सोहना लाल ॥ दासीयें दीधे आसनें रे ॥ म० ॥ बेठी सुख आराम रे ॥ चि०॥१ ॥ डुक्कर ठाम जे पामवुं रे ॥म०॥ ते पामी हरषंत रे ॥ चि० ॥ रूप देखी विस्मय लही रे ॥ म० ॥ कंदर्प्पमय एकांत रे ॥ चि० ॥ २ ॥ चातुर चित्तथी गोपवी रे ॥ म०॥ नवि परकाश विकार रे ॥ चि०॥ आदर करी रति सुंदरी रे ॥ म० ॥ पूछे कुशल खेम सार रे ॥ चि० ॥ ३ ॥ रति सुंदरी पूछे हवे रे ॥ म०॥ कहो तुम जेह स्वरूप रे ॥ चि०॥ बहेनी कोण तुम किहां रहो रे ॥ म०॥ किहां परण्यां अनुरूप रे ॥ चि०॥ ४ ॥ सकल करो ते वारता रे ॥ म० ॥ ते कहे सांजलो वात रे ॥ चि०॥ राजकुमरी हुं वालही रे ॥ म० ॥ परण्यो विद्याधर जात रे ॥ चि० ॥ ५ ॥ लीलायें इहां

रहेतां थकां रे ॥ म० ॥ देतो अढलक दान रे ॥ चि० ॥ मुजशुं रतिसुख भोगवे रे ॥ म० ॥ काढे काल अमान रे ॥ चि० ॥ ६ ॥ आवुं तीरथ वांदिनें रे ॥ म० ॥ गयो मुज मूकी एथ रे ॥ चि० ॥ द्रव्य घणुं मूकी करी रे ॥ म० ॥ नवि जाणुं गया केथ रे ॥ चि० ॥ ७ ॥ पूर्वे परदेशी इहां रे ॥ म० ॥ वसतो थो एणे गेह रे ॥ चि० ॥ तेह गयो तव अम्हें रह्यां रे ॥ म० ॥ मूकी मुज अति स्नेह रे ॥ चि० ॥ ८ ॥ द्रव्य घणुं विलसुं तेणें रे ॥ म० ॥ सुखिणी बहु परिवार रे ॥ चि० ॥ शील पालुं थिर चित्तथी रे ॥ म० ॥ वाट जोउं भरतार रे ॥ चि० ॥ ए ॥ वात सुणी रीजी घणुं रे ॥ म० ॥ साधर्म्मिणी तस जाण रे ॥ चि० ॥ आपणे सखीपणुं जाणजो रे ॥ म० ॥ नित्य आववुं एणें ठाण रे ॥ चि० ॥ १० ॥ कथा वार्त्तादिक कही तुमें रे ॥ म० ॥ मुज मन करवो प्रमोद रे ॥ चि० ॥ माया स्त्री ह वे नित्य करे रे ॥ म० ॥ गमनागमन विनोद रे ॥ चि० ॥ ११ ॥ निज घर नररूपें रहे रे ॥ म० ॥ देखी रूप सरूप रे ॥ चि० ॥ संभारे क्षण क्षण प्रत्यें रे ॥ म० ॥ पडियो कंदर्पकूप रे ॥ चि० ॥ १२ ॥ पुरुषपणे परवश थयो रे ॥ म० ॥ चिंतवे चित्त मजार रे ॥ चि० ॥ अहो एक वार संगम लहुं रे ॥ म० ॥ तो सुख पामुं अपार रे ॥ चि० ॥ १३ ॥ तेणें तस अ रथी थइ करी रे ॥ म० ॥ तस घर रहे चिर काल रे ॥ चि० ॥ विविध कला कौतुक करी रे ॥ म० ॥ रीझवे प्रेम विशाल रे ॥ चि० ॥ १४ ॥ धरम कथा पण बहु करे रे ॥ म० ॥ कामकथा विचें प्राय रे ॥ चि० ॥ जेम तेम वश करे तेहनो रे ॥ म० ॥ तेम करे जोइ अभिप्राय रे ॥ चि० ॥ १५ ॥ क्षीर आहारमां जेम होवे रे ॥ म० ॥ भेग कदन्ननो अंश रे ॥ चि० ॥ पण पुण्य पुष्टि करे घणी रे ॥ म० ॥ तेणे करती परशंस रे ॥ चि० ॥ १६ ॥ हलुयें हलुयें वधारती रे ॥ म० ॥ कामकथा अभिराम रे ॥ चि० ॥ जेम जेम रुचि वधे तेहनी रे ॥ म० ॥ तेम तेम करे कथा काम रे ॥ चि० ॥ १७ ॥ जेम जेम प्रीतिवंती थइ रे ॥ म० ॥ रतिसुंदरी धरी प्रेम रे ॥ चि० ॥ पर वडे वचनें तेहनें रे ॥ म० ॥ रीझवे तस मन तेम रे ॥ चि० ॥ १८ ॥ ढ़ाली नवमा खंममां रे ॥ म० ॥ पद्मविजय कही ढाल रे ॥ चि० ॥ शीलवंती रतिसुंदरी रे ॥ म० ॥ पामशे मंगल माल रे ॥ चि० ॥ १९ ॥ १७८ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एक दिन कारिमी स्त्री कहे, योवन फोकट जाय ॥ वनवल्लीपरें जोग विणुं,तुजनें केम सोहाय ॥१॥ कामक्रीडा वन योवनं,तरुणनें नंदन वन्न ॥ रूप नहीं तुज सारिखुं, विश्वमां मोहे मन्न ॥२॥ तुज तनु दीपशिखा परें, तरुणना ह्रदय पतंग ॥ रमणिक सहज स्वनावथी, सघलां ताहारां अंग ॥ ३॥ सामग्री सवि पामीनें, सघली निज आधीन ॥ सफली ते केम नवि करे, रहे जेम डुःखिणी दीन ॥ ४॥ सफली पतिसंगें होये, तस नवि मालिम कांय ॥ खबर न जीवे के मूठ, तेऐं पति नविन कराय ॥ ५ ॥ यतः ॥ नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लिबे च पतिते पतौ ॥ पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्योविधीयते ॥ १ ॥ एहवां शास्त्रनां वचनथी, अपयश पण नवि थाय ॥ कुलस्त्रीनें दूषण नही, तुजथी छानुं न कांय ॥६॥ वली गणिकानी तुं सुता,तुजनें बाधा न कोय ॥ नवो नरता तेणें कीजीयें, शुं बहु कीधे होय ॥ ७ ॥

॥ ढाल सातमी ॥ रामपुरा बाजारमां ॥ ए देशी ॥

॥ एहवां वयण सुणी करी, पीडा लही चित्त अत्यंत मेरे लाल, ह्रदय शस्त्रें जेम कापीयुं, तेहनें धिक्कार करंत मे० ॥ १ ॥ सतीरे शिरोमणि एम लहो ॥ ए आंकणी ॥ माया स्त्री तव बोलती, में ताहरी परीक्षा काम मे० ॥ सतीपणुं तुज निरखवा, हुं बोली तुजनें आम मे० ॥ स० ॥ २ ॥ हुं ताहरी डशमन नहीं, मुज वचनें उपनो खेद मे० ॥ सखीपणाथी ते खमो, हुं समजी तुमचो नेद मे० ॥ स०॥३॥ एहवे मधुरें वयणथी, रतिसुंदरीनें करी शांत मे० ॥ रतिसुंदरी पण खामती, वली तिमहिज थइ निभ्रांत मे० ॥ स० ॥ ४ ॥ पूर्वपरें वली गावती, कहेती पुण्यनां आख्यान मे० ॥ विच विचं काम कथा करे,वली कामनां करे गीत गान मे०॥स०॥ ॥ ५ ॥ निजमंदिर नररूपथी, राणी चित्त सरल स्वनाव मे० ॥ आवर्जन करवा नणी, उजमाल थयो लही दाव मे० ॥ स० ॥६ ॥ अपूरव वस्तु मोकले, वली मोहननां गीत गाय मे० ॥ कामें अंतर पीडीयो,धर्मबुद्धि नाठी ते जाय मे० ॥स०॥७॥ अंग छबी श्यामल थइ, रतिसुंदरीनें नित्य ध्याये मे० ॥ नूख तरष गइ वेगली, स्वामि डोह पण न गणाय मे०॥स०॥ ॥ ८ ॥ निड़ा नावे रातिमां, राणीनो वांछे योग मे० ॥ आय उपाय घणा करे, पण न मले तेहशुं नोग मे० ॥ स० ॥ ए ॥ किमहीक आकार

अंगिते, रतिसुंदरी समजी चित्त मे० ॥ शुद्ध हृदयथी चिंतवे,एतो थाये ठे छल नित्य मे० ॥ स० ॥ १० ॥ ए स्त्री जेहवुं गाय ठे, गातो नर पूर्वे एम मे० ॥ पाडोशी रहेतो थको, ए वात हशे कहो केम मे० ॥ स० ॥ ११॥ मुज देखी एहनें वधे, अंगें केम कामविकार मे० ॥ स्वर गति चेष्टा अंग नी,लक्षण पण नर आकार मे० ॥स०॥ १२ ॥ नारी रूपें एह देखीयें, पण नारी नहीं निरधार मे० ॥ कांइक कारक पामीनें, थयो पुरुष ते मायाना रि मे० ॥ स० ॥ १३ ॥ डुराचारी कोइ देखीयें, कामातुर पुरुष निदान मे० ॥ करवा शीलनी खंमना, 'आव्यो मुज.करतो तान मे०॥स० ॥१४॥ एहवे आचारें करी, अपराधी माहारो एह मे० ॥ निग्रह करवो . एहनो, में अवसर पामी तेह मे० ॥ स० ॥ १५ ॥ सतिय शिरोमणि एणी परें, चित्तमांहे धारी विचार मे० ॥ तेहशुं वात विनोदनी, करे पूरव परें ते उदार मे० ॥ स० ॥ १६ ॥ एक दिन तेहशुं गोठडी, करतां आलाप संलाप मे० ॥ लाज मूकीनें बोलती, शणगार रसें चित्त पाप मे० ॥ स० ॥१७॥ कामकथा विस्तारती, उत्तम मारग करी दूर मे० ॥ सांजली बाह्यथी रीजती, रतिसुंदरी आणंद पूर मे० ॥ स० ॥ १० ॥ कहे रे सखी मुजने वाल्ही, मीठी लागे तुज वाण मे० ॥ तुज वयणें मुज चित्त चल्युं, रतिसुख जोगवुं सुख खाण मे० ॥ स० ॥१ए॥ पण इंखुं जे खाइयें, लालच मीठाइनी होय मे०॥ करीयें अकारय पण तथा, तेहवो संयोग मले कोय मे० ॥स०॥ २० ॥तेहवो तरुण कोइ नर मले, गुणवंत अद्भुत आकार मे० ॥ पंमित सर्व कलानिधि,लक्षणनें रूप जंमार॥मे०॥स०॥२१॥प्राण दीयेप्रियाने वली, एहवो धरे प्रेम विशाल मे० ॥ एहवो जरता कीजीयें, रमीयें वली रंग रसाल मे० ॥ स० ॥ २२ ॥ सातमी नवमा खंममां, कही पद्मविजय वर ढाल मे० ॥ राखे शील केणीपरें, ते सांजलो वात रसाल॥मे०॥स०॥२३॥

॥ दोहा ॥

॥ रतिसुंदरीनां वयण ते, सांजली हर्ष न माय ॥ माया स्त्री कहे सांजलो, उत्तम कहुं उपाय ॥ १ ॥ रूप कलाथी आगलो, ठे माहारो जरतार ॥ रूपें पुरंदर सारिखो, धनद परें दातार ॥ २ ॥ स्नेह धरे.तुज उपरें,तेडो तमारी पास ॥ इछा पूरण कीजीयें, बेहुनी फलशे आश ॥३॥यतः॥ पतिव्रता सदा पत्यु, रनुकूला स्थिराशया ॥ प्रियमेवाचरंत्युच्चे, रुच्चरंते च चारुता॥१॥दोहा॥

पतिव्रता पणे मुजनें, शोकनी अरुचि न थाय ॥ तेणें तुज जेवो होय ते, प्रग ट करो अनिप्राय ॥४॥ जे नें मुजपति मोकल्युं, राणी बोले ताम ॥ सर्वविडंब ना सारिखुं, जिहां नही प्राप्ति दाम ॥ ५ ॥

॥ ढाल आठमी ॥ नेडो नांजी ॥ ए देशी ॥

॥ मुज नरतारनें धन डे वहुलुं, जोइयें ते तमे मागो ॥ नोग सामग्री जग मां जोतां, नावे कोडीमे नागो ॥ १ ॥ जूओ तुमें ख्यालो, सतीयानो प्रपंच, सुणीनें चित्त पखालो॥एम जाणी तुमे नवि जीव के शील ते पालो॥डुर्लहो न रनव तुमें पामीने अजुआलो ॥ ए आंकणी ॥ मोकल्युं जे मागो ते तुमनें, नोग लान वली थाशे ॥ कामपीडा मुज पतिनी टलशे, वेदुनां डुःखडां जा शे ॥जू० ॥ २ ॥ राणी कहे जो देवा शक्ति,तो आपो धन कोडी ॥ जो वि श्वास न आवे तुमनें,तो दीयो मुज अर्द्धकोडि ॥ जू० ॥ ३ ॥ अर्द्धकोडी आवे तव लावे, सांनली प्रमुदित थाय ॥ अंगीकार करीनें निज घर, माया स्त्री हवे जाय ॥ जू० ॥ ४ ॥कामवशें करी कांइ न देखे, रात दिवस जे अं ध ॥ अंधथकी कामांध ते अधिको, नावे शीलनो गंध ॥ जू० ॥ ५॥ यतः दिवा पश्यति नो घूकः,काकोनक्तं न पश्यति॥अपूर्वः कोपि कामांधो,दिवा नक्तं न पश्यति ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ अर्द्ध कोडी निज दासी हाथें, मोकल्युं पूरव दिन्न ॥ संकेतित दिवसें नररूपें, अर्द्ध कोडी लइ धन्न ॥ जू० ॥ ६ ॥ रतन गांठडी लेई नो, राणीने दरबार॥मणि कंचन आनूषण पहेरी, वली बहु करी शणगार॥जू० ॥७॥ वस्त्रादिकनो आडंबर बहु, देखे किंकरी जाम ॥ ज इनें संनलावे राणीनें, दासी दोडी ताम ॥ जू० ॥८ ॥ द्वारमांहे तेडी वे साड्यो, चित्रशालामांहे तेह ॥ अर्द्धकोडी दासीने हाथे, वली मोकलतो जे ह ॥ जू० ॥ए ॥ पूर्व पढेनां नेला करती, रतिसुंदरी ते राणी॥ तेजवंत बहु रत्न देखीनें, चित्तमां चिंतवे शाणी ॥ जू० ॥ १० ॥ हर्ष लहे विस्मय कांइ पामी, त्रास रहित ते देखी ॥ अहो अपूरव एह रतन डे, पूरव समान गवे .षी ॥ जू० ॥११ ॥ मुज नरतारनां रत्न सरिखां, वृत्तादिक आकार ॥ रक्ता दिक वर्णे वली तेहनो, दीसे डे विस्तार ॥ जू० ॥१२॥ मानुं सूर्यमंमलथी आयां, स्निग्धादिक गुणसार ॥ संख्यातित स्वामि घर दीगं, तेहिज ए निरधा र ॥ जू० ॥ १३॥ जाणुं मुज पतियें मोकलीयो, बहु आपीनें रत्न ॥ मुज देखी चलचित्त थयो ए, तेणें ए करतो यत्न ॥ जू० ॥ १४ ॥ डुमेति स्वा

मिद्रोही पातकी, नरकनो जावण हार ॥ पण मूरख नवि जाणे एटलुं, अगम्य होये सति नार ॥ जू०॥ १५ ॥ तेहमां पण नवि साहामुं जोइयें,जे होयें नृपनी राणी ॥ तास गमननी वात तो दूरें, जे माता सम जाणी ॥ ॥ जू० ॥१६॥ यतः ॥ राजपत्नी गुरोः पत्नी, पत्नी च सुहृदस्तथा ॥ पत्नीमाता स्वमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥१॥ पूर्वढाल ॥ त्रिविध सती उपर ए माया, करतो पण अवेखुं ॥ पण पुरुषाधम निजस्वामिनो, द्रोहीपणे ए देखुं ॥ जू० ॥ १७ ॥ अम दंपतिनो ए अपराधी, नवि करीयें विशवास ॥ निर्लज्ज दुष्ट बुद्धि सकषायी, बोले मरषा नाष ॥ जू० ॥ १८ ॥ यतः ॥ अंतर्दुष्टधियः पापाः, कृपामुक्तागतत्रपाः॥सततं कोपनाः केपि,व्रतलोपेप्यनीरवः ॥ १ ॥ गर्त्ताः शूकरवन्नित्यं, निःशूकाः कामलालसाः ॥ सकषायामृषावाद, विदुराः सदुरोदराः ॥२॥ व्यंसकाव्यसनव्यास,रसिकाविकथारसाः॥ विरसाःशुद्धधर्मेषु, निर्गुणाः स्वार्थवञ्चनाः॥३॥लुब्धाःक्षुब्धाःशठाः कुंठाः,परोपकृतिकर्मसु॥ दुराचाराश्चदुर्वाचः प्रपंचपटवस्त्वियां ॥ ४ ॥ इत्याद्यशेषदुर्दोष, दुर्दशादूषितात्मनां ॥ अधमाधमशीलाना, मपि नो संगतिः शुभा ॥५॥ ढाल पूर्वली ॥ धर्मे वर्जित काम अंधरा, सती सरूप न जाणे ॥ प्राणांतें पण शील न लोपे, महासती जेह वखाणे ॥ जू० ॥१९॥ फरस न सहे कोइ अन्य पुरुषनो, जेम अग्निनी ज्वाला ॥ असतिपणुं नवि तेह आचरे, मरण करे पण बाला ॥ ॥ जू० ॥ २० ॥ कुलस्त्री स्वपनें पण निज मेलुं, शील न करे कोइ कालें ॥ कुलने रतन दीपपरें रूडी, तेह सती अजुआले ॥ जू० ॥ २१ ॥ बलात्कार थी नर सुरपति पण,शील सतीनुं न लोपे ॥ जो लोपवा जाये तो तेहनें,वाली नस्म करे कोपें ॥ जू० ॥ २२ ॥ केशरीखंध केश अहिमस्तक, मणि वाघण पय जाणो ॥ चमरी पूछ लेवा कोण समरथ, जो पण होये अति शाणो ॥ जू० ॥२३॥ जीवंतां शील सतीनुं न नागे, तेणे ए मूरख माथे ॥ शील माणिक मुज हरवा आव्यो, सतिशिरोमणि साथें ॥ जू० ॥ २४ ॥ धन्य ए रतिसुंदरी शीलवंती, नाम लीधे अघ जाय ॥ नवमे खंडें आठमी ढालें, पद्मविजय गवराय ॥ जू० ॥ २५॥ सर्वगाथा ॥ २३८ ॥

॥ दोहा ॥

॥ लकुट प्रहार विना नही, शुद्ध बाजरी ज्वार ॥ तेम शिक्षा विण नवि रहे, घरमां जे होयें नारि ॥ १ ॥ मूर्ख चपेटा विण नही, सहेजें पाध

रो होय ॥ तेम शिक्षा देवी खरी, एहमां पाप न कोय ॥ २ ॥ जेम कुष्मां नतुं फल लहे, एणी परें करी विचार ॥ दासीनें तेडी कहे, सांजल मुज प्रकार ॥ ३ ॥ सुपनें पण वांछुं नही, ए पापीनो संग ॥ पेसवा दीधो अम घारमां, ते पण वित्त प्रसंग ॥४॥ जइ कहो अमची स्वामिनी, स्नान करी शणगार ॥ थइ तैयार बोलावशे, जाणो हृदय मझार ॥ ५ ॥ ए मणिमय पल्यंक ठे, रति सुंदरीयें दीध ॥ तिहां लगें रहो तुमे इहां कणें, जाणो वंठित सिद्ध ॥ ६ ॥

॥ ढाल नवमी ॥ प्यारे मोकुं ले चलो ॥ ए देशी ॥

॥ रतिसुंदरीयें मोकल्युं, ल्यो ए सुगंधी तंबोल हो ॥ नाना इव्यशुं जे लीयो, मुख थाये रंगचोल हो ॥ १ ॥ प्यारे तोकुं ले चलुं, ले चलुंगी मुज साथ हो ॥प्या०॥ ए आंकणी॥ इत्यादिक वचनें करी, उपजावी सुखशात हो ॥ मुज पासें आवो तुम्हें, जाखो मुज अवदात हो ॥ प्या०॥२॥ ते करी आवी सवे कह्युं; पण तंबोलमां ताम हो ॥ तरष लागे घणी जेहथी, ए हवा इव्य अनिराम हो ॥ प्या० ॥ ३ ॥ सुखमां रहे रतिसुंदरी, पल्यंक उ पर खास हो ॥ शूरदत्तनी सेवा करे, दासीयो विनय विलास हो ॥प्या० ॥ ४ ॥ बहु उपचार करे वली, पाद पखाले तास हो ॥ मणिपर्यंक रुडी तूलिका, शयन करे सुखवास हो ॥ प्या० ॥ ५ ॥ स्वर्गनां सुख जोगवुं अछुं, एम माने मनमांहि हो ॥ देवांगना सम दासियो, देखी मन उछा हि हो ॥ प्या० ॥६॥ कथा वारता करतां थकां, उपजे अंतर प्रीति हो ॥ सर्वस्वादथी शिरोमणि, तंबोलनी जली रीति हो ॥ प्या० ॥ ७ ॥ वारंवा र आस्वादता, विषय तृष्णापरें तास हो ॥ तंबोलना परजावथी, लागी अ तिय पिपास हो ॥ प्या०॥ ८ ॥ पाणी मागे ते हवे, दासीयो गइ घरमांहे हो ॥ निज स्वामिनीनें वीनवे, स्वामी तरष अथाह हो ॥ प्या० ॥ ए ॥ स्वामिनी कहे सुणो किंकरी, मदकारी सुरा सार हो ॥ आपणा घरमां तैयार ठे, इव्य अनेक प्रकार हो ॥ प्या० ॥ १० ॥ वासितनें महा पराक्रमी, स्वादवंत घणुं तेह हो ॥ शाकर डाख जलथी घणुं, मधुरपणानो गेह हो ॥ प्या० ॥ ११ ॥ शीतल निर्मल तेह ठे, इव्य सुगंध सुवास हो ॥ जल थानकें पाउ तुमें, वात म करशो तास हो ॥ प्या० ॥१२॥ स्वामिनी आ णा शिरें करे, स्वाइ जल चमकार हो ॥ पाइ तेणें वधतो थयो, काम इछा

नो विकार हो ॥ प्या० ॥१३॥ लोचन मीचाइ गयां, आसव नीरनो नेद हो ॥ कनक नाजनें समज्यो नही, वलीय पिपासानो खेद हो ॥प्या०॥ ॥ १४॥ पान करी सूतो ढोलीये, पापी मन आराम हो ॥ क्षणमां घूमायो घणुं, शव परें पडीयो ताम हो ॥ प्या० ॥ १५ ॥ नवि हाले चाले किमे, साप मश्यो होये जेम हो ॥ मूर्बाणो पीडा लहे, मानुं जमें दीठो नेम हो ॥ प्या० ॥ १६ ॥ दीर्घनिज्ञानी वेहेनडी, आवी निज्ञा ताम हो ॥ मृतक स मो जाणी करी,शंका रहित थइ जाम हो ॥प्या०॥१७॥ शोधे अंग शूरदत्तनुं, देखे तव शिरमांहे हो ॥ वेणीमांहे गोपवी जिके, औषधि दीठी त्यांहि हो ॥ प्या० ॥ १८ ॥ हर्षथी दासीयो लेइनें, आवे स्वामिनी पास हो ॥ आपे रतिसुंदरी करें, ते पण लहे उल्लास हो ॥ प्या० ॥ १९ ॥ जोइ जोइनें उ लखी, विस्मय पामी चित्त हो ॥ वदनकमल विकस्वर थयुं, हृदयें धरे जे म वित्त हो ॥ प्या० ॥ २० ॥ दिव्य औषधि ए पति तणी, महाप्रनावनुं धा म हो ॥ माया मंदिर माहरी, मातनें शिक्षा काम हो ॥प्या०॥ २१ ॥ मु जपतियें शूकरी करी, ते एहनें परनाव हो ॥ लांबी पोहोली पण तेहवी, वर्ण प्रमुख सवि नाव हो ॥ प्या०॥ २२ ॥ निश्चय हुं तेहज लहुं, नहींतो ए डुराचार हो ॥ नारि रूप ए केम करे, डुष्ट आशय निरधार हो ॥प्या०॥ ॥ २३ ॥ परनर नवि पेशी शके, कोई मुज आवास हो ॥ तिहां ए आव्यो पापीयो, औषधि धरी निज पास हो ॥ प्या० ॥ २४ ॥ केम एहनें कर ए चढी,विस्मय लहुं बहु एह हो ॥ अथवा स्वामीयें दीधली, जाणशुं आ गल तेह हो ॥ प्या० ॥ २५॥ नवमी नवमा खंममां, पद्मविजय कही ढा ल हो ॥ शीलें मनवंछित फले, शीलें मंगल माल हो ॥ प्या० ॥२६॥२७०॥

॥ दोहा ॥

॥ जेम कहेशुं तेम नांखशे, बीजो नांहि विचार ॥ पण औषधि परनाव थी, करुं मर्कट आकार ॥ १ ॥ बीहीक देखाडी नली परें, शिक्षा देइश सार॥ रतिसुंदरीयें चित्तमां,एह कस्यो निरधार ॥२॥ दासीनें परशंसती,नलुं की धुं तें काम ॥ आपी औषधि लावीनें, एह पासेंथी आम ॥ ३॥ धन्य पुण्य विनीत तुमें, कीधा गुणनी जाण ॥ तुमें स्वामिनी नगति घणुं,केतां करुं वखाण ॥ ४ ॥ उपलाव्यो आनंद बहु. वयण कही रसाल ॥ सूतां सुख निज्ञा थकी, राति गमाव्यो काल ॥ ५ ॥ ब्राह्म मुहूर्त्त उठी करी, आवश्यक

दोय प्रकार ॥ करीनें चेटीने कहे,लावो ए गेह मकार ॥६॥ ते पण लावी त तक्षणे, उगाडी तेणी वार ॥ जवनी अंतर पोतें रही,बोले वयण उदार॥७॥

॥ ढाल दशमी ॥ पारधीयानी ढाल स्वामी स्वयंप्रन सुंदरु रे ॥ ए देशी ॥

॥ कामें अंध प्रमादीयो रे, हरष लहे अत्यंत रे ॥ परवसीयो ॥ मुजनें राणी मली हवे रे, एम घूर्णित राचंत रे ॥ सुखरसीयो ॥ १ ॥ औषधी शिर घापी करी रे, मर्कट कीधो तास रे ॥ प० ॥ लोह सांकल दासी कनेंरे, मंगावे सुविलास रे ॥ सु० ॥ २ ॥ परस्त्री लंपटनें गले रे, घाली जकडघो तेह रे ॥ प० ॥ माया खरी पापी लही रे, आवी कोपनें गेह रे ॥सु०॥३॥ वारंवार संनारती रे, ताडना करे अपार रे ॥ प० ॥ नित्य नचावे तेहनें रे, वचन कहे तेणी वार रे ॥ सु० ॥ ४ ॥ अग्निमां नाखुं तुजनें रे, रे पापिशिरदार रे ॥प०॥ दासी पासें बीहिवरावती रे, नित्य प्रत्यें वारंवार रे ॥ सु० ॥५॥ स्वामी डोही पापीया रे, रे डुर्मद डुराचार रे ॥प०॥ परस्त्रीनी इछा तणुं रे, फल नोगव ए लगार रे ॥ सु० ॥ ६ ॥ डोहमां स्वामी डोहनुं रे, पापनुं फल कहे कोण रे ॥ प० ॥ वली परस्त्रीना नोगनी रे, इछामां नही ऊण रे ॥ सु० ॥ ७ ॥ तास विपाक फल कोण कहे रे,समरथ वली वाचाल रे ॥प०॥ विषय आशा पासें नडया रे,डुःख पामे असरालं रे ॥ सु० ॥ ८ ॥ जनम अनंत मरण लहे रे, नरकादिक लहे प्राय रे ॥ प० ॥ तेहनां डुःख केवली लहे रे, पण मुखथी न कहाय रे ॥ सु० ॥ ॥ए॥ यतः ॥ सल्लं कामा विषं कामाः, कामा आसिविषोवमा ॥ कामा पत्नेमाणा, अ कांमा जंति डुग्गइ ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ विषनें विषयमां अंतरो रे, नाख्यो ठे अति जेण रे ॥ प०॥ एक वार मारे खाधुं थकुं रे,एक संनारे तेण रे ॥ सु० ॥१०॥ यतः ॥ विषस्य विषयस्यैव, दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपभुक्तंविषं हंति, विषयाः स्मरणादपि ॥१॥ पूर्वढाल ॥ निजपरस्त्री वांठा हवे रे, जो सुख चाहे अंग रे ॥प०॥ नहीं तो इह नव परनवें रे, डुःख पामीश एकंग रे ॥ सु० ॥११॥ इत्यादिक उपदेशथी रे, हित करती अविशेष रे ॥ प० ॥ सज्ञान पीडया रस दीये रे, शोलडी परें सुविशेष रे ॥ सु० ॥१२॥ सांनली राणी देशना रे, गर्हित निज आचार रे ॥प०॥ निज आतम बहु शोचतो रे, निंदा करे अपार रे ॥ सु० ॥ १३ ॥ मार खाये आंसु जरे रे, दीन वदनें कहे वात रे ॥ प० ॥ में तुज गुनहो बहु कर्यो रे, मूक मूक हवे मात रे ॥

॥ सु० ॥ १४ ॥ राणी कहे दुःखमां पडयो रे, बोले दमणा एम रे ॥प०॥ पण ते पापनां फल कह्यो रे, बूटक बारो केम रे ॥ सु० ॥१५॥ सहेवुं दुःख नरकादिकें रे, नव अनंत लगें प्राय रे ॥ प०॥ पाप इहानी वानगी रे,एणें नव तुजनें आय रें ॥ सु० ॥ १६ ॥ जेहवुं बांध्युं तेहवुं रे,नोगवीयें निर धार रे ॥ प०॥ धान्य वावीयें जेहवुं रे, लणीयें तेह प्रकार रे ॥सु०॥१७॥ कीधुं नोगवीयें सवे रे, शुन्न के अशुन्न जे कर्म रे ॥प०॥ विण नोगवे नवि बूटीयें रे, ए जिनशासन मर्म रे ॥ सु०॥१८॥ ॥ परशास्त्रेपि यतः ॥ कृतक र्मक्षयोनास्ति, कल्पकोटिशतैरपि ॥ अवश्यमेव नोक्तव्यं, कृतं कर्म शुनाशुनं॥ ॥ पूर्वढाल ॥ वारंवार एम सांनली रे, राणीनो उपदेश रे ॥प० ॥ मारनें बीहीक वली लह्यो रे, पाम्यो बोध विशेष रे ॥ सु० ॥ १९ ॥ डुर्मन मूकी नें हवे रे, दीन वदननें नयण रे ॥ प० ॥ विनययकी चेष्टा करी रे, पद प्र णमे अधोवयण रे ॥ सु० ॥२०॥ फरी फरीनें ते खमावतो रें, परस्त्री निय म करंत रे ॥ प० ॥ अंगित आकारें करी रे, राणी तेह लहंत रे ॥ सु० ॥ ॥ २१ ॥ सरल दयावंती घणी रे, सतिय शिरोमणि तेह रे ॥ प० ॥ मूकावे दासी कनें रे, बंध सांकल दृढ जेह रे ॥ सु० ॥२२॥ पूर्वरूप नर कीधलो रे, औषधी लेइ सार रे ॥ प०॥ जीवतो पण अण जीवतो रें, अल्प अन्न दीये आहार रे ॥ सु० ॥ २३ ॥ दशमी नवमा खंममां रे,पद्मविजय कही ढाल रे ॥प०॥ डुर्जन सज्जन संगथी रे, पामे मंगलमाल रे ॥ सु०॥२४॥३०१॥

॥ दोहा ॥

॥ एकदिन राणी तेहनें, दासी पासें तास ॥ दृढबंधन बंधावीनें,अगनि लावी पास ॥ १ ॥ लोह शिली ऊन्ही करी, श्रीजयानंदनो दास ॥ नाम लिखावे नालमां, पामे डुःखनी राशि ॥२॥ निर्त्रंठे वली बहु परें, कडुई डुः सह वाणि ॥ अशुननां फल संनलावीनें, निश्चल करे सुजाण ॥ ३ ॥ पर स्त्री नियम ते आपीनें, मूक्यो ते नर जाम ॥ बंध ठोडी स्वस्थल करी, प रियची नाखी ताम ॥ ४ ॥ परनर मुख जोवुं नही, परिअचि अंतरें तेह॥ वेसारी पूछे इस्युं, तुं कोण आव्यो केह ॥ ५॥ किहांनो वासी किहां थकी, स्यो कारय उद्देश ॥ साचुं कहे धुरथी सवे, केम कीधो एम वेश ॥ ६ ॥

दोय प्रकार ॥ करीनें चेटीने कहे,लावो ए गेह मकार ॥६॥ ते पण लावी त तक्षणे, उगाडी तेणी वार ॥ जवनी अंतर पोतें रही,बोले वयण उदार॥७॥

॥ ढाल दशमी ॥ पारधीयानी ढाल स्वामी स्वयंप्रन सुंदरु रे ॥ ए देशी ॥

॥ कामें अंध प्रमादीयो रे, हरष लहे अत्यंत रे ॥ परवसीयो ॥ मुजनें राणी मली हवे रे, एम घूर्णित राचंत रे ॥ सुखरसीयो ॥ १ ॥ औषधी शिर थापी करी रे, मर्कट कीधो तास रे ॥ प० ॥ लोह सांकल दासी कनेंरे, मंगावे सुविलास रे ॥ सु० ॥ २ ॥ परस्त्री लंपटनें गले रे, घाली ऊकड्यो तेह रे ॥ प० ॥ माया खरी पापी लही रे, आवी कोपनें गेह रे ॥सु०॥३॥ वारंवार संनारती रे, ताडना करे अपार रे ॥ प० ॥ नित्य नचावे तेहनें रे, वचन कहे तेणी वार रे ॥ सु० ॥ ४ ॥ अग्निमां नाखुं तुजनें रे, रे पापिशिरदार रे ॥प०॥ दासी पासें बीहिवरावती रे, नित्य प्रत्यें वारंवार रे ॥ सु० ॥५॥ स्वामी द्रोही पापीया रे, रे डुर्मद डुराचार रे ॥प०॥ परस्त्रीनी इन्ना तणुं रे, फल नोगव ए लगार रे ॥ सु० ॥ ६ ॥ द्रोहमां स्वामी द्रोहनुं रे, पापनुं फल कहे कोण रे ॥ प० ॥ वली परस्त्रीना नोगनी रे, इन्नामां नही ऊण रे ॥ सु० ॥ ७ ॥ तास विपाक फल कोण कहे रे,समरथ वली वाचाल रे ॥प०॥ विषय आशा पासें नड्या रे,डुःख पामे असरा ल रे ॥ सु० ॥ ८ ॥ जनम अनंत मरण लहे रे, नरकादिक लहे प्राय रे ॥ प० ॥ तेहनां डुःख केवली लहे रे, पण मुखथी न कहाय रे ॥ सु० ॥ ॥९॥ यतः ॥ सल्लं कामा विषं कामाः, कामा आसिविसोवमा ॥ कामा पत्थे माणा, अ कामा जंति डुग्गइ ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ विषनें विषयमां अंतरो रे, नाख्यो ठे अति जेण रे ॥ प०॥ एक वार मारे खाधुं थकुं रे,एक संनारे ते ण रे ॥ सु० ॥१०॥ यतः ॥ विषस्य विषयस्यैव, दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपजुक्तंविषं हंति, विषयाः स्मरणादपि ॥१॥ पूर्वढाल ॥ निजपरस्त्री वांबा हवे रे, जो सुख चाहे अंग रे ॥प०॥ नहीं तो इह नव परनवें रे, डुःख पामीश एकंग रे ॥ सु० ॥११॥ इत्यादिक उपदेशथी रे, हित करती अविशेष रे ॥ प० ॥ स ज्ञान पीड्या रस दीये रे, शोलडी परें सुविशेष रे ॥ सु० ॥१२॥ सांनली राणी देशना रे, गर्हित निज आचार रे ॥प०॥ निज आतम बहु शोचतो रे, निंदा करे अपार रे ॥ सु० ॥ १३ ॥ मार खाये आंसु जरे रे, दीन वदनें कहे वात रे ॥ प० ॥ में तुज गुनहो बहु कर्यो रे, मूक मूक हवे मात रे ॥

न पलोउं रे ॥ मो० ॥१६॥ नवि आलाप संगति करुं रे, न करुं वली श णगार रे ॥ तांबूलादिक नवि लेउं रे, नवि करुं स्निग्ध आहार रे ॥ मो० ॥ १७ ॥ नख पण नवि लेवरावीयें रे, फूलमालनें स्नान रे ॥ धूपनें अं गराग वली रे, तजीयां करी अपमान रे ॥ मो० ॥ १८ ॥ प्रोपितप्रिय स तीओं तणो रे, पालुं सवि आचार रे ॥ काम शतोपण ऊपनें रे, नवि पर पुरुपनो चार रे ॥ मो० ॥ १९ ॥ आज लगी पर पुरुपनो रे, नवि दीधो प रवेश रे ॥ तुज सार्थे केम आवीयें रे, ए अवधार विशेष रे ॥ मो०॥२०॥ एकासन केम वेशीयें रे, तेणें जइ मुजपति पासें रे ॥ तुमचा साथ विना न ही रे, आवशुं एम प्रकाशे रे ॥ मो० ॥ २१ ॥ नवमा खंममां ए कही रे, अगीयारमी ए ढाल रे ॥मीठी सरस सुधा समी रे, पद्मविजय सुरसाल रे॥ ॥ मो० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ३२९ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कहेजे स्वामिनें जइ,जे कहुं वचन प्रकार ॥तुमें पुण्यवंता राजीया, सो नागी शिरदार ॥ १ ॥ रूपवंती सहसो गमे, ठाम ठाम लह्या नार ॥ तेहनी प्रीति पटंतरें, मुज नवि देखो किवार ॥ २ ॥ पण तुम दर्शन वांछती, उर्ध ट पामुं केम ॥ हुं तुमने ध्याउं सदा, तुम न संभारो प्रेम ॥ ३ ॥ पण हुं र ति तुमें स्मर अछो, तुम आयत मुज प्राण ॥ वेचाथी लीधी तुमें, तेहनुं न करो त्राण ॥ ४ ॥ करवो प्रसाद तो वेगलो, चिंता पण तजी मुज्ज ॥ कोण आगल कहीयें कहो, स्वामी मूकी तुज्ज ॥ ५ ॥

॥ ढाल बारमी ॥ नराणानी ॥ जेम मधुकर मन मालती रे ॥ ए देशी ॥

॥ बहु नारीना प्रेमथी रे, रुंध्युं छे तुम चित्त रें ॥ राजनजी ॥ तिहां एक को रे माहरो रे, द्यो अवकाश ते नित्य रे ॥ राजनजी ॥१॥ तुम विण अवरशुं ना रमुंगी ॥ ए आंकणी ॥ इंद्रियमां मन मोटकुं रे, तेहनो करी अपहार रे ॥ रा० ॥ केम मूकी मुज एकली रे, माहारे तुमें आधार रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ॥ २ ॥ करुणानिधि चिंता करो रे, शरणागत मुज स्वामि रे ॥ रा० ॥ र विप्रना परें चंद्र चंद्रिका रे, देहछाया जेम ठाम रे ॥रा०॥तु० ॥ ३ ॥ मुज उ पर प्रसन्न थइ रे, तेडवा मोकल्यो जेम रे ॥ रा० ॥ माहरी वात जे में क ही रे, कहे जे संभारी तेम रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ४ ॥ वली मुज नर्त्तानी तुमें रे, जाणो यथारथ वात रे ॥ रा० ॥ तुम मुज मन हरखाववा रे, नाखो

॥ ढाल अगीआरमी ॥ जंबू कुमर वैरागीयो रे, मात पिता प्रतें नासे रे ॥ ए देशी ॥

॥ एह प्रश्नें मन हरषतो रे, कृतारथ निज माने रे ॥ वात यथारथ दाखवुं रे, सांजलो थिर थइ कानें रे ॥१॥ मोरी मातजी रे, सांजलो वात हमारी रे ॥ तुम वातजी रे,अमृतथी अतिप्यारी रे ॥ ए आंकणी ॥ विजयपुरें पुरंदर समो रे, श्रीविजयराजनो पुत्त रे ॥ रायसहस्र सेविजतो रे, देवता जेम पुरुहूत रे ॥ मो० ॥ २ ॥ श्रीश्रीजयानंद नरपति रे, सूर्य अपूरव सरिखो रे ॥ मृडकरथी विकश्वर करे रे, कमलाकर चित्र परखो रे ॥ ॥ मो० ॥ ३ ॥ क्षत्री सुत हुं तेहनो रे, सुरदत्त मुज नाम रे ॥ सेवक हुं सुखीयो सदा रे, परम विश्वासनुं गम रे ॥ मो० ॥४॥ पासें वसीयो तेणें करी रे, जाणुं सहु अवदातो रे ॥ राज्य धानी लखमी पुरें रे, करता जगत विख्यातो रे ॥मो०॥५॥ दिव्य पल्यंक मुज आपियो रे, खग परें जाउं आकाश रे ॥ तुमने तेडवा मूकीयो रे, रत्न दीधां बहु खासो रे ॥ मो०॥ ६ ॥ आव्यो इहां तुम परखवा रे, पासें लीधुं गेह रे ॥ वली मुज आपी औषधी रे, दिव्य प्रजावनी गेह रे ॥ मो० ॥ ७ ॥ विलसुं ते धनथी घणो रे, इछित देउं दान रे ॥ स्त्री रूपें तुज महासती रें, दर्शन पाम्यो प्रधान रे ॥ ॥ मो० ॥ ८ ॥ जीते रतिरंजा सिरि रे, रूप अनोपम तुज्झ रे ॥ देखी अनाग्यना योगथी रे, चपल चित्त थयुं मुज्झ रे ॥ मो० ॥ ए ॥ एह विटंबणा पामीयो रे, ते महारो सवि वांक रे ॥ उद्धर्यो मुज किरपा करी रे, स्वामिनी हुं अति रांक रे ॥ मो० ॥ १० ॥ परस्त्री नियम तुमें दीयो रे, कीधो मुज उपकार रे ॥ पुण्य मारग देखाडीनें रें,कीधो मुज्झ उद्धार रे ॥ मो० ॥ ॥ ११ ॥ लखमीपुर वर राजीयो रे, श्रीजयानंद राजान रे ॥ तुम पति इछे तुम बहु रें, करे तुम आगम ध्यान रे ॥ मो० ॥ १२ ॥ जवनी अंतरें राणी कहे रे, ताहारुं साहस नारी रे ॥ मुज साथें जे इछतो रे, संगम जे परनारी रे ॥ मो० ॥ १३ ॥ पण परनरना परशनें रे, नवि इछे शीलवंती रे ॥ तेणे तें नियम ग्रह्युं अछे रे, मत मूकजे करी वंतीरे ॥ मो० ॥ १४॥ परनारी बांधव जिके रे, ते सदाचारी कहीयें रे ॥ शील निधान समोवडे रे, शील आजूपण लहीयें रे ॥ मो०॥ १५ ॥ स्वामिप्रसादें हुं सदा रे, परनर मुख नवि जोउं रे ॥ स्वजन कुटुंब पण पुरुष जे रे, तेहनुं मुख

॥ तु० ॥ ११ ॥ रत्नप्रज्ञ हवे राजियो रे, सामंतनें परधानं रे ॥ रा० ॥ ह पैं नगरना जन सवे रे, सेवे करी एकतान रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १२ ॥ गज रथ घोडा नेटणे रे, ॥ रत्नादिक बहु वस्त रे ॥ रा० ॥ जे जे अपूर्व देशमां रे, ते ते दीये सु प्रशस्त रे ॥ रा०॥तु०॥ १३ ॥ तिहां सुखमां रहेतां थकां रे, वा रमी थइ ए ढाल रे॥ रा० ॥ पद्मविजयें कही सांजलो रे, नवमे खंमें रसाल रे॥ रा० ॥ तु० ॥ १४ ॥ सर्वगाथा ॥ ३५७ ॥

॥ दोहा ॥

॥ केइक दिन तिहां रही करी, पूढी ससरा सास ॥ श्रीजयानंद नृपति हवे, जावा मन उल्लास ॥ १ ॥ मात पिता भ्राता प्रमुख, रतिसुंदरीनें ता म ॥ आज्ञा दीये महासती प्रत्यें, थाये दुःखनां धाम ॥ २ ॥ दासी दास नें धन बहु, आपे सेवा काज ॥ सहुनें लेइ विमानमां, श्रीजयानंद महा राज ॥ ३ ॥ निजपरिवारशुं चालीया, वायुवेग अकाश॥ग्राम नगर उल्लंघता, आव्या निजपुर वास ॥४॥ उत्सव महोत्सवथी तिहां, आवे निज वर धा म ॥ रतिसुंदरीनें राखवा, महोल दिये अनिराम ॥ ५ ॥ सहु प्रिया मेली करी, उचित दान सन्मान ॥ मंत्री पासें करावता, श्रीजयानंद राजान॥६॥ संतोषी सहु तेहनें, सुख सागरमां लीन ॥ पंच विषय सुख नोगवे, सहु राणीशुं पीन ॥ ७ ॥

॥ ढाल तेरमी ॥ केशर वरणो हो के काढ कसुंबो मारा लाल ॥ ए देशी ॥

॥ हवे सहु नृपति हो के परजा पाले मारा लाल, निज परजा सम होके सहु रखवाले मा० ॥ कनक सिंहासन हो के एकदिन बेठा मा० ॥ पंचपरमेष्टीना हो के ध्यानमां पेठा मा० ॥ १ ॥ बहु नृप नमता हो के आ णाने धारे मा० ॥ मुखशशि किरणें हो के दिशि अजुआले मा० ॥ परष द बेठी हो के निज निज कामें मा० ॥ प्रतिहार आवी हो के शीघ्र शिर ना में मा०॥ २ ॥ विनति एणी परें हो के नृपनें करतो मा० ॥ लोक बहु आ व्यो हो के बहु दुःख धरतो मा०॥विजयपुरथी हो के पोलनें द्वारें मा०॥उनो तुमचा हो के दर्शन प्यारें मा० ॥३॥ मोकलो वहेला हो के नरपति जा से मा० ॥ मोकले, ते पण हो के जइ तस पासें मा० ॥ आवी प्रणमे हो के नरपति पाया मा० ॥ विनतिपत्रिका हो के नृपपुर ठाया मा० ॥४॥ मंत्री लेइनें हो के नृप कर देवे मा० ॥ नरपति हरषें हो के जोइ तस हे

सवि अवदात रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ५ ॥ शूरदत्त कहे सांनलो रे, सघलोक हुं अधिकार रे ॥ रा० ॥ तुम नरता नूनर्त्ता तणो रे, सांनलो धुरथी सार रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ६ ॥ लखमीपुरें श्रीपति नलो रे, त्रण कन्यानो ताय रे ॥ रा० ॥ राजा सर्व शिरोमणि रे, जैनधर्म मन नाय रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ॥ ७ ॥ दीधी त्रणे तुम पति रे, वली दीधुं निजराज रे ॥ रा० ॥ दीक्षा लीधी राजीयें रें, वरवा शिवसाम्राज रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ८ ॥ वैताढ्य जइ विद्याधरा रे, बहु वश कीधा तास रे ॥ रा० ॥ करी महोटा उपकारनें रे, पाम्या जश सुविलास रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ ए ॥ तास पुत्रीयो परणिया रे, वली चक्रायुद्ध राय रे ॥ रा० ॥ जीतीनें तस कन्यका रे, परण्या सहस समुदाय रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १० ॥ बहु उत्सव आडंबरें रे, आव्या निजपुर राय रे ॥ रा० ॥ शत्रुनृप जय चिहुंदिशें रे, करीनें आव्या ठाय रे ॥ रा० ॥ ॥ तु० ॥ ११ ॥ जे जे आश्चर्य शतो गमे रे, वली तस तात संबंध रे ॥ ॥ र० ॥ शूरदत्त सवि नांखीयो रे, विस्तारें परबंध रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १२॥ सांनली सर्व संबंधनें रे, आनंद अंग न माय रे ॥ रा० ॥ दान देइ संतोषियो रे, कीधो बहु सुपसाय रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १३ ॥ रतिसुंदरीयें विसर्जीयो रे, पोहोतो लखमीपुर ठाय रे ॥ रा० ॥ अनुक्रमें राज्यसना गयो रे, जिहां श्रीजयानंद राय रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १४ ॥ परीक्षा प्रमुख सवि वातडी रे, कही तस आमूल चूल रे ॥ रा० ॥ तेम वली जे कहेवरावीयुं रे, ते नाख्युं अनुकूल रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १५ ॥ तुमनें तेडया छे वली रे, सांनली श्रीजयानंद रे ॥ रा० ॥ निजप्रीया शील शोहामणुं रे, धरता अति आणंद रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १६ ॥ नक्तिवंती नार्या तणुं रे, दर्शनथुं थयुं चित्त रे ॥ रा० ॥ वली तेडवा पण जायवुं रे, बेशी विमान विचित्त रे रा०॥ तु० ॥ १७ ॥ पोहोता दिव्य विमानशुं रे, रत्नपुरें क्षण मांहि रे ॥ रा० ॥ सार सौजन्य परिवारशुं रे, धरता मन उब्राहि रे ॥ रा० ॥ तु०॥ १८ ॥ रत्नप्रन नूपनें मल्या रे, तेम नयरी जन व्रात रे ॥ रा०॥ रत्नमाला नृपनी प्रिया रे, पाम्या अति सुखशात रे ॥ रा० ॥ तु० ॥ १ए ॥ संतोषी रतिसुंदरी रे, आपी दर्शन आप रे ॥ रा० ॥ क्षणिक आनंद दीये घणो रे, उचित करी आलाप रे ॥ रा० ॥ तु० ॥२०॥ अमृतवृष्टि अचिंतवी रे, माने आववुं राय रे ॥ रा० ॥ खेम प्रश्नादिक बहु करे रे, नकतें बमणो नराय रे ॥ रा० ॥

हो के कुशल ते नारी मा० ॥ वली मित्र न तेहवो हो के दीये मति सारी मा० ॥ १६ ॥ एक प्रज्ञावंत हो के वृद्ध न पासें मा० ॥ रुडुं तस राज्य न होके चाले सरासे मा० ॥ कुलस्थिति नवि होय हो के नवि जश थाय मा० ॥ नासे धन दूरें हो के सुकृत न कांय मा० ॥ १७ ॥ मंमलिक प्रधानतुं हो के धन बहु लीधुं मा० ॥ परधान विना नवि हो के राज्य ते सीधुं मा० ॥ निज पर नवि गणिया हो के लोन्नें पूरो मा० ॥ अन्याय ते करवो हो के नहीं अधूरो मा० ॥ १८ ॥ जेम कागल थोडे हो के सवि न लखाय मा० ॥ तेम वात ते पूरी हो के ढालें न थाय मा० ॥ थइ नवमे खंमें हो के तेरमी ढाल मा० ॥ कहे पद्मविजय मुनि हो के वात रसाल मा० ॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥ ३८४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ कांईये कहीयें नहीं, श्रीविजयराज जे तात ॥ तेहुये पण फल नोगव्युं, अवरां केही वात ॥ १ ॥ तेतो सहु जाएयुं हशे, तस मुख वचन प्रमाण ॥ जय नृप काका तुम तणा, सुखदायी राजान ॥ २ ॥ तेहुये तेडाव्या घणुं, नवि आव्या तुमें कोय ॥ नाग्य उदय नहीं अम तणो, तेणें तुम वांक न होय ॥ ३ ॥ डुःखदायी तुम नाइ ए, अम अनाग्यथी थाय ॥ राज्यपदें बेशी करी, एणी परें काम कराय ॥ ४ ॥ वनमां वसवुं रूअडो, रूडो वली परदेश ॥ मरण करेवुं रूअडुं, तप रूडुं सुविशेष ॥५॥ पण ए राज्यनी ठांहडी, सुपनें न वांछुं अंश ॥ सिंहसारें एणी परें घणुं, कलंक दीयो तुम वंश ॥ ६ ॥

॥ ढाल चौदमी ॥ विमलजिन विमलता ताहरीजी ॥ ए देशी ॥

॥ दृष्टि दया करी दीजीयें जी, सेवक उपर स्वामि ॥ सीदाता केम उवेखीया जी, एह परजा तुम नाम ॥ दृ० ॥१॥ कीर्त्ति जल सागर ठो तुमेंजी, गुणगण रत्न निधान ॥ परउपगार शिरोमणिजी, अशरण शरण परधान ॥ ॥ दृ० ॥२॥ पूरव छत्रव्रतधर थयाजी, तेहमां धुर तुम नाम ॥ पापी अन्यायीनें तुमें हरो जी, एह करो अम तणुं काम ॥ दृ० ॥३॥ रीति लोपो न पूर्वज तणी जी, मूको न निज प्रजा एह ॥ मूल निज राज्य हवे लीजीयें जी, अनुग्रह करो प्रनु रेह ॥ दृ० ॥ ४ ॥ तुमें दया चिंतवी बंधुनी जी, जो नवि तुमें करो एह ॥ देश पुर नगर उजड थशे जी, मत करो तेहमां संदे

वे मा० ॥ मूल राज्यना हो के लोक ते जाणी मा० ॥ बहु आदर करे हो के नृप गुणखाणी मा० ॥ ५ ॥ मुड्रा उखेली हो के वांचे पोतें मा० ॥ तेह कहीजें होके सुणीयें ओतें मा० ॥ स्वस्तिश्रीमति हो के सुरपुर सरिखुं मा० ॥ लखमीपुरवर हो के महा रूद्धि निरखुं मा० ॥ ६ ॥ राज्य करे तिहां हो के श्रीजयानंद मा० ॥ बहुनृप वहेता हो के आण आणंद मा० ॥ जनक विजयनृप हो के परिछद सोहे मा० ॥ तेहनें लखतां हो के मोद आरोहे मा० ॥ ७ ॥ विजयाभिधपुरथी हो के पुरजन मलीनें मा० ॥ राजवर्गी पण हो के मांहे भलीनें मा० ॥ प्रणतिपूर्वक हो के करकज जोडी मा० ॥ विनति लखीयें हो के माननें मोडी मा० ॥ ८ ॥ सुख श्रेय ईहां छे हो के पुण्य प्रमाणें मा० ॥ दिन दिन प्रत्यें वांछुं हो के प्रभु सुखगाणें मा० ॥ सुणजो समाचार हो के पूर्वज जेह मा० ॥ तुम चा तेणें पाली हो के परजा नेंह मा० ॥ ए ॥ विजयपुरनी हो के वात डी सुणजो मा० ॥ नृप सिंहसार छे हो के नामज सुणजो मा० ॥ कपटें पटु कटु वली हो के करतो काम मा० ॥ उन्मार्गनी मति वली हो के व्यसननुं धाम मा० ॥ १० ॥ नवि धर्मनी वात ते हो के मनमां जाणे मा० ॥ गुरुकर्मा गाजे हो के आप वखाणे मा० ॥ वैरी परें परजा होके जाणे मनमां मा० ॥ परजा चित्त जाणे हो के वसियें वनमां मा०॥११॥ अन्यायनो मार्ग हो के नित्य चलावे मा० ॥ तुम राजन कुलना हो के जे जे आवे मा० ॥ विश्वास पमाडी हो के गुप्तियें नाखे मा० ॥ बहु कष्टनें देतो हो के सुख न राखे मा० ॥ १२ ॥ अपराध विना बहु हो के दाखे दंम मा० ॥ उद्वेग पमाडे हो के तेज प्रचंम मा० ॥ केइनें नवि जोजन हो के आपे खावा मा० ॥ कोना मुख आगें हो के करियें रावा मा० ॥ १३ ॥ इत्यादिक रीतें हो के डुःखनें देतो मा० ॥ अछतां डुःख दाखी हो के दंम ते लेतो मा० ॥ लोनांध थइनें हो के हय रथ हाथी मा० ॥ ते लीये उजाली हो के बहु उनमाथी मा० ॥ १४ ॥ तुम पूरव जें जन्मथी हो के परजा पाली मा० ॥ तेणें डुःख नवि दीठुं हो के सुपनें न्नाली मा०॥ तुम तातें पूरां हो के लाम लमायां मा० ॥ सहुनी उडावे होके एह पडायां मा० ॥ १५ ॥ कर ले अष्टादश हो के जे सुण्या कानें मा० ॥ तरणा सम जगतनें हो के मनमां माने मा० ॥ जेहनें नही मंत्री

॥ दोहा ॥

॥ तुम दरिशण अति दोहेलुं, जाग्यें पाम्या आज ॥ दुःख अंधकारमां उगीयो, स्वामी तुं दिनराज ॥ १ ॥ काल रात्रि परें एटलो, काल काढयो नय कार ॥ क्षय कीधो अम्ह पुण्यनो,उदय ते तुं दिनकार ॥२॥ चिरंजीवो सफलुं करो, मूलराज्य महाराज ॥ अमृत सम दृष्टि देइ,पवित्र करो जनुराज ॥३॥ एम स्तवना करी हर्षशुं, पोहोता निज निज गेह ॥ देश नगर पुर गाममां, वूठा अमीरस मेह ॥ ४ ॥ देवपूजादिक कृत्य करे, उचितज वेला होय ॥लो क तुष्टि हेतें तिहां, काल गमावे कोय ॥ ५ ॥

॥ ढाल पन्नरमी ॥ राग मारुणी॥श्रीसीमंधर साहेब आगें विनति रे॥ए देशी॥

॥ राज्यमांहे रह्या राज्य काज सवि साचवे रे, तेम तातनें परिवार ॥ आ गें रे आगें रे, लागें धर्म कथा कहे रे ॥ १ ॥ जिनवरभाषित धर्म दया गुण मूल छे रे,तेम दानादिक चार ॥ भाख्यो रे भाख्यो रे,दाख्यो देव गुरु धर्मथी रे ॥२॥ पुण्य पाप फल सुकृत दुःकृत कारण कहे रे,हेतु युक्ति अपार ॥ राज्य रे राज्य रे, काज करतां पण कहे रे ॥३॥ विचें विचें अवसर लहीनें निपुण ते नृपति रे, नित्य नित्य करे व्याख्यान ॥ सरसा रे सरसा रे, नही विरसा दृ ष्टांतथी रे ॥४॥ सारसंग्रह करी समकेत नित्य समजावता रे,श्रोतानें सुख कार॥हितकर रे हितकर रे,अंतर रहित ते उपदिशे रे॥५॥एम करतां जिन प्रव चन श्रावक सहु कह्या रे,पुत्र वचन घन सार॥सांभली रे सांभली रे,काच का मली गद सवि गयो रे ॥६॥ अमृत परें निज आतम सींची धर्मथी रे, अंगी करे गृही धर्म ॥ राय रे राय रे, ताय ते श्रीजयानंदनो रे ॥७॥ जैनधर्में दृढ करीनें जनकने थापता रे, तेह क्रमागत राज्य ॥ जाणी रे जाणी रे, मन आ णी नृप आदरे रे ॥ ८ ॥ पुत्र वयण गुणवंतनुं नवि उलंघता रे, हवे जावा नुं मन्न ॥ श्रीजय रे श्रीजय रे, विजय राय हवें राखता रे॥ए ॥तात संतोष नें कारण केइक दिन रही रे, परजानें सुखदाय ॥ थाय रे थाय रे, राय श्री विजय धर्मी घणुं रे ॥ १० ॥ परजानें पण जैनधर्म समजावता रे, श्रीश्री विजयनरिंद ॥ भोगवे रे भोगवे रे, जोगवे राज्य अखंमनें रे ॥ ११ ॥ एकदि न विजयराय चित्तमांहे दयालुउ रे, कारागारमां जेह ॥ घाल्या रे घाल्या रे, आल्या मुगता तेहनें रे ॥ १२ ॥ सिंहसार हवे कारागारमां दुःख खमे रे,व ध बंधादिक जोर ॥ खमतो रे खमतो रे,नवि नमतो मनथी कदा रे॥१३॥

ह ॥ द० ॥ ५ ॥ वोय पक्षमां जे जुगतुं होये जी, तेह कीजें स्वयमेव ॥ वां ची वली सांनली वयणडांजी, अमरष आवियो देव ॥ द० ॥ ६ ॥ तातप रानव वली सांनलीजी, दुःख प्रजानुं चित्त धार ॥ अर्द्ध नरतपति ऊठीयो जी, वयरी जाल्यो सिंहसार ॥ द० ॥ ७ ॥ करिय सेनापति आगलेंजी, वा जां वजडावे प्रयाण ॥ सैन्य चतुरंग तव सज्ज करीजी, चालीया ते सपराण ॥ द० ॥ ८ ॥ स्वल्प प्रयाण जइ तिहां रहीजी, मोकलीयो तिहां दूत ॥ ते हनें जाण करवा नणीजी, संनलावे आप आकूत ॥ द० ॥ ए ॥ शत गमे ताहरा अन्यायनेंजी, खमीय उवेखीयो तुज्झ ॥ एटलो काल सौजन्यपणे जी, वांक मत काढजे मुज्झ ॥ द० ॥ १० ॥ आल नवि खमुं हवे ताहरो जी, राखी ए राज्यनी नीति ॥ कीध प्रयाण ते आगलेंजी, लोपतो नवि कोइ रीति ॥ द० ॥ ११ ॥ सैन्य असंख्यशुं चालतांजी, कोयनें न होय संताप ॥ पर उपगारी दयालुयो जी, ते केणि परें करे पाप ॥ द०॥ १२ ॥ निज परदे श सरिखा गणेजी,खंम त्रणनो जे अधीश ॥ तस नगर ढूकडा आवीयाजी, जाणतो सिंह नरेश ॥ द० ॥ १३ ॥ सन्मुख महावलें नीकलेजी, व्याघ्र स न्मुख शश जेम ॥ बल सहित सिंहशुं जूफीनेंजी, नांजे करी वृक्षनें तेम ॥द०॥१४॥ घात विधुरित पकडी लीयोजी, लीलायें ते सिंहसार ॥ बांधीनें निगड घाली करीजी, सोंप्यो तातनें तेणी वार ॥द०॥ १५॥ पडियो कारा गार मांहे ते जी, अनुनवे पीड अपार ॥ कर्म निज शोचतो तिहां रहेजी, पाप तरु फल ए असार ॥ द० ॥ १६ ॥ कर्म कीधां ते मूके नहीजी, पा प मत करो नवि जीव ॥ पापनां फल ए देखी करीजी,धर्म ते करीयें सदै व ॥ द० ॥ १७ ॥ श्रीश्रीजयानंद नूपति जी, जयसिरि करी निज हाथ॥ नगर प्रवेश महामहोत्सवेंजी, राजन्य पुरजन साथ ॥ द० ॥ १८ ॥ करि य प्रवेश निज तातशुं जी, हय गय रयणनें वस्त्र॥ पौर जन राजवर्गी तथा जी, नेटणे मूके केइ शस्त्र ॥ द० ॥ १ए ॥ सामंत मंत्रिपुर जन वली जी, वलीय सीमाडा राजान ॥ देश परदेशना लोकने जी, नृप बहु आदर मा न ॥ द० ॥२०॥ जेहनें योग्य जेम तस करे जी, दाननें वली सनमान ॥ करिय प्रणाम स्तवना करेजी, चित्तमां अति बहु मान ॥ द० ॥२१ ॥ खं म नवमे एह चौदमीजी, पद्मविजयें कही ढाल ॥ पुण्यथी सवि सुख नीप जे जी, पुण्यथी मंगलमाल ॥ द० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ४१२ ॥

॥ ढाल शोलमी ॥ पीउजी पीउजी नाम जपुं दिन रातीयां ॥ ए देशी ॥
॥ गो महिषी घट अधिक दीये पय लोकनें, थानक थानक पूरी धरा धान्य थोकनें ॥ कालें वरसे मेघ करे पुष्टता घणी,आपे फूलनें फल पट ऋतु आप आपणी ॥ १ ॥ रत्न सुवर्णना आकर नीपजे नग नगें,रयणनिधान प्रगट होये धरतीयें पग पगें ॥ पूर्वजें दाटघा धन परजानें नीसरें,नारी सुगुण सुखकर सुशील सहु शिरे ॥ २॥ द्यूत मद्य वेश्या परनारी गमन नही, चोरीनें मृगया मांस ए व्यसन टाले सही ॥ निजपर चक्रनो नय उपसर्गे नहीं कदा, नहीं अतिवृष्टि अनावृष्टि डुःखदायी सदा ॥३ ॥ कलह म्मर नहीं दंश मसादिक नवि नडे, मुषक तीडना नय सुपनें पण नवि जडे ॥ विविध उपायें मंत्री प्रधान बलें करी,राष्ट्र कोशादिकें पूरण राज्य सिरि धरी ॥ ४ ॥ हवे श्रीविजय नृप दानादिक आचरें, लक्षादिक वरसां लगें धर्म विविध करे ॥ निःस्पृह पणे राज्य पालें अजातशत्रु पणे, डुःख टाले परजानां राखे सुख घणे ॥ ५ ॥ जीर्ण उद्धार करावे द्रव्यनो व्यय करी, जैन शिरोमणि थइनें पुण्यलक्ष्मी नरी ॥ श्रीजयानंदनी आण लही लघु सुत नणी, शुनदिवसें राज्य थापे शीख देई घणी ॥ ६ ॥ नाम शतानंद योग्य उत्तम गंनीर ते, सहुनें सम्मत तेजस्वी धुरें धीर ते ॥ विनीत नें गुण अनुत्तर धर्मे थिर हितकरु, निश्चल थइ नृप धर्म करे नित सुखकरु ॥७॥ आगमसागर सद्गुरु तेणे समे आवीया, नाग्यथकी तेणे कालें मनमां नावीया ॥ लेइ प्रजानी आणनें दीक्षा मन धरे, निजसुत नरपति उत्सव महोत्सव बहु करे ॥ ८ ॥ सुख वाहन बेसीनें दान बहु दीये, जैन धरम परनावना, बहु आणंद हीये ॥ योग्य पुरुष परिवारथी गुरु पासें जइ, करी परणामनें आदरे व्रत शीघ्रज थइ ॥ ए ॥ विजयराज्य ऋषि दक्ष गुरु सेवा करे, ग्रहण आसेवन शिक्षा अनुक्रमें दोय धरे ॥ तत्त्व जाण सत्ववंत अशेष आगम नणे, अंतर शत्रु जय करे कर्म कठिन हणे ॥ ॥ १० ॥ तप करता विचरे गुरु साथें विनय करे, शांतजितेंद्रिय गुण अणगारना आदरे ॥ तात दीक्षाथी हर्पे खेद नृपति लहे, सहु मुनिवंदना करीनें, जायें निज गृहे ॥ ११ ॥ श्रीशतानंद राजान जैनधर्म पालता, सैन्य परिवदशुं शासन अजुआलता ॥ केइक दिन निज राज्यें रही बहु नेहथी, अग्रज उपरें नक्ति घणी चित्त गेहथी ॥ १२॥ श्रीजयानंदनी सेवा करवा

नत्रीज जाणी काढी मूक्यो देशथी रे,पाले राज्य महांत॥राय रे रायरे,नवि अ न्याय कदा करे रे ॥ १४ ॥ श्रीजयानंद हवे अवसर लही एकदा रे, तात ना प्रणमी पाय ॥ नमतें रे नमतें रे, मुकतें पूछी तातनें रे ॥ १५ ॥ मात प्रमुख गुरु जन प्रणमीनें आदरे रे, केइनें वात्सल कीध ॥ केइनें रे देइनें दृष्टि सोहामणी रे ॥ १६ ॥ केइनें मधुर वयणथी संतोष्या घणा रे, राज ननें परधान ॥ जेह रे जेह रे,नेह धरी घणुं पूछतो रे ॥ १७ ॥ जनपद लो क प्रजानें प्रीति उपायतो रे, वोलावा सहु जाय ॥ आवे रे आवे रे,नावे खे चर नृप बहु रे ॥ १७ ॥ शोल सहस नृप अरधा नरतना आवीया रे, निज निज लेइ सैन्य ॥ वलीया रे वलीया रे, टलीया नही रण कर्ममां रे ॥१९॥ चतुरंगी सेनायें चतुर ते चालीयो रे, निज पुर जावा काज ॥ कोइ रे को इ रे, नवि होये प्रतिमल्ल कदा रे ॥२०॥ वाजित्र शब्दें दिशा वलय सवि पू रीयुं रे, शत्रुवृंदनें त्रास ॥ आपे रे आपे रे, कापे दुःख मित्रज तणां रे ॥ ॥ २१ ॥ केटलीक मजलें कोइ अटवीमां उतस्था रे, पूजा करी जिनराज ॥ नूप रे नूप रे, कूप अगाध ते सत्वनो रे ॥२२ ॥ अशनादिक करीने सहु रा जन्य लोकनें रे, वाले हरखी राय ॥ अनुक्रमें रे अनुक्रमें रे, जिनधर्मे जन वासतो रे ॥ २३ ॥ अनुक्रमें आव्या लखमी पुर महामहोत्सवें रे, अनुक्र में पोहोता गेह ॥ पाले रे पाले रे, टाले कंटक राज्यमां रे ॥२४॥ सहु नृ प नूचर खेचर प्रणमी मोदशुं रे,निज निज थानक जाय ॥ गाय रे गाय रे, राय तणा गुण नित्य प्रत्यें रे ॥२५॥ नवमे खंडें ढाल पन्नरमी ए कही रे, श्रीजयानंदनें रास॥नाखे रे नाखे रे, दाखे पद्मविजय मुनि रे॥२६॥४४२॥

॥ दोहा ॥

॥ श्रीजयानंदना राज्यमां, जलचर नवि पकडाय ॥ थलचर खेचर प रस्परें, नवि कोइ हणवा धाय ॥ १ ॥ जनम मरण अकालें नहीं, कंटक कमलनी नाल ॥ सरोगता कमलें रह्युं, दंम देउलशिर नाल ॥ २ ॥ कलह ते गजशाला रह्यो, बुह्यिां मंदिर होय ॥ स्नेहनो क्षय दीपक विषे, कुटिल सापिणि गति जोय ॥ ३ ॥ अहव कुटिल सरिता कही, फूलके वेणी बंधा य ॥ कर प्रचंम करिनो रणें,सकलंक शशी कहेवाय ॥ ४ ॥ निर्दयता खड्गें रही, कोरणी मंदिर मांहि ॥ पण ए लोक मांहि नहीं, रहेता चित्त उछाहि ॥ ५ ॥ सर्वगाथा ॥ ४४७ ॥

पटुवचन पण गुण लेशनें, समरथ न कहेवा होय ॥ करे नक्ति एहनी तेहनें, नवि आवे नवनय कोय ॥ म० ॥ १० ॥ तेणे नगरनां जन सहु मली, ए आवे ने वली जाय ॥ ते सुणी श्रीजयानंदजी, चित्त चिंतवे महाराय ॥ म० ॥ ११ ॥ मनमां मानजो नवि जीव, नवस्थिति विचित्र सदैव ॥ म० ॥ ए आंकणी ॥ अज्ञान महाडुःखें ठेदीयें, घन निविडनें अनंत ॥ काल रात्रि परें महा डुःख दीये, प्राणीनां सुख हरंत ॥म०॥१२॥ सन्मार्गेनें ए आचरे, डुर्दशा कारण एह ॥ तिरियंच नरकना नव नमे, सवि डुःखनुं ए गेह ॥ म० ॥ १३ ॥ मिथ्यात्व रुखनुं कंद ए, सद्ज्ञाननुं ए चोर ॥ सहु कर्ममां ए शिरोमणि, अज्ञान अतिहि कठोर ॥ म० ॥ १४ ॥ तृष्णा विषयनी जे नदी, तेहनो ए गिरिवर जाण ॥ विचित्र नवनाटक करे, ते जाणो महिमा अन्नाण ॥ म० ॥ १५ ॥ चेतन ते पछर सारिखो, नवि जीव माने कोय ॥ एणी परें अज्ञानें करी, वेठो ते निज रुद्धि खोय ॥ म० ॥ १६ ॥ पंचेंडी पण अज्ञानथी,गत नयनपरें करे काम ॥ तेणें अंध तम अज्ञान ए, तत्त्वदृष्टि न रहे ठाम ॥ म० ॥१७ ॥ तेणें एह काका मा हरा, बुद्धिवंत पण अज्ञान ॥ मारग विना केम जइ शके, नेत्र हीन वंछित थान ॥ म० ॥ १८ ॥ तेणे हुं ए पीतरीया प्रत्यें, करुं सम्यग्दर्शनवंत ॥ शुनज्ञान अमृत आंजीनें, करुं दिव्य नेत्र महंत ॥ म० ॥१९॥ एम चित्त मांहे चिंतवी, श्रीजयानंद नूपाल ॥ पितृव्यबोधन कारणें, उपनी बुद्धिविशाल ॥ म० ॥२०॥ नवमे खंमें ए सत्तरमी, घणुं ढाल एह रसाल ॥ कहे पद्म श्रीजयानंदजी, करशे ते मंगलमाल ॥म०॥२१॥सर्वगाथा॥४८८॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रज्ञप्ति विद्या प्रतें, समरे श्रीजयानंद ॥ आवी प्रगटपणे तिहां, पूछे परमाणंद ॥ १ ॥ प्रज्ञप्ति कहे सांनलो,एहनें बोध उपाय ॥ पंचाग्नि साधन करे, तापस ए रुषि राय ॥२॥ पूरवदिशें अग्नि स्थलें,महोटुं काष्ट पोलार ॥ महोटो नाग तिहां वसे,प्रथम तो ए अवधार ॥३॥ दक्षिणदिशिना काष्ठमां, काकिडो लहे दाह ॥ इंधण तापथी आकुलो,नविनासणनो राह ॥४॥ पश्चिमदिशि अग्नि स्थलें,उदेही ठे अपार ॥ काष्ठमां बलती तेहनें,नवि कोइ राखणहार ॥५॥ उत्तरदिशें ठे काष्ठमां, देडकीनो नही मान ॥ केइ मूइ केइ जीवती,केइक मूआ समान ॥६॥ तिहां जइ काष्ठ कढावीनें, करजो दो दो नाग ॥

इछतो, सार सैन्य लेइ लखमीपुर नणी गछतो ॥ राज्य सोंपी विशवाली पु रुषनें चालीयो, पोहोतो लखमीपुर गाम ताम चित्त म्हालीयो ॥ १३ ॥ श्री जयानंदनरिंद चक्रीनें जइ मल्या, अनुजनी नक्तिथी आदर करी सुखमां नल्या ॥ नवमे खंमें ढाल ए शोलमी मन धरो, पद्म कहे नवि धर्म करी नवजल तरो ॥ १४ ॥ सर्वगाथा ॥ ४६२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ बहु आदर सतकारिया, वली कीधुं बहु मान ॥ गुणीनें गुणवंता मले, वाधे प्रमोद प्रधान ॥ १ ॥ शतानंद नृप आदि दे, बांधव बहुपरि वार ॥ सहस गमे नूचर तथा, खेचरना पण वार ॥ २ ॥ राज्याधिराज्य एक दिन हवे, रयवाडी सहु संग ॥ श्रीजयानंदजी आवीया, नगर बाहि र मनरंग ॥ ३ ॥ ताम लोक एकण दिशें, जाता देखे जाम ॥ तेम आ वता वली जावता, लखो नर अनिराम ॥ ४ ॥ तेहमांथी कोइ पुरुषनें, तेडी पूछे राय ॥ श्यो उद्यम छे लोकनें, केम गमनागम थाय ॥ ५ ॥

ढाल सत्तरमी ॥ राग विहागडो, मुज घर आवजो रे नाथ ॥ ए देशी ॥

.... ॥ ते नर कहे नरपति सुणो, ए वात छे अद्भुत ॥ एणे नगर ढूकडा आवीया, पूर्वदिशें अवधूत ॥ १ ॥ मन मानज्यो रे नाथ ॥ ए नगरी कीधी सनाथ ॥म०॥ ए आंकणी ॥ मनोरम उद्यानमां जयनाम ते रुषिरा य, तप करे छे अति आकरां, पंचाग्निनें तेह तपाय ॥ म० ॥ २ ॥ समता घणी इंडियो दमी, यम नियम पाले सार ॥ ते रुषि नमवा जाय छे, ए लोकनां हजार ॥ म० ॥ ३ ॥ उपकरण लेइ पूजा तणां, केइ धरी लोक विवेक ॥ जइ पूजशे ते रुषि प्रत्यें, चित्त धारी धर्मनी टेक ॥ म०॥ ४ ॥ केइ सोवन फूल केइ वस्त्रथी, केइ विलेपन लेई जाय ॥ पण निःस्पृहमां ए अवधि छे, तपनो निधि रुषिराय ॥ म० ॥ ५ ॥ सत्कारथी तूसे नहीं, रूसे न लही अपमान ॥ ए निरीहनें मणि मृत्तिका, शत्रुनें मित्र समान ॥म०॥ ६ ॥ कनक पत्थर समवडे, पृथिवी करे सुपवित्त ॥ करे स्नान त्रण वेला वली, धरे जटा मुकुटनी रीत ॥ म० ॥ ७ ॥ वस्त्र पहेरीयां तरु वालनां, कंद मूल फलनो आहार ॥ मृगचर्म धरी संध्या करे, निद्रा तजी निरधार ॥ म० ॥ ८ ॥ रहे ध्यान मांहे विधियकी, निःस्पृह पोता नें देह ॥ वनवास नित्य जेणे कस्यो, शास्त्रना अन्यासी जेह ॥म०॥९॥

पटुवचन पण गुण लेशनें, समरथ न कहेवा होय ॥ करे भक्ति एहनी तेहनें, नवि आवे भवभय कोय ॥ म० ॥ १० ॥ तेणे नगरनां जन सहु मळी, ए आवे ने वळी जाय ॥ ते सुणी श्रीजयानंदजी, चित्त चिंतवे महाराय ॥ म० ॥ ११ ॥ मनमां मानजो भवि जीव, भवस्थिति विचित्र सदैव ॥ म० ॥ ए आंकणी ॥ अज्ञान महाडुःखें छेदीयें, घन निविडनें अनंत ॥ काळ रात्रि परें महा डुःख दीये, प्राणीनां सुख हरंत ॥म०॥१२॥ सन्मार्गनें ए आचरे, डुर्दशा कारण एह ॥ तिरियंच नरकना भव भमे, सवि डुःखनुं ए गेह ॥ म० ॥ १३ ॥ मिथ्यात्व रुखनुं कंद ए, सद्ज्ञाननुं ए चोर ॥ सहु कर्ममां ए शिरोमणि, अज्ञान अतिहि कठोर ॥ म० ॥ १४ ॥ तृष्णा विषयनी जे नदी, तेहनो ए गिरिवर जाण ॥ विचित्र भवनाटक करे, ते जाणो महिमा अन्नाण ॥ म० ॥ १५ ॥ चेतन ते पञ्चर सारिखो, नवि जीव माने कोय ॥ एणी परें अज्ञानें करी, वेगे तें निज ऋद्धि खोय ॥ म० ॥ १६ ॥ पंचेंडीपण अज्ञानथी,गत नयनपरें करे काम ॥ तेणें अंध तम अंज्ञान ए, तत्त्वदृष्टि न रहे ठाम ॥ म० ॥१७ ॥ तेणें एह काका महरा, बुद्धिवंत पण अज्ञान ॥ मारग विना केम जइ शके, नेत्र हीन वंछित थान ॥ म० ॥ १८ ॥ तेणे हुं ए पीतरीया प्रत्यें, करुं सम्यग्दर्शनवंत ॥ श्रुतज्ञान अमृत आंजीनें, करुं दिव्य नेत्र महंत ॥ म० ॥१९॥ एम चित्त मांहे चिंतवी, श्रीजयानंद भूपाल ॥ पितृव्यबोधन कारणें, उपनी बुद्धिविशाल ॥ म० ॥२०॥ नवमे खंमें ए सत्तरमी, घणुं ढाल एह रसाल ॥ कहे पद्म श्रीजयानंदजी, करशे ते मंगलमाल ॥म०॥२१॥सर्वगाथा॥४८८॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रज्ञप्ति विद्या प्रतें, समरे श्रीजयानंद ॥ आवी प्रगटपणे तिहां, पूछे परमाणंद ॥ १ ॥ प्रज्ञप्ति कहे सांभळो,एहनें बोध उपाय ॥ पंचाग्नि साधन करे, तापस ए ऋषि राय ॥२॥ पूरवदिशें अग्नि स्थलें,महोटुं काष्ट पोलार॥ महोटो नाग तिहां वसे,प्रथम तो ए अवधार ॥३॥ दक्षिणदिशिना काष्टमां, कांकिडो लहे दाह ॥ इंधण तापथी आकुलो,नविनासणनो राह॥४॥ पश्चिमदिशिअग्नि स्थलें,उदेही छे अपार॥ काष्टमां बलती तेहनें,नवि कोइ राखणहार ॥५॥ उत्तरदिशें छे काष्टमां, देडकीनो नही मान ॥ केइ मूइ केइ जीवतो,केइक मूआ समान ॥६॥ तिहां जइ काष्ट कढावीनें, करजो दो दो भाग ॥

इछतो, सार सैन्य लेइ लखमीपुर नणी गछतो ॥ राज्य सोंपी विश्वासी पुरुषनें चालीयो, पोहोतो लखमीपुर गाम ताम चित्त म्हालीयो ॥ १३ ॥ श्री जयानंदनरिंद चक्रीनें जइ मल्या, अनुजननी नक्तिथी आदर करी सुखमां नल्या ॥ नवमे खंमें ढाल ए शोलमी मन धरो, पद्म कहे नवि धर्म करी नवजल तरो ॥ १४ ॥ सर्वगाथा ॥ ४६२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ बहु आदर सतकारिया, वली कीधुं बहु मान ॥ गुणीनें गुणवंता मले, वाधे प्रमोद प्रधान ॥ १ ॥ शतानंद नृप आदि दे, बांधव बहुपरिवार ॥ सहस गमे नूपर तथा, खेचरना पण वार ॥ २ ॥ राज्याधिराज्य एक दिन हवे, रयवाडी सहु संग ॥ श्रीजयानंदजी आवीया, नगर बाहिर मनरंग ॥ ३ ॥ ताम लोक एकण दिशें, जाता देखे जाम ॥ तेम आवता वली जावता, लखो नर अनिराम ॥ ४ ॥ तेहमांथी कोइ पुरुषनें, तेडी पूछे राय ॥ श्यो उद्यम छे लोकनें, केम गमनागम थाय ॥ ५ ॥

ढाल सत्तरमी ॥ राग विहागडो, मुज घर आवजो रे नाथ ॥ ए देशी ॥

॥ ते नर कहे नरपति सुणो, ए वात छे अद्भुत ॥ एणे नगर ढूकडा आवीया, पूर्वदिशें अवधूत ॥ १ ॥ मन मानज्यो रे नाथ ॥ ए नगरी कीधी सनाथ ॥म०॥ ए आंकणी ॥ मनोरम उद्यानमां जयनाम ते रूषिराय, तप करे छे अति आकरां, पंचाग्निनें तेह तपाय ॥ म० ॥ २ ॥ समता घणी इंडियो दमी, यम नियम पाले सार ॥ ते रूषि नमवा जाय छे, ए लोकनां हजार ॥ म० ॥ ३ ॥ उपकरण लेइ पूजा तणां, केइ धरी लोक विवेक ॥ जइ पूजशें ते रूषि प्रत्यें, चित्त धारी धर्मनी टेक ॥ म०॥ ४ ॥ केइ सोवन फूल केइ वस्त्रथी, केइ विलेपन लेई जाय ॥ पण निःस्पृहमां ए अवधि छे, तपनो निधि रूषिराय ॥ म० ॥ ५ ॥ सत्कारथी तूसे नहीं, रूसे न लही अपमान ॥ ए निरीहनें मणि मृत्तिका, शत्रुनें मित्र समान ॥म०॥ ६ ॥ कनक पत्थर समवडे, पृथिवी करे सुपवित्त ॥ करे स्नान त्रण वेला वली, धरे जटा मुकुटनी रीत ॥ म० ॥ ७ ॥ वस्त्र पहेरीयां तरु गालनां, कंद मूल फलनो आहार ॥ मृगचर्म धरी संध्या करे, निद्रा तजी निरधार ॥ म० ॥ ८ ॥ रहे ध्यान मांहे विधियकी, निःस्पृह पोतानें देह ॥ वनवास नित्य जेणे कर्यो, शास्त्रना अन्यासी जेह ॥म०॥ए॥

पटुवचन पण गुण लेशनें, समरथ न कहेवा होय ॥ करे नक्ति एहनी तेहनें, नवि आवे नवनय कोय ॥ म० ॥ १० ॥ तेणे नगरनां जन सहु मली, ए आवे ने वली जाय ॥ ते सुणी श्रीजयानंदजी, चित्त चिंतवे महाराय ॥ म० ॥ ११ ॥ मनमां मानजो नवि जीव, नवस्थिति विचित्र सदैव ॥ म० ॥ ए आंकणी ॥ अज्ञान महाडुःखें ठेदीयें, घन निविडनें अनंत ॥ काल रात्रि परें महा डुःख दीये, प्राणीनां सुख हरंत ॥म०॥१२॥ सन्मार्गेनें ए आचरे, डुर्दशा कारण एह ॥ तिरियंच नरकना नव नमे, सवि डुःखनुं ए गेह ॥ म० ॥ १३ ॥ मिथ्यात्व रुखनुं कंद ए, सद्ज्ञाननुं ए चोर ॥ सहु कर्ममां ए शिरोमणि, अज्ञान अतिहि कगेर ॥ म० ॥ १४ ॥ तृष्णा विषयनी जे नदी, तेहनो ए गिरिवर जाण ॥ विचित्र नवनाटक करे, ते जाणो महिमा अन्नाण ॥ म० ॥ १५ ॥ चेतन ते पछर सारिखो, नवि जीव माने कोय ॥ एणी परें अज्ञानें करी, वेगो तें निज ऋद्धि खोय ॥ म० ॥ १६ ॥ पंचेंडी पण अज्ञानथी,गत नयनपरें करे काम ॥ तेणें अंध तम अंज्ञान ए, तत्त्वदृष्टि न रहे गम ॥ म० ॥१७ ॥ तेणें एह काका मा हरा, बुद्धिवंत पण अज्ञान ॥ मारग विना केम जइ शके, नेत्र हीन वंछित थान ॥ म० ॥ १८ ॥ तेणे हुं ए पीतरीया प्रत्यें, करुं सम्यग्दर्शनवंत ॥ श्रुतज्ञान अमृत आंजीनें, करुं दिव्य नेत्र महंत ॥ म० ॥१९॥ एम चित्त मांहे चिंतवी, श्रीजयानंद नूपाल ॥ पितृव्यबोधन कारणें, उपनी बुद्धिविशाल ॥ म० ॥२०॥ नवमे खंमें ए सत्तरमी, घणुं ढाल एह रसाल ॥ कहे पद्म श्रीजयानंदजी, करशे ते मंगलमाल ॥म०॥२१॥सर्वगाथा॥४७८॥

॥ दोहा ॥

॥ प्रज्ञप्ति विद्या प्रतें, समरे श्रीजयानंद ॥ आवी प्रगटपणे तिहां, पूछे परमाणंद ॥ १ ॥ प्रज्ञप्ति कहे सांनलो,एहनें बोध उपाय ॥ पंचाग्नि साधन करे, तापस ए ऋषि राय ॥२॥ पूरवदिशें अग्नि स्थलें,महोटुं काष्ट पोलार ॥ महोटो नाग तिहां बले,प्रथम तो ए अवधार ॥३॥ दक्षिणदिशिना काष्टमां, काकिडो लहे दाह ॥ इंधण तापथी आकुलो,नविनासणनो राह ॥४॥ पश्चिमदिशिअग्नि स्थलें,उदेही ठे अपार ॥ काष्टमां बलती तेहनें,नवि कोइ राखणहार ॥५॥ उत्तरदिशें ठे काष्टमां, देडकीनो नही मान ॥ केइ मूइ केइ जीवतो,केइक मूआ समान ॥६॥ तिहां जइ काष्ट कढावीनें, करजो दो दो नाग ॥

इछतो, सार सैन्य लेइ लखमीपुर नणी गछतो ॥ राज्य सोंपी विशवासी पुरुषनें चालीयो, पोहोतो लखमीपुर गाम ताम चित्त म्हालीयो ॥ १३ ॥ श्री जयानंदनरिंद चक्रीनें जइ मल्या, अनुजननी नक्तियी आदर करी सुखमां नल्या ॥ नवमे खंमें ढाल ए शोलमी मन धरो, पद्म कहे नवि धर्म करी नवजल तरो ॥ १४ ॥ सर्वगाथा ॥ ४६२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ बहु आदर सतकारिया, वली कीधुं बहु मान ॥ गुणीनें गुणवंता मले, वाधे प्रमोद प्रधान ॥ १ ॥ शतानंद नृप आदि दे, बांधव बहुपरिवार ॥ सहस गमे नूचर तथा, खेचरना पण वार ॥ २ ॥ राज्याधिराज्य एक दिन हवे, रयवाडी सहु संग ॥ श्रीजयानंदजी आवीया, नगर बाहिर मनरंग ॥ ३ ॥ ताम लोक एकण दिशें, जाता देखे जाम ॥ तेम आवता वली जावता, लखो नर अनिराम ॥ ४ ॥ तेहमांयी कोइ पुरुषनें, तेडी पूछे राय ॥ श्यो उद्यम छे लोकनें, केम गमनागम थाय ॥ ५ ॥

ढाल सत्तरमी ॥ राग विहागडो, मुज घर आवजो रे नाथ ॥ ए देशी ॥

॥ तें नर कहे नरपति सुणो, ए वात छे अद्भुत ॥ एऐ नगर ढूकडा आवीया, पूर्वदिशें अवधूत ॥ १ ॥ मन मानज्यो रे नाथ ॥ ए नगरी कीधी सनाथ ॥म०॥ ए आंकणी ॥ मनोरम उद्यानमां जयनाम ते रुषिराय, तप करे छे अति आकरां, पंचाग्निनें तेह तपाय ॥ म० ॥ २ ॥ समता घणी इंडियो दमी, यम नियम पाले सार ॥ ते रुषि नमवा जाय छे, ए लोकनां हजार ॥ म० ॥ ३ ॥ उपकरण लेइ पूजा तणां, केइ धरी लोक विवेक ॥ जइ पूजशे ते रुषि प्रत्यें, चित्त धारी धर्मनी टेक ॥ म०॥ ४ ॥ केइ सोवन फूल केइ वस्त्रथी, केइ विलेपन लेई जाय ॥ पण निःस्पृहमां ए अवधि छे, तपनो निधि रुषिराय ॥ म० ॥ ५ ॥ सत्कारथी तूसे नहीं, रूसे न लही अपमान ॥ ए निरीहनें मणि मृत्तिका, शत्रुनें मित्र समान ॥म०॥ ६ ॥ कनक पत्थर समवडे, पृथिवी करे सुपवित्त ॥ करे स्नान त्रण वेला वली, धरे जटा मुकुटनी रीत ॥ म० ॥ ७ ॥ वस्त्र पहेरीयां तरु गालनां, कंद मूल फलनो आहार ॥ मृगचर्म धरी संध्या करे, निद्रा तजी निरधार ॥ म० ॥ ८ ॥ रहे ध्यान मांहे विधियकी, निःस्पृह पोतानें देह ॥ वनवास नित्य जेणे कस्यो, शास्त्रना अन्यासी जेह ॥म०॥९॥

चनं, आतं दोषक्षयादिङः ॥ वीतरागोऽनृतं वाक्यं, न ब्रूयाद्धेत्वसंनवात् ॥ ॥ पूर्वढाल ॥ विण आधार आधेय न होय, गुरु विण आगम नही कोय रे ॥ जि० ॥ ज्ञान क्रिया संयुत गुरु जाणो, जिनवचन सम को न पीठाणो रे ॥ जि० ॥ ११ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्र ठे जेहमां, वली देव गुरु धर्म एहमां रे ॥जि०॥ नावथी दोय ए त्रिक आराधे,तव केवल ज्ञाननें साधे रे ॥जि०॥ ॥ १२ ॥ योग ते एह दया जे पाले, दया विण योगनें गाले रे ॥ जी० ॥ नागो रहे वली शिर मुंमावे, मौन धरे वली राख लगावे रे ॥ १३ ॥ वांकलां पहेरे जटानें धरावे,करे स्नान अग्निहोत्र थावे रे ॥जि०॥ कंद मूल वली क रे आहार, मृग प्रमुख चर्म वली धारे रे ॥ जि० ॥ १४ ॥ वली पाखंम क रे अधिकेरा, पंचाग्निप्रमुख बहुतेरा रे ॥ जि० ॥ चांड़ायणादिक तप बहु तपतो,ध्यान नियमने जाप ते जपतो रे ॥ जि०॥ १५ ॥ देवार्चन वेद आ गम नणतो, आतापना क्लेश न गणतो रे ॥ जि० ॥ एकादशी मुख व्रत आचरतो, संन्यास प्रमुख आदरतो रे ॥ जि० ॥ १६ ॥ नूमिशयन वली विद्या साधे, वौधादिक दीक्षा आराधे रे ॥ जि० ॥ दया विना सवि फोक ट जाणो, एहमां संदेह न आणो रे ॥ जि० ॥ १७ ॥ तात दया पालो न ली रीतें, दया सर्वधर्मने जीते रे ॥ जि० ॥ पंचाग्नि तपमां नही लेश, दया केरो कांइ प्रवेश रे ॥ जि० ॥ १८ ॥ नवमे खंमें अढारमी ढाल, कहे श्री गुरु उत्तम बाल रे ॥ जि०॥ ऋषिनें श्रीजयानंद नूपाल, केहवा करे जिन प्रतिपाल रे ॥ जि०॥ १ए ॥ सर्वगाथा ॥ ५१५॥

॥ दोहा ॥

॥ तातजी सुणो पूरवदिशें,काष्ठमां बलतो नाग ॥ दक्षिणदिशि सरडो बले, धर्मनो केहो लाग ॥१॥ जूउ पश्चिमदिशि काष्ठमां, उदेही संहार ॥ उत्तरदिशि बहु देडका, बतलावे निरधार ॥२॥ नू जल वायु अनल वली, वनस्पति सहु जीव ॥ हेतुदृष्टांतें साधतो, श्रीजयानंद समीव ॥३॥ ते का रण हे तातजी, तत्त्वातत्त्व विवेक ॥ करनारा तुमें पूज्य गो, हिंसा न घटे ठेक ॥ ४ ॥ इत्यादिक सुणी रायनां, वचन विचार पवित्र ॥ राजऋषि ज य बूझीया, श्रीजयवात विचित्र ॥ ५ ॥ आदेय वचन तणा धणी, वयण न निष्फल होय ॥ मेघधारा अमृत तणी, निष्फल कदि न जोय ॥ ६ ॥

पंचेंड्री वलता थका,देखावजो लइ लाग ॥७॥ धर्मद्रयामयी जाणीनें,वचण सुकोमल रीति ॥ पितृव्य तापस कृषि प्रत्यें, प्रतिबोधजो धरी प्रीति ॥ ८ ॥

॥ ढाल अढारमी ॥ आसणरा जोगी ॥ ए देशी ॥

॥ देवी थानक गइ हवे तिहां रे, नरपति चित्त विचारे रे ॥ जिनशासन रसीयो ॥ जिनवचनें थापुं एह तपसी, जिम न पडे फरी लपसी रे ॥जि० ॥ १ ॥ तेणें मारग चाल्यो नरपाल, तिहां पोहोतो परम दयाल रे ॥जि० लोक सहुनें दूर करावे, नरपति पासें जावे रे ॥ जि० ॥२॥ आदरथी नय रहित नृपाल, कांयक नमतो जाल रे ॥ जि० ॥ धर्म स्वरूप हुं तुमनें जाखुं, तेहमां खलखंच न राखुं रे ॥जि०॥३॥ धर्मनुं मूल दया छे सघले,षटदर्शनमां पग पगले रे ॥जि०॥ सवि संपद सुख हेतु एह,कही वेद पुराणें जेह रे॥जि० ॥४॥तेह दयाशुं तप जप करीयें, तो नवसायर तरीयें रे॥जी०॥तदुक्तं॥ददातु दानं विदधातु मौनं,वेदादिकं चापि विदां करोतु ॥ देवादिकं ध्यायतु संततं वा, न चेद्दया निष्फलमेव सर्वं ॥१॥ न सा दीक्षा न सा जिक्षा, न तद्दानं न तत्तपः ॥ न तद्ध्यानं न तन्मौनं, दया यत्र न विद्यते ॥ २ ॥ पूर्वढालं ॥ एह दया सवि धर्मनुं मूल, ते विण सवि छे प्रतिकूल रे ॥ जि०॥ ५ ॥ सुख सघलानुं साधन तात, जे जगमांहे विख्यात रे ॥ जि० ॥ एह दया जेहनें चित्त आवी, तस जय नवि होये जावी रे ॥ जि० ॥ ६ ॥ यतः ॥ कृपानदी महातीरे, सर्वे धर्मास्तृणांकुराः ॥ तस्यां शोषमुपेतायां, कियन्नंदंति ते चिरं ॥१॥ पूर्व ढाल ॥ जाणे जीव अजीव स्वरूप, तव पाले दया अनुरूप रे ॥ जि० ॥ तडुक्तं ॥ जो जीवे विवियाणइ,अजीवेविवियाणइ ॥ जीवाजीवे वियाणंतो, सोहु नाहि इ संजमं ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ जीवाजीव स्वरूप न जाणे, केम दया पाले अजाणे रे ॥ जि० ॥ ७ ॥ यतः ॥ जो जीवेवि न याणेइ, अजीवेवि न याणइ ॥ जीवा जीवे अयाणंतो,कह सो नाहि इ संजम ॥१॥ ॥ ढाल ॥ जो जैनागम होय अच्यास तो, होय सदगुरु पास रे ॥जि०॥ ते विण एह दयानो अंश, नवि आवे उलट होये च्रंश रे ॥ जि० ॥ ८ ॥ निधि औषधि मणि पगपग खाण, कोइ सिद्धपुरुष मले जाण रे ॥ जि० ॥ तो ते हाथ आवे सुख पावे, नहिं तो महेनत सवि जावे रे ॥जि०॥ ९ ॥ जैनागम गुरु विण धर्ममूल, केम पामीजें अनुकूल रे ॥ जि० ॥ ते आगम आप्तनो उपदेश, आप्त ते अरिहंत विशेष रे ॥ जि० ॥ १० ॥ यतः ॥ आगमाश्चासव

चनं, आप्तं दोषक्षयाद्विदुः ॥ वीतरागोऽनृतं वाक्यं, न ब्रूयाद्धेत्वसंनवात् ॥ ॥ पूर्वढाल ॥ विण आधार आधेय न होय, गुरु विण आगम नही कोय रे ॥ जि० ॥ ज्ञान क्रिया संयुत गुरु जाणो, जिनवचन सम को न पीठाणो रे ॥ जि० ॥ ११ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्र ठे जेहमां, वली देव गुरु धर्म एहमां रे ॥जि०॥ नावथी दोय ए त्रिक आराधे,तव केवल ज्ञाननें साधे रे ॥जि०॥ ॥ १२ ॥ योग ते एह दया जे पाले, दया विण योगनें गाले रे ॥ जी० ॥ नागो रहे वली शिर मुंमावे, मौन धरे वली राख लगावे रे ॥ १३ ॥ वांकलां पहेरे जटानें धरावे,करे स्नान अग्निहोत्र थावे रे ॥जि०॥ कंद मूल वली क रे आहार, मृग प्रमुख चर्म वली धारे रे ॥ जि० ॥ १४ ॥ वली पाखंम क रे अधिकेरा, पंचाग्निप्रमुख बहुतेरा रे ॥ जि० ॥ चांड़ायणादिक तप बहु तपतो,ध्यान नियमने जाप ते जपतो रे ॥ जि०॥ १५ ॥ देवार्चन वेद आ गम नणतो, आतापना क्लेश न गणतो रे ॥ जि० ॥ एकादशी मुख व्रत आचरतो, संन्यास प्रमुख आदरतो रे ॥ जि० ॥ १६ ॥ नूमिशयन वली विद्या साधे, बौधादिक दीक्षा आराधे रे ॥ जि० ॥ दया विना सवि फोक ट जाणो, एहमां संदेह न आणो रे ॥ जि० ॥ १७ ॥ तात दया पालो न ली रीतें, दया सर्वधर्मने जीते रे ॥ जि० ॥ पंचाग्नि तपमां नही लेश, दया केरो कांइ प्रवेश रे ॥ जि० ॥ १० ॥ नवमे खंमें अढारमी ढाल, कहे श्री गुरु उत्तम बाल रे ॥ जि०॥ ऋषिनें श्रीजयानंद नूपाल, केहवा करे जिव प्रतिपाल रे ॥ जि०॥ १ए ॥ सर्वगाथा ॥ ५१५ ॥

॥ दोहा ॥

॥ तातजी सुणो पूरवदिशें,काष्ठमां बलतो नाग ॥ दक्षिणदिशि सरडो बले, धर्मनो केहो लाग ॥१॥ जूउ पश्चिमदिशि काष्ठमां, उदेही संहार ॥ उत्तरदिशि बहु देडका, बतलावे निरधार ॥२॥ नू जल वायु अनल वली, वनस्पति सहु जीव ॥ हेतुदृष्टांतें साधतो, श्रीजयानंद समीव ॥३॥ ते का रण हे तातजी, तत्त्वातत्त्व विवेक ॥ करनारा तुमें पूज्य ठो, हिंसा न घटे ठेक ॥ ४ ॥ इत्यादिक सुणी रायनां, वचन विचार पवित्र ॥ राजऋषि ज य बूजीया, श्रीजयवात विचित्र ॥ ५ ॥ आदेय वचन तणा धणी, वयण न निष्फल होय ॥ मेघधारा अमृत तणी, निष्फल कदि न जोय ॥ ६ ॥

॥ ढाल उंगणीशमी ॥ नमो नमो मनक महा मुनि ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयराज रूपि हवे, धुरथी पण वैराग रे ॥ नवत्रमणे उद्वेगीया, वली नृप वयणनो लाग रे ॥१॥ धन धन ए तापस रूपि॥ ए आंकणी॥ शुद्धधर्मनुं मूल छे, समकित धरे निज अंगें रे ॥ तापस पणुं हवे छांमीनें, चारित्र मन करे रंगें रे ॥ ध०॥ २ ॥ तावत कोइ नर आवीनें,श्रीजयानंद नें नासे रे ॥ गुरु आव्या उद्यानमां, तव नृप एम प्रकाशे रे ॥ध०॥ ३ ॥ कोण गुरु कोण थानकें, तव उत्तर कहे तेह रे ॥ पूर्व उद्यानें चंपकवनें, पाउ धाख्या गुणगेह रे ॥ ध० ॥ ४ ॥ सूरि आगमसागरू, नाम तेहवो परि णाम रे ॥ पांचशें मुनिवरें परिवख्या, उतख्या निर्जीव गम रे ॥ध० ॥ ५ ॥ विजयराजरूपि साथ छे, जे तपना करनार रे ॥ वचन सुणी नृप हरषियो, कुंद ज्युं मेघनी धार रे ॥ ध० ॥ ६ ॥ विपुल देइ तस दाननें, नगर मांहे करे जाण रे ॥ अंतेउर पुर जन प्रत्यें, गुरु आगमनुं नाण रे ॥ध०॥ ७ ॥ तापस रूपि आगल करी, श्रीजय तापस नाम रे ॥ अन्यलोक साथें थया, जोवा वात उद्दाम रे ॥ ध० ॥ ७ ॥ सर्व रूद्धिशुं परिवख्या, नृप शोजा जेम इंद रे ॥ गुरु देखीनें साचवे, पंचाजिगमनो वृंद रे ॥ ध० ॥ ए ॥ वंदनविधि सवि जालवी, त्रण प्रदक्षिणा देइ रे ॥ सूरि वंदी वली वांदता, विजयादि क मुनि केइ रे ॥ ध० ॥ १० ॥ स्तुति करी श्रीगुरु राजनी, वेसे निज निज थान रे ॥ पितृव्य सहित राजा प्रत्यें, करे धर्मलाजनुं दान रे ॥ ध० ॥ ११॥ देशना सरस सुधा रसें, मेघ धारा परें वरसी रे ॥ जव्य वृक्ष विकश्वर करे, गुण नवपल्लव फरसी रे ॥ ध० ॥ १२ ॥ केइक देशना सांजली, सम्यग् दर्श न पामे रे ॥ देशविरति केइ आदरे, कइक माहाव्रत कामे रे ॥ ध० ॥ १३॥ केइक समकेत व्रत लिये, तपसी श्रीजयराय रे ॥ वैरागें चारित्र आदरे,म होत्सव करे चक्रीराय रे ॥ ध० ॥ १४ ॥ गुरु वयणें जय मुनिवरु, विज यमुनीश्वर पासें रे ॥ ग्रहण आसेवना बेहु प्रत्यें, शिक्षा नित्य अन्यासे रे ॥ ध० ॥ १५ ॥ गुरु तेम तात काका प्रत्यें, राजरूपिमां वडेरा रे ॥ अन्य वली मुनिराजनां, चरण नमे सहुकेरां रे ॥ ध० ॥ १६ ॥ परिकर सहित घरें गया, त्रण खंम राज्य पाले रे ॥ आतम परें प्रजा पालतो,सर्व अनर्थनें टाले रे ॥ध०॥१७॥ दंम देवे अन्यायीनें, न्यायवंतथी रीजे रे ॥ तात पितृव्य संजारतो, अविरतिथी मन खीजे रे ॥ध०॥ १७ ॥ त्रण अर्थ निज अवसरें,

साचवतो नित्य नित्य रे ॥ राजगुणें राज्य पालतो, भीमकांत वडचित्त रे ॥ ॥ध०॥१ए॥ यतः ॥ धर्मार्थकामेषु मिथो, ब्याबाधां परिहृत्य यः ॥ प्रवर्त्तते कृतीशश्वं, तस्य लोकद्वयं शुभम् ॥ १ ॥ पूर्वढाल ॥ मुख्यफल भावथी बहु सुखी, इव्यथी संतति होय रे ॥ पुत्र एक लक्ष लक्षण धरा, बहु कलावंत ते जोय रे ॥ ध०॥ २०॥ शास्त्र बहु जाण यौवन लह्या,सत्यसंधा शूरवीर रे ॥ सुगुण मंतिवंत माहाशय धणी, प्रगुण आचार महाधीर रे ॥ध०॥२१॥ लोकप्रिय तात आणा करे, देश पुर गामनें ठाम रे ॥ प्रौढ नृपकुलनी कन्या वस्था, जैनशासनी अभिराम रे ॥ ध० ॥ २२ ॥ महापराक्रमी विनयी घणा, करे क्रिया जेह निष्पाप रे ॥ तातभक्ता नें न्यायी वली, करे गुरु देव नो जाप रे ॥ ध० ॥ २३॥ जिनवर पूजना नित्य करे, भुजबल जास अनंत रे ॥ हय गय सैन्यशुं परिवस्था, कोश भंमार भरंत रे ॥ ध० ॥ २४॥ नूधर धीर गंभीर ते, रूपथी जीत्यो अनंग रे ॥ शशिपरें कीर्त्ति बहु उजली, कृतगुण जाण शुभ संग रे ॥ ध०॥ २५ ॥ शत्रु उपर अति क्रूर ते, आण चाले घणी तास रे ॥ बहु प्रतापी परिवार अति, सार संस्थान वली जास रे ॥ ध० ॥ २६ ॥ श्रीजयानंदना पुत्रनी, रूद्धि वरणवी कही जेम रे॥ खंम नवमे उंगणीशमी, ढाल पभ्नें कही प्रेम रे ॥ध०॥२७॥सर्वगाथा॥५४७॥

॥ दोहा ॥

॥ शतधनु उंचि देहडी, सोवन वर्ण शरीर ॥ सूर्यपरें तेजें तपे, समुड परें गंभीर ॥ १ ॥ लाख पूर्व दोय आउखुं, रोग रहित आणंद ॥ राज्य स्वर्ण मुड़ा धरे, न्याय माणिक सुखकंद ॥ २ ॥ चंड्परें कुवलय प्रत्यें, करतो नित्य विकाश ॥ तम राहु जस नवि ग्रहे, पसरे नित्य प्रकाश ॥३॥ सदा नी कल्पवृक्ष परें, सुविधि नाथ जिनराज ॥ तेहनु तीर्थ प्रभावता, श्रीजयानंद माहाराज॥४॥दानमंमप पगपग करे, तिहां दीये दान अपार ॥ दीन अनाथ कोडयो गमे, संतोषे तेणी वार ॥५॥ स्थान शयन परदेशीनें, निपजावे बहु राय ॥ जिनप्रासाद घणां करे,पुण्यराशि मानुं थाय ॥६॥ ते पण गाम गामें करे,नगर नगर ठाम ठाम॥ कोडयो गमे ते भरावतो,जिनप्रतिमा शुभ काम ॥७॥ तास प्रतिष्टा करे वली,थापे देहरा मांहें ॥ पूजाविधि नित्य साचवे,धरतो अंग उन्नाहें ॥ ८ ॥ ग्रास ग्राम दीये देहरे, पुष्पवाडीयो चंग ॥ वावि प्रमुख चैत्य कारणे, नृप दीये धरी उछरंग ॥ ए ॥ ५५६ ॥

॥ ढाल वीशमी ॥ साहेबा मोतीडो हमारो ॥ मोहनां मोतीडो० ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन राज्य सजा नृप जोडी, अवर नृपाल रह्या कर जोडी ॥ साहेबा विनति सुणो मोरी, मोहना विनति० ॥ करकज जोडी कहे वनपाल, सांजलजो मुज वात रसाल ॥ सा० ॥ १ ॥ गुरु आगमनें वधावुं राय, नृपमन अधिक प्रमोद ते थाय ॥ विमलमति राजा कहे एम, कोण गुरु किहां ठे कहो जेम ॥ सा० ॥ २ ॥ वनपालक कहे सुणो नृपाल, गुरु गुणसायर षटकाय पाल ॥ महिमा जेहनो कह्यो न जाय, जगतमांहे गुण जास गवाय ॥ सा० ॥ ३ ॥ नाम देतां जिह्व थाये पवित्र, त्रिजुवनमां अद्भुत चरित्र ॥ नामथकी दुःख विलयें जाये, गुण लखमी जस तनु नवि माय ॥ सा० ॥ ४ ॥ अवधिज्ञान मोहृपी अधिकेरुं, प्रतिपाति नहि तेह जलेरुं ॥ बहु साधु सेवे जस चर्ण, निरतिचार पाले जे चरण ॥ सा० ॥ ५ ॥ प्रभु उद्यानमां निरवद्य गम, अवग्रह मागी रह्या गुणधाम ॥ राजऋषि चक्रायुद्ध नामें. पाउ धार्या ठे मुज आरामें ॥ सा० ॥ ६ ॥ सूरि तेजें सूरज जिपे, शांति गुणें शशीनी परें दीपे ॥ लब्धि अनेक निधान मुणिंद, प्रणमे सुर नर नारीवृंद ॥ सा०॥ ७॥ पुर पुण्य होये जो अतोल, तो दर्शन थाये ए अमोल ॥ महाऋद्धें आवी मनरंगें, प्रणमो ते गुरु अति उहरंगें ॥ सा० ॥ ८ ॥ सांजली विकसे नृप रोम राय, अंग आजूषण वस्त्र अ पाय ॥ पडह वजडावे नयरमां जूप, चालजो गुरु वंदन करी चूप ॥सा०॥ ॥९॥ करी सामग्री समग्र नरिंद,सैन्य सामंत प्रजानां वृंद ॥ वाजित्रनादें गगन ते गाजे, नृप आरोहे पटगज राजे ॥ सा० ॥ १० ॥ वीजाये चामर शशि परें श्वेत, छत्र वारे आतप जूनेते ॥ नीकलीयो गुरुवंदन हेतें, राणीयो सज्ज थइ हवे तेतें ॥ सा० ॥ ११ ॥ रतिसुंदरी विजयादिक राणी, सहस्रगमे हुइ सपराणी ॥ निकले ते निज निज परिवारें, नृप पूठें बहु हर्षनें धारे ॥सा०॥१२॥ सद्गुरु दर्शन दीठुं जिहारें, गजवरथी उतरे नृप तिहारें ॥ पंचाजिगम साचवे राय, त्रण प्रदक्षिणा दीये तेण ठाय ॥ सा० ॥ १३ ॥ विनय नम्र थइ धरिय विवेक, वंदना करे जक्तें अतिरेक ॥ विद्याचारण श्रमणनां धोरी, वंदे गुरु निजपाप विठोरी ॥ सा० ॥ १४ ॥ दीये धर्मलाज महालाजकारी, श्रीजयानंदनें बहु हर्षकारी ॥ श्रीजयानंद पण विकसित वयणे, गुरु सन्मुख जोइ रसजर नयणें ॥ सा० ॥ १५ ॥ गुरुस्तवना करे क

रकज जोडी, पाप तणा परपंचनें त्रोडी ॥ अनुक्रमें बीजा पण राजान, प रजा अंतेउर परधान ॥ सा० ॥ १६ ॥ हर्षे प्रणमी स्तवना करता, नक्ति घणी मनमंदिर धरता ॥ गुरुमुख आगल श्रीजयानंद, वेसे धरतो परमानंद ॥१७॥ उचितस्थानक निज निज सहु वेसे, जेम गुरु वयणां हृदयमां पेसे ॥ सुर असुरां नर पर्षद देखी, देशना दीयें नव्य जीव गवेषी ॥ सा० ॥१८॥ नवमे खंमें वीशमो ढाल, श्रीजयानंदनें रास रसाल ॥ पद्म कहे सुणो बा ल गोपाल, श्रीगुरुथी होये मंगलमाल ॥ सा०॥ १९ ॥ सर्वगाथा ॥५७६॥

॥ दोहा ॥

॥ देशना नवनी नाशिनी, साधारण दीये तोय ॥ श्रीजयानंद उद्देशि नें, प्रारंने गुरु सोय ॥ १ ॥ क्षीराश्रव लब्धें करी, देवा नृप प्रतिबोध ॥ पूर वनव कही दाखवे, आप तणो संबंध ॥ २ ॥

॥ ढाल एकवीशमी ॥ निंदडी वेरण हुई रही ॥ ए देशी ॥

॥ आरामिक नवे प्रनु तणी, पूजानां हो फल पाम्यो सार के ॥ राजप्र साद घणो थयो, दोय नारी हो तिहां प्राण आधार के ॥ १ ॥ जिनपूजा फल सांनलो ॥ वली व्रतदानें हो फल होय अनंत के, पठो मतिसुंदर तुं थ यो, मंत्रीसर हो माहारो गुणवंत के ॥ जि० ॥२॥ पूरवनवनी दोय प्रिया, ए नवमां हो थइ ताहरी नार के ॥ अतिवल राजकृपिकनें, अरिहंतनो हो लह्यो धर्मप्रकार के ॥जि०॥३॥ दोय प्रियाशुं आराधीयो, तुमें त्रण जण हो तिहांथी थया देव के ॥ तिहांथी चवीनें तुं थयो, त्रण खंमना हो न न करता सेव के ॥ जि० ॥ ४ ॥ पूरवनव पत्नी थई, राज कुलमां हो कन्या रूपवंत के ॥ ते तुज रतिसुंदरी तथा, विजय सुंदरी हो सती महाशीलवंत के ॥जि०॥५॥ तुं नरवीर नृपति तणो, मतिसुंदर हो मंत्री निरमाय के ॥ धर्म पमाड्यो रायनें, स्याद्वादें हो नारव्यो जिनराय के ॥ जि० ॥ ६ ॥ ध र्म आराधी सुर थयो, तिहांथी चवी हो चक्रबल नृपाल के ॥ तस सुत च क्रायुध थयो, हुं नरपति हो दोय श्रेणी प्रतिपाल के ॥ जि० ॥ ७ ॥ राज्य नोगवुं दोय श्रेणीनुं, तुं जीत्यो हो तेणे आव्यो वैराग्य के ॥ चार ज्ञानथी विशेषशुं, उपन्यो वली हो थयो चारित्र लाग के ॥ जि० ॥ ८ ॥ नारी प्रयो जनें तुजनें, बांधीनें हो खेपव्यो कारागार के ॥ पूर्वें तेणें तें मुज प्रत्यें, बांधीनें हो काष्ठ पिंजर मझार के ॥ जि० ॥ ९ ॥ बंधन मांहेथी काढीयो,

॥ ढाल वीशमी ॥ साहेबा मोतीडो हमारो ॥ मोहनां मोतीडो० ॥ ए देशी ॥

॥ एक दिन राज्य सजा नृप जोडी, अवर जूपाल रह्या कर जोडी ॥ साहेबा विनति सुणो मोरी, मोहना विनति० ॥ करकज जोडी कहे वनपाल, सांजलजो मुज वात रसाल ॥ सा० ॥ १ ॥ गुरु आगमनें वधावुं राय, नृपमन अधिक प्रमोद ते थाय ॥ विमलमति राजा कहे एम, कोण गुरु किहां ठे कहो जेम ॥ सा० ॥ २ ॥ वनपालक कहे सुणो जूपाल, गुरु गुणसायर षटकाय पाल ॥ महिमा जेहनो कह्यो न जाय, जगतमांहे गुण जास गवाय ॥ सा० ॥ ३ ॥ नाम देता जिह थाये पवित्र, त्रिजुवनमां अद्भुत चरित्र ॥ नामथकी डुःख विलयें जाये, गुण लखमी जस ततु नवि माय ॥ सा० ॥ ४ ॥ अवधिज्ञान मोहथी अधिकेरुं, प्रतिपाति नहिं तेह जलेरुं ॥ बहु साधु सेवे जस चर्ण, निरतिचार पाले जे चरण ॥ सा० ॥ ५ ॥ पृथु उद्यानमां निरवद्य गम, अवग्रह मागी रह्या गुणधाम ॥ राजऋषि चक्रायुध नामें, पाउ धार्या ठे मुज आरामें ॥ सा० ॥ ६ ॥ सूरि तेजें सूरज ठिपे, शांति गुणें शशीनी परें दीपे ॥ लब्धि अनेक निधान मुणिंद, प्रणमे सुर नर नारीवृंद ॥ सा० ॥ ७ ॥ पुर पुण्य होये जो अतोल, तो दर्शन थाये ए अमोल ॥ महाऋद्धें आवी मनरंगें, प्रणमो ते गुरु अति उठरंगें ॥ सा० ॥ ८ ॥ सांजली विकसे नृप रोम राय, अंग आजूषण वस्त्र अपाय ॥ पडह वजडावें नयरमां जूप, चालजो गुरु वंदन करी चूप ॥ सा० ॥ ए ॥ करी सामग्री समग्र नरिंद, सैन्य सामंत प्रजानां वृंद ॥ वाजित्रनादें गगन ते गाजे, नृप आरोहे पटगज राजे ॥ सा० ॥ १० ॥ वीजाये चामर शशि परें श्वेत, ठत्र वारे आतप जूनेते ॥ नीकलीयो गुरुवंदन हेतें, राणीयो सऊ थइ हवे तेतें ॥ सा० ॥ ११ ॥ रतिसुंदरी विजयादिक राणी, सहस्रगमे हुइ सपराणी ॥ निकले ते निज निज परिवारें, नृप पूठें बहु हर्षनें धारे ॥ सा० ॥ १२ ॥ सद्गुरु दर्शन दीठुं जिहारें, गजवरथी उतरे नृप तिहारें ॥ पंचाजिगम साचवे राय, त्रण प्रदक्षिणा दीये तेण गय ॥ सा० ॥ १३ ॥ विनय नम्र थइ धरिय विवेक, वंदना करे जक्तें अतिरेक ॥ विद्याचारण श्रमणनां धोरी, वंदे गुरु निजपाप विठोरी ॥ सा० ॥ १४ ॥ दीये धर्मलाज महालाजकारी, श्रीजयानंदनें बहु हर्षकारी ॥ श्रीजयानंद पण विकसित वयणे, गुरु सन्मुख जोइ रसजर नयणें ॥ सा० ॥ १५ ॥ गुरुस्तवना करे क

अरिहंत धर्में विशेष ॥ धर्म नामें अमरष धरें, अधर्मनो उपदेश ॥ ३ ॥ अधर्म पक्षपात। वली, तें कर्यो बहु उपकार ॥ तोपण द्वेष धरे घणो, पूर्व वैरें सिंहसार ॥४॥ तुज चक्षु ग्रही एणे यदा, ते दिनथी करे पाप ॥ आज लगें दुष्टातमा, पामे बहु संताप ॥ ५ ॥ पुण्य पाप फल व्यक्तिना, हेतु पूरव नव जाण ॥ धर्म उद्यम करवो तुमें, जेह सदा सुख खाण ॥६॥ शुद्ध धर्म आपण बेहु, आराधि शुनरीति ॥ पुण्यानुबंधी पुण्यथी, नोगवीयें सुख नित्य ॥७॥ ॥ सांजली नृप मौनज रह्या, क्षण एक करे विचार ॥ पूरव नव आलोचतां, विस्मय लह्या अपार ॥ ८ ॥ श्रीजयानंद प्रमुख सवे, लघुकर्मा ते जीव ॥ जातिसमरण पामीया, आवरण गयां अतीव ॥ ए ॥ ६०८ ॥

॥ ढाल बावीशमी ॥ कवमारा आया गुरुजी प्राहुणा ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंदजी एम नणे, प्रच्नु तुम वचन प्रमाण ॥ तुम वयणे मुज उपन्युं, जाति समरण नाण ॥ १ ॥ मह्वारा ज्ञानी गुरुजी, वाणी सुणी में अमृत सारिखी ॥ ए आंकणी ॥ जेम तुमें नाख्युं तेम लह्युं, वली नमे गुरुना पाय ॥ कर जोडीनें विनवे, स्वामी करो सुपसाय ॥ ॥मा०॥२॥ तात पितृव्य स्वामी माह्वारा, दीक्षादिनथी वात ॥ शी शी बनी कहो आगले, सघलो मुज अवदात ॥ मा० ॥ ३ ॥ मोक्ष जाय तिहां लगें कहो. तव गुरु कहे सुणो राय ॥ गुरु साथें दीक्षा लेई, विचरे ते मुनिराय ॥ मा० ॥ ४ ॥ बार वरस लगें कीधलो, शिक्षा दोय अन्यास ॥ ज्ञान क्रिया दोय शिखीया, जिन शासन शुनवास ॥ मा० ॥ ५ ॥ निरतिचार चारित्रिया, विचरे महियल मांह ॥ बोध करे नवि जीवनें, शुद्ध क्रियानो उत्साह ॥ मा० ॥ ६ ॥ गुरु आणा नित्य पालता, गुरुनी करे अति नक्ति ॥ बाल वृद्ध मुनिवर तणुं, वैयावच्च यथाशक्ति ॥ मा० ॥ ७ ॥ तप करता अति आकरां, वली ते शम दमवंत ॥ राग द्वेष वर्जित मुनि, निःस्पृहनें गुणवंत ॥ मा०॥ ८ ॥ निर्मम नें कदाग्रह नही, सघले अप्रतिबंध ॥ सत्तावीश गुण साधुना, पाले ते निर्द्वंद्व ॥ मा०॥ ए ॥ परिसह उपसर्गें कदा, न चले ते तिल मात ॥ पृथिवीनें पावन करी, पाली प्रवचन मात ॥ मा० ॥१०॥ अणसण करीय समाधिमां, सनत कुमार माहिंद ॥ देवलोकें सात अयरनें, अधिक आउखे दोय इंद ॥ मा० ॥ ११ ॥ सुख नोगवी ते इंद्रनां, माहाविदेह मजार ॥ निन्न निन्न देशें थशे, नरपतिनो अवतार ॥ मा० ॥१२॥

पूरवनवें हो तुजनें ततकाल के ॥ उपकारी तुज जाणीनें, बहु मान्यो हो धरी प्रीति विशाल के ॥ जि० ॥ १० ॥ जेणें तें मुजनें इहां मूकीयो, राज्य कन्या हो दीधी घणी प्रीति के ॥ आपणनें नित्य वाधती, नवी लंघे हो कोइ कर्मनी रीति के ॥ जि० ॥ ११ ॥ धर्मोपकारनें कारणें, आव्यो हुं हो वली सांनलो वात के ॥ राय मंत्री नवे आपणें, श्रावकनो हो कह्यो धर्म विख्यात के ॥ जि० ॥ १२ ॥ कल्पवृक्ष समो धर्म ते, शुद्धनावें हो आराध्यो ताम के ॥ राज्य संपद प्रवली लह्यां, नोग सुख लह्या हो एणी परें अनिराम के ॥ जि०॥ १३ ॥ अतिशय श्रद्धा तुज हती, तेणें अतिशय हो लह्यो मुजथी ऋद्धि के ॥ कर्मथी कोइ वलीयो नही, तेम धर्मथी हो पामे सवि सिद्धि के ॥ जि० ॥१४॥ नेत्र गयां के सुजे नही, इत्यादिक हो पूरव नवें जेह के ॥ तें मुनिनें नारव्युं हतुं, तेणें आंख्यो हो गइ एणें नव एह के ॥ जि० ॥१५॥ पहेलीयें कुल निंदा करी, बीजीयें कह्युं हो निल्लनें यो अंध के ॥ वेश्याकुलें बीजी अंध थई, वली निल्लनो हो पामी संबंध के ॥ ॥ जि० ॥१६ ॥ पश्चात्तापथकी वली, कर्म खपीयां हो रह्यो कांइक अंश के ॥ तेणे इण नवें उदय थयो, नोगव्या विण हो नही कर्मनो नृंश के ॥ ॥ जि० ॥ १७ ॥ सिंहनो नव हवे सांनलो,पुरोहित मुज हो वसुसार जे हुंत के ॥ नास्तिक धर्म शिरोमणि, में दीधुं हो अपमान अत्यंत के ॥जि० ॥ १८ ॥ काढी मूक्यो देशथी, नवमांहे हो नमीयो बहु काल के ॥ परिव्राजक थयो कोइ नवे, थयो ज्योतिषी हो सुर प्रेम विशाल के ॥ जि० ॥ ॥ १९ ॥ बहुनव नमीयो तिहांथकी,तुज पितृव्य हो सुत थयो कुमार के॥ पापानुबंधी पुण्यथी, थयो महोटो हो नामें सिंहसार के ॥ जि० ॥ २० ॥ तें पुरोहितनें एम कह्युं, चंमालनो हो श्यो करवो संग के ॥ तेणें तुज दोष दीयो एणे,चंमालनो हो नवि कर्मनो नंग के ॥ जि०॥ २१ ॥ नवमे खंमें ए कही, एकवीशमी हो वर पद्यें ढाल के ॥ कर्म म करजो को सही, कर्में करी हो होये बहु जंजाल के ॥ जि० ॥ २२ ॥ सर्वगाथा ॥ ६०० ॥

॥ दोहा ॥

॥ नास्तिक धर्म पूरव कह्यो, तेणे थयो कर्म जमाव ॥ दोष नख्यो निर्गुण थयो, मायी क्रूर स्वनाव ॥ १ ॥ अन्यायी निर्दयी घणो, क्रोधीनें निर्नाग ॥ लोनी द्वेषी आकरो, पापमतिनो लाग॥२॥धर्म द्वेषी निरंकुश वली,

॥ ढाल त्रेवीशमी ॥ आदर जीव क्षमा गुण आदर ॥ ए देशी ॥

॥ चक्रायुध सूरि कहे सांजलो, सिंह तणो अवदातजी ॥ पाप करी ब हु व्यसननें सेवी, अशुन ध्यान दिन रातजी ॥ च० ॥ १ ॥ किहांयक चोरीमां पकडायो, मरण लह्यो तेणी वारजी ॥ पाप तणां फल कडुआं जा णी, पाप न करशो किवारजी ॥ च० ॥ २ ॥ सातमी नरकें घोर पापथी, उपन्यो आपद गणजी ॥ महादुःख सागर जोगवतो तिहां, बावीश अयर प्रमाणजी ॥ च० ॥३॥ तिहांथी नीकली मत्स्यादिकनां, अंतरे नव करी ए मजी ॥ साते नरकें वार अनंती, उपन्यो नही कहीं खेमजी ॥ च० ॥ ४ ॥ सर्व तिर्यंचनें देव हीणामां, तेम दुष्ट नरकमां जायजी ॥ वार अनंति फरी फरि नमशे, पाप तणे सुपसायजी ॥ च० ॥ ५ ॥ एणी परें पाप विपाक आकरो,नव अनंत दुःखदायजी ॥ तास दृष्टांत ए सिंहनो नांख्यो, कर्म कस्यां नवि जायजी ॥च०॥६॥ एम जाणी नवि पाप न कीजें.पुण्य मारग आदरी येंजी ॥ जेहथी नव डुःख राशि न लहीयें,वहेलुं शिवसुख वरीयेंजी ॥च०॥७॥ तुज सार्थे जे दीक्षा लेशे, अंतर रिपु जय करताजी ॥ तुजप्रिया तुज सेवक बी जा, नरपति पण व्रत वरताजी ॥च०॥८॥ स्वर्गादिकमां सुरसुख लेहीने, महा विदेह उपजशेजी ॥ उत्तम चरण पाली ते सर्वे, अल्पनवें शिव लहेशेजी ॥च० ॥९॥ एह सर्व जे तुजनें नाख्युं, ते मुज बुद्धें न जाणोजी ॥ पण हुं विहर मान जिन वंदन,माहाविदेहनें गाणोजी ॥च०॥१०॥ तिहां श्रीपुंमरकिणि नग रीयें, जिनवर करे व्याख्यानजी ॥ नव्यजीव प्रतिबोधन कारण, जेने सहु ये समानजी ॥ च० ॥ ११ ॥ देशनामां तुज चरित्र वर्णव्युं, प्रजुजीयें करी विस्तारजी ॥ धुरथी मांमीनें जे नांख्यो, ते में सुण्यो अधिकारजी ॥ च० ॥ ॥१२॥ अवधिज्ञानें में जाण्यो हुंतो, ए सघलो वृत्तांतजी ॥ क्षायिक ज्ञानीनी वली साखें, दृढता थइ दृष्टांतजी ॥ च० ॥ १३ ॥ तुजनें प्रतिबोधन हुं आ व्यो,तें मुज कस्यो उपकारजी ॥ पूरवनवें जिनधर्म पमाडयो, तेहनो प्रत्युप कारजी ॥ च० ॥ १४ ॥ तुजनें ए संसार असारथी, तारवा आव्यो जाणी जी ॥ देउं देशना नवनय हरणी, सांनल तुं मुज वाणीजी ॥ च० ॥ १५ ॥ नवमे खंमें ढाल त्रेवीशमी,श्रीजयानंदनें रासजी ॥ पद्मविजय कहे सांजलो नविजन, सुणतां लीलविलासजी ॥ च० ॥ १६ ॥ सर्वगाथा ॥ ६५४ ॥

प्रोढराज्य तिहां पालता, लेशे संयम जार ॥ केवल लही मुकतें जशे, शाश्वत शिव सुख सार ॥ मा० ॥ १३ ॥ सांजली सूरि मुखथकी, तात पितृव्य विरतंत ॥ हरप लही प्रणमी करी, नरपति वली पूछंत ॥ मा० ॥ १४ ॥ मदारुं तेम सिंहसारनुं, तेम मुज नारीनुं जेह ॥ जवसरूप स्वामी जाणीयें, करीय प्रसाद मुज एह ॥ मा० ॥ १५ ॥ हुं जव्य के अजव्य हुं, जव्य तो इण जव सिद्धि ॥ अथवा आगें जवांतरें,जांखो करी हित बुद्धि ॥ मा० ॥ ॥१६॥ अथवा मुज प्रिया आदिके, केम लेहशे निरवाण ॥ अथवा नही जाये ते कहो, सघलुं मांहि मंमाण ॥मा०॥ १७ ॥ सूरि कहे सुणो जूपति, तुज पत्न्यादिक जेह ॥ आसन्नसिद्धि ते जव्य छे, इतर अयोग्य कहेह ॥ मा० ॥ १८ ॥ तेहमां तुं तथा ताहरी, नारीयो पूरवनी होय ॥ तेम हुं पण एणेहिज जवें, सहुनें शिवसुख होय ॥ मा० ॥ १९॥ देशे ऊणा लाख वरसनो, केवलीनो पर्याय ॥ ज्ञान ज्योतें जगतनें, तारता करी सुपसाय ॥ ॥ मा० ॥ २० ॥ पृथिवीनें पावन करी, चरणकमलें चित्त लाय ॥ चोराशी लख वरसनुं, पाली मुनि पर्याय ॥ मा० ॥ २१ ॥ सकल कर्मनो क्षय करी वरशो शिववधू सार ॥ हुं पण केवल लही करी, करी जव्यनें उपकार ॥ ॥ मा० ॥ २२ ॥ केइक वर्ष विहरी करी, पामीश शाश्वत सुख ॥ सिंहनी वात हवे सुणो, जेम पामे अतिदुःख ॥ मा० ॥ २३ ॥ नवमे खंमें बावीशमी, पद्म विजय कही ढाल ॥ श्रीजयानंदना रासमां, पुण्यथी मंगलमाल ॥ मा० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ६३२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ सिंहसार पुर बाहरें, नीसरीयो ते जाम ॥ जमतो पृथिविमां फिरे, देश नगर पुर ग्राम ॥१॥ उदर जरणनें कारणे, जिहां जिहां करतो वास ॥ तिहां तिहां आवे आपदा,मूके मुख निस्सास ॥ २ ॥ तिहां दुर्जिक्ष पडे वली, ते हनुं कारण एह ॥ ज्ञानी निमित्तिया वयणथी, जाणी निर्ब्रछे तेह ॥३॥ लोक कोप करी एहनें, काढी मूके ताम ॥ सिंह सेवे जे जूपनें, प्रायें जाये जमधाम ॥ ४ ॥ लोक कहे पगलां बुरां, एहनां दीसे जाय ॥ शरण आधार जे आपणो, मरण लह्यो जूछे राय ॥ ५ ॥ ताडन तर्जना बहु करे, काढी मूके तास ॥ घोर पाप फल अनुजवे, नवि पामे कहीं वास ॥ ६ ॥

॥७॥ खेत्र लहे कुल दोहलुं, कुल पामे उत्तम जाति रे ॥ जाति लहे बुद्धि दोहिली, बहु जड जगमां विख्यात रे ॥ब०॥ ए ॥ बुद्धि लहे गुरु दोहिला, जे निर्ममनें निरमाय रे ॥ गुरु पामे पण दोहिलुं, श्रवणे सांजलवुं थाय रे ॥ श्र० ॥ १० ॥ अन्यतीर्थी सेवे घणा, अथवा करे काठीया नंग रे ॥ धर्म सुण्यो गुरु संगतें, डुर्लन श्रद्धानो रंग रे ॥ डु० ॥ ११ ॥ द्रव्य नाव डुग नेदथी, सरधा तिहां द्रव्यथी जाण रे ॥ तत्त्वरुचि जिन वयणमां, यद्यपि परमारथ अजाण रे ॥ य० ॥ १२ ॥ नावथी परमारथ लहे, अथवा वली दोय प्रकार रे ॥ निश्चयनें व्यवहारथी, शुद्ध हेतु ते होये व्यवहार रे ॥ शु० ॥ १३ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्रना, निश्चयथी शुन परिणाम रे ॥ कारक रोचक दीपकें, ए त्रिविध नेद होये नाम रे ॥ ए० ॥ १४ ॥ श्रद्धा सम किरिया करे, ते कारक समकित होय रे ॥ गौतम प्रमुख तणी परें, तेतो दीसे विरला कोय रे ॥ ते० ॥ १५ ॥ रुचि मात्रज श्रद्धा होये, जेम श्रेणिक प्रमुख नरिंद रे ॥ रोचक समकेत ते लहो, करणी विण जे नवि वृंद रे ॥ क० ॥ १६ ॥ दीपक समकेत जाणीयें, देशनादिकें दीप समान रे ॥ दीपे पण निजमां नही, होये अनव्य प्रमुख एणी गण रे ॥ हो० ॥ ॥ १७ ॥ समकेत रोचक जो लहे, पण कारक अतिडुर्लन रे ॥ विषय कषायमां मुंजीयो, वली पुत्र कलत्र आरंन रे ॥ व० ॥ १८ ॥ यतः ॥ सुक्खा निकंखिस्स विमाण वस्स,संसार निरुस्स तिथस्स धम्मे ॥ न तारिसंडुत्तरमत्थि लोए, जहित्थिउ बाल मणोहराउ ॥ १ ॥ ए ए असंगं समइक्कमित्ता, सुहु नराचेव नवंति सेसा ॥ जहा महासागरमुत्तरित्ता, नईनवेअविगंडा समाणा ॥२॥ सल्लं कामा विसंकामा, कामा आसिविसोवमा ॥ कामा पढे माणा, अकामा जंति डुग्गइं ॥ ३ ॥ पूर्वढाल ॥ डुर्गति दायक काम जे, पंमित करे तेहनो त्याग रे ॥ जे कारण ग्रहीनें होये, अनासक्तियें कामनो राग रे ॥ अ० ॥ १७ ॥ ब्रह्मव्रती पर्वनें दिनें, अन्यदिवस तणुं परिमाण रे ॥ ती व्रातिचार न तेहमां, एहवो होये गृही घर राण रे ॥ ए० ॥ २० ॥ एम जाणी ब्रह्म आदरे, नहीतो स्वदारा संतोष रे ॥ निजनरतार संतोषिणी, नारीनें एम व्रत पोष रे ॥ ना० ॥२१॥ सर्वथकी ब्रह्म आचरे, घर नार त्यजी अणगार रे ॥ शीलांगरथ मुनिराजनो, परिमाण अढार हजार रे ॥ प०॥ ॥ २२ ॥ करण योगें त्रिक नेदथी, आहारादिकसंज्ञा चार रे ॥ इंद्रिय पं

॥ दोहा ॥

सुधा मुधा करे देशना, सांजली श्रीजयानंद ॥ कर जोडी विनयें करी,विक सित मुख अरविंद ॥ १ ॥ निड़ा विकथा वरजतो, निड़ा करे व्याघात ॥ नि ड़ा शवनी वानकी, कर्मबंध पण थात ॥ २ ॥ निड़ावंतनें सहु हसे, जागं तां नर जेह ॥ साचुं प्रायें नवि वदे, सांजली न शके तेह ॥ ३ ॥ अमली परें ते धूणतो, न रहे कांइ शुद्धि ॥ उंघे श्रुत उंघ्या तणुं,जागंतां वाधे बुद्धि ॥ ४ ॥ उंघण नर उंटल समो,कंटकमां मुख जाय ॥ ड़ाख मंमप सम जि न वयण, डांमी ते उंघाय ॥ ५ ॥ तेम विकथा वर्जो वली, जेहथी बहु जंजाल ॥ नवनजानु जीव रोहिणी, जेम पामी डुःख जाल ॥ ६ ॥ विक थाथी उंघ्यो नलो, नवि मोले व्याख्यान ॥ विकथा कारक महीष सम,जां ख्यो प्रगट प्रमाण ॥ ७ ॥ नख्या टांकामां नाखीयें, मूतर चलुक प्रमाण ॥ विकथा ते वितथा करे, वक्ता तणुं वखाण ॥ ८ ॥ तेमाटे तुमें मत करो, निड़ा विथा कोय ॥ एम सुणतां प्रमुदित होये, वक्ता श्रोता दोय ॥ ए ॥

॥ ढाल चोवीशमी ॥ हस्तिनागपुरवर नलो,जिहां पांकुराजा सार रे ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंदजी सांजलो, नरनव लही म करो प्रमाद रे ॥ फरि फरि नरनव दोहिलो, पामवो एम शास्त्र संवाद रे ॥ १ ॥ पामवो एम शास्त्र सं वाद, सुणो नवि प्राणीयां, जिनवाणी रे ॥ जिनवाणी विन्नाण मुणिंद, क हे नविहित नणी, गुण खाणी रे ॥ ए आंकणी ॥ कायस्थिति अति जी वनी, पुढवी अप अनलनें वाय रे ॥ असंख्याती उत्सर्पिणी,रहे जिन्न जि न्न एक काय रे ॥ रहे० ॥ २ ॥ वनस्पतिमांहे जो रहे, अनंति उत्सर्पिणी थाय रे ॥ बि ति चउरिंदिय कायमां, संख्यातो काल रहाय रे ॥ सं०॥ ३ ॥ पंचिंड़ियमांहे जो करे, नव सात आठ संलग्ग रे ॥ संसरतां बहु डुःख ल हे, नही सुख तणो संलग्ग रे ॥ न० ॥ ४ ॥ नव एकेक सुर नरकनो, एम जाये प्रमादमां काल रे ॥ त्रस पणुं अति दोहिलुं, थावरमां रहे बहु बा ल रे ॥ था० ॥ ५ ॥ त्रसपणुं लहे दोहिलुं, पंचेंड़ियपणुं जगसार रे ॥ विकलेंड़िय दीसे घणा, हीण इंड़िय वली संसार रे ॥ ही० ॥ ६ ॥ पंचेंड़ि य लह्यो परवडां,पण डुर्लन मनु अवतार रे॥ सुर तिरि नरकमां बहु नमे, लहेतो तिहां डुःख अपार रे ॥ ल० ॥ ७ ॥ नरनव पामे दोहिलो, आरय खेत्रनो संबंध रे ॥ म्लेछादिक दीसे घणा,बहु पाप करम करे अंध रे ॥ब०

रे ॥ रा० ॥ २ ॥ आशिष वचन परजा तणें रे, नरपति वाधे दोलत घणे रे ॥ रा० ॥ तेणे परजानें तुमें पालजो रे, पूर्वजनी रीति अनुआलजो रे ॥ रा० ॥ ३ ॥ परजा नृपनें लोपे नही रें, नवि नृप परजानें कोपे सही रे ॥ रा० ॥ परजा दानादिक जे करे रे,वली धर्म महोत्सव बहु आदरे रे ॥ रा० ॥४ ॥ ऋद्धिनें जशथी परजा वधे रे, वली अपर गुणे पण जे सधे रे ॥ रा० ॥ तेम तेम नृपनें आणंद घणो रे, परजा उपर प्रेमज पणो रे ॥ ॥रा०॥५॥ धन्य माने प्रजा मुज एहवी रे, पुण्यवंती प्रजा मुजनें हवी रे ॥ ॥रा०॥ ए राज्यस्थिरीनावें रहे रे, जस कीरति वित्त जगमां लहे रे ॥रा०॥ ॥ ६ ॥ वत्स राज्य पालजो एणीपरें सदा रे, जेम धर्म सीदाये नवि कदा रे ॥ रा० ॥ चिंतामणि परें उत्तम लह्यो रे, धर्म ते वीतरागनो जे कह्यो रे ॥रा०॥७॥ ते समकेतसार इच्छित दीये रे, वडबीज परें ते वधीजीयें रे ॥रा०॥ शत शाखायें ते विस्तरे रे, डुष्ट वयण वायुयें नवि फर फरे रे ॥ रा० ॥ ८ ॥ पुरमां सात व्यसन निवारजो रे, अणहुंता पुरमां म लावजो रे॥रा०॥ देइ पुत्रनें शिक्षा एणीपरें रे, ते पुत्र सहु अंगीकरे रे॥ रा०॥९॥हवे स्वजन प्रधाननें पागीया रे,महेता मसुदी जे राजीयारे॥रा०॥ पूछे सहुनेंनर राजीयो रे,पुत्रपत्नीनें गुणगण गाजीयो रे॥रा०॥१०॥प्रमुदित करी सहु परजा प्रत्यें रे,करे महोत्सव दिन दिन वाधते रे ॥रा०॥ जिनवर चैत्यें महोत्सव करे रे, आठ दिवस लगें नवनव परें रे ॥ रा० ॥ ११ ॥ वजडावे पडह अमारिना रे, परराज्य मांहे श्रीकारना रे ॥ रा० ॥ नक्ति करे साधर्मिक तणी रे, वस्त्र आहार दानादिक अति घणी रे ॥ रा० ॥१२ ॥ पच्चवीशमी नवमा खंममां रे, ढाल नाखी रंग अखंममां रे ॥ रा० ॥ सुणो श्रोता पद्मविजय कहे रे, शासनरागी आनंद लहे रे ॥ ॥रा० ॥ १३ ॥ सर्वगाथा ॥ ७१२ ॥

॥ दोहा ॥

॥ शासन उन्नति जेम होये, तेहवां कार्य अनेक ॥ निज आतम हित कारणे, करता धरिय विवेक ॥ १ ॥

॥ ढाल छवीशमी ॥ टुंक अने टोडावचें रे, मेंदीनां दोय रुंख, मेंदी रंग लागो ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंदना सुत नला रे,श्रीकुलानंद नरिंद ॥ संयम रंग लागो॥ सामग्री अनिषेकनी रे, मेलवे उपकरण वृंद ॥ सं०॥१ ॥ विधिपूर्वक मज्ञ

चनो जय कस्यो, पृथिव्यादिक दशपद धार रे ॥ पृ०॥ २३ ॥ नू जल ज्वल न अनिल तरु, विकलेंड्रिय वली त्रण नेद रे ॥ पंचेंड्रियने अजीव ए, द श नेदनो संयम वेद रे ॥द० ॥ २४ ॥ खात्यादिक दश धर्मथी, जोडतां हो ये सहस अढार रे ॥ एहवा अढार रथें करी, गुण नरिया श्रीअणगार रे ॥ गु० ॥२५ ॥ ते अणगार पणुं धरे,जगमां धन्य तस अवतार रे ॥ तस उपमान न जगतमां, जे सकल गुणां शिरदार रे ॥ जे० ॥ २६ ॥ इंड चं ड् नमे चरणने, उत्कृष्टथी तेणे नव सिद्धि रे ॥ सात आठ नव उलंघे न ही, ए समयमांहि प्रसिद्ध रे ॥ ए० ॥ २७ ॥ तेणे संयम लेवुं घटे, हवे करी संसारनो त्याग रे ॥ जनम मरणनां नय टले, वरवा शिव सुंदरी ला ग रे ॥ व० ॥ २८ ॥ आतम तत्त्वें रमण होये,'परनाव प्रसंग न कोय रे ॥ चरण धरमना गुणथकी, चिदानंद प्रगट क्रमें होय रे ॥ चि० ॥ २९॥ ढाल चोवीशमी एणी परें, नवमे खंडें सुरसाल रे ॥ पद्मविजय कहे धर्म थी, होये घर घर मंगल माल रे ॥ हो० ॥ ३० ॥ सर्वगाथा ॥ ६९३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ चक्रायुध चारित्रीया, दीधो एम उपदेश ॥ रोम रोम सुणी हरषीया, श्रीजयानंद नरेश ॥१॥ दान सुपात्रें दीधलुं, पूर्वे संस्कार ते पाम ॥ सफल थयो उपदेश ते,दोलत न गमे दाम ॥२॥ वधतो थयो वैराग्य ते,पूर्व वैराग्य प्र माण ॥ पयमां साकर जेम पडे, समज्यो तेह सुजाण ॥३॥ चित्त थयुं चा रित्रनुं. कहे गुरुने किरपाल ॥ हितदेशक हित वांछकू,मुज हित कखुं मया ल ॥४॥ प्रसन्न थइ इहां पडखीयें, जइनें हुं निज धाम ॥ पुत्रने राज्य था पी करी, आवुं छुं हुं आम ॥ ५॥ नव उदवेग लह्यो नलो, राज्यें न रीजे मन्न ॥ उत्सवशुं इहां आवीनें,आदरें तुम्ह आसन्न ॥ ६ ॥ दक्षपणे दीक्षा ग्रहुं,तुमची पासें ताम ॥ म करो विलंब ए काममां,धर्मी गयो निजधाम॥७॥

॥ ढाल पच्चीशमी ॥ मीठा मीठुं बोलीनें शुं रीजवो रे ॥ ए देशी ॥

॥ राजन मीठुं बोलीनें सहु रीजवो रे, रखे कोइ प्रजानें खीजवो रे ॥ ॥ रा० ॥ पुत्र थापे महामहोत्सव करी रे, शीखामण दीये नृप हित धरी रे ॥ रा० ॥ सहोदरनी परें पालजो प्रजा रे, मत करजो कोइनी कूडी क जा रे ॥रा० ॥१ ॥ दूजे कामधेनुनी परें रे, जो सुखणी प्रजा होये थिरपरें रे ॥ रा० ॥ नृपनें नंमार ए चालतो रे, सुखमां प्रजालोक जो माहालतो

परजानें पण तेणीपरें रे, धर्म करावे जूपाल ॥ सं० ॥ २० ॥ पग पग तात संजारतो रे, करतो तस वहु मान ॥ सं० ॥ हवे श्री श्रीजयानंदजी रे, गुरु सार्थे असमान ॥ सं० ॥ २१॥ विचरे संयम साधता रे, विनय तणा जंमार ॥ सं० ॥ सामाचारी शीखीया रे,गुरुपासें विधि सार ॥सं०॥२२॥ तिमद्विज पोतें आचरे रे, करे श्रुतनो अन्यास ॥सं०॥ अनुक्रमें थोडा कालमां रे,ह्ा दशांगधर खास ॥सं०॥२३॥ नवमे खंम ब्वीशमी रे,पद्मविजयें कही ढाल ॥ सं० ॥ मुनिगुण सुणतां गायतां रे,होवे मंगल माल ॥सं०॥२४॥७२७॥

॥ दोहा ॥

॥ समितिपंच समिता सदा, गुप्ति त्रण आगार ॥ अप्रमादी अकिंचनी' असंगी अणगार ॥ १ ॥ साधुगुणशुं शोजता,निर्ममनें निःकषाय ॥ तप करता अति तीव्र ते, निर्मदनें निर्माय ॥२॥ श्रीजयानंद सूरिपदें, गुरु थापे गंजीर ॥ लायक नाना लब्धिनें, धरता साहस धीर ॥ ३ ॥ आणा गुरुनी आदरी, पृथिवी करे पवित्र ॥ सूत्र जणावे साधुनें, निरति चार चरित्र ॥ ॥४॥ ब्त्रीश ब्त्रीशी गुणे, शोजित जास शरीर ॥ गुरु पासें आव्या गुणी, वंदननें वड वीर ॥ ५ ॥

॥ ढाल सत्तावीशमी ॥ कर कंकुनें करुं वंदना हुं वारी लाल ॥ ए देशी ॥

॥ चक्रायुध सूरी सरू, हुं वारीलाल ॥ विचरे बहु परिवार रे ॥ हुं०॥ सार्थे श्रीजयानंदजी ॥ हुं० ॥ चरण करण व्रत धार रे ॥ हुं० ॥ १ ॥ ए मुनिनें करुं वंदना हुंवारी लाल ॥ ए आंकणी ॥ चार ज्ञानी चारित्रीया हुं० ॥ चक्रायुद्ध सूरिराय रे हुं० ॥ लखमी पुरनें ढूकडा हुं० ॥ आवी शाखा पुर गाय रे हुं० ॥ ए० ॥ २ ॥ आयु अंत जाणी करी हुं० ॥ श्री जयानंदनें ताम रे हुं० ॥ गन्नार सहु सोंपीयो हुं० ॥ गणेशपद अन्निराम रे हुं० ॥ ए० ॥ ३ ॥ कोइक तीरथ जइ करी हुं० ॥ उपधि शिष्य करी त्याग रे हुं० ॥ पादपोपगम आदरे हुं० ॥ अणशण परम वैराग्य रे हुं० ॥ ए० ॥ ४ ॥ त्रीश दिवस अणसण रह्या हुं० ॥ घातीकर्म खपाय रे ॥ हुं० ॥ केवलज्ञान गुणें करी हुं० ॥ लोकालोक जणाय रे हुं० ॥ए०॥ ५ ॥ शैलेशी करणे करी हुं० ॥ शेष कर्म करी नाश रे हुं० ॥ अजर अमर सुख शाश्वतां हुं० ॥ वरिया शिव आवास रे हुं० ॥ ए० ॥ ६ ॥ आसन्न दे

न करे रे, वाजित्र गीत संगीत ॥ सं० ॥ बावना चंदन परचीआ रे, अंग लूही सुपवित्त ॥सं० ॥ २ ॥ पुष्पमाल्य पहेरें वली रे, दिव्य वस्त्र अलंकार ॥ सं० ॥ शिबिकामां आरोहीनें रे, पृथिवी पालण हार ॥ सं०॥ ३ ॥ सिंहासन नृप सोहीयें रे, छत्र चामर श्रीकार ॥ सं०॥ सर्व आमंत्रर ऋद्धिशुं रे, देतो दान अपार ॥ सं० ॥ ४ ॥ प्रधाननें वली पागीया रे, परजानो समुदाय ॥ सं० ॥ महेता मसुद्दी सहु मल्या रे, मंगल गीत गवाय ॥ सं०॥ ॥ ५ ॥ नानाविध नाटक करे रे, पात्र विचित्र विशेष ॥ सं० ॥ बिरुदावली बहु बोलता रे, बंदीजन सुविशेष ॥सं०॥६॥ छत्र चामर हयगय नला रे, मंगल कुंन्न चलाय ॥ सं० ॥ अष्टमंगल आगल चले रे, ध्वज मोहोटो लहकाय ॥ सं० ॥ ७ ॥ चतुरंगी सेना चले रे, विद्याधर परिवार ॥सं०॥ सुर नर कोडी गमे मल्यां रे, देवांगना नही पार ॥ सं० ॥ ८ ॥ पुष्पवृष्टि करे सुरवरा रे, वाजे डुंडुन्नि खास ॥ सं०॥ वाजित्र पडछंदें करी रे, नरीयो वर आकाश ॥ सं० ॥ ए ॥ अनुक्रमें नगर मध्ये थइ रे, आवे तस उद्यान ॥ सं० ॥ शिबिकानें मूके तदा रे, मानुं मूके मान ॥ सं० ॥१० ॥ अंग न मावी विधि थकी रे, वंदे गुरुना पाय ॥ सं० ॥ स्वजन वर्गनें पूछतो रे,अंग वैराग्य न माय ॥ सं० ॥ ११ ॥ धीर गंन्नीर शिरोमणि रे, नरपति श्री जयानंद ॥ सं० ॥ वस्त्र आन्नूपण मूकतो रे, धरतो परमानंद ॥सं०॥१२॥ पंच मुष्टि करे लोचनें रें, आवे गुरुनी पास ॥ सं० ॥ संयम मुजनें दीजीयें रे, मुजने अति उल्लास ॥ सं०॥ १३ ॥ दीक्षा गुरु पण आपता रे, करता नवि उपकार ॥ सं० ॥ सार्थवाह परें नरपति रे, सार्थे बहुपरिवार ॥सं०॥ ॥ १४ ॥ लरकोगमे जन आदरे रे, दीक्षा दक्ष सुजाण ॥ सं०॥ अंतेउर राणी घणी रे, सार परिवार वखाण ॥ सं० ॥ १५ ॥ पटराणी रतिसुंदरी रे, प्रमुख लीये व्रतन्नार ॥ सं०॥ पुत्र पौत्रादिक सहस्रोगमे रे, तेम नृप एक हजार ॥सं०॥१६॥ ते पण निज अंतेउरी रे, साथें लीये व्रत न्नार ॥सं०॥ जन जनपदमां नृपकुलें रे, हर्ष प्रमोद अपार ॥ सं० ॥१७॥ घर घर एहिज वातडी रे, लीजीयें संयम सार ॥ सं० ॥ हवे कुलानंद जे राजीयो रे, परवस्यो निज परिवार ॥ सं० ॥ १८ ॥ श्रीजयानंदना ताततें रे, तेम श्री श्रीजयानंद ॥ सं० ॥ तेम गुरु चक्रायुध तणा रे, प्रणमी पद अरविंद ॥ ॥ सं० ॥ १ए ॥ घरें आवी नित्य आचरे रे, श्रीजिनधर्म विशाल ॥ सं० ॥

नवमे खंमे ए कही हुं० ॥ सत्तावीशमी ढाल रे हुं० ॥ मुनि गुण गातां प
भनें हुं० ॥ होये मंगलमाल रे हुं० ॥ ए० ॥ २७ ॥ सर्वगाथा ॥ ७६६ ॥

॥ दोहा ॥

॥ ग्राम नगर पुर पाटणे, थानक कोडयो प्रमाण ॥ विचरी बहुजन ता
रिया, केइ सुजाण अजाण ॥ १ ॥ अपराधी जे जे हुता, तस आलोयण
दीध ॥ इव्यनावें ते प्राणीनें, निर अपराधी कीध ॥ २ ॥ जेहनी सरिता
देशना, तेहमां नव्य जे मीन ॥ उत्तम जन मज्जन करे, पामे रति
अति पीन ॥ ३ ॥

॥ ढाल अठावीशमी ॥ गिरुआ रे गुण तुम तणा ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीजयानंद केवली तणी, कांय देशना गंगा सरखी रे ॥ तास संगे
सुपवित्र थया, कांइ धर्म मार्ग केइ परखी रे ॥ श्री० ॥ १ ॥ केइक वै
मानिक थया, कांइ केइक अनुत्तर वासी रे ॥ केइक चक्रवर्त्ति पणुं, कांइ आ
गामी नवे थाशी रें ॥ श्री० ॥ २ ॥ केइक मोक्ष नवांतरें, कांइ केइक ते
णे नवे सिद्ध रे ॥ इत्यादिक उपकारथी, कांइ सुखमय प्राणी कीध रे ॥
॥ श्री० ॥ ३ ॥ राजरूषि वर केवली, श्रीजयानंद जगख्यात रे ॥ विचरंतां वसु
धा तलें, कांइ निर्मल जस अवदात रे ॥ श्री० ॥ ४ ॥ विचरंता पाउधारी
या, श्रीसोरठदेश मजार रे ॥ जिहां प्रचुरूपन समोसख्या, कांइ पूरव नवा
णुं वार रे ॥ श्री० ॥ ५ ॥ पांमवनें पुंमरिक वली, कांइ इविड वारिखिन्न
दोय रे ॥ सांब प्रद्युम्न वली कृष्णना, जे दोय पुत्र वली होय रे ॥ श्री० ॥
॥ ६ ॥ कोडयो गमे मुनिराजशुं, कांइ शिवपद वरिया जेह रे ॥ राम नरत
नारद वली, कांइ तत्त्व वख्या निज तेह रे ॥ श्री० ॥ ७ ॥ थावच्चा सुत संय
मी, वली शुक परिव्राजक तेम रे ॥ सुव्रत बहु अणगारशुं, कांइ एणेगिरि आ
व्या प्रेम रे ॥ श्री० ॥ ८ ॥ आतम तत्त्व नीपजावीयो, कांइ सादि अनंतह
नंगें रे ॥ नारद एकाणुं लाखशुं, कांइ निज गुण वरिया रंगें रे ॥ श्री० ॥ ए ॥
ए गिरिनो महिमा घणो, कांइ मुखथी कह्यो न जाय रे ॥ हिंसक पापी जीव
नो, कांइ इहां उद्धार ते थाय रे ॥ श्री० ॥ १० ॥ अनव्य न देखे नयणथी,
कांइ शत्रुंजय महात्म्य बोले रे ॥ जगमां जोता ए समुं, कांइ तीर्थ नावे
तोलें रे ॥ श्री० ॥ ११ ॥ शाश्वत प्राय ए गिरिवरू, कांइ रूषनकूट परें जा
णो रे ॥ जंबूद्वीप पन्नत्तिनी, कांइ वृत्तिमांहे मन आणो रे ॥ श्री० ॥ १२ ॥

वता तिहां करे हुं० ॥महोत्सव अधिक मंमाण रे हुं० ॥ वाजित्र गीत संगी तणुं हुं० ॥ करे उत्सव निर्वाण रे हुं० ॥ ए० ॥ ७ ॥ ए कुंडुनिरव सांनली हुं० ॥ श्रीजयानंद मुणिंद रे हुं० ॥ अप्रतिपाती वैराग्यथी हुं० ॥ लहे शुक ल ध्यान अमंद रे हुं० ॥ ए०॥ ८ ॥ क्षपक श्रेणी मांमी करी हुं० ॥ वेद क षायनो नाश रे हुं० ॥ मोह जयी त्रण कर्मनें हुं०॥ क्षय करता शुन वास रे हुं० ॥ ए० ॥ ए ॥ श्रीजयानंदजी पामीया हुं० ॥ निर्मल केवल ज्ञान रे हुं० ॥ प्रगट प्रछन्न कयुं सहु लहे हुं० ॥ सर्वज्ञान परधान रे हुं० ॥ ए० ॥ ॥ १० ॥ षटद्रव्य गुण पर्यायनें हुं० ॥ ध्रुव व्ययने उतपाद रे हुं० ॥ एक समयमां जाणता हुं० ॥ चिद अमृत आस्वाद रे हुं०॥ ए० ॥ ११ ॥ मुनि महिमायें आकर्षीया हुं० ॥ वैमानिक सुर आय रे हुं ॥ महोत्सव केवल ज्ञाननो हुं० ॥ करता सहु समुदाय रे ॥ हुं० ॥ ए० ॥ १२ ॥ दिव्य कमल विरचे तिहां हुं० ॥ सहस्र पत्रनुं महंत रे हुं० ॥ अदनूत एक सोवन त णुं हुं० ॥ ते उपर वेसंत रे हुं० ॥ ए० ॥ १३ ॥ नगरलोक सहु आवीया हुं० ॥ वेग करीय प्रणाम रे हुं० ॥ श्रीजयानंदजी केवली हुं० ॥ देशना देवे ताम रे हुं० ॥ ए० ॥ १४ ॥ नवि उपकारनें कारणे हुं० ॥ नाखे च तुर्विध धर्म रे हुं० ॥ दान शील परनावथी हुं०॥ जेहथी लहे शिवशर्म रे हुं० ॥ ए० ॥ १५ ॥ श्रीकुलानंद हवे नृपति हुं० ॥ जाणे तातनुं नाण रे हुं० ॥ चतुरंगी सेना सजी हुं० ॥ आवे अति मंमाण रे हुं० ॥ ए० ॥ ॥ १६ ॥ विश्वपूज्य केवली प्रत्यें हुं० ॥ देखी करे प्रणाम रे हुं० ॥ पंच अनिगम साचवी हुं० ॥ विधि पूर्वक अनिराम रे हुं० ॥ ए०॥ १७ ॥ ती न प्रदक्षणा देइनें हुं० ॥ स्तवना करे नरराय रे हुं० ॥ वंदना करी उचि तासनें हुं० ॥ बेसे केवली पाय रे हुं० ॥ ए० ॥ १८ ॥ केवली श्रीजया नंदजी हुं० ॥ देशना देवे तास रे हुं० ॥ श्रावक धर्म प्ररूपीयो हुं० ॥ बा दश व्रत सुविलास रे हुं० ए० ॥ १ए ॥ मुनिवर धर्म पण उपदेशे हुं० ॥ समकेत दोयनुं मूल रे हुं० ॥ केइक नविजन आदरे हुं० ॥ समकेत मन अनुकूल रे हुं० ॥ ए० ॥ २० ॥ केइक देशविरति ग्रहे हुं० ॥ केइक मुनि वर धर्म रे हुं०॥ केइक ग्रहे अनिग्रह घणा हुं०॥ केइक प्रकृतें नमे रे हुं० ॥ ए०॥ २१ ॥ एम अनेक नवि जीवनें हुं०॥ विविध करी उपकार रे हुं० श्रीजयानंदजी केवली हुं० ॥ तिहांथी करे विहार रे हुं० ॥ ए० ॥ २२ ॥

जन तणा, मनमां हर्ष न माय ॥ ४ ॥ ए श्रीजयानंदनी कथा, गुणगण महिम विशाल ॥ नणे गुणे नवि सांनले, तस घर मंगलमाल ॥ ५ ॥

॥ ढाल उंगणत्रीशमी ॥ तूठो तूठो रे मुज साहेब जगनो तूठो ॥ ए देशी ॥

॥ फलियो फलियो रे मुज सकल मनोरथ फलियो ॥ श्रीजयानंदनो रास करंतां, नाग्य अपूरव नलियो रे ॥ मु० ॥ १ ॥ मुनिगुण गान नीरें करी माहारो, पाप पंक खलनलीयो ॥ नाम गोत्र सुणतां महा निर्ज्जरा, सूत्रमांहे एम कलीयो रे ॥ मुज० ॥ २ ॥ मुनिगुणनां बहु मान करंतां, जन्मनुं फल हुं रलीयो ॥ आधि व्याधि उपड्व सवि दूरें, मुजथी जाये टलीयो रे ॥ मुज० ॥ ३ ॥ पृथिवि मोक्ष साम्राज्यनी लखमी, श्रीजयानंद ते मलियो ॥ बाह्य अंतर शत्रु दोय जींत्या, ए बहु नाग्यथी बलीयो रे॥मुज०॥४॥ धीरज गुण महोटो मेरु सम, कोइ वातें नवि चलीयो ॥ जे मुनि दान दीयें एणी रीतें, तस डुःख जाये गलीयो रे ॥ मुज० ॥५॥ रंनाफल सम श्रीजयानंदना, गुणमां दोष न वलियो ॥ लोंह समान हुं तेहमां मुनिगुण, रसकूपी रस ढलीयो रे ॥ मु० ॥ ६ ॥ मुनि गुण नक्तिपकी हवे माहारो, डुःखनो दिवस ते दलियो ॥ मुनिगुण गातां अंतरंग मुज, अनुनव हेजें हलीयो रे ॥ मुज० ॥ ७ ॥

॥ अथ कलश प्रशस्तिः ॥ राग धन्याश्री ॥

॥ तपगछपति श्रीजगतचंद सूरि, चौंआलीशमे पाटेंजी ॥ जावज्जीव जेणें आंबिल कीधां, तपगछ तेहिज माटेंजी॥१॥तस पट्टें श्रीदेवेंड्सूरि, गातारथ उपगारीजी ॥ बेंतालीशमे धर्मघोष सूरि, तार्यां बहु नरनारीजी ॥२॥ सोमप्रन सूरि तस पट्टराजें, सुडतालीशे ठामेंजी ॥ सोमतिलक सूरि अडतालीशमे, पाटें गुणगण धामजी ॥३॥ तस पट्टें श्रीदेवसुंदरसूरि, गुणवंता गुणरागीजी ॥ सोमसुंदर सूरि पाट पच्चाशमे, किरियावंत वैरागीजी ॥ ४॥ मुनिसुंदर सूरि एकावनमे, पाटें गुण गण दरीया जी ॥ सहस्रावधानी वालपणाथी, तार्या जिहां विचरीयाजी ॥ ५ ॥ अध्यातमकल्पडुम नामें, संतिकरं जेणें कीधोजी॥ एकशो आठ हाथनो कागल, लखीनें गुरुने दीधोजी॥६॥ एकशो आठ वर्त्तुलिकाना रव, निन्न निन्न उंलखीयाजी॥ उपदेश रत्नाकर जेणें कीधो, वादिगोकुल शांढ लखीयाजी ॥ ७ ॥ इत्यादिक बहु ग्रंथना कर्त्ता, श्रीजयानंद चरित्रजी ॥ जेणें कीधुं न्हाना रस संयुत्त, बहु वैराग्य पवित्रज

कल्याणक पण एणे गिरि, कांइ जिनवर केरां थाशे रे ॥ पूर्वें थया वली एणे गिरें, बहु मोक्ष गया वली जाशे रे ॥ श्री० ॥ १३ ॥ महिमावंत ए क्षेत्रमां, श्रीजयानंदजी आवे रे ॥ गिरि उपर अणसण करे, कांइ पादपोप गम गवे रे ॥ श्री० ॥ १४ ॥ षटदिन अणसण पालीयुं, कांइ योग निरोध करंत रे ॥ शैलेशी करणें करी, कांइ शेष कर्म करे अंत रे ॥ श्री०॥ १५ ॥ त्रीजो नाग संकेलीनें, करे अगुरु लघु अवगाह रे ॥ महानंद पद पामी या, कांइ जिहां सुख अव्याबाह रे ॥ श्री० ॥ १६ ॥ समश्रेणि एक समय मां, कांइ लोकायें कस्यो वास रे ॥ सिद्ध बुद्ध समृद्ध थया, कांइ अजराम र अविनाश रे ॥ श्री० ॥ १७ ॥ फरी नवि नवमां आववुं, जिहां एक ति हां अनंत रे ॥ देश प्रदेशें फरसीनें, रह्या असंख्य गुणा नगवंत रे॥ श्री० ॥ १८ ॥ पण निज निज स्वरूपमां, रहे चिदानंद नगवंत रे ॥ अरूपी को इ कोईनें, कांइ पीडा ते न करंत रे ॥ श्री० ॥ १९ ॥ संकीरण पण नवि होयें, कांइ अनंत चतुष्टयवंत रे ॥ ज्ञान दर्शन सुख वीर्यनां, कांइ नोगी तेह महंत रे ॥ श्री० ॥ २० ॥ अशरीरी अणाहारी जे, कांइ निरुपाधिक सु ख वरीया रे ॥ जेहनी उपम जग नही, जे नवसायर निस्तरीया रे ॥श्री० ॥ २१ ॥ नाण दंसण उपयोगीया, कांइ समयांतर पलटाय रे ॥ पण एक समयमां सवि लहे, मुख्यता गौणता कहेवाय रे ॥ श्री० ॥ २२ ॥ परम ज्योति परमातमा,कांइ परम ब्रह्म स्वरूप रे ॥ जाणे पण नवि कही शके, कांइ केवलज्ञानी अनूप रे ॥श्री० ॥ २३ ॥ अहावीशमी ढाल ए, कांइ न वमे खंरुं नाखी रे ॥ श्रीजयानंदना रासमां,कांइ तेहनुं चरित्र ने साखी रे ॥ एम पद्मविजय चित्त राखी रे, शिवसुखनां थाउं अनिलाषी रे,परनाव दीउं सहु नाखी रे ॥ श्री० ॥ २४ ॥ सर्वगाथा ॥ ७९३ ॥

॥ दोहा ॥

॥ तत्क्षण मलीया देवता, चार निकाय मिलंत ॥ श्रीजयानंद वियोग नो, अतिशय शोक धरंत ॥ १ ॥ पण निर्वाण तणो करे,उत्सव अति वि स्तार ॥ प्रायें तीर्थंकर परें, प्रमुदित थइ अपार ॥ २ ॥ उत्सव करा नंदी श्वरें, अहाइ मह सार ॥ करीनें निज थानक गया, मुनिगुण चित्त संनार ॥ ३ ॥ एणी परें श्रीजयानंदजी, केवली जे ऋषि राय ॥ गुण गाया गुणी

३—अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

४—स्वयम्भूरेष भगवान् वेदो गीतस्त्वया पुरा ।
शिवाद्या ऋषिपर्य्यन्ता स्मर्त्तारोऽस्य न कारकाः ॥

५—"उत्सर्गोऽप्ययं वाचः सम्प्रदायप्रवर्त्तनात्मको द्रष्टव्यः ।
अनादिनिधनाया अन्यादृशस्योत्सर्गासम्भवात्" ॥

(शां०भा० १।३।२८।)।

६—नित्यसिद्ध, कूटस्थ, अतएव अपौरुषेय यह वेद चतुर्मुख ब्रह्मा का वाक्य है, ब्रह्मा ही इन का सम्प्रदायप्रवर्त्तक है।

यह नित्यसिद्ध वेद चतुर्मुखब्रह्मा के वाक्य हैं। सृष्टिनिर्माता स्वयम्भू ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम इस वेदवाक् का ही विनिर्गम हुआ है। इसी नित्यावाक् के आधार पर ब्रह्मा सृष्टि-

---

३—अनादिनिधना (मरणधर्मशून्या अतएव) सर्वथा नित्या (वेद) वाक् स्वयम्भू के (मुख से) उद्भूत हुई आदि में विशुद्ध वेदमयी यह वाक् सर्वथा दिव्या है जिस दिव्य वेद वाक् से कि सम्पूर्ण विश्व की प्रवृत्ति (रचना) हुई है।

४—स्वयम्भू भगवान् ने (ईश्वर ने) ही सर्वप्रथम (अपने मुख से) वेद का विस्तार किया है। शिव से आरम्भ कर सब वेदमहर्षि इस के स्मर्त्ता हुए हैं, न कि कर्त्ता।

५—उत्सर्गरूप उद्भव (उत्पत्तिभाव) भी वाक् (वेदवाक्) का सम्प्रदायप्रवर्त्तनात्मक ही समझना चाहिए। क्योंकि अनादिनिधना नित्या वाक् का कोई उत्पादक नहीं हो सकता।

निर्म्माण कर्म में समर्थ हुए हैं। यह स्वयम्भू ब्रह्मा वेद के आदिसम्प्रदायप्रवर्त्तक हैं, न कि वेदों के निर्म्माता। ईश्वर के अनुग्रह से इन्हीं के मुख से [प्राणमुख नाम के प्रथम मुख से) सर्वप्रथम नित्या वेदवाक् वाहर निकली है। जिस प्रकार नित्यसिद्ध पुराणतत्त्व के ब्रह्मा स्मर्त्ता हैं, तथैव वेद के भी ये स्मर्त्ता ही हैं। अपिच जिस तरह नित्यसिद्ध पुराणविद्या को भगवान् वेदव्यास ने प्रकाशित किया है, उन्होंनें पुराण बनाया नहीं है। व्यास पुराणों के सम्प्रदाय प्रवर्त्तकमात्र हैं, एवमेव ब्रह्मा भी वेद के सम्प्रदायप्रवर्त्तकमात्र हैं, कर्त्ता नहीं। फलतः वेद की कूटस्थनित्यता, एवं अपौरुषेयता सर्वथा अक्षुण्ण रह जाती है। इस मत के उपोद्बलक निम्न लिखित वचन हैं।

१—पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता॥

२—ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥

३—अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥

१०—नित्यसिद्ध, कूटस्थ, अतएव अपौरुषेय वेद भिन्न भिन्न ऋषियों का वाक्य है, ऋषि इस के सम्प्रदायप्रवर्त्तक हैं

नित्यसिद्ध यह वेद (शास्त्र) भिन्न भिन्न ऋषियों का वाक्य है। ये आप्त महर्षि इस वेद के सम्प्रदायप्रवर्त्तक हैं। ऋषियों नें तपोबल के प्रभाव से प्राप्त आर्षदृष्टि के द्वारा

१—ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के आदि में पुराण का स्मरण किया है, पुराण के अनन्तर इन के मुख से वाङ्मय वेद निकले हैं। (२+३+पूर्व से गतार्थ)।

३—अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

४—स्वयम्भूरेष भगवान् वेदो गीतस्त्वया पुरा ।
शिवाद्या ऋषिपर्य्यन्ता स्मर्त्तारोऽस्य न कारकाः ॥

५—"उत्सर्गोऽप्ययं वाचः सम्प्रदायप्रवर्त्तनात्मको द्रष्टव्यः ।
अनादिनिधनाया अन्यादृशस्योत्सर्गासम्भवात्" ॥
(शां०भा० १।३।२८।)।

६—नित्यसिद्ध, कूटस्थ अतएव अपौरुषेय यह वेद चतुर्मुख ब्रह्मा का वाक्य है ब्रह्मा ही इन का सम्प्रदायप्रवर्त्तक है ।

यह नित्यसिद्ध वेद चतुर्मुखब्रह्मा के वाक्य हैं । सृष्टिनिर्म्माता स्वयम्भू ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम इस वेदवाक् का ही विनिर्गम हुआ है । इसी नित्यावाक् के आधार पर ब्रह्मा सृष्टि-

---

३—अनादिनिधना (मरणधर्म्मशून्या अतएव) सर्वथा नित्या (वेद) वाक् स्वयम्भू के (मुख से) उद्भूत हुई आदि में विशुद्ध वेदमयी यह वाक् सर्वथा दिव्या है जिस दिव्य वेद वाक् से कि सम्पूर्ण विश्व की प्रवृत्ति (रचना) हुई है ।

४—स्वयम्भू भगवान् ने (ईश्वर ने) ही सर्वप्रथम (अपने मुख से) वेद का विस्तार किया है । शिव से आरम्भ कर सब वेदमहर्षि इस के स्मर्ता हुए हैं, न कि कर्त्ता ।

५—उत्सर्गरूप उद्भव (उत्पत्तिभाव) भी वाक् (वेदवाक्) का सम्प्रदायप्रवर्त्तनात्मक ही समझना चाहिए । क्योंकि अनादिनिधना नित्या वाक् का कोई उत्पादक नहीं हो सकता ।

११—नित्यसिद्ध, कूटस्थ, अतएव अपौरुषेय वेद के तात्पर्यानुसार ईश्वर ने विश्व निर्म्माण किया है।

नित्यसिद्ध वेदों के तात्पर्य के अनुसार ईश्वरप्रजापतिने विश्व का निर्म्माण किया है। प्रत्येक पदार्थों का उत्पत्तिक्रम, देश, काल, नाम, रूप, गुण, कर्म्म जो जो भाव पूर्वकल्प में थे, वे ही भाव उत्तरकल्प में हुए। इसी तरह ऋषियों के भी जो नाम पूर्वकल्प में थे, एवं जिस ऋषि ने पूर्वकल्प मे वेदतत्त्व का जिस रूप से साक्षात्कार किया था, इस कल्प में भी ऋषियों के वे ही नाम हुए, एवं उन ऋषियों के द्वारा उसी प्रकार वेदसृष्टि हुई। इस प्रकार ईश्वरप्रजापति में पूर्वकल्प मे जो वेदमय ज्ञान अनुवर्त्तमान था, वही इस उत्तर कल्प में जाना गया। वही ईश्वरीय ज्ञान वेद कहलाया है। वेद ईश्वर का ही प्रत्यक्षज्ञान है, उसी के आधार पर नामरूपगुणकर्म्ममय विश्व का निर्म्माण किया है। जैसा कि निम्न लिखित वचनों से स्पष्ट होजाता है।

१—वेदेन नामरूपे व्याकरोत, सदसती प्रजापतिः।

२—धाता यथापूर्वमकल्पयद्दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।

३—तथाभिमानिनो नीतास्तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह।
देवा देवैरतीतैर्हि रूपैर्नामभिरेव च ॥ १ ॥

१—सदसन्मूर्त्ति (अमृत–मृत्युमूर्त्ति) प्रजापति (ईश्वर) ने वेद से ही नामरूप का विभाग किया।

२—सर्वजगत्–धाता (ईश्वर) ने पूर्वकल्प के अनुसार ही द्यु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, एवं स्व आदि लोकों को बनाया।

३—अभिमानी देवताओं से सम्बद्ध उत्तरकल्प के देवता उन पूर्वकल्प के देवताओं के समान ही हैं। अतीत देवताओं के नाम-रूप-कर्म्मों के अनुसार ही इस युग में देवता प्रकट

समय समय पर वेदतत्त्व को देखा एवं उसे शब्दद्वारा लोक में प्रवृत्त किया। यह वेदशास्त्र ऋषियों की कल्पना नहीं है, अपितु ईश्वरदत्त विभूति (इल्हाम) है। जैसा इनके हृदय में (ईश्वर की प्रेरणा से) प्रकाश हुआ, इन्हों नें उस दिव्य ज्ञानप्रकाश को उसी रूप से प्रकट किया। तात्पर्य यही हुआ कि तपोयोग के प्रभाव से ऋषियों के अन्तःकरण में यह वेद अपने आप प्रकट हुआ। ये ऋषि ही इस के सम्प्रदायप्रवर्त्तक हुए। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जासकता है कि महर्षिगण सम्प्रदाय परम्परा से इसे सुनते एवं समझते हुए इसका प्रचार करते आए हैं। कोई भी ऋषि मुख्यतया इसका निर्माता नहीं हुआ। इसी अभिप्राय से आप्त पुरुष कहते हैं—

१—तद्वा ऋषयः प्रतिबुबुधिरे, य उ तर्हि ऋषय आसुः।
(शत० २।२।१।१४)।

२—तद्वा ऋषीणामनुश्रुतमास।

३—यमाप्नवानो भृगवो विरुरुचुः।

४—ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः, साक्षात्कृतधर्म्माण ऋषयो बभूवुः।

५—तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत्।
दिव्या सरस्वती तत्र स्वं बभूव नभस्तलात्।

१—उस वेदज्ञान को उन महर्षियों ने प्राप्त किया, जोकि उस समय ऋषि होगए हैं।

२—यह वेदशास्त्र ऋषियों द्वारा परम्परया श्रुत तत्त्व है।

३—जिस वेदतत्त्व को प्राप्त होते हुए (वेदज्ञान के प्रकाश से) भृगुऋषिगण प्रकाशित होगए।

४—ऋषि वेदमन्त्रों के द्रष्टा हैं। वेदतत्त्व का (आर्षदृष्टि से) साक्षात्कार करने वाले ही ऋषि हुए हैं।

५—उन ऋषियों की वेदमयी वाणी सब के कानों पर आई। वह दिव्या सरस्वती वहां आकाशमार्ग से अपने आप प्रकट हुई।

२-वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः ।
वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी ॥
३—वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः ।
सा नो जुषाणोप यज्ञमागादवन्ती देवी सुहवा मेऽस्तु ॥
४—वाचा वै वेदाः सन्धीयन्ते, वाचा छन्दांसि, वाचा मित्राणि संदधति, वाचा सर्वाणि भूतानि । "अथो वागेवेदं सर्वम्" ॥
५—"एते *असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमास्रवः । विश्वान्यभिसौभग"— "एत" इति प्रजापतिर्देवानसृजत, "असृग्र"-मिति मनुष्यान्,

२—सम्पूर्ण (३३) देवता वाक् को आधार बनाकर ही स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण गन्धर्व (२७), सम्पूर्ण पशु (५), मनुष्य सब वाक् के आधार पर ही जीवित हैं। यह वाक्तत्व इन सम्पूर्ण भुवनों में ओतप्रोत है । ऐसी यह वाग्देवी इन्द्रपत्नी हमारी प्रार्थना पर प्रसन्न हो ।

३—एकाक्षरमयी वाक् ऋतब्रह्म से सर्वप्रथम प्रकट हुई है । यह वाक् वेदों की (शब्दात्मक वेदों की) माता है, अमृत (ज्ञान) की नाभि है। ऐसी यह वाग्देवी प्रसन्न होती हुई, हमारी रक्षा करती हुई यज्ञ में पधारी है। यह मेरे लिये अच्छी बुलाई हुई बनें ।

४—वाक् से ही वेदों का संधान होता है, छन्द एवं मित्रों का सन्धान भी वाक् से ही करता है, सम्पूर्ण भूतों का सन्धान वाक् से ही होता है। वाक् ही सब कुछ है ।

५—प्रजापति ने 'एते" इस शब्द से देवताओं को उत्पन्न किया, "असृग्रम्" शब्द से मनुष्यों को "इन्दवः" शब्द से पितरों को, "तिरः पवित्रं" शब्द से ४० ग्रहों

* "असृग्रम्" के स्थान म 'असृजदग्रम्" यह पाठान्तर मिलता है।
* "आसव." के स्थान में 'आवसवः" यह पाठान्तर मिलता है।
दोनों ही पाठान्तर लेखप्रमाद समझना चाहिए।

यस्मिन् योग्यः पुरा क्लृप्तो यस्मिन् देशे यथास्थितिः ।
तत्र तस्यानुरूपेण प्रजासर्गः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्व्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥ ३ ॥

१२–नित्यसिद्ध, कूटस्थ, अपौरुषेय वेदशब्दों से ईश्वर ने विश्व का निर्म्माण किया है ।

ईश्वरप्रजापति ने वेदशब्दों से विश्व की रचना की है । दृश्यमान सारा प्रपञ्च वेद-शब्दों से (साङ्ख्यमतानुसार शब्दतन्मात्रा से) ही उत्पन्न हुआ है । शब्दों के सन्निवेशतारतम्य से ही विश्व के पदार्थ भिन्न भिन्न नाम-रूपों में परिणत हो रहे हैं । सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय है, इसी लिए पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, विश्व के इन पाचों प्रधान अवयवों में शब्द की उपलब्धि होरही है । संसार में कहीं भी, कोई भी वस्तु अशब्द नहीं है । इस मत के समर्थक निम्न लिखित श्रौत-स्मार्त्त वचन हमारे सामने आते हैं ।

१–वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाचेत्त विश्वं बहुरूपं निबद्धम् ।
....तयैवैकं प्रविभज्योपभुङ्क्ते ॥

हुए हैं । जिस कर्म्म में पूर्वकल्प में जो योग्य था, उसी कल्प में जो देश जहां था, जैसी स्थिति थी, वहां उसी स्थिति के अनुसार प्रजासर्ग होता है । पूर्वकल्प में ऋषियों के जो नाम थे, उन की वेदसम्बन्ध में जो दृष्टि (ज्ञान) थी, रात्रिकल्प के अन्त में उत्तरकल्प में प्रसूत उन्हीं नामों एवं वेददृष्टियों को प्रजापति प्रदान करते हैं ।

१–इन सम्पूर्ण (१४) भुवनों को वाक् ने ही उत्पन्न किया है । वाक् से ही अने-करूप विश्व आक्रान्त है । उसी वाक् से ही विभक्त कर के (मनुष्य–वाङ्मय प्रपञ्च का) भोग करता है ।

२-वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः ।
वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी ॥
३—वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः ।
सा नो जुषाणोप यज्ञमागादवन्ती देवी सुहवा मेऽस्तु ॥
४—वाचा वै वेदाः सन्धीयन्ते, वाचा छन्दांसि, वाचा मित्राणि
संदधति, वाचा सर्वाणि भूतानि । "अथो वागेवेदं सर्वम्" ॥
५—"एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमासवः । विश्वान्यभिसौभग"—
"एत" इति प्रजापतिर्देवानसृजत, "असृग्र"-मिति मनुष्यान,

२-सम्पूर्ण (३३) देवता वाक् को आधार बनाकर ही स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। सम्पूर्ण गन्धर्व (२७), सम्पूर्ण पशु (५), मनुष्य सब वाक् के आधार पर ही जीवित हैं। यह वाक्तत्व इन सम्पूर्ण भुवनों में ओतप्रोत है । ऐसी यह वाग्देवी इन्द्रपत्नी हमारी प्रार्थना पर प्रसन्न हो।

३-एकाक्षरमयी वाक् ऋतब्रह्म से सर्वप्रथम प्रकट हुई है । यह वाक् वेदों की (शब्दात्मक वेदों की) माता है, अमृत (ज्ञान) की नाभि है। ऐसी यह वाग्देवी प्रसन्न होती हुई, हमारी रक्षा करती हुई यज्ञ में पधारी है। यह मेरे लिये अच्छी बुलाई हुई बनें।

४—वाक् से ही वेदों का संधान होता है, छन्द एवं मित्रों का सन्धान भी वाक् से ही करता है, सम्पूर्ण भूतों का सन्धान वाक् से ही होता है। वाक् ही सब कुछ है।

५—प्रजापति ने 'एते" इस शब्द से देवताओं को उत्पन्न किया, "असृग्रम" शब्द से मनुष्यों को "इन्दवः" शब्द से पितरों को, "तिरः पवित्रं" शब्द से ४० ग्रहों

* "असृग्रम्" के स्थान म 'असृजन्दग्रम्" यह पाठान्तर मिलता है।
❀ "आसव." के स्थान में 'आनसवः" यह पाठान्तर मिलता है।
दोनों ही पाठान्तर लेखप्रमाद समझना चाहिए।

यस्मिन् योग्यः पुरा कल्पो यस्मिन् देशे यथास्थितिः ।
तत्र तस्यानुरूपेण प्रजासर्गः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्व्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥ ३ ॥

१२–नित्यसिद्ध, कूटस्थ, अपौरुषेय वेदशब्दों से ईश्वर ने विश्व का निर्म्माण किया है।

ईश्वरप्रजापति ने वेदशब्दों से विश्व की रचना की है। दृश्यमान सारा प्रपञ्च वेदशब्दों से (सांख्यमतानुसार शब्दतन्मात्रा से) ही उत्पन्न हुआ है। शब्दों के सन्निवेशतारतम्य से ही विश्व के पदार्थ भिन्न भिन्न नाम-रूपों में परिणत हो रहे हैं। सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय है, इसी लिए पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, विश्व के इन पांचों प्रधान अवयवों में शब्द की उपलब्धि होरही है। संसार में कहीं भी, कोई भी वस्तु अशब्द नहीं है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित श्रौत-स्मार्त्त वचन हमारे सामने आते हैं।

१–वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाचेत् विश्वं बहुरूपं निबद्धम् ।
....तयैवैकं प्रविभज्योपभुङ्क्ते ॥

हुए हैं। जिस कर्म्म से पूर्वकल्प में जो योग्य था, उसी कल्प में जो देश जहां था, जैसी स्थिति थी, वहां उसी स्थिति के अनुसार प्रजासर्ग होता है। पूर्वकल्प में ऋषियों के जो नाम थे, उन की वेदसम्बन्ध में जो दृष्टि (ज्ञान) थी, रात्रिकल्प के अन्त में उत्तरकल्प में प्रसूत उन्हीं नामों एवं वेददृष्टियों को प्रजापति प्रदान करते हैं।

१–इन सम्पूर्ण (१४) भुवनों को वाक् ने ही उत्पन्न किया है। वाक् से ही अनेकरूप विश्व आक्रान्त है। उसी वाक् से ही विभक्त कर के (मनुष्य–वाङ्मय प्रपञ्च का) भोग करता है।

१०-नामरूपे च भूतानां कर्म्मणां च प्रवर्त्तनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्म्ममे स महेश्वरः ॥
११-नामरूपं च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥

१२—नित्यसिद्ध कूटस्थ, अतएव अपौरुषेय वेद के पूर्वकल्प का स्मरण करके सृष्टि के आदि में इस वेद को ईश्वर ने प्रकट किया है।

मनुष्य जब घोर निद्रा में निमग्न हो जाता है, तो पूर्वकल्पस्थानीय पूर्व दिन के उस के सभी कर्म्म अनुद्बुद्ध होजाते हैं। दूसरे दिन प्रातः निद्रा भंग होने पर उन सब कार्यों का ज्यों का त्यों आविर्भाव होजाता है। सुषुप्तिकालोपलक्षिता रात्रि मनुष्य का पूर्वकल्प है, एवं जाग्रदवस्थोपलक्षित दिन इस का उत्तरकल्प है। ठीक यही परिस्थिति ईश्वरीय सृष्टि-प्रलय धारा के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। प्रलयकालोपलक्षित रात्र्यागम में जब पदार्थमात्र का विराम होजाता है, तो उस समय वेद भी उसी ईश्वरप्रजापति में लीन होजाते हैं। सृष्टिकालोपलक्षित अहरागम मे पुनः उन सब पदार्थों का, एवं वेदों का उसी रूप से आविर्भाव हो जाता है। इस से यह भी सिद्ध हो जाता है कि, ईश्वर वेद का कर्त्ता नहीं है, अपितु स्मर्त्तामात्र है। इसी अन्तिम मत का निरूपण करता हुआ वेदान्त कहता है—

१०—सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के नाम-रूपों का, कर्मों का जो विभाग देखा जाता है, उस सुव्यवस्थित विभाग का निर्म्माण सृष्टि के आदि में वेदशब्दों से महेश्वरने ही किया है।

११—भूतों के नाम रूपो का, कृत्या-अभिचार वल्गादि भावों का एवं देवादिकों का सृष्टि के आदि मे वेदशब्दों से उसी ईश्वरने (सुव्यवस्थित विभाग) किया है।

"इन्दव"-इति पितॄन्, "तिरःपवित्र"-मिति ग्रहान्, "आसव"-इति स्तोत्रम्, "विश्वानी"-ति शस्त्रम्, "अभिसौभगे"-त्यन्याः प्रजाः" ।

६—स 'भू'रिति व्याहरत, स भूमिमसृजत । स 'भुव' इति व्याहरत, सोऽन्तरिक्षमसृजत । स 'स्व'रिति व्याहरत, स दिवमसृजत ।

७—भूरादिशब्देभ्य एव मनसि प्रादुर्भूतेभ्यो भूरादीन् लोकान् प्रादुर्भूतान् सृष्टान् दर्शयति । (शां०भा० १।३।२८) ।

८—वेदेन नामरूपे व्याकरोत् सदसती प्रजापतिः ।

९—सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्म्ममे ॥

को, "आसवः" शब्द से स्तोत्र को, "विश्वानि" शब्द से शस्त्र को, 'अभिसौभग" शब्द से इतर (पशु-पक्षी आदि) प्रजा को उत्पन्न किया ।

६—वह प्रजापति अपने मुख से "भूः" यह शब्द बोला, इसी शब्द से इसने भू-पिण्ड उत्पन्न किया । भुवः से अन्तरिक्ष, एवं स्वः से द्युलोक उत्पन्न किया ।

७—अन्तःकरण में प्रादुर्भूत भूः, भुवः आदि शब्दों से उत्पन्न भूमि-अन्तरिक्षादि लोकों की उत्पत्ति दिखलाते हैं ।

८—सदसत् प्रजापति ने वेद (शब्द) से पदार्थों के नाम एवं रूपों का विभाग किया।

९—इस परमात्मा परमेश्वर ने गोजाति का गो, अश्वजाति का अश्व, मनुष्यजाति का मनुष्य इत्यादि नामों को, एवं अध्यापनादि ब्राह्मणजाति के कर्मों का, प्रजापालनादि क्षत्रियजाति के कर्मों का, इस प्रकार सब के कर्मों का सृष्टि के आरम्भ काल में वेद शब्दों से ही पूर्वकल्पानुसार पृथक् पृथक् व्यवस्थित रूप से निर्माण किया ।

१०–नामरूपे च भूतानां कर्म्मणां च प्रवर्त्तनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्म्ममे स महेश्वरः ॥
११–नामरूपं च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥

१२—नित्यसिद्ध, कूटस्थ, अतएव अपौरुषेय वेद के पूर्वकल्प का स्मरण करके सृष्टि के आदि में इस वेद को ईश्वर ने प्रकट किया है।

मनुष्य जब घोर निद्रा में निमग्न होजाता है, तो पूर्वकल्पस्थानीय पूर्व दिन के उस के सभी कर्म्म अनुद्बुद्ध होजाते हैं। दूसरे दिन प्रातः निद्रा भंग होने पर उन सब कार्यों का ज्यों का त्यों आविर्भाव होजाता है। सुषुप्तिकालोपलक्षिता रात्रि मनुष्य का पूर्वकल्प है, एवं जाग्रदवस्थोपलक्षित दिन इस का उत्तरकल्प है। ठीक यही परिस्थिति ईश्वरीय सृष्टि-प्रलय धारा के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। प्रलयकालोपलक्षित रात्र्यागम में जब पदार्थमात्र का विराम होजाता है, तो उस समय वेद भी उसी ईश्वरप्रजापति में लीन होजाते हैं। सृष्टिकालोपलक्षित अहरागम में पुनः उन सब पदार्थों का, एवं वेदों का उसी रूप से आविर्भाव हो जाता है। इस से यह भी सिद्ध हो जाता है कि, ईश्वर वेद का कर्त्ता नहीं है, अपितु स्मर्त्तामात्र है। इसी अन्तिम मत का निरूपण करता हुआ वेदान्त कहता है—

१०—सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के नाम-रूपों का, कर्म्मों का जो विभाग देखा जाता है, उस सुव्यवस्थित विभाग का निर्म्माण सृष्टि के आदि में वेदशब्दों से महेश्वरने ही किया है।

११—भूतों के नाम रूपों का, कृत्या-अभिचार वलगादि भावों का एवं देवादिकों का सृष्टि के आदि में वेदशब्दों से उसी ईश्वरने (सुव्यवस्थित विभाग) किया है।

१—"ननु क्षणिकत्वाभावेऽपि वियदादिवदादिमत्वेन परमेश्वरकर्तृकतया पौरुषेयत्वं वेदानामिति तव सिद्धान्तो भज्येतेति चेन्न । न तावत् पुरुषेणोच्चार्यमाणत्वं पौरुषेयत्वं, गुरुमतेऽपि पौरुषत्वापत्तेः। नापि पुरुषाधीनोत्पत्तिमत्वं पौरुषेयत्वं, नैय्यायिकाभिमतपौरुषेयत्वानुमानेऽस्मदादीनां सिद्धसाधनापत्तः । किन्तु सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम् । तथा च सर्गाद्यकाले परमेश्वरः पूर्वसिद्धवेदसमानानुपूर्वीकं वेदं विरचितवान् । न तु तद्विजातीयं वेदमिति न सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वं वेदस्य । भारतादीनां तु सजातीयोच्चारणमनपेक्ष्यैवोच्चारणमिति तेषां पौरुषेयत्वम्" (वेदान्तपरिभाषा) ।

१—प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदों के क्षणिक न होने पर भी आकाशादिवत् सादि भाव के कारण परमेश्वर द्वारा बनाए जाने के कारण भी यदि वेद का पौरुषेयत्व माना जायगा तो तुम्हारे (वेदान्त के) सिद्धान्त का विरोध होगा । (कारण वेदान्त के मतानुसार वेद सर्वथा अपौरुषेय हैं) । आचेगामक इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि—'केवल पुरुष के मुख से उच्चारण का विषय बन जाना ही पौरुषेयत्व नहीं है । यदि पौरुषेयत्व का यही लक्षण माना जायगा तो गुरुमत में भी पौरुषेयत्व की आपत्ति होगी । कारण भाट्टमत के मतानुसार वेद ईश्वरपुरुष के मुख से कहा हुआ है । इसी प्रकार पुरुष की अधीनता में (साक्षी में) वेद उत्पन्न हुआ है' पौरुषेय का यह भी लक्षण नहीं माना जा सकता । कारण न्यायानुसार पौरुषेयत्व का यही लक्षण किया गया है फलत. इस लक्षण के माननें से हमारे (वेदान्त) में सिद्धसाधन दोष होता है । ऐसी स्थिति में (स्वसिद्धान्त की

१—"ननु क्षणिकत्वाभावेऽपि वियदादिवदादिमत्त्वेन परमेश्वरकर्तृकतया पौरुषेयत्वं वेदानामिति तत्र सिद्धान्तो भज्येतेति चेन्न । न तावत् पुरुषेणोच्चार्यमाणत्वं पौरुषेयत्वं, गुरुमतेऽपि पौरुषत्वापत्तेः। नापि पुरुषाधीनोत्पत्तिमत्त्वं पौरुषेयत्वं, नैय्यायिकाभिमतपौरुषेयत्वानुमानेऽस्मदादीनां सिद्धसाधनापत्तेः । किन्तु सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम् । तथा च सर्गाद्यकाले परमेश्वरः पूर्वसिद्धवेदसमानानुपूर्वीकं वेदं विरचितवान् । न तु तद्विजातीयं वेदमिति न सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वं वेदस्य । भारतादीनां तु सजातीयोच्चारणमनपेक्ष्यैवोच्चारणमिति तेषां पौरुषेयत्वम्" (वेदान्तपरिभाषा) ।

—❧—

१—प्रश्न उपस्थित होता है कि वेदों के क्षणिक न होने पर भी आकाशादिवत् सादि भाव के कारण परमेश्वर द्वारा बनाए जाने के कारण भी यदि वेद का पौरुषेयत्व माना जायगा तो तुम्हारे (वेदान्त के) सिद्धान्त का विरोध होगा। (कारण वेदान्त के मतानुसार वेद सर्वथा अपौरुषेय हैं) । आक्षेपात्मक इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि—"केवल पुरुष के मुख से उच्चारण का विषय बन जाना ही पौरुषेयत्व नहीं है । यदि पौरुषेयत्व का यही लक्षण माना जायगा तो गुरुमत में भी पौरुषेयत्व की आपत्ति होगी । कारण भाट्टमत के मतानुसार वेद ईश्वरपुरुष के मुख से कहा हुआ है । इसी प्रकार पुरुष की अधीनता में (सादि में) वेद उत्पन्न हुआ है' पौरुषेय का यह भी लक्षण नहीं माना जा सकता । कारण न्यायानुसार पौरुषेयत्व का यही लक्षण किया गया है फलतः इस लक्षण के मानने से हमारे (वेदान्त) में सिद्धसाधन दोष होता है । ऐसी स्थिति में (स्वसिद्धान्त की

उक्त तेरहों मत आंशिकरूप से परस्पर में विरोधात्मक होते हुए भी—"वेद नित्य-सिद्ध हैं, कूटस्थ हैं, अपौरुषेय हैं" इस अंश में सर्वथा विरोधी हैं। यही पूर्वोत्तर मीमांसा का मत है। इसीलिए इन विभिन्न मार्गानुगामी १३ हों मतों को हम मीमांसामत मानने के लिए तय्यार हैं। साथ ही में यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जिन मतों का सप्रमाण अब तक दिग्दर्शन कराया है, उन में से कितने एक मत एक से मालुम होते हैं। यदि पाठक महानुभाव सूक्ष्मदृष्टि से विचार करेंगे तो उन्हें उन सब का सूक्ष्मपार्थक्य विदित होजायगा।

१—मीमांसामत,—वेद अकृत हैं, कूटस्थ नित्य हैं, अपौरुषेय हैं।

१—वेद ईश्वर से अभिन्न है।
२—वेद ईश्वर के समकक्ष है।
३—वेद ईश्वर के निश्वास हैं।
४—वेद को ईश्वरानुग्रह से ब्रह्मा ने प्राप्त किया है।
५— " " महर्षियों ने प्राप्त किया है।
६— " " अजपृश्नि ऋषियों ने प्राप्त किया है।
७— " " अथर्वाङ्गिरा ने प्राप्त किया है।
८—वेद ईश्वर का वाक्य है, ईश्वर इस का सम्प्रदायप्रवर्त्तक है।
९—वेद चतुर्मुखब्रह्मा का वाक्य है ब्रह्मा इस का सम्प्रदाय प्रवर्त्तक है।
१०—वेद भिन्न भिन्न ऋषियों का वाक्य है, ऋषि इस के सम्प्रदायप्रवर्त्तक हैं।
११—वेद के तात्पर्यानुसार ईश्वर ने विश्व का निर्माण किया है।
१२—वेदशब्दों से ईश्वर ने जगत् का निर्माण किया है।
१३—वेद के पूर्वरूप का स्मरण कर के सृष्ट्यादि में वेद को ईश्वर ने प्रकट किया।

ना के लिए हमें, पौरुषेयता का—"सजातीयोच्चारण की अपेक्षा न रखने वाले उच्चारण का विषय ही पौरुषेयता है" यह अवश्य समझना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में (यह सिद्ध हो

(१)-(२)-(३)-(४)

इन तेरह मतों के सम्बन्ध में ३—४—३—३—यह अवान्तर चार विमर्श समझने चाहिए। इन चारों के अनुसार उक्त तेरह मतों का निम्न लिखित स्वरूप पाठकों के सामने आता है।

१—१—आत्मरूप वेद ईश्वर से अभिन्न है।
३ २—२—आत्मरूप वेद ईश्वर से समतुल्य है।
३—३—आत्मरूप वेद ईश्वर के निःश्वास है।

४—१—ईश्वरानुग्रह से ब्रह्मा ने विज्ञानरूप वेदों को प्राप्त किया।
४ ५—२—ईश्वरानुग्रह से महर्षियो ने विज्ञानरूप वेदों को प्राप्त किया।
६—३—ईश्वरानुग्रह से अजपृश्निऋषियों ने विज्ञानरूप वेदों को प्राप्त किया।
७—४—ईश्वरानुग्रह से अथर्वाङ्गिरा ने विज्ञानरूप वेदों को प्राप्त किया।

८—१—शब्दमय वेद ईश्वर का वाक्य है, ईश्वर इस का सम्प्रदायप्रवर्त्तक है।
३ ९—२—शब्दमय वेद ब्रह्मा का वाक्य है, ब्रह्मा इस का सम्प्रदायप्रवर्त्तक है।
१०—३—शब्दमय वेद ऋषियों का वाक्य है ऋषि इस के सम्प्रदायप्रवर्त्तक हैं।

११—१—ईश्वर ने वेदशास्त्र से जगत् बनाया।
३ १२—२—ईश्वर ने वेदशब्द से जगत् बनाया।
१३—३—ईश्वर ने वेदशास्त्र से पूर्वकल्प का स्मरण किया एवं तद्द्वारा जगत बनाया।

इति—मीमांसामतप्रदर्शनम्

१

जाता है कि) सृष्टि के आदिकाल में ईश्वर ने पूर्वकल्पसिद्ध, वेद का समान आनुपूर्वी का स्मरण करके ही वेदनिर्माण किया। ऐसी दशा में उक्त पौरुषेयलक्षण वेद में घटित नहीं हुआ, फलतः वेद का अपौरुषेयत्व हमारे मत में सर्वथा अक्षुण्ण रह गया।

२-सप्त-भवान्तरमतयुक्तं—

नव्यन्यायाभिमत-मतप्रदर्शनम्

१—नव्यन्यायदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शनम्

नव्य, न्याय के मतानुसार वेद कूटस्थनित्यता, एवं प्रवाहनित्यता से रहित होता हुआ कथमपि नित्यसिद्ध नहीं माना जासकता। मनुष्य ऋषि यद्यपि इस के कर्त्ता नहीं हैं, अपितु द्रष्टा ही है, तथापि इसे अपौरुषेय नहीं माना जासकता। क्योंकि "यद्यत् कार्यं तत्तत् कर्तृजन्यम्" इस सर्वानुभूत सिद्धान्त के अनुसार कार्य बिना कारण के अनुपपन्न है। फलतः जिन कार्यों का कर्त्ता हम प्रत्यक्ष में नहीं देखते, अनुमान द्वारा अवश्य ही किसी परोक्षकर्त्ता का अनुमान लगाना पड़ता है। वही आनुमानिक कर्त्ता 'ईश्वर' है। क्षित्यङ्कुरादि की तरह वही वेदकार्य का भी प्रवर्त्तक है। इस ईश्वरपुरुष के सम्बन्ध से ही हम वेद को "पौरुषेय" मानने के लिए तय्यार हैं। हा शरीरधारी अतएव सर्वथा परतन्त्र मनुष्य इस का कर्त्ता नहीं है, इस दृष्टि से इसे अपौरुषेय भी माना जासकता है। नव्यन्याय ग्रन्थों में अतिसुप्रसिद्ध सर्वश्री उदयनाचार्य विरचित 'कुसुमाञ्जलि" नामक ग्रन्थ में इसी मत का समर्थन किया गया है, जैसा कि निम्न लिखित वचन से स्पष्ट होजाता है।

> "प्रमायाः परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलयसम्भवात्।
> तदन्यस्मिन्ननाश्वासान्न विधान्तरसम्भवः॥

स्यादेतत्—परतः प्रामाण्येऽपि नित्यत्वाद् वेदानामनपेक्षत्वं, महाजन परिग्रहाच्च प्रामाण्यमिति विरोधः। न। उभयस्याप्यसिद्धेः। यदा च वर्णा एव न नित्यास्तदा कैव कथा पुरुषविवक्षाधीनानुपूर्व्यादिविशिष्टवर्ण-समूहरूपाणां पदानां, कुतस्तरां च तत्समूहरचनाविशेषस्य भारस्यवाक्यस्य,

कुतस्तमां तत् समूहस्य वेदस्य । परतन्त्रपुरुषपराधीनतया प्रवाहाविच्छेदमेव निरूतां ब्रूम इति चेत, एतदपि नास्ति-सर्गप्रलयसम्भवात्"

(कुसुमाञ्जलि द्वि० स्तवक २ का०) ।

इसी मत को आधार मानने वाले सुविख्यातनामा म०म० श्रीगङ्गेशोपाध्याय भी चिन्तामणि ग्रन्थ में अपने यही विचार प्रकट करते हैं । देखिए—

"अत्र ब्रूमः—शब्दप्रमायां लोके वक्तुर्यथार्थज्ञानं न गुणः,किन्तु योग्यतादिकं यथार्थतज्ज्ञानं वा । लाघवादावश्यकत्वाच्च । + + + + । एवं वेदेऽपि यथार्थयोग्यताज्ञानमेव गुण इति न, वैदिकप्रमाया गुणजन्यत्वेनेश्वरसिद्धिः । स्यादेतत् । वेदवक्तुर्यथार्थवाक्यार्थज्ञानमपि न गुणः । लोके प्रमाणशब्दं प्रति तादृशस्य ज्ञानस्य हेतुत्वात् । × × × × । एवं च वेदो वाक्यार्थगोचरयथार्थज्ञानवत् स्वतन्त्रः प्रणीतः । प्रमाणशब्दत्वात् । गामानयेति वाक्यवत्-इतीश्वरसिद्धिः । × × × × । अथ तात्पर्यविशेषे वेदः प्रमाणम् । न चास्मदादेर्वेदं विनाऽतीन्द्रियवेदार्थगोचरज्ञानं, येन तत् प्रतीतीच्छयोच्चारणं भवेत् । न च वेदादेव तत, अन्योऽन्याश्रयात् । अतः सकलवेदार्थदर्शिनां यस्य वेदस्य यथार्थप्रतीतीच्छयोच्चारणं कृतं, स तत्र प्रमाणमिति तादृशेच्छैवगुणः । तज्जन्या वेदार्थप्रमा-इति तदाश्रयस्वतन्त्रस्य पुरुषधौरेयसिद्धिः" ।

(तत्वचिन्तामणि-प्रामाण्यवाद-प्रमेत्वचिरहस्य) ।

उक्त दर्शन सिद्धान्त के आधार पर ७ अवान्तर मत विभाग होजाते हैं । इन का भी संक्षेप से दिग्दर्शन करा दिया जाता है ।

१—प्रतिकल्प की सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर नवीन वेद बनाता है। (१४ मत)।

वेदतत्व को न तो ईश्वररूप माना जासकता, एवं न इसे ईश्वर के समकक्ष माना जासकता। कारण स्पष्ट है। ईश्वर नित्य है, अनादि है, शरीरानाश्रित है। इधर शब्दराशिभूत वेद अनित्य है, सादि है, शरीरव्यापाराश्रित है। ईश्वर उत्पन्न नहीं होता, किन्तु वेद ईश्वर से उत्पन्न होता है। प्रतिकल्प में होने वाले सृष्टि के आदिकाल में ईश्वर नया वेद उत्पन्न करता है। जैसे सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी आदि विश्व के अन्यान्य पदार्थ ईश्वर से सृष्टिकाल में उत्पन्न होते रहते हैं, तथा प्रलयकाल में नष्ट होते रहते हैं, ठीक इसी तरह प्रतिसृष्टि में नवीन वेद उत्पन्न होता रहता है, एव प्रलयकाल में नष्ट होता रहता है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित वचन हमारे सामने आते हैं।

१—प्रतिमन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते। (पुराण—न्यायचिन्तामणि)

२—ऋचो यजूंषि सामानि शरीराणि व्यपाश्रिताः ॥
जिह्वाग्रेषु प्रवर्त्तन्ते यत्नसाध्या विनाशिनः ॥ १ ॥
न चैवमिष्यते ब्रह्म शरीराश्रयसम्भवम्।
न यत्नसाध्यं तद्ब्रह्म नादिमध्यं न चान्तवत् ॥ २ ॥

१—प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में दूसरे (नवीन) वेद का (ईश्वर से) विधान (उत्पत्ति) होता है।

२—ऋक्, यजुः, साम ये तीनों शरीर व्यापार के आश्रित हैं। जिह्वा के अग्रभाग में प्रतिष्ठित वागिन्द्रिय से इनकी प्रवृत्ति [उच्चारण] होती है। प्रयास से प्राप्त होने योग्य यह (शब्दराशिरूप) वेद सर्वथा विनाशी है। १।

ब्रह्मतत्त्व (ईश्वर) शरीरव्यापार के आश्रय से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। साथ ही में वह ब्रह्म न (शब्दवत्) यत्नसाध्य है एवं न उस का कोई आदि है, न अन्त है। २।

ऋचामादिस्तथा साम्नां यजुषामादिरुच्यते ॥
अनन्तश्चादिमतां नचादिर्ब्रह्मणः स्मृतः ॥ ३ ॥
अनादित्वादनन्तत्वात् तदनन्तमथाव्ययम् ॥
अव्ययत्वाच निर्दुःखं द्वन्द्वाभावस्ततः परम् ॥ ४ ॥
(म० शान्तिप० मोक्ष०)।

३ — 'सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत-भूयान्स्यां, प्रजायेयेति। सोऽश्राम्यत्। स तपोऽतप्यत। स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। सैवास्मै प्रतिष्ठाऽभवत्। तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति। × × + ×। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेव साऽसृज्यत। × + × ×। सोऽकामयत-आभ्योऽद्भ्योऽधि प्रजायेयेति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्। तत आण्ड समवर्त्तत। तदभ्यमृशत्-अस्त्विति। भूयोऽस्त्वित्येव तदब्रवीत्। ततो ब्रह्मैव प्रथममसृजत, त्रयीमेव विद्याम्। तस्मादाहुः— ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजमिति। अपि ह तस्मात् पुरुषात् ब्रह्मैव पूर्वमसृज्यत। तदस्य तन्मुखमेवासृज्यत" इति।
(शत० ६।१।१-८-९-१० कं० उखासम्भरणश्रुति)

वह ब्रह्म [ईश्वर] ऋक्,यजुः, साम इन तीनों वेदों का आदि [उत्पादक] है। वह स्वयं सादिपदार्थों का (आश्रयभूत) अनन्त है। ब्रह्म का कोई आदि नहीं देखा गया ॥ ३ ॥
अनादिभाव, एवं अनन्तभाव के कारण ही वह 'अनन्त' एवं 'अव्यय' नाम से प्रसिद्ध है। इसी अव्यय भाव के कारण वह पर (परब्रह्म) तत्व दुःखविरहित, एवं द्वन्द्वातीत है ॥४॥
३—उस पुरुष प्रजापति (ईश्वर) ने इच्छा की कि, मैं बहुत बनूं, उत्पन्न करूं। इसी इच्छा से प्रेरित होकर उसने श्रम किया, उसने तप किया। श्रान्त एवं तपः कर्म से तप्त

१—नित्यसिद्ध वाक्तत्त्व से ईश्वर शब्दवेद, एवं विश्व को उत्पन्न करता है। (१५ मत)।

नित्यसिद्ध वाक्तत्व से ईश्वरने वेद और विश्व का निर्म्माण किया है। कणाद सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार परमाणु नित्य हैं, किन्तु इन नित्य परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न होनें वाले पाञ्चभौतिक पृथिव्यादि सभी पदार्थ अनित्य हैं, इसी प्रकार वाक्तत्व किंवा वाक्रूप शब्दतत्व यद्यपि सर्वथा नित्य है तथापि वाक्तत्व से सम्पन्न होने वाला पद, वाक्य, सन्दर्भ आदि की समष्टिरूप शब्दमय वेद भी सर्वथा अनित्य ही है। जिस प्रकार नित्यवाङ्मय परमाणुओं से ईश्वर ने सूर्य्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्रादि का निर्म्माण किया है एवमेव उन्हीं वाङ्मय नित्य परमाणुओं से ईश्वरने अनित्य वेद का स्वरूप निर्म्माण किया है। इस मत के समर्थक निम्नलिखित वचन हैं-

१—"स तया वाचा तेनात्मना सर्वमसृजत यदिदं किञ्च।
ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांसि, यज्ञान्, प्रजाः पशून्"

उसने सर्वप्रथम ब्रह्मनाम की त्रयीविद्या ब्रह्मनिश्वसित वेद नाम की स्वायम्भुवी विद्यात्रयी ही उत्पन्न की। वही त्रयीविद्या इस प्रजापति के लिए प्रतिष्ठा बनी। इसी आधार पर—"ब्रह्म (वेद)-ही सब की प्रतिष्ठा है" यह कहा जाता है। उस वेद प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होकर पुनः प्रजापति ने तप किया। इस तप से उसने वाक्लोक से (वाग्रूप उपादान द्रव्य से) पानी ही पैदा किया। उसने इच्छा की कि, मैं इन पानियों के आधार पर (और कुछ) उत्पन्न करूं। (इसी इच्छा से) वह इस त्रयीविद्या के साथ पानी में प्रविष्ट होगया। इस से अण्ड (ब्रह्माण्ड) का स्वरूप उत्पन्न होगया। प्रजापति ने उस अण्ड का स्पर्श करते हुए कहा कि तू होजा। जितना है, इस से बड़ा होजा, यही कहा। इस से 'ब्रह्म" नाम की त्रयीविद्या (गायत्रीमात्रिक नाम की सौरविद्यात्रयी) ही सर्वप्रथम उत्पन्न की। इसी आधार पर 'ब्रह्म (वेद) ही इस सम्पूर्ण प्रपञ्च (विश्व) का प्रथमज (पहिले उत्पन्न होने वाला) है" यह कहते हैं। सचमुच उस ईश्वरपुरुष से सर्वप्रथम ब्रह्म (वेद) ही उत्पन्न हुआ है। वह ब्रह्म इसके मुख से ही उत्पन्न हुआ है।

१—उस प्रजापतिने वाङ्मय अपने उस आत्मभाग से ही सब कुछ उत्पन्न किया है,

ऋचामादिस्तथा साम्नां यजुषामादिरुच्यते ॥
अनन्तश्चादिमतां नत्वादिर्ब्रह्मणः स्मृतः ॥ ३ ॥
अनादित्वादनन्तत्वात् तदनन्तमथाव्ययम् ॥
अव्ययत्वाच्च निर्दुःखं द्वन्द्वाभावस्ततः परम् ॥ ४ ॥

(म० शान्तिप० मोक्ष०)।

३ — 'सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत-भूयान्स्यां, प्रजायेयेति। सोऽश्राम्यत्। स तपोऽतप्यत। स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। सैवास्मै प्रतिष्ठाऽभवत्। तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति। × × + ×। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेव साऽसृज्यत। × + × ×। सोऽकामयत-आभ्योऽद्भ्योऽधि प्रजायेयेति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्। तत आण्ड समवर्त्तत। तदभ्यमृशत्-अस्त्विति। भूयोऽस्त्वित्येव तदब्रवीत्। ततो ब्रह्मैव प्रथममसृजत, त्रयीमेव विद्याम्। तस्मादाहुः-ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजमिति। अपि ह तस्मात् पुरुषात् ब्रह्मैव पूर्वमसृज्यत। तदस्य तन्मुखमेवासृज्यत" इति।

(शत० ६।१ ८-९-१० क० उखासम्भरणश्रुति)

——◦◦◦——

वह ब्रह्म [ईश्वर] ऋक्, यजु, साम इन तीनों वेदों का आदि [उत्पादक] है। वह सब सादिपदार्थों का (आश्रयभूत) अनन्त है। ब्रह्म का कोई आदि नहीं देखा गया ॥ ३ ॥

अनादिभाव, एवं अनन्तभाव के कारण ही वह 'अनन्त' एवं 'अव्यय' नाम से प्रसिद्ध है। इसी अव्यय भाव के कारण वह पर (परब्रह्म) तत्व दुःखरहित, एवं द्वन्द्वातीत है ॥ ४ ॥

३—उस पुरुष प्रजापति (ईश्वर) ने इच्छा की कि, मैं बहुत बनूं, उत्पन्न करूं। इसी इच्छा से प्रेरित होकर उसने श्रम किया, उसने तप किया। श्रम एवं तपः कर्म से तप्त

सृष्टि के अव्यवहितोत्तरकाल में ही सबकुछ बन जाता है । जिस प्रकार पाषाणखण्डों के समूहरूप पर्वत, जलराशिरूप समुद्र ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होने से अपौरुषेय (मनुष्यपुरुष की कृति से बहिर्भूत) हैं, एवं जिस प्रकार इन अपौरुषेय ईश्वरकृतिरूप पर्वतों के खण्डों से शिला-स्तूप-प्रतिमा-प्रासाद आदि पौरुषेयभावों का निर्म्माण कर लिया जाता है, जल से सरोवर, वापी, कूप, तड़ाग आदि पौरुपेयभाव सम्पन्न करलिए जाते हैं, एवमेव अपौरुषेय वेद के शब्दों का संग्रह कर के अनेक पौरुषेयग्रन्थ बना डाले गए हैं। वेद सूर्य्य है, तो वेदग्रन्थ इस सूर्य्य के प्रतिबिम्ब हैं। सूर्य्य-समुद्रादिवत् वेदों का निर्म्माण भी सृष्टि के आरम्भकाल में ही हुआ है। इसी तृतीयमत का निरूपण करते हुए आप्त पुरुष कहते हैं—

१—यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥ (मुण्डक)

२—दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥

३—तस्मादृचः सामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ।
अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ॥
[मुण्डक० २।१।]

१—जो ईश्वरतत्व सर्वज्ञ है, सर्ववित् (सर्वार्थमय) है, जिस का तप (कर्म्म) ज्ञानमय है, उसी ईश्वर से ब्रह्मनामक प्रतिष्ठालक्षण वेद, नामरूपात्मक ज्योति, तथा अन्नलक्षण यज्ञ उत्पन्न हुआ है।

२—वह ईश्वर पुरुष दिव्य [पाप्मविरहितसत्त्वमूर्त्ति] है, अमूर्त्त [भौतिकप्रपञ्च से असंस्पृष्ट] है। बाहर-भीतर सब ओर असङ्गरूप से व्याप्तरहने वाला अज [नित्य-अजन्मा] है।

३—ऋक्, साम, यजुः, दीक्षा, सम्पूर्णयज्ञ, सम्पूर्णक्रतु [कर्म्म] सम्पूर्ण दक्षिणा, उसी से उत्पन्न हुई हैं। उसी से पर्वत समुद्र आदि उत्पन्न हुए हैं। विविधरूप सम्पूर्ण नद उसी से प्रवर्तित हुए हैं।

२—अथो वागेवेदं सर्वम् ।

३—वागविद्वताश्च वेदाः ।

४—वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता ।

५—अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी सत्ता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

३—वेद एवं विश्व को ईश्वर ने अपनी इच्छानुसार बनाया है। (१६ मत)

वेद एवं विश्व दोनों का ईश्वर ने अपनी इच्छामात्र (संकल्पमात्र) से ही निर्माण किया है। तात्पर्य यही है कि, पूर्वोक्त द्वितीय (पञ्चदश) मतानुसार वेद एवं विश्वनिर्माण के लिए उसे न तो नित्यशब्द (वाक्तत्व) की अपेक्षा है, न नित्यपरमाणुओं की, एवं न किसी अन्य उपादान सामग्री की। वह स्वयं सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, सर्ववित्, है, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र है। वह अपने कर्म में किसी इतर उपादान की कोई अपेक्षा नहीं रखता। वह जब भी, जो भी चाहता है, बना डालता है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि, उस के संकल्पमात्र से

जोकि यह सब कुछ [विश्वप्रपञ्च] है। ऋक्, यजुः, साम, छन्द, यज्ञ, प्रजा, पशु आदि सब को [प्रजापति ने] वाङ्मय आत्मा, किंवा आत्मा के वाक्भाग से ही उत्पन्न किया है।

२—वाक् ही यह सब कुछ है।

३—चारों वेद वाक्तत्व के ही विवर्त (फैलाव) हैं।

४—यह वाक्तत्व सम्पूर्ण भुवनों में ओतप्रोत है।

५—अनादिनिधना नित्यावाक् स्वयम्भू ईश्वर के मुख से निकली है। इसी वेदमयी सत्तावाक् से सब कुछ प्रवृत्तिएं (विश्वनिर्माण) हुई हैं।

संकल्प के अव्यवहितोत्तरकाल में ही सबकुछ बन जाता है। जिस प्रकार पाषाणखण्डों के समूहरूप पर्वत, जलराशिरूप समुद्र ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न होने से अपौरुषेय (मनुष्यपुरुष की कृति से वहिर्भूत) हैं, एवं जिस प्रकार इन अपौरुषेय ईश्वरकृतिरूप पर्वतों के खण्डों से शिला-स्तूप-प्रतिमा-प्रासाद आदि पौरुषेयभावों का निर्म्माण कर लिया जाता है, जल से सरोवर, वापी, कूप, तड़ाग आदि पौरुषेयभाव सम्पन्न करलिए जाते हैं, एवमेव अपौरुषेय वेद के शब्दों का संग्रह कर के अनेक पौरुषेयग्रन्थ बना डाले गए हैं। वेद सूर्य्य है, तो वेदग्रन्थ इस सूर्य्य के प्रतिबिम्ब हैं। सूर्य्य-समुद्रादिवत् वेदों का निर्म्माण भी सृष्टि के आरम्भकाल में ही हुआ है। इसी तृतीयमत का निरूपण करते हुए आप्त पुरुष कहते हैं—

१—यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥ (मुण्डक)

२—दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥

३—तस्मादृचः सामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ॥
[मुण्डक० २।१।]

१—जो ईश्वरतत्व सर्वज्ञ है, सर्ववित् (सर्वार्थमय) है, जिस का तप (कर्म्म) ज्ञानमय है, उसी ईश्वर से ब्रह्मनामक प्रतिष्ठालक्षण वेद, नामरूपात्मक ज्योति, तथा अन्नलक्षण यज्ञ उत्पन्न हुआ है।

२—वह ईश्वर पुरुष दिव्य [पाप्मविरहितसत्त्वमूर्त्ति] है, अमूर्त्त [भौतिकप्रपञ्च से असंस्पृष्ट] है। बाहर-भीतर सब ओर असंगरूप से व्याप्तरहने वाला अज [नित्य-अजन्मा] है।

३—ऋक्, साम, यजुः, दीक्षा, सम्पूर्णयज्ञ, सम्पूर्णक्रतु [कर्म्म] सम्पूर्ण दक्षिणा, उसी से उत्पन्न हुई हैं। उसी से पर्वत समुद्र आदि उत्पन्न हुए हैं। विविधरूप सम्पूर्ण नद उसी से प्रवर्तित हुए हैं।

४—प्रजापतिर्वा इदमेक एवाग्रे आसीत् । नाहरासीत्, न रात्रिरासीत् ।
स तपोऽतप्यत । तस्मात् तपस्तेपानाच्चत्वारो वेदा अजायन्त ॥

———०:※:०———

४—ईश्वरने वेद बनाकर ब्रह्मा एवं महर्षियों द्वारा उसे लोक में प्रवृत्त किया। [१७ मत]

सम्पूर्ण विश्व, एवं चारों वेदों का निर्म्माता ईश्वरपुरुष सर्वथा निराकार है। ऐसी स्थिति में हमें यह मानलेना पड़ता है कि, स्वयं निराकार ईश्वर साक्षात्स्वरूप से वेदों का उपदेश नहीं देता । होता क्या है ? शरीरधारी किसी उत्कृष्ट सात्त्विक जीव के अन्तःकरण में ईश्वर वेद को प्रादुर्भूत करता है, एवं उसी के द्वारा वह लोक में वेद का प्रचार करवाता है । वेही उत्कृष्टजीव ब्रह्मा व्यासादिमुनि, वसिष्ठादि महर्षि हैं । ये ही ईश्वरद्वारा अन्तःकरण में उदित वेद के प्रचारक हुए हैं, जैसाकि निम्न लिखित पुराण वचन से स्पष्ट है—

१—तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये । (भागवत)

२—ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥

४—सृष्टि के पहिले ईश्वरप्रजापति एकाकी था । न उस समय दिन था न उस समय रात्रि थी । उसने तप किया । उस तप करने वाले तपोमूर्त्ति ईश्वर से चारों वेद उत्पन्न हुए ।

———०:※:०———

१—उस ईश्वर ने आदि कवि के लिए (उस ज्ञान का—उसके हृदय में) वितान (प्रसार) किया ।

२—वेदद्रष्टा महर्षियों के जो नाम सुने जाते हैं, वेदों के सम्बन्ध में जो महर्षियोंकी दृष्टि (साक्षात्कार-प्रत्यक्ष) है,) सर्वागम के अन्त में (एवं महागम के आरम्भ में) उत्पन्न उन्हीं वेदों को वह अज (ईश्वर इन ऋषियों को [प्रसार के लिए] प्रदान करता है ।

५-ईश्वरने अपनी इच्छा से अग्नि-वायु सूर्य्य द्वारा वेदों को उत्पन्न किया। (१८ मत)

अग्नि पृथिवीलोक का रस है, वायु अन्तरिक्षलोक का रस है, एवं सूर्य्य द्युलोक का रस है। तीनों भौतिक देवता उक्त तीनों लोकों के अतिष्ठाता (अधिष्ठाता) देवता है। इन भौतिक अधिष्ठात्री देवताओं से ही ईश्वरेच्छा से तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं। अग्निरस से ऋग्वेद, वायुरस से यजुर्वेद, एवं सूर्य्यरस से सामवेद उत्पन्न हुआ है। उक्त तीनों देवता ईश्वर की ही विभूतिएं हैं फलतः वेदके ईश्वरकर्तृत्व में कोई बाधा नहीं आती है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित श्रुतिवचन हैं—

१—प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्। तेषां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्। अग्निं पृथिव्या, वायुमन्तरिक्षात्, आदित्यं दिवः। स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्। तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्-अग्नेर्ऋचः, वायोर्यजूंषि, सामान्यादित्यात्। स एतां त्रयीविद्यामभ्यतपत्। तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत्। भूरिति ऋग्भ्यः, भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः। (छा. उ. ४।प्र।१७-ख०)। इति।

२—'प्रजापतिरकामयत-प्रजायेय, भूयान्त्स्यामिति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इमांल्लोकानसृजत-पृथिवीमन्तरिक्षं दिवम्। तांल्लोकान-

१—प्रजापति [ईश्वर] ने तीनों लोकों को तपाया। तप्त उन तीनों लोकों से रसों को बढाया। पृथिवी से अग्निरस, अन्तरिक्ष से वायुरस, द्युलोक से आदित्यरस [उत्पन्न किया]। इन तीनों देवताओंको तपाया। इन तप्यमान देवरसों से क्रमशः अग्निरस से ऋग्वेद, वायुरससे यजुर्वेद, आदित्यरस से सामवेद को बढाया। इन तीनों विद्याओं को तपाया। इस तप्तत्रयी विद्या से क्रमशः ऋग्विद्या से भूः रस उत्पन्नकिया, यजुर्विद्या से भुवः रस उत्पन्न किया, एवं सामविद्या से स्वः रस उत्पन्न किया। इस प्रकार अपने ऐच्छिक तपोबल से ईश्वर ने तीनों लोको से क्रमशः तीन देवरस, तीन वेदरस एवं तीन व्याहृतिरस उत्पन्न किए।

२—ईश्वर प्रजापतिने कामना की कि, मैं प्रजा उत्पन्न करूं, [उत्पन्न प्रजापति के

भ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त–अग्निरेव पृथिव्या अजायत, वायुरन्तरिक्षात्, आदित्यो दिवः । तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्। तेऽभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त–ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात् । तान् वेदानभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणिशुक्राण्यजायन्त–भूरित्येव ऋग्वेदाजायत, भुव इति यजुर्वेदात्, स्वरिति सामवेदात् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त–अकार, उकार, मकार इति । तानेकधासमभरत् । तेदेतदोमिति"

[ऐ०ब्रा० ५।५।३२] इति ।

२— अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ [मनुः] ।

———ः:०:ः———

द्वारा] भूमाभाव से युक्त बनूं । [इस प्रजापतिकामना से प्रेरित होकर] प्रजापतिने तपोरूप कर्म किया । तप का अनुष्ठान कर प्रजापतिने क्रमशः पृथिवी अन्तरिक्ष, द्यु ये तीन लोक उत्पन्न किए । इन तीनों लोकों को प्रजापतिने तपाया । इन तप्त तीनों लोकों से क्रमशः पृथिवी से अग्निज्योति, अन्तरिक्ष से वायुज्योति [विद्युत्] एवं द्यौ से आदित्यज्योति उत्पन्न हुईं । [आगे जाकर] इन तीनों ज्योतियों को तपाया । तप्त तीनों ज्योतियों से क्रमशः अग्निज्योति से ऋक् नाम का वेद, वायुज्योति से यजुः नाम का वेद एवं आदित्यज्योति से साम नाम का वेद उत्पन्न हुआ । इन तीनों वेदों को तपाया । तप्त तीनों वेदों से क्रमश. ऋग्वेद से भूः नाम का शुक्र, यजुर्वेद से भुवः नाम का शुक्र, एवं सामवेद से स्वः नाम का शुक्र उत्पन्न हुआ । इन तप्त तीनों शुक्रों से क्रमशः भूः शुक्र से अकार, भुवः शुक्र से उकार, एवं स्वः शुक्र से मकार इन तीन वर्णों का विकास हुआ । इन तीनों को प्रजापतिने एक स्थान पर समवेत कर दिया । यही ओङ्कार कहलाया ।

२—प्रजापतिने यज्ञसिद्धि के लिए अग्नि–वायु–सूर्य्य से क्रमशः ऋग्-यजुः सामलक्षण तीनों नित्य ब्रह्मों [वेदों] का दोहन किया ।

———०:०———

६—ईश्वर ने अपनी इच्छा से सूर्य्य द्वारा वेदों को उत्पन्न किया। (१९ मत)

ज्ञान-क्रिया-अर्थ तन्त्रों का सञ्चालक, 'नैवोदेता नास्तमेता मध्ये एकल एव-स्थाता" (छा० उपनिषत्) इस सामश्रुति के अनुसार विश्वकेन्द्र में बृहतीछन्द नामक विषवद्वृत्त (इक्वेटर) के मध्य में प्रतिष्ठित, प्रत्यक्षदृष्ट सहस्रांशु सूर्य्य ही ईश्वर की इच्छा से, किंवा इच्छात्मिका प्रेरणा से तीनों वेद उत्पन्न करता है। दूसरे शब्दों में ईश्वर अपनी वेद-निर्माणेच्छा को सूर्य्य द्वारा पूर्ण करता है। इस मत का समर्थक निम्नलिखित वचन है।

१—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
स तिस्रो वाचः प्रेरयति, ऋचोयजूंषिसामानि। [या.नि.परि. १४]।

———:०:———

७—ईश्वर ने अपनी इच्छा से यज्ञपुरुषद्वारा वेदों को उत्पन्न किया। (२० मत)

वेद को ईश्वर ने यज्ञ से ही उत्पन्न किया है। यज्ञद्वारा ईश्वर से उत्पन्न होनेवाले इस वेद को अस्मदादि लौकिक पुरुषोंने वेदसाक्षात्कर्ता ऋषियों से प्राप्त किया है। यही वेदराशि भिन्न भिन्न देशों में जाकर आम्नायभेद से कई शाखाओं में विभक्त होगई है। इस वेदाम्नाय के प्रवर्तक सात महर्षि ही मुख्य मानें गए हैं। इस मत का समर्थक निम्नलिखित वचन है—

१—यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्–तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा सप्तरेभा अभिसंनवन्ते ॥ [ऋक्सं०]॥

१—यह वचन जैसे इस छठे मत की ओर लगाया जाता है, वैसे ही इसी वचनको प्राचीनन्यायाभिमत ४ र्थ मत का पोषक भी माना जासकता है। इस का अर्थ उसी मत के निरूपण में किया जायगा।

———:(०):———

१—त्रयीवाक् के मार्ग को ऋषियोंनें यज्ञद्वारा प्राप्त किया है। अतीन्द्रियार्थद्रष्टा महर्षियों

उक्त सातों ही मतो में—"वेद का मुख्य कर्त्ता ईश्वर है, यह शब्दराशिरूप वेद ईश्वरकृत होने से पौरुषेय है, अनित्य है, शरीरधारीमनुष्यपुरुषकृत न होने से अपौरुषेय है" इस नव्यन्याय मत का समावेश है। इसीलिए हमनें इन सातों मतों का नव्यन्याय मत में अन्तर्भाव माना है। इन सातों मतों के ४—३ भेद से दो कल्प है। जैसाकि निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट होजाता है—

२—वेद ईश्वरकृत है, पौरुषेयापौरुषेय है, अनित्य है। (नव्यन्यायमत)

४
१-१-[१४]-प्रतिकल्प की सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर नवीन वेद बनाता है।
२-२-[१५]-नित्यसिद्धवाक्तत्व से ईश्वर शब्दवेद, एवं विश्वको उत्पन्न करता है।
३-३-[१६]-वेद एवं विश्व को ईश्वरने अपनी इच्छानुसार बनाया है।
४-४-[१७]-ईश्वरने वेद बनाकर ब्रह्मा एवं महर्षियों द्वारा उसे लोक में प्रवृत्त किया।

—○—

३
५-१-[१८]-ईश्वरने अपनी इच्छा से अग्नि-वायु-सूर्य्य द्वारा वेदों को उत्पन्न किया।
६-२-[१९]-ईश्वरने अपनी इच्छा से सूर्य्यद्वारा वेदों को उत्पन्न किया।
७-३-[२०]-ईश्वरने अपनी इच्छा से यज्ञद्वारा वेदों को उत्पन्न किया।

—o—

इति—नव्यन्यायमत प्रदर्शनम्

२

—○•○—

में ही विद्वानोंने वेदवाक् को प्राप्त किया है। उसी वाक् को लेकर अनेक शाखाओं से अनेक स्थानों में सम्प्रदाय प्रतिष्ठित की हैं। देखी इस अर्थवाद की ओर [विशेषरूप से] सप्तरेभा [ऋषि] हा अनुगत हुए हैं।

उक्त सातों ही मतों में—"वेद का मुख्य कर्त्ता ईश्वर है, यह शब्दराशिरूप वेद ईश्वरकृत होने से पौरुषेय है, अनित्य है, शरीरधारीमनुष्यपुरुषकृत न होने से अपौरुषेय है" इस नव्यन्याय मत का समावेश है। इसीलिए हमनें इन सातों मतों का नव्यन्याय मत में अन्तर्भाव माना है। इन सातों मतों के ४–३–भेद से दो कल्प है। जैसाकि निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट होजाता है—

२—वेद ईश्वरकृत है, पौरुषेयापौरुषेय है, अनित्य है। (नव्यन्यायमत)

४
१–१–[१४]–प्रतिकल्प की सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर नवीन वेद बनाता है।
२–२–[१५]–नित्यसिद्धवाक्तत्त्व से ईश्वर शब्दवेद, एवं विश्वको उत्पन्न करता है।
३–३–[१६]–वेद एवं विश्व को ईश्वरने अपनी इच्छानुसार बनाया है।
४–४–[१७]–ईश्वरने वेद बनाकर ब्रह्मा एवं महर्षियों द्वारा उसे लोक में प्रवृत्त किया।

—०—

३
५–१–[१८]–ईश्वरने अपनी इच्छा से अग्नि–वायु–सूर्य्य द्वारा वेदों को उत्पन्न किया।
६–२–[१९]–ईश्वरने अपनी इच्छा से सूर्यद्वारा वेदों को उत्पन्न किया।
७–३–[२०]–ईश्वरने अपनी इच्छा से यज्ञद्वारा वेदों को उत्पन्न किया।

—०—

इति—नव्यन्यायमत प्रदर्शनम्

२

—०—

में ही विद्वानोंने वेदवाक् को प्राप्त किया है। उसी वाक् को लेकर अनेक शाखाओं से अनेक देशों में सम्प्रदाय प्रतिष्ठित की हैं। ऐसी इस अर्थवाक् की ओर [विशेषरूप से] सप्तरेभा [सप्तर्षि] ही अनुगत हुए हैं।

—०—

२-पञ्च-अवान्तरमतयुक्तं—

प्राचीनन्यायाभिमत-मतप्रदर्शनम्

१—प्राचीनन्यायदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शन

प्राचीनन्याय के मतानुसार वेद अपिकृत हैं, साथ ही में पौरुषेय हैं। यद्यपि ये शब्द-राशिरूप वेद कूटस्थ नित्य नहीं है, तथापि इन की प्रवाहनित्यता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। लौकिकशब्द अनित्य होते हुए भी जैसे प्रवाहनित्य हैं, एवमेव वैदिकशब्द अनित्य होते हुए भी प्रवाहनित्य हैं। अपिच जिस प्रकार लौकिकशब्द आप्तपुरुषों के वचन होने से प्रमाणभूत माने जाते है, एवमेव वैदिकशब्द भी आप्तवचन होने से स्वत.प्रमाण है। भारद्वाजादि जिन आप्तपुरुषोंनें आयुर्वेदादि की रचना की है, वे ही वेद के प्रवर्त्तक हुए हैं। जैसे आयुर्वेदादि को आप्तवचन होने से प्रामाण्य है, एवमेव इन वेदों को भी आप्तवचन होने से प्रामाण्य है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित प्रमाण हमारे सामने आते हैं—

१—"आप्तोपदेशः शब्दः" (न्या०द० १।१।७)।

२—'स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्" (न्या द० १।१।८)।

३—"मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत् प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यवत्"
(न्या०द० २।१।६८)।

गोतमसूत्रों के भाष्यकार सर्वश्री "वात्स्यायन" कहते हैं—

४—मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यासप्रयोगाविच्छेदो वेदानां नित्यत्वम्। आप्तप्रामाण्याच्च प्रामाण्यम्। लौकिकेषु चैतत् समानम् इति। आप्ता खलु साक्षात्कृतधर्म्माणः। × ÷ + ×। दृष्टार्थेनाप्तोपदेशेनाऽऽयुर्वेदेनाऽदृष्टार्थो वेदभागोऽनुमन्तव्य -प्रमाण-मिति। आप्तप्रामाण्यस्य हेतोः समानत्वात्। + + × ×। द्रष्टृ-प्रवक्तृसामान्याच्चानुमानम्। य एव वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च, त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति।आयुर्वेदप्रामाण्यवद्वेदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति।

हमारे लिए सर्वथा मान्य होता है। कारण, वे लौकिक विषयों में आप्त हैं। इसी प्रकार पारलौकिक आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य आदि अदृष्टपदार्थों को अपनी दिव्यदृष्टि (आर्षदृष्टि योगदृष्टि) से देखने वाले महर्षियों का शब्दोपदेश उक्त अदृष्टपदार्थों के सम्बन्ध में हम अनाप्तों के लिए प्रत्येक दशा में मान्य है। अपने अपने विषय में सभी आप्त हैं—जैसाकि भाष्यकार कहते हैं—

> "आप्तः—ऋष्यार्यम्लेच्छानां समान लक्षणम्। तथा च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्त्तन्ते। एवमेभिः प्रमाणैर्देवमनुष्यतिरश्चां व्यवहाराः प्रकल्पन्ते, नातोऽन्यथा" (वा०भा० १।१।७)।

एक महर्षि पारलौकिक अर्थों में आप्त है, तो एक आर्य अपने सदाचार में आप्त है। एक म्लेच्छ अपने हिंसाकर्म में आप्त है। इन्हीं आप्तों के बतलाए हुए मार्ग के अनुसरण से लौकिक-पारलौकिक व्यवहार चलते हैं। अपने अपने विषय में सब पण्डित हैं। एवं उन उन विषयों में उन उन आप्तपण्डितों का वचन ही हमारे लिए प्रमाण है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर देवता, मनुष्य, देवयोनिए सब की जीवनयात्रा का निर्वाह हो रहा है। यदि ऐसा न किया जाए तो, लौकिक-पारलौकिक दोनों ही मर्य्यादाएं उच्छिन्न होजांय। हमें ९९ प्रतिशत कार्य केवल शब्दादेश पर ही करने पड़ते हैं। यदि हम अपने बुद्धिवाद के गर्व में पड़कर परीक्षा की प्रतीक्षा करने लगें, तो जीवन ही कठिन होजाय—"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ" ॥ २ ॥

वेद शब्दराशिरूप है। मन्त्रशास्त्र एवं आयुर्वेदशास्त्र जैसे आप्तोपदेश होने से प्रमाण हैं, एवमेव वेद भी आप्तोपदेश होने से प्रमाण है। "अमुक मन्त्र के जप से अमुक फल मिलता है" इस उपदेश से हम उस कथन को प्रमाणभूत मानते हुए मन्त्रजप में प्रवृत्त होजाते हैं। एवमेव—"अमुक रोग में अमुक औषध हितकर है" आयुर्वेद के इस आदेश को शिरोधार्य कर उस औषधपान में प्रवृत्त होजाते हैं। इस प्रवृत्ति का एकमात्र कारण आप्तबुद्धि ही है। हम समझते हैं कि, उक्त आदेश परीक्षक विद्वानों का है। इस में कभी भ्रान्ति नहीं हो सकती। वेद

नित्यत्वाद् वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे—'तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्" ;
इत्युक्तम्। शब्दश्च वाचकत्वादर्थप्रतिपत्तौ प्रमाणत्वं न नित्यत्वात्"
(वात्स्यायनभाष्य २।१।६८)।

५—'न भिद्यते लौकिकाद् वाक्याद् वैदिकं वाक्यम्। प्रेक्षापूर्वकारि-
पुरुषप्रणीतत्वेन । तत्र लौकिकस्तावत् परीक्षकोऽपि न जातमात्रं
कुमारमेवं ब्रूयात्–अधीष्व, यजस्व, ब्रह्मचर्यं चर इति। कुत एव
ऋषिरुपपन्नोऽनवद्यवादी उपदेशार्थेन प्रयुक्त उपदिशति"
(४।२।६२)।

६—"य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च, ते खल्वितिहास-पुराण
धर्मशास्त्रस्य चेति"। (४।१।६२)। इति।

उक्त सूत्रों तथा वात्स्यायन भाष्य का अभिप्राय यही है कि—"प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शाब्द भेद से प्रमासाधन (ज्ञानसाधन) प्रमाण चार भागों में विभक्त हैं। इन चारों में से आप्त (पहुंचवान) पुरुष का (शब्दात्मक–किंवा शब्दरूप) उपदेश ही शाब्दप्रमाण है। साक्षात्कृतधर्म्मा पुरुष ही आप्त (विषयप्राप्त) कहलाते हैं। वे उस विषय के अन्तस्तल पर पहुंचे रहते हैं, उस विषय को यथार्थरूप से आप्त (प्राप्त) करलेते हैं। ऐसे ही आप्तपुरुषों को "तत्र भवान्" (उस विषय में आप्त–आप) कहलाते हैं। ऐसे आप्तपुरुषों का शब्दात्मक उपदेश अस्मदादि अनाप्तपुरुषों के लिए अवश्य ही प्रमाण है" ॥ १ ॥

'शब्दप्रमाण दृष्टअर्थ, एवं अदृष्टअर्थ भेद से दो प्रकार का है। लौकिक घट–पट अन्न–गृह–आदि पदार्थ दृष्टार्थ हैं। पारलौकिक अतीन्द्रियपदार्थ अदृष्टार्थ हैं। प्रत्यक्षदृष्ट लौकिक अर्थों को पहिचाननें वालों का शब्दोपदेश लौकिक अर्थों के सम्बन्ध में प्रमाणभूत हैं। लौकिक विषयों के परीक्षक लौकिक पदार्थों के हानि-लाभ के सम्बन्ध में हमें जैसा आदेश करते हैं, वह

हमारे लिए सर्वथा मान्य होता है। कारण, वे लौकिक विषयों में आप्त हैं। इसी प्रकार पारलौकिक आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य आदि अदृष्टपदार्थों को अपनी दिव्यदृष्टि (आर्षदृष्टि योगदृष्टि) से देखने वाले महर्षियों का शब्दोपदेश उक्त अदृष्टपदार्थों के सम्बन्ध में हम अनाप्तों के लिए प्रत्येक दशा में मान्य है। अपने अपने विषय में सभी आप्त हैं—जैसाकि भाष्यकार कहते हैं—

> "आप्तः—ऋष्यार्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम्। तथा च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्त्तन्ते। एवमेभिः प्रमाणैर्देवमनुष्यतिरश्चां व्यवहाराः प्रकल्पन्ते, नातोऽन्यथा" (वा० भा० १।१।७)।

एक महर्षि पारलौकिक अर्थों में आप्त है, तो एक आर्य अपने सदाचार में आप्त है। एक म्लेच्छ अपने हिंसाकर्म में आप्त है। इन्हीं आप्तों के बतलाए हुए मार्ग के अनुसरण से लौकिक-पारलौकिक व्यवहार चलते हैं। अपने अपने विषय में सब पण्डित हैं। एवं उन उन विषयों में उन उन आप्तपण्डितों का वचन ही हमारे लिए प्रमाण है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर देवता, मनुष्य, देवयोनिएं सब की जीवनयात्रा का निर्वाह हो रहा है। यदि ऐसा न किया जाय तो, लौकिक-पारलौकिक दोनों ही मर्य्यादाएं उच्छिन्न होजांय। हमें ९९ प्रतिशत कार्य केवल शब्दादेश पर ही करने पड़ते हैं। यदि हम अपने बुद्धिवाद के गर्व में पड़कर परीक्षा की प्रतीक्षा करने लगें, तो जीवन ही कठिन होजाय—"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ" ॥ २ ॥

वेद शब्दराशिरूप है। मन्त्रशास्त्र एवं आयुर्वेदशास्त्र जैसे आप्तोपदेश होने से प्रमाण हैं, इसीप्रकार वेद भी आप्तोपदेश होने से प्रमाण है। "अमुक मन्त्र के जप से अमुक फल मिलता है" इस उपदेश से हम उस कथन को प्रमाणभूत मानते हुए मन्त्रजप में प्रवृत्त होजाते हैं। इसीप्रकार—"अमुक रोग में अमुक औषध हितकर है" आयुर्वेद के इस आदेश को शिरोधार्य कर हम औषधपान में प्रवृत्त होजाते हैं। इस प्रवृत्ति का एकमात्र कारण आप्तबुद्धि ही है। हम समझते हैं कि, उक्त आदेश परीक्षक विद्वानों का है। इस में कभी भ्रान्ति नहीं हो सकती। वेद

निसत्वाद् वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे—' तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्" ;
इत्युक्तम् । शब्दश्च वाचकत्वादर्थप्रतिपत्तौ प्रमाणत्वं न निसत्वात्"
(वात्स्यायनभाष्य २।१।६८)।

५—' न भिद्यते लौकिकाद् वाक्याद् वैदिकं वाक्यम् । प्रेक्षापूर्वकारि-
पुरुषप्रणीतत्वेन । तत्र लौकिकस्तावत् परीक्षकोऽपि न जातमात्रं
कुमारमेवं ब्रूयात्–अधीष्व, यजस्व, ब्रह्मचर्यं चर इति । कुत एव
ऋषिरुपपन्नोऽनवद्यवादी उपदेशार्थेन प्रयुक्त उपदिशति"
(४।२।६२)।

६—"य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च, ते खल्वितिहास-पुराण
धर्मशास्त्रस्य चेति" । (४।१।६२)। इति ।

उक्त सूत्रों तथा वात्स्यायन भाष्य का अभिप्राय यही है कि—"प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शाब्द भेद से प्रमासाधन (ज्ञानसाधन) प्रमाण चार भागों में विभक्त हैं। इन चारों में से आप्त (पहुंचवान) पुरुष का (शब्दात्मक–किंवा शब्दरूप) उपदेश ही शाब्दप्रमाण है। साक्षात्कृतधर्म्मा पुरुष ही आप्त (विषयप्राप्त) कहलाते हैं। वे उस विषय के अन्तस्तल पर पहुंचे रहते हैं, उस विषय को यथार्थरूप से आप्त (प्राप्त) करलेते हैं। ऐसे ही आप्तपुरुषों को "तत्र भवान्" (उस विषय में आप्त–आप) कहलाते हैं। ऐसे आप्तपुरुषों का शब्दात्मक उपदेश प्रमादादि अनाप्तपुरुषों के लिए अवश्य ही प्रमाण है" ॥ १ ॥

' शब्दप्रमाण दृष्टार्थ, एवं अदृष्टार्थ भेद से दो प्रकार का है। लौकिक घट-पट अन्न–गृह–आदि पदार्थ दृष्टार्थ हैं। पारलौकिक अतीन्द्रियपदार्थ अदृष्टार्थ है। प्रत्यक्षदृष्ट लौकिक अर्थों को पहिचाननें वालों का शब्दोपदेश लौकिक अर्थों के सम्बन्ध में प्रमाणभूत हैं। लौकिक विषयों के परीक्षक लौकिक पदार्थों के हानि-लाभ के सम्बन्ध में हमें जैसा आदेश करते हैं, वह

के ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, भारद्वाजादि जो महर्षि आयुर्वेदादि के प्रवक्ता हैं, वे ही वेद के द्रष्टा हैं। ऐसी स्थिति में ब्रह्मादि के उपदेशभूत आयुर्वेदादि यदि प्रमाण हैं, तो उन्हीं ब्रह्मादि महर्षियों से कहे गए वेद की प्रामाणिकता में भी कोई सन्देह नहीं रह जाता। हां इस सम्बन्ध में यह नहीं भूल जाना चाहिए कि, शब्द अर्थ का वाचक है। वह वाच्य अर्थ के ज्ञान का कारण है। इसलिए इस शब्दराशि को प्रमाण माना जाता है। 'शब्द नित्य है, इसलिए वह प्रमाण है" इस भ्रम में कदापि नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि शब्द (न्यायमतानुसार) सर्वथा अनित्य है॥ ४ ॥५–६–स्पष्ट हैं।

इस प्राचीनन्यायमत के अवान्तर पांच विभाग होजाते हैं। इन का भी संक्षेप से दिग्दर्शन करा दिया जाता है।

१—ईश्वरावतार ब्रह्मा ने वेद का निर्म्माण किया। (२१ मत)

ब्रह्मा ईश्वर के अवतार थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम वेदों को उत्पन्न किया है निर्गुण सगुण भेद से ब्रह्म के दो विवर्त्त हैं। इन में दूसरा सगुणब्रह्म निराकार–साकार भेद से दो भागों में परिणत होरहा है। इन में से दूसरा साकार ब्रह्म परमात्मा, अन्तरात्मा, शरीरात्मा, भेद से तीन भागों में विभक्त है। ये तीनों ही आत्मा पुनः तीन तीन भागों में विभक्त हो रहे हैं। परमात्मा के सर्वज्ञ, हिरण्यगर्भ, विराट् ये तीन विवर्त्त हैं। अन्तरात्मा के जीवात्मा, क्षेत्रज्ञात्मा भूतात्मा, ये तीन विवर्त्त हैं। एवमेव शरीरात्मा के वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ, भेद से तीन विवर्त्त हैं।

अथवा प्रकारान्तर से देखिए। ईश्वरतत्व निर्गुण–सगुण भेद से दो भागों में विभक्त है। इन में दूसरा सगुणेश्वर धर्म्मोपहित, धर्म्मविशिष्ट भेद से दो भागों में विभक्त है। इन में दूसरा धर्म्मविशिष्ट ईश्वरात्मा, जीवात्मा, विपिविष्टात्मा, भेद से तीन भागों में विभक्त है। ये तीनों ही आत्मविवर्त्त पुनः तीन तीन भागों में विभक्त हैं। ईश्वरात्मा के सर्वज्ञ, हिरण्यगर्भ, विराट् ये तीन विवर्त्त हैं। जीवात्मा के क्षेत्रज्ञात्मा, महानात्मा भूतात्मा ये तीन विवर्त्त हैं।

भी आप्तमहर्षियों का वाक्य है । अतः "अमुक कर्म से अमुक फल मिलता है" इत्यादि वेदोपदेशों पर हमारी स्वत एव निष्ठा होजाती है । यदि निष्ठा नहीं होती है, तो होनी चाहिए । जिस मनुष्यने अपने जीवन में एकवार भी 'ब्राह्मी' नहीं देखी हो, जिसे स्वप्न में भी यह मालुम नहीं हो कि, ब्राह्मी ज्ञानवर्द्धिका है, तो भी केवल आप्तोपदेश के आधार पर इसे उसको अपनाना पडेगा । "हम तो जभी मानेंगे, जब कि उस की पूरी जांच करलेंगे" ऐसा दुराग्रह रखनें वाले अश्रद्धालुओं को भी आयुर्वेदोपदेश में आप्तभाव के कारण विना परीक्षा के ही प्रवृत्त होजाना पड़ता है । महर्षि गोतम कहते हैं कि, जिस हेतु [आप्तप्रामाण्यबुद्धि] से तुम आयुर्वेद को प्रमाण मानलेते हो, उसी आप्तभाव के कारण वेद को भी प्रमाण मानो ॥ ३ ॥

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ॥

इस आप्तवचन के अनुसार युगान्त में अन्तर्हित वेदों का युग के आदि में महर्षियों द्वारा आविर्भाव हुआ करता है । दूसरे शब्दों मे मन्वन्तर के आदि में वेदसम्प्रदाय प्रवर्त्तक ऋषियों द्वारा युगान्त में अन्तर्हित वेद प्रादुर्भूत होता रहता है । इस प्रकार वेद का यह उद्धारक्रम निरन्तर (अनादिकाल से) चला आरहा है । ऐसी स्थिति में वेद के नित्यसिद्ध, किंवा कूटस्थ नित्य न होने पर भी हम इसे 'प्रवाहनित्य' अवश्य ही मान सकते हैं । आप्तप्रामाण्य के कारण वेद में प्रामाण्य मानना पड़ता है । लौकिक दृष्टार्थों के सम्बन्ध में भी यही व्यवस्था है । अर्थात उन के शब्दोपदेश को भी आप्तबुद्धया ही प्रमाण माना जाता है । साक्षात्कृतधर्म्मापुरुष ही आप्त कहलाता है । आप्तोपदेशभूत दृष्टार्थस्वरूप आयुर्वेद के द्वारा अदृष्टअर्थ का प्रतिपादन करनें वाले वेदों की प्रामाणिकता का भी अनुमान लगाया जासकता है । अर्थात् जिस हेतु से आयुर्वेद प्रमाणभूत है, वेद की प्रामाणिकता में भी वही हेतु है । क्योंकि आप्तभाव दोनों के लिए समान है । अपिच दोनों के (आयुर्वेद और वेद के) प्रवक्ता द्रष्टा हैं । साक्षात्कार करनें वाले ही द्रष्टा कहलाते हैं । आयुर्वेदादि के प्रवक्ता-द्रष्टा पुरुष हैं, इसलिए वह प्रामाणिक है, इसी आधार पर द्रष्टा के प्रवचनरूप वेद की प्रामाणिकता में भी सन्देह नहीं किया जासकता । निष्कर्ष यही हुआ

कि, ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, भारद्वाजादि जो महर्षि आयुर्वेदादि के प्रवक्ता हैं, वे ही वेद के प्रवक्ता हैं। ऐसी स्थिति में ब्रह्मादि के उपदेशभूत आयुर्वेदादि यदि प्रमाण हैं, तो उन्हीं ब्रह्मादि महर्षियों से कहे गए वेद की प्रामाणिकता में भी कोई सन्देह नहीं रह जाता। हां इस सम्बन्ध में यह नहीं भूलजाना चाहिए कि, शब्द अर्थ का वाचक है। वह वाच्य अर्थ के ज्ञान का कारण है। इसलिए इस शब्दराशि को प्रमाण माना जाता है। 'शब्द नित्य है, इसलिए वह प्रमाण है" इस भ्रम में कदापि नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि शब्द (न्यायमतानुसार) सर्वथा अनित्य है॥ ४ ॥५–६–स्पष्ट हैं।

इस प्राचीनन्यायमत के अवान्तर पांच विभाग होजाते हैं। इन का भी संक्षेप से दिग्दर्शन करा दिया जाता है।

१—ईश्वरावतार ब्रह्मा ने वेद का निर्म्माण किया। (२१ मत)

ब्रह्मा ईश्वर के अवतार थे। इन्होंने हीं सर्वप्रथम वेदों को उत्पन्न किया है निर्गुण सगुण भेद से ब्रह्म के दो विवर्त्त हैं। इन में दूसरा सगुणब्रह्म निराकार–साकार भेद से दो भागों में परिणत होरहा है। इन में से दूसरा साकार ब्रह्म परमात्मा, अन्तरात्मा, शरीरात्मा, भेद से तीन भागों में विभक्त है। ये तीनों हीं आत्मा पुनः तीन तीन भागों में विभक्त हो रहे हैं। परमात्मा के सर्वज्ञ, हिरण्यगर्भ, विराट् ये तीन विवर्त्त हैं। अन्तरात्मा के जीवात्मा, क्षेत्रज्ञात्मा भूतात्मा, ये तीन विवर्त्त हैं। एवमेव शरीरात्मा के वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ, भेद से तीन विवर्त्त हैं।

अथवा प्रकारान्तर से देखिए। ईश्वरतत्त्व निर्गुण–सगुण भेद से दो भागों में विभक्त है। इन मे दूसरा सगुणेश्वर धर्म्मरहित, धर्म्मविशिष्ट भेद से दो भागों में विभक्त है। इन में दूसरा धर्म्मविशिष्ट ईश्वरात्मा, जीवात्मा, शिपिविष्टात्मा, भेद से तीन भागों में विभक्त है। ये तीनों ही आत्मविवर्त्त पुनः तीन तीन भागों मे विभक्त हैं। ईश्वरात्मा के सर्वज्ञ, हिरण्यगर्भ, विराट् ये तीन विवर्त्त हैं। जीवात्मा के क्षेत्रज्ञात्मा, महानात्मा, भूतात्मा ये तीन विवर्त्त हैं।

एवं शिपिविष्टात्मा के असंज्ञ, अन्तःसंज्ञ, सूमर-भ्रूणादिरूप ससंज्ञ भेद से तीन विवर्त्त हैं। इन सब आत्मविवर्तों की समष्टि ही ईश्वरप्रपञ्च है।

उक्त ब्रह्म विवर्तों में से धर्मविशिष्ट ब्रह्म के अवयव भूत ईश्वरात्मा के तीन अवयवों में से जो मध्य का 'हिरण्यगर्भ' नाम का विवर्त्त है, उसे ही हम ईश्वरावतार ब्रह्मा, किंवा प्रजापति कहेंगे। इसी ईश्वरावतार, प्रजासृष्टि विधाता धाताने वेदों का निर्म्माण किया है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित श्रुति-स्मृति वचन हैं।

१—हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजुः सं०)॥

२—अध्यक्षं सर्वभूतानां धातारमकरोत् स्वयम्।
वेद विद्याविधातारं ब्रह्माणममितंद्युतिम् (म.शान्तिप० २०७अ०)

२—ईश्वरावतार मत्स्यभगवान् ने वेद बनाया है। (२२ मत)॥

कितने ही विद्वानों के मतानुसार यह वेद ईश्वरावतार 'मत्स्य' भगवान् की वाणी है। मत्स्यावतार ही वेद के आदि प्रवर्त्तक हैं, जैसाकि नीचे लिखी पङ्क्तियों से स्पष्ट होजाता है-

१—सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। येही सम्पूर्ण भूत भौतिक प्रपञ्च के अधिपति थे। इन्होंने ही पृथिवी और इस द्युलोक को धारण किया। हम इन से अतिरिक्त और किस देवता के लिए हवि का विधान कर सकते हैं।

२— ईश्वरने (अपने अवतारभूत हिरण्यगर्भ नामक) धाता [ब्रह्मा] को ही सम्पूर्ण भूतों का अध्यक्ष बनाया। ये ब्रह्मा वेदविद्या के प्रवर्त्तक थे, एवं महातेजस्वी थे।

*"ननु अशरीरात् कथं वेद-घटादि शब्दव्यवहारसम्प्रदायः। उच्यते-सर्गादावदृष्टोपगृहीतभूतभेदात्---मीनशरीरोत्पत्तावदृष्टवदात्मसंयोगाददृष्टसहकृतप्रयत्नवदीश्वरसंयोगाद्वा सकलवेदार्थगोचरज्ञानात् विवक्षासहितान्मीनकलेवरकण्ठताल्वादिक्रियाजन्यसंयोगाद् वेदोत्पत्तिः। एवं कुलालादिशरीरावच्छेदेनादृष्टसहकृतप्रयत्नवदीश्वरसंयोगात् तद् बुद्धीच्छासहितचेष्टोत्पत्तौ सकलघटानुकूलव्यापारो घटोत्पत्तिः। एवं प्रयोज्य-प्रयोजकज्ञानाय व्यापाराभिमतशरीरावच्छेदेनापि अदृष्ट सहकृतेश्वर-ज्ञानेच्छाप्रयत्नादेवव्यवहारः। ततस्तत्र सुशीलो बालो व्युत्पद्यते। सोऽयं भूतावेशन्यायः।

यत्तु यथा लिप्यादिना मौनिश्लोकोऽनुमानाय पठ्यते, तथा सर्गान्तरोत्पन्नतत्त्वज्ञानवताभोगार्थं सर्गादावुत्पन्नेन मन्वादिनासर्वज्ञेन ईश्वराभिप्रायस्थवेदः साक्षात्कृत्यानूद्यते। ततोऽग्रिमसम्प्रदायः। स एव कायव्यूहं कृत्वा वाग्व्यवहारं करोतीति मतम्। तन्न। प्रतिसर्गाद्यनन्तकल्पनायां गौरवात्। तेषामेव क्षित्यादिकर्तृत्वसंभवेन-ईश्वरानुगमाच्च' (तत्वचिन्तामणि)

———— ०:॥:० ————

*"अयं घट"-"अयं वेदः" इत्यादि शब्दव्यवहारसम्प्रदाय कण्ठताल्वादि जन्य अभिघात रूप शरीरव्यापार की अपेक्षा रखते हैं। ईश्वर शरीरव्यापाररहित है। फिर यह शब्दव्यवहार-सम्प्रदाय किससे, कब चला ? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इस प्रश्न का समाधान करते हुए 'चिन्तामणि'कार कहते हैं-' सृष्टि के आरम्भ में अदृष्ट के बल से उपगृहीत भूतभेद से मीनशरीर की उत्पत्ति हुई है एवं अदृष्टवत् आत्मसंयोग से किंवा अदृष्ट से युक्तप्रयत्न के समान ईश्वरेच्छा के संयोग से (मीनशरीर में) सम्पूर्ण वेदार्थों के देखने का ज्ञान प्राप्त हो जाने से तत्तद्विवक्षाओं से युक्त मीनशरीर के कण्ठताल्वादी के अभिघात से उत्पन्न तत्तद्संयोग विशेषों से ही वेदशब्द किंवा शब्दात्मकवेद

उत्पन्न हुआ है' यह मानलेने पर शरीरव्यापारसापेक्ष शब्दसम्प्रदाय की सिद्धि हो जाती है। इसी प्रकार कुलालादि शरीर से युक्त, उसी अदृष्ट से युक्त प्रयत्न से ईश्वरसंयोगद्वारा, ईश्वरसंयोगयुक्त बुद्धि एवं इच्छायुक्त चेष्टा के प्रादुर्भूत होने से सम्पूर्ण घटों के व्यापार के उदय से घटोत्पत्ति एवं घटशब्दोत्पत्ति हुई है। इस तरह प्रयोज्य प्रयोजक के परिज्ञान के लिए व्यापाराभिमत शरीरसत्ता स्वीकार करलेने पर भी, दूसरे शब्दों में शरीरका सहयोग मानलेने पर भी अदृष्टसहकृत ईश्वरज्ञानसे उद्भूत इच्छा के प्रयास का सहयोग अवश्य ही मानना पड़ता है। अर्थात् ईश्वरेच्छा से ही मीनने स्वशरीरव्यापार से वेदसम्प्रदाय प्रवृत्त किया है, एवं ईश्वरेच्छा से ही कुलालादि घटसम्प्रदायप्रवृत्ति के हेतु बनते हैं। उसी ईश्वरेच्छा से एक कम ऊमरवाला बालक "काका-मामा बाबा" इस प्रकार बोलने लगता है। यही "भूतावेशन्याय" है। अर्थात् जिस प्रकार एक भूत (प्रेतात्मा) जैसे परकाय म प्रवेशकर बोलने लगता है, एवमेव ईश्वरेच्छा ही तत्तत् शरीरों में प्रविष्ट होकर तत्तत् कार्यकलापप्रवृत्ति का कारण बनती है। इस सम्बन्ध में पूर्वपक्षी कहता है—

जिस प्रकार लिपि के आधार पर एक व्यक्ति लिपिमयश्लोकों का अनुमान करता हुआ (अन्दाजा लगाता हुआ) चुपचाप पढ़ लेता है, इसी प्रकार दूसरे सर्ग में (पूर्वसर्ग में) उत्पन्न तत्त्वज्ञान से युक्त भोग के लिए सर्गादि में उत्पन्न मनु आदि सर्वज्ञ महानुभाव ईश्वराभिप्रायरूपवेद का साक्षात्कार करके उसका अनुवाद किया करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि, ईश्वर एक प्रकार का पत्र है। उसका वेदतत्त्वात्मक अभिप्राय ही वेदलिपि है। इस वेदलिपि को मौनवृत्ति से ईश्वर प्रेरणा से मन्वादि ने देखा। देखकर शब्दद्वारा प्रकट किया। इस क्रम से वेदसम्प्रदाय आगे आगे चलपड़ा। मन्वादि राजर्षि, एवं वसिष्ठादि महर्षि उसी के तो शरीर हैं जिस प्रकार एक योगी कायव्यूहप्रक्रिया से अनेक शरीर धारण कर कर्मभोग मे समर्थ होजाता है, एवमेव वह ईश्वर कायव्यूहरूप मन्वादि अनेक शरीर धारण कर वेदवाक् का व्यवहार करता हुआ वेदसम्प्रदाय चलाता है"। इस पूर्वपक्षी मत का खण्डन करते हुए भाष्यकार कहते हैं—ऐसी परिस्थिति में प्रतिसर्ग के आदि में अनेक सर्वज्ञों की कल्पना करने से गौरव होगा। साथ ही मे वेदवत् उन्हीं

ी—ईश्वरावतार अग्नि–वायु–सूर्य्य नामक देवताओंनें वेद बनाया है। (२३ मत)

ऋग्–यजुः–साम नाम से प्रसिद्ध तीनों वेद क्रमशः अग्नि, वायु,–सूर्य्य नामक ईन अभिमानी देवताओं से उत्पन्न हुए हैं। "अभिमानीव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्" (शा०सू०) के अनुसार संसार में सूर्य्य-चन्द्र–पृथिवी–अग्नि–वायु–वरुण आदि जितनें भी जड़ पदार्थ हैं, उन सब का (प्रत्येक का) एक एक अभिमानी* देवता होता है। ये देवता पुरुष के समान ही शरीरधारी चेतनजीव हैं। पुरुष में जहां ११ इन्द्रिएं हैं, वहां इन देवताओं में अष्टसिद्धि, नवतुष्टि इन १७ सिद्धितुष्टियों के समावेश से २८ इन्द्रिएं हैं। ये देवता अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से तीनों लोकों में यथेच्छ यातायात करने में समर्थ हैं।

ऊर्ध्वं सत्वविशालस्तमो विशालस्तु मूलतः सर्गः।
मध्ये रजो विशालो ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तः॥ (सां०कारिका)।

इस साङ्ख्यसिद्धान्त के अनुसार भूतसर्ग सत्वविशाल, रजोविशाल, तमोविशाल भेद से तीन भागों में विभक्त है। इन में तमोविशालसर्ग आप्यजीव है, रजोविशालसर्ग वायव्य-जीव है, एवं सत्वविशालसर्ग सौम्यजीव है। ये तीनों क्रमशः १–५–८ इस क्रम से विभक्त है। यही साङ्ख्योक्त १४ प्रकार का भूतसर्ग है। इन में सत्वविशाल सौम्यजीव यक्ष-राक्षस पिशाच–गन्धर्व–ऐन्द्र–पैत्र्य–प्राजापत्य- ब्राह्म भेद से आठभागों में विभक्त है। ये आठों ही

श विश्लकुरादि का कर्तृत्व सम्भव होने से उन्हें ही ईश्वर मानना पड़ेगा। फलतः अनेक ईश्वर हो जायगे। यह महा अनर्थ होगा। अतः वेद-घटादि-सम्प्रदायव्यवहार के सम्बन्ध में पूर्वोक्त निरूपण ही स्वसिद्धान्त (एकेश्वरवादसिद्धान्त) के अनुसार समीचीन है।

———— :०: ————

* पुरुषविध, अपुरुषविध, मन्त्र, कर्म्म, अभिमानी, आरम्भ आदि भेद से देवता अनेक प्रकार के होते हैं। इस सब का विशद वैज्ञानिक निरूपण "शतपथविज्ञानभाष्य" के प्रथम०के १०-११-१२ खण्ड में देखना चाहिए।

उत्पन्न हुआ है' यह मानलेने पर शरीरव्यापारसापेक्ष शब्दसम्प्रदाय की सिद्धि हो जाती है। इसी प्रकार कुलालादि शरीर से युक्त, उसी अदृष्ट से युक्त प्रयत्न से ईश्वरसंयोगद्वारा, ईश्वरसंयोगयुक्त बुद्धि एवं इच्छायुक्त चेष्टा के प्रादुर्भूत होने से सम्पूर्ण घटों के व्यापार के उदय से घटोत्पत्ति एवं घटशब्दोत्पत्ति हुई है। इस तरह प्रयोज्य प्रयोजक के परिज्ञान के लिए व्यापाराभिमन शरीरसत्ता स्वीकार करलेने पर भी, दूसरे शब्दों में शरीरका सहयोग मानलेने पर भी अदृष्टसहकृत ईश्वरज्ञानसे उद्भूत इच्छा के प्रयास का सहयोग अवश्य ही मानना पड़ता है। अर्थात् ईश्वरेच्छा से ही मीनने स्वशरीरव्यापार से वेदसम्प्रदाय प्रवृत्त किया है, एवं ईश्वरेच्छा से ही कुलालादि घटसम्प्रदायप्रवृत्ति के हेतु बनते हैं। उसी ईश्वरेच्छा से एक कम ऊमरवाला बालक "काका-मामा बाबा" इस प्रकार बोलने लगता है। यही "भूतावेशन्याय" है। अर्थात् जिस प्रकार एक भूत (प्रेतात्मा) जैसे परकाय में प्रवेशकर बोलने लगता है, एवमेव ईश्वरेच्छा ही तत्तत् शरीरों में प्रविष्ट होकर तत्तत् कार्यकलापप्रवृत्ति का कारण बनती है। इस सम्बन्ध में पूर्वपक्षी कहता है—

जिस प्रकार लिपि के आधार पर एक व्यक्ति लिपिमयश्लोकों का अनुमान करता हुआ (अन्दाजा लगाता हुआ) चुपचाप पढ़ लेता है, इसी प्रकार दूसरे सर्ग में (पूर्वसर्ग में) उत्पन्न तत्त्वज्ञान से युक्त भोग के लिए सर्गादि में उत्पन्न मनु आदि सर्वज्ञ महानुभाव ईश्वराभिप्रायस्थवेद का साक्षात्कार करके उसका अनुवाद किया करते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि, ईश्वर एक प्रकार का पत्र है। उसका वेदतत्त्वात्मक अभिप्राय ही वेदलिपि है। इस वेदलिपि को मौनवृत्ति से ईश्वर प्रेरणा से मन्वादि ने देखा। देखकर शब्दद्वारा प्रकट किया। इस क्रम से वेदसम्प्रदाय आगे आगे चलपड़ा। मन्वादि राजर्षि, एवं वसिष्ठादि महर्षि उसी के तो शरीर हैं जिस प्रकार एक योगी कायव्यूहप्रक्रिया से अनेक शरीर धारण कर कर्मभोग में समर्थ होजाता है, एवमेव वह ईश्वर कायव्यूहरूप मन्वादि अनेक शरीर धारण कर वेदवाक् का व्यवहार करता हुआ वेदसम्प्रदाय चलाता है"। इस पूर्वपक्षी मत का खण्डन करते हुए भाष्यकार कहते हैं—ऐसी परिस्थिति में प्रतिसर्ग के आदि में अनेक सर्वज्ञों की कल्पना करने से गौरव होगा। साथ ही में वेदयत् उन्हीं

परन्तु प्रकृतमतानुसार इन तीनों के अभिमानी देवता ही त्रयीवेद के उत्पादक हैं। जड़पदार्थ से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। भौतिक देवता जड़ हैं, फलतः उन से वेदोत्पत्ति मानना असंगत है। चेतन, शरीरधारी अभिमानी इन तीनों प्राणात्मक देवताओं से ही वेद उत्पन्न हुए हैं। ईश्वर की विभूतिरूप, अतएव ईश्वरावतार अग्निनाम के जीवविशेष से ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद एवं सूर्य्य से सामवेद उत्पन्न हुआ है। इस मत के आधारपर निम्न लिखित श्रौत-स्मार्त्तवचन है।

१—त्रयो वेदा असृज्यन्त–अग्नेर्ऋगेवेदः, वायोर्यजुर्वेदः, आदित्यात् सामवेदः।
(ऐ० ब्रा०)।

२—अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ (मनुः)

३–प्रत्यक्षानुमानोपमानागमेषु प्रमाणविशेषेषु-अन्तिमोवेद इति चेन्न। मन्वादिस्मृतिष्वतिव्याप्तेः। समयबलेन सम्यक्परोक्षानुभवसाधनमित्येतस्यागमलक्षणस्य तास्वपि सद्भावात्। अपौरुषेयत्वे सतीति विशेषणाददोष इति चेन्न। वेदस्यापि परमेश्वरनिर्म्मितत्वेन पौरुषेयत्वात्। शरीरधारिजीवपुरुषनिर्म्मितत्वाभावादपौरुषेयत्वमिति चेन्न।

१—अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, एवं आदित्य से सामवेद— इस क्रम से ईश्वरने तीनों देवताओं से तीन वेद उत्पन्न किए।

२—यज्ञसिद्धि के लिए ईश्वरने अग्नि–वायु–रवि से ऋग्–यजुः–सामलक्षण सनातन त्रयीब्रह्म का दोहन किया।

३—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम (शब्द) इन चारों प्रमाणों में से वेद आगम प्रमाण (शब्दप्रमाण) रूप है यह भी नहीं कहा जासकता। वेद का यह लक्षण मानलेने पर मनुस्मृति आदि इतर ग्रन्थों को भी वेद मानना पड़ेगा। क्योंकि यह भी शब्दप्रमाणकोटि में अन्तर्भूत है। "समयबलानुसार सम्यक्रूप से परोक्षानुभव का साधक प्रमाण ही आगम

अपात (चरणरहित) जीव हैं। ये चान्द्रमण्डल (चन्द्रिका) में ही निवास करते हैं। इन आठों में से ५ वां ऐन्द्रसर्ग ही "इन्द्रः सर्वा देवताः" [शत० ब्रा०] इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार देवसर्ग है। देवता ३३ हैं। इन में अग्नि, वायु, सूर्य्य ये तीन देवता ही मुख्य, एवं श्रेष्ठ है। यह इन के वर्गनाम [जातिनाम] है। व्यक्तिविशेष से इन नामों का कोई सम्बन्ध नहीं है। अग्निजातीय, वायव्यजातीय, सूर्य्यजातीय, अनन्त अग्नि—वायु—सूर्य्य देवता हैं। मनुष्यादि तिर्य्यक्सर्गवत् इन का भी समय समय पर जन्म—मृत्यु हुआ करता है। जिस प्रकार अस्मदादि वायव्यजीव वायु के आधार पर, मत्स्यमकरादि आप्यजीव पानी के आधार पर अपने चिदाभास को प्रतिष्ठित रखते हुए क्रमशः वायु–एवं पानी के आधार पर श्वास प्रश्वास व्यापार में समर्थ होते हैं, एवमेव अष्टविध ये सौम्यदेवता सोम के आधार पर ही अपने चिदाभास एवं श्वास निःश्वास व्यापार को प्रतिष्ठित रखने में समर्थ होते हैं। यही [सोमही] इन के जीवन का मूलाधार है। इन में जहां जन्मसे ही अणिमादि आठ सिद्धिएं नौ तुष्टिएं, रहती हैं, मनुष्य योगप्रक्रियाओं के द्वारा इन सिद्धि तुष्टियों को प्राप्त कर सकता है। जन्मसिद्ध इन सिद्धियों, एवं तुष्टियों के प्रभाव से ये देवता विशेषज्ञान, एवं विशेषशक्ति से युक्त है। इस ज्ञानोत्कर्ष, एवं शक्त्युत्कर्ष से ही ये अस्मदादि की अपेक्षा विशेष भग' सम्पत्ति से युक्त होते हुए 'ईश्वर के अवतार' कहलाते हैं।

हम जिन देवताओं की उपासना करते हैं वे यही अभिमानी देवता हैं। जिसे सर्वसाधारण अग्नि कहते हैं, जिस में कि अन्नादि का परिपाक होता है, वह "भूताग्नि" है। स्पर्शानुभूतवायु 'भौतिकवायु है। प्रत्यक्षदृष्ट सूर्य्यपिण्ड 'भौतिकसूर्य्य' है। प्रत्यक्षदृष्ट गंगातोय 'भौतिकजल' है। हम इन भौतिक अग्नि–वायु–सूर्य्य–जलादि की उपासना नहीं करते। अपितु इन में रहने वाले प्राणात्मक अग्नि–वायु सूर्य्य–गंगा–आदि अभिमानी देवताओं की उपासना करते हैं। अस्तु यह सब विषय प्रकृत से असम्बद्ध है। यहां हमें केवल अग्नि–वायु सूर्य्य इन तीन अभिमानी देवताओं की ओर ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करना है।

पूर्व के १८ वें मत में भौतिक अग्नि–वायु–सूर्य्यों को वेदत्रयी का कर्त्ता बतलाया था,

परन्तु प्रकृतमतानुसार इन तीनों के अभिमानी देवता ही त्रयीवेद के उत्पादक हैं। जड़पदार्थ से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। भौतिक देवता जड़ हैं, फलतः उन से वेदोत्पत्ति मानना असंगत है। चेतन, शरीरधारी अभिमानी इन तीनों प्राणात्मक देवताओं से ही वेद उत्पन्न हुए हैं। ईश्वर की विभूतिरूप, अतएव ईश्वरावतार अग्निनाम के जीवविशेष से ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद एवं सूर्य्य से सामवेद उत्पन्न हुआ है। इस मत के आधारपर निम्न लिखित श्रौत-स्मार्त्तवचन है।

१—त्रयो वेदा असृज्यन्त–अग्नेर्ऋग्वेदः, वायोर्यजुर्वेदः, आदित्यात् सामवेदः।
(ऐ० ब्रा०)।

२—अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥ (मनुः)

३-प्रत्यक्षानुमानोपमानागमेषु प्रमाणविशेषेषु-अन्तिमोवेद इति चेन्न। मन्वादिस्मृतिष्वतिव्याप्तेः। समयबलेन सम्यक्परोक्षानुभवसाधनमित्येतस्यागमलक्षणस्य तास्वपि सद्भावात्। अपौरुषेयत्वे सतीति विशेषणाददोष इति चेन्न। वेदस्यापि परमेश्वरनिर्म्मितत्वेन पौरुषेयत्वात्। शरीरधारिजीवपुरुषनिर्म्मितत्वाभावादपौरुषेयत्वमिति चेन्न।

१—अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, एवं आदित्य से सामवेद— इस क्रम से ईश्वरने तीनों देवताओं से तीन वेद उत्पन्न किए।

२—यज्ञसिद्धि के लिए ईश्वरने अग्नि-वायु-रवि से ऋग्-यजुः-सामलक्षण सनातन त्रयीब्रह्म का दोहन किया।

३—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम (शब्द) इन चारों प्रमाणों में से वेद आगम प्रमाण (शब्दप्रमाण) रूप है यह भी नहीं कहा जासकता। वेद का यह लक्षण मानलेने पर मनुस्मृति आदि इतर ग्रन्थों को भी वेद मानना पड़ेगा। क्योंकि यह भी शब्दप्रमाणकोटि में अन्तर्भूत है। "समयबलानुसार सम्यक्रूप से परोक्षानुभव का साधक प्रमाण ही आगम

"सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादि श्रुतिभिरीश्वरस्यापि शरीरत्वात्। कर्म्मफलरूपशरीरधारिजीव निर्म्मितत्वाभावमात्रेणापौरुषेयत्वं (वेदस्य) विवक्षितमिति चेन्न। जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात्। 'ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदोवायोः, सामवेद आदित्यात्" (ऐ० ब्रा० ५।३२।) इति श्रुतेः। ईश्वरस्य अग्न्यादि प्रेरकत्वेन निर्म्मातृत्वं द्रष्टव्यम्"

(श्रीसायणाचार्यविरचित-ऋग्वेदभाष्योपोद्घात)

४—ईश्वरावतार सूर्य्यनामक देवता ने वेद बनाए हैं। (२४ मत)

जिस प्रकार सम्पूर्ण देवताओं में (३३ देवताओं में) अग्नि–वायु–सूर्य्य ये तीन अभिमानी देवता श्रेष्ठ है, एवमेव इन तीनो में अभिमानी सूर्य्य देवता को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। द्युलोकस्थ भौतिकसूर्य्य के अभिमानीदेवता सूर्य्यदेवता से ही मध्यमस्थानीय [अन्तरिक्षा-

---

प्रमाण है" इस आगमलक्षण की व्याप्ति स्मार्त्तग्रन्थों में भी हो रही है। यदि कहो कि हम आगम का 'अपौरुषेय होता हुआ परोक्ष अनुभव का साधक प्रमाण ही आगम है। यह लक्षण करेंगे, तो इस से भी काम नहीं चल सकता। क्योंकि वेद को परमेश्वर पुरुषने बनाया है, इसलिए वेद पौरुषेय है। फलतः उक्तलक्षण अव्याप्त होजायगा। पुरुष का अर्थ "शरीरधारी जीवपुरुष" मानलेने से भी काम नहीं चल सकता। कारण "उसके हजार मस्तक हैं, हजार आंखे हैं" इत्यादि श्रुतिएं स्पष्ट ही ईश्वर को शरीरधारी बतला रहीं हैं। "कर्म्मफलरूप शरीरधारी जीवपुरुष" के ग्रहण से भी लक्षणसमन्वय नहीं होसकता। क्योंकि "जीवविशेष अग्नि–वायु–सूर्य्य से वेदों की उत्पत्ति होती है"। ईश्वर अग्न्यादि देवताओं को वेदनिर्म्माण के लिए प्रेरित करता है।

———:(०):———

नीय] वायु, एवं पृथिवीस्थानीय अग्नि का जन्म हुआ है—*। इस प्रकार वायु, अग्नि के स्वरूपसमर्पक सूर्यदेवने ही तीनों वेद [ईश्वरेच्छा से] उत्पन्न किए हैं। इस मत का समर्थक निम्न लिखित वचन है—

१—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमंयन्ति मतयो वावशानाः ॥
वह्निरादित्यो भवति। स तिस्रो वाचः प्रेरयति-ऋचो, यजूंपि, सामानि।
ऋतस्यादित्यस्य कर्म्माणि ब्रह्मणो मतानि। एष एवैतत् सर्वमक्षरम्।
[या० नि० परिशिष्ट १.४।]।

———○:○———

१—वह वह्नि (सावित्राग्निरूप आदित्य) ऋत (परमेष्ठी) ब्रह्म की मनोमयी (सोममयी) विश्वधात्री (विश्व को धारण करने वाली) वाक् को (आम्भृणीवाक् को), एवं ऋग् यजुःसामात्मिका त्रयीवाक् को प्रेरित करता है। जिस प्रकार गोपति (ग्वाले) को ढूंढती हुई गाएं उस की ओर अनुगत हो जातीं हैं, एवमेव कामनामयी बुद्धिरूपा सौररश्मिएं (रश्मिरूपगाएं) गोपतिस्थानीय (पारमेष्ट्य) सोम की ओर अनुगत रहतीं हैं। वह्नि इस मन्त्र में आदित्य है। ऋक्–यजुः–सामरूप तीनों वाक्प्रपञ्चों को वह वह्निरूप आदित्य ही प्रेरित करता है। ……… + + + +।

———○———

* भवद् भूतं भविष्यच्च जङ्गमं स्थावरं च यत्। अस्यैके सूर्य्यमेवेदं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥ १ ॥
कश्चैष हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति। देवान् यथायथं सर्वान्निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ॥ २ ॥
दिव्यो दिव्यप्रसूत्रो द्यावभ्रो मध्य (म) पार्थिवो। ……………………… ॥ ३ ॥
बृहद्देवता

५—ईश्वरावतार सर्वहुत यज्ञपुरुष ने वेद बनाए हैं। (२५ मत)।

यज्ञपदार्थ सूर्य्य–चन्द्र–पृथिवी आदि की तरह आधिभौतिक जड़पदार्थ है। इस यज्ञ के अभिमानी देवता भगवान् विष्णु हैं, अतएव "यज्ञो वै विष्णुः" "विष्णुर्वै यज्ञः" इत्यादि रूप से दोनों को एक वस्तु मानलिया जाता है। यह विष्णुदेवता यजनीय, दूसरे शब्दों में पूजाई होने से भी "यज्ञ" नाम से व्यवहृत किए जाते हैं। यज्ञमूर्त्ति इन्हीं विष्णुभगवान् से सम्पूर्ण वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसा कि निम्न लिखित मन्त्र से स्पष्ट है—

१—तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (यजुः सं० ३१)।

उक्त पाचों ही मतों का—"वेद का मुख्य कर्त्ता स्वयं ईश्वर नहीं, अपितु ईश्वर का अवतार है। अवतारकृत शब्दराशिरूप यह वेद पौरुषेय है, अनित्य है, प्रवाहनित्य है" इस प्राचीनन्यायमत का समावेश है। इसी आधार पर हमने इन पाचों मतों का उक्त प्राचीनन्यायमत में अन्तर्भाव माना है।

३—वेद ईश्वरावतारकृत हैं, पौरुषेय हैं, प्रवाहनित्य हैं। (प्राचीनन्यायमत)

१—(२१)→ईश्वरावतार ब्रह्मा ने वेद का निर्म्माण किया है।
२—(२२)→ईश्वरावतार मत्स्यभगवान् ने वेद बनाया है।
३—(२३)→ईश्वरावतार अग्नि–वायु–सूर्य्य ने वेदत्रयी बनाई है।
४—(२४)→ईश्वरावतार सूर्य्य ने वेद बनाया है।
५—(२५)→ईश्वरावतार सर्वहुत यज्ञपुरुषने वेद बनाया है।

इति-प्राचीनन्यायमतप्रदर्शनम्

३

१—उस सर्वहुत नाम के यज्ञपुरुष से ऋक्, साम छन्द यजुः उत्पन्न हुए हैं।

नीय] वायु, एवं पृथिवीस्थानीय अग्नि का जन्म हुआ है—*। इस प्रकार वायु, अग्नि के स्वरूपसमर्पक सूर्य्यदेवने ही तीनों वेद [ईश्वरेच्छा से] उत्पन्न किए हैं। इस मत का समर्थक निम्न लिखित वचन है—

१—तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमंयन्ति मतयो वावशानाः॥
वह्निरादित्यो भवति। स तिस्रो वाचः प्रेरयति-ऋचो, यजूंषि, सामानि।
ऋतस्यादित्यस्य कर्म्माणि ब्रह्मणो मतानि। एष एवैतत् सर्वमक्षरम्।
[या० नि० परिशिष्ट १४।]।

———:०:———

१—वह वह्नि (सावित्राग्निरूप आदित्य) ऋत (परमेष्ठी) ब्रह्म की मनोमयी (सोममयी) विश्वधात्री (विश्व को धारण करने वाली) वाक् को (आम्भृणीवाक् को), एवं ऋग् यजुःसामात्मिका त्रयीवाक् को प्रेरित करता है। जिस प्रकार गोपति (ग्वाले) को ढूंढतीं हुई गाएं उस की ओर अनुगत हो जातीं हैं, एवमेव कामनामयी बुद्धिरूपा सौररश्मिएं (रश्मिरूपगाएं) गोपतिस्थानीय (पारमेष्ठ्य) सोम की ओर अनुगत रहतीं हैं। वह्नि इस मन्त्र में आदित्य है। ऋक्-यजुः-सामरूप तीनों वाक्प्रपञ्चों को वह वह्निरूप आदित्य ही प्रेरित करता है। .... + + + + ।

———०———

* भवद् भूतं भविष्यच्च जङ्गमं स्थावरं च यत्। अस्यैके सूर्य्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः॥ १॥
एतैव हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति। देवान् यथायथं सर्वान्निवेश्य स्वेषु रश्मिषु॥ २॥
दिव्यो दिव्यप्रसूत्रो द्वावग्नी मध्य (म) पार्थिवौ। .... ॥ ३॥
बृहद्देवता

५—ईश्वरावतार सर्वहुत यज्ञपुरुष ने वेद बनाए हैं। (२५ मत)।

यज्ञपदार्थ सूर्य्य–चन्द्र–पृथिवी आदि की तरह आधिभौतिक जड़पदार्थ है। इस यज्ञ के अभिमानी देवता भगवान् विष्णु हैं, अतएव "यज्ञो वै विष्णुः" "विष्णुर्वै यज्ञः" इत्यादि रूप से दोनों को एक वस्तु मानलिया जाता है। यह विष्णुदेवता यजनीय, दूसरे शब्दों में पूजाई होने से भी "यज्ञ" नाम से व्यवहृत किए जाते हैं। यज्ञमूर्त्ति इन्हीं विष्णुभगवान् से सम्पूर्ण वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसा कि निम्न लिखित मन्त्र से स्पष्ट है—

१—तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (यजुः स० ३१)।

उक्त पाचों ही मतो का—"वेद का मुख्य कर्त्ता स्वयं ईश्वर नहीं, अपितु ईश्वर का अवतार है। अवतारकृत शब्दराशिरूप यह वेद पौरुषेय है, अनित्य है, प्रवाहनित्य है" इस प्राचीनन्यायमत का समावेश है। इसी आधार पर हमने इन पाचों मतों का उक्त प्राचीनन्यायमत में अन्तर्भाव माना है।

३—वेद ईश्वरावतारकृत है, पौरुषेय हैं, प्रवाहनित्य है। (प्राचीनन्यायमत)

१—(२१)→ईश्वरावतार ब्रह्मा ने वेद का निर्म्माण किया है।
२—(२२)→ईश्वरावतार मत्स्यभगवान् ने वेद बनाया है।
३—(२३)→ईश्वरावतार अग्नि–वायु–सूर्य्य ने वेदत्रयी बनाई है।
४—(२४)→ईश्वरावतार सूर्य्य ने वेद बनाया है।
५—(२५)→ईश्वरावतार सर्वहुत यज्ञपुरुषने वेद बनाया है।

इति-प्राचीनन्यायमतप्रदर्शनम्

३

१—उस सर्वहुत नाम के यज्ञपुरुष से ऋक्, साम छन्द यजु, उत्पन्न हुए हैं।

१-सप्त-मतान्तरमतयुक्तं—

सांख्यदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शनम्

१-सांख्यदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शन

अब क्रमप्राप्त सांख्यमत का विचार कीजिए। "प्रधाना" नाम से प्रसिद्ध प्रकृति के आधार पर प्रतिष्ठित यह दर्शन "प्राधानिकदर्शन" नाम से प्रसिद्ध है। इस के मतानुसार वेद अनित्य है, अपौरुषेय है। जिस प्रकार सूर्य्य, पृथिवी, चन्द्रमा, वृक्षाङ्कुर, पर्वत आदि प्राकृतिक पदार्थ अपने आप समय पर उत्पन्न होजाते हैं, उसी प्रकार से (प्राकृतिक नियमों के अनुसार) वेद भी समय समय पर अपने आप उत्पन्न हुआ करते हैं। प्राकृतिक पदार्थों की तरह वेद भी प्रावाहिक है, उत्पत्ति विनाशशाली है, अतएव हम इसे सर्वथा अनित्य कहने के लिए तय्यार हैं। समय समय पर उत्पन्न होने वाले, एवं समय समय पर नष्ट होने वाले वेद कभी नित्यसिद्ध नहीं माने जासकते। वेदों की अनित्यता प्रकृतिसिद्ध है, परन्तु साथ ही में हम इस के बनाने वाले किसी पुरुषविशेष को नहीं पाते, अतः कहेंगे हम इसे अपौरुषेय ही। निम्न लिखित प्राधानिक सूत्र उक्त मत का ही समर्थन करते हैं।

१—"न नित्यत्वं, वेदाना कार्यत्वश्रुतेः" (सां० ५।४५।)।

२—"न पौरुषेयत्व, तत् कर्त्तुः पुरुषस्याभावात्" (५।४६।)।

३—"मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात्" (५।४७)।

४—"नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वं, अङ्कुरादिवत्" (५।४८।)।

५—"तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादि प्रसक्तिः" (५।४६।)।

६—"यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम्" (५।५०।)।

"स तपोऽतप्यत,तस्मात् तपस्तेपानात् त्रयो वेदा अजायन्त" [प्रजापतिने तप किया। इस तप से तीन वेद उत्पन्न हुए] इत्यादि श्रुतियोंनें स्पष्ट शब्दों में वेद की कार्य्यता सिद्ध की है। वेद सूर्य्यचन्द्रादिवत् उत्पन्न होने वाला कार्य विशेष है। कार्य अव्यक्त-व्यक्त-अव्यक्तभावापन्न होने से सर्वथा अनित्य है। ऐसी दशा में कार्यरूप इन वेदों को हम अवश्य ही अनित्य मानने के लिए तय्यार हैं॥ १॥

इतर कार्य्यों की तरह कार्यकोटि में प्रविष्ट होते हुए वेद यदि अनित्य हैं तो क्या इन्हें पौरुषेय माना जासकता है ? इस प्रश्न का निराकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि, वेद पौरुषेय नहीं है। कारण, इसके निर्म्माता पुरुष का हम सर्वथा अभाव पाते हैं। सांख्यशास्त्र प्राधानिकशास्त्र है। वह ईश्वर नाम के पुरुषविशेष की सत्ता अवश्य मानता है, परन्तु उसका विश्व से वह कोई सम्बन्ध नहीं मानता। प्रकृति की व्यक्तावस्था ही सांख्यमतानुसार सर्ग है, व्यक्त की अव्यक्तावस्था ही प्रलय है। इसी प्रकृति के कारण उक्तदर्शन "प्राधानिक" नाम से भी प्रसिद्ध है। ईश्वरपुरुष कार्य्यकारणातीत बनता हुआ सर्वथा निर्लेप है। इसी अभिप्राय से—"ईश्वरासिद्धेः" (सा०सू०) यह कहा गया है। जब ईश्वरपुरुष का किसी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, तो ऐसी दशा में हम उसे वेद का कर्त्ता क्योंकर मान सकते हैं। फलतः इन अनित्य, किंवा प्रवाहनित्य प्राकृतिक वेदों का अपौरुषेयत्व सिद्ध होजाता है। २।

ईश्वरपुरुष कर्त्ता न सही, सुप्रसिद्ध पुरुष (महर्षि आदि) को ही क्यों न वेद का कर्त्ता मान लिया जाय ? इस विप्रतिपत्ति का निराकरण करते हुए आगे जाकर सूत्रकार कहते है कि, संसार में 'मुक्त' 'अमुक्त' भेद से पुरुषवर्ग दो भागों में विभक्त है। मुक्तात्मा पुरुष यद्यपि सर्वज्ञ होने से वेदरचना में समर्थ है, तथापि सर्वथा असंग होने से ईश्वरपुरुषकोटि में आता हुआ वह वेदनिर्म्माण की इच्छा से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इधर अमुक्तात्मा असर्वज्ञ, अतएव भ्रान्त बनता हुआ वेदरचना में अयोग्य है। इस प्रकार मुक्त-अमुक्त दोनोंही वेदरचना सम्बन्ध में असंग-असर्वज्ञ क्रमशः इन दोनों कारणों से अयोग्य ठहर जाते हैं। फलतः वेदों का अपौरुषेयत्व अक्षुण्ण रह जाता है। ३ ॥

यदि वेद को अपौरुषेय माना जायगा तो इसे नित्य भी मानना पड़ेगा ? इस आपत्ति का निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं कि, यह कोई नियम नहीं है कि, जो अपौरुषेय हो वह नित्य ही हो। अङ्कुर, लता, वृक्ष आदि का कोई कर्त्ता नहीं है। ये अपने आप प्रकृति से उत्पन्न होनेवाले अपौरुषेय पदार्थ हैं। फिर भी ये अनित्य है। तथैव अपौरुषेय वेद भी अनित्यही है। ४ ॥

"क्षित्यङ्कुरादि का कर्त्ता तो कोई अवश्य है, परन्तु वह हमें चर्मचक्षु से दिखलाई नहीं देता। वह हमारे लिए अदृश्य है। अदृश्यपुरुष से उत्पन्न, अतएव पौरुषेय अङ्कुरादि अनित्य हैं। ऐसी स्थिति में वेद की अनित्यता में आप अङ्कुरादि दृष्टान्त को उपस्थित नहीं कर सकते"? यदि कोई यह आक्षेप करें, तो इस का समाधान यही है कि, यदि अङ्कुरादि का कोई कर्त्ता माना जायगा, तो 'दृष्टबाधदोष' उपस्थित होगा। "जो जो पौरुषेय (पुरुष से उत्पन्न) हैं, वे वे शरीरजन्य हैं" यह सर्वसिद्ध व्याप्ति है। ऐसी अवस्था में यदि अङ्कुरादि पौरुषेय होते, तो इन का कर्त्ता कोई शरीरी अवश्य ही उपलब्ध होता। परन्तु उपलब्ध नहीं होता अतः हम वेदवत् अङ्कुरादि को अपौरुषेय ही मानने के लिए तय्यार हैं ॥ ५ ॥

वादी पुनः प्रश्नाक्षेप करता है कि, "आदिपुरुष के मुख से वेद निकले हैं, यह सर्वसम्मत (श्रुतिसम्मत) पक्ष है। ऐसी स्थिति में पुरुषनिःश्वासरूप इन वेदों को हम अवश्य ही पौरुषेय कह सकते हैं।" इस आक्षेप का निराकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि, पौरुषेयत्व का—"पुरुषोच्चरितमात्रत्वं पौरुषेयत्वम्" यह लक्षण नहीं है। पुरुष के मुख से निकला है, इसी लिए इसे पौरुषेय नहीं माना जासकता। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि, सुषुप्तिदशा में पुरुष (जीवात्मा, सर्वथा निर्व्यापार है। उस अवस्था में श्वास-प्रश्वास अविकलरूप से निकलते रहते हैं। ये व्यापार सर्वथा अपौरुषेय हैं। इन्हें कोई पौरुषेय नहीं कहता। वस्तुतः पौरुषेय का—"जिस पदार्थ के देखते ही—'यह पदार्थ अमुक व्यक्ति द्वारा बड़ी बुद्धिमानी से बनाया गया है"—यह भाव उत्पन्न होजाय, वही पौरुषेय है" यह लक्षण है। वेद अबुद्धिपूर्वक है। घटपटादि पदार्थ ही कृतबुद्धिविषयक बनते हुए पौरुषेय हैं। वेद तो आदिपुरुष के मुख से विना प्रयास के अपने आप ही निःश्वासवत् निकला हुआ है। ऐसी स्थिति में इसे कथमपि पौरुषेय नहीं कहा जासकता ॥ ६ ॥

इस मत के अनुसार वेदों का ईश्वर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वेद प्राकृतिक हैं। इसी सांख्यमत के आधार पर सात मतान्तर मत और होजाते हैं। संक्षेप से इन का दिग्दर्शन करादिया जाता है।

१–प्रकृतिसिद्ध अग्नि-वायु-सूर्य्य इन तीनों भौतिक पदार्थों से तीनों वेद अभिन्न हैं।(२६मत)

नव्यन्यायमतानुसार अग्नि-वायु-सूर्य्य इन तीनों भौतिक पदार्थों से क्रमशः तीनों वेदों की उत्पत्ति बतलाई गई थी (देखिए न०य०न्या० ५ मत , एवं **प्राचीनन्यायमतानुसार** ईश्वरावतार इन तीनों के अभिमानी देवताओं से क्रमशः तीनों वेदों की उत्पत्ति बतलाई गई थी (देखिए प्रा०न्या०म० ३ मत) इन दोनों मतों से सर्वथा विलक्षण एक मत यह भी है कि न इन भौतिक अग्न्यादि पदार्थों से वेद उत्पन्न हुए, एवं न इन के अभिमानी देवताओं से वेद उत्पन्न हुए। अपितु इन तीनों भौतिक पदार्थों का ही नाम वेद है। दूसरे शब्दों में इन में और वेदों में जन्य-जनकभाव सम्बन्ध नहीं है, अपितु दोनों में अभिन्नता है। अग्नि ही ऋग्वेद है. इस नाम से प्रसिद्ध वायु ही यजुर्वेद है। आदित्य ही सामवेद है। कारण स्पष्ट है। जब हम तीनों वेदों को उठाकर देखते हैं तो उन में क्रमशः हमें ऋग्वेद में विभूतियुक्त अग्नि का, यजुर्वेद में विभूतियुक्त वायु का, एवं सामवेद में विभूतियुक्त सामवेद का ही निरूपण मिलता है। जिस प्रकार प्रकृतिसिद्ध व्याकरणादि विद्याओं के प्रतिपादक शास्त्र व्याकरणादि शब्दों से व्यवहृत होते हैं, एवमेव अग्नि वायु सूर्य्यरूप तीनों वेदों के प्रतिपादक वेदग्रन्थ भी इन्हीं शब्दों से व्यवहृत देखे जाते हैं। अथर्ववेद ने स्पष्टशब्दों में वेद एवं देवताओं का अभेद बतलाते हुए इस मत का समर्थन किया है, जैसा कि निम्न लिखित वचन से स्पष्ट होजाता है–

> १—येऽर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेद विद्वांसमभितो वदन्ति ।
> आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥
> (अथर्वसं० १०।८।१७)।

१—जो (अर्वाङ्) मनुष्य प्रथम (अर्वाक्) कोटि के ऋग्वेद के विद्वान् के सम्बन्ध में, मध्यम कोटि के यजुर्वेद के विद्वान् के विषय में, एवं तृतीय (पुराण) कोटि के सामवेद के विद्वान् के सम्बन्ध में निन्दापरक वचनों का प्रयोग करते हैं, दूसरे शब्दों में जो इतनी वेदवेत्ता

१–प्रकृतिसिद्ध अग्नि-वायु-सूर्य्य इन तीनों भौतिक पदार्थों से तीनों वेद अभिन्न हैं। (२६मत)

नव्यन्यायमतानुसार अग्नि-वायु-सूर्य्य इन तीनों भौतिक पदार्थों से क्रमशः तीनों वेदों की उत्पत्ति बतलाई गई थी (देखिए नव्य०न्या० ५ मत, एवं प्राचीनन्यायमतानुसार ईश्वरावतार इन तीनों के अभिमानी देवताओं से क्रमशः तीनों वेदों की उत्पत्ति बतलाई गई थी (देखिए प्रा०न्या०प्र० ३ मत) इन दोनों मतों से सर्वथा विलक्षण एक मत यह भी है कि न इन भौतिक आग्न्यादि पदार्थों से वेद उत्पन्न हुए, एवं न इन के अभिमानी देवताओं से वेद उत्पन्न हुए। अपितु इन तीनों भौतिक पदार्थों का ही नाम वेद है। दूसरे शब्दों में इन में और वेदों में जन्य-जनकभाव सम्बन्ध नहीं है, अपितु दोनों में अभिन्नता है। अग्नि ही ऋग्वेद है इस नाम से प्रसिद्ध वायु ही यजुर्वेद है। आदित्य ही सामवेद है। कारण स्पष्ट है। जब हम तीनों वेदों को उठाकर देखते हैं तो उन में क्रमशः हमें ऋग्वेद में विभूतियुक्त अग्नि का, यजुर्वेद में विभूतियुक्त वायु का, एवं सामवेद में विभूतियुक्त सामवेद का ही निरूपण मिलता है। जिस प्रकार प्रकृतिसिद्ध व्याकरणादि विद्याओं के प्रतिपादक शास्त्र व्याकरणादि शब्दों से व्यवहृत होते हैं, एवमेव अग्नि-वायु-सूर्यरूप तीनों वेदों के प्रतिपादक वेदग्रन्थ भी इन्हीं शब्दों से व्यवहृत देखे जाते हैं। अथर्ववेद ने स्पष्टशब्दों में वेद एवं देवताओं का अभेद बतलाते हुए इस मत का समर्थन किया है, जैसा कि निम्न लिखित वचन से स्पष्ट होजाता है–

१—येऽर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्॥
(अथर्वसं० १०।८।१७)।

———०:०:०———

१—जो (अर्वाक्) मनुष्य प्रथम (अर्वाक्) कोटि के ऋग्वेद के विद्वान् के सम्बन्ध में, मध्यम कोटि के यजुर्वेद के विद्वान् के विषय में, एवं तृतीय (पुराण) कोटि के सामवेद के विद्वान् के सम्बन्ध में निन्दात्मक वचनों का प्रयोग करते हैं, दूसरे शब्दों में जो इतनी वेदवेत्ता

४—सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता—ऋचो, यजूंषि, सामानि । × × × ।
सा या सा वागसौ स आदित्यः । × × × । मण्डलमेवर्चः । अर्चिः
सामानि । पुरुषो यजूंषि । (शत० १०) ।

— ❧ —

३—प्रकृतिसिद्ध अग्नीषोमात्मक भौतिक यज्ञ तीनों वेदों से अभिन्न है । (२८ मत)

नव्यन्यायानुसार भौतिकयज्ञ से तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं—(दे०न०न्या० ७ मत) । प्राचीनन्यायानुसार भौतिकयज्ञ के अभिमानी देवता, ईश्वरावतार यज्ञपुरुष से तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं—(दे०प्रा०न्या० ५ मत) । परन्तु प्रकृतमतानुसार वेद और भौतिकयज्ञ अभिन्न हैं । यज्ञ ही वेद है, वेद ही यज्ञ है । दोनों में जन्य–जनकभाव सम्बन्ध नहीं है, अपितु अभेद सम्बन्ध है । सम्पूर्ण वेद में यज्ञ ही का तो प्रतिपादन हुआ है । यज्ञ से अतिरिक्त वेद में और है क्या । हौत्र-औद्गात्र-आध्वर्यव-क्रिया शस्त्र–स्तोत्र–ग्रह इन कर्मों की समष्टि का ही नाम यज्ञ है । ऋग्वेद से होता द्वारा ऋङ्मय हौत्र, एवं शस्त्र कर्म होता है । यजुर्वेद से अध्वर्यु-द्वारा यजुर्मय आध्वर्यव, एवं ग्रह कर्म संपन्न होता है । सामवेद से उद्गाता नाम के ऋत्विक् द्वारा औद्गात्र, एवं–स्तोत्र कर्म संपन्न होते हैं । इस प्रकार तीनों वेद एकमात्र यज्ञकर्म का

शास्त्रानभिज्ञ मनुष्य भी इस सूर्य्य के लिए–' अरे ! यह तो त्रयी विद्या तप रही है" यह कहते थे । वे वाङ्मय सूर्य को किंवा सूर्य्यरूपा 'पश्यन्ती' नाम की वाक् को देखकर ही ऐसा कहते थे । अथवा सूर्य्यरूपा स्वयं पश्यन्ती वाक् ही सर्वसाधारण को कहती है कि, देखो ! मैं त्रयीविद्यामयी हूं ।

४— सो यह वाक् ऋक्, यजुः, साम भेद से तीन भागों में विभक्त है । मण्डल ही ऋचाएं हैं । अर्चि साम है । पुरुष यजु है । सो यह वाक् यही साक्षात् सूर्य्य है ।

——:(०):——

२—आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति । तत्र ता ऋचः, तदृचां मण्डलम् । स ऋचां लोकः । अथ य एष एतस्मिन् मण्डलेऽर्चि-र्दीप्यते, तानि सामानि । स साम्नां लोकः । अथ य एष एतस्मि-न्मण्डलेऽर्चिषि पुरुषः, तानि यजूंषि । स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति, य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः ।

(नारायणोपनिषत्) ।

३—यदेतन्मण्डलं तपति, तन्महदुक्थम् । ता ऋचः । स ऋचां लोकः । अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते, तन्महाव्रतम् । तानि सामानि । स साम्नां लोकः । अथ य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः, सोऽग्निः । तानि यजूंषि । स यजुषां लोकः । सैषा त्रय्येव विद्या तपति । तद्धैतद् विद्वांस आहुः-त्रयी वा एषा विद्या तपतीति । वाग्-हैव तत् पश्यन्ती वदति । (शत० १०।५।२)।

२—यह आदित्यरूप मण्डल तप रहा है । इस (सौरमण्डल) में जो ऋचाएं हैं, वह ऋचाओं का मण्डल है । वह ऋचाओं का लोक है । जोकि इस मण्डल में अर्चि (प्रकाश) दीप्त हो रही है, वे साम हैं । वह सामों का लोक है । एवं जोकि इस मण्डल में अर्चिभाग (केन्द्र) में पुरुष है, वे यजु हैं । वह यजुओं का लोक है । इस प्रकार यह त्रयी विद्या ही तप रही है, जोकि इस आदित्य के केन्द्र में हिरण्मयपुरुष (तपरहा) है ।

३—जो कि यह मण्डल (सूर्य्यबिम्ब) तप रहा है, वह 'महदुक्थ' किंवा 'महोक्थ' है । वे ऋचाएं हैं । वह ऋचाओं का लोक है । जोकि यह अर्चिमण्डल (प्रकाशमण्डल) दीप्त हो रहा है, वह महाव्रत है । वे साम हैं । वह सामों का लोक है । एवं जोकि इस मण्डल (बिम्ब के केन्द्र) में जो पुरुष है, वह अग्नि है । वे यजु हैं । वह यजुओं का लोक है । इस प्रकार यह त्रयी विद्या ही (सूर्य्यरूप से) तप रही है । (उस युग के) साधारण,

४—सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता—ऋचो, यजूंषि, सामानि । × × × ।
सा या सा वागसौ स आदित्यः । × × × । मण्डलमेवर्चः । अर्चिः
सामानि । पुरुषो यजूंषि । (शत० १०) ।

— ❧ —

२—प्रकृतिसिद्ध अग्नीषोमात्मक भौतिक यज्ञ तीनों वेदों से अभिन्न है। (२८ मत)

नव्यन्यायानुसार भौतिक यज्ञ से तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं—(दे०न०न्या० ७ मत)। प्राचीनन्यायानुसार भौतिकयज्ञ के अभिमानी देवता, ईश्वरावतार यज्ञपुरुष से तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं—(दे०प्रा०न्या० ५ मत)। परन्तु प्रकृतमतानुसार वेद और भौतिकयज्ञ अभिन्न हैं। यज्ञ ही वेद है, वेद ही यज्ञ है। दोनों में जन्य-जनकभाव सम्बन्ध नहीं है, अपितु अभेद सम्बन्ध है। सम्पूर्ण वेद में यज्ञ ही का तो प्रतिपादन हुआ है। यज्ञ से अतिरिक्त वेद में और है क्या। हौत्र-औद्गात्र-आध्वर्यव-किंवा शस्त्र-स्तोत्र-ग्रह इन कर्म्मों की समष्टि का ही नाम यज्ञ है। ऋग्वेद से होता द्वारा ऋङ्मय हौत्र, एवं शस्त्र कर्म्म होता है। यजुर्वेद से अध्वर्यु-द्वारा यजुर्मय आध्वर्यव, एवं ग्रह कर्म्म सपन्न होता है। सामवेद से उद्गाता नाम के ऋत्विक् द्वारा औद्गात्र, एवं—स्तोत्र कर्म्म सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार तीनों वेद एकमात्र यज्ञकर्म्म का

शास्त्रानभिज्ञ मनुष्य भी इस सूर्य्य के लिए—' अरे ! यह तो त्रयी विद्या तप रही है" यह कहते थे। वे वाङ्मय सूर्य्य को किंवा सूर्य्यरूपा 'पश्यन्ती' नाम की वाक् को देखकर ही ऐसा कहते थे। अथवा सूर्य्यरूपा स्वयं पश्यन्ती वाक् ही सर्वसाधारण को कहती है कि, देखो ! मैं त्रयीविद्यामयी हूं।

४—सो यह वाक् ऋक्, यजु', साम भेद से तीन भागों में विभक्त है। मण्डल ही ऋचाएं हैं। अर्चि साम है। पुरुष यजु है। सो यह वाक् यही साक्षात् सूर्य्य है।

———:(०):———

स्वरूप सम्पादन करते हुए वास्तव में यज्ञात्मक ही हैं। यही सिद्धान्त निम्न लिखित वचनों से प्रतिध्वनित हो रहा है—

१—ब्रह्म वै यज्ञः।
२—सैषा त्रयीविद्या यज्ञः। (शत० १।१।४।३)।
३—एतावान् वै सर्वो यज्ञो यावानेष वेदः। (शत० ५।५।२।१)।
४—वाग्वा यज्ञः (ऐ०ब्रा० ५।२४।)।
५—वाग्विवृताश्च वेदाः (मुण्डक)।

—:०:—

४—प्रकृतिसिद्ध कालचक्र से वेद उत्पन्न हुआ है। (२९ मत)

प्रजापति से आरम्भकर स्थावरजङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वचक्र एकमात्र 'कालचक्र, की गति से ही उत्पन्न हुआ है। सब का प्रभव-प्रतिष्ठा-परायण कालचक्र ही है। इसी प्राकृतिक कालचक्र के अनुसार वेद भी उत्पन्न हुआ है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित वचन हैं—

१—सप्तचक्रा वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतन्त्वक्षः।
स इमा विश्वा भुवनान्यर्वाङ् कालः स ईयते प्रथमोऽनुदेवः॥ १॥

१—ब्रह्म [वाङ्मयवेदब्रह्म] ही यज्ञ है।
२—ऋग्-यजुः-सामात्मिका त्रयीविद्या यज्ञ है।
३—इतना ही यह सम्पूर्ण यज्ञ है, जितना कि यह सम्पूर्ण वेद है।
४—वाक् [वेदमयीवाक्] ही यज्ञ है।
५—वाक् का विवर्त्तभाव [फैलाव] ही वेद है।

—:०:—

१—यह (संवत्सररूप) कालचक्र सात चक्रों (सात अहोरात्र वृत्तों) का वहन

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ।
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्त्ति परमेष्ठिनम् ।
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ॥ ३ ॥
कालोह भव्य भूतं च मन्त्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ४ ॥

५—सृष्टि के आरम्भ में यह वेद प्रकृति के अनुसार स्वयं उत्पन्न हुआ है। [१०]

सृष्टि के आदिकाल में [आरम्भ में] वेद स्वयमेव प्रादुर्भूत हुए हैं। जिस वेदराशि में मनुष्यबुद्धि से सर्वथा परे की अलौकिक विद्याओं का निरूपण हुआ है, उस अलौकिक वेदशास्त्र का निर्म्माण मनुष्य करे, यह कथमपि सम्भव नहीं है। समुद्र-पर्वतादि पदार्थों का निर्म्माण

करता है इस कालचक्र (रूप संवत्सर) के (सात अहोरात्र वृत्तों के कारण) सात केन्द्र हैं। अमृतभावापन्न सूर्यकेन्द्र इस चक्र का अक्ष (धुरा) है। ऐसा यह कालचक्र इन सम्पूर्ण [सातों] भुवनों को अपने अवाङ्प्राण से [मर्त्यप्राण से] प्रेरित करता है। यह कालचक्र सब का आदि-देव है। १। काल सबका ईश्वर है। स्वयम्भू प्रजापति का भी यह पिता (उत्पादक) है। इसी से सब कामनाओं का उदय हुआ है। इसी से कामनापूर्वक सब कुछ उत्पन्न हुआ है। उत्पन्न वह सारा प्रपञ्च इसी कालचक्र पर प्रतिष्ठित है। २। काल ही ब्रह्म [स्वयम्भू] बनकर परमेष्ठी को धारण करता है। कालने प्रजा उत्पन्न की है। कालने ही सर्वप्रथम प्रजापति को उत्पन्न किया है। ३। कालने ही भूत भविष्यत् का निर्म्माण किया है। कालने ही सृष्टि के आरम्भ में वेदमन्त्र उत्पन्न किए हैं। काल से ही ऋचाएं उत्पन्न हुई हैं। काल से ही यजु उत्पन्न हुआ है।

जैसे मनुष्यशक्ति के बाहर की बात है, एवमेव प्राकृतिक, सत्यसंहित वेद भी असत्यसंहित मनुष्य की असत्यकृति से एकान्ततः बहिर्भूत है। "ईश्वरने वेदों को बनाया होगा"-यह कहना भी सुसङ्गत प्रतीत नहीं होता। कारण स्पष्ट है। पहिले तो ईश्वर की सत्ता मानना ही कठिन है- [ईश्वरासिद्ध०] शब्दबल के आधार पर यथाकथंचित् यदि ईश्वर को सत्ता मान भी ली जाती है, तब भी उसे क्लेश-कर्म्म-विपाक-आशयादि से सर्वथा असंस्पृष्ट ही मानना पड़ेगा। न उस में क्रिया है, एवं न प्रवृत्तियों के मूलकारण राग-द्वेष का ही उस में समावेश है। वह तो [विशिष्टाद्वैतसम्प्रदाय के अनुसार] नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त, निष्क्रिय, निरञ्जन, अनन्तकल्याणगुणाकर है। न वह विश्व का कर्त्ता माना जासकता, न उसे विश्वावयवभूत वेद का कर्त्ता कहा जासकता। विश्व के यच्चयावत् पदार्थ नित्य-प्रकृतिजात-पुरुषजात भेद से तीन भागों में विभक्त है। आकाश-परमाणु आदि पदार्थ नित्यजात हैं, नित्यसिद्ध हैं। ये किसी से उत्पन्न नहीं हुए हैं, अपितु स्वयंसिद्ध है। सूर्य्य-चन्द्रमा-पृथिवी-ग्रह-नक्षत्रादि पदार्थ प्रकृतिजात हैं। इन्हें ही प्राकृतिक कहा जाता है। एवं गृह-वस्त्र-पुस्तक-घट आदि पदार्थ पुरुषजात हैं। ये पदार्थ पौरुषेय कहलाते है।

उक्त विभाग के अनुसार किसी ने वेदपदार्थ का नित्यसिद्ध पदार्थों में अन्तर्भाव माना है, किसी ने प्रकृतिजात में, एवं किसी ने पुरुषजात में इन का समावेश माना है। ये विभाग केवल व्यावहारिक हैं। यदि व्यापकदृष्टि से विचार किया जाता है तो सर्वसाक्षी, निराकार, चिद्घन पुरुष (ब्रह्म), एवं तत्सम्बन्धिनी प्रकृति देवी के अतिरिक्त और कुछ भी नित्य नहीं है—"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि"। कोई पदार्थ क्षण, किंवा त्रुटिकालपूर्व, एवं कोई परार्ध्यकालपूर्व उत्पन्न हुआ है। उत्पन्न सब हैं। इसी प्रकार पुरुषजात विभाग का भी कोई मूल्य नहीं है। जिन पुरुषो (मनुष्यों) से गृह-वस्त्रादि पौरुषेय पदार्थों का निर्म्माण माना जाता है, वे पुरुष भी प्रकृतिपरतन्त्र हैं। उन का जन्म, मृत्यु, स्वरूपसंघटन, स्वभाव, मनोवृत्ति, कर्म्मसामर्थ्य, ज्ञानशक्ति, कहां तक गिनावें स्वयं उन की स्वरूपसत्ता की बागडोर भी प्रकृतिदेवी के ही हाथ में है— "प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति"।

ऐसी अवस्था में हम कह सकते हैं कि, पुरुषधौरेय (ईश्वर) सर्वथा निर्लेप है। सब कुछ प्रपञ्च एकमात्र प्रकृतिसिद्ध ही है। इसी सर्वसम्मत, एवं सर्वानुभूत सामान्य सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के आदि में सूर्य्य-चन्द्रादि इतर प्राकृतिक पदार्थों की तरह वेद भी प्रकृतिसिद्ध होते हुए स्वतः ही उत्पन्न हुए हैं। इसी मत का समर्थन करते हुए आप्तपुरुष कहते हैं—

१—सैषा त्रयीविद्या प्रथमं जायते, यथैवादोऽमुत्राजायत-एवम्।

(शत० २।३।२०)।

२—वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः।

(म० शा० कपिलवाक्य)।

———o:❀:o———

६—तीनों प्राकृतिक लोकों से क्रमशः तीन वेद उत्पन्न हुए हैं। [३१ मत]

भूः-भुवः-स्वः नाम से प्रसिद्ध पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ-नाम के तीन लोक हैं। इन से क्रमशः पृथिवी से ऋग्वेद अन्तरिक्ष से यजुर्वेद द्युलोक से सामवेद उत्पन्न हुआ है। ऐसा इसलिए मानना पड़ता है कि तीनों वेदों में क्रमशः ऋग्वेद में प्रधानरूपसे पार्थिव आग्नेयपदार्थों का, यजुर्वेद में आन्तरिक्ष्य वायव्यपदार्थों का, एवं सामवेद में दिव्य सौरपदार्थों का ही प्रतिपादन देखा जाता है। इसी लिए ऋग्वेद का आरम्भ—"अग्निमीळे पुरोहितम्" इत्यादि-रूप से पृथिवी के अधिष्ठाता अग्निदेवता को प्रधान मान कर ही हुआ है। "पुरोहितम्" शब्द ही पृथिवीलोक का परिचायक है। यजुर्वेद के आरम्भ में "इषेत्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवः"

१—यह त्रयीविद्या सर्वप्रथम उसी प्रकार उत्पन्न हुई है, जैसे कि पूर्वकाल में यह उत्पन्न हुई थी।

२—वेद लोकों के सम्बन्ध में प्रमाणमात्र है। वेदों का निर्म्माण पीछे से नहीं हुआ है। अपितु ये प्रकृति सिद्ध हैं।

इत्यादिरूप से वायुदेवता को प्रधानता दी गई है। वायुदेवता अग्नि की ही तरलावस्था है। अतएव यजुर्वेदव्याख्यानभूत "शतपथ" के आरम्भ में-'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" इत्यादिरूप से अग्नि की स्तुति की गई है ' एवमेव सामवेद का आरम्भ 'अग्न आयाहि वीतये' इस मन्त्र से हुआ है। 'आयाहि' शब्द द्युलोक का ही सम्राहक है। द्युस्थानस्थ अग्नि वास्तव में पृथिवी पर आता है। इस प्रकार हम तीनों लोकों से ही तीनों वेदों का विकास मानने के लिए तय्यार हैं। जैसाकि श्रुति कहती है—

> १—प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् । तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयीविद्या
> सम्प्रास्रवत् । तामभ्यतपत् । तस्या अभितप्ताया सम्प्रा-
> स्रवन्त-भूः, भुव , स्वरिति" (छा उ. २।२३।)।

७—तीन छन्दों, तीन सवनों, एव तीन स्तोमों से त्रयीवेद उत्पन्न हुआ है। (३२)

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक सुप्रसिद्ध हैं। इन तीनों के क्रमशः अष्टाक्षर गायत्रीछन्द, एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्द, एव द्वादशाक्षर जगतीछन्द ये तीन छन्द हैं। तीनों के क्रमश त्रिवृत्स्तोम (९ अहर्गणात्मक) पञ्चदशस्तोम (१५ अहर्गणात्मक), एवं एकविंशस्तोम (२१ अहर्गणात्मक) ये तीन स्तोम है। एव तीनों के अष्टवसुदेवतात्मक प्रातःसवन, एकादशरुद्रात्मक माध्यन्दिनसवन, तथा द्वादशआदित्यात्मक सायंसवन भेद से तीन सवन हैं। प्रातःसवनात्मक, त्रिवृतस्तोमावच्छिन्न, गायत्रीछन्दोयुक्त पृथिवीलोक से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ है। माध्यन्दिनसवनात्मक, पञ्चदशस्तोमावच्छिन्न त्रिष्टुप्छन्दोयुक्त अन्तरिक्षलोक से

१—प्रजापति (त्रैलोक्यमूर्ति लोकात्मक प्रजापति) ने अपने अवयवभूत तीनों लोको को तपाया। तप्त इन तीनों लोकों से त्रयीविद्या का स्रोत निकला। पुन. त्रयीविद्या को तपाया। इस तप्त त्रयीविद्या से क्रमश भू -भुवः स्वः रूप तीन महाव्याहृतिए उत्पन्न हुई।

यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है। एवं सायंसवनात्मक, एकविंशस्तोमावच्छिन्न, जगतीछन्दोयुक्त द्युलोक से सामवेद उत्पन्न हुआ है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित वचन हैं। इस मत की प्रामाणिकता भी यत्र तत्र ब्राह्मणग्रन्थों में स्फुट है।

———:o:———

उक्त सातों मतों में—"वेद प्राकृतिक हैं, कृतक हैं, अपौरुषेय हैं, अनित्य हैं" इस चौथे साख्यमत की समानरूप से व्याप्ति है। अतएव इन सातों को हम साख्यमत में अन्तर्भूत मानने के लिए तय्यार हैं।

४—वेद प्रकृतिसिद्ध हैं। अपौरुषेय हैं। अनित्य हैं। (सांख्यमत)

१-२६—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध अग्नि-वायु-सूर्य से अभिन्न है।

२-२७—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध सूर्य्य से अभिन्न है।

३-२८—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध यज्ञ से अभिन्न है।

४-२९—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध कालचक्र से उत्पन्न हुआ है।

५-३०—→यह वेद प्रकृति से स्वतः उत्पन्न हुआ है।

६-३१—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध तीनों लोकों से उत्पन्न हुआ है।

७-३२—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध छन्द-स्तोम-सवनों से उत्पन्न हुआ है।

इति—सांख्यमतप्रदर्शनम्

४

इत्यादिरूप से वायुदेवता को प्रधानता दी गई है। वायुदेवता अग्नि की ही तरलावस्था है। अतएव यजुर्वेदव्याख्यानभूत "शतपथ" के आरम्भ में–'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" इत्यादिरूप से अग्नि की स्तुति की गई है। एवमेव सामवेद का आरम्भ 'अग्न आयाहि वीतये' इस मन्त्र से हुआ है। 'आयाहि' शब्द द्युलोक का ही समाहक है। द्युस्थानस्थ अग्नि वास्तव में पृथिवी पर आता है। इस प्रकार हम तीनों लोकों से ही तीनों वेदों का विकास मानने के लिए तय्यार हैं। जैसाकि श्रुति कहती है—

१—प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्। तेऽभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयीविद्या
सम्प्रास्रवत्। तामभ्यतपत्। तस्या अभितप्ताया सम्प्रा-
स्रवन्त-भूः, भुव, स्वरिति" (छा उ २।२३।)।

७—तीन छन्दों, तीन सवनों, एव तीन स्तोमों से त्रयीवेद उत्पन्न हुआ है। (३२)

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक सुप्रसिद्ध हैं। इन तीनों के क्रमशः अष्टाक्षर गायत्रीछन्द, एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्द, एव द्वादशाक्षर जगतीछन्द ये तीन छन्द हैं। तीनों के क्रमश त्रिवृत्स्तोम (९ अहर्गणात्मक) पञ्चदशस्तोम (१५ अहर्गणात्मक), एवं एकविंशस्तोम (२१ अहर्गणात्मक) ये तीन स्तोम हैं। एव तीनों के अष्टवसुदेवतात्मक प्रातःसवन, एकादशरुद्रात्मक माध्यन्दिनसवन, तथा द्वादशआदित्यात्मक सायसवन भेद से तीन सवन हैं। प्रातःसवनात्मक, त्रिवृत्स्तोमावच्छिन्न, गायत्रीछन्दोयुक्त पृथिवीलोक से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ है। माध्यन्दिनसवनात्मक, पञ्चदशस्तोमावच्छिन्न त्रिष्टुप्छन्दोयुक्त अन्तरिक्षलोक से

१—प्रजापति (त्रैलोक्यमूर्त्ति लोकात्मक प्रजापति) ने अपने अवयवभूत तीनों लोकों को तपाया। तप्त इन तीनों लोकों से त्रयीविद्या का स्रोत
तपाया। इस तप्त त्रयीविद्या से क्रमश भू-भुवः स्व. रूप

यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है। एवं सायंसवनात्मक, एकविंशस्तोमावच्छिन्न, जगतीछन्दोयुक्त द्युलोक से सामवेद उत्पन्न हुआ है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित वचन हैं। इस मत की प्रामाणिकता भी यत्र तत्र ब्राह्मणग्रन्थों में स्फुट है।

:o:

उक्त सातों मतों में—"वेद प्राकृतिक हैं, कृतक हैं, अपौरुषेय हैं, अनित्य हैं" इस चौथे सांख्यमत की समानरूप से व्याप्ति है। अतएव इन सातों को हम सांख्यमत में अन्तर्भूत मानने के लिए तय्यार हैं।

४—वेद प्रकृतिसिद्ध हैं। अपौरुषेय हैं। अनित्य हैं। (सांख्यमत)

१–२६—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध अग्नि-वायु-सूर्य से अभिन्न है।
२–२७—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध सूर्य्य से अभिन्न है।
३–२८—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध यज्ञ से अभिन्न है।
४–२९—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध कालचक्र से उत्पन्न हुआ है।
५–३०—→यह वेद प्रकृति से स्वतः उत्पन्न हुआ है।
६–३१—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध तीनों लोकों से उत्पन्न हुआ है।
७–३२—→यह वेद प्रकृतिसिद्ध छन्द-स्तोम-सवनों से उत्पन्न हुआ है।

इति—सांख्यमतप्रदर्शनम्

४

इत्यादिरूप से वायुदेवता को प्रधानता दी गई है। वायुदेवता अग्नि की ही तरलावस्था है। अतएव यजुर्वेदव्याख्यानभूत "शतपथ" के आरम्भ में-'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" इत्यादिरूप से अग्नि की स्तुति की गई है। एवमेव सामवेद का आरम्भ 'अग्न आयाहि वीतये' इस मन्त्र से हुआ है। 'आयाहि' शब्द द्युलोक का ही सग्राहक है। द्युस्थानस्थ अग्नि वास्तव में पृथिवी पर आता है। इस प्रकार हम तीनों लोकों से ही तीनो वेदों का विकास मानने के लिए तय्यार हैं। जैसाकि श्रुति कहती है—

> १—प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयीविद्या संप्रास्रवत्। तामभ्यतपत्। तस्या अभितप्ताया सम्प्रा-स्रवन्त-भूः, भुवः, स्वरिति" (छा उ. २।२३।)।

—

७—तीन छन्दों, तीन सवनों, एवं तीन स्तोमों से त्रयीवेद उत्पन्न हुआ है। (३२)

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ ये तीन लोक सुप्रसिद्ध हैं। इन तीनों के क्रमशः अष्टाक्षर गायत्रीछन्द, एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्द, एवं द्वादशाक्षर जगतीछन्द ये तीन छन्द हैं। तीनों के क्रमशः त्रिवृत्स्तोम (९ अहर्गणात्मक) पञ्चदशस्तोम (१५ अहर्गणात्मक), एवं एकविंशस्तोम (२१ अहर्गणात्मक) ये तीन स्तोम हैं। एवं तीनों के अष्टवसुदेवतात्मक प्रातःसवन, एकादशरुद्रात्मक माध्यन्दिनसवन, तथा द्वादशआदित्यात्मक सायंसवन भेद से तीन सवन हैं। प्रातःसवनात्मक, त्रिवृत्स्तोमावच्छिन्न, गायत्रीछन्दोयुक्त पृथिवीलोक से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ है। माध्यन्दिनसवनात्मक, पञ्चदशस्तोमावच्छिन्न त्रिष्टुप्छन्दोयुक्त अन्तरिक्षलोक से

१—प्रजापति (त्रैलोक्यमूर्त्ति लोकात्मक प्रजापति) ने अपने अवयवभूत तीनों लोकों को तपाया। तप्त इन तीनों लोकों से त्रयीविद्या का स्रोत निकला। पुन. त्रयीविद्या को तपाया। इस तप्त त्रयीविद्या से क्रमशः भूः-भुवः स्वः रूप तीन महाव्याहृतिए उत्पन्न हुईं।

५-सप्त-मवान्तरमतयुक्तं—

वैशेषिकदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शनम्॥

५—वैशेषिकदर्शनाभिमत–मतप्रदर्शन

महर्षि उलूक (कणाद) के मतानुसार वेद (वेदग्रन्थ) विद्वान् महर्षियों के बनाए हुए हैं, अतएव ये सर्वथा पौरुषेय (मनुष्य-कृत) हैं, एवं सर्वथा अनित्य हैं। साथ ही में दृष्टिभेद से वेद अकृतक हैं, अपौरुषेय हैं, अत एव सर्वथा नित्य भी हैं। वेद शब्द शब्दराशिरूप वेदग्रन्थ (वेद की पुस्तक) में भी प्रयुक्त होता है, एवं शब्दप्रतिपाद्य वेदविद्या के साथ भी वेदशब्द का सम्बन्ध है। शब्दापेक्षया वेद पौरुषेय हैं, अनित्य हैं। विद्यापेक्षया वेद अपौरुषेय हैं, नित्य हैं। लोक में जिन वेदों का पारायण होता है, वे वेद अनित्य हैं। एवं शब्दात्मक वेद से प्रतिपादित विद्यात्मक वेद नित्य हैं। दूसरे शब्दों में वेदग्रन्थ अनित्य हैं, वेदविद्या नित्य है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित वचन हमारे सामने आते हैं—

१— बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" (वै०द० ६।१।१।)।
२—' ब्राह्मणे सञ्ज्ञाकर्म्म सिद्धिलिङ्गम्" (वै. द. ६।१।२।)।
३— आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्म्मेभ्यः ' (वै. ९।२।१३।)।

इन सूत्रों का तात्पर्य यही है कि वाक्य रचना बुद्धि पूर्वक ही होती है। हम जब गद्यात्मक, अथवा पद्यात्मक वाक्य रचना करते हैं तो उसमें "प्रज्ञान" सहकृत "विज्ञान" (मनोयोगपूर्विका बुद्धि) की अपेक्षा रहती है। बिना बुद्धि के वाक्यरचना असम्भव है। इधर वेदशास्त्र वाक्यरचना का समष्टिमात्र है यह बिना बुद्धि के व्यापार के सम्भव नहीं है। बुद्धि परिच्छिन्नतत्व है। बुद्धिव्यापार एकमात्र परिच्छिन्न पुरुष का ही धर्म है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि, वाक्य संप्रदायात्मक यह वेद विद्वान् महर्षियों की कृति है, अतएव यह पौरुषेय है॥ १॥

३—"महाप्रलयादिषु वर्णानुपूर्वीविनाशे पुनरुत्पाद्य ऋषयः संस्कारातिशयात् वेदार्थं स्मृत्वा शब्दरचनां विदधतीत्यर्थः" (कैय्यट४।३।१०१)।

४—"पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" (पा. सू. ४।३।१०५)। पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणप्रोक्तेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः-याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि, सौलभानि इति। किं कारणं-तुल्यकालत्वात्। एतान्यपि तुल्यकालानि इति" (म. भा.)। पुराणप्रोक्तेष्विति किम्। याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि. आश्मरथ्यः, कल्पः। याज्ञवल्क्यादयोऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्त्ता। तथा व्यवहरति सूत्रकारः" इति। (जयादित्यः)।

५—"तेन दृष्टं साम" (पा. सू. ४।२।७)। वासिष्ठं, वैश्वामित्रं, कालेयम्। यस्य साम्नोर्विशिष्टकार्यविषयोविनियोगो ज्ञानातिशयसम्पदा कलिनाऽऽज्ञायि, तत् तेन दृष्टमित्युच्यते" (कैय्यटः)।

उक्त वचनों का अभिप्राय यही है कि वेदपदार्थ यद्यपि नित्य है, इसी लिए छन्द को नित्य कहा जाता है, परन्तु वर्णानुपूर्वीरूपशब्द सर्वथा अनित्य है। तत् समय में महर्पिगण उस अपौरुषेय नित्य वेदार्थ (वेदविद्या) का स्मरण करके पौरुपेय अनित्य वर्णानुपूर्वी द्वारा वेदार्थ को प्रकट किया करते हैं। यही मत विज्ञान सम्मत है, जैसाकि आगे की "विज्ञानवेदनिरुक्ति" में स्पष्ट होजायगा। इस मत के आवान्तर सात भेद होजाते हैं। उनका भी संक्षेप से दिग्दर्शन करा दिया जाता है।

१.—यह वेद अग्नि, वायु सूर्य्य नाम के तीन देवर्पियों का वाक्य है। (२२ मत)

पुरायुग में (जो कि युग पुराण-महाभारतादि में "देवयुग" नाम से प्रसिद्ध है) इस पृथिवी पर ही प्रतिष्ठित 'भौमस्वर्ग" में अग्नि-वायु-सूर्य्य नाम की देवजातिएं अतिसुप्रसिद्ध थीं। जिस प्रकार पृथिवीलोकस्थानीय भारतवर्ष में निवास करने वाले प्रत्यक्षद्रष्टा पुरुष ऋषि एवं महर्षि कहलाते थे, एवमेव भौमस्वर्गनिवासी मनुष्यविध भौमदेवताओं में जिन देवताओं

अपि च 'ब्राह्मण" नाम से प्रसिद्ध वेदभाग में नामों का जो निर्वचन हुआ है, उस से भी वेद का बुद्धिपूर्वकत्व ही निर्म्माण सिद्ध होता है। **"सो रोदीत्-तद् रुद्रस्यरुद्रत्वम्, रुद्रः किल रुरोद"** (वह रोया इस लिए उसका नाम रुद्र होगया, रुद्र रोया) इत्यादिरूप से तत्तन्नामों की व्युत्पत्ति (निर्वचन) की गई है। यह निर्वचन स्पष्ट ही बतला रहे हैं कि, वेदों की रचना पुरुषविशेषों के द्वारा बुद्धिपूर्वक ही हुई है। क्योंकि शब्दों का यथावत् (व्याकरणानुसार) निर्वचन करना मनुष्यबुद्धि का ही काम है ॥२॥

उक्त दोनों सूत्र वेद की पौरुषेयता, एवं अनित्यता का निरूपण करते है, एवं तृतीय सूत्र आर्षज्ञान को लक्ष्य में रखता हुआ (शब्दवेदप्रतिपाद्य वेदविद्या को लक्ष्य में रखता हुआ) वेद की अपौरुषेयता, एवं नित्यता का प्रतिपादन करता है। नित्य वेद्तत्त्व किंवा वेदविद्या को ऋषियों नें अपनीं आर्षदृष्टि से पहिचाना है। वह आर्षज्ञान (वेदविद्यारूपज्ञान) सर्वथा अपौरुषेय, एवं नित्य हैं। इस नित्यज्ञान (नित्यवेद) की प्राप्ति का उपाय एकमात्र धर्म्मबुद्धि ही है। इस प्रकार धर्म्मबुद्धिद्वारा उस नित्य अपौरुषेय वेद को प्राप्त कर ऋषियोनें जिस शब्द-राशिद्वारा उसे हमारे सामने रक्खा है, वही वेद पौरुषेय, एवं अनित्यशब्दमय होने से अनित्य है।३॥

यही मत सर्वमान्य कहा जासकता है। भगवान् पतञ्जलिने भी इस वैशेषिक मत को ही प्रधानता दी है। एवं महाभाष्य के सुप्रसिद्ध टीकाकार कैय्यट, एवं जयादित्य ने भी इसी मत का समर्थन किया है, जैसाकि निम्न लिखित वचनों से स्पष्ट होजाता है—

१—"ननु चोक्त नहि छन्दांसि क्रियन्ते–नित्यानि छन्दांसि–इति। यद्यप्यर्थो नित्यः। या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा अनित्या। तद्भेदाच्चैतद्-भवति-काठकम्, कापालकम्, मौद्गलम्, पैप्पलादकम्"–इति।

(महाभाष्य ४।३।१०१।)।

२—"शौनकादिभ्यश्छन्दसि" (४।३।१०६।)। शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः। वाजसनेयिनः। "कठचरकाल्लुक्" (४।३।१०७)। कठाः, चरकाः–(महा. ४।३।१०६–१०७) इति।

नाम के तीन प्रसिद्ध महर्षि होगए हैं। प्रकृतमतवादियों का कहना है कि, मनुष्यर्षिवर्ग में प्रसिद्ध अजपृष्णि नामक तपस्वियों नें ही वेदमन्त्रों का निर्म्माण किया है। इस मत का समर्थक निम्न लिखित श्रुति वचन है—

१* अजान् ह वै पृष्णीन्–तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भु–अभ्यानर्षत।
तद् ऋषयो अभवन्। त एतं ब्रह्मयज्ञमपश्यन्।

—०*०—

२—यह वेद अथर्वाङ्गिरा नामक ब्रह्मर्षि का वाक्य है। (३५)

अग्नि की घनावस्था का नाम अग्नि है, तरलावस्था वायु है, विरलावस्था आदित्य है। इस प्रकार एक ही अग्निरस तीन स्वरूप धारण कर लेता है–(देखिए शत० १०।६।५)। इन में घनाग्नि (पार्थिवअग्नि) से ऋग्वेद का, तरलाग्नि (आन्तरिक्षवायु) से यजुर्वेद का, एवं विरलाग्नि (दिव्य-आदित्य) से सामवेद का विकास हुआ है। ऐसी स्थिति में हम अग्नि की तीन अवस्थाओं से विकसित उक्त तीनों वेदों की समष्टि को–"अग्निब्रह्म" शब्द से व्यवहृत करने के लिए तय्यार हैं। सर्वप्रथम त्रयीरूप इसी अग्निब्रह्म (अग्निवेद का प्रादुर्भाव होता है, अतएव हम इसे ज्येष्ठब्रह्म कहने के लिए तय्यार हैं। इसी प्रकार भृगुतत्त्व–एवं अङ्गिरातत्व, इन दो तत्त्वों की. किंवा दो वेदों की समष्टि सोमब्रह्म है। यही सुब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है।

ज्येष्ठब्रह्मलक्षण अग्नि तीन लोकों के भेद से तीन आयतनों में प्रतिष्ठित होता हुआ–"अग्निर्भूस्थानः" वायुरन्तरिक्षस्थानः, सूर्योद्युस्थानः" (या० निरुक्त) इस नैगमिक सिद्धान्त के अनुसार तीन भागों में विभक्त हो जाता है। अग्नित्रयी से तीन लोक विभक्त हैं, तीनों लोकों से तीन देवता विभक्त हैं, एवं तीनों देवताओं के भेद से तीन वेद विभक्त हैं। "अस्ति वै चतुर्थो देवलोक आपः" (शत. ब्रा.) इस निगम सिद्धान्त के अनुसार चौथा आपोलोक है। इस एक ही लोक में भृगु अङ्गिरा नामक स्नेह–तेजोलक्षण दो प्रकार का सोम प्रतिष्ठित

१*—मीमांसामत के ६ मत से गतार्थ।

नें वेदतत्व का साक्षात् कर वेदमन्त्रों का निर्म्माण किया था, वे "देवर्षि" नाम से प्रसिद्ध थे। अग्नि-वायु-सूर्य्य नाम की जातियों में से अग्नि वायु-सूर्य्य नाम के व्यक्तिविशेषों ने ही मनुष्यों के (भौमपृथिवीलोकनिवासी अस्मदादि मनुष्यों के) लिए क्रमशः ऋग्–यजुः–साम मन्त्रों का निर्म्माण किया है। प्राचीनन्यायमत के ३ मत विभाग में जिन अग्नि वायु-सूर्य्यों का उल्लेख किया गया है, वे नित्य अभिमानी पुरुषविध अप्राद देवता हैं। एवं प्रकृतमत के अग्न्यादि तीनों देवता अस्मच्छदश सप्राद मनुष्य देवता थे। उस मत के, एवं इस मत के देवताओं में यही विशेषता समझनी चाहिए। वे देवता देवता कहलाते हैं एवं सृष्टि के प्रलयकाल तक उनकी प्रावाहिक नित्यता अक्षुण्ण है। इधर वेदसाक्षात्कर्त्ता तदनुसार वेदमन्त्र निर्म्माता मनुष्यविध-देवता महर्षि किंवा देवर्षि कहलाते थे। साथ ही में भौमस्वर्ग व्यवस्था के उच्छेद के साथ साथ ही इन भौमदेवताओं का महाभारतकाल में ही उच्छेद होगया है। इस मत का समर्थक निम्न लिखित सायणवचन ही पर्य्याप्त है।

१—"जीवविशेषैरग्निवाय्वादिभिर्वेदानामुत्पादितत्वात्" (ऋ० उपोद्घात)

२—यह वेद अजपृश्नि नामक ऋषियों का वाक्य है। (३४ मत)

भौमपृथिवीलोक की प्रजा मनुष्य कहलाती थी। यह प्रजा चार वर्णों, एवं चार अवर-वर्णों में विभक्त थी। वर्णप्रजा के चार विभाग क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नाम से, एवं अवरवर्णप्रजा के चार विभाग क्रमशः अन्त्यज, अन्त्यावसायी, दस्यु, म्लेच्छ इन नामों से प्रसिद्ध थे। इन में वर्णप्रजा का ब्राह्मणवर्ग विद्यातारतम्य से ब्रह्म-ऋषि देव-विप्र-ब्राह्मण इन पाच भागों में विभक्त था। जो भारतीय ब्राह्मण वेदतत्व के द्रष्टा होते थे, उन्हें ही महर्षि किंवा मनुष्यर्षि कहा जाता था। इन्हीं में अजपृश्नि, सिकता निवावरी,.........

१—प्राचीनन्याय मत के ३ मत से गतार्थ।

नाम के तीन प्रसिद्ध महर्पि होगए हैं। प्रकृतमतवादियों का कहना है कि, मनुष्यर्पिवर्ग में प्रसिद्ध भजपृष्णि नामक तपस्वियों नें ही वेदमन्त्रों का निर्म्माण किया है। इस मत का समर्थक निम्न लिखित श्रुति वचन है—

१* भजान् ह वै पृष्णीन्-तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भू-अभ्यानर्षत्।
तद् ऋपयो अभवन्। त एतं ब्रह्मयज्ञमपश्यन्।

—:*:—

२—यह वेद अथर्वाङ्गिरा नामक ब्रह्मर्पि का वाक्य है। (२५)

अग्नि की घनावस्था का नाम अग्नि है, तरलावस्था वायु है, विरलावस्था आदित्य है। इस प्रकार एक ही अग्नितत्त्व तीन स्वरूप धारण कर लेता है-(देखिए शत० १०।६।५)। इन में घनाग्नि (पार्थिवअग्नि) से ऋग्वेद का, तरलाग्नि (आन्तरिक्ष्यवायु) से यजुर्वेद का, एवं विरलाग्नि (दिव्य-आदित्य) से सामवेद का विकास हुआ है। ऐसी स्थिति में हम अग्नि की तीन अवस्थाओं से विकसित उक्त तीनों वेदों की समष्टि को-"अग्निब्रह्म" शब्द से व्यवहृत करने के लिए तय्यार हैं। सर्वप्रथम त्रयीरूप इसी अग्निब्रह्म (अग्निवेद का प्रादुर्भाव होता है, अतएव हम इसे ज्येष्ठब्रह्म कहने के लिए तय्यार हैं। इसी प्रकार भृगुतत्त्व-एवं अङ्गिरातत्त्व, इन दो तत्त्वों की, किंवा दो वेदों की समष्टि सोमब्रह्म है। यही सुब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है।

जेष्ठब्रह्मलक्षण अग्नि तीन लोकों के भेद से तीन आयतनों में प्रतिष्ठित होता हुआ-"अग्निर्भूस्थानः" वायुरन्तरिक्षस्थानः, सूर्योद्युस्थानः" (या० निरुक्त) इस नैगमिक सिद्धान्त के अनुसार तीन भागों में विभक्त हो जाता है। अग्नित्रयी से तीन लोक विभक्त हैं, तीनों लोकों से तीन देवता विभक्त हैं, एवं तीनों देवताओं के भेद से तीन वेद विभक्त हैं। "अस्ति व चतुर्थो देवलोक आपः" (शत. ब्रा.) इस निगम सिद्धान्त के अनुसार चौथा आपोलोक है। इस एक ही लोक में भृगु अङ्गिरा नामक स्नेह-तेजोलक्षण दो प्रकार का सोम प्रतिष्ठित

१*-मीमांसामत के ६ मत से गतार्थ।

नें वेदतत्व का साक्षात् कर वेदमन्त्रों का निर्म्माण किया था, वे "देवर्षि" नाम से प्रसिद्ध थे। अग्नि-वायु-सूर्य्य नाम की जातियों में से अग्नि वायु सूर्य्य नाम के व्यक्तिविशेषों ने ही मनुष्यों के (भौमपृथिवीलोकनिवासी अस्मदादि मनुष्यों के) लिए क्रमशः ऋग्-यजुः-साम मन्त्रों का निर्म्माण किया है। प्राचीनन्यायमत के ३ मत विभाग में जिन अग्नि वायु-सूर्य्यों का उल्लेख किया गया है, वे नित्य अभिमानी पुरुषविध अपाद देवता हैं। एवं प्रकृतमत के अग्न्यादि तीनों देवता अस्मच्छ्रदृश सपाद मनुष्य देवता थे। उस मत के, एवं इस मत के देवताओं मे यही विशेषता समझनी चाहिए। वे देवता देवता कहलाते हैं एवं सृष्टि के प्रलयकाल तक उनकी प्रावाहिक नित्यता अक्षुण्ण है। इधर वेदसाक्षात्कर्त्ता तदनुसार वेदमन्त्र निर्म्माता मनुष्यविध-देवता महर्षि किंवा देवर्षि कहलाते थे। साथ ही में भौमस्वर्ग व्यवस्था के उच्छेद के साथ साथ ही इन भौमदेवताओं का महाभारतकाल में ही उच्छेद होगया है। इस मत का समर्थक निम्न लिखित सायणवचन ही पर्य्याप्त है।

१—"जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात्" (ऋ० उपोद्घात)

२—यह वेद अजपृश्नि नामक ऋषियों का वाक्य है। (३४ मत)

भौमपृथिवीलोक की प्रजा मनुष्य कहलाती थी। यह प्रजा चार वर्णों, एवं चार अवर-वर्णों में विभक्त थी। वर्णप्रजा के चार विभाग क्रमश. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नाम से, एवं अवरवर्णप्रजा के चार विभाग क्रमशः अन्त्यज अन्त्यावसायी, दस्यु, म्लेच्छ इन नामों से प्रसिद्ध थे। इन में वर्णप्रजा का ब्राह्मणवर्ग विद्यातारतम्य से ब्रह्म-ऋषि देव-विप्र ब्राह्मण इन पाच भागों में विभक्त था। जो भारतीय ब्राह्मण वेदतत्व के द्रष्टा होते थे, उन्हें ही महर्षि किंवा मनुष्यर्षि कहा जाता था। इन्हीं में अजपृश्नि, सिकता निवावरी,............

१—प्राचीनन्याय मत के ३ मत से गतार्थ।

नाम के तीन प्रसिद्ध महर्षि होगए हैं। प्रकृतमतवादियों का कहना है कि, मनुष्यर्षिवर्ग में प्रसिद्ध अजपृश्नि नामक तपस्वियों नें ही वेदमन्त्रों का निर्म्माण किया है। इस मत का समर्थक निम्न लिखित श्रुति वचन है—

१* अजान् ह वै पृश्नीन्–तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भु–अभ्यानर्षत्।
तद् ऋषयो अभवन्। त एतं ब्रह्मयज्ञमपश्यन्।

—○*○—

३—यह वेद अथर्वाङ्गिरा नामक ब्रह्मर्षि का वाक्य है। (३५)

अग्नि की घनावस्था का नाम अग्नि है, तरलावस्था वायु है, विरलावस्था आदित्य है। इस प्रकार एक ही अग्निरस तीन स्वरूप धारण कर लेता है–(देखिए शत० १०।६।५)। इन में घनाग्नि (पार्थिवअग्नि) से ऋग्वेद का, तरलाग्नि (आन्तरिक्ष्यवायु) से यजुर्वेद का, एवं विरलाग्नि (दिव्य-आदित्य) से सामवेद का विकास हुआ है। ऐसी स्थिति में हम अग्नि की तीन अवस्थाओं से विकसित उक्त तीनों वेदों की समष्टि को–"अग्निब्रह्म" शब्द से व्यवहृत करने के लिए तय्यार हैं। सर्वप्रथम त्रयीरूप इसी अग्निब्रह्म (अग्निवेद का प्रादुर्भाव होता है, अतएव हम इसे ज्येष्ठब्रह्म कहने के लिए तय्यार हैं। इसी प्रकार भृगुतत्त्व–एवं अङ्गिरातत्व, इन दो तत्वों की, किंवा दो वेदों की समष्टि सोमब्रह्म है। यही सुब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है।

ज्येष्ठब्रह्मलक्षण अग्नि तीन लोकों के भेद से तीन आयतनों में प्रतिष्ठित होता हुआ–"अग्निर्भूस्थानः" वायुरन्तरिक्षस्थानः, सूर्योद्युस्थानः" (या० निरुक्त) इस नैगमिक सिद्धान्त के अनुसार तीन भागों में विभक्त हो जाता है। अग्नित्रयी से तीन लोक विभक्त हैं, तीनों लोकों से तीन देवता विभक्त हैं, एवं तीनों देवताओं के भेद से तीन वेद विभक्त हैं। "अस्ति व चतुर्थो देवलोक आपः" (शत. ब्रा.) इस निगम सिद्धान्त के अनुसार चौथा आपोलोक है। इस एक ही लोक में भृगु अङ्गिरा नामक स्नेह–तेजोलक्षण दो प्रकार का सोम प्रतिष्ठित

१*–मीमांसामत के ६ मत से गतार्थ।

है। आपः-वायु-सोम तीनों की समष्टि स्नेहमय भृगुसोम है। अग्नि-यम-आदित्य इन तीनों की समष्टि तेजोमय अङ्गिरासोम है। इस प्रकार यह पड्ब्रह्ममूर्त्ति सोम एक ही लोक में प्रतिष्ठित है। इन ६ओं का लोक एक है, अतएव इन का सोमदेवता भी एक ही माना जाता है। इसीलिए इस का वेद भी एक ही है। पड्ब्रह्ममयसोमावच्छिन्न वही वेद—"अथर्ववेद" नाम का चौथा वेद है। इस प्रकार तीन अग्निवेद, एक सोमवेद, सम्भूय चार वेद होजाते हैं। इन सब विषयों का विशद निरूपण आगे की विज्ञानवेदनिरुक्ति में होने वाला है।

उक्त चारों वेदों के प्रवर्त्तक (वक्ता—कर्त्ता) चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। जो व्यक्ति वेदशास्त्र का मूलप्रवर्त्तक है, जिसे जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है, वही ब्रह्मा नाम से प्रसिद्ध है। देवयुग में भिन्न भिन्न चार वैज्ञानिक आचार्यों ने भिन्न भिन्न चार वेदों का उपदेश दिया है। चारों में वेद प्रवर्त्तकत्व सामान्य है, अतएव व्यासज्यवृत्ति (समुदायवृत्ति) से 'ब्रह्मा' शब्द चारों की समष्टि के साथ सम्बन्ध रखता है। इसी अभिप्राय से एक ही ब्रह्मा को चतुर्मुख मान लिया गया है। प्रकारान्तर से यों समझिए कि, प्रथम ब्रह्मा स्वयम्भू नाम से प्रसिद्ध थे। इन्हें ही आदिब्रह्मा कहा जाता था। दूसरे ब्रह्मा हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध थे। तीसरे ब्रह्मा अपान्तरतमा नाम से प्रसिद्ध प्राचीनगर्भ महर्षि थे एवं वरुणपुत्र भृगु, ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा दोनों मिलकर अथर्वा नाम के चौथे ब्रह्मा थे।

उक्त चारों ब्रह्माओं में स्वयम्भू ब्रह्मा पहिले ब्रह्मा थे, साथ ही में देवव्यवस्था के प्रथम प्रवर्त्तक होने से यह प्रथमदेव (पहिले देव) थे। पश्चिमभारतवर्ष में आर्य्यायण (ईरान) प्रान्त में बाल्हीक (बलख) नाम की वरुण राजधानी के समीप पुष्कर नाम (आजदिन बुखारा नाम से प्रसिद्ध) के तीर्थ में ये निवास करते थे। वाल्हीकनगरनिवासी वहां के सम्राट् वरुण के औरस पुत्र भृगु थे। अतएव ये वारुणि कहलाते थे। आरम्भ में ये बाल्हीक में ही रहते थे। परन्तु विद्योत्कर्ष के प्रभाव से आगे जाकर स्वयम्भू ने इन्हें अपना दत्तकपुत्र बना लिया। तब से इन का भी अभिजन (स्वदेश) पुष्कर ही होगया। ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा भी पुष्कराभिजन ही थे। अपान्तरतमा नाम के प्राचीनगर्भ महर्षि ब्रह्मा के कृत्रिमपुत्र थे।

ये सरस्वतीग्राम में निवास करते थे। वितस्ता (झेलम) और सिन्धु नद के सङ्गम स्थान के समीप पश्चिमभारत में सरस्वती नाम की नदी बहती है। इस सरस्वती नदी के सम्बन्ध से ही तत्प्रान्तस्थ ग्राम भी पुराणों में सरस्वतीग्राम नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है। यहीं सुप्रसिद्ध वरुण के अन्यतम सखा महर्षि वसिष्ठ का आश्रम था। यहां महर्षि प्राचीनगर्भ रहते थे। अत एव इन्हें पुराणों में "सारस्वतऋषि" नाम से भी सम्बोधित किया गया है। इन चारों में आदिब्रह्मा स्वयम्भू, हिरण्यगर्भ, प्राचीनगर्भ, इन तीनों ब्रह्माओं ने स्वर्गभूमि नाम से प्रसिद्ध प्राग्मेरु (पामीर) प्रदेश में प्रतिष्ठित हिरण्यशृङ्ग नाम से प्रसिद्ध पर्वत के शिखर पर हिरण्यशृङ्ग से निकलने वाली यक्षु' नदी के प्रवाह स्थान में विराजमान होकर त्रयीवेद का निर्म्माण किया था। इस से कुछ समय पीछे भृगु-अङ्गिरा नामक दोनों ब्रह्माओं ने (जोकि अथर्वा नाम से प्रसिद्ध थे) वाल्हीक प्रान्त में प्रतिष्ठित होते हुए अथर्ववेद का निर्म्माण किया था। अर्वाक्कालीन होने से ही यह चतुर्थवेद—"अथ-अर्वाक्-सम्बभूव" इस निर्वचन से अथर्ववेद कहलाया।

इन चारों में स्वयम्भू शेष तीनों के पिता थे। तीनों ब्रह्मा इन के मानसपुत्र थे। साथ ही में ये तीनों पर्षद्ब्रह्मा भी थे। इस प्रकार एक ही आदिब्रह्मा स्वयम्भूने—हिरण्यगर्भ-अपान्तरतमा-भृग्वङ्गिरा इन तीनों के संयोग से चारों वेदों को प्रवृत्त किया। इसी समष्टि के कारण स्वयम्भू चतुर्मुख ब्रह्मा कहलाए। इसी आधार पर—"चतुर्मुखब्रह्मा ने चारों वेद बनाए" यह किंवदन्ती प्रचलित हुई। कुछ भी हो, ये चारों ही चतुर्वेद के प्रवर्त्तक थे, यह निश्चित सिद्धान्त है। इस मत के समर्थक निम्न लिखित प्रमाण हैं—

१—स्वयम्भूः————पुष्कराभिजनः
२—हिरण्यगर्भः———हिरण्यशृङ्गाभिजनः
३—अपान्तरतमा———सरस्वतीग्रामाभिजनः
} त्रयीवेदवक्तारः

४ { १ वरुणपुत्रोभृगुः, २ ब्रह्मपुत्रोऽङ्गिराः } वाल्हीकाभिजनौ } अथर्ववेदवक्तारौ

} चतुर्मुखोब्रह्मा।

१—ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा, अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भरद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भरद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥
(मुण्डक) ।

४—यह वेद अपान्तरतमा ऋषि का वाक्य है । (३६)

सुप्रसिद्ध "अपान्तरतमा" नाम के महर्षि ने वेद का प्रवचन किया है । यह महर्षि आदिब्रह्मा भगवान् स्वयम्भू के मानसपुत्र थे । सुप्रसिद्ध वेदवक्ता कृष्णद्वैपायन इन्ही अपान्तरतमा के अवतार माने गए हैं । महाभारतादि में यही प्राचीनगर्भ नाम से भी व्यवहृत हुए हैं । कहीं कहीं इन्हीं का —"सारस्वतऋषि" नाम भी सुना जाता है । इस मत का समर्थक निम्न लिखित वचन है ।

अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्य्यः स उच्यते ।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥
(म. भा. शा. मोक्षधर्म०) ।

५—यह वेद ऊर्ध्वरेता अनेक ऋषियों का वाक्य है । (३७ मत)

गुहानिहित, अलौकिक, आश्चर्यमयी, तत्तद् विश्वविद्याओं का साक्षात्कार करनें वाले महामहर्षियों के मुख से निकली हुई शब्दराशि ही वेद है । जिस समय विश्व की उन्नति-अवनति से सम्बन्ध रखने वाला, २५ हजारवर्ष में 'नाक" नाम से प्रसिद्ध कदम्बवृत्तपरपर्य्यायक

१—इन दोनों मन्त्रों का अर्थ मीमांसामतान्तर्गत ७ (सप्तम) मत के अर्थ से गतार्थ है ।

विष्णुपद की परिक्रमा करने वाला सुप्रसिद्ध ध्रुवनक्षत्र वेदविद्याप्रवर्त्तक अभिजिन्नक्षत्र पर विद्यमान था, उस समय भौमत्रैलोक्य में वेदविद्यापारङ्गत अनेक महर्षि विचरण करते थे। तत् कालीन केवल गृहस्थ ऋषियों की ही संख्या ५०००० (पचास हजार) थी। इनके अतिरिक्त आबाल ब्रह्मचारी वीतराग महर्षियों की संख्या ८८००० (अट्ठासी हजार) थी। ये ब्रह्मचारी विद्या के अभ्युदय के लिए सांसारिक स्त्रीपुत्रादि साधारण सुख सामग्री का एकान्ततः (जन्म से ही) परित्याग करते हुए विश्व के तत्वानुसंधान में प्रवृत्त रहते थे। येही महर्षि ऊर्ध्वरेता कहलाते थे। उन्हीं महामहर्षियों की प्रतिभा, कार्यकुशलता, सत्यप्रवणता, एवं परिपूर्ण गवेषणा (खोज) का यह फल है कि, आज हम वेदशास्त्र नाम से प्रसिद्ध उस दिव्यविभूति के अधिपति बन रहे हैं, जिसके कि सामने वर्त्तमान युग का सुसमृद्ध वैज्ञानिक जगत् भी श्रद्धा से अपना मस्तक नत किए हुए है, एवं जिस योग्यता का अन्य संस्कृत साहित्य की कौन कहै, समस्त भूमण्डल के साहित्य में उपलब्ध नहीं होसकता। अस्तु कहना यही है कि, ऊर्ध्वरेता इन महर्षियों ने ही वेदग्रन्थों का निर्म्माण किया है। इस मत के उपोद्बलक निम्न लिखित प्रमाण द्रष्टव्य है—

१—अष्टाशीति सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
प्रजावता च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव॥
(म. भा. सभा. ११ अ०।) १।

२—ब्रह्मकल्पे पुराब्रह्मन् ब्रह्मर्षीणां समागमे।
लोकसम्भवसन्देहः समुत्पन्नो महात्मनाम्॥ २॥

१—हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर। उर्ध्वरेता महर्षि संख्या में ८८००० हैं एवं प्रजायुक्त गृहमेधी (गृहस्थ) महर्षि ५०००० हैं।१।

२—हे ब्रह्मन्! पुरायुग (देवयुग) में, जोकि युग ब्रह्मकल्प नाम से प्रसिद्ध है, ब्रह्मर्षियों के समागम में उन महात्मा महर्षियों के हृदय में लोक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हुआ।२।

१—ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा, अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भरद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भरद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥
(मुण्डक) ।

४—यह वेद अपान्तरतमा ऋषि का वाक्य है । (३६)

सुप्रसिद्ध "अपान्तरतमा" नाम के महर्षि ने वेद का प्रवचन किया है । यह महर्षि आदिब्रह्मा भगवान् स्वयम्भू के मानसपुत्र थे । सुप्रसिद्ध वेदवक्ता कृष्णद्वैपायन इन्ही अपान्तरतमा के अवतार माने गए हैं । महाभारतादि में यही प्राचीनगर्भ नाम से भी व्यवहृत हुए हैं । कहीं कहीं इन्हीं का —"सारस्वतऋषि" नाम भी सुना जाता है । इस मत का समर्थक निम्न लिखित वचन है ।

अपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते ।
प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥
(म. भा. शा. मोक्षधर्म०) ।

५—यह वेद ऊर्ध्वरेता अनेक ऋषियों का वाक्य है । (३७ मत)

गुहानिहित, अलौकिक, आश्चर्यमयी, तत्तद् विश्वविद्याओं का साक्षात्कार करनें वाले महामहर्षियों के मुख से निकली हुई शब्दराशि ही वेद है । जिस समय विश्व की उन्नति-अवनति से सम्बन्ध रखने वाला, २५ हजारवर्ष में 'नाक" नाम से प्रसिद्ध कदम्बवृत्तपरपर्य्यायक

१—इन दोनों मन्त्रों का अर्थ मीमांसामतान्तर्गत ७ (सप्तम) मत के अर्थ से गतार्थ है ।

विष्णुपद की परिक्रमा करने वाला सुप्रसिद्ध ध्रुवनक्षत्र वेदविद्याप्रवर्त्तक अभिजिन्नक्षत्र पर विद्यमान था, उस समय भौमत्रैलोक्य में वेदविद्यापारङ्गत अनेक महर्षि विचरण करते थे। तत् कालीन केवल गृहस्थ ऋषियों की ही सङ्ख्या ५०००० (पचास हजार) थी। इनके अतिरिक्त आबाल ब्रह्मचारी वीतराग महर्षियों की संख्या ८८००० (अट्ठासी हजार) थी। ये ब्रह्मचारी विद्या के अभ्युदय के लिए सांसारिक स्त्रीपुत्रादि साधारण सुख सामग्री का एकान्ततः (जन्म से ही) परित्याग करते हुए विश्व के तत्वानुसंधान में प्रवृत्त रहते थे। येही महर्षि ऊर्ध्वरेता कह-लाते थे। उन्हीं महामहर्षियों की प्रतिभा, कार्यकुशलता, सत्यप्रवणता, एवं परिपूर्ण गवेषणा (खोज) का यह फल है कि, आज हम वेदशास्त्र नाम से प्रसिद्ध उस दिव्यविभूति के अधि-पति बन रहे हैं, जिसके कि सामने वर्त्तमान युग का सुसमृद्ध वैज्ञानिक जगत् भी श्रद्धा से अपना मस्तक नत किए हुए है, एवं जिस योग्यता का ग्रन्थ संस्कृत साहित्य की कौन कहै, समस्त भूमण्डल के साहित्य में उपलब्ध नहीं होसकता। अस्तु कहना यही है कि, ऊर्ध्वरेता इन मह-र्षियों ने ही वेदग्रन्थों का निर्म्माण किया है। इस मत के उपोद्बलक निम्न लिखित प्रमाण द्रष्टव्य है—

> १—अष्टाशीति सहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
> प्रजावतां च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव ॥
> (म. भा. सभा. ११ अ०।) १।
>
> २—ब्रह्मकल्पे पुराब्रह्मन् ब्रह्मर्षीणां समागमे।
> लोकसम्भवसन्देहः समुत्पन्नो महात्मनाम् ॥ २ ॥

१—हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर। उर्ध्वरेता महर्षि संख्या में ८८००० हैं एवं प्रजायुक्त गृहमेधी (गृहस्थ) महर्षि ५०००० हैं।१।

२—हे ब्रह्मन्! पुरायुग (देवयुग) में, जोकि युग ब्रह्मकल्प नाम से प्रसिद्ध है, महर्षियों के समागम में उन महात्मा महर्षियों के हृदय में लोक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हुआ।२।

तेऽतिष्ठन् ध्यानमालम्ब्य मौनमास्थाय निश्चलाः ।
त्यक्ताहाराः पवनपा दिव्यं वर्षशतं द्विजाः ॥ ३ ॥
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत् ।
दिव्या सरस्वती तत्र स्वं बभूव नभस्तलात् ॥ ४ ॥

३—यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः । (शत० ब्रा०) ।१।
एष वै ऋषिरार्षेयो यः शुश्रुवान् । (,,....) ।२।
तस्मादेतद् ऋषिणाभ्यनूक्तम् । (,,....) ।३।
तदेतद् ऋषिः पश्यन्नभ्युवाच । (,,....) ।४।
ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते कवयः ।
तानेव तदभ्यतिवदति । (ऐ० ब्रा० ६।४) ।५।

इस सन्देह की निवृत्ति के लिये (विश्वोत्पत्तिविज्ञानार्थ) इन महर्षियोंने ध्यान योग का आश्रय लेते हुए, मौनव्रतधारण करते हुए सर्वथा निश्चलभाव से प्रतिष्ठित होते हुए, अन्नाहार का एकान्ततः परित्याग करते हुए, केवल वायु पर अवलम्बित रहते हुए एकसहस्र दिव्यवर्षों तक तप किया ।३।

इस तप के प्रभाव से उत्पन्न उन महर्षियों की दिव्यवाणी (वेदवाणी) सब लोगोंने सुनी । वह दिव्या सरस्वती उन के मुख से अपने आप आकाशमार्ग से प्रकट हुई ।४।

३—वेदसाक्षात्कर्त्ता, एवं वेदवक्ता ऋषि ही आर्षेय (ऋषिगोत्रप्रवर्त्तक) हैं ।१।
वही ऋषि आर्षेय है, जोकि वेदों को यथावत् सुनचुका है ।२।
इसी अभिप्राय से ऋषिने यह कहा है ।३।
इस सम्पूर्ण वैज्ञानिक रहस्य का साक्षात्कार करके ऋषि कहते हैं ।४।
जो ऋषि हमारे पूर्वज थे, वे ही (वेदमन्त्रों के निर्म्माता) कवि थे । उन्हीं को यह कह रहा है ।५।

४—नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।
मा मा ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः माहुर्दैवीं वाचमुद्यसम् ॥ (मै० श्रुतिः)

५—यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवा तपसा श्रमेण ।
तां देवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके ॥

६—ऋषिवचनाच्च । ऋषिवचनं वेदः । यथा किञ्चिद्दिव्यार्थं आहरेत् । इति ।
(सुश्रुतसूत्रस्थान अ० ४०) ।

६—यह वेद वसिष्ठादि ७ महर्षियों का वाक्य है । (३८)

यह शब्दात्मक वेद वसिष्ठादि सात महर्षियों का वाक्य है । आर्यसाहित्य में यद्यपि सप्तर्षिवर्ग अनेक भागों में विभक्त देखा जाता है, परन्तु इन में वेदप्रवर्त्तकसप्तर्षि गोत्रप्रवर्त्तकसप्तर्षि, एवं सृष्टिप्रवर्त्तकसप्तर्षि ये तीन वर्ग ही मुख्य माने जाते हैं । सृष्टिप्रवर्त्तक ऋषि वर्ग में एकर्षिवर्ग सप्तर्षिवर्ग भेदसे दो वर्ग हैं । यद्यपि—"विरूपास इदृषयस्तइद् गम्भीरवेपस." (ऋक्संहिता) के अनुसार सृष्टिप्रवर्त्तक ऋषि असंख्य हैं, तथापि चार-आत्मा, दो पक्ष, १ पुच्छप्रतिष्ठा भेद से सप्तपुरुषपुरुषात्मक प्रजापति से उत्पन्न होने वाली सप्तावयवभूता प्राजापत्यसृष्टि के सम्बन्ध से सबका सप्तसंख्या में ही अन्तर्भाव मान लिया जाता है । इन

४—मन्त्र बनाने वाले, मन्त्र जानने वाले मन्त्रपति उन ऋषियों को नमस्कार है । मुझे उन मन्त्रकृत- मन्त्रविदृषियों नें दैवीवाणी का उपदेश दिया है । मैं यावज्जीवन उस उपदेश को न भूलूं ।

५—जिस दिव्य वेदवाक् का देवतुल्य मन्त्रनिर्म्माता महर्षियोंनें तप एवं श्रम से अन्वेषण किया है, उस वाग्देवी का मैं हविर्द्रव्य से यजन करता हूं । वह मेरे आत्मा को पुण्यलोको में प्रतिष्ठित करै ।

६—ऋषिवचन से भी यही सिद्ध है । वेदऋषियों का वाक्य है + × + ।

तेऽतिष्ठन् ध्यानमालम्ब्य मौनमास्थायनिश्चलाः ।
सक्ताहाराः पवनपा दिव्यं वर्षशतं द्विजाः ॥ ३ ॥
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत् ।
दिव्या सरस्वती तत्र स्वं बभूव नभस्तलात् ॥ ४ ॥

३—यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः । (शत०ब्रा०) ।१।
एष वै ऋषिरार्षेयो यः शुश्रुवान् । (”....) ।२।
तस्मादेतद् ऋषिणाभ्यनूक्तम् । (”....) ।३।
तदेतद् ऋषिः पश्यन्नभ्युवाच । (”....) ।४।
ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते कवयः ।
तानेव तदभ्यतिवदति । (ऐ०ब्रा० ६।४) ।५।

इस सन्देह की निवृत्ति के लिये (विश्वोत्पत्तिविज्ञानार्थ) इन महर्षियोंनें ध्यान योग का आश्रय लेते हुए, मौनव्रतधारण करते हुए सर्वथा निश्चलभाव से प्रतिष्ठित होते हुए, अन्नाहार का एकान्ततः परित्याग करते हुए, केवल वायु पर अवलम्बित रहते हुए एकसहस्र दिव्यवर्षों तक तप किया ।३।

इस तप के प्रभाव से उत्पन्न उन महर्षियों की दिव्यवाणी (वेदवाणी) सब लोगोंनें सुनी । वह दिव्या सरस्वती उन के मुख से अपने आप आकाशमार्ग से प्रकट हुई ।४।

३—वेदसाक्षात्कर्त्ता, एवं वेदवक्ता ऋषि ही आर्षेय (ऋषिगोत्रप्रवर्त्तक) हैं ।१।
वही ऋषि आर्षेय है, जोकि वेदों को यथावत् सुनचुका है ।२।
इसी अभिप्राय से ऋषिने यह कहा है ।३।
इस सम्पूर्ण वैज्ञानिक रहस्य का साक्षात्कार करके ऋषि कहते हैं ।४।
जो ऋषि हमारे पूर्वज थे, वे ही (वेदमन्त्रों के निर्म्माता) कवि थे । उन्ही को यह कह रहा है ।५।

४—नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।
मा मा ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्राहुर्दैवीं वाचमुद्यसम् ॥ (मै० श्रुतिः)
५—यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवा तपसा श्रमेण ।
तां देवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके ॥
६—ऋषिवचनाच्च । ऋषिवचनं वेदः । यथा किञ्चिदित्यार्थ-आहरेत् । इति ।
(सुश्रुतसूत्रस्थान अ० ४०) ।

ε—यह वेद वसिष्ठादि ७ महर्षियों का वाक्य है । (३८)

यह शब्दात्मक वेद वसिष्ठादि सात महर्षियों का वाक्य है । आर्षसाहित्य में यद्यपि सप्तर्षिवर्ग अनेक भागों में विभक्त देखा जाता है, परन्तु इन में वेदप्रवर्त्तकसप्तर्षि, गोत्रप्रवर्त्तकसप्तर्षि, एवं सृष्टिप्रवर्त्तकसप्तर्षि ये तीन वर्ग ही मुख्य माने जाते हैं। सृष्टिप्रवर्त्तक ऋषि वर्ग में एकर्षिवर्ग सप्तर्षिवर्ग भेदसे दो वर्ग हैं । यद्यपि—"विरूपास इदृषयस्तइद् गम्भीरवेपसः" (ऋक्संहिता) के अनुसार सृष्टिप्रवर्त्तक ऋषि असंख्य हैं, तथापि चार-आत्मा, दो पक्ष, १ पुच्छप्रतिष्ठा भेद से सप्तपुरुषपुरुषात्मक प्रजापति से उत्पन्न होने वाली सप्तावयवभूता प्राजापत्यसृष्टि के सम्बन्ध से सबका सप्तसंख्या में ही अन्तर्भाव मान लिया जाता है । इन

४—मन्त्र बनाने वाले, मन्त्र जानने वाले मन्त्रपति उन ऋषियों को नमस्कार है । मुझे उन मन्त्रकृत-मन्त्रविदऋषियों नें दैवीवाणी का उपदेश दिया है । मैं यावज्जीवन उस उपदेश को न भूलूं ।

५—जिस दिव्य वेदवाक् का देवतुल्य मन्त्रनिर्म्माता महर्षियोंने तप एवं श्रम से अन्वेषण किया है, उस वाग्देवी का मैं हविर्द्रव्य से यजन करता हूं । वह मेरे आत्मा को पुण्यलोकों में प्रतिष्ठित करे ।

६—ऋषिवचन से भी यही सिद्ध है । वेदऋषियों का वाक्य है + × + ।

प्राणात्मक सृष्टिकर्त्ता ऋषियों के सर्वप्रथम द्रष्टा मनुष्य ऋषि भी उन्हीं प्राणऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। जिस विद्वान्ने सर्वप्रथम भृगुप्राण का साक्षात्कार किया, वह, एवं तद्वंशधर भृगु नाम से ही प्रसिद्ध हुए। एवमेव वसिष्ठ-विश्वामित्र-अङ्गिरा-कश्यप आदि तत्तद् प्राणों के परीक्षक तत्तद्विद्वान् भी वसिष्ठ-विश्वामित्र-अङ्गिरा-कश्यप आदि नामोंसे ही प्रसिद्ध हुए। जिस प्रकार प्राणात्मक ऋषि सृष्टिप्रवर्त्तक माने जाते हैं, एवमेव प्राणीरूप सात मनुष्य महर्षि **गोत्रप्रवर्त्तक** माने गए हैं। धर्मसूत्र के अनुसार आजदिन भारतवर्ष में सभी ब्राह्मण सप्तगोत्रों के मूलप्रवर्त्तक, सप्तर्षियों के ही वंशधर माने जाते हैं।

तीसरा विभाग वेदप्रवर्त्तकसप्तर्षियों का है। ये प्राणविध, प्राणीविध भेद से दो भागों में विभक्त हैं। शब्दात्मक वाङ्मय शास्त्रनामक वेद के प्रवर्त्तक प्राणिविध (मनुष्यविध) महर्षि हैं। एवं अग्निलक्षणवाङ्मय ब्रह्मसञ्ज्ञक वेद के प्रवर्त्तक प्राणविध नित्य ऋषि हैं। इन दोनो के ही—

१–भृगु, २–अङ्गिरा, ३–अत्रि, ४–मारीच–(मरीचिपुत्र)–कश्यप, ५–मत्स्य, ६–वसिष्ठ, ७–अगस्त्य, ८–कौशिक विश्वामित्र, ९–पुलस्त्य, १०–पुलह, ११–क्रतु, १२–प्राचेतस दक्ष इत्यादि नाम सुने जाते हैं।

सर्वप्रथम वेदकर्त्ता महर्षियों की १–मत्स्य, २–वसिष्ठ, ३–अगस्त्य ४–भृगु' ५–अङ्गिरा, ६–अत्रि, ७–कश्यप, ८–भरद्वाज, भेद से आठ संख्याएं उपलब्ध होती हैं। इन में से मत्स्य ऋषि को छोड़ कर शेष सातों **गोत्रप्रवर्त्तक**, एवं **शाखाप्रवर्त्तक** माने जाते हैं। इन्हीं सात गोत्रों में वेदों का संतनन विशेष रूप से रहा। वास्तव में इन्हीं सातों को, एवं सातों के वेदद्रष्टा वंशधरों को वेदों के प्रवर्त्तक मुख्य आचार्य मानना चाहिए। इन में से किसी गोत्र के तो मूलपुरुष ही विशेषयोग्यताशाली हुए हैं। वसिष्ठ–अगस्त्य–अत्रि तीनों मूलपुरुष इसी कोटि में हैं। इन के वंशधरों ने इन के समान प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की। किन्तु विश्वामित्रगोत्री मधुच्छन्दा मूलपुरुष से भी आगे बढ़गए। एवमेव भृगु तथा अङ्गिरागोत्र में भी इनके वंशधरों ने मूल पुरुषों से कहीं अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। ऋग्वेद में जैसी प्रसिद्धि भार्गव गृत्समद की देखी

जाती है, वैसी साक्षात् भृगु की भी नहीं। इसी प्रकार अङ्गिरागोत्र में पुत्रों की श्रेणि में अथर्वा, एवं बृहस्पति ने, पौत्रों की श्रेणि में गोतम-भरद्वाज-कण्व प्रगाथ ने, प्रपौत्रों की श्रेणि में वामदेव और कक्षीवान् नें जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है; वह सौभाग्य मूलपुरुषभूत स्वयं अङ्गिरा को भी प्राप्त नहीं हुआ। अङ्गिरावंशज तत्कालमें जगद्गुरु एवं सर्वश्रेष्ठ मानेजाते थे। आगे जाकर इन की महत्ता यहां तक बढी कि, इन को सप्तर्षिगणना में सम्मिलित कर लिया गया। यही दूसरा सप्तक १-भरद्वाज, २-कश्यप, ३-गोतम, ४-अत्रि, ५-विश्वामित्र ६-जमदग्नि, ७-वसिष्ठ इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन सब का क्रमबद्ध उल्लेख ऋग्वेदानुक्रमणिका के ९ मण्डल के ६७ वें सूक्त में द्रष्टव्य है।

१—गोत्रप्रवर्त्तकाः सप्तर्षयः

१-भरद्वाजः। २-कश्यपः। ३-गोतमः। ४-अत्रिः। ५-विश्वामित्रः। ६-जमदग्निः। ७-वसिष्ठः।
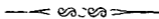
२—वेदप्रवर्त्तकाः सप्तर्षयः

१-वसिष्ठः। २-अगस्त्यः। ३-भृगुः। ४-अङ्गिराः। ५-अत्रिः। ६-कश्यपः। ७-भरद्वाजः।

३—सृष्टिप्रवर्त्तकाः सप्तर्षयः

१-मरीचिः। २-अङ्गिराः। ३-अत्रिः। ४-वसिष्ठः। ५-पुलस्त्यः। ६-पुलहः। ७-क्रतुः।

उक्त प्रपञ्च से प्रकृत में हमें केवल यही कहना है कि, वेद में जितनें भी मन्त्र उपल-

प्राणात्मक सृष्टिकर्त्ता ऋषियों के सर्वप्रथम द्रष्टा मनुष्य ऋषि भी उन्हीं प्राणऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। जिस विद्वान्ने सर्वप्रथम भृगुप्राण का साक्षात्कार किया, वह, एवं तद्वंशधर भृगु नाम से ही प्रसिद्ध हुए। एवमेव **वसिष्ठ विश्वामित्र अङ्गिरा-कश्यप** आदि तत्तद् प्राणों के परीक्षक तत्तद्विद्वान् भी वसिष्ठ विश्वामित्र-अङ्गिरा कश्यप आदि नामोंसे ही प्रसिद्ध हुए। जिस प्रकार प्राणात्मक ऋषि सृष्टिप्रवर्त्तक माने जाते हैं, एवमेव प्राणीरूप सात मनुष्य महर्षि **गोत्रप्रवर्त्तक** माने गए हैं। धर्म्मसूत्र के अनुसार आजदिन भारतवर्ष में सभी ब्राह्मण सप्तगोत्रों के मूलप्रवर्त्तक, सप्तर्षियों के ही वंशधर माने जाते हैं।

तीसरा विभाग वेदप्रवर्त्तकसप्तर्षियों का है। ये **प्राणविध, प्राणीविध** भेद से दो भागों में विभक्त हैं। शब्दात्मक वाङ्मय शास्त्रनामक वेद के प्रवर्त्तक प्राणिविध (मनुष्यविध) महर्षि हैं, एवं अग्निलक्षणवाङ्मय ब्रह्मसञ्ज्ञक वेद के प्रवर्त्तक प्राणविध नित्य ऋषि हैं। इन दोनों के ही—

१–**भृगु**, २–**अङ्गिरा**, ३–**अत्रि**, ४–मारीच–(मरीचिपुत्र)–**कश्यप**, ५–मत्स्य, ६–वसिष्ठ, ७–अगस्त्य, ८–कौशिक **विश्वामित्र**, ९–पुलस्त्य, १०–पुलह, ११–क्रतु, १२–प्राचेतस **दक्ष** इत्यादि नाम सुने जाते हैं।

सर्वप्रथम वेदकर्त्ता महर्षियो की १–मत्स्य, २–वसिष्ठ, ३–अगस्त्य ४–भृगु' ५–अङ्गिरा, ६–अत्रि, ७–कश्यप, ८–भरद्वाज, भेद से आठ सङ्ख्याए उपलब्ध होती हैं। इन में से मत्स्य ऋषि को छोड़ कर शेष सातों **गोत्रप्रवर्त्तक** एवं **शाखाप्रवर्त्तक** माने जाते हैं। इन्हीं सात गोत्रों में वेदों का सन्तनन विशेष रूप से रहा। वास्तव में इन्हीं सातों को, एवं सातों के वेदद्रष्टा वंशधरों को वेदों के प्रवर्त्तक मुख्य आचार्य मानना चाहिए। इन में से किसी गोत्र के तो मूलपुरुष ही विशेषयोग्यताशाली हुए हैं। **वसिष्ठ–अगस्त्य–अत्रि** तीनों मूलपुरुष इसी कोटि में हैं। इन के वंशधरों नें इन के समान प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की। किन्तु विश्वामित्रगोत्री मधुच्छन्दा मूलपुरुष से भी आगे बढ़गए। एवमेव भृगु तथा अङ्गिरागोत्र में भी इनके वंशधरों नें मूलपुरुषों से कहीं अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। ऋग्वेद में जैसी प्रसिद्धि भार्गव गृत्समद की देखी

जिसे प्रमाणभूत मानते हुए तदनुकूल व्यवहार में लारहे हों, ऐसी प्रामाणिक, शिष्यानुगृहीत कथा को "आम्नायवचन" कहा जाता है । यह आम्नायवचन स्वतःप्रमाण होते हुए सर्वथा सत्य होते हैं । इसी सनातनविश्वास के अनुसार धर्म्म, एवं विज्ञान के सम्बन्ध में जो जो कथारूप (सूक्तरूप) वाक्य (मन्त्र) जिन जिन देशों में, जिन जिन ऋषियों के घरानों में विशेषरूप से सुने जारहे थे, एवं जिन जिन वाक्यों (मन्त्रों) के अनुसार उन उन ऋषिसम्प्रदायों में चिरकाल से यज्ञादि धर्म्मक्रियाओं का अनुवर्त्तन चला आरहा था, उन सब वाक्यरूपमन्त्रों, किंवा मन्त्ररूप वाक्यों का महाभारतकाल में भगवान् वेदव्यास ने बड़ी सावधानी से संग्रह कर उन्हें चार भागों में विभक्त किया । प्रत्येक विभाग के क्रमशः २१-१०१-१०००-६ इतने संग्रहग्रन्थ हुए । ये ही वेदसंहिताएं कहलाईं । स्वयं व्यास ने इसी मत का समर्थन किया है, जैसाकि निम्न लिखित वचनों से स्पष्ट होजाता है—

१—आम्नायवचनं सत्यमित्ययं लोकसंग्रहः ।
आम्नायेभ्यः पुनर्वेदाः प्रसूताः सर्वतो मुखाः ॥
(म० शा० २६१ अ० २५६ श्लो०) ।

२—आम्नायमार्षं पश्यामि यस्मिन् वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
तं विद्वांसोऽनुपश्यन्ति ब्राह्मणस्यानुदर्शनात् ॥

मताभास

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (का०) इस श्रौतसूत्रसिद्धान्त के अनुसार यद्यपि वेदग्रन्थ विद्वत्समाज में मन्त्र-ब्राह्मण भेद से दो भागों में विभक्त माने जाते हैं । परन्तु इन दोनों में संहिता को ही (इन में भी उपलब्ध-वैदिकप्रेस अजमेर में मुद्रित चार संहिताओं को ही) वेद कहना चाहिए । क्योंकि ये चारों संहिताएं ही ईश्वरप्रोक्त हैं । शेष शाखारूप संहिताएं, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषत् आदि भाग शुद्ध पौरुषेय हैं, ईश्वरप्रोक्त नहीं । भिन्न

न्ध होते हैं, वे सब उक्त सातों वेदप्रवर्त्तक महर्षियों, एवं तद्वंशधरों के ही कहे हुए हैं। अनुक्रमणिका, बृहद्देवता, सम्पूर्णऋग्वेद, सायणभाष्य, इतिहास (महाभारत), पुराण सब में विशेषरूप से इसी मत का समर्थन हुआ है। निम्न लिखित मन्त्र भी यही कह रहा है—

> १—यज्ञेन वाचः पदवीयमायंस्तमन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
> तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभिसन्नवन्ते ॥
> (ऋक्सं० ८।२।२३।३)।

७—यह वेद आम्नायवचनों से संगृहीत है। (३९ मत)

लोकपरम्परा से जनश्रुति के आधार पर जो वाक्य चिरकाल से चले आते हैं, जिन के मूलप्रवर्त्तक का पता नहीं है, ऐसे वाक्यों को ही 'अम्नायवचन" कहा जाता है। जब तक इन किंवदन्तीरूप आम्नायवचनों का पूर्णपरीक्षा द्वारा मिथ्यात्व सिध्द नहीं हो जाता, तब तक ऐतिहासिक प्रमाणों की भांति आम्नायवचनों को भी प्रमाणभूत ही माना जाता है। सम्भवतः देवयुग से ही सृष्टिविद्या के सम्बन्ध में अज्ञातनामा तत्तद्विद्वानों का जो अन्वेषण हुआ, एवं उस अन्वेषण के आधार पर वे धर्म्म-विज्ञानतत्त्व जिन अज्ञातविद्वानो द्वारा शब्द-द्वारा प्रयुक्त हुआ, चिरकाल से चले आनेवाले वे आम्नायवचन जहां जिस रूप से सुने गए, अपान्तरतमा महर्षि के अवतार कृष्णद्वैपायन ने उन उन प्रवादवाक्यों को उन उन ऋषिसम्प्रदायों से पूर्ण अनुसन्धान द्वारा सगृहीत कर उनका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बना डाला। वही आम्नायवचनसग्रह—"मन्त्रसहिता" नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी सहितानिर्म्माण के कारण कृष्णद्वैपायन "वेदे व्यासज्ञो यस्य" इस निर्वचन के अनुसार वेदव्यास नाम से प्रसिद्ध हुए।

प्रकारान्तर से देखिए। जो कथा लोकपरम्परा से चिरकाल से व्यवहार में चली आ-रही हो, किन्तु जिस कथा के सम्बन्ध में "प्रथमप्रवर्त्तक अमुक व्यक्ति था" यह पता न चले, जो केवल श्रुति परम्परा से (कानोंकान) सदैव सुनी जाती हो, साथ ही में शिष्टविद्वान्

भिन्न ऋषियों नें भिन्न भिन्न काल में इन का निर्माण किया है । वे ब्राह्मणग्रन्थ आजदिन उन के कर्चा ऋषियों के नाम से ही पैङ्गच कौषीतकि, ऐतरेय, तैत्तिरीय, शाङ्खायन इत्यादि रूप से प्रसिद्ध हैं। कौन ब्राह्मण किस ऋषि की कृति है ! यह तत्तद्ब्राह्मणग्रन्थों को देखनें से ही स्पष्ट होजाता है ।

उक्त मत मत नहीं, किन्तु केवल कल्पनामात्र है । इसी लिए हमनें इसे मताभास कहा है। यह मत सर्वथा अवैज्ञानिक है, वेदतत्वानभिज्ञ सामान्यमनुष्य की कपोलकल्पनामात्र है। इस मत का उपोद्बलक कोई शास्त्रीय वचन नहीं है।

:o:

उक्त सातों मतों का— 'वेदमहर्षिकृत हैं, पौरुषेय हैं अनित्य हैं" इस ५ वें वैशेषिक मत के साथ समन्वय है। अत एव इन सातों को हमनें वैशेषिकमत में अन्तर्भूत माना है।

५—वेदमहर्षिकृत है, पौरुषेय है, अनित्य है। (वैशेषिकमत)।

१—३३→यह वेद देवर्षियों का वाक्य है।
२—३४→यह वेद अजपृश्नि का वाक्य है।
३—३५→यह वेद ब्रह्मर्षि का वाक्य है।
४—३६→यह वेद अपान्तरतमा का वाक्य है।
५—३७→यह वेद ऊर्ध्वरेता ऋषियों का वाक्य है।
६—३८→यह वेद सप्तर्षियों का वाक्य है।
७—३९→यह वेद आम्नायवचनों से सगृहीत वाक्यग्रन्थ हैं।
०— ०→वेद का संहिता भाग ईश्वरकृत है, ब्राह्मणभाग महर्षिकृत है (मताभास)

इति-वैशेषिकमतप्रदर्शनम्।

५

६-अवान्तरमतत्रययुक्तं—

नास्तिकदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शनम्

६—नास्तिकदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शन

इस मत के सम्बन्धमें हमें कुछ भी वक्तव्य नहीं है। कारण स्पष्ट है। नास्तिक-र्शन की मूलभित्ति अभिनिवेश (हट-दुराग्रह) है। एवं अभिनिविष्ट का सन्तोष करना सर्वथा असम्भव है—"नतु प्रविनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेद्"। नास्तिकों का स्वरूप बतलाते ए अभियुक्त कहते हैं—

> नास्तिवेदोदितोलोक इति येषां मतिः स्थिरा।
> नास्तिकास्ते····················· ॥१॥
> अवैदिकप्रमाणानां सिद्धान्तानां प्रदर्शकाः।
> चार्वाकाद्याः षड्विधास्ते ख्यातालोकेषु नास्तिकाः ॥२॥

जो अवैज्ञानिक मनुष्य विज्ञानघन वैदिकतत्वों को समझने में असमर्थ होते हुए वेद-तिपादित परलोक-आत्मा-परमात्मा-आत्मगति-श्राद्ध-अवतार-मूर्त्तिपूजन-वर्णाश्रम-व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में अपने अभिनिवेश से—"यह सब कुछ मिथ्या है" यह दृढ नश्चय रखते हैं, प्रतिवादशून्य वेही व्यक्ति नास्तिक कहलाते हैं। ये लोग वेदविरुद्ध, स्वकपो-कल्पित, सर्वथा नवीन, नितान्तभ्रान्त सिद्धान्तों से सामान्य जनता को मोह में डाला करते हैं। इनके—चार्वाक माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, आर्हत ये ६ भेद हैं। भी वेदमार्ग के विरुद्ध जाने वाले हैं। इनमें नास्तिकों के शिरोमणि बृहस्पति माने गए हैं। बृहस्पति मत का अनुगमन करने वाले चार्वाकों का कहना है कि—"पृथिवी, जल, तेज, वायु भेद से चार तत्व हैं। इन चारों भूतों के समन्वयविशेष (सुवी) से शरीर में अपने आप चेतना का उदय होजाता है। शरीरनाश के साथ साथ ही चेतना भी नष्ट होजाती है। चैतन्यवि-शिष्ट शरीर ही आत्मा है। शरीर से अतिरिक्त कोई नित्य-आत्मा नहीं है। तीनों वेद, एवं तद प्रतिपादित कर्मकलाप धूर्तों का प्रलापमात्र है। शारीरव्याधि ही नरक है, शरीरस्वास्थ्य ही स्वर्ग है। प्रजा को सुखी रखने वाला राजा ही परमेश्वर है। देह का विनाश ही मोक्ष है।

६—नास्तिकदर्शनाभिमत-मतप्रदर्शन

इस मत के सम्बन्धमें हमें कुछ भी वक्तव्य नहीं है । कारण स्पष्ट है । नास्तिकदर्शन की मूलभित्ति अभिनिवेश (हट-दुराग्रह) है । एवं अभिनिविष्ट का सन्तोष करना सर्वथा असम्भव है—"नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्" । नास्तिकों का स्वरूप बतलाते हुए अभियुक्त कहते हैं—

> नास्तिवेदोदितोलोक इति येषां मतिः स्थिरा ।
> नास्तिकास्ते························· ॥१॥
> अवैदिकप्रमाणानां सिद्धान्तानां प्रदर्शकाः ।
> चार्वाकाद्याः षड्विधास्ते ख्यातालोकेषु नास्तिकाः ॥२॥

जो अवैज्ञानिक मनुष्य विज्ञानघन वैदिकतत्वों को समझने में असमर्थ होते हुए वेदप्रतिपादित परलोक-आत्मा-परमात्मा-आत्मगति-श्राद्ध-अवतार-मूर्त्तिपूजन-वर्णाश्रम-व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में अपने अभिनिवेश से-"यह सब कुछ मिथ्या है" यह दृढ निश्चय रखते हैं, अतिवादशून्य वेही व्यक्ति नास्तिक कहलाते हैं । ये लोग वेदविरुद्ध, स्वकपोलकल्पित, सर्वथा नवीन, नितान्तभ्रान्त सिद्धान्तों से सामान्य जनता को मोह में डाला करते हैं । इनके—चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, आर्हत ये ६ भेद हैं । सभी वेदमार्ग के विरुद्ध जाने वाले हैं । इनमें नास्तिकों के शिरोमणि बृहस्पति माने गए हैं । बृहस्पति मत का अनुगमन करने वाले चार्वाकों का कहना है कि—"पृथिवी, जल, तेज, वायु भेद से चार तत्त्व हैं । इन चारों भूतों के समन्वयविशेष (सुर्वी) से शरीर में अपने आप चेतना का उदय होजाता है । शरीरनाश के साथ साथ ही चेतना भी नष्ट होजाती है । चैतन्यविशिष्ट शरीर ही आत्मा है । शरीर से अतिरिक्त कोई नित्य-आत्मा नहीं है । तीनों वेद, एवं तत्प्रतिपादित कर्मकलाप धूर्त्तों का प्रलापमात्र है । शारीरव्याधि ही नरक है, शरीरस्वास्थ्य ही स्वर्ग है । प्रजा को सुखी रखने वाला राजा ही परमेश्वर है । देह का विनाश ही मोक्ष है ।

सम्पूर्ण जगत् अपने आप स्वभाव से ही–उत्पन्न एवं नष्ट होता रहता है, जैसा कि आचार्य कहते हैं —

> अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः ।
> केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥

इस नास्तिकमत के अनुसार वेद स्वार्थलोलुप, अवैज्ञानिक, ग्रामीणमनुष्यों की रचनामात्र है । इस मत के अवान्तर तीन मतविभाग माने जासकते हैं । इनका संक्षेप से दिग्दर्शन करा के मतवादप्रकरण समाप्त किया जाताहै ।

१—यह वेद स्वार्थीमनुष्यों के स्वार्थसिद्धि का द्वारभूत वाक्यसंग्रहमात्र है । (४० मत)

चार्वाकशिरोमणि वृहस्पति का कहना है कि, पुरायुग में अपनी तीक्ष्णबुद्धि के प्रभाव से तत्कालीन मानवसमाज में अपने आप को सर्वश्रेष्ट, ईश्वर के मुख से उत्पन्न कहने वाले ब्राह्मणवर्गने संसार को धोका देने के लिए तद्युगीय ग्राम्यभाषा में अपने नामों से वाक्य बनाकर, उन्हें ईश्वर का सन्देश कहते हुए सर्वथा कल्पित स्वर्गादि की विभीषिका उपस्थित की है । इन धूर्तों का वह स्वार्थसाधक ग्राम्यभाषामय असत् साहित्य ही वेद है । इस मत के उपोद्बलक निम्नलिखित वचन हैं ।

> १—न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
> नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥१॥
> अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
> प्रज्ञापौरुषहीनानां जीविकेति वृहस्पतिः ॥२॥

१—न स्वर्ग नाम का कोई अभ्युदयसाधक परलोक है, न अपवर्ग नाम का निःश्रेयसंसाधक कोई मुक्तिधाम है । न (अनित्य शरीर से अतिरिक्त) परलोकगामी कोई (नित्य) आत्मा है । एवं न वर्णाश्रमधर्म्मानुकूल धर्म्मकर्म्म किसी उत्कृष्ट फल के देने वाले हैं ।१।

प्रातः सायं किया जाने वाला, जरामर्यसत्र नाम से प्रसिद्ध (वेदप्रतिपादित)

२—पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हन्यते ॥३॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेद् तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पना ॥४॥
यदि गच्छेद् परं लोकं देहादेष विनिर्गतः ।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥५॥

अग्निहोत्र, ऋग्–यजुः-साम भेद भिन्न तीनों वेद, आध्यात्मिक–आधिभौतिक–आधिदैविक भेदभिन्न तीनों दण्ड, अथवा कायिक–वाचिक-मानसिक पापों के फलरूप तीनों दण्ड, अथवा त्रिवर्ण के सन्यासियों के लिए विहित तीन दण्ड, अथवा वाक्–धिक्–पौरुषदण्ड, ललाट पर भस्मावलेप, ये सब प्रपञ्च बुद्धि एवं पुरुषार्थशून्य अकर्मण्य मनुष्यों की जीविका के साधन हैं ।२।

२–"ज्योतिष्टोम नाम से प्रसिद्ध सोमयाग में मारा गया पशु स्वर्ग में जायगा" यदि यह वेद वचन सत्य है, तो फिर यजमान अपने पिता का ही (यज्ञ में) वध क्यों नहीं कर डालता । भला अपने पिता को स्वर्ग कौन नहीं पहुंचाना चाहेगा ।३।

मृतप्राणियों के लिए यदि श्राद्ध का अन्न तृप्ति का कारण बनता है, तो फिर विदेश जाते हुए यात्री को पाथेय (मार्गभोजन) देना व्यर्थ है । जिस मार्ग से परलोक जैसे विदूर लोकस्थ प्राणी को अन्न पहुचा दिया जाता है, क्या उसी मार्ग से इसी लोक में पाथेय नहीं पहुंचाया जासकता ? ।४।

यदि आत्मा नाम का (कल्पित) जीव इस शरीर को छोड़कर परलोक चला जाता है, तो वह क्यों नहीं अपने बन्धुओं के स्नेह से आकर्षित होकर कभी कभी उन से मिल जाया करता ।५।

मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद् विद्यते क्वचित् ॥
३—त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्ड-धूर्त्त-निशाचराः ।
जीवहिंसां प्रशंसन्ति यज्ञे मांसाशनेच्छया ॥६॥
दर्शयन्ति च देहान्ते स्वर्गसौख्यप्रलोभनम् ।
देवदुश्चरितं चाक्षुर्मनोरञ्जनहेतवः ॥७॥
४—असारं सर्वमत्रोक्तं न किञ्चित्तत्वमस्ति हि ।
नास्तीश्वरस्तस्माद् भयं मिथ्या प्रदर्श्यते ॥८॥
यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥९॥

मृतमनुष्यों के (सिवाय जलाने के) और कोई प्रेतकार्य बाकी नहीं बचता है ।

३–भांड-धूर्त्त-निशाचर ये तीन ही वेद के रचयिता हैं । यह लोग मांस खाने की इच्छा से यज्ञ में पशुवध की प्रशंसा करते हैं ।६।

साथ ही में शरीर के मरने पर स्वर्गसुख का प्रलोभन देते हैं । अर्थात् कहते हैं कि, यज्ञकर्त्ता भी इस शरीर से पृथक् होने पर स्वर्ग जायगा, साथ ही में यज्ञ में मारे हुए पशु का भी आत्मा स्वर्ग जायगा । जिन मनुष्यों को इन्होंने देवता मान रक्खा है, उनके दुश्चरित्रों को (इन्द्र का जारत्व-विष्णु का मोहिनी रूप धारण आदि को) ये देवताओं का मनोविनोद बतलाते हैं ।७।

४—वस्तुतः वेदों में जो कुछ कहा गया है, वह सर्वथा निःसार है । इनमें, एवं इनके अनुयाई ब्राह्मणों के कथन में कुछ भी तत्त्व नहीं है । ईश्वर नाम का कोई पदार्थ नहीं है । ये धूर्त्त ईश्वर के नाम से जनता को झूंठा भय दिखलाते रहते हैं ।८।

मनुष्य को चाहिए कि, वह जब तक जीवे, सुख से जीवे । कर्ज करके घृतपान करे । भला खाक में मिला पुतला भी कहीं फिर कर्ज चुकाने वापस आया है ।९।

* श्रीः *

विषयोपक्रम

क ही वेदपदार्थ के सम्बन्ध में जैमिनि–व्यास, उदयनाचार्य, गोतम, कपिल, कणाद आदि दार्शनिकों के भिन्न भिन्न विचार हैं। आगे जाकर आस्तिकवर्ग की यह विचारधारा ३९ भागों में विभक्त होजाती है। ऐसी दशा में–"एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाकोट्यवगाहि ज्ञानं संशयः" इस लक्षण के अनुसार एक ही वेदापौरुषेयत्व–पौरुषेयत्व के सम्बन्ध में परस्पर में सर्वथा विरुद्ध अनेक मतवादों के उपस्थित होनें से एक तटस्थ जिज्ञासु के हृदय में सन्देह का प्रादुर्भूत होना सर्वथा अनिवार्य है। इन सन्देहों की निवृत्ति का एकमात्र उपाय है–**वैज्ञानिक वेद का स्वरूप परिचय प्राप्त करना**। वेद का वैज्ञानिक स्वरूप समझलेने के पीछे पूर्वप्रतिपादित सभी मतवादों का यथावत् समन्वय होजाता है। वेद का वैज्ञानिक स्वरूप समझलेने के पश्चात् आप वेदों को '**नित्यकूटस्थ अपौरुषेय**' भी कह सकते हैं '**ईश्वरकृत**' भी मान सकते हैं, '**ईश्वरावतारकृत**' भी मान सकते हैं, '**प्राकृतिक**' भी मान सकते हैं, एवं '**महर्षिकृत**' भी कह सकते हैं। अवारपारीण एक ही विज्ञानधरातल पर सब दार्शनिकमत प्रतिष्ठित हैं। अपनी अपनी दृष्टि से सभी मत सत्य हैं। सत्याधार उसी वैज्ञानिक वेद की ओर विज्ञ पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

१–वैज्ञानिक वेद में मूलवेदनिरुक्ति

राग–द्वेष पाप पुण्य सुख–दुःख, सत्–असत्, निरुक्त–अनिरुक्त, मूर्त्त–अमूर्त्त अहः–रात्रि, शुक्ल कृष्ण, विद्या–अविद्या, सर्ग–प्रलय, उत्पत्ति–विनाश, आगति–गति, अग्नी–सोम, शीत–ग्रीष्म, पति–पत्नी, पुरुष–प्रकृति राजा–प्रजा, गुरु–शिष्य, पिता–पुत्र, स्वामी–सेवक, आदि आदि असंख्य द्वन्द्वभावों से नित्य समाकुलित,

मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद् विद्यते क्वचित् ॥
३—त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्ड-धूर्त्त-निशाचराः ।
जीवहिंसां प्रशंसन्ति यज्ञे मांसाशनेच्छया ॥६॥
दर्शयन्ति च देहान्ते स्वर्गसौख्यप्रलोभनम् ।
देवदुश्चरितं चाहुर्मनोरञ्जनहेतवः ॥७॥
४—असारं सर्वमत्रोक्तं न किञ्चित्तत्त्वमस्ति हि ।
नास्तीश्वरस्तस्माद् भयं मिथ्या प्रदर्श्यते ॥८॥
यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥९॥

मृतमनुष्यों के (सिवाय जलाने के) और कोई प्रेतकार्य बाकी नहीं बचता है ।

३—भांड-धूर्त्त-निशाचर ये तीन ही वेद के रचयिता हैं । यह लोग मांस खाने की इच्छा से यज्ञ में पशुवध की प्रशंसा करते हैं ।६।

साथ ही में शरीर के मरने पर स्वर्गसुख का प्रलोभन देते हैं । अर्थात् कहते हैं कि, यज्ञकर्त्ता भी इस शरीर से पृथक् होने पर स्वर्ग जायगा, साथ ही में यज्ञ में मारे हुए पशु का भी आत्मा स्वर्ग जायगा । जिन मनुष्यों को इन्होंने देवता मान रक्खा है, उनके दुश्चरित्रों को (इन्द्र का जारत्व-विष्णु का मोहिनी रूप धारण आदि को) ये देवताओं का मनोविनोद बतलाते हैं ।७।

४—वस्तुतः वेदों में जो कुछ कहा गया है, वह सर्वथा निःसार है । इनमें, एवं इनके अनुयाई ब्राह्मणों के कथन में कुछ भी तत्त्व नहीं है । ईश्वर नाम का कोई पदार्थ नहीं है । ये धूर्त ईश्वर के नाम से जनता को झूंटा भय दिखलाते रहते हैं ।८।

मनुष्य को चाहिए कि, वह जब तक जीवे, सुख से जीवे । कर्ज करके घृतपान करे । भला खाक में मिला पुतला भी कहीं फिर कर्ज चुकाने वापस आया है ।९।

करने के पश्चात् अन्तःकरण से तुम्हें बतलाता हूं कि ब्रह्मने हीं सम्पूर्ण भुवनों को धारण कर रक्खा है, एवं ब्रह्म हीं भुवनों का अध्यक्ष है।

श्रुति के उक्त प्रश्न, एवं समाधान को सामान्य मनुष्य नहीं समझ सकते। "ब्रह्म ही वन था, ब्रह्म ही वृक्ष था। उस वृक्ष से त्रैलोक्य बनगया" केवल इन अक्षरों से अस्मदादि साधारण जन अपनी जिज्ञासा शान्त नहीं कर सकते। सृष्टिविषयक सभी प्रश्नों का विशद वैज्ञानिक समाधान ईशोपनिषद्विज्ञानभाष्य में किया जाचुका है। यदि प्रकृत में भी उसका पिष्ट पेषण किया जायगा तो आवश्यकता से अधिक विस्तार और भी अधिक विस्तृत होजायगा फलतः प्रतिपाद्यविषय में संकोच करना पड़ेगा। इसलिए यहां इस सम्बन्ध में हम केवल यही कह देना पर्य्याप्त समझते हैं कि जिस ब्रह्म को श्रुतिने वन बतलाया है, वह परात्पर ब्रह्म है। सर्वबल विशिष्ट रस ही का नाम परात्पर है। यही परमेश्वर है। परात्पर-परमेश्वर निःसीम है, व्यापक है। दिग्देशकाल से अनवच्छिन्न है। जिस प्रकार एक अरण्य की इयत्ता अननुमेया होती है, उसी प्रकार असीम परात्पर की इयत्ता नहीं की जासकती। इसी आंशिक सादृश्य को लेकर श्रुतिने परात्परब्रह्म की वन के साथ तुलना की है-(देखिए ई० वि० भा० प्र० ख० प्राक्कथन १८पृष्ठ से पृष्ठ २७पर्यन्त)।

उस व्यापक परात्पर में ससीम असंख्य मायाबल हैं। अमित को मित (सीमित) बना देनेवाला सर्वबलकोशाधिष्ठाता ज्येष्ठ-एवं श्रेष्ठ बलविशेष ही "माया" नाम से व्यवहृत हुआ है। इन मायाबलों का परात्परधरातल के जिस जिस प्रदेश में उदय होता है, वह परात्पर प्रदेश मायारूप पुर से सीमित होता हुआ पुरुष' नाम धारण करलेता है। मायाबल चूंकि असंख्य हैं, अतएव मायाबलावच्छिन्न असंख्य ही मायीपुरुष उस व्यापक परात्पर धरातल पर उदित होजाते हैं। जिसप्रकार एक महा अरण्य में थोड़े थोड़े, अथवा अधिक अधिक फासले पर अनन्त वृक्ष प्ररोहित रहते हैं, ठीक इसी प्रकार महाअरण्यस्थानीय इस व्यापक परात्पर प्रदेश में वृक्षस्थानीय असंख्य मायीपुरुष प्रतिष्ठित रहते हैं। प्रत्येक मायीपुरुष एक एक स्वतन्त्र

विविधभावाक्रान्त, स्थावरजङ्गमात्मक इस मायामय विश्व का मूल क्या है ? किस से यह विश्व उत्पन्न हुआ है ? किस आधार पर यह विश्व प्रतिष्ठित है ? इत्यादि प्रश्नों की अपनी ओर से उत्थानिका करती हुई साथ ही में इन प्रश्नों का सम्यक् समाधान करती हुई श्रुति कहती है—

(प्रश्नश्रुति) १—किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आसीत,
यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तत,
यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥१॥ ?

(उत्तरश्रुति)२—ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत,
यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा वि ब्रवीमि वः,
ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥२॥

(तै० ब्रा० २।८।९।६-७) इति ।

१—"वह कौन सा वन (जङ्गल) था, उस वन में वह कौनसा वृक्ष था जिसे काट-छांट कर पृथिवी-द्यु-अन्तरिक्षरूप त्रैलोक्य बना दिया गया । हे विद्वानों ! अपने मन से उक्त दोनों प्रश्नों का विचार करते हुए सृष्टिविद्या के आचार्यों से उक्त प्रश्नों का उत्तर पूंछो । साथ ही में उन्हीं आचार्यों से यह भी पूंछो कि जिस तत्त्वने इन सातों भुवनों को अपने ऊपर धारण कर रक्खा है, साथ ही में जो तत्त्व सातों का नियन्ता बन रहा है, वह कारणब्रह्म कौन है ?"

२—(आचार्य उत्तर देते हैं)-'ब्रह्म ही वह वन था, उस वन में ब्रह्म ही वृक्ष था, जिस ब्रह्म वृक्ष को काट-छांट कर त्रैलोक्य बना दिया गया । हे प्रश्नकर्त्ता विद्वानों ! मैं पूर्ण अन्वेषण

दानारम्भण है, शुक्र उपादान है, स्वयं विश्व कार्य है। ये सब एक ही परात्पर ब्रह्म के विवर्त्त हैं। वही ब्रह्म मायावच्छेदेन वृत्तब्रह्म बना है । वही योगमायावच्छेदेन विश्व बना है—"तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते"। वही लोकात्मक है, वही लोक है–'तस्य लोकाः, स उ लोक एव' (बृ० आ० ४।४।१३)। इसी आत्माद्वैतसिद्धान्त को लक्ष्य में रखकर पूर्व की प्रश्नोत्तर श्रुतियोंनें सर्वत्र "ब्रह्म" शब्द का ही व्यवहार किया है।

१—परात्परब्रह्म→"ब्रह्मवनम्"

२—पुरुषब्रह्म—

ईश्वर है। प्रत्येक ईश्वर का एक एक स्वतन्त्र विश्व है। परात्पर में ऐसे असंख्य ईश्वर, किंवा विश्वेश्वर हैं, अतएव वह इन ईश्वरों की अपेक्षा परमेश्वर कहलाता है। परमेश्वर जहां एक है, वहां ईश्वर असंख्य हैं। जङ्गल एक होता है, परन्तु उसमें वृक्ष अनेक होते हैं। (देखिए ई० वि० भा० प्र० पुरुषनिरुक्तिप्रकरण २६५ पृष्ठ से २८३ पृ० पर्यन्त)

वृक्षरूप पुरुष को उपनिषत्–एवं गीताशास्त्रने अश्वत्थवृक्ष नाम से सम्बोधित किया है। इस अश्वत्थवृक्ष की एकसहस्र शाखाएं मानी गईं हैं। प्रत्येक शाखा एकएक क्षुद्र विश्व है। प्रत्येक विश्व में भूः–भुवः–स्वः–महः–जनः–तपः–सत्यम् ये सात सात लोक हैं। सप्तवितस्तिकायात्मक शाखेश्वर ही उपेश्वर है। ईश्वर के गर्भ में ऐसे सहस्र उपेश्वर हैं। सहस्रों-उपेश्वरों को अपने गर्भ में रखने वाला अश्वत्थेश्वर वृक्षवत् स्तब्ध खड़ा है। यही ईश्वरवृक्ष विश्वात्मक भुवनों का अन्यतम अध्यक्ष है, जैसा कि निम्न लिखित मन्त्रवर्णन से स्पष्ट है—

यस्मात् परं नापरमपरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥

इस अश्वत्थेश्वर पूर्णपुरुष के अमृत-ब्रह्म-शुक्र ये तीन विवर्त्त हैं। तीनों में क्रमशः ३–५–३ ये अवान्तर विभाग हैं। अव्यय–अक्षर-आत्मक्षर की समष्टि "अमृतम्" है। प्राण–आपः–वाक्–अन्न–अन्नाद की समष्टि ब्रह्म है। वाक्–आप–अग्नि की समष्टि "शुक्रम्" है। इन तीनों से अतिरिक्त उस व्यापक परात्पर का भी इसमें समावेश है। वही तुरीयपद है। इसप्रकार पुरुषब्रह्म चतुष्पाद होजाता है। इन चारों में परात्पर-अमृत-ब्रह्म ये तीन पाद तो अक्षुण्ण रहते हैं, शेष चौथा शुक्रपाद विश्वरूप में परिणत होता है—(देखिए ई० शुक्रनिरुक्ति)। इसी अभिप्राय से "त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादो स्येहाभवत् पुनः" यह कहा जाता है। सम्पूर्ण वृक्षब्रह्म विश्व नहीं बनता, अपितु उसका एक भाग ही विश्व बना है, यही बात बतलाने के लिए पूर्व श्रुतिने "वृक्ष को काट कर भुवन बनाये हैं" यह कहा है। परात्परावच्छिन्न अव्यय विश्व का आलम्बन है, अक्षर कर्त्ता है क्षर उपादानमूल है, ब्रह्म उपा-

'इन्द्र और विष्णु नाम के दोनों देवताओंनें सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया है। ये दोनों किसी से भी पराजित नहीं होते हैं। साथ ही में इन दोनों में भी एक दूसरे से कभी कोई (परस्पर में) नहीं हारा है। इन्द्र विष्णु दोनोंनें जव "अप्" तत्त्व पर स्पर्द्धा की, तो इन्होंनें अपनें स्पर्द्धारूप वीरण से तीन साहस्रियाँ उत्पन्न कर दीं। वे तीन साहस्रियाँ कौनसी हैं? यदि कोई यह प्रश्न करे, तो उसे कहना चाहिए कि, ये तीनों लोक, ये तीनों वेद, और वाक्, ये ही तीन साहस्रियाँ हैं"।

विचार यह करना है कि, इन्द्र-विष्णु कौन हैं? इन की स्पर्द्धा का क्या स्वरूप है? जिस अप्तत्व पर ये स्पर्द्धा करते हैं, वह अप्तत्व क्या पदार्थ है? एवं लोक, वेद, वाक्, नाम की तीनों साहस्रियों का क्या स्वरूप है? इन प्रश्नों की मीमांसा के लिए हमें आत्ममीमांसा करनी पड़ेगी। "स वा एप आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः" (बृहदारण्यक) इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा मनःप्राणवाङ्मय है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि, एक ही आत्मा तीन स्वरूपों में परिणत होरहा है। मनोमय आत्मा पहिला पर्व है। मन ज्ञानशक्तिघन है, अतएव हम इस आत्मा को ज्ञानात्मा' कह सकते हैं। ज्ञान ही को विद्या कहते हैं, अतएव यही "विद्यामयआत्मा" कहलाने लगता है। प्राणमय आत्मा दूसरा पर्व है। प्राण क्रियाशक्तिघन है, क्रिया ही कर्म्म है, अतः हम इसे 'कर्म्मात्मा' कह सकते हैं। कर्म ही एक प्रकार का वीर्य्य (शक्ति-बल) है, अतएव इसे हम "वीर्य्यमयआत्मा" भी कह सकते हैं। उसी आत्मा का तीसरा विवर्त्त वाङ्मय है। वाक् अर्थशक्तिघन है, अर्थ को ही भूत कहते हैं, अतएव इसे हम 'भूतात्मा' कह सकते हैं। मनःप्राणवाक्, तीनों त्रिवृद्भावापन्न रहते हैं, जिस त्रिवृद्भाव का कि ईशभाष्य के 'मनःप्राणवाक् के त्रिवृद्भाव की व्यापकता' प्रकरण में विस्तार से निरूपण किया जाचुका है (देखिए, ई०उ०प्र० खण्ड)। इस त्रिवृद्भाव का तात्पर्य्य पञ्चीकरण प्रक्रिया से गतार्थ है। अर्द्धभाग में मन, अर्द्धभाग में शेप प्राण-वाक्, इस त्रिवृतकरण से जो मनःप्रधान-(प्राणवागृगर्भित) एक अपूर्व स्वरूप उत्पन्न होता है, उसे ही हम यहां मनोमय आत्मा कहेंगे। इसीप्रकार प्राणप्रधान (मनो-वाग्गर्भित) अपूर्वभाव को प्राणमय आत्मा, एवं वाक्प्रधान (मनः-

१—परात्परः
२—अमृतम्
३—ब्रह्म
४—शुक्रम्
→ 'चतुष्पाद्ब्रह्म–त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः-पादोऽस्येहाभवत् पुनः'

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"–"नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म को सच्चिदानन्दघन बतला रहीं हैं। साथ ही में 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्"–"प्रजापतिस्त्वेवेदं सर्वं यदिदं किञ्च" इत्यादि श्रुतियाँ उसी ब्रह्म को विश्वरूप में परिणत मान रहीं हैं। इससे हमें मानना पड़ता है कि, विश्वमूल ब्रह्म भी सच्चिदानन्द है, एवं इस मूलब्रह्म के अंशरूप से उत्पन्न विश्व भी सच्चिदानन्द ही है। पूर्व में बतलाया गया है कि, चतुष्पाद्ब्रह्म का शुक्रभाग ही विश्वरूप में परिणत हुआ है, एवं उस शुक्र के वाक्–आपः–अग्नि ये तीन विवर्त्त हैं। इन तीनों में वाक् ही मूलशुक्र है। "वाग्विराताश्च वेदाः" के अनुसार वेदतत्व इसी वाक्शुक्र का विवर्त्त है। इसी वाङ्मय सच्चिदानन्दलक्षण वेद को हम इस वेदप्रकरण में–'मूलवेद' कहेंगे।

वाङ्मय इस मूलवेद के विकास के लिए ब्रह्मा–विष्णु–महेश, नामक तीन देवता व्यापार करते हैं। पुराण के मतानुसार तीनों वेदों के प्रवर्त्तक उक्त तीनों देवता ही हैं, जैसा कि आगे जाकर स्पष्ट होजायगा। निगमशास्त्र के मतानुसार वेद का प्रादुर्भाव ब्रह्मा–विष्णु–इन्द्र इन तीन देवताओं के 'वीरण' (प्रतिस्पर्द्धारूप उत्तेजना) से हुआ है, जैसाकि निम्नलिखित मन्त्रवर्णन से स्पष्ट है—

"उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्च नैनोः।
इन्द्रश्च विष्णू यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम्॥
किं तत् सहस्रमिति ? इमे लोकाः, इमे वेदाः,
अथो वाक्–इति ब्रूयात्" (ऐ०ब्रा० ६।१५)।

'इन्द्र और विष्णू नाम के दोनों देवताओंने सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया है। ये दोनों किसी से भी पराजित नहीं होते हैं। साथ ही में इन दोनों में भी एक दूसरे से कभी कोई (परस्पर में) नहीं हारा है। इन्द्र विष्णू दोनोंनें जब "अप्" तत्त्व पर स्पर्द्धा की, तो इन्होंनें अपनें स्पर्द्धारूप वीरण से तीन साहस्रियाँ उत्पन्न कर दीं। वे तीन साहस्रियाँ कौनसीं है? यदि कोई यह प्रश्न करे, तो उसे कहना चाहिए कि, ये तीनों लोक, ये तीनों वेद, और वाक्, ये ही तीन साहस्रियाँ हैं"।

विचार यह करना है कि, इन्द्र-विष्णु कौन हैं? इन की स्पर्द्धा का क्या स्वरूप है? *जिस अप्तत्व पर ये स्पर्द्धा करते हैं, वह अप्तत्व क्या पदार्थ है? एवं लोक, वेद, वाक्, नाम* की तीनों साहस्रियों का क्या स्वरूप है? इन प्रश्नों की मीमांसा के लिए हमें आत्ममीमांसा करनी पड़ेगी। **"स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः"** (बृहदारण्यक) इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा मनःप्राणवाङ्मय है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि, एक ही आत्मा तीन स्वरूपों में परिणत होरहा है। **मनोमय** आत्मा पहिला पर्व है। मन **ज्ञानशक्तिघन** है, अतएव हम इस आत्मा को **ज्ञानात्मा'** कह सकते हैं। ज्ञान ही को विद्या कहते हैं, अतएव यही **"विद्यामयआत्मा"** कहलाने लगता है। **प्राणमय** आत्मा दूसरा पर्व है। प्राण **क्रियाशक्तिघन** है, क्रिया ही कर्म्म है, अतः हम इसे **'कर्म्मात्मा'** कह सकते हैं। कर्म्म ही एक प्रकार का **वीर्य्य** (शक्ति-बल) है, अतएव इसे हम **"वीर्य्यमयआत्मा"** भी कह सकते हैं। उसी आत्मा का तीसरा विवर्त्त **वाङ्मय** है। वाक् **अर्थशक्तिघन** है, अर्थ को ही भूत कहते हैं, अतएव इसे हम **'भूतात्मा'** कह सकते हैं। मनःप्राणवाक्, तीनों त्रिवृद्भावापन्न रहते हैं, जिस त्रिवृद्भाव का कि ईशभाष्य के 'मनःप्राणवाक् के त्रिवृद्भाव की व्यापकता' प्रकरण में विस्तार से निरूपण किया जाचुका है (देखिए, ई०उ०प्र० खण्ड)। इस त्रिवृद्भाव का तात्पर्य्य **पञ्चीकरण** प्रक्रिया से गतार्थ है। अर्द्धभाग में मन, अर्द्धभाग में शेष प्राण-वाक्, इस त्रिवृत्करण से जो **मनःप्रधान-**(प्राणवाग्गर्भित) एक अपूर्व स्वरूप उत्पन्न होता है, उसे ही हम यहां मनोमय आत्मा कहेंगे। इसीप्रकार **प्राणप्रधान** (मनो-वाग्गर्भित) अपूर्वभाव को प्राणमय आत्मा, एवं **वाक्प्रधान** (मनः-

प्राणगर्भित) अपूर्वभाव को वाङ्मय आत्मा कहा जायगा । मनोमय ज्ञानात्मा वाक्-प्राण से युक्त होता हुआ अर्थ–क्रिया से भी युक्त है । प्राणमय कर्म्मात्मा मनो-वाक् से युक्त होता हुआ ज्ञान–अर्थ से भी युक्त है । एवमेव वाङ्मय भूतात्मा मनः-प्राण से युक्त होता हुआ ज्ञान-क्रिया से भी युक्त है । इस कथन से हमें इस निश्चय पर पहुंचना पड़ा कि, जिसे हम ज्ञानात्मा कहते हैं, वह केवल ज्ञानमय ही नहीं है, अपितु वह कर्म–अर्थ का भी सञ्चालक है । एवमेव कर्म्मात्मा, एवं भूतात्मा भी विशुद्ध कर्म्म, एवं भूतमय ही नहीं हैं, अपितु तीनों में तीनों शक्तियाँ विद्यमान हैं, । हां गौण-मुख्यभाव का अवश्य ही तारतम्य है । इस विशेषभाव के कारण ही तो ताच्छब्द्य न्याय के अनुसार इन्हें क्रमशः–ज्ञानात्मा–कर्म्मात्मा–भूतात्मा, इन नामों से व्यवहृत किया जाता है ।

सर्वप्रथम मनःप्रधान ज्ञानात्मा की तीनों कलाओं का ही विचार कीजिए । इस पक्ष में रसतत्त्व को ही ज्ञान कहा जायगा । इस रस के साथ बल का संयोग होता है, बल की चिति होती है । परन्तु असंग रस की प्रधानता से इस आत्मा पर बल अपना पूर्ण प्रभाव नहीं जमा सकता । इस आत्मा की वह अवस्था, जिस पर बलने कोई अधिकार नहीं जमाया है, बल सर्वात्मना जिसके गर्भ में विलीन है, ऐसे विशुद्ध ज्ञान, किंवा विशुद्ध रसपर्व को ही-"आनन्द" कहा जाता है–'रसो ह्येव सः" । यही पहिली मनःकला का उपभोग है । आगे जाकर बल का कुछ विकास होता है । बल कुर्नदूरूप है । उदित होते ही यह क्षोभ उत्पन्न कर देता है । क्षुब्धबलावच्छिन्न रस की यह दूसरी (आंशिक) कुर्नदूरूपावस्था ही "विज्ञान" नाम से प्रसिद्ध है । विज्ञान में ज्ञान भी है, तो क्रिया का भी आंशिक रूप से उदय होरहा है । तभी तो विज्ञान के सम्बन्ध में–"विज्ञायते" इस क्रियापद का प्रयोग होता है । यही दूसरी प्राणकला का उपभोग है । बल कुछ मात्रा में और चित होता है, कुछ स्थूलता आजाती है । यही स्थूलता भूतभाव है । इससे वह आत्मा भूताविष्ट होजाता है । यही इसका तीसरा "मन" विभाग है । मन में भौतिक विषय का संसर्ग होने की योग्यता है । यही तीसरी वाककला का उपभोग है । इस प्रकार ज्ञानघन मन से आनन्द का, क्रियाघन प्राण से विज्ञान का, एवं अर्थघना वाक

से मन का उदय होजाता है। इन तीनों में प्रधानता मनोमय रस की ही है। अतएव इसे हम मनोविवर्त्त ही कहेंगे, यही पहिला ज्ञानात्मा, किंवा आत्मा का त्रिकल विद्या-भाग है। यह सर्वथा असंग है। *द्वन्द्वभावों से इस आत्मविवर्त्त का कोई सम्बन्ध नहीं है।*

१—मनोमयो ज्ञानात्मा-विद्याविवर्त्तम्

१-ज्ञानात्मा ← { विशुद्धरसः——आनन्दः——मनोमयः / बलोदयावच्छिन्नरसः——विज्ञानम्——प्राणमयम् / बलव्यापारावच्छिन्नरसः——मनः (अन्तर्मनः)-वाङ्मयम } →मनोविवर्त्तम्

तदित्थं मनोमये ज्ञानात्मनि, आत्मनो विद्याविभागे वा
मनसस्त्रिवृद्भावेन मनः प्राण-वाचां सम्बन्धात्-कलोदयः।

——:o:——

दूसरा प्राणप्रधान कर्म्मात्मा है। क्रियातत्त्व, क्रियाशक्ति ही प्राण है। पूर्व में हमनें बल से क्रियाभाव का विकास बतलाया है। *बात यथार्थ में यह है कि, बल की अवस्था-*विशेषों ही का नाम क्रमशः **बल—प्राण—क्रिया,** है। एक ही बल तीन अवस्थाओं में परिणत होरहा है। इन तीनों का प्रत्यक्ष किया जासकता है। आप अपने हाथों से अभी कोई काम नहीं कर रहे, परन्तु काम करने की शक्ति विद्यमान है। यही शक्तिरूप बल 'बल' है। यह इसकी सुप्तावस्था है। इस अवस्था में इस बल को हम बल शब्द से ही व्यवहृत करेंगे। आपने कार्य आरम्भ कर दिया, सुप्तबल जाग्रत होगया, कुर्वद्रूप बनगया। इसी अवस्था में यह बल 'प्राण' नाम से व्यवहृत होता है। काम करते करते आपके हाथ थक जायंगे। आप अनुभव करेंगे कि, मेरे हाथों की शक्ति निकल गई। *इसी आधार पर आपको मानना पड़ेगा कि, प्राणरूप में परि-*णत बल खर्च होरहा है। यही बल की तीसरी निर्गच्छत् अवस्था है। इसी को वैज्ञानिक लोग 'क्रिया' शब्द से व्यवहृत करते हैं। इस प्रकार वही मूलबल उक्त तीनों अवस्थाओं के कारण अन्त में "कर्म्म" रूप में परिणत होजाता है। इसी आधार पर हमनें प्राणप्रधान आत्मा को

प्राणगर्भित) अपूर्वभाव को वाङ्मय आत्मा कहा जायगा । मनोमय ज्ञानात्मा वाक्-प्राण से युक्त होता हुआ अर्थ–क्रिया से भी युक्त है । प्राणमय कर्म्मात्मा मनो-वाक् से युक्त होता हुआ ज्ञान–अर्थ से भी युक्त है । एवमेव वाङ्मय भूतात्मा मनः-प्राण से युक्त होता हुआ ज्ञान-क्रिया से भी युक्त है । इस कथन से हमें इस निश्चय पर पहुंचना पड़ा कि, जिसे हम ज्ञानात्मा कहते हैं, वह केवल ज्ञानमय ही नहीं है, अपितु वह कर्म्म–अर्थ का भी सञ्चालक है । एवमेव कर्म्मात्मा, एवं भूतात्मा भी विशुद्ध कर्म्म, एवं भूतमय ही नहीं हैं, अपितु तीनों में तीनों शक्तियाँ विद्यमान हैं, । हा गौण-मुख्यभाव का अवश्य ही तारतम्य है । इस विशेषभाव के कारण ही तो ताच्छब्द्य न्याय के अनुसार इन्हें क्रमशः–ज्ञानात्मा–कर्म्मात्मा- भूतात्मा, इन नामों से व्यवहृत किया जाता है ।

सर्वप्रथम मनःप्रधान ज्ञानात्मा की तीनों कलाओं का ही विचार कीजिए । इस पक्ष में रसतत्व को ही ज्ञान कहा जायगा । इस रस के साथ बल का संयोग होता है, बल की चिति होती है । परन्तु असंग रस की प्रधानता से इस आत्मा पर बल अपना पूर्ण प्रभाव नहीं जमा सकता । इस आत्मा की वह अवस्था, जिस पर बलने कोई अधिकार नहीं जमाया है, बल सर्वात्मना जिसके गर्भ में विलीन है, ऐसे विशुद्ध ज्ञान, किंवा विशुद्ध रसपर्व को ही 'आनन्द' कहा जाता है–'रसो ह्येव सः" । यही पहिली मनःकला का उपभोग है । आगे जाकर बल का कुछ विकास होता है । बल कुर्दद्रूप है । उदित होते ही यह क्षोभ उत्पन्न कर देता है । क्षुब्धबलावच्छिन्न रस की यह दूसरी (आंशिक) कुर्दद्रूपावस्था ही "विज्ञान" नाम से प्रसिद्ध है । विज्ञान में ज्ञान भी है, तो क्रिया का भी आंशिक रूप से उदय होरहा है । तभी तो विज्ञान के सम्बन्ध में–"विज्ञायते" इस क्रियापद का प्रयोग होता है । यही दूसरी प्राणकला का उपभोग है । बल कुछ मात्रा में और चित होता है, कुछ स्थूलता आजाती है । यही स्थूलता भूतभाव है । इससे यह आत्मा भूताविष्ट होजाता है । यही इसका तीसरा "मन" विभाग है । मन में भौतिक विषय का संसर्ग होने की योग्यता है । यही तीसरी वाक्कला का उपभोग है । इस प्रकार ज्ञानघन मन से आनन्द का, क्रियाघन प्राण से विज्ञान का, एवं अर्थघना वाक

वाक्तत्त्व वाक्–आपः–अग्नि, इन तीन स्वरूपों में परिणत होजाता है। वाक् में मनोकला का, आपः में प्राणकला का, एवं अग्नि में वाक्कला का उपभोग है। इस तीसरे विवर्त्त में प्रधानता वाक्-रूप अन्न की ही है। अतएव हम इसे वाग्विवर्त्त ही कहेंगे। वाक् आकाश है, आकाशात्मिका मर्त्या वाक् ही वल-ग्रन्थि तारतम्य से क्रमशः वायु–तेज–जल–पृथिवी रूप में परिणत होती हुई पञ्चभूतमयी बन जाती है। पाञ्चभौतिकवर्ग ही अन्न है। अन्नात्मक भूत के सम्बन्ध से ही यह वाङ्मय आत्मा भूतात्मा कहलाया है।

३—वाङ्मयो भूतात्मा—"अन्नविवर्त्तम्"

३-भूतात्मा — { रसगर्भिता वाक्———वाक् (मनोमयी) / सुप्तरसगर्भिता वाक्———आपः (प्राणमय्यः) / रसनिगलिता वाक्———अग्निः (वाङ्मयः) } —वाग्विवर्त्तम्

तदित्थं वाङ्मये भूतात्मनि, आत्मनोऽन्नभागे वा वाच-
स्त्रिवृद्भावात् मनः-प्राण-वाचां सम्बन्धात् कलोदयः।

———०:०———

४—त्रयाणां समष्टिः

१—१—आनन्दः (मनोमयं मनः) / २—२—विज्ञानम् (मनोमयः प्राणः) / ३—३—मनः (मनोमयी वाक्) } —विद्या—त्रिवृन्मनः—ज्ञानात्मा

४—१—मनः (प्राणमयं मनः) / ५—२—प्राणः (प्राणमयः प्राणः) / ६—३—वाक् (प्राणमयी वाक्) } —वीर्य्यम्—त्रिवृतः प्राणः—कर्म्मात्मा

७—१—वाक् (वाङ्मयं मनः) / ८—२—आपः (वाङ्मयः प्राणः) / ९—३—अग्निः (वाङ्मयी वाक्) } —अन्नम्—त्रिवृता वाक्—भूतात्मा

"स वा एष आत्मा—वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः" (इत्याह:—)

———:०:———

कर्म्मात्मा नाम से सम्बोधित किया है । इस कर्म्मात्मा में भी बलचिति का तारतम्य है । जितना रस,उतना बल रस-बल की इस साम्यावस्था ही पहिली **मनःकला** है । विद्यात्मक मन अन्तर्मुख होता हुआ अन्तर्म्मन था, यह मन बहिर्मुख बनता हुआ **बहिर्म्मन** है । मन में रसात्मक ज्ञान, तथा बलात्मक कर्म्म, दोनो का समावेश है । अतएव मन से जहा प्रज्ञामात्रा-प्रधान **ज्ञानेन्द्रियों** का सञ्चालन होता है, वहा इसी सर्वेन्द्रिय मन से प्राणमात्रा-प्रधान **कर्म्मेन्द्रियों** का भी सञ्चालन होता है-'**उभयात्मकं मनः**" । यही त्रिवृदात्मा की **मनःकला** का उपभोग है । आगे जाकर बल क्रमशः बढ़ने लगता है । इस दूसरी अवस्था को ही "**प्राण**" कहा जाता है । बल की चिति और होती है । इस अन्तिम चिति से रसरूप ज्ञान दब जाता है, केवल बल की ही प्रधानता रहजाती है । इसी तृतीयावस्था का नाम 'वाक्" है । प्राण में **प्राणकला** का उपभोग है, वाक् में **वाक्कला** का उपभोग है । तीनों की समष्टि कर्म्मात्मा है । इसमें प्रधानता प्राण की है, अतएव इसे हम प्राणविवर्त्त ही कहेगे । यह **ससञ्ज्ञासञ्ज्ञ** है, जैसा कि आगे जाकर स्पष्ट हो जायगा ।

-२—प्राणमयः कर्म्मात्मा—"वीर्यविवर्त्तम्"

२-कर्म्मात्मा—	रसबलयोः साम्यावस्था——मनः (मनोमयम्)		—प्राणविवर्त्तम्
	रसगर्भितं बलम्————प्राणः (प्राणमयः)		
	सुप्तरसगर्भितं बलम्——वाक् (वाङ्मयी)		

तदित्थं प्राणमये कर्म्मात्मनि, आत्मनो वीर्यभागे वा प्राणस्य त्रिवृद्भावात्-मनः-प्राण-वाचां सम्बन्धात् कलोदयः ।

——— o.o ———

तीसरा है वाक्प्रधान भूतात्मा । अर्थतत्व, किंवा अर्थशक्ति ही वाक्तत्व है । इस वाक्तत्व की भी रस-बल के तारतम्य से तीन अवस्थाएं हो जाती हैं । वाक् को रसप्रधान समझिए । बलचिति से यही वाक् अंशात्मना अप्-रूप में परिणत होजाती है । बल की और चिति होती है । इससे अप् तत्व आंशिकरूप से अग्निरूप में परिणत होजाता है । इसप्रकार एक ही

वास्तत्व वाक्-आपः- अग्नि, इन तीन स्वरूपों में परिणत होजाता है। वाक में मनोकला का, आप में प्राणकला का, एव अग्नि में वाक्कला का उपभोग है। इस तीसरे विवर्त्त में प्रधानता वाक् रूप अन्न की ही है। अतएव हम इसे वाग्विवर्त्त ही कहेगे। वाक् आकाश है, आकाशात्मिका मर्त्या वाक् ही वल ग्रन्थि तारतम्य से क्रमशः वायु-तेज-जल-पृथिवी रूप में परिणत होती हुई पञ्चभूतमयी बन जाती है। पाञ्चभौतिकवर्ग ही अन्न है। अन्नात्मक भूत के सम्बन्ध से ही यह वाङ्मय आत्मा भूतात्मा कहलाया है।

३—वाङ्मयो भूतात्मा—"अन्नविवर्त्तम्"

३-भूतात्मा — { रसगर्भिता वाक्———वाक् (मनोमयी) / सुप्तरसगर्भिता वाक्———आपः (प्राणमय्य) / रसनिगलिता वाक्———अग्नि (वाङ्मय) } —वाग्विवर्त्तम्

तदित्थं वाङमये भूतात्मनि, आत्मनोऽन्नभागे वा वाच-
स्त्रिवृद्भावात् मन प्राण-वाचा सम्बन्धात् कलोदयः।

—— ० ——

४—त्रयाणां समष्टिः

१—१—आनन्दः (मनोमय मन)
२—२—विज्ञानम् (मनोमय प्राणः)
३—३—मनः (मनोमयी वाक्)
} —विद्या—त्रिवृन्मन —ज्ञानात्मा

४—१—मन (प्राणमय मन)
५—२—प्राण (प्राणमय प्राण)
६—३—वाक् (प्राणमयी वाक्)
} —वीर्य्यम्—त्रिवृत प्राणः कर्म्मात्मा

७—१—वाक् (वाङ्मय मन)
८—२—आप (वाङ्मय प्राणः)
९—३—अग्निः (वाङ्मयी वाक्)
} —अन्नम्—त्रिवृता वाक्—भूतात्मा

"स वा एष आत्मा—वाङ्मयः 'प्राणमयो' मनोमय" इत्याह —)।

—— ० ——

कर्म्मात्मा नाम से सम्बोधित किया है । इस कर्म्मात्मा में भी बलचिति का तारतम्य है । जितना रस,उतना बल रस-बल की इस साम्यावस्था ही पहिली मनःकला है । नियामक मन अन्तर्मुख होता हुआ अन्तर्मन था, यह मन वहिर्मुख बनता हुआ वहिर्म्मन है । मन में रसात्मक ज्ञान, तथा बलात्मक कर्म्म, दोनों का समावेश है । अतएव मन से जहा प्रज्ञामात्रा प्रधान ज्ञानेन्द्रियों का सञ्चालन होता है, वहा इसी सर्वेन्द्रिय मन से प्राणमात्रा-प्रधान कर्म्मेन्द्रियों का भी सञ्चालन होता है-'उभयात्मकं मनः" । यही त्रिवृदात्मा की मनःकला का उपभोग है । आगे जाकर बल क्रमश' बढ़ने लगता है । इस दूसरी अवस्था को ही "प्राण" कहा जाता है । बल की चिति और होती है । इस अन्तिम चिति से रसरूप ज्ञान दब जाता है, केवल बल की ही प्रधानता रहजाती है । इसी तृतीयावस्था का नाम 'वाक्" हे । प्राण में प्राणकला का उपभोग है, वाक् में वाक्कला का उपभोग है । तीनों की समष्टि कर्म्मात्मा है । इसमें प्रधानता प्राण की है, अतएव इसे हम प्राणविवर्त्त ही कहेंगे । यह ससज्ञासज्ञ है , जैसा कि आगे जाकर स्पष्ट हो जायगा ।

२—प्राणमयः कर्म्मात्मा-"वीर्य्यविवर्त्तम्"

२-कर्म्मात्मा—	रसबलयो साम्यावस्था——मन (मनोमयम्)		—प्राणविवर्त्तम्
	रसगर्भित बलम्————प्राणः (प्राणमयः)		
	सुप्तरसगर्भित बलम्——वाक् (वाङ्मयी)		

तदित्थ प्राणमये कर्म्मात्मनि, आत्मनो वीर्य्यभागे वा प्राणस्य त्रिवृद्भावात्-मनः-प्राण-वाचा सम्बन्धात् कलोदयः ।

———००———

तीसरा है वाक्प्रधान भूतात्मा । अर्थतत्व, किंवा अर्थशक्ति ही वाक्तत्व है । इस वाक्तत्व की भी रस-बल के तारतम्य से तीन अवस्थाए हो जाती हैं । वाक् को रसप्रधान समझिए । बलचिति से यही वाक् अप्रात्मना अप्-रूप में परिणत होजाती है । बल की और चिति होती है । इससे अप् तत्व आंशिकरूप से अग्निरूप में परिणत होजाता है । इसप्रकार एक ही

वाक्तत्त्व वाक्-आपः-अग्नि, इन तीन स्वरूपों में परिणत होजाता है। वाक् में मनोकला का, आपः में प्राणकला का, एवं अग्नि में वाक्कला का उपभोग है। इस तीसरे विवर्त्त में प्रधानता वाक् रूप अन्न की ही है। अतएव हम इसे वाग्विवर्त्त ही कहेंगे। वाक् आकाश है, आकाशात्मिका मर्त्या वाक् ही बल-ग्रन्थि तारतम्य से क्रमशः वायु-तेज-जल-पृथिवी रूप में परिणत होती हुई पञ्चभूतमयी बन जाती है। पाञ्चभौतिकवर्ग ही अन्न है। अन्नात्मक भूत के सम्बन्ध से ही यह वाङ्मय आत्मा भूतात्मा कहलाया है।

३—वाङ्मयो भूतात्मा—"अन्नविवर्त्तम्"

३-भूतात्मा — { रसगर्भिता वाक्———वाक् (मनोमयी) / सुप्तरसगर्भिता वाक्——आपः (प्राणमय्यः) / रसानिगलिता वाक्——अग्निः (वाङ्मयः) } —वाग्विवर्त्तम्

तदित्थं वाङ्मये भूतात्मनि, आत्मनोऽन्नभागे वा वाच-
स्त्रिवृद्भावात् मनः-प्राण-वाचां सम्बन्धात् कलोदयः।

———o:o———

४—त्रयाणां समष्टिः

१—१—आनन्दः (मनोमयं मनः)
२—२—विज्ञानम् (मनोमयः प्राणः)
३—३—मनः (मनोमयी वाक्)
} —विद्या—त्रिवृन्मनः—ज्ञानात्मा

४—१—मनः (प्राणमयं मनः)
५—२—प्राणः (प्राणमयः प्राणः)
६—३—वाक् (प्राणमयी वाक्)
} —वीर्य्यम्—त्रिवृतः प्राणः-कर्म्मात्मा

७—१—वाक् (वाङ्मयं मन)
८—२—आपः (वाङ्मयः प्राणः)
९—३—अग्निः (वाङ्मयी वाक्)
} —अन्नम्—त्रिवृता वाक्—भूतात्मा

} "स वा एष आत्मा-वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः" (इत्यादिः—)

———:o:———

कर्म्मात्मा नाम से सम्बोधित किया है । इस कर्म्मात्मा में भी बलचिति का तारतम्य है । जितना रस,उतना बल रस-बल की इस साम्यावस्था ही पहिली मनःकला है । निद्यात्मक मन अन्तर्मुख, होता हुआ अन्तर्मन था, यह मन बहिर्मुख बनता हुआ बहिर्म्मन है । मन में रसात्मक ज्ञान, तथा बलात्मक कर्म्म, दोनों का समावेश है । अतएव मन से जहा प्रज्ञामात्रा-प्रधान ज्ञानेन्द्रियों का सञ्चालन होता है, वहां इसी सर्वेन्द्रिय मन से प्राणमात्रा-प्रधान कर्म्मेन्द्रियों का भी सञ्चालन होता है-' उभयात्मकं मनः" । यही त्रिवृदात्मा की मनःकला का उपभोग है । आगे जाकर बल क्रमशः बढने लगता है । इस दूसरी अवस्था को ही "प्राण" कहा जाता है । बल की चिति और होती है । इस अन्तिम चिति से रसरूप ज्ञान दब जाता है, केवल बल की ही प्रधानता रहजाती है । इसी तृतीयावस्था का नाम ' वाक्" है । प्राण में प्राणकला का उपभोग है, वाक् में वाक्कला का उपभोग है । तीनों की समष्टि कर्म्मात्मा है । इसमें प्रधानता प्राण की है, अतएव इसे हम प्राणविवर्त्त ही कहेंगे । यह ससज्ञासज्ञ है , जैसा कि आगे जाकर स्पष्ट हो जायगा ।

२—प्राणमयः कर्म्मात्मा—"वीर्य्यविवर्त्तम्"

२-कर्म्मात्मा — { रसबलयोः साम्यावस्था— —मनः (मनोमयम्) | रसगर्भितं बलम्— — —प्राणः (प्राणमयः) | सुप्तरसगर्भितं बलम्— —वाक् (वाङ्मयी) } —प्राणविवर्त्तम्

तदित्थं प्राणमये कर्म्मात्मनि, आत्मनो वीर्य्यभागे वा प्राणस्य
त्रिवृद्भावात्-मनः-प्राण-वाचां सम्बन्धात् कलोदयः ।

तीसरा है वाक्प्रधान भूतात्मा । अर्थतत्व, किंवा अर्थशक्ति ही वाक्तत्व है । इस वाक्तत्व की भी रस-बल के तारतम्य से तीन अवस्थाएं हो जाती हैं । वाक् को रसप्रधान समझिए । बलचिति से यही वाक् अंशात्मना अप्-रूप में परिणत होजाती है । बल की और चिति होती है । इससे अप् तत्व आंशिकरूप से अग्निरूप में परिणत होजाता है । इसप्रकार एक ही

१—ईश्वरविवर्त्त

	१—आनन्दः——ब्रह्ममयो ब्रह्मा	
१—अव्ययसंस्था —	२—विज्ञानम्——ब्रह्ममयो विष्णुः	—ज्ञानात्मानुग्रहीतस्त्रिवृन्मूर्त्तिः—ब्रह्मा—ज्ञानपतिः
	३—मनः——ब्रह्ममयः शिवः	

२—जीवविवर्त्त

	१—मनः——विष्णुमयो ब्रह्मा	
२—अक्षरसंस्था —	२—प्राणः——विष्णुमयो विष्णुः	—कर्म्मात्मानुग्रहीतस्त्रिवृन्मूर्त्तिः—विष्णुः—कर्म्मपतिः
	३—वाक्——विष्णुमयः शिवः	

३—विश्वविवर्त्त

	१—वाक्——शिवमयो ब्रह्मा	
३—क्षरसंस्था —	२—आपः——शिवमयो विष्णुः	—भूतात्मानुग्रहीतस्त्रिवृन्मूर्त्तिः—शिवः—भूतपतिः
	३—अग्निः——शिवमयः शिवः	

उक्त तीनों आत्मविवर्तों में क्रमशः अव्यय, अक्षर, आत्मक्षर, ये तीनों पुरुषात्मा उपभुक्त हैं। ज्ञानात्मा अव्ययानुग्रहीत है, कर्म्मात्मा अक्षरानुग्रहीत है, एवं भूतात्मा क्षरानुग्रहीत है। त्रिपुरुषानुग्रहीत त्रिकल आत्मा ही ईश्वर है, यही जीव है, यही जगत है। आत्मक्षर-अक्षरानुग्रहीत, भूतात्मा-कर्म्मात्मा को अपने गर्भ में रखने वाला, अव्ययानुग्रहीत 'ज्ञानात्मा' ही ईश्वर है। अव्यय-क्षरानुग्रहीत, ज्ञानात्मा-भूतात्मा को अपने गर्भ में रखने वाला, अक्षरानुग्रहीत 'कर्म्मात्मा' ही जीव है। एवं अव्यय-अक्षरानुग्रहीत, ज्ञानात्मा-कर्म्मात्मा को अपने गर्भ में रखने वाला, क्षरानुग्रहीत भूतात्मा' ही जगत् है। तीनों की समष्टि ही- सर्वम्" है। यही त्रिमूर्त्ति, है इस त्रिमूर्त्ति के आधार पर ही ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपा त्रिमूर्त्ति का विकास हुआ है एवं यही त्रिमूर्त्ति वेद की जननी है।

ब्रह्मा की मूलप्रतिष्ठा ईश्वर है, विष्णु की मूलप्रतिष्ठा जीव है, शिव की मूलप्रतिष्ठा जगत है। ब्रह्मा ज्ञानात्मा से अनुग्रहीत रहते हुए ज्ञानपति हैं, विष्णु कर्म्मात्मा से अनुग्रहीत होते हुए कर्म्मपति हैं, एव शिव भूतात्मा से अनुग्रहीत रहते हुए भूतपति हैं। तीनों कहने को तीन हैं। वस्तुत. एक ही मूर्त्ति की तीन विकासधाराएं हैं—"एका मूर्त्तिस्त्रयो-देवा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा"।

जिसप्रकार मनः प्राणवाङ्मय आत्मा त्रिवृद्भाव से नित्य युक्त है, एवमेव उक्त त्रिदेव-मूर्त्ति भी त्रिवृद्भाव से नित्य युक्त है। प्रत्येक देवता में इतर दोनों देवताओं का गौणरूप से उप-भोग होरहा है। ज्ञानात्मसंस्था में त्रिवृद्भावयुक्त ब्रह्मा का साम्राज्य है, कर्म्मात्मसंस्था में त्रिवृ-द्भावयुक्त शिव का साम्राज्य है, एवं भूतात्मसंस्था में त्रिवृद्भावयुक्त शिव का साम्राज्य है, जैसा कि निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट होजाता है।

१—मूलवेद में सच्चिदानन्द–आत्मलक्षण वेदनिरुक्ति—

त्मप्रकरण समाप्त हुआ। अब आत्मदृष्टि से मूलवेद का विचार आरम्भ किया जाता है। सच्चिदानन्दघन आत्मा ही विश्व का मूलाधार है। यही अपनी क्षरकला से विश्व बना हुआ है, अक्षरकला से विश्वकर्त्ता (विश्व का आत्मा) बना हुआ है, एवं अव्ययकला से विश्व का आलम्बन बना हुआ है। इस अव्ययब्रह्म की अवान्तर पाच कला मानी गई हैं। वे ही पाचों कलाए क्रमशः आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक्, नाम से प्रसिद्ध हैं। इन में मन–प्राण–वाक्, इन तीनों कलाओं की उन्मुग्धावस्था ही "सत्ता" है, विज्ञानभाव "चित्" है, आनन्द प्रसिद्ध है। इस प्रकार पाच कलाओं का तीन कलाओं में अन्तर्भाव होजाता है।

मूलप्रभवतत्त्व को–"यत उत्तिष्ठन्ति सर्वभावाः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'उक्थ' कहा जाता है। विश्व में जितने पिण्ड हैं, सब एक एक स्वतन्त्र उक्थ है। प्रत्येक के आनन्द-भाग से प्राणों का उत्थान हुआ करता है। इस आनन्दमय उक्थतत्त्व को सकेतभाषानुसार 'ऋक्' कहा जाता है। इन उक्थरूप यच्चयावत् ऋचाओं का जो मूलस्रोत है, उसे ही महदुक्थ, किंवा महोक्थ (सब से बड़ा उक्थ) कहा जाता है। महोक्थ में उक्थरूप सम्पूर्ण ऋचाएं अन्तर्भूत हैं, अतएव इस महोक्थरूपा ऋक् को– 'ऋचा समुद्रः' (ऋचाओं का समुद्र) कहा जाता है। "आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति" (तै० उ१०) इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार उक्थरूप सम्पूर्ण भौतिक प्रपञ्च का मूलप्रभव आनन्द ही है। अत' हम इसे अवश्य ही महोक्थ कह सकते हैं, एवं यही पहिला 'मूलऋग्वेद' है।

प्रत्येक पदार्थ सत्ताभाव से नित्य आक्रान्त रहता है। "अस्ति" प्रतीति सर्वत्र समानरूप से व्याप्त है। भाव भी है, अभाव भी है, इस प्रकार भावाभाव सर्वत्र सत्तारस मनुस्यूत

मूलवेद का दिग्दर्शन कराते हुए हमने आत्मा को 'सच्चिदानन्दघन' बतलाया है। इन तीनों आत्मकलाओं का क्रमशः ज्ञानात्मा–कर्म्मात्मा–भूतात्मा, इन तीन आत्मविवर्त्तों के साथ सम्बन्ध समझना चाहिए। ज्ञान–कर्म–भूतवत् आनन्दादि तीनों कलाओं का भी त्रिवृद्भाव अनिवार्य है। फलतः इन तीनों में भी प्रत्येक में तीनों का उपभोग सिद्ध होजाता है, जैसा कि आगे के परिलेख से स्पष्ट है। इस परिलेख का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से पाठकों को विदित होगा कि, एक ही आत्मा किसप्रकार त्रिदेव पर विश्राम कर रहा है। यद्यपि ये सभी विवर्त्त पाठकों को अटपटे से मालूम होंगे। परन्तु हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि, अटपटे संसार का वास्तविक स्वरूप समझने के लिए, साथ ही में विविधभावाक्रान्त विश्व के मूलभूत आत्मवेद की अपौरुषेयता समझने के लिए यह प्रपञ्च बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होगा। यदि इसमें ऐसी ग्रन्थियाँ न होतीं, तो वेद की अपौरुषेयता, एवं पौरुषेयता के सम्बन्ध में अनेक मतवादों को प्रवेश करने का अवसर ही न मिलता।

१—आनन्दः-आनन्दमय -आनन्दः
२—विज्ञानम् आनन्दमयं—विज्ञानम्
३—मनः—आनन्दमयं—मनः
} → आनन्दः——आनन्दघनो ज्ञानात्मा——ब्रह्मा

१—मनः——चिन्मयं मनः
२—प्राणः——चिन्मयः प्राणः
३—वाक्——चिन्मयी वाक्
} → चित्——चिद्घनो कर्म्मात्मा——विष्णुः

१—वाक्——सन्मयी वाक्
२—आपः——सन्मय्य आपः
३—अग्निः——सन्मयोऽग्निः
} → सत्——सद्घनो भूतात्मा——शिवः

इति विषयोपक्रमः

निष्कर्ष यह हुआ कि, विश्व में जितने भी पदार्थ हैं, "ईशावास्यमिद सर्वम्" इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार वे सब सच्चिदानन्दघन ईश के प्रवर्ग्यभाग बनते हुए सच्चिदानन्दात्मक हैं। पदार्थ अनन्त हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने आनन्द भाग की अपेक्षा उक्थरूप ऋक् है, विज्ञानभाग की अपेक्षा अर्क (सूत्र) रूप यजु है एवं सत्तापेक्षया साम है। इन सब का मूलाधार वही ईश है। विश्वान्तर्गत जितने भी उक्थरूप आनन्द हैं, वे सब उसी महा आत्मानन्द की मात्रा लेकर उपजीवित हैं विश्वान्तर्गत यच्चयावत् ज्ञान उस ज्ञान की मात्राएं हैं, विश्वान्तर्गत विशेषभावापन्न सभी सत्त भाव उस महा आत्मसत्ता से सत् बन रहे हैं। ऐसी स्थिति में उस मूल सच्चिदानन्दघन आत्मा को अवश्य ही ऋक्-यजुः-सामों का समुद्र कहा जासकता है। विश्वान्तर्गत वैयक्तिक ऋक्-यजुः-साम जहा उक्थ-व्रत-अर्क-नामों से व्यवहृत हुए हैं, वहां विश्वालम्बन उस सामान्य आत्मा के आत्मरूप तीनों व्यापक वेद क्रमशः महोक्थ (ऋक्), महाव्रत (साम), पुरुष (यजुः) इन नामों से प्रसिद्ध हैं। यही सर्वाधार पहिला आत्मवेद, किंवा मूलवेद है। आनन्द-चेतना-सत्ता ही ईश्वर है। आनन्द-चेतना-सत्ता ही क्रमशः ऋक्-यजुः-साम है। इस लिए पुराणों में सच्चिदानन्दलक्षण ब्रह्म को-"वेदमूर्त्ति" नाम से व्यवहृत किया गया है।

आत्मवेद के मौलिक विवर्त्तभाव को लक्ष्य में रखते हुए प्रकारान्तर से मूलवेद का विचार कीजिए। आत्मा को हमने सच्चिदानन्दघन बतलाया है। इस आत्मा के विश्व-विश्वात्मा-विश्वचर, भेद से तीन विवर्त्त हैं। येही तीनों विज्ञानभाषा में क्रमश. सृष्ट-प्रविष्ट-प्रविविक्त, इन नामों से भी व्यवहृत हुए हैं। आत्मा का जो अंश भौतिक विषयरूप में परिणत होगया है, वही इस का सृष्टरूप कहलाता है वही सृष्टरूप "विश्व" नाम से प्रसिद्ध हो रहा है। "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इस श्रौत निगमवचन के अनुसार मायोपाधिक जो आत्मा एकांश से विश्व उत्पन्न कर शेषांश (तीन अंशो) से विश्व में सर्वत्र प्रविष्ट होजाता है, वही "विश्वात्मा" "विश्वाध्यक्ष" "विश्वेश्वर" इत्यादि नामों से सम्बोधित हुआ है। आत्मा का जो एकांश विश्व बन गया है, आत्मा यदवच्छेदेन (मायावच्छेदेन) विश्वात्मा बन गया है, इन दोनों से बाहर आत्मा का जो व्यापकरूप बचगया है, वही तीसरा प्रविविक्तभाग है। इसे ही "विश्वातीत" "परात्पर" "परमेश्वर" इत्यादि नामों से व्यवहृत किया गया है। आत्मा के

है। उपाधिभेद से विश्व का प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। इसीलिए एक की सत्ता उच्छिन्न होजाने पर भी अन्यसत्ता का उच्छेद नहीं देखा जाता। यह सत्ताभाव ही हमारे ज्ञान की अवसानभूमि है। अभिलषित पदार्थ जब तक हमें नहीं मिल जाता, तब तक हम एक प्रकार के क्षोभ का अनुभव किया करते हैं। अभिलषित पदार्थ के प्राप्त होजाने पर क्षोभ शान्त हो जाता है, तद्विषयक जिज्ञासाभाव उपरत होजाता है। विषयप्राप्ति ही आत्मवृत्ति की अवसानभूमि है, एवं अवसान ही साम है। चूंकि अवसानप्रवर्त्तक विषय सत्तात्मक हैं, अतः हम सत्तात्मक इन पदार्थों को अवश्य हीं "साम" कहने के लिए तय्यार है। जितनीं व्यक्तियाँ हैं, उतनें ही सत्ताभाव हैं फलतः उतनें हीं सामों की सत्ता सिद्ध होजाती है। व्यक्तिभाव से सम्बन्ध रखने वाला यह सत्ताभाव विशेषभावापन्न बन रहा है। नाम-रूप-कर्म्मात्मक विषयों के सम्बन्ध से वही व्यापक—सामान्य—सत्ताभाव विशेषभावों में परिणत हो रहा है। इन सब विशेष-सत्ताओं का मूल वही व्यापक आत्मसत्ता है। वह इन सब सामों की अन्तिम अवसानभूमि है। यही अवसानसामात्मक महा—सत्ताभाव "महाव्रत" नाम से प्रसिद्ध है। जिस प्रकार आत्मानन्द ऋचाओं का समुद्र कहलाता है, एवमेव यह आत्मसत्ता "साम्नां समुद्रः" (सामों का समुद्र) नाम से प्रसिद्ध है, एवं यही दूसरा 'मूलसामवेद' है।

आनन्द उस ओर है, सत्ता इस ओर है, दोनों का संयोजक ज्ञानसूत्र है। हमारे आत्मानन्द के साथ सत्तात्मक विषयों का योग करा देना एकमात्र चिल्लक्षण विज्ञान का ही कार्य है— "तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः"। विज्ञान से ही सत्ता की उपलब्धि होती है। सत्तोपलब्धि ही आनन्द का कारण है। संयोजक यह ज्ञानसूत्र ही आनन्दात्मा के साथ सत्ता का मेल कराने के कारण 'यजु" कहलाता है। व्यक्तिभेद से ज्ञानभेद है, ज्ञानभेद से यजु भी भिन्न भिन्न हैं। ज्ञानात्मक संयोजक इन सब यजुओं का मूलस्रोत वही आत्मविज्ञानरूप पुरुष है। यह सब यजुओं का आलम्बन महायजु है, अतएव इसे—"यजुषां समुद्रः" (यजुओं का समुद्र) कहा जाता है, एवं यही तीसरा 'मूलयजुर्वेद' है।

माना जासकता है। 'नित्यविज्ञान'[3] ही उक्थलक्षण नित्यानन्द, तथा व्रतलक्षण नित्यसत्ता दोनों का संयोजक सूत्र है। इसी योजनाभाव की अपेक्षा से मध्यस्थानीय, ऋत्विक्लक्षण, पुरुषरूप इस नित्यविज्ञान को अवश्य ही 'यजुर्वेद' कहा जासकता है।

इसी प्रकार आत्मसत्ता, तथा आत्मज्ञान, दोनों का मूलउक्थ बनता हुआ 'आत्मानन्द'[1] 'ऋग्वेद' है। आत्मानन्द, तथा आत्मज्ञान, दोनों की अवसानभूमि बनती हुई 'आत्मसत्ता'[2] 'सामवेद' है। एवं आत्मानन्द, तथा आत्मसत्ता, दोनों का संयोजक बनता हुआ 'आत्मज्ञान'[3] 'यजुर्वेद' है। इसी तरह विषयसत्ता, तथा विषयज्ञान, दोनों का मूल उक्थ बनता हुआ 'विषयानन्द'[1] 'ऋग्वेद' है। विषयानन्द, तथा विषयज्ञान, दोनों की अवसानभूमि बनती हुई 'विषयसत्ता'[2] 'सामवेद' है। एवं विषयानन्द, तथा विषयसत्ता, दोनों का संयोजक बनता हुआ 'विषयज्ञान'[3] 'यजुर्वेद' है। तीनों संस्थाओं में सर्वत्र ऋग्वेद 'महोक्थ' है, सामवेद 'महाव्रत' है, एवं यजुर्वेद 'पुरुष' है, जैसाकि आगे के दोनों परिलेखों से स्पष्ट हो जाता है।

ये तीनों रूप क्रमशः अविज्ञेय, दुर्विज्ञेय, सुविज्ञेय, भी कहला सकते हैं। तीनों ही सच्चिदानन्द के विवर्त्त हैं। फलतः तीनों में सत्ता-चेतना आनन्द, इन तीनों भावों की सत्ता सिद्ध हो जाती है। परात्पर असीम होने से नित्य है। अतः हम इस के तीनों भावों को क्रमशः **नित्यानन्द, नित्यविज्ञान, नित्यसत्ता,** इन नामों से पुकारेंगे। इसी प्रारम्भिक सर्वमूल परात्पर का दिग्दर्शन कराती हुई श्रुति कहती है—"नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"। विश्वात्मा मर्त्य विश्वकी अपेक्षा से नित्य होता हुआ भी मायापेक्षया अनित्यवत् है। इस के तीनों विभाग क्रमशः **आत्मानन्द, आत्मज्ञान, आत्मसत्ता,** कहलावेंगे। एवं तीसरे मर्त्य विश्व के तीनों विभाग क्रमशः **विषयानन्द विषयज्ञान, विषयसत्ता,** नामों से सम्बोधित होंगे। इस प्रकार तीन विवर्त्तभेदों से सच्चिदानन्द ९ भागों में विभक्त होजाता है।

पूर्वोक्त ऋृक्-साम-यजुः के पारिभाषिक लक्षणों के अनुसार आनन्द-चेतना-सत्ता' त्मक 'ऋृक्-यजुः-साम' इन तीनों वेदों में क्रमशः पूर्वोक्त तीनों त्रयं वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है। **'नित्यानन्द'** 'ऋग्वेद' है, **नित्यसत्ता'** 'सामवेद' है इन दोनों का संयोजक **'नित्यज्ञान'** 'यजुर्वेद' है, एवं यही वेदत्रयी का पहिला विभाग है। **'आत्मानन्द'** 'ऋग्वेद' है **'आत्मसत्ता'** 'सामवेद' है, इन दोनो का संयोजक **'आत्मज्ञान'** 'यजुर्वेद' है, एवं यही वेदत्रयी का दूसरा विभाग है। **'विषयानन्द'** 'ऋग्वेद' है, **'विषयसत्ता'** 'सामवेद' है, दोनों का संयोजक **'विषयज्ञान'** 'यजुर्वेद' है, एवं यही वेदत्रयी का तीसरा विभाग है।

इन विभागों का मौलिक रहस्य यही है कि, **'नित्यानन्द'** ही नित्यसत्ता, तथा नित्यविज्ञान का मूलस्तम्भ (उपक्रमस्थान) है। अतएव उपक्रमस्थानीय, उक्थलक्षण, महदुक्थरूप इस नित्यानन्द को अवश्य ही **'ऋृग्वेद'** कहा जासकता है। **'नित्यसत्ता** के आधारपर ही उक्थलक्षण नित्यानन्द, तथा पुरुषलक्षण नित्यविज्ञान का पर्य्यवसान (अवसान, समाप्ति) है। अतएव अवसानस्थानीय, अर्कलक्षण, महाव्रतरूप इस नित्यसत्ता को अवश्य ही **'सामवेद'**

माना जासकता है । 'निरुविज्ञान' ही उक्थलक्षण नित्यानन्द, तथा व्रतलक्षण नित्यसत्ता दोनों का संयोजक सूत्र है । इसी योजनाभाव की अपेक्षा से मध्यस्थानीय, अग्निलक्षण, पुरुषरूप इस नित्यविज्ञान को अवश्य ही 'यजुर्वेद' कहा जासकता है ।

इसी प्रकार आत्मसत्ता, तथा आत्मज्ञान, दोनों का मूलउक्थ बनता हुआ 'आत्मानन्द' 'ऋग्वेद' है । आत्मानन्द, तथा आत्मज्ञान, दोनों की अवसानभूमि बनती हुई 'आत्मसत्ता' 'सामवेद' है । एवं आत्मानन्द, तथा आत्मसत्ता, दोनों का संयोजक बनता हुआ 'आत्मज्ञान' 'यजुर्वेद' है । इसी तरह विषयसत्ता, तथा विषयज्ञान, दोनों का मूल उक्थ बनता हुआ 'विषयानन्द' ऋग्वेद' है । विषयानन्द, तथा विषयज्ञान, दोनों की अवसानभूमि बनती हुई 'विषयसत्ता' 'सामवेद' है । एवं विषयानन्द, तथा विषयसत्ता, दोनों का संयोजक बनता हुआ 'विषयज्ञान' 'यजुर्वेद' है । तीनों संस्थाओं में सर्वत्र ऋग्वेद 'महोक्थ' है, सामवेद 'महाव्रत' है, एवं यजुर्वेद 'पुरुष' है, जैसाकि आगे के दोनों परिलेखों से स्पष्ट हो जाता है ।

ये तीनों रूप क्रमशः अविज्ञेय, दुर्विज्ञेय, सुविज्ञेय, भी कहला सकते हैं। तीनों ही सच्चिदानन्द के विवर्त्त हैं। फलतः तीनों में सत्ता-चेतना आनन्द, इन तीनों भावों की सत्ता सिद्ध हो जाती है। परात्पर असीम होने से नित्य है। अतः हम इस के तीनों भावों को क्रमशः नित्यानन्द, नित्यविज्ञान, नित्यसत्ता, इन नामों से पुकारेंगे। इसी प्रारम्भिक सर्वमूल परात्पर का दिग्दर्शन कराती हुई श्रुति कहती है—"नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म"। विश्वात्मा मर्त्य विश्वकी अपेक्षा से नित्य होता हुआ भी मायापेक्षया अनित्यवत् है। इस के तीनों विभाग क्रमशः आत्मानन्द, आत्मज्ञान, आत्मसत्ता, कहलावेंगे। एवं तीसरे मर्त्य विश्व के तीनों विभाग क्रमशः विषयानन्द विषयज्ञान, विषयसत्ता, नामों से सम्बोधित होंगे। इस प्रकार तीन विवर्त्तभेदों से सच्चिदानन्द ९ भागों में विभक्त होजाता है।

पूर्वोक्त ऋक्-साम-यजुः के पारिभाषिक लक्षणों के अनुसार आनन्द-चेतना-सत्ता' त्मक 'ऋक्-यजुः-साम' इन तीनों वेदों में क्रमशः पूर्वोक्त तीनों त्रयं वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है। 'नित्यानन्द' ऋग्वेद' है, नित्यसत्ता' 'सामवेद' है इन दोनों का संयोजक 'नित्यज्ञान' 'यजुर्वेद' है, एवं यही वेदत्रयी का पहिला विभाग है। 'आत्मानन्द' 'ऋग्वेद' है 'आत्मसत्ता' 'सामवेद' है, इन दोनो का संयोजक 'आत्मज्ञान' 'यजुर्वेद' है, एवं यही वेदत्रयी का दूसरा विभाग है। 'विषयानन्द' 'ऋग्वेद' है, 'विषयसत्ता' 'सामवेद' है, दोनो का संयोजक 'विषयज्ञान' 'यजुर्वेद' है, एवं यही वेदत्रयी का तीसरा विभाग है।

इन विभागों का मौलिक रहस्य यही है कि, 'नित्यानन्द' ही नित्यसत्ता, तथा नित्यविज्ञान का मूलस्तम्भ (उपक्रमस्थान) है। अतएव उपक्रमस्थानीय, उक्थलक्षण, महदुक्थरूप इस नित्यानन्द को अवश्य ही 'ऋग्वेद' कहा जासकता है। 'नित्यसत्ता के आधारपर ही उक्थलक्षण नित्यानन्द, तथा पुरुषलक्षण नित्यविज्ञान का पर्य्यवसान (अवसान, समाप्ति) है। अतएव अवसानस्थानीय, ब्रह्मलक्षण, महासामरूप इस नित्यसत्ता को अवश्य ही 'सामवेद'

वेदानुगत-त्रिवृद्वेदपरिलेखः
ब्रह्मैवेदं — सर्वम्
सर्वं खल्विदं ब्रह्म
एक वा इदं वि बभूव सर्वम्
आनन्दः
ऋक्
चेतना
यजुः
सत्ता
साम
३
३
३
१—नित्यानन्दः
२—आत्मानन्दः
३—विषयानन्दः
त इमे-आनन्दविवर्त्तभावा
१—नित्यज्ञानम्
२—आत्मज्ञानम्
३—विषयज्ञानम्
त इमे-चिद्विवर्त्तभावाः
१—नित्यसत्ता
२—आत्मसत्ता
३—विषयसत्ता
त इमे-सत्ताविवर्त्तभावाः
१
२
३
ब्रह्म

आत्मानुगत–त्रिष्टुद्वेदपरिलेखः

१	१—नित्यानन्दः महोक्थम् (आनन्दः–ऋक्)	–विश्वातीतः (नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म)
	२—नित्यज्ञानम् महाव्रतम् (चेतना—यजुः)	
	३—नित्यसत्ता पुरुषः (सत्ता—साम)	
२	१—आत्मानन्दः महोक्थम् (आनन्दः–ऋक्)	–विश्वात्मा (सत्यं ज्ञानं न तं ब्रह्म)
	२—आत्मज्ञानम् महाव्रतम् (चेतना—यजुः)	
	३—आत्मसत्ता पुरुषः (सत्ता—साम)	
३	१—विषयानन्दः महोक्थम (आनन्दः–ऋक्)	–विश्वम् (नामरूपे सत्यम्)
	२—विषयज्ञानम् महाव्रतम् (चेतना—यजुः)	
	३—विषयसत्ता पुरुषः (सत्ता—साम)	

उक्त विवर्त्त का दूसरी दृष्टि से विचार कीजिए। पहिला विवर्त्त 'आनन्द' का है। 'नित्यानन्द' ही आत्मानन्द, एवं विषयानन्द का मूल है। इसी मूलभाव के कारण हम इस नित्यानन्द को 'महोक्थरूप-ऋक' कह सकते हैं। विषयानन्द पर आनन्द का अवसान है। दूसरे शब्दों में विषय पर आनन्द का अवसान होजाता है। इसी अवसानभाव के कारण इस विषयानन्द को 'महाव्रतरूप-साम' कहा जासकता है। विषयानन्द को नित्यानन्दस्वरूप में परिणत करने वाला मध्यस्थ आत्मानन्द ही है। आत्मानन्द ही नित्यानन्दभावपरिणति का मुख्य द्वार है। दूसरे शब्दों में विषयानन्द को विशुद्ध आनन्दरूप में परिणत कर, उसे नित्यानन्द के साथ (अभेदसम्बन्ध से) युक्त करा देने वाला यही मध्यस्थ आत्मानन्द है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण इस आत्मानन्द को 'पुरुषरूप-यजु' कहा जासकता है। इस प्रकार 'ऋग्'–लक्षण केवल 'आनन्द' में ही ('ऋग्वेद' में ही)–'नित्य–आत्म–विषयानन्द' भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है ॥ १ ॥

सच्चिदानन्दलक्षण—आत्मवेदपरिलेखः
१—आनन्दः
२—चित्
३—सत्ता
महोक्थम्
ऋक्
ऋचां समुद्रः
महाव्रतम्
यजुः
यजुषां समुद्रः
पुरुषः
साम
साम्नां समुद्रः
सोऽयमानन्द-चित्-सत्तालक्षणो, महोक्थ-महाव्रत-साममयो मूलवेदः
आत्मवेदः

दूसरा विवर्त्त है 'विज्ञान' का। 'नित्यज्ञान' ही आत्मज्ञान, एवं विषयज्ञान की मूलप्रतिष्ठा है। इसी मूलभाव के कारण हम इस नित्यविज्ञान को 'महोक्थरूप–ऋक्' कह सकते हैं। विषयज्ञान पर ही ज्ञान का अवसान है। दूसरे शब्दों में विषय पर आनन्द का अवसान होजाता है। इसी अवसानभाव के कारण इस विषयज्ञान को 'महाव्रतरूप–साम' कहा जासकता है। विषयज्ञान को नित्यज्ञानस्वरूप में परिणत करने वाला मध्यस्थ आत्मज्ञान ही है। आत्मज्ञान ही नित्यज्ञानभावपरिणति का मुख्य द्वार है। दूसरे शब्दों में विषयज्ञान को विशुद्ध ज्ञानरूप में परिणत कर उसे नित्यज्ञान के साथ (अभेद सम्बन्ध से) युक्त करा देने वाला यही मध्यस्थ आत्मज्ञान है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण इस आत्मज्ञान को पुरुषरूप–यजु' कहा जासकता है। इस प्रकार 'यजु' लक्षण केवल 'ज्ञान' (चित) में हीं ('यजुर्वेद' में हीं)- 'नित्य-आत्म-विषयज्ञान' भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

तीसरा विवर्त्त 'सत्ता' का है। 'नित्यसत्ता' (परमसामान्य) ही आत्मसत्ता, एवं विषयसत्ता की मूलप्रतिष्ठा है। इसी मूलभाव के कारण हम इस नित्यसत्ता को महोक्थरूप–ऋक्' कह सकते हैं। विषयसत्ता पर ही नित्यसत्ता का अवसान है। दूसरे शब्दों में विषय पर सत्ता का अवसान होजाता है। इसी अवसानभाव के कारण इस विषयसत्ता को 'महाव्रतरूप साम' कहा जासकता है। विषयसत्ता को नित्यसत्तास्वरूप में परिणत करने वाली मध्यस्था आत्मसत्ता ही है। आत्मसत्ता ही नित्यसत्ताभावपरिणति का मुख्य द्वार है। दूसरे शब्दों में विषयसत्ताको विशुद्ध सत्तारूप में परिणत कर, उसे नित्यसत्ता के साथ (अभेद सम्बन्ध से) युक्त करा देने वाली यही मध्यस्था आत्मसत्ता है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण इस आत्मसत्ताको 'पुरुषरूप यजुः' कहा जासकता है। इस प्रकार साम'–लक्षण केवल 'सत्ता' में हीं ('सामवेद' में हीं)– 'नित्य–आत्म–विषयसत्ता' भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥

● आनन्द ही [रस ही] तीनों विवर्त्तभावों का मूलस्तम्भ है। यही सूचित करने के लिए शब्द-रचनात्मक जो क्रम हमनें आनन्द विवर्त्त का माना है, चेतना (ज्ञान)-विवर्त्त, तथा सत्ताविवर्त्त में भी वही शब्दरचना क्रम रक्खा गया है।

दूसरा विवर्त्त है 'विज्ञान' का। 'नित्यज्ञान' ही आत्मज्ञान, एवं विषयज्ञान की मूलप्रतिष्ठा है। इसी मूलभाव के कारण हम इस नित्यविज्ञान को 'महोक्थरूप—ऋक' कह सकते हैं। विषयज्ञान पर ही ज्ञान का अवसान है। दूसरे शब्दों में विषय पर आनन्द का अवसान होजाता है। इसी अवसानभाव के कारण इस विषयज्ञान को 'महाव्रतरूप—साम' कहा जासकता है। विषयज्ञान को नित्यज्ञानस्वरूप में परिणत करने वाला मध्यस्थ आत्मज्ञान ही है। आत्मज्ञान ही नित्यज्ञानभावपरिणति का मुख्य द्वार है। दूसरे शब्दों में विषयज्ञान को विशुद्ध ज्ञानरूप में परिणत कर उसे नित्यज्ञान के साथ (अभेद सम्बन्ध से) युक्त करा देने वाला यही मध्यस्थ आत्मज्ञान है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण इस आत्मज्ञान को पुरुषरूप—यजु' कहा जासकता है। इस प्रकार 'यजु' लक्षण केवल 'ज्ञान' (चित्) में ही ('यजुर्वेद' में ही)- 'नित्य-आत्म-विषयज्ञान' भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है ॥ २ ॥

तीसरा विवर्त्त 'सत्ता' का है। 'नित्यसत्ता' (परमसामान्य) ही आत्मसत्ता, एवं विषयसत्ता की मूलप्रतिष्ठा है। इसी मूलभाव के कारण हम इस नित्यसत्ता को 'महोक्थरूप—ऋक्' कह सकते हैं। विषयसत्ता पर ही नित्यसत्ता का अवसान है। दूसरे शब्दों में विषय पर सत्ता का अवसान होजाता है। इसी अवसानभाव के कारण इस विषयसत्ता को 'महाव्रतरूप साम' कहा जासकता है। विषयसत्ता को नित्यसत्तास्वरूप में परिणत करने वाली मध्यस्था आत्मसत्ता ही है। आत्मसत्ता ही नित्यसत्ताभावपरिणति का मुख्य द्वार है। दूसरे शब्दों में विषयसत्ताको विशुद्ध सत्तारूप में परिणत कर, उसे नित्यसत्ता के साथ (अभेद सम्बन्ध से) युक्त करा देने वाली यही मध्यस्था आत्मसत्ता है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण इस आत्मसत्ताको 'पुरुषरूप यजुः' कहा जासकता है। इस प्रकार साम'—लक्षण केवल 'सत्ता' में ही ('सामवेद' में ही)— 'नित्य—आत्म—विषयसत्ता' भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है ॥ ३ ॥

* आनन्द ही [रस ही] तीनों विवर्त्तभावों का मूलस्तम्भ है। यही सूचित करने के लिए शब्दरचनात्मक जो क्रम हमने आनन्द विवर्त्त का माना है, चेतना (ज्ञान)-विवर्त्त, तथा सत्ताविवर्त्त में भी वही शब्दरचना क्रम रक्खा गया है।

विवर्त्तानुगत–त्रिवृद्वेदपरिलेखः

१	१—१—नित्यानन्दः औं-महोक्थम्—ऋक् २—२—आत्मानन्दः औं-महाव्रतम्—साम ३—३—विषयानन्दः औं-पुरुषः——यजुः	१ →आनन्दः (महोक्थं-ऋक्) [तदित्थं महोक्थलक्षणे, आनन्दमये, ऋग्वेदे नित्य-आत्म विषयानन्दभेदाद्वेदत्रयोपभोगः]
२	४—१—नित्यज्ञानम् औं-महोक्थम्—ऋक् ५—२—आत्मज्ञानम् औं महाव्रतम्—साम ६—३—विषयज्ञानम् औं-पुरुषः——यजुः	२ →चेतना (पुरुषः–यजुः) [तदित्थं पुरुषलक्षणे, चिन्मये, यजुर्वेदे नित्य-आत्म-विषयचिद्भेदाद्वेदत्रयोपभोगः
३	७—१—नित्यसत्ता औंमहोक्थम्—ऋक् ८—२—आत्मसत्ता औंमहाव्रतम्—साम ९—३—विषयसत्ता औंपुरुषः—— यजुः	३ →सत्ता (महाव्रतं–साम) [तदित्थं महाव्रतलक्षणे, सन्मये, सामवेदे नित्य-आत्म-विषयसद्भेदाद्वेदत्रयोपभोगः]

इति—आत्मवेदनिरुक्तिः

२—मूलवेद में अमृत-मृत्युमय–आत्मलक्षण वेदनिरुक्ति

सच्चिदानन्दघन आत्मा के सृष्टिसाक्षी, मुक्तिसाक्षी भेद से दो विवर्त्त मानें जाते हैं। इन दोनों का सम्बन्ध उसी पूर्वोक्त पञ्चकल अव्ययात्मा से है। आनन्दविज्ञानमनोमय वही अव्यय मुक्तिसाक्षी है, एवं मन प्राणवाङ्मय वही अव्यय सृष्टिसाक्षी है। ग्रन्थिविमोकलक्षणा मुक्ति

में मुक्तिसाक्षी आत्मा प्रधान रहता है, सृष्टिसाक्षी आत्मा सहकारी रहता है। एवं ग्रन्थिबन्धनलक्षणा सृष्टि में सृष्टिसाक्षी आत्मा प्रधान रहता है, एवं मुक्तिसाक्षी सहकारी बना रहता है। आनन्द-विज्ञान-मनोमय आत्मा उस एक ही आत्मा का [अव्ययात्मा का] विद्याभाग है, मनःप्राणवाङ्मय आत्मा उसी आत्मा का कर्म्मभाग है। विद्याभाग में अमृतरस की प्रधानता है, अतएव ज्ञानमूर्त्ति यह अव्यय 'निष्काम' है। कर्म्मभाग में मृत्युरूप बल की प्रधानता है, अतएव कर्म्ममूर्त्ति यह अव्यय 'सकाम' है। अमृत-मृत्यु की समष्टि ही "अह [आत्मा] है-"अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन !"।

१——१—आनन्दः २——२—विज्ञानम् ३—{ ३—मनः	→मुक्तिसाक्षी-अव्ययात्मा-निष्कामः (अमृतम्)	→आत्मा
३—{ १—मनः ४——२—प्राणः ५——३—वाक्	→सृष्टिसाक्षी-अव्ययात्मा-सकामः (मृत्युः)	
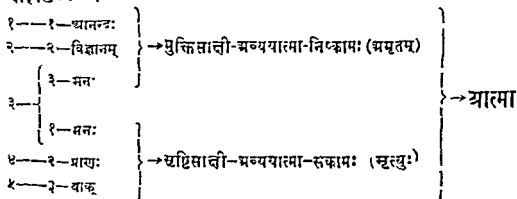
पूर्वप्रकरण में समष्टिरूप से मूलवेद का दिग्दर्शन कराया गया था। वहां बतलाया गया था कि, आनन्द आनन्द है, विज्ञान चित् है, मनः-प्राण-वाक् की समष्टि सत्ता है। यही तीनों क्रमशः ऋक्-यजुः-सामवेद हैं। अब 'आनन्द-विज्ञान-मन' का एक स्वतन्त्र विभाग मान कर, एवं मन-प्राण-वाक् का एक स्वतन्त्र विभाग मानकर अमृत मृत्युभेद से मूलवेद का विचार किया जाता है। मुक्तिसाक्षी, अमृतप्रधान, विद्यात्मा का आनन्दभाग विज्ञान तथा मन (अन्तर्म्मन) का मूलाधार है। मूलप्रभव को ही उक्थ, किंवा महोक्थ कहा जाता है। महोक्थरूप यह] मूलानन्द ही 'ऋक्' है। 'श्वोवसीयस' नाम से प्रसिद्ध मन पर आनन्द का अवसान है। अतएव अवसानलक्षण, महव्रतस्थानीय, इस अन्तर्म्मन को हम "साम" कहने के लिए तय्यार हैं।

मन और आनन्द का संयोजक मध्यस्थ विज्ञान है। दूसरे शब्दों में अन्तर्मन को आनन्दरूप में परिणत करने वाला मध्यस्थ विज्ञान ही है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण पुरुषस्थानीय इस विज्ञानभाव को हम यजु' कह सकते हैं। ये ही मुक्तिसाक्षी, विद्यात्मक, अव्ययात्मा के तीनो वेद है।

सृष्टिसाक्षी, कर्मप्रधान, अव्ययात्मा का मन (बहिर्मन) ही सम्पूर्ण कामनाओं का प्रभव है— 'कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्"। काममय यह मन ही प्राण तथा वाक् का मूलाधार है। इसी मूलभाव के कारण हम इसे महोक्थस्थान य 'ऋक्' कह सकते, हैं। वाक् पर ही मन की कामना का अवसान है। फलतः अवसानलक्षणा महाव्रतस्थानीया इस वाक् का सामत्व सिद्ध होजाता है। मन और वाक् का संयोजक मध्यस्थ प्राण है। दूसरे शब्दों में वाक् को मनोरूप में परिणत करने वाला मध्यस्थ प्राण ही है। इसी योगप्रवृत्ति के कारण पुरुषस्थानीय इस प्राणभाव को हम 'यजु' कहने के लिए तय्यार हैं। सृष्टिसाक्षी, कर्मात्मक, अव्ययात्मा के ये ही तीनों वेद हैं।

१–मुक्तिसाक्षी आनन्दविज्ञानमनोमय विद्यात्मक आत्मा में–

त्रयीवेदभुक्ति

अमृतवेदः–
- १–आनन्दः—→ महोक्थम्—→ ऋग्वेदः
- २–विज्ञानम्—→ पुरुषः——→ यजुर्वेदः
- ३–मनः——→ महाव्रतम्—→ सामवेदः

} → विद्यात्मकास्त्रयोवेदाः

२–सृष्टिसाक्षी मनःप्राणवाङ्मय कर्म्मात्मक आत्मा में–

त्रयीवेदभुक्ति

मृत्युवेदः
- १–मनः ——→ महोक्थम्—→ ऋग्वेदः
- २–प्राणः——→ पुरुषः——→ यजुर्वेदः
- ३–वाक्——→ महाव्रतम्—→ सामवेदः

} → कर्म्मात्मकास्त्रयोवेदाः

इति–अमृतमृत्युलक्षणवेदनिरुक्तिः

३—मूलवेद में मनः-प्राण-वाङ्मय आत्मलक्षण वेदनिरुक्ति—

'स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः" इस श्रुति के अनुसार आत्मा मन-प्राण-वाङ्मय है। इस त्रिकल आत्मा के मन से कामना का, प्राण से तप का, एवं वाक् से श्रम का उदय होता है। काम-तप-श्रमरूप इन तीन सृष्टयनुबन्धों से उस सृष्टिसाक्षी मन प्राणवाङ्मय आत्मा ने सम्पूर्ण विश्व का निर्माण किया है। वह आत्मा 'मनसा-नित्य कामयते, प्राणेन नित्यं तप्यते, वाचा नित्यं श्राम्यति"। काममय मन ज्ञानशक्ति है, तपोमय प्राण क्रियाशक्ति है, श्रममयी वाक् अर्थशक्ति है। ज्ञान-क्रिया अर्थरूप से वह मनः-प्राणवाङ्मय आत्मा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होरहा है। ज्ञानशक्तिघन काममय मन ही क्रिया-अर्थरूप तप-श्रममय प्राण, तथा वाक् की मूलप्रतिष्ठा है। यही मन महोक्थरूप 'ऋक्' है। अर्थमयी वाक् मन-प्राण की अवसानभूमि होने से 'साम' है। संयोजक क्रियामय प्राण ही'यजु' है। 'त्रिवृत्करणविज्ञान' के अनुसार आत्मा की ये तीनों कलाएं (प्रत्येक) त्रिवृद्भाव से युक्त हैं। मन भी मनःप्राणवाङ्मय है, प्राण भी मनःप्राणवाङ्मय है, एवं वाक् भी मनःप्राणवाङ्मयी है। मन की तीनों कलाएं मनोमयी हैं, प्राण की तीनों कलाएं प्राणमयी हैं, एवं वाक् की तीनों कलाएं वाङ्मयी हैं। इस त्रिवृद्भाव के कारण ऋङ्मय केवल त्रिवृन्मन में भी मनः-प्राण-वाक् भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है। इसी त्रिवृद्भाव के कारण यजुर्मय त्रिवृत्प्राण, तथा साममयी त्रिवृता वाक् में भी मनः-प्राण-वाक् भेद से तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है। जैसा कि निम्न लिखित परिलेख से स्पष्ट होरहा है—

१—ज्ञानशक्तिमयं मन →	महोक्थम् →	ऋक्	→ मूलवेदः
२—क्रियाशक्तिमयः प्राण →	पुरुषः →	यजुः	
३—अर्थशक्तिमयी वाक् →	महाव्रतम् →	साम	

—— ०:ॐ:० ——

१—मनःप्राणवाङ्मये मनसि त्रिवृद्भावाद्वेदत्रयोपभोगः

१ १—मनोमय मन —— महोक्थम् —— ऋक्
२—मनोमय प्राण —— पुरुष —— यजु
३—मनोमयी वाक् —— महाव्रतम् —— साम
} मनः (ऋग्वेद)

२—मनःप्राणवाङ्मये प्राणे त्रिवृद्भावाद्वेदत्रयोपभोगः

२ १—प्राणमय मन —— महोक्थम् —— ऋक्
२—प्राणमय प्राण —— पुरुष —— यजु
३—प्राणमयी वाक् —— महाव्रतम् —— साम
} प्राणः (यजुर्वेद)

३—मनःप्राणवाङ्मय्या वाचि त्रिवृद्भावाद्वेदत्रयोपभोगः

३ १—वाङ्मय मन —— महोक्थम् —— ऋक्
२—वाङ्मय प्राण —— पुरुष —— यजु
३—वाङ्मयी वाक् —— महाव्रतम् —— साम
} वाक् (सामवेद)

इति-त्रिकलवेदनिरुक्तिः

४—उक्थ, ब्रह्म, साममय आत्मलक्षणा वेदनिरुक्ति

यद्यपि आत्मा का (विशुद्ध-निर्धर्मक-असङ्ग आत्मा का) कोई स्वरूपलक्षण नहीं होसकता। तथापि विश्वदृष्टि से सोपाधिक बनेहुए सृष्टिमूलक आत्मा का अवश्य ही स्वरूपलक्षण किया जासकता है। "यस्य यदुक्थ सत्, ब्रह्म सत्, साम स्यात्–स तस्यात्मा"

इस आत्मलक्षण के अनुसार जो कारणभूत मौलिकतत्व जिस कार्यभूत यौगिकतत्व का उक्थ-ब्रह्म-साम होता है, उस कार्य का वह उक्थ-ब्रह्म-सामलक्षण-कारण आत्मा माना जाता है। प्रभवस्थान को वैदिकभाषा में उक्थ कहा जाता है, प्रतिष्ठास्थान ब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है, एवं परायणस्थान साम नाम से व्यवहृत हुआ है। उदाहरण के लिए घट को लीजिए। संसार में मृण्मय जितनें भी घट हैं, इन सब का मूलप्रभव मिट्टी है। मिट्टी से ही यच्चयावत् घट प्रभूत हुए हैं। अतः मिट्टी को हम सब घड़ों का उक्थ (प्रभवस्थान) कहने के लिए तय्यार हैं। मिट्टी से उत्पन्न घट मिट्टी को छोड़कर कभी स्वस्वरूप से प्रतिष्ठित नहीं रह सकते। मिट्टी ही सब घड़ों की प्रतिष्ठाभूमि है। अतः मिट्टी को हम घड़ों का ब्रह्म (प्रतिष्ठास्थान) मान सकते हैं। घट परस्पर सर्वथा भिन्न हैं, परन्तु मिट्टी सब घड़ों के लिए समान है। इस दृष्टि से भी मिट्टी घड़ों का साम (समरूपेण व्याप्त) है। एवं अन्त में घड़े मिट्टी में हीं लीन होजाते हैं। दूसरे शब्दों में मिट्टी ही घड़ो की अवसानभूमि है। इस दृष्टि से भी मिट्टी घड़ों का साम (परायणस्थान) है। चूंकि मिट्टी घड़ों का उक्थ-ब्रह्म-साम है, इस लिए मिट्टी घड़ों का आत्मा है। बस जहां उक्त लक्षण का समन्वय होजाय, वहीं आप आत्मशब्द का व्यवहार कर सकते हैं। इसी प्रकार विविधप्रकार के यच्चयावत् सुवर्णमय आभूषणो का उक्थ-ब्रह्म-सामलक्षण सुवर्ण आत्मा कहलावेगा। विविधप्रकार के यच्चयावत् सूत्रमय वस्त्रों का उक्थ-ब्रह्म-सामलक्षण तन्तु आत्मा कहलावेगा।

इसी आत्मलक्षण का आधिभौतिकसंस्था के साथ समन्वय कीजिए। विश्व में घट-पट-गृह-वन-पर्वत-सूर्य्य-चन्द्रमा आदि जितनें भी पदार्थ हैं, सब पाञ्चभौतिक हैं। इन इन पांचों भूतों की मूलजननी वाक् है। वाक् को आकाश कहा जाता है। यह वाङ्मय, किंवा वाग्रूप मर्त्याकाश ही बलग्रन्थि तारतम्य से पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश रूप में परिणत होरहा है। पांचों भूत वाङ्मय हैं। वाक् ही पांचों भूतो की उक्थ (मूलप्रभव) है। यह वाक्तत्व प्राण और मन से अविनाभूत है। मन-प्राण को गर्भ में रखने वाला तत्व ही वाक् है। जैसा कि वाक् नाम से ही स्पष्ट है। जो तत्व अपनी स्वरूपरक्षा के लिए मन प्राण की याचना

करता है, अपेक्षा रखता है, वह मर्त्यतत्व ही वाक् कहलाता है । शब्दब्रह्मविद्या के संकेतानुसार शब्दसृष्टि में असङ्ग (कण्ठताल्वादि से असंस्पृष्ट) अकार मन का वाचक है। स्पृष्टास्पृष्ट उकार प्राण का वाचक है । इस क्रम से "अ–उ–अच" यह स्थिति होती है । मन स्वयं निष्क्रिय है , क्रिया प्राण का धर्म है । प्राण के सञ्चालन से मन में क्रिया का सञ्चालन होता है । अतः मन की अपेक्षा प्राण का प्राथम्य सिद्ध होजाता है । ऐसी स्थिति में आप को "मन–प्राण" यह क्रम न रख कर "प्राण–मन" यह क्रम रखना पड़ेगा । फलतः 'अ-(मन)–उ–(प्राण –अच्" इस क्रम के स्थान में—'उ– प्राण)–अ–(मन)–अच' यह स्थिति होजाती है । 'उ–अ–अच्' इस स्थिति में उकार को वकाररूप यणादेश होजाता है । "व्–अ–अच" यह स्थिति होजाती है । वकार अकार में जा मिलता है । वकार के अकार के, और अच् के अकार के आकाररूपा दीर्घसन्धि होजाती है । चकार को कुत्व होजाता है । इस प्रकार उ–अ–अच् के यण–दीर्घ-कुत्व से "वाक" शब्द निष्पन्न होजाता है । इस का अर्थ होता है—प्राणमन की याच्ञा करने वाला तत्व । "उश्च–अश्च इति वः, तमञ्चति, इति वाक" वाक् शब्द का यही निर्वचन है । इस से प्रकृत में हमें यही बतलाना है कि, जिसे हम वाक् कहते हैं, वह मन–प्राण–वाक् की समष्टि है । इन तीनों में से वाक्तत्व जहां पूर्वकथनानुसार सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों का उक्थ (उत्पत्तिस्थान) बनता है, वहां वाग-विनाभूत प्राणतत्व सब भूतों की प्रतिष्ठा बनता है । प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि जब तक वाङ्मय भूत में प्राण प्रतिष्ठित रहता है, तभी तक वह भौतिक पदार्थ स्वस्वरूप से प्रतिष्ठित रहता है । प्राण विधर्त्ता है । चरकूट को एकसूत्र में बद्ध रखना इसी विधर्त्ता प्राण का काम है । जब वस्तु जीर्णशीर्ण होजाती है, तो हम उस के लिए— 'अरे ! इस में अब प्राण (दम) नहीं रहा" यह कहने लगते हैं। फलतः प्राणका प्रतिष्ठ भूमित्व सर्वात्मना सिद्ध होजाता है। तीसरा है मनस्तत्व । यह मन एक अखण्ड धरातल है , आकाशात्मा है—"मनोमयोऽयं पुरुषो भाः सत्यमाकाशात्मा"। यही सब का अवधानस्थान है, परायणभूमि है । इस दृष्टि से भी इसे भौतिक पदार्थों का साम कहा जासकता है । एवं यह आकाशवत् सब में समान है, इस लिए भी

इसे साम माना जासकता है। यह है प्राकृतिक स्थिति। उक्थ ही महोक्थ है, यही ऋक् है। फलतः भूतोक्थमयी वाक् का ऋक्त्व सिद्ध होजाता है। ब्रह्म ही पुरुष है यही यजु है। फलतः भूतों के ब्रह्मरूप प्राण का यजुष्ट्व सिद्ध होजाता है। साम ही महाव्रत है, यही साम है। फलतः भूतों के सामरूप मन का साममयत्व सिद्ध होजाता है। इन तीन विभागों से कहीं पृथक् पृथक तीन आत्मा नहीं समझ लेने चाहिए। एक ही आत्मा के मन-प्राण-वाक्, ये तीन रूप हैं। दूसरे शब्दों में तीनों व्यासज्यवृत्त्या एक आत्मा है—'आत्मा उ एकः सन्नेतत् त्रयं, त्रयं सदेकमयमात्मा"। वही आत्मा वागवच्छेदेन सम्पूर्ण भूतों का उक्थस्थान बनता हुआ ऋक् है। वही आत्मा प्राणावच्छेदेन सम्पूर्ण भूतों का ब्रह्मस्थान बनता हुआ यजु है। एवं वही आत्मा मनोऽवच्छेदेन सम्पूर्ण भूतों का सामस्थान बनता हुआ साम है। वही उक्थ है, वही ब्रह्म है, वही साम है। उक्थब्रह्मनामलक्षण, वाक्-प्राण-मनोमय, विश्वव्यापक, नित्यतत्व ही इन अनित्य भूतों का आत्मा है।

१—	१—उक्थम्—	वाक्—	महोक्थम्—	ऋक्	स एष वेदमूर्त्तिरात्मा सर्वेषां भूतानाम्।
	२—ब्रह्म—	प्राण—	पुरुष—	यजुः	
	३—साम—	मन—	महाव्रतम्—	साम	

ऋङ्मूर्त्ति उक्थ मन, यजुर्मूर्त्ति ब्रह्म प्राण, एवं साममूर्त्ति साम मन, तीनों ही त्रिवृद्भावापन्न हैं। त्रिवृद्भावापन्न आत्मा के इन तीनों त्रिवृत् नित्य भावों से क्रमशः रूप-कर्म्म-नाम, इन तीन भावों का उदय होता है। त्रिवृत्मन रूपों का प्रवर्त्तक है, त्रिवृत्प्राण कर्म्मों का प्रवर्त्तक है, एवं त्रिवृता वाक् नामों की अधिष्ठात्री है। इतना ध्यान रखिए कि उक्थ सदा वाक् ही होती है, ब्रह्म सदा प्राण ही होता है, साम सदा मन ही होता है। प्रत्येक पदार्थ नाम-रूप-कर्म्म की समष्टि है। प्रत्येक पदार्थ का कोई न कोई नाम है, प्रत्येक पदार्थ का कोई न कोई रूप (आकाररूप और वर्णरूप) है, प्रत्येक पदार्थ का कोई न कोई कर्म्म है। क्रियाव्यापार का ही नाम कर्म्म है। 'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्" इस

विज्ञानसिद्धान्त के अनुसार नामरूपात्मक कोई भी पदार्थ किसी भी दशा में निष्क्रिय नहीं है। परिवर्त्तनरूपा क्षणिक क्रिया निरन्तर होती रहती है। इसी क्रिया के "जायते-अस्ति-विपरिणमते-वर्द्धते-अपक्षीयते-विनश्यति" ये ६ भावविकार माने जाते हैं। षड्भावविकारापन्न इस कर्म्मात्मिका क्रिया से ही तत्तत् पदार्थों की अवस्थाओं में परिवर्त्तन हुआ करता है। नामरूपकर्म्ममय मर्त्य पदार्थ की आधारभूमि केन्द्रस्थ मनःप्राणवाङ्मय अन्तर्यामी ही है। नाम एक स्वतन्त्र प्रपञ्च है, कर्म्म एक स्वतन्त्र प्रपञ्च है एवं रूप एक स्वतन्त्र प्रपञ्च है। तीनों अविनाभूत हैं। मनःप्राण को गर्भ में रखने वाली वाक् नामप्रपञ्च की उक्थ-ब्रह्म-साम है, वाक्-मन को गर्भ में रखने वाला प्राण कर्म्मप्रपञ्च का उक्थ ब्रह्म-साम है एवं वाक्-प्राण को गर्भ में रखने वाला मन रूपप्रपञ्च का उक्थ ब्रह्म साम है। जितनें भी रूप हैं, उन सब का वाङ्मय मन उक्थ है, प्राणमय मन ब्रह्म है, मनोमय मन साम है। इस प्रकार मन ही रूपों का उक्थ-ब्रह्म-साम बनता हुआ रूपों का उक्थ-ब्रह्म-सामलक्षण आत्मा है। जितनें भी कर्म्म हैं, उन सब का वाङ्मय प्राण उक्थ है, प्राणमय प्राण ब्रह्म है, मनोमय प्राण साम है। इस प्रकार प्राण ही कर्म्मों का उक्थ-ब्रह्म-साम बनता हुआ कर्म्मों का उक्थ-ब्रह्म-सामलक्षण आत्मा है। जितने भी नाम हैं, उन सब का उक्थ वाङ्मयी वाक् है, प्राणमयी वाक् ब्रह्म है, मनोमयी वाक् साम है। इस प्रकार वाक् ही उक्थ-ब्रह्म-साम बनती हुई नामों की उक्थ-ब्रह्म-सामलक्षण आत्मा है। यह सब त्रिवृद्भाव का वितानमात्र है। वितानात्मक त्रिवृद्भाव से ही आत्मा की तीनों कलाएं त्रिवृत बनतीं हुईं (प्रत्येक कला) तीनों वेदों से युक्त होजातीं हैं। जैसा कि निम्न लिखित परिलेख से स्पष्ट होजाता है—

१.—मनप्राणगर्भित वाक् में उक्थ-ब्रह्म-साम भेद से तीनों वेदों का उपभोग—

१—वागेव वाग्भावेन नाम्नामुक्थम् (वाक्)—वाङ्मयी वाक्-महदुक्थम्—ऋक्	१ (महदुक्थम्) वाक्-ऋक्
२—वागेव प्राणभावेन नाम्नां ब्रह्म (प्राणः)-प्राणमयी वाक्—पुरुषः——यजुः	
३—वागेव मनोभावेन नाम्नां साम (मनः)—मनोमयी वाक्—महाव्रतम्—साम	

२—मनोवाग्गर्भित प्राण में उक्थ-ब्रह्म-साम भेद से तीनों वेदों का उपभोग—

१—प्राण एव वाग्भावेन कर्म्मणामुक्थम् (वाक्)-प्राणमयी वाक्-महदुक्थम्-ऋक्	२ (पुरुषः) प्राणः-यजुः
२—प्राण एव प्राणभावेन कर्म्मणां ब्रह्म (प्राणः)-प्राणमयः प्राणः-पुरुषः—यजुः	
३—प्राण एव मनोभावेन कर्म्मणां साम (मनः)-प्राणमयं मनः-महाव्रतम्-साम	

———o:※:o———

३—प्राणवाग्गर्भित मन में उक्थ ब्रह्म-साम भेद से तीनों वेदों का उपभोग—

१—मन एव वाग्भावेन रूपाणामुक्थम् (वाक्) मनोमयी वाक्—महदुक्थम्-ऋक्	३ (महाव्रतम्) मनः-साम
२—मन एव प्राणभावेन रूपाणां ब्रह्म (प्राणः)-मनोमयः प्राणः—पुरुषः—यजुः	
३—मन एव मनोभावेन रूपाणां साम (मनः)-मनोमयं मनः—महाव्रतम्—साम	

इति—उक्थ—ब्रह्म—सामलक्षणवेदनिरुक्तिः

———o:•:o———

४—आत्म-ज्योति-प्रतिष्ठामय आत्मलक्षणवेदनिरुक्ति

मूलवेद प्रकरण का आरम्भ करते हुए हमने आत्मा को सच्चिदानन्दघन बतलाया है। इस आत्मा के अतिरिक्त सृष्टिसाक्षी आत्मा को मनःप्राणवाङ्मय कहा है। साथ ही में मन को ज्ञानशक्तिमय, प्राण को क्रियाशक्तिमय, एवं वाक् को अर्थशक्तिमयी बतलाया है। सृष्टिसाक्षी आत्मा के इन तीनों पर्वों में क्रमशः आनन्द-विज्ञान-सत्ता इन तीनों पर्वों का विकास रहता है। नामरूपकर्मात्मक पदार्थ ही अर्थप्रपञ्च है। इस अर्थ, किंवा पदार्थ के आधार पर उक्थत्रय प्रतिष्ठित रहता है। घटोऽस्ति, पटोऽस्ति, इत्यादि वाक्यों में घट-पट आदि पदार्थ नामरूपकर्मात्मक हैं, अस्तिभाग सत्ता है। मन-प्राण-वाक् की समष्टि ही जो कहा है। इस सत्ता के मनोभाग, प्राणभाग, वाग्भाग में ही तो अर्थ का उपभोग—

कर्म्मभाग–नामभाग अनुगृहीत रहता है। सत्ता के (अस्तित्व के) आश्रय से ही नामरूप-कर्म्मात्मक पदार्थों का अभिनय होता है। इसी आधार पर हम कह सकते है कि, आत्मा के सत्ताभाग का सृष्टिस ही आत्मा के अर्थरूप वाग्भाग (त्रिवृद्वाग्भाग) पर ही विकास होता है। दूसरा पर्व है त्रिवृत्प्राण। यह क्रियाशक्तिमय है। यही प्राणभाग चेतना की विकासभूमि है। तीसरा त्रिवृत् मन है। यह ज्ञानशक्तिमय है। यही मनोभाग आनन्द की विकासभूमि है। ज्ञान से ही आनन्द विकसित होता है।

प्रकारान्तर से यों समझिए कि, प्रत्येक ज्ञान में प्रज्ञा–प्राण–भूत इन तीन मात्राओं का समावेश रहता है, जैसा कि आगे विस्तार से बतलाया जाने वाला है। प्रज्ञा मन है, प्राण प्राण है, भूत वाक है। इन में वाक् विषय है, प्राण इन्द्रियवृत्ति है, मन इन्द्रियाधिष्ठता प्रज्ञान है। विषय सत्ता से अनुगृहीत है, इन्द्रियवृत्ति चेतना से अनुगृहीत है, प्रज्ञान आनन्द से अनुगृहीत है। इसी आधार पर हम मन को आनन्दात्मक कह सकते हैं, प्राण को चेतनात्मक कह सकते हैं, एवं वाक् को सत्तात्मिका कहा जासकता है।

यद्यपि आनन्द–चेतना–सत्ता, मन–प्राण–वाक्, ये सभी आत्मविवर्त्त हैं। फिर भी "रसो ह्येव सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" इस औपनिषद सिद्धान्त के अनुसार रसरूप (रसप्रधान) आनन्द को ही हम मुख्य आत्मा कहेगे- आनन्दमयोऽभ्यासात्' (शा. सू० १।१।१२)। इस आनन्द की विकासभूमि ज्ञानशक्तिमय मन ही है। ऐसी दशा में हम आनन्दात्मक ज्ञानमूर्त्ति इस मन को आत्मा कहने के लिए तय्यार हैं। वेदतत्वमीमांसासम्मत परिभाषा के अनुसार आनन्दात्मक इस मनोमय आत्मा को ही "रसवेद" कहा जाता है। इसी के रसन (प्रस्रवण) से आगे के सारे विवर्त्तों का विकास हुआ है। आनन्दात्मक मनोमय आत्मा की मात्रा ले ले कर ही सब उपजीवित हैं। चेतनात्मक क्रियाशक्तिघन प्राण, एवं सत्तात्मिका-अर्थशक्तिघना वाक् इस आत्मा की विभूतियां हैं। चेतना ज्योति है, प्रकाश है। तद्युक्त प्राणविभूति को भी हम चेतनाविकासभूमि के कारण ज्योति कह सकते हैं। सत्ता प्रतिष्ठातत्व है। 'अस्ति" यही तो प्रतिष्ठा है। अस्तित्व का मिटना ही तो प्रतिष्ठा का उखड़ना कहलाता

है। इस प्रकार आनन्दात्मक मनोमय आत्मा, चेतनात्मक प्राणमयी ज्योति, सत्तात्मिका वाङ्मयी प्रतिष्ठा भेद से एक ही आत्मा के तीन विवर्त हो जाते हैं।

मूर्ति को छन्दोवेद कहा जाता है, मण्डल को वितानवेद कहा जाता है, एवं जिस मौलिकतत्व की मूर्ति एवं मण्डल होता है, उसे रसवेद कहा जाता है। रसवेद यजुर्वेद है, वितानवेद सामवेद है छन्दोवेद ऋग्वेद है। इन तीनों का आगे विस्तार से दिग्दर्शन कराया जाने वाला है। अभी इस सम्बन्ध में हमें केवल यही कहना है कि, रसस्थानीय पूर्वोक्त आत्मा रसरूप होने से यजुर्वेद है। ज्योति का ही वितान होता है। यही मण्डल में परिणत होती है। अतः आत्मा की इस ज्योतिर्विभूति को हम सामवेद कहने के लिए तय्यार हैं। प्रतिष्ठा ही मूर्ति की स्वरूपसम्पादिका है। मूर्ति ही ऋग्वेद है। फलतः आत्मा की इस प्रतिष्ठाविभूति का ऋग्वेदत्व सिद्ध होजाता है। इस प्रकार आत्मा–ज्योति–प्रतिष्ठा भेद से विभूतियुक्त आत्मा में तीनों वेदों का उपयोग सिद्ध होजाता है।

१—आनन्दः——→ज्ञानशक्तिमयं मनः (आनन्दविकासभूमि.)।

२—चेतना——→क्रियाशक्तिमयः प्राणः(चेतनाविकासभूमिः)।

३—सत्ता——→अर्थशक्तिमयी वाक् (सत्ताविकासभूमिः)।

———

१—आनन्दात्मको मनोमय आत्मा ——→आत्मा

२—चेतनात्मकः प्राणमय आत्मा——→ज्योतिः

३—सत्तात्मको वाङ्मय आत्मा——→प्रतिष्ठा

———

१—आनन्दात्मको मनोमय आत्मा—→आत्मा—(आत्मवेदः—रसवेदः)—→यजुर्वेदः

२—चेतनात्म : प्राणमय आत्मा—→ज्योतिः—(ज्योतिर्वेदः वितानवेदः)—→सामवेदः

३—सत्तात्मको वाङ्मय आत्मा—→प्रतिष्ठा—(प्रतिष्ठावेदः-छन्दोवेदः)—→ऋग्वेदः

कर्मभाग-नामभाग अनुगृहीत रहता है। सत्ता के (अस्तित्व के) आश्रय से ही नामरूप-कर्मात्मक पदार्थों का अभिनय होता है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि, आत्मा के सत्ताभाग का सृष्टिसाक्षी आत्मा के अर्थरूप वाग्भाग (त्रिवृद्वाग्भाग) पर ही विकास होता है। दूसरा पर्व है त्रिवृत्प्राण। यह क्रियाशक्तिमय है। यही प्राणभाग चेतना की विकासभूमि है। तीसरा त्रिवृत् मन है। यह ज्ञानशक्तिमय है। यही मनोभाग आनन्द की विकासभूमि है। ज्ञान से ही आनन्द विकसित होता है।

प्रकारान्तर से यों समझिए कि, प्रत्येक ज्ञान में प्रज्ञा-प्राण-भूत इन तीन मात्राओं का समावेश रहता है, जैसा कि आगे विस्तार से बतलाया जाने वाला है। प्रज्ञा मन है, प्राण प्राण है, भूत वाक् है। इन में वाक् विषय है, प्राण इन्द्रियवृत्ति है, मन इन्द्रियाधिष्ठाता प्रज्ञान है। विषय सत्ता से अनुगृहीत है, इन्द्रियवृत्ति चेतना से अनुगृहीत है, प्रज्ञान आनन्द से अनुगृहीत है। इसी आधार पर हम मन को आनन्दात्मक कह सकते हैं, प्राण को चेतनात्मक कह सकते हैं, एवं वाक् को सत्तात्मिका कहा जा सकता है।

यद्यपि आनन्द-चेतना-सत्ता, मन-प्राण-वाक्, ये सभी आत्मविवर्त हैं। फिर भी "रसो वै सः, रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" इस औपनिषद सिद्धान्त के अनुसार रसरूप (रसप्रधान) आनन्द को ही हम मुख्य आत्मा कहेंगे- आनन्दमयोऽभ्यासात्' (शा. सू० १।१।१२)। इस आनन्द की विकासभूमि ज्ञानशक्तिमय मन ही है। ऐसी दशा में हम आनन्दात्मक ज्ञानमूर्त्ति इस मन को आत्मा कहने के लिए तय्यार हैं। वेदतत्त्वमीमांसासम्मत परिभाषा के अनुसार आनन्दात्मक इस मनोमय आत्मा को ही "रसवेद" कहा जाता है। इसी के रसन (प्रस्रवण) से आगे के सारे विवर्त्तों का विकास हुआ है। आनन्दात्मक मनोमय आत्मा की मात्रा ले ले कर ही सब उपजीवित हैं। चेतनात्मक क्रियाशक्तिघन प्राण, एवं सत्तात्मिका अर्थशक्तिघना वाक् इस आत्मा की विभूतियां हैं। चेतना ज्योति है, प्रकाश है। तदुक्त प्राणविभूति को भी हम चेतनाविकासभूमि के कारण ज्योति कह सकते हैं। सत्ता प्रतिष्ठात्मक है। 'अस्ति" यही तो प्रतिष्ठा है। अस्तित्व का मिटना ही तो प्रतिष्ठा का उखड़ना कहलाता

है। इस प्रकार आनन्दात्मक मनोमय आत्मा, चेतनात्मक प्राणमयी ज्योति, सत्तात्मिका वाङ्मयी प्रतिष्ठा भेद से एक ही आत्मा के तीन विवर्त्त हो जाते हैं।

मूर्त्ति को छन्दोवेद कहा जाता है, मण्डल को वितानवेद कहा जाता है, एवं जिस मौलिकतत्व की मूर्त्ति एवं मण्डल होता है, उसे रसवेद कहा जाता है। रसवेद यजुर्वेद है, वितानवेद सामवेद है छन्दोवेद ऋग्वेद है। इन तीनों का आगे विस्तार से दिग्दर्शन कराया जाने वाला है। अभी इस सम्बन्ध में हमें केवल यही कहना है कि, रसस्थानीय पूर्वोक्त आत्मा रसरूप होने से यजुर्वेद है। ज्योति का ही वितान होता है। यही मण्डल में परिणत होती है। अतः आत्मा की इस ज्योतिर्विभूति को हम सामवेद कहने के लिए तय्यार हैं। प्रतिष्ठा ही मूर्त्ति की स्वरूपसम्पादिका है। मूर्त्ति ही ऋग्वेद है। फलतः आत्मा की इस प्रतिष्ठाविभूति का ऋग्वेदत्व सिद्ध होजाता है। इस प्रकार आत्मा–ज्योति–प्रतिष्ठा भेद से विभूतियुक्त आत्मा में तीनों वेदों का उपयोग सिद्ध होजाता है।

१—आनन्दः——→ज्ञानशक्तिमयं मनः (आनन्दविकासभूमिः)।

२—चेतना——→क्रियाशक्तिमयः प्राणः (चेतनाविकासभूमिः)।

३—सत्ता——→अर्थशक्तिमयी वाक् (सत्ताविकासभूमिः)।

———

१—आनन्दात्मको मनोमय आत्मा——→आत्मा

२—चेतनात्मकः प्राणमय आत्मा——→ज्योतिः

३—सत्तात्मको वाङ्मय आत्मा——→प्रतिष्ठा

———

१—आनन्दात्मको मनोमय आत्मा—→आत्मा—(आत्मवेदः—रसवेदः)—→यजुर्वेदः

२—चेतनात्मकः प्राणमय आत्मा—→ज्योतिः—(ज्योतिर्वेदः-वितानवेदः)—→सामवेदः

३—सत्तात्मको वाङ्मय आत्मा—→प्रतिष्ठा—(प्रतिष्ठावेदः-छन्दोवेदः)—→ऋग्वेदः

कर्म्मभाग-नामभाग अनुगृहीत रहता है। सत्ता के (अस्तित्व के) आश्रय से ही नामरूप-कर्म्मात्मक पदार्थों का अभिनय होता है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि, आत्मा के सत्ताभाग का सृष्टिसद्धी आत्मा के अर्थरूप वाग्भाग (त्रिवृद्वाग्भाग) पर ही विकास होता है। दूसरा पर्व है त्रिवृत्प्राण। यह क्रियाशक्तिमय है। यही प्राणभाग चेतना की विकासभूमि है। तीसरा त्रिवृत् मन है। यह ज्ञानशक्तिमय है। यही मनोभाग आनन्द की विकासभूमि है। ज्ञान से ही आनन्द विकसित होता है।

प्रकारान्तर से यों समझिए कि, प्रत्येक ज्ञान में **प्रज्ञा-प्राण-भूत** इन तीन मात्राओं का समावेश रहता है, जैसा कि आगे विस्तार से बतलाया जाने वाला है। प्रज्ञा मन है, प्राण प्राण है, भूत वाक है। इन में वाक् विषय है, प्राण इन्द्रियवृत्ति है, मन इन्द्रियाधिष्ठता प्रज्ञान है। विषय सत्ता से अनुगृहीत है, इन्द्रियवृत्ति चेतना से अनुगृहीत है, प्रज्ञान आनन्द से अनुगृहीत है। इसी आधार पर हम मन को आनन्दात्मक कह सकते हैं, प्राण को चेतनात्मक कह सकते हैं, एवं वाक् को सत्तात्मिका कहा जासकता है।

यद्यपि आनन्द-चेतना-सत्ता, मन-प्राण-वाक्, ये सभी आत्मविवर्त्त हैं। फिर भी **"रसो ह्येव सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति"** इस औपनिषद सिद्धान्त के अनुसार रसरूप (रसप्रधान) आनन्द को ही हम मुख्य आत्मा कहेंगे- **आनन्दमयोऽभ्यासात्'** (शा. सू० १।१।१२)। इस आनन्द की विकासभूमि ज्ञानशक्तिमय मन ही है। ऐसी दशा में हम आनन्दात्मक ज्ञानमूर्त्ति इस मन को आत्मा कहने के लिए तय्यार हैं। वेदतत्वमीमांसासम्मत परिभाषा के अनुसार आनन्दात्मक इस मनोमय आत्मा को ही "रसवेद" कहा जाता है। इसी के रसन (प्रस्रवण) से आगे के सारे विवर्त्तों का विकास हुआ है। आनन्दात्मक मनोमय आत्मा की मात्रा ले ले कर ही सब उपजीवित हैं। चेतनात्मक क्रियाशक्तिघन प्राण, एवं सत्तात्मिका अर्थशक्तिघना वाक् इस आत्मा की विभूतियां हैं। चेतना ज्योति है, प्रकाश है। तद्युक्त प्राणविभूति को भी हम चेतनाविकासभूमि के कारण **ज्योति** कह सकते हैं। सत्ता प्रतिष्ठा है। **'अस्ति"** यही तो प्रतिष्ठा है। अस्तित्व का मिटना ही तो प्रतिष्ठा का उखड़ना कहलाता

पाठक यह न भूले होंगे कि, आत्मस्वरूप मनः-प्राण-वाक् तीनों हीं त्रिवृत् हैं। अर्थात् मनोमय आत्मा भी मनप्राणवाङ्मय है, प्राणमय आत्मा भी मन.प्राणवाङ्मय है, एवं वाङ्मय आत्मा भी मन.प्राणवाङ्मय है। इसी त्रिवृद्भाव के कारण आत्मलक्षण यजुर्वेद, ज्योतिर्लक्षण सामवेद, प्रतिष्ठालक्षण ऋग्वेद, इन तीनों में (प्रत्येक में) ऋक्-यजुः-साम इन तीनों वेदों का उपभोग होजाता है। इन तीनों विवर्त्तों का "ईशोपनिषद्विज्ञानभाष्य" द्वितीयखण्ड के "त्रयीवेदनिरुक्ति" प्रकरण में विस्तार से निरूपण किया जा चुका है। विशेष जिज्ञासुओं को वही प्रकरण देखना चाहिए—(देखिए-ई०उ०वि०भा०द्वि०ख० ६२ पृष्ठ से ३० पर्यन्त)। यहा प्रकरणसङ्गति के लिये इन वेदविवर्त्तों का केवल नामोल्लेख कर दिया जाता है।

१—आत्मवेदः (यजुर्वेदः)

आनन्दात्मक मनोमय तत्व को आत्मा कहा गया है आनन्दगर्भित यह मनोमय आत्मा त्रिवृद्भाव के कारण मनः-प्राण-वाङ्मय है। ये ही तीनों आत्मविवर्त भौतिक विश्व के उक्थ-ब्रह्म-साम हैं। मनोमयी वाक् उक्थ है, मनोमय प्राण ब्रह्म है, मनोमय मन साम है। आत्मा का यह उक्थभाग ही ऋक् है ब्रह्मभाग यजु है, सामभाग साम है। उपनिषद्भाष्य में हमने वाक् को साम माना है प्राण को ब्रह्म माना है, मन को उक्थ माना है। एव प्रकरण में वाक् को उक्थ, एव मन को साम बतलाया जा रहा है। इस में विरोध नहीं समझना चाहिए। वहा नामरूपकर्म्म की प्रधानता है यहा ज्ञानमय आनन्द की प्रधानता है। नामरूपकर्म में नाम वाङ्मय है, इसी पर रूपकर्म्म का अवस्थान है। इस लिए वहा वाक् को साम बतलाया गया है। यहा आनन्द ही प्रधान है। मन आनन्दमय है, इस लिए यहा आनन्दमय मन को साम कहा गया है। कहना यही है कि, उक्थ-ब्रह्म-साम रूप से केवल आनन्दात्मक (त्रिवृत्) मनोमय, यजुर्वेदमूर्त्ति आत्मवेद में हीं तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है, जैसा कि निम्न लिखित परिलेख से स्पष्ट है—

२—तदित्थं सत्तात्मके वाङ्मये प्रतिष्ठालक्षणे ऋग्वेदे वाचस्त्रिष्ट्वाद्वेदत्रयोपभोगः।

१—सत्तागर्भित वाङ्मयं मनः—आत्मवृतिः—ऋग्वेदः
२—सत्तागर्भितो वाङ्मयः प्राण—असतोधृतिः-यजुर्वेदः } → प्रतिष्ठावेदत्रयी—वाङ्मयी—वाक् २
३—सत्तागर्भिता वाङ्मयी वाक्—सतोधृतिः—सामवेद.

३—ज्योतिर्वेदः (सामवेदः)

चेतनात्मक त्रिवृत् प्राणप्रपञ्च ही ज्योतिःस्वरूप सामवेद है। "सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत्" (तै०ब्रा० ३।१२।९) का यही तात्पर्य्य है। प्राण के त्रिवृत्करण से इस ज्योति के भी तीन विवर्त्त होजाते हैं। वे ही तीनों ज्योतियाँ क्रमशः ज्ञानज्योति, भूतज्योति, सत्यज्योति, नामों से प्रसिद्ध हैं। मनोमयी ज्योति ज्ञानज्योति है, यही आत्मज्योति है। प्राणमयी ज्योति भूतज्योति है। यह सूर्य्य-चन्द्र-विद्युत्-नक्षत्र-अग्नि, भेद से पांच भागों में विभक्त है। "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" (मुण्डक० २।२।१०) के अनुसार ज्ञानज्योति से ही यह भूतज्योति प्रकाशित रहती है, अत एव आत्मलक्षणा मनोमयी ज्ञानज्योति को "ज्योतिषां ज्योतिः" नाम से भी व्यवहृत किया गया है—"तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्"। वाङ्मयी ज्योति सत्यज्योति है। यह नाम-रूप भेद से दो भागों में विभक्त है। नाम-रूप से ही भाति (ज्ञान) का उदय होता है। नाम-रूप के आधार पर ही तत्तद्विषय हमारी प्रतीति के विषय बनते हैं। यही इस का ज्योतिर्भाव है। "नामरूपे सत्यम्" (शत० १४।४।४।३) के अनुसार नाम रूपसमष्टि सत्य नाम से व्यवहृत हुई है। अतः हम इस ज्योति को अवश्य ही 'सत्यज्योति' नाम से सम्बोधित करने के लिए तय्यार हैं। याज्ञवल्क्य ने इन तीनों ज्योतियों को पांच भागों में विभक्त मान कर पुरुष को पञ्चज्योति माना है। याज्ञवल्क्योक्त वे पाँचों ज्योतियाँ सूर्य्य-चन्द्र-अग्नि-वाक्-आत्मा, इन नामों से प्रसिद्ध हैं। इन में सूर्य्य-चन्द्र-अग्नि

ये तीनों भूतज्योतियाँ हैं, वाक् सत्यज्योति है, आत्मा ज्ञानज्योति है—(देखिए शत० १४। ६।११।६)। मनोमयी ज्ञानज्योति ऋग्वेद है, प्राणमयी भूतज्योति यजुर्वेद है, एवं वाङ्मयी सत्यज्योति सामवेद है। इस प्रकार इन तीन ज्योतियों के भेद से सामवेदमूर्त्ति ज्योतिर्वेद में ही इन तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है, जैसा कि निम्न लिखित परिलेख से स्पष्ट है—

१—तदित्थं चेतनात्मके प्राणमये ज्योतिर्लक्षणे सामवेदे प्राणस्य त्रिवृद्भावाद्वेदत्रयोपभोगः।

१—चेतनागर्भितं प्राणमयं मनः—ज्ञानज्योतिः—ऋग्वेदः	
२—चेतनागर्भितः प्राणमयः प्राणः—भूतज्योतिः—यजुर्वेदः	→ज्योतिर्वेदत्रयी प्राणमयी—प्राणः [३]
३—चेतनागर्भिता प्राणमयी वाक्—सत्यज्योतिः—सामवेदः	

आत्म-ज्योति-प्रतिष्ठालक्षण उक्त आत्मवेद का सच्चिदानन्दरूप मूलवेद में ही अन्तर्भाव होजाता है। प्रतिष्ठा सत्ता है, ज्योति चेतना है, आत्मा आनन्द है। यही तीन रूपों से सर्वत्र सब-कुछ बन कर व्याप्त हो रहा है।

१

१—आत्मवेदः——आनन्दः——आनन्द—→यजुर्वेदः	
२—प्रतिष्ठावेदः——सत्ता——सत्——→ऋग्वेदः	→सच्चिदानन्दमूर्त्तिर्वेदः
३—ज्योतिर्वेदः——चेतना——चित्——→सामवेदः	

१ आनन्दः: १—उक्थम्——उक्थवेदः——ऋग्वेदः	
२—ब्रह्म——ब्रह्मवेदः——यजुर्वेदः	→आत्मवेदो वेदत्रयात्मकः—यजुर्वेदः [१]
३—साम——सामवेदः——सामवेदः	

२ सत्ता	१—आत्मा——आत्मधृतिवेदः——ऋग्वेदः		→प्रतिष्ठ वेदो वेदत्रयात्मकः-ऋग्वेदः	२
	२—धृतिः——अमतोधृतिवेदः——यजुर्वेदः			
	३—विधृतिः——सर्वोधृतिवेदः——सामवेदः			

३ चेतना	१—आत्मा —ज्ञानज्योतिर्वेदः——ऋग्वेदः		→ज्योतिर्वेदो वेदत्रयात्मकः-सामवेदः	३
	२—भूतानि——भूतज्योतिर्वेदः—— यजुर्वेदः			
	३—नामरूपे——सत्यज्योतिर्वेदः——सामवेदः			

इति-आत्म-ज्योति-प्रतिष्ठावेदनिरुक्तिः

६—उपलब्धिरूप आत्मलक्षणवेदनिरुक्ति

पूर्व में आत्म-प्रतिष्ठा-ज्योतिर्लक्षण जिस आत्मवेद का दिग्दर्शन कराया गया है, वह ईश्वर-जीव-जगत इन तीन विवर्तों में विभक्त है। दूसरे शब्दों में ईश्वर भी सच्चिदानन्दवेदमूर्ति है, जीव भी सच्चिदानन्दमूर्ति है, एवं विश्व भी सच्चिदानन्दमूर्ति है। तीनों संस्थाएं ही क्रमशः आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक नामों से प्रसिद्ध हैं इन तीनों संस्थाओं के तीनों वेदों में केवल आत्म-प्रतिष्ठा ज्योति का तारतम्य है। आधिदैविकसंस्था से सम्बन्ध रखने

वाले ईश्वरीय वेद में आनन्दलक्षण आत्मवेद प्रधान है, चेतना एवं सत्त लक्षण ज्योतिर्वेद, तथा प्रतिष्ठावेद गौण हैं। आध्यात्मिकसंस्था से सम्बन्ध रखने वाले जीववेद में चेतनालक्षण ज्योतिर्वेद प्रधान है, आनन्द एवं सत्त लक्षण आत्मवेद और प्रतिष्ठ वेद गौण हैं। आधिभौतिकसंस्था से सम्बन्ध रखने वाले विश्ववेद में सत्तालक्षण प्रतिष्ठावेद प्रधान है। आनन्द एवं चेतनालक्षण आत्मवेद और ज्योतिर्वेद गौण हैं। ईश्वर आनन्दमूर्ति है, आत्मवेदमूर्ति है। जीव चिन्मूर्ति है, ज्योतिर्वेदमूर्ति है। विश्व सन्मूर्ति है, प्रतिष्ठ वेदमूर्ति है। ये ही तीनों संस्थाएं क्रमशः अस्ति-भाति प्रिय नाम से प्रसिद्ध हैं। वही अस्ति है, वही भाति है, वही प्रिय है। उसी की अस्ति है, उसी की भाति है, उसी का प्रिय है। इन तीनों की समष्टि ही उपलब्धिरूप आत्मलक्षण वेद है।

वस्तु की प्राप्ति को ही उपलब्धि कहा जाता है। इस उपलब्धि में अस्ति-भाति-प्रिय तीनों का समन्वय है। इस उपलब्धि का मुख्य आधार सत्तालक्षण प्रतिष्ठावेद है। दूसरे शब्दों में हमें प्रत्येक पदार्थ की अस्तिरूप से ही उपलब्धि होती है। नामरूपात्मक घट-पटादि पदार्थ अस्तिमान् हैं। ये ही उपलब्धि के विषय बनते हैं। पदार्थ हैं इसीलिए तो इन की उपलब्धि होती है। शशशृङ्गादि उपलब्ध क्यों नहीं होते ? उनकी सत्ता नहीं, अस्तित्व नहीं- "यदि स्यादुपलभ्येत"। अस्ति की उपलब्धि क्या होती है, अस्ति ही उपलब्ध होना है। उपलब्धि और अस्ति को पृथक् नहीं किया जा सकता। "घटोऽस्ति" यही तो हमारी उपलब्धि का अभिनय है। घट है, यही तो हम जानते हैं। अर्थात् हमारा ज्ञान "घटोऽस्ति" इस आकार से आकारित बनकर ही तो घटोपलब्धि का अभिनय करता है। यदि ज्ञान में से अस्ति निकाल दिया जाय तो घटोपलब्धि का कोई स्वरूप ही न रहे। अस्ति एवं उपलब्धि के इसी तादात्म्यभाव का स्पष्टीकरण करती हुई श्रुति कहती है—

> नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
> अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १ ॥

	१—आत्मा——आत्मधृतिवेदः——ऋग्वेदः			
२ सत्ता	२—धृतिः——अमतोधृतिवेदः——यजुर्वेदः	}	→ प्रतिष्ठ वेदो वेदत्रयात्मकः-ऋग्वेदः	२
	३—विधृतिः——सर्वोधृतिवेदः——सामवेदः			

	१—आत्मा——ज्ञानज्योतिर्वेदः——ऋग्वेदः			
३ चेतना	२—भूतानि——भूतज्योतिर्वेदः——यजुर्वेदः	}	→ ज्योतिर्वेदो वेदत्रयात्मकः-सामवेदः	३
	३—नामरूपे——सत्यज्योतिर्वेदः——सामवेदः			

इति-आत्म-ज्योति-प्रतिष्ठावेदनिरुक्तिः

६—उपलब्धिरूप आत्मलक्षणवेदनिरुक्ति

पूर्व में आत्म-प्रतिष्ठा-ज्योतिर्लक्षण जिस आत्मवेद का दिग्दर्शन कराया गया है, वह ईश्वर-जीव-जगत् इन तीन विवर्तों में विभक्त है। दूसरे शब्दों में ईश्वर भी सच्चिदानन्दवेदमूर्ति है, जीव भी सच्चिदानन्दमूर्ति है, एवं विश्व भी सच्चिदानन्दमूर्ति है। तीनों संस्थाएं ही क्रमशः आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक नामों से प्रसिद्ध हैं इन तीनों संस्थाओं के तीनों वेदों में केवल आत्म-प्रतिष्ठा ज्योति का तारतम्य है। आधिदैविकसंस्था से सम्बन्ध रखने

रूप में परिणत हुआ उपलब्धि का विषय नहीं बन सकता । ऐसी स्थिति में हम कह सकते हैं कि, आनन्दोपलब्धिरूप आत्मलक्षण यजुर्वेद, चेतनोपलब्धिरूप ज्योतिर्लक्षण सामवेद, सत्तोपलब्धिरूप प्रतिष्ठ लक्षण ऋग्वेद , ये तीनों ही उपलब्धिवेद भौतिकपदार्थ के आधार पर ही प्रतिष्ठित रहते हैं । दूसरे शब्दों में यों भी कहा जासकता है कि, आप उपलब्धि वेद को जब भी देखेंगे, भूत के आधार पर ही देखेंगे । उपलब्धिवेद का मूलाधार अस्ति बतलाया गया है। मन-प्राण-वाक् की समष्टि ही अस्ति है । यह अस्ति का अमृतरूप है, नित्यरूप है । मन से रूप, प्राण से कर्म्म, वाक् से नामात्मक मर्त्यभूत का उदय होता है । नामरूपकर्म्म की समष्टि ही भौतिकभाग है । यही उस अस्ति का मर्त्य, अनित्यरूप है , यह मर्त्य अस्ति (भूत) अमृत अस्ति की प्रतिष्ठा है , अमृत अस्ति चेतना की प्रतिष्ठा है , यही अस्ति आनन्द की प्रतिष्ठा है । इसी उपलब्धिवेदरहस्य को लक्ष्य में रखकर वेदभगवान् कहते हैं—

> 'स त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतान्यपश्यत् ।
> एतद् वा अस्ति । एतद्धि-अमृतम् । एतद् तत्-यन्म-
> र्त्यम् । त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि (प्रति-
> ष्ठितानि)" । (शत० १०।६।१।१२) इति ।

सत्तोपलब्धिवेद "विद्यते इति वेदः" इस निर्वचन से वेद कहलाता है । यही इस का सत्ताप्रधान निर्वचन है । चेतनोपलब्धि वेद "वेत्ति-इति वेदः" इस निर्वचन से वेद है । यही चेतनाप्रधान (ज्ञानप्रधान-भातिप्रधान) निर्वचन है । आनन्दोपलब्धि वेद "विन्दति-इति वेदः" इस निर्वचन से वेद है । यही इस का आनन्दप्रधान (रसप्रधान-प्रियप्रधान-लाभप्रधान) निर्वचन है । सत्तार्थक विद् धातु का "विद्यते" से सम्बन्ध है । यह ऋग्वेद की प्रतिष्ठा है ('विद्'सत्तायाम्) । ज्ञानार्थक विद् धातु का "वेत्ति" से सम्बन्ध है, यह सामवेद की प्रतिष्ठा है ('विद्'ज्ञाने) । लाभार्थक विद् धातु का "विन्दति" से सम्बन्ध है, यह यजुर्वेद की प्रतिष्ठा है ('विद्लृ'लाभे) । इन्हीं तीनों भावों के कारण ही तो उपलब्धितत्व "वेद"

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ २ ॥
(कठ० ६।१२-१३) ।

नामरूपानुग्राहिणी यह अस्ति ही उपलब्धि का पहिला पर्व है । यही प्रतिष्ठालक्षण ऋग्वेद है । घट है, उसे हम जानते हैं । यह ज्ञानज्योति ही चेतना है । चेतना ही ज्योतिर्वेद है । जो वस्तु है, एवं जिसे हम जानते हैं, किंवा जिस का हमें ज्ञान होता है, सत्ता एवं ज्ञान का प्रतिष्ठारूप वही तत्व "रस" है । रस की सत्ता है, रस का ज्ञान है। रस ही प्रिय है, यही आत्मा है, यही आनन्दलक्षण आत्मवेद है । आनन्द उपलब्धि का मुख्य पर्व है । जब तक वस्तु सत्ता, एवं वस्तुज्ञान से आनन्द नहीं आता, तबतक वह उपलब्धि कोई मूल्य नहीं रखती । आनन्द ही हमें प्रिय है । । तभी तो दार्शनिक लोग इसे "प्रिय" नाम से सम्बोधित करते हैं । इसीलिए हम इसे उपलब्धि का मुख्य पर्व मानने के लिए तय्यार हैं। इस मुख्योपलब्धि का आधार चेतनामय ज्ञान है । विद्यमान वस्तु भी विना ज्ञान के आनन्दोपलब्धि का कारण नहीं बन सकती । इस ज्ञान की भी आधार भूमि सत्ता है। यदि वस्तु न हो,तो ज्ञान किस का हो। इस प्रकार इस दृष्टि से तो सत्ता सर्वमुख्य है , एवं उपलब्धि दृष्टि से आनन्द सर्वमुख्य है। इस प्रकार सत्तोपलब्धि, चेतनोपलब्धि, आनन्दोपलब्धि, तीनो के समन्वय से ही उपलब्धि का उदय होता है । यही वेदत्रयीरूपा वेदोपलब्धि है । इतना स्मरण रखना चाहिए कि, इस उपलब्धि वेद की मूलप्रतिष्ठा नामरूपात्मक भौतिकभाग ही है । घटोऽस्ति में से यदि आप नामरूपकर्मात्मक भूतभाग पृथक् कर देंगे, तो वह विशुद्ध सत्ता सामान्यभाव में परिणत होती हुई, अत एव व्यापक एवं निराकार बनती हुई प्रतीतिलक्षणा उपलब्धिमर्यादा से बाहिर निकल जायगी । व्यापकसत्ता को उपलब्धिरूप में परिणत करना एकमात्र परिच्छिन्न मृत्युरूप साकार नामरूपकर्मात्मक भौतिक प्रपञ्च का ही काम है। यही अवस्था ज्ञान (विषयज्ञान) एवं आनन्द (विषयानन्द) की है । विना भौतिकविषय के ज्ञान भी निर्विकल्पक, अत एव व्यापक निराकार बनता हुआ उपलब्धि से बाहिर होजाता है । एवं भौतिकविषय के विना आनन्द भी निरानन्द बनता हुआ, शान्त-

१—घटोऽस्ति]→सत्तोपलब्धिः (विषयात्मकः—प्रतिष्ठालक्षणः—ऋग्वेदः)
२—त्वमहंजानामि]→चेतनोपलब्धिः (वृत्त्यात्मकः—ज्योतिर्लक्षणः—सामवेदः)
३—यस्यास्तित्वं, यस्य च ज्ञानं सोऽयंरसः, तृप्तिलक्षणो लाभात्मकः }→ आनन्दोपलब्धिः (अन्तःकरणात्मकः-आत्मलक्षणः यजुर्वेदः

} उपलब्धिवेदः

—o:❀:o—

१—"विन्ते"—इति वेदः→सत्तोपलब्धिः—ऋग्वेदः प्रतिष्ठा
२—"वेत्ति"— इति वेदः→चेतनोपलब्धिः—सामवेदः-ज्योतिः
३—"विन्दति"—इति वेदः→आनन्दोपलब्धि.-यजुर्वेदः-आत्मा

}→ सैषा उपलब्धिरूपा-वेदत्रयी

—o:❀:o—

इति—उपलब्धिवेदनिरुक्तिः

७—महेन्द्रविष्णुसहकृत(अक्षरसहकृत)आत्मवेदनिरुक्ति (सत्यवेदः)।

अब तक वेदपदार्थ के सम्बन्ध में जिन ६ विवर्त्तभावों का स्वरूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया गया है, उन सब का एकमात्र पञ्चकल अव्ययपुरुष के साथ ही सम्बन्ध समझना चाहिए। पञ्चकल अव्यय ही सच्चिदानन्द कहलाता है। एवं पूर्व के सभी वेदविवर्त्तों का सच्चिदानन्दलक्षण अव्ययपुरुष में अन्तर्भाव है। 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि" (गी०……) इस स्मार्त्तसिद्धान्त के अनुसार अव्ययपुरुष स्वभावभूता अपनी अन्तरङ्ग प्रकृति से सर्वथा अविनाभूत है। इसी स्वभाव के कारण इस अन्तरङ्ग प्रकृति को अव्ययात्मा

कहलाया है। सत्ता भी वेद है, ज्ञान भी वेद है, आनन्द भी वेद है। सम्पूर्ण विश्व वेदमूर्त्ति है, सम्पूर्ण जीवप्रपञ्च वेदमूर्त्ति है, स्वयं ईश्वर वेदमूर्त्ति है। वेद से, किंवा वेदात्मक सत्ता-चेतना-आनन्दभावों से अतिरिक्त और है क्या ?—"सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति"।

१—आधिदैविकवेदः→आनन्दप्रधानो वा आत्मप्रधानः (यजुः)।

१ आनन्दः (आत्मा)
- १—आनन्दप्रधानः—आनन्दमयः—आत्ममयो आत्मवेदः-यजुर्म्मयः-यजुर्वेदः
- २—आनन्दप्रधानः—चेतनामयः—आत्मप्रधानो ज्योतिर्वेदः-यजुर्म्मय. सामवेदः
- ३—आनन्दप्रधानः—सत्तामयः—आत्मप्रधानः प्रतिष्ठावेदः-यजुर्म्मयः-ऋग्वेदः

} आत्मवेदः—यजुर्वेदः — ईश्वरः

—॥—

२—आध्यात्मिकवेदः→चेतनाप्रधानो वा ज्योतिःप्रधानः (साम)

२ चेतना (ज्योतिः)
- १—चेतनाप्रधानः—आनन्दमयः—ज्योतिःप्रधानः आत्मवेदः-साममयः-यजुर्वेदः
- २—चेतनाप्रधानः—चेतनामयः—ज्योतिर्म्मयो ज्योतिर्वेदः -साममयः-सामवेदः
- ३—चेतनाप्रधानः—सत्तामयः—ज्योतिप्रधानः-प्रतिष्ठावेदः साममयः-ऋग्वेदः

} ज्योतिर्वेदः—सामवेदः — जीवः

—०:॥:०—

३—आधिभौतिकवेदः→सत्ताप्रधानो वा प्रतिष्ठाप्रधानः (ऋक्)।

- १—सत्ताप्रधान.—आनन्दमयः—प्रतिष्ठाप्रधानः—आत्मवेदः—ऋङ्मयः-यजुर्वेदः
- २—सत्ताप्रधानः—चेतनामयः—प्रतिष्ठाप्रधान·—ज्योतिर्वेदः—ऋङ्मयः-सामवेदः
- ३—सत्ताप्रधानः—सत्तामयः—प्रतिष्ठामयः—प्रतिष्ठावेदः—ऋङ्मयः ऋग्वेद.

} प्रतिष्ठावेदः-ऋग्वेदः — जगत्

—॥:०:॥—
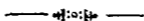
कला से, इन्द्र का मनःकला से, सोम का प्राणकला से, एवं अग्नि का वाक्कला से सम्बन्ध है। आनन्दमय ब्रह्मा एक स्वतन्त्र तत्त्व है। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र की समष्टि विष्णु है, इन्द्र-अग्नि-सोम की समष्टि शिव है। यही त्रिमूर्त्ति है। एक ही अश्वत्थ (अव्यय) वृक्ष के ये तीन विवर्त्त हैं। त्रिमूर्त्तिभावापन्न इसी अव्ययाश्वत्थ का दिग्दर्शन कराते हुए अभियुक्त कहते हैं—

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।
अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः॥

आनन्द ब्रह्मा है, आनन्द-विज्ञान-मन विष्णु है, मन प्राण-वाक् शिव है। आनन्द ब्रह्मा है, चेतना विष्णु है सत्ता शिव है। अश्वत्थाव्यय का मूलभाग आनन्द है, यही शिरोभाग है, यहीं ब्रह्मा प्रतिष्ठित हैं। मध्यभाग चेतना है, यही उदरभाग है, यहीं विष्णु प्रतिष्ठित हैं। अग्रभाग सत्ता है, यही पादभाग है। महादेव इस अश्वत्थवृक्ष के नीचे प्रतिष्ठित हैं, जैसा कि आगमशास्त्र कहता है—

*व्याख्यामुद्रात्तमाभे कनकागुलिखिते बाहुभिर्वामपादम्।
बिभ्राणो जानुमूर्ध्ना पदतलनिहितापस्मृतिर्धूर्त्तबाधः॥
सौवर्णे योगपीठे लिपिमयकमले सूपविष्टस्त्रिनेत्रः।
क्षीराभश्चन्द्रमौलिर्वितरतु विपुलां शुद्धबुद्धिं शिवो नः॥१॥

ब्रह्मा सयती त्रैलोक्य के, विष्णु क्रन्दसी-त्रैलोक्य के, एवं शिव रोदसी-त्रैलोक्य के अधिष्ठाता (अधिष्ठाता) देवता हैं। सम्पूर्ण विश्व इन्हीं तीनों देवताओं का वैभव है, जैसा कि पुराण कहता है—

'त्रयो लोकस्य कर्त्तारो ब्रह्मा-विष्णुः-शिवस्तथा।"

---

* इस विषय का विशद वैज्ञानिक विवेचन श्राद्धविज्ञानान्तर्गत 'मानवविज्ञानोपनिषत्" नामक प्रकरण में देखना चाहिए।

मे ही अन्तर्भूत मानलिया जाता है। असीम परात्पर का जो प्रदेश महामाया से सीमित बनता हुआ सकेन्द्र बन जाता है, उसे ही अव्ययपुरुष कहा जाने लगता है। माया के उदय के अव्यवहितोत्तरकाल में ही हृदयभाव (केन्द्रभाव) उत्पन्न होजाता है। असीम परात्पर में हृदय न था। क्यों कि व्यापक वस्तु में कोई केन्द्र नहीं होसकता। अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिए कि, व्यापक वस्तु की प्रतिबिन्दु केन्द्र है। वहां सभी केन्द्र हैं, वह सभी केन्द्र है। केन्द्ररूप परात्पर में "सामान्ये सामान्याभावः" इस नियम के अनुसार केन्द्र नहीं होसकता। इसी लिए वह अहृदय है अकेन्द्र है। परन्तु मायासीमा से सीमित परात्पर का एक स्वतन्त्र केन्द्र बन जाता है। इस प्रकार माया के साथ साथ ही मायी अव्यय, एवं हृदयबल दोनों का उदय होजाता है। अव्यय जहां पुरुष कहलाता है, वहां अव्यय से नित्ययुक्त यह हृदयभाव ही "प्रकृति" नाम से व्यवहृत होता है। हृदय ही उस का स्वभाव है, अपना भाव है, अपनापन है, आप ही है। जिस दिन प्रकृतिरूप हृदयभाव ग्रन्थिविमोक से विलीन होजायगा, तत्-काल मायासीमा टूट जायगी। सीमा के टूटते ही परिच्छिन्न पुरुष (अव्यय) अपरिच्छिन्न परात्पररूप में परिणत होजायगा। स्वभाव शब्दार्थ का यही रहस्य है। अव्ययपुरुष स्वयं रसबलमूर्त्ति है। फलतः तदविनाभूता तन्मयी इस हृदयरूपा प्रकृति में भी दोनों का समन्वय सिद्ध होजाता है। बल मृत्यु है, रस अमृत है। मृत्युगर्भित अमृताव्यय ही आनन्द-विज्ञान-मन है। अमृतगर्भित मृत्युलक्षण अव्यय ही मनःप्राणवाक् है। ये ही दोनो अवस्थाएं प्रकृति में समझिए। मृत्युगर्भिता अमृतलक्षणा प्रकृति पराप्रकृति नाम से प्रसिद्ध है। इसे "अक्षर" कहा जाता है। एवं अमृतगर्भिता मृत्युलक्षणा प्रकृति अपराप्रकृति नाम से व्यवहृत हुई है। यही "आत्मक्षर" नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों की समष्टि एक अन्तरङ्ग प्रकृति है। दोनों में से पहिले परात्मिका अक्षरप्रकृति का ही विचार कीजिए। प्रकृति को हमने हृदय कहा है। यही हृदयभाव स्वाभाविक प्राणव्यापार के अवस्थाभेद से अपने आलम्बन पुरुष के अनुग्रह से पांच कलाओं में परिणत हो जाता है। क्षर की वे ही पांचों कलाएं क्रमशः ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोम इन नामों से प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मा का अव्यय की आनन्दकला से, विष्णु का विज्ञान-

१—आनन्द — ब्रह्मा (आ मय)
२—विज्ञानम्— विष्णु (विज्ञानमय)
३—मन — इन्द्र (मनोमय)
४—प्राण — सोम (प्राणमय)
५—वाक्— अग्नि (वाङ्मय)
तथाक्षराद्विविधाभावा प्रजायन्ते
पञ्चकल पुरुष (अव्यय)
पञ्चकला प्रकृति (अक्षर)
* अक्षरप्रपञ्च *
→ "अक्षरमित्युपास्व"
१—१—आनन्द → आनन्द —ब्रह्मा (आत्मा)—चि पत्ति
१—आनन्द
२—२—विज्ञानम्
३ - मन
→ चेतना—विष्णु [ज्योति]—देवपतिः
१—मन
३—२—प्राण
३—वाक्
→ सत्ता—शिवः [प्रतिष्ठा]—भूतपतिः
"एकामूर्त्तिस्त्रयोदेवा ब्रह्मा-विष्णु महेश्वराः"
१—१—आनन्द —ब्रह्मा → ब्रह्मा—"स"—"यम्"—यजुर्वेदः
१—आनन्द —ब्रह्मा
२—१—विज्ञानम्—विष्णु
३—मन —इन्द्र
→ विष्णु —"ति"—"हृ"——सामवेदः
१—मन —इन्द्र
३—२—प्राण —सोमः
३—वाक्—अग्नि
→ शिव —"यम्" "द"——ऋग्वेदः
त्रिमूर्त्ति
सत्यम
हृदयम
त्रयीविद्या
अक्षरवेदः—सत्यवेदः

उक्त तीनों देवताओं में ब्रह्मा यजुर्वेद के अध्यक्ष हैं, *विष्णु सामवेद के अध्यक्ष हैं, एवं शिव ऋग्वेद के अध्यक्ष हैं। ब्रह्मा मूलप्रतिष्ठा है, इसी पर प्रतिष्ठित होकर विष्णु शिव सृष्टि प्रलय किया करते हैं। इन तीनों की समष्टि ही 'हृदयम्" है । 'हृ" विष्णु हैं, आगति-स्वभाव से आदान करना इनका मुख्य काम है । "द" शिव हैं , गति-स्वभाव से विसर्ग करना इनका मुख्य काम है। "यम्' ब्रह्मा हैं, स्थिति-स्वभाव से अ दानविसर्गभावों का नियमन करना इनका मुख्य काम है। "यम्" रूप ब्रह्मा "सत्" हैं ' हृ" रूप विष्णु 'ती" हैं, "द" रूप शिव "अम्" हैं। तीनों की समष्टि ही' सतियम्" किंवा "सत्यम् ' है। हृदय ही सत्य है। यही त्र्यक्षररूप सत्यवेद है । इन सब विषयों का प्रकृत में निरूपण नहीं किया जासकता । यहा विषयसङ्गति के लिए केवल नाममात्र का उल्लेख कर देना ही पर्य्याप्त है । पद्मादरमूर्त्ति त्र्यक्षर ही सत्यवेद है, यही अक्षरवेद है, इसके उपोद्बलक निम्नलिखित श्रुतिवचन हैं—

१—"तद्यत् तत् सत्य त्रयो सा विद्या" (शत० ९।५।१ १८)।

२—"तदेतत्त्र्यक्षर सत्यमिति। "स इत्येकमक्षरम् "ती" इत्येकमक्षरम्, "अम्" इत्येकमक्षरम्" शत० १४।८।६।२)।

३—"तदेतत् त्र्यक्षर हृदयमिति । 'हृ' इत्येकमक्षरम्, 'द" इत्येकमक्षरम्. "यम" इत्येकमक्षरम्" (श० १४।८।४।१)।

इसी सत्य को नियति कहा जाता है, नियति का विज्ञान ही वेद है, यही अक्षरवेद है, इसी वेद से सब शासित हैं। दूसरे शब्दों में नियतिरूप वेद दण्डने ही सब को स्व-स्वकर्म्म में प्रतिष्ठित कर रक्खा है । अन्तर्य्यामी की नियति ने ही सबका सञ्चालन कर रक्खा है, सब इस वेदात्मक नियतिदण्ड से दण्डित हैं, यही नियतिरूप वेदसत्य धर्म्मदण्ड है, धर्म्म ही तो वेद है, वेद ही तो धर्म्म है, धर्म्म ही तो सत्य है। देखिए—

१—'यो वै धर्म्मः, सत्य वै तत्। तस्मात् सत्य वदन्तमाहुर्धर्म्मं वदतीति। धर्म्मं वा वदन्त सत्य वदतीति" (शत० १४।४।२।२६ ।

* विष्णुतत्व ही कृष्णतत्व है। वासुदेवकृष्ण इसी के अवतार थे। अतएव उन्होंने स्वविभूति गणना में वेदानां "सामवेदोऽस्मि" (गी० १०। २२।) यह कहा है।

१—आनन्दः—
२—विज्ञानम्—
३—मनः—
४—प्राणः—
५—वाक्—
पञ्चकलः पुरुषः (अव्ययः)
ब्रह्मा (आनन्दमयः)
विष्णुः (विज्ञानमयः)
इन्द्रः (मनोमयः)
सोमः (प्राणमयः)
अग्निः वाङ्मयः
पञ्चकला प्रकृतिः (अक्षरः)
"तथाक्षराद्विविधाभावाः प्रजायन्ते"
अक्षरप्रपञ्च
"अक्षरमित्युपास्व"
१—१—आनन्दः
→आनन्दः—ब्रह्मा (आत्मा)—विश्वपतिः
१—आनन्दः
२—२—विज्ञानम्
३—मनः
→चेतना—विष्णुः [ज्योतिः]—देवपतिः
१—मनः
३—२—प्राणः
३—वाक्
→सत्ता—शिवः [प्रतिष्ठा]—भूतपतिः
"एकामूर्तिस्त्रयोदेवा ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः"
१—१—आनन्द—ब्रह्मा
→ब्रह्मा—'स'—"यम्"—यजुर्वेदः
१—आनन्दः—ब्रह्मा
२—२—विज्ञानम्—विष्णु
३—मनः—इन्द्रः
→विष्णुः—'ति'—"हृ"—सामवेदः
१—मनः—इन्द्रः
३—२—प्राणः—सोमः
३—वाक्—अग्निः
→शिवः—"यम्"-"द"—ऋग्वेदः
त्रिमूर्त्तिः
सत्यम्
हृदयम्
त्रयीविद्या
अक्षरवेदः—
सप्तवेदः

८—प्राण-वाक्-आनन्दसहकृत (आत्मक्षरसहकृत) आत्मवेदनिरुक्ति

पूर्व की वेदनिरुक्ति में प्रकृति के अमृत-मर्त्य भेद से दो रूप बतलाए गए हैं। अमृत-रूप क्षयभावशून्य होता हुआ जहा अक्षर कहलाता है, वहा मर्त्यरूप क्षयभावयुक्त होनेसे क्षर कहलाता है। यही अव्ययपुरुष की अपराप्रकृति कहलाती है। इस अपराप्रकृति के मर्त्यब्रह्मात्मक प्राण, मर्त्यविष्ण्वात्मक आप, मर्त्यइन्द्रात्मक वाक् मर्त्यसोमात्मक अन्न, एव मर्त्यअग्न्यात्मक अन्नाद, ये पाच रूप हैं। इन पाचों पर क्रमश आनन्दमय अमृतब्रह्मा (अक्षररूपब्रह्मा), विज्ञानमय अमृतविष्णु, मनोमय अमृतेन्द्र, प्राणमय अमृतसोम, एव वाङ्मय अमृताग्नि का अनुग्रह है। जैसी परिस्थिति, जैसा सस्थानक्रम अव्ययपुरुष एव अक्षर का बतलाया गया है, ठीक वैसा ही सस्थानक्रम अपराप्रकृतिरूप इस आत्मक्षर का समझना चाहिए। प्राणतत्व स्वतन्त्र है, यही ऋषि है, प्राण—आप— वाक् तत्व की समष्टि पितरप्राणगर्भित देवता है एव वाक् अन्न—अन्नाद की समष्टि भूत है। भूत पर सत्तात्मक शिव का अनुग्रह है, अतएव शिव को भूतेश कहा जाता है। भूत ही अव्यक्त पदार्थों का व्यक्त लिङ्ग है। इसी लिए शिवतत्वप्रतिपादक लिङ्गपुराण ने भूतेश शिव का लिङ्गरूप से निरूपण किया है। पितर एव देवता पर चेतनात्मक विष्णु का अनुग्रह है, अतएव विष्णु को पितृणा पति, एव देवानां पतिः कहा जाता है। ऋषितत्व पर आनन्दात्मक ब्रह्मा का अनुग्रह है।

ऋषितत्व ही ऋक्प्रधान यजुर्वेद है, जैसा कि आगे के तूनवेद प्रकरण में स्पष्ट हो जायगा। दूसरे शब्दों में ऋषिरूप ब्रह्मात्मक प्राण ही यजुर्वेद है। इसी आधार पर "ऋषि र्वेदमन्त्रः" यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित है। इसी को 'ब्रह्मनिःश्वसित" वेद कहा जाता है। यह आनन्दात्मक ब्रह्मा का ही निःश्वास है। पितृगर्भित देवतत्व ही क्षरप्रधान सामवेद है। इसी को 'गायत्रीमात्रिकवेद' कहा जाता है। भूततत्व ही क्षरप्रधान ऋग्वेद है। इसी को 'यज्ञमात्रिकवेद' कहा जाता है। उक्त पाचों क्षरों से, किंवा क्षर की पांच कलाओं से विश्वसृट्, पञ्चजन पुरञ्जन क्रम से पाच पुर उत्पन्न होते हैं। जैसा कि पाठक ईशविज्ञानभाष्य प्रथमखण्ड में देखेंगे। वे ही पांचों पुर क्रमश स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी इन नामों से

प्रसिद्ध हैं। स्वयम्भू-प्राणमय, किंवा ऋषिमय है। परमेष्ठी आपोमय, किंवा पितृमय है। सूर्य्य वाङ्मय, किंवा देवमय है। चन्द्रमा अन्नमय, किंवा गन्धर्वमय है। पृथिवी अन्नादमयी, किंवा भूतमयी है। इन पांचोंका भी वही संस्थानक्रम है, जोकि अव्यय-अक्षर-क्षर में बतलाया गया है। स्वयम्भू स्वतन्त्र है। यही आनन्दात्मक, ब्रह्मानुगृहीत, प्राणमय ब्रह्मनिःश्वसितवेद की विकासभूमि है। स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य तीनों की समष्टि एक स्वतन्त्र विभाग है। यही आनन्दविज्ञानमनोमय, ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्ररूप विष्णु से अनुगृहीत, प्राणापोवाङ्मय गायत्रीमात्रिकवेद की विकासभूमि है। सूर्य्य-चन्द्रमा-पृथिवी इन तीनों का एक स्वतन्त्र विभाग है। यही मनःप्राणवागात्मक, इन्द्र-सोम-अग्निरूप शिव से अनुगृहीत, वाक्-अन्न-अन्नादमय यज्ञमात्रिकवेद की विकासभूमि है। कहना प्रकृत में केवल यही ही है कि अक्षरवत् क्षर भी उक्त प्रकार से तीन वेदों का प्रवर्त्तक बन रहा है, जैसा कि निम्नलिखित परिलेखों से स्पष्ट होजाता है।

१—आनन्दः	ब्रह्मा (आनन्दमयः)	प्राणः (ब्रह्ममयः)	एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते
२—विज्ञानम्	विष्णुः (विज्ञानमयः)	आपः (विष्णुमयः)	
३—मनः	इन्द्रः (मनोमयः)	वाक् (इन्द्रमयी)	
४—प्राणः	सोमः (प्राणमयः)	अन्नम् (सोममयम्)	
५—वाक्	अग्निः (वाङ्मयः)	अन्नादः (अग्निमयः)	
पञ्चकलः पुरुषः (अव्ययः)	पञ्चकला—पराप्रकृतिः (अक्षरः)	पञ्चकला—अपराप्रकृतिः (आत्मक्षरः)	क्षरप्रपञ्च

———०।०।०———

८—प्राण-वाक्-आनन्दसहकृत (आत्मक्षरसहकृत) आत्मवेदनिरुक्ति

पूर्व की वेदनिरुक्ति में प्रकृति के अमृत-मर्त्य भेद से दो रूप बतलाए गए हैं। अमृत-रूप क्षयभावशून्य होता हुआ जहा अक्षर कहलाता है, वहा मर्त्यरूप क्षयभावयुक्त होनेसे क्षर कहलाता है। यही अव्ययपुरुष की अपराप्रकृति कहलाती है। इस अपराप्रकृति के मर्त्यब्रह्मात्मक प्राण, मर्त्यविष्ण्वात्मक आप, मर्त्यइन्द्रात्मक वाक्, मर्त्यसोमात्मक अन्न, एव मर्त्यअग्न्यात्मक अन्नाद, ये पाच रूप हैं। इन पाचों पर क्रमश. आनन्दमय अमृतब्रह्मा (अक्षररूपब्रह्मा), विज्ञानमय अमृतविष्णु, मनोमय अमृतेन्द्र, प्राणमय अमृतसोम, एव वाङ्मय अमृताग्नि का अनुग्रह है। जैसी परिस्थिति, जैसा संस्थानक्रम अव्ययपुरुष एव अक्षर का बतलाया गया है, ठीक वैसा ही संस्थानक्रम अपराप्रकृतिरूप इस आत्मक्षर का समझना चाहिए। प्राणतत्व स्वतन्त्र है, यही ऋषि है, प्राण—आप— वाक् तत्व की समष्टि पितरप्राणगर्भित देवता है एव वाक् अन्न—अन्नाद की समष्टि भूत है। भूत पर सत्तात्मक शिव का अनुग्रह है, अतएव शिव को भूतेश कहा जाता है। भूत ही अव्यक्त पदार्थों का व्यक्त लिङ्ग है। इसी लिए शिवतत्वप्रतिपादक लिङ्गपुराण ने भूतेश शिव का लिङ्गरूप से निरूपण किया है। पितर एव देवता पर चेतनात्मक विष्णु का अनुग्रह है, अतएव विष्णु को पितृणा पति, एव देवानां पतिः कहा जाता है। ऋषितत्व पर आनन्दात्मक ब्रह्मा का अनुग्रह है।

ऋषितत्व ही क्षरप्रधान यजुर्वेद है, जैसा कि आगे के तूलवेद-प्रकरण में स्पष्ट हो जायगा। दूसरे शब्दों में ऋषिरूप ब्रह्मात्मक प्राण ही यजुर्वेद है। इसी आधार पर "ऋषि र्वेदमन्त्रः" यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित है। इसी को 'ब्रह्मनिःश्वसित" वेद कहा जाता है। यह आनन्दात्मक ब्रह्मा का ही नि श्वास है। पितृगर्भित देवतत्व ही क्षरप्रधान सामवेद है। इसी को 'गायत्रीमात्रिकवेद' कहा जाता है। भूततत्व ही क्षरप्रधान ऋग्वेद है। इसी को 'यज्ञमात्रिकवेद' कहा जाता है। उक्त पाचों क्षरों से, किंवा क्षर की पांच कलाओं से विश्वसृट्, पञ्चजन पुरञ्जन क्रम से पांच पुर उत्पन्न होते हैं। जैसा कि पाठक ईशविज्ञानभाष्य प्रथमखण्ड में देखेंगे। वे ही पाचों पुर क्रमश स्वयम्भु, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी इन नामों से

प्रसिद्ध हैं। स्वयम्भू-प्राणमय, किंवा ऋषिमय है। परमेष्ठी आपोमय, किंवा पितृमय है। सूर्य्य वाङ्मय, किंवा देवमय है। चन्द्रमा अन्नमय, किंवा गन्धर्वमय है। पृथिवी अन्नादमयी, किंवा भूतमयी है। इन पांचोंका भी वही संस्थानक्रम है, जोकि अव्यय-अक्षर-क्षर में बतलाया गया है। स्वयम्भू स्वतन्त्र है। यही आनन्दात्मक, ब्रह्मानुगृहीत, प्राणमय ब्रह्मनिःश्वसितवेद की विकासभूमि है। स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य तीनों की समष्टि एक स्वतन्त्र विभाग है। यही आनन्दविज्ञानमनोमय, ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्ररूप विष्णु से अनुगृहीत, प्राणापोवाङ्मय गायत्रीमात्रिकवेद की विकासभूमि है। सूर्य्य-चन्द्रमा-पृथिवी इन तीनों का एक स्वतन्त्र विभाग है। यही मनःप्राणवागात्मक, इन्द्र-सोम-अग्निरूप शिव से अनुगृहीत, वाक्-अन्न-अन्नादमय यज्ञमात्रिकवेद की विकासभूमि है। कहना प्रकृत में केवल यही ही है कि अक्षरवत् क्षर भी उक्त प्रकार से तीन वेदों का प्रवर्त्तक बन रहा है, जैसा कि निम्नलिखित परिलेखों से स्पष्ट होजाता है।

१—आनन्दः	ब्रह्मा (आनन्दमयः)	प्राणः (ब्रह्ममयः)	एष सोंऽपुरुषेह महिमा न प्रकाराति
२—विज्ञानम्	विष्णुः (विज्ञानमयः)	आपः (विष्णुमयः)	
३—मनः	इन्द्रः (मनोमयः)	वाक् (इन्द्रमयी)	
४—प्राणः	सोमः (प्राणमयः)	अन्नम् (सोममयम्)	
५—वाक्	अग्निः (वाङ्मयः)	अन्नादः (अग्निमयः)	
पञ्चकलः पुरुषः (अव्ययः)	पञ्चकला—पराप्रकृतिः (अक्षर)	पञ्चकला-अपराप्रकृतिः (आत्मक्षरः)	परमपद

——•:•——

८—प्राण-वाक्-आनन्दसहकृत (आत्मक्षरसहकृत) आत्मवेदनिरुक्ति

पूर्व की वेदनिरुक्ति में प्रकृति के अमृत मर्त्य भेद से दो रूप बतलाए गए हैं। अमृतरूप क्षयभावशून्य होता हुआ जहां अक्षर कहलाता है, वहां मर्त्यरूप क्षयभावयुक्त होनेसे क्षर कहलाता है। यही अव्ययपुरुष की अपराप्रकृति कहलाती है। इस अपराप्रकृति के मर्त्यब्रह्मात्मक प्राण, मर्त्यविष्ण्वात्मक आप, मर्त्यइन्द्रात्मक वाक् मर्त्यसोमात्मक अन्न, एवं मर्त्यअग्न्यात्मक अन्नाद, ये पाच रूप हैं। इन पाचों पर क्रमशः आनन्दमय अमृतब्रह्मा (अक्षररूपब्रह्मा), विज्ञानमय अमृतविष्णु, मनोमय अमृतेन्द्र, प्राणमय अमृतसोम, एवं वाङ्मय अमृताग्नि का अनुग्रह है। जैसी परिस्थिति, जैसा संस्थानक्रम अव्ययपुरुष एवं अक्षर का बतलाया गया है, ठीक वैसा ही संस्थानक्रम अपराप्रकृतिरूप इस आत्मक्षर का समझना चाहिए। प्राणतत्व स्वतन्त्र है, यही ऋषि है, प्राण—आप— वाक् तत्व की समष्टि पितरप्राणगर्भित देवता है एवं वाक् अन्न—अन्नाद की समष्टि भूत है। भूत पर सत्तात्मक शिव का अनुग्रह है, अतएव शिव को भूतेश कहा जाता है। भूत ही अव्यक्त पदार्थों का व्यक्त लिङ्ग है। इसी लिए शिवतत्वप्रतिपादक लिङ्गपुराण ने भूतेश शिव का लिङ्गरूप से निरूपण किया है। पितर एवं देवता पर चेतनात्मक विष्णु का अनुग्रह है, अतएव विष्णु को पितृणा पति, एवं देवानां पतिः कहा जाता है। ऋषितत्व पर आनन्दात्मक ब्रह्मा का अनुग्रह है।

ऋषितत्व ही क्षरप्रधान यजुर्वेद है, जैसा कि आगे के तूलवेद प्रकरण में स्पष्ट हो जायगा। दूसरे शब्दों में ऋषिरूप ब्रह्मात्मक प्राण ही यजुर्वेद है। इसी आधार पर "ऋषि र्वेदमन्त्रः" यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित है। इसी को 'ब्रह्मनिःश्वसित' वेद कहा जाता है। यह आनन्दात्मक ब्रह्मा का ही निःश्वास है। पितृगर्भित देवतत्व ही क्षरप्रधान सामवेद है। इसी को 'गायत्रीमात्रिकवेद' कहा जाता है। भूततत्व ही क्षरप्रधान ऋग्वेद है। इसी को 'यज्ञमात्रिकवेद' कहा जाता है। उक्त पाचों क्षरों से, किंवा क्षर की पांच कलाओं से विश्वसृट्, पञ्चजन पुरञ्जन क्रम से पांच पुर उत्पन्न होते हैं। जैसा कि पाठक ईशविज्ञानभाष्य प्रथमखण्ड में देखेंगे। वे ही पाचों पुर क्रमशः स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी इन नामों से

प्रसिद्ध हैं । स्वयम्भू–प्राणमय, किंवा ऋषिमय है । परमेष्ठी आपोमय, किंवा पितृमय है । सूर्य्य वाङ्मय, किंवा देवमय है । चन्द्रमा अन्नमय, किंवा गन्धर्वमय है । पृथिवी अन्नादमयी, किंवा भूतमयी है। इन पांचोंका भी वही संस्थानक्रम है, जोकि अव्यय-अक्षर-क्षर में बतलाया गया है। स्वयम्भू स्वतन्त्र है। यही आनन्दात्मक, ब्रह्मानुग्रहीत, प्राणमय ब्रह्मनिःश्वसितवेद की विकासभूमि है। स्वयम्भू–परमेष्ठी-सूर्य्य तीनों की समष्टि एक स्वतन्त्र विभाग है । यही आनन्दविज्ञानमनोमय, ब्रह्मा–विष्णु-इन्द्ररूप विष्णु से अनुग्रहीत, प्राणापोवाङ्मय गायत्रीमात्रिकवेद की विकासभूमि है। सूर्य्य-चन्द्रमा-पृथिवी इन तीनों का एक स्वतन्त्र विभाग है । यही मनःप्राणवागात्मक, इन्द्र-सोम-अग्निरूप शिव से अनुग्रहीत, वाक्–अन्न–अन्नादमय यज्ञमात्रिकवेद की विकासभूमि है । कहना प्रकृत में केवल यही ही है कि अक्षरवत् क्षर भी उक्त प्रकार से तीन वेदों का प्रवर्त्तक बन रहा है, जैसा कि निम्नलिखित परिलेखों से स्पष्ट होजाता है ।

१–आनन्दः २–विज्ञानम् ३–मनः ४–प्राणः ५–वाक्	ब्रह्मा (आनन्दमयः) विष्णुः (विज्ञानमयः) इन्द्रः (मनोमयः) सोमः (प्राणमयः) अग्निः (वाङ्मयः)	प्राणः (ब्रह्ममयः) आपः (विष्णुमयः) वाक् (इन्द्रमयी) अन्नम् (सोममयम्) अन्नादः (अग्निमयः)	एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते
पञ्चकलः पुरुषः (अव्ययः)	पञ्चकला—पराप्रकृतिः (अक्षरः)	पञ्चकला–अपराप्रकृतिः (आत्मक्षरः)	क्षरप्रपञ्च

—०:१:०—

१०—ब्रह्म-विद्या वेद-भेद से ज्ञानलक्षणआत्मवेदनिरुक्ति—

श्रुतिग्रन्थों में वेद, विद्या, ब्रह्म, ये तीनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त देखे जाते हैं। एक ही विज्ञानतत्व अवस्थाभेद से, किंवा उपाधिभेद से उक्त तीन स्वरूपों में परिणत हो रहा है। प्रत्येक वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, इन चार प्रमाणों में से किसी न किसी प्रमाण की अपेक्षा रहती है। प्रमाणचतुष्टयी के आधार पर उदित होने वाला, अत एव संशय-वीपर्य्ययादि दोषों से सर्वथा असंस्पृष्ट जो सत्यज्ञान है, निर्भ्रान्त ज्ञान है, निश्चितज्ञान है, उसे ही दार्शनिक लोग "प्रमा" शब्द से सम्बोधित करते हैं। यह प्रमा जिस साधन से प्राप्त होती है, वही साधन 'प्रमाकरणं प्रमाजनकं वा प्रमाणम्' व्युत्पत्ति के अनुसार "प्रमाण" नाम से व्यवहृत किया जाता है। यह प्रमाज्ञान चार साधनों से प्रकट होता है, फलत चारों साधनों का प्रमाणत्व सिद्ध हो जाता है।

वस्तु के प्रत्यक्ष देखने से उस वस्तु का ज्ञान (प्रमा) हो जाता है। इस प्रकार प्रमा का जनक बनता हुआ प्रत्यक्ष प्रमाण कहला सकता है। "यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः" इस अनुमान से भी वह्निविषयक ज्ञान होता है। 'गोसदृशो गवयः" सादृश्यमूलक इस उपमान से भी गवय पदार्थ का ज्ञान हो जाता है। एव अश्व-घट-पटादि शब्दों को सुन से भी अश्व घट-पटादि पदार्थों का ज्ञान होता देखा गया है। चारों ही प्रमाण प्रमा के जनक हैं। प्रमाणावच्छिन्ना प्रमा ही विज्ञान है। अन्तःकरण की वृत्तिविशेष का नाम ही विज्ञान है। यह विज्ञानवृत्ति चिन्मयी (ज्ञानमयी) है। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्" (ई० उ० १) इस श्रौत सिद्धान्त के अनुसार संसार में समष्टिरूप से सर्वत्र चिदंश व्याप्त है। सामान्य मनुष्य चेतन प्राणियों में तो चिदंश की सत्ता मानते ही हैं, परन्तु उन्हें विश्वास करना चाहिए कि, जिन पदार्थों को वे जड़ समझते हैं, विज्ञानदृष्टि के अनुसार वे भी चिदंश से नित्य अनुगृहीत रहते हैं। सर्वव्यापक, किंवा विश्वव्यापक इसी चैतन्य का दिग्दर्शन कराती हुई उपनिषच्छ्रुति कहती है—

प्रमा (ज्ञान) स्वस्वरूप से नित्यशुद्धमुक्त है। इसे हमनें उक्थ [प्रभव] बतलाया है। इसमें से निरन्तर रश्मियाँ निकला करतीं हैं। इन्हीं रश्मियों को दार्शनिक परिभाषा में "अन्तःकरणवृत्ति" कहा गया है। विज्ञानपरिभाषानुसार यही वृत्ति "विज्ञान" नाम से व्यवहृत हुई है। यह विज्ञान ज्ञान है, उस उक्थरूप ज्ञानघन आत्मा का अंश है। यद्यपि अन्तःकरणवृत्तिरूप यह विज्ञान भी आत्मज्ञानवत् प्रातिस्विकरूप से एक ही है, तथापि जैसे विविध वर्णभेद से एक ही प्रकार की सौररश्मियाँ तत्तद्वर्णयुक्त आदर्शों [काचों] के साथ सक्रान्त होकर तत्तद्वर्णरूप में परिणत होजातीं हैं, एवमेव वह शुद्ध एकरूप विज्ञान भी विषय भेद से तीन स्वरूप धारण कर लेता है। विषयभेदभिन्न वह त्रिविध विज्ञान ही वेद, विद्या, ब्रह्म, इन नामों से प्रसिद्ध है।

आपके सामने घड़ा रक्खा हुआ है। उसके साथ वृत्तिरूप विज्ञान का सम्बन्ध होता है, विज्ञान घटाकाराकारित बन जाता है। यही ज्ञान 'विषयावच्छिन्नज्ञान" कहलाने लगता है। इस विषयावच्छिन्नविज्ञानात्मक ज्ञानने अपने ऊपर घट को धारण कर रक्खा है। अतएव 'बिभर्त्ति विषय तद्ब्रह्म" इस व्युत्पत्ति से इस विषयावच्छिन्न ज्ञान को "ब्रह्म" कहा जा सकता है। आपके सामने घट नहीं है। केवल आप के कानों में "घट" शब्द का प्रवेश होता है। इस शब्दश्रवण से भी घटपदार्थ का ज्ञान होजाता है। इस शब्दावच्छिन्नज्ञान को ही हम वेद कहेंगे। दूसरे शब्दों में यों समझिए कि विषय ही शब्द और अर्थ भेद से दो भागों में विभक्त है। अर्थात्मक विषय से अवच्छिन्न (युक्त) वही ज्ञान ब्रह्म है, एवं शब्दात्मक विषय से अवच्छिन्न वही ज्ञान वेद है। शब्द एवं अर्थ के द्वारा होने वाला ज्ञान यदि निरन्तर प्रवाहित रहता है, दूसरे शब्दों में पदार्थ को, किंवा तद्वाचक शब्दों को यदि बुद्धिपूर्वक निरन्तर देखा, एवं सुना जाता है तो कालान्तर में तज्जनित संस्कार दृढ होजाता है। यही संस्कार आगे जाकर स्मृति का जनक बनता है। यह संस्कारावच्छिन्नज्ञान ही "विद्या" है। कहने को वेद-विद्या-ब्रह्म पृथक् हैं। उपाधिशून्य विज्ञानदृष्टि से तीनों एक तत्त्व है। इसीलिए-"त्रय ब्रह्म-त्रयो वेदाः-त्रयी विद्या" इत्यादि रूप से इन तीनों में सकर व्यवहार देखा जाता है। एक ही तत्व को कहीं वेद शब्द से, कहीं विद्या शब्द से, कहीं ब्रह्म शब्द से व्यवहृत करना

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ (कठ० १।३।१२)

सर्वव्यापक, साथ ही में योगमाया के अनुग्रह से अन्तःकरणावच्छिन्न बना हुआ यही चिदात्मा प्रत्येक वस्तु के केन्द्र में उक्थ (बिम्ब रूप से प्रतिष्ठित रहता हुआ अर्करूप (रश्मिरूप) से बाहिर निकल कर तत्तद्विषयों से युक्त हो कर तत्तद्विषयाकाराकारित बनता हुआ हमें (वैश्वानर–तैजस–प्राज्ञमूर्त्ति जीवात्मा को) तत्तद्विषयों का ज्ञान करवाता रहता है । चित के ये ही तीनों विवर्त्त क्रमशः 'उक्थ–अर्क–अशिति' इन नामों से व्यवहृत होते हैं जैसा कि अनुपद में ही स्पष्ट होने वाला है । विषय अशिति है, आत्मरश्मियाँ अर्क है, स्वयं आत्मा उक्थ है। आत्मा अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य है । आत्मरश्मियां अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्य है । तीसरा विभाग विषयावच्छिन्नचैतन्य का है । प्रकारान्तर से यों समझिए, कि हमारे में चित् है, जिन विषयों को हम देखते हैं उन में चित है, एवं जिस वृत्ति से हम देखते हैं, वह भी चिन्मयी है । तीनों स्थानों में व्याप्त चैतन्य जब एक स्थान पर, एक बिन्दु पर आजाता है, तो पूर्वोक्त प्रमाज्ञान का उदय हो जाता है । यही इस विषय का प्रत्यक्ष कहलाता है । "अन्तःकरणावच्छिन्नं चैतन्यं, अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नं चैतन्यं, विषयावच्छिन्नं चैतन्यं–चैतन्यत्रय । एतेषां त्रयाणामेकत्र प्रतिपत्तिः प्रत्यक्षम्" इस वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार तीनों चैतन्यों के एकत्र समन्वय पर ही प्रमाज्ञान प्रतिष्ठित है । हम अपने स्थान पर बैठे हैं । सामने घड़ा रक्खा है । हम से ज्ञानरश्मियाँ निकल कर घटज्ञान का हमारे आत्मज्ञान के साथ सम्बन्ध करा देतीं है । अव्यवहितोत्तरकाल में ही "घटमहं जानामि" यह प्रमाज्ञान उदित होजाता है ।

अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन्य 'प्रमाता' है, विषयावच्छिन्न चैतन्य प्रमेय है एवं वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य प्रमा का साधक किंवा उत्पादक बनता हुआ 'प्रमाण' है । प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण, तीनो के समन्वय से ही विषय की प्रतीति होती है । इन सब का मूलाधार प्रमात्मा नामक अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही है । यह प्रमाता उस प्रमा का ही मौलिकरूप है । प्रमातामयी यह

प्रभा (ज्ञान) स्वस्वरूप से नित्यशुद्धमुक्त है। इसे हमनें उक्थ [प्रभव] बतलाया है। इसमें से निरन्तर रश्मियाँ निकला करतीं हैं। इन्हीं रश्मियों को दार्शनिक परिभाषा में "अन्तःकरणवृत्ति" कहा गया है। विज्ञानपरिभाषानुसार यही वृत्ति "विज्ञान" नाम से व्यवहृत हुई है। यह विज्ञान ज्ञान है, उस उक्थरूप ज्ञानघन आत्मा का अंश है। यद्यपि अन्तःकरणवृत्तिरूप यह विज्ञान भी आत्मज्ञानवत् प्रातिस्विकरूप से एक ही है, तथापि जैसे विविध वर्णभेद से एक ही प्रकार की सौररश्मियाँ तत्तद्वर्णयुक्त आदर्शों [काचों] के साथ संक्रान्त होकर तत्तद्वर्णरूप में परिणत होजातीं हैं, एवमेव वह शुद्ध एकरूप विज्ञान भी विषय भेद से तीन स्वरूप धारण कर लेता है। विषयभेदभिन्न वह त्रिविध विज्ञान ही वेद, विद्या, ब्रह्म, इन नामों से प्रसिद्ध है।

आपके सामने घड़ा रक्खा हुआ है। उसके साथ वृत्तिरूप विज्ञान का सम्बन्ध होता है, विज्ञान घटाकाराकारित बन जाता है। यही ज्ञान "विषयावच्छिन्नज्ञान" कहलाने लगता है। इस विषयावच्छिन्नविज्ञानात्मक ज्ञानने अपने ऊपर घट को धारण कर रक्खा है। अतएव "बिभर्त्ति विषयं तद्ब्रह्म" इस व्युत्पत्ति से इस विषयावच्छिन्न ज्ञान को "ब्रह्म" कहा जा सकता है। आपके सामने घट नहीं है। केवल आप के कानों में "घट" शब्द का प्रवेश होता है। इस शब्दश्रवण से भी घटपदार्थ का ज्ञान होजाता है। इस शब्दावच्छिन्नज्ञान को ही हम वेद कहेंगे। दूसरे शब्दों में यों समझिए कि विषय ही शब्द और अर्थ भेद से दो भागों में विभक्त है। अर्थात्मक विषय से अवच्छिन्न (युक्त) वही ज्ञान ब्रह्म है, एवं शब्दात्मक विषय से अवच्छिन्न वही ज्ञान वेद है। शब्द एवं अर्थ के द्वारा होने वाला ज्ञान यदि निरन्तर प्रवाहित रहता है, दूसरे शब्दों में पदार्थ को, किंवा तद्वाचक शब्दों को यदि बुद्धिपूर्वक निरन्तर देखा, एवं सुना जाता है, तो कालान्तर में तज्जनित संस्कार दृढ़ होजाता है। यही संस्कार आगे जाकर स्मृति का जनक बनता है। यह संस्कारावच्छिन्नज्ञान ही "विद्या" है। कहने को वेद-विद्या-ब्रह्म पृथक् हैं। उपाधिशून्य विज्ञानदृष्टि से तीनों एक तत्व है। इसीलिए-"त्रयं ब्रह्म-त्रयो वेदाः-त्रयी विद्या" इत्यादि रूप से इन तीनों में संकर व्यवहार देखा जाता है। एक ही तत्व को कहीं वेद शब्द से, कहीं विद्या शब्द से, कहीं ब्रह्म शब्द से व्यवहृत करना

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ (कठ०१।३।१२)।

सर्वव्यापक, साथ ही में योगमाया के अनुग्रह से अन्तःकरणावच्छिन्न बना हुआ यही चिदात्मा प्रत्येक वस्तु के केन्द्र में उक्थ (बिम्ब रूप से प्रतिष्ठित रहता हुआ अर्करूप (रश्मि-रूप) से वाहिर निकल कर तत्तद्विषयों से युक्त हो कर तत्तद्विषयाकाराकारित बनता हुआ हमें (वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञमूर्त्ति जीवात्मा को) तत्तद्विषयो का ज्ञान करवाता रहता है । चित् के ये ही तीनों विवर्त्त क्रमशः 'उक्थ-अर्क-अशिति' इन नामो से व्यवहृत होते हैं जैसा कि अनुपद में ही स्पष्ट होने वाला है । विषय अशिति है, आत्मरश्मियाँ अर्क है, स्वयं आत्मा उक्थ है। आत्मा अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य है । आत्मरश्मियां अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्य है । तीसरा विभाग विषयावच्छिन्नचैतन्य का है। प्रकारान्तर से यों समझिए, कि हमारे में चित् है, जिन विषयों को हम देखते हैं उन में चित है, एव जिस वृत्ति से हम देखते हैं, वह भी चिन्मयी है। तीनों स्थानों में व्याप्त चैतन्य जब एक स्थान पर, एक बिन्दु पर आजाता है तो पूर्वोक्त प्रमाज्ञान का उदय हो जाता है। यही इस विषय का प्रत्यक्ष कहलाता है। "अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यं, अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यं, विषयावच्छिन्न चैतन्यं-चैतन्यम् । एतेषां त्रयाणामेकत्र प्रतिपत्तिः प्रत्यक्षम्" इस वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार तीनों चैतन्यों के एकत्र समन्वय पर ही प्रमाज्ञान प्रतिष्ठित है। हम अपने स्थान पर बैठे हैं। सामने घड़ा रक्खा है। हम से ज्ञानरश्मियाँ निकल कर घटज्ञान का हमारे आत्मज्ञान के साथ सम्बन्ध करा देती हैं। अव्यवहितोत्तरकाल में ही 'घटमहं जानामि" यह प्रमाज्ञान उदित होजाता है।

अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य' प्रमाता' है, विषयावच्छिन्न चैतन्य प्रमेय है एव वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य प्रमा का साधक क्रिया उत्पादक बनता हुआ 'प्रमाण' है। प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण, तीनों के समन्वय से ही विषय की प्रतीति होती है। इन सब का मूलाधार प्रमाता नामक अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही है। यह प्रमाता उस प्रमा का ही मौलिकरूप है । प्रमातामयी यह

प्रविष्ट होजाता है । इसी प्रकार 'गौ' शब्द सुनने से शब्दात्मक ज्ञान तो होता ही है, परन्तु साथ ही गोशब्दवाच्य गोपदार्थ भी ज्ञानसीमा में प्रविष्ट होजाता है। कारण इसका यही है कि पार्वतीपरमेश्वर की तरह शब्द अर्थ नित्य सम्बद्ध हैं । इसी तादात्म्यसम्बन्ध का निरूपण करते हुए भगवान् भर्तृहरि कहते हैं—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥ (वाक्यपदीय)

पूर्व कथन से—'विषयाकाराकारिता अन्तःकरणरूपावृत्ति संस्कार, और शब्द दोनों को साथ लेती हुई प्रवृत्त होती है' यह भली प्रकार सिद्ध होजाता है । यही वृत्ति संस्कारज्ञानरूपा है, यही अर्थज्ञानरूपा है, यही शब्दज्ञानात्मिका है । इसी अभेदभाव के कारण हम तीनों को प्रत्येक को) वेद–ब्रह्म–विद्या इन तीनों शब्दों से सम्बोधित कर सकते हैं। कारण स्पष्ट है । आरम्भ में तीनों की यद्यपि विजातीयरूप से प्रतीति होती है, परन्तु विज्ञानदृष्टि से तीनों समान हैं। अर्थावच्छिन्न ज्ञान भी अन्ततोगत्वा ज्ञान है, संस्कारावच्छिन्न-ज्ञान भी ज्ञान है, एवं शब्दावच्छिन्न ज्ञान भी ज्ञान है—"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ! ज्ञाने परि-समाप्यते' (गीता० ४।३३।)। विशेषणभेद से साधारण दृष्ट्या भेद प्रतीत होने पर भी मौ-लिकतत्वदृष्टि से तीनों सर्वथा एक हैं । थोड़ी देर के लिए विशेषणभेद को प्रधान मान कर ही विचार कीजिए । इस भेदभाव की प्रधानता के कारण सर्वथा विभिन्न वेद–विद्या–ब्रह्म तीनों के अनन्तर तीनों वेदों का स्वरूप भिन्न भिन्न होजाता है । अर्थात्मक ऋग्–यजुः साम भिन्न हैं, इसी भेद को लक्ष्य में रखकर 'त्रयं ब्रह्म" "त्रयोवेदाः"–'त्रयीविद्या" यह कहा गया है। इस प्रकार ब्रह्म–वेद–विद्यारूप तीन विशेषणों के भेद से तीनों को पृथक् मानलेने पर भी कोई क्षति नहीं है। भले ही तीनों भिन्न स्रोत हों, वह तो एक ही तत्व है। वही ब्रह्म बना है, वही विद्यास्वरूप में परिणत हुआ है, वही वेद बना है । नाम–रूपात्मिका प्रतीति का आधारभूत वेद भी वही है, सर्वप्रतिष्ठारूप ब्रह्म भी वही है, वही संस्काररूप आत्मा का अन्न

तभी सङ्गत होसकता है, जब कि तीनों को एकत्व मान लिया जाता है। एवं तभी-"सैषा त्रयी-विद्यायज्ञः" (शत०१।१।४।३) "त्रयंब्रह्म सनातनम्" [मनु०१।२३] "त्रयो वेदाः" (श०१०।३।२।२५) इत्यादि श्रौत-स्मार्त्त व्यवहारों का समन्वय होसकता है।

प्रकारान्तर से विचार कीजिए। वही अन्तःकरणवृत्ति [विज्ञान] विषयाकाराकारिता बन कर 'ब्रह्म' कहलाने लगती है, संस्काराकारिता बनकर 'विद्या' कहलाने लगती है, एवं शब्दाकाराकारिता बनकर वही 'वेद' कहलाने लगती है। जिस समय हम घट पर दृष्टि डालते हैं, उसी समय घटज्ञान होजाता है। यह प्राथमिकज्ञान, दूसरे शब्दों में तात्कालिक ज्ञान विषयाकाराकारित ज्ञान है। इस समय हमारा ज्ञान घटाकाराकारित बनकर ही प्रतिभासित होता है। स्वज्योतिर्मय पूर्ववत् स्वज्योतिर्मय यह ज्ञान विजातीय घट को स्वरश्मियों से "घटमहं जानामि" इस रूप से प्रकाशित करता हुआ "जानामि इयति जानामि" इस रूप से अपने आपको भी प्रकाशित कर रहा है। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार सूर्य्य त्रैलोक्य के पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ उन्हें दिखलाता है, एवमेव यह अपने प्रकाश से अपने आपको भी दिखलाता रहा है। इसी तरह यह ज्ञानसूर्य्य विषयों को दिखलाता हुआ अपने भी दर्शन करा रहा है। 'हम घड़ा जानते हैं'–यह विषयदर्शन है। 'हम घड़ा जानते हैं –यह भी जानते हैं, यह स्वदर्शन है। यही स्वज्ञान पार्श्विज्ञान, मसय, आदि नामों से प्रसिद्ध है। वक्तव्यांश यही है कि, विषयावच्छिन्ना यह अन्तःकरणवृत्ति ही अतिशयरूप से बुद्धि में प्रतिष्ठित होकर संस्कार' नाम से व्यवहृत होने लगती है। दूसरे शब्दों में शब्दविषयात्मक, एवं अर्थविषयात्मक विषयावच्छिन्न ज्ञान ही आगे जाकर संस्कारावच्छिन्नज्ञानरूप में परिणत होजाता है। साथ ही में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि, शब्द और अर्थ दोनों अविनाभूत हैं, तादात्म्यभावापन्न हैं। अतएव शब्दात्मक विषयज्ञान के अवसर पर अर्थात्मकविषय सहकारी बना रहता है, एवं अर्थात्मक विषयज्ञान के अवसर पर शब्दात्मक विषय सहकारी बना रहता है। घटविषयक अर्थज्ञानकाल में घट शब्द भी अन्तःकरण में प्रकट होजाता है। गोपशु को जब हम अपने सामने खड़ा देखते हैं, तो गोअर्थ का ज्ञान तो होता ही है, परन्तु साथ साथ ही गोशब्द भी हमारी ज्ञानसीमा में

म्प्यार हैं। यही ब्रह्मतत्व सब'की प्रतिष्ठा है—"ब्रह्म वै सर्वस्य प्रतिष्ठा" (शत० ६।१।१।९।) । यही उस प्रजापति का पहिला 'ब्रह्मविवर्त्त' है ।

शब्द से वस्तु का रूप एवं नाम दोनों पकड़ में आजाते हैं । "गौ" शब्द के सुनते ही 'गौ" यह नाम, और सास्नादिमत्व गौ का रूप दोनों गृहीत होजाते हैं । ऐसी अवस्था में छन्दावच्छिन्न प्रजापति को हम अवश्य ही "नामरूप" कहने के लिए तय्यार हैं । नामरूप से ही विषय प्रकाशित रहता है, एवं नामरूप से ही विषय की प्राप्ति (ज्ञान) होती है । अतएव नामरूप को "ज्योति" भी कहा जाता है । यही उस प्रजापति का दूसरा 'नामरूपविवर्त्त' है ।

नामरूपात्मक ज्योतिर्मय शब्द, एवं अर्थात्मक ब्रह्म, दोनों से आत्मा सस्कृत रहता है। सस्कारावच्छिन्न प्रजापति ही अन्न है । विषयसंस्कार ही आत्मा के उक्थ हैं । जबतक उक्थ है, तभीतक अर्क हैं जबतक अर्क हैं तभीतक आत्मा के साथ अशीति (अन्न) का सम्बन्ध है अन्न ने ही सस्काररूप में परिणत होकर आत्मा को स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित कर रक्खा है, जैसा कि— 'अशीतिभिर्हि महदुक्थमाप्यायते" इत्यादि श्रौतवचन से स्पष्ट है । जिस दिन अन्नाहुति बंद हो जाती है साथ ही में पहिले से प्रतिष्ठित उक्थों का भोग समाप्त होजाता है, उस दिन आत्मा संस्कारशून्य होता हुआ मुक्त होजाता है । उक्थविद्या वेद की एक बड़ी ही रहस्यपूर्ण विद्या है । विशेषत. सामवेद में इसका विशद निरूपण हुआ है। आत्मा में अनन्त अशितियों के कारण सस्काररूप अनन्त उक्थ बैठे रहते हैं । इन अनन्त उक्थों की आश्रयभूमि होने से ही आत्मा को "महदुक्थ" कहा जाता है। आत्मा में जिस अन्नका उक्थ पहिले से प्रतिष्ठित रहता है, वह तत्समानधर्म्म अन्न की ही इच्छा करता है । सात्विक उक्थप्रधान आत्मा सात्विक अन्न की, तामस वाला तामस की, राजस वाला राजस की ओर ही प्रवृत्त होता है । यदि बलात्कार से प्रकृतिविरुद्ध अन्न का आगमन होता है, तो सहसा आत्मा घबरा जाता है। परन्तु आगत अन्न कालान्तर में एक स्वतन्त्र उक्थ बनता हुआ पुनः तदन्न-ग्रहण से शान्त होजाता है । एक व्यक्ति मद्य से घृणा करता है । इस घृणा का कारण यही

बना हुआ है—"एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्" इसका कौन प्रतिवाद कर सकता है। ज्ञानघन आत्मतत्व की इन्हीं विभूतियों का निरूपण करती हुई उपनिषच्छ्रुति कहती है—

> यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
> तस्मादेतद् ब्रह्म-नामरूप मन्नं च जायते ॥ (मुण्डक० १।१।८)
> तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
> छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (यजुः स० ३१।७)

श्रुत्युक्त नामरूपात्मक तत्व शब्दप्रधान बनता हुआ वेदप्रधान है अर्थात्मक प्रतिष्ठा-लक्षण ब्रह्म ब्रह्मप्रधान है, अन्न संस्कारात्मिका विद्या का सूचक है । उक्त मुण्डकश्रुति का विशद वैज्ञानिक विवेचन तो "मुण्डकोपनिषत्-हिन्दी-विज्ञानभाष्य" में ही देखना चाहिए यहां प्रकरणसङ्गति के लिए केवल यही समझ लेना पर्य्याप्त होगा कि, ज्ञान-क्रिया-अर्थमय, अत एव सर्वज्ञ, सर्वशक्ति सर्ववित् नामों से प्रसिद्ध, अव्ययात्मक्षर से अनुग्रहीत, अक्षरमूर्त्ति. उस चिद्घन प्रजापति के ज्ञानमय तप से सब से पहिले 'ब्रह्म-नामरूप-अन्न" ये तीन ही तत्व प्रादुर्भूत हुए हैं । ब्रह्म से अर्थसृष्टि का विकास हुआ है नामरूप से शब्दसृष्टि का वितान हुआ है, एवं अन्न से उभय (शब्दार्थ) सम्बद्धा संस्कारसृष्टि का उदय हुआ है । सृष्टिवर्ग में ये तीन सृष्टियाँ ही प्रधान हैं । इतर सम्पूर्ण सृष्टियों का इन्हीं तीनों में अन्तर्भाव है । अर्थसृष्ट्यवच्छिन्न वही प्रजापति ब्रह्म है, शब्दसृष्ट्यवच्छिन्न वही प्रजापति वेद है, एव संस्कारसृष्ट्यवच्छिन्न वही प्रजापति विद्या (अपराविद्या) है ।

यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि, अर्थ ही ज्ञान एवं क्रिया की प्रतिष्ठा है । निर्विषयक ज्ञान निर्विकल्पक बनता हुआ तिरोहित होजाता है । एवमेव क्षणिक क्रिया का आधार भी स्थिर अर्थ (पदार्थ) ही है । यदि अर्थ न हो तो क्रिया कहां प्रतिष्ठित रहे । विषयात्मक अर्थ ज्ञान, एवं क्रिया को अपने ऊपर प्रतिष्ठित रखता है । दूसरे शब्दों में ज्ञान एवं क्रिया विषयावच्छिन्न प्रजापति पर प्रतिष्ठित हैं । अतएव "बिभर्त्ति ज्ञानक्रिये तद्ब्रह्म" इस निर्वचन के अनुसार अर्थावच्छिन्न (विषयावच्छिन्न) प्रजापति को हम अवश्य ही 'ब्रह्म" कहने के लिए

अनुसार कारण से अनतिरिक्त अभिन्न) ब्रह्म-वेद-विद्या, इन तीनों कारणों को यदि कारण-दृष्टि से देखा जाता है तो कार्यभेदसत्ता विलीन होजाती है । उदाहरण के लिए पांच महाभूतों का विवर्तवाद अपने सामने रखिए। पार्थिव विभाग [मिट्टी] ६४ तरह के हैं, आप्य-विभाग (जल) ३० हैं, तैजस विभाग १० हैं वायव्य विभाग ४९ हैं, आकाश विभाग ५ हैं। दूसरे शब्दों में फेन-मृत्-शर्करा-सिकता-अश्मन-वल्मीक-पीत-रक्त-श्वेत आदि भेद से मिट्टी ६४ जाति में विभक्त है । अम्भ-मरीचि-मर-श्रद्धा-स्यन्दन्ती-एकधना-वसतीवरी आदि भेद से पानी के ३० भेद हैं। एकविध गायत्रतेज, एकविध सावित्रतेज, अष्टविध नाक्षत्रिकतेज भेद से तेज १० भागों में विभक्त है । धुनि-ध्वान-ध्वन-ध्वनयन् निलिम्प-विलिम्प-विक्षिप-ऋत-सत्य-ध्रुव-वरुण-धर्ता-विधर्ता-आदि वायु के ४९ अवान्तरभेद हैं । परमाकाश-पुराणाकाश-शरीराकाश-हृदयाकाश-दहराकाश भेद से आकाश पाच भागों में विभक्त है। इन सब १५८ विभागों का वैज्ञानिकोंने पांच ही भूतों में अन्तर्भाव मान लिया है। प्रकारान्तर से देखिये । पृथिवी अन्न है इसके ६४ भेद हैं, जल के ३० भेद हैं, तेजके १० भेद हैं संभूय १०४ कार्य होजाते हैं। आर्ष वैज्ञानिक लोग इन सब अवान्तर कार्यों की उपेक्षा कर तेज अप्-अन्न इन तीन कारणों में ही उन सब कार्यों का अन्तर्भाव मानते हुए तीन ही तत्व मानते हैं। त्रिवृत्करणविद्या में ऋषियोंने तेज-अप्-अन्न की ही सत्ता स्वीकार की है— (छान्दोग्य० उप० ६।३।३। । इस भूतविद्या के अनुसार ब्रह्मविद्या में भी ऋषियोंने कार्यभूत ब्रह्म-विद्या-वेद इन तीनों की अपेक्षा न रखते हुए कारणभूत, अनिर्वचनीय सर्वत्र व्याप्त, महामहनीय, एक ही परब्रह्म [अभ्ययक्षरानुप्रहीतअक्षर] की सत्ता स्वीकार की है। यही सबका आत्मा है। हम जो कुछ देखते हैं.- "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" के अनुसार नानाभेदभिन्न यह सारा प्रपञ्च ऐतदात्म्य है, आत्ममय है । इसी आत्मदृष्टि के आधार पर "ब्रह्मैवेदं सर्वम्"-'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-"प्रजापतिरेवेदं सर्वं यदिदं किञ्च" इत्यादि नैगमिक सिद्धान्त प्रतिष्ठित हैं।

इस प्रकार अबतक के कथन से यह भलीभांति सिद्ध होजाता है, कि सदसद्रूप

है कि, उसके आत्मा में मद्य का उक्थ नहीं है, अतएव तद्रूप अर्क नहीं निकलते। ऐसे व्यक्ति की किसी मद्यपी (शराबी) से मैत्री होजाती है। सङ्गातिशय के कारण मद्यपरमाणु संस्काररूप से धीरे धीरे उस व्यक्ति के आत्मा में (आत्मानुगृहीत मानसधरातल में) खचित होते जाते हैं। कालान्तर में जिस दिन संस्कारभाव पुञ्जरूप में परिणत होकर उक्थरूप में परिणत होजाता है, उसी दिन उस मद्योक्थ से मद्यमय अर्क निकल पड़ते हैं। बिम्ब बना नहीं कि, रश्मियाँ निकलीं नहीं। येही अर्क, किंवा रश्मियाँ उस व्यक्ति की मद्यपान की इच्छा है। इसी इच्छा का वशवर्त्ती बना हुआ यह धीरे धीरे स्वयं भी शराबी बन जाता है। इस प्रकार अर्करूप कामना का प्रधान स्तम्भ सङ्ग भी बन जाया करता है-"सङ्गात् सञ्जायते कामः" (गी० २।६२।)। इसी उक्थार्कभाव से बचने के लिए ऋषियोंनें कुसङ्ग का पूर्ण नियन्त्रण किया है। इस परिस्थिति से कहना यही है कि, अन्न ही उक्थरूप संस्कारों का जनक बनता है। एवं संस्कारों के अनुसार ही अन्नादान होता है। इसी संस्कार की कृपा से आत्मा शरीरबन्धन में पड़ा हुआ है। अन्नाहुति से ही आत्मयज्ञ (जोकि आत्मयज्ञ ब्राह्मणश्रुतियों में-"अैपञ्चयज्ञ" नाम से सम्बोधित हुआ है) सम्पन्न होता है। अतएव इस अन्नतत्व को "यज्ञ" भी कहा जाता है। यही उस प्रजापति का तीसरा 'अन्नविवर्त्त' है।

ब्रह्म प्रतिष्ठा है, नामरूप ज्योति है, अन्न यज्ञ है। तीनो की समष्टि ही 'सर्वम्' है। प्रतिष्ठा ब्रह्म है, यही विषयावच्छिन्न ज्ञान है। ज्योति नामरूप है, यही शब्दावच्छिन्न ज्ञान है, यही वेद है। यज्ञ अन्न है, यही संस्कारावच्छिन्न ज्ञान है, यही विद्या है। अपने ज्ञानमय तप से इन तीनों को उत्पन्न कर-"तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" के अनुसार वह अभिन्नरूप से तीनों विवर्त्तों में व्याप्त होरहा है। वह कारण है ये तीनों उस एक के तीन कार्य हैं। कार्यदृष्टि से तीनों भिन्न हैं, कारणदृष्टि से तीनों अभिन्न हैं एक हैं। कारणभूत सुवर्ण से निर्मित कटक-कुण्डल-ग्रैवेयक (चन्द्रहार, तीनों कार्य भिन्न भिन्न हैं, सुवर्ण तीनों में समान है। कार्यदृष्टि से तीनों भिन्न भिन्न हैं, कारणदृष्टि से तीनों एक तत्व है। निष्कर्ष यही हुआ कि- वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"(छा० उ० ६।१।४) इस सिद्धान्त के

अनुसार कारण से अनतिरिक्त अभिन्न) ब्रह्म–वेद–विद्या, इन तीनों कारणों को यदि कारण-दृष्टि से देखा जाता है तो कार्यभेदसत्ता विलीन होजाती है । उदाहरण के लिए पाच महाभूतों का विवर्तवाद अपने सामने रखिए । पार्थिव विभाग [मिट्टी] ६४ तरह के हैं, आप्य-विभाग (जल) ३० हैं, तैजस विभाग १० हैं वायव्य विभाग ४६ हैं, आकाश विभाग ५ हैं । दूसरे शब्दों में फेन–मृत्–शर्करा–सिकता–ऊषर–वल्मीक–पीत–रक्त–श्वेत आदि भेद से मिट्टी ६४ जाति में विभक्त है । अम्भ–मरीचि–मर–श्रद्धा–स्यन्दन्ती–एकधना–वसतीवरी आदि भेद से पानी के ३० भेद हैं । एकविध गायत्रतेज, एकविध सावित्रतेज, अष्टविध नाचिकेतन भेद से तेज १० भागों में विभक्त है । धुनि–ध्वान्त–ध्वन–ध्वनयन् निलिम्प–विलिम्प–विक्षिप–ऋत–सत्य–ध्रुव–धरुण–धर्ता–विधर्ता–आदि वायु के ४६ अवान्तरभेद हैं । परमाकाश–पुराणाकाश शरीराकाश–हृदयाकाश–दहराकाश भेद से आकाश पाच भागों में विभक्त है । इन सब १५८ विभागों का वैज्ञानिकोंने पांच ही भूतों में अन्तर्भाव मान लिया है । प्रकारान्तर से देखिये । पृथिवी अन्न है इसके ६४ भेद हैं, जल के ३० भेद हैं, तेजके १० भेद हैं सभूय १०४ कार्य होजाते हैं । आर्ष वैज्ञानिक लोग इन सब अवान्तर कार्यों की उपेक्षा कर तेज अप् अन्न इन तीन कारणों में ही उन सब कार्यों का अन्तर्भाव मानते हुए तीन ही तत्व मानते हैं । त्रिवृत्करणविद्या में ऋषियोंने तेज–अप्–अन्न की ही सत्ता स्वीकार की है— (छान्दोग्य० उप० ६।३।३। । इस भूतविद्या के अनुसार ब्रह्मविद्या में भी ऋषियोंने कार्यभूत ब्रह्म–विद्या–वेद इन तीनों की अपेक्षा न रखते हुए कारणभूत, अनिर्वचनीय सर्वत्र व्याप्त, महामहनीय, एक ही परब्रह्म [अव्ययपुरुषानुप्रहीतअक्षर] की सत्ता स्वीकार की है । यही सबका आत्मा है । हम जो कुछ देखते हैं - ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" के अनुसार नानाभेदभिन्न वह सारा प्रपञ्च ऐतदात्म्य है, आत्ममय है । इसी आत्मदृष्टि के आधार पर "ब्रह्मैवेदं सर्वम्'–'सर्वं खल्विदं ब्रह्म"–"प्रजापतिरेवेदं सर्वं यदिदं किञ्च" इत्यादि नैगमिक सिद्धान्त प्रतिष्ठित हैं ।

इस प्रकार अबतक के कथन से यह भलीभांति सिद्ध होजाता है, कि सदसद्रूप

कारणभूत ब्रह्म के कार्यरूप ब्रह्म–वेद–विद्या, इन तीनों कार्यों के कार्यत्व का अपलाप करदेने से दृश्यमान प्रपञ्च आत्मरूप ही है। घड़ा मिट्टी से बना है। मिट्टी कारण है, घड़ा कार्य है। दोनों में परस्पर भेदाभेद किंवा भेदसहिष्णुअभेदसम्बन्ध है। ऐतदात्म्य–सम्बन्ध से दोनों ही व्यवहार देखे जाते हैं। 'घटोऽयं मृत्तिकैव'' (यह घड़ा मिट्टी ही है) 'घटोऽयं मृत्तिकाजन्यः'' (यह घड़ा मिट्टी से उत्पन्न हुआ है, दोनों ही व्यवहार सुप्रसिद्ध हैं। ठीक इसी तरह यहां भी 'ब्रह्मेदमीश्वरः, विद्येयमीश्वरः, वेदोऽयमीश्वरः' यह व्यवहार भी होसकता है। एवं 'ब्रह्मेदमीश्वरकृतम, विद्येयमीश्वरकृता वेदोऽयमीश्वरकृत ' यह व्यवहार भी होसकता है। इसी कार्यकारणभाव को लक्ष्य में रखते हुए हम वेद को साक्षात् परमेश्वर कह सकते हैं। साथ ही में वेदईश्वरकृत है यह भी कहा जासकता है। जिनके मत में (कारणपक्षपातियों के मत में) ईश्वर वेदमूर्त्ति है, ईश्वर अन्यपुरुष से अनुत्पन्न है, नित्य है अतएव वेद भी अपौरुषेय है अकृतक है, नित्यकूटस्थ है, उनके इस मत का भी कारणदृष्टि से समादर किया जा सकता है। एवं जो वेद को ईश्वरकृत मानने के पक्षपाती (कार्यदृष्टि को प्रधान मानने वाले) हैं, उनके मतानुसार भी वेद की अपौरुषेयता, एवं नित्यता ज्यों की त्यों अक्षुण्ण रह जाती है। कारण स्पष्ट है। महापुरुष ईश्वर के अतिरिक्त उसका बनाने वाला और कौन होसकता है। उधर उस नित्यमहापुरुष की इच्छाशक्ति सर्वथा नित्य है। नित्यइच्छासिद्ध इस नित्यवेद की अपौरुषेयता में कोई बाधा नहीं आसकती। ईश्वर को पुरुष मान कर थोड़ी देर के लिए तत् कृतिसाध्यता का समादर करते हुए वेद को पौरुषेय भी मानलें, तब भी कोई क्षति नहीं है। "शास्त्रयोनित्वात्'' (शारी०सू० १।१।३।) इत्यादि वेदान्तसूत्र ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं समझते।

ब्रह्मतत्त्व को हमनें प्रतिष्ठा कहा है। यही आत्मा की सत्ताकला का विकास है, यही ऋग्वेद है। वेदतत्व को हमनें ज्योति कहा है। यही आत्मा की चित्कला का विकास है, यही सामवेद है। विद्या को हमनें आत्मोवय कहा है। यही आत्मा है, यही आत्मा की

आनन्दकला का विकास है, यही यजुर्वेद है। यही ब्रह्म-वेद-विद्यालक्षण आत्मवेद है। आत्मा के त्रिवृद्भाव के कारण इनमें (प्रत्येक में) तीनों वेदों का उपभोग होजाता है। ऋङ्मय ब्रह्मात्मक वेद भी त्रयीवेद है, साममय वेदात्मक वेद भी त्रयीवेद है, एवं यजुर्म्मय विद्यात्मक वेद भी त्रयीवेद है।

१—ब्रह्मवेद (ऋग्वेद)

विषयावच्छिन्न ज्ञान को ही हमनें ब्रह्म कहा है। यही प्रतिष्ठातत्व है यही सत्तातत्व है, यही ऋग्वेद है। इस विषय में नाम रूप-कर्म्म, ये तीन कलाएं नित्य प्रतिष्ठित रहतीं हैं। इनमें नामप्रपञ्च वाङ्मय ऋग्वेद है, रूपप्रपञ्च मनोमय यजुर्वेद है, एवं कर्म्मप्रपञ्च प्राणमय सामवेद है।

—— o • o ——

२—वेदवेद (सामवेद)

शब्दावच्छिन्न ज्ञान को ही हमनें वेद कहा है। यही ज्योतितत्व है, यही चेतनातत्व है, यही सामतत्व है वाङ्मय शब्द ही चेतना का निर्गमस्थान है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि जबतक आदमी बोलता रहता है तभी तक उसे जीवित माना जाता है। एक मूर्च्छित मनुष्य जब कुछ बोलने लगता है तो उसके सम्बन्ध में "अरे! देखो देखो उसने चेत कर लिया" यह कहा जाता है। चेत करना चेतना का ही व्यापार है। यही आत्मज्योति है। "वाग् ज्योतिरय पुरुषः" का भी यही रहस्य है। "सर्वं शब्देन भासते" भी शब्दतत्व के इसी ज्योतिर्म्मय चेतना मात्र का समर्थन कर रहा है। यह शब्दप्रपञ्च गद्य-पद्य-गेय भेद से तीन भागों में विभक्त है। स्मरण रहे, इन तीनों से सुप्रसिद्ध यजुः-ऋक्-साम नाम की वेदसंहिताएं कभी अभिप्रेत नहीं है। अपितु प्राणिमात्र की वागिन्द्रिय से सम्बन्ध रखने वाले शब्द से ही हमारा तात्पर्य है। संसार के शब्दमात्र में जितना गद्य का अंश है, वह सब यजुर्वेद का विश्वास है। कारण इसका यही है कि, यजुर्म्मय आत्मा आनन्दप्रधान है। आनन्द निः-

कारणभूत ब्रह्म के कार्यरूप ब्रह्म–वेद–विद्या, इन तीनों कार्यों के कार्यत्व का अपलाप करदेने से दृश्यमान प्रपञ्च आत्मरूप ही है। घड़ा मिट्टी से बना है। मिट्टी कारण है, घड़ा कार्य है। दोनों में परस्पर भेदाभेद, किंवा भेदसहिष्णुअभेदसम्बन्ध है। ऐतदात्म्य–सम्बन्ध से दोनों ही व्यवहार देखे जाते हैं। 'घटोऽयं मृत्तिकैव" (यह घड़ा मिट्टी ही है)-' घटोऽयं मृत्तिकाजन्यः" (यह घड़ा मिट्टी से उत्पन्न हुआ है, दोनों हीं व्यवहार सुप्रसिद्ध हैं। ठीक इसी तरह यहां भी-'ब्रह्मेदमीश्वरः, विद्येयमीश्वरः, वेदोऽयमीश्वरः' यह व्यवहार भी होसकता है। एवं 'ब्रह्मेदमीश्वरकृतम, विद्येयमीश्वरकृता, वेदोऽयमीश्वरकृतः' यह व्यवहार भी होसकता है। इसी कार्यकारणभाव को लक्ष्य में रखते हुए हम वेद को साक्षात् परमेश्वर कह सकते हैं। साथ ही में वेदईश्वरकृत है यह भी कहा जासकता है। जिनके मत में (कारणपक्षपातियों के मत में) ईश्वर वेदमूर्त्ति है, ईश्वर अन्यपुरुष से अनुत्पन्न है, नित्य है अतएव वेद भी अपौरुषेय है, अकृतक है, नित्यकूटस्थ है, उनके इस मत का भी कारणदृष्टि से समादर किया जा सकता है। एवं जो वेद को ईश्वरकृत मानने के पक्षपाती (कार्यदृष्टि को प्रधान मानने वाले) हैं, उनके मतानुसार भी वेद को अपौरुषेयता, एवं नित्यता ज्यों की त्यों अनुपपण रह जाती है। कारण स्पष्ट है। महापुरुष ईश्वर के अतिरिक्त उसका बनाने वाला और कौन होसकता है। उधर उस नित्यमहापुरुष की इच्छाशक्ति सर्वथा नित्य है। नित्यइच्छासिद्ध इस नित्यवेद की अपौरुषेयता में कोई बाधा नहीं आसकती। ईश्वर को पुरुष मान कर थोड़ी देर के लिए तत्कृतिसाध्यता का समादर करते हुए वेद को पौरुषेय भी मानलें, तब भी कोई क्षति नहीं है। "शास्त्रयोनित्वात्" (शारी०सू० १.१।३।)इत्यादि वेदान्तसूत्र ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं समझते।

ब्रह्मतत्त्व को हमनें प्रतिष्ठा कहा है। यही आत्मा की सत्ताकला का विकास है, यही ऋग्वेद है। वेदतत्व को हमनें ज्योति कहा है। यही आत्मा की चित्कला का विकास है, यही सामवेद है। विद्या को हमनें आत्मोक्थ कहा है। यही आत्मा है, यही आत्मा की

आनन्दकला का विकास है, यही यजुर्वेद है। यही ब्रह्म-वेद-विद्यालक्षण आत्मवेद है। आत्मा के त्रिवृद्भाव के कारण इनमें (प्रत्येक में) तीनों वेदों का उपभोग होजाता है। ऋङ्मय ब्रह्मात्मक वेद भी त्रयीवेद है, साममय वेदात्मक वेद भी त्रयीवेद है, एवं यजुर्मय विद्यात्मक वेद भी त्रयीवेद है।

१—ब्रह्मवेद (ऋग्वेद)

विषयावच्छिन्न ज्ञान को ही हमनें ब्रह्म कहा है। यही प्रतिष्ठातत्व है यही सत्तातत्व है, यही ऋग्वेद है। इस विषय में नाम-रूप-कर्म्म, ये तीन कलाएं नित्य प्रतिष्ठित रहतीं हैं। इनमें नामप्रपञ्च वाङ्मय ऋग्वेद है, रूपप्रपञ्च मनोमय यजुर्वेद है, एवं कर्म्मप्रपञ्च प्राणमय सामवेद है।

——— ०:•.० ———

२—वेदवेद (सामवेद)

शब्दावच्छिन्न ज्ञान को ही हमनें वेद कहा है। यही ज्योतितत्व है, यही चेतनातत्व है, यही सामतत्व है वाङ्मय शब्द ही चेतना का निर्गमस्थान है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि जबतक आदमी बोलता रहता है तभी तक उसे जीवित माना जाता है। एक मुर्च्छित मनुष्य जब कुछ बोलने लगता है, तो उसके सम्बन्ध में "अरे! देखो देखो उसने चेत कर लिया" यह कहा जाता है। चेत करना चेतना का ही व्यापार है। यही आत्मज्योति है। "वाग्-ज्योतिरय पुरुषः" का भी यही रहस्य है। "सर्वं शब्देन भासते" भी शब्दतत्व के इसी ज्योतिर्म्मय चेतना भाव का समर्थन कर रहा है। यह शब्दप्रपञ्च गद्य—पद्य—गेय भेद से तीन भागों में विभक्त है। स्मरण रहे, इन तीनों से सुप्रसिद्ध यजुः—ऋक्—साम नाम की वेदसंहिताएं कभी अभिप्रेत नहीं है। अपितु प्राणिमात्र की वागिन्द्रिय से सम्बन्ध रखने वाले शब्द से ही हमारा तात्पर्य है। संसार के शब्दमात्र में जितना गद्य का अंश है, वह सब यजुर्वेद का विकास है। कारण इसका यही है कि, यजुर्मय आत्मा आनन्दप्रधान है। आनन्द निः-

कारणभूत ब्रह्म के कार्यरूप ब्रह्म–वेद–विद्या, इन तीनों कार्यों के कार्यत्व का अपलाप करदेने से दृश्यमान प्रपञ्च आत्मस्वरूप ही है। घड़ा मिट्टी से बना है। मिट्टी कारण है, घड़ा कार्य है। दोनों में परस्पर भेदाभेद, किंवा भेदसहिष्णुअभेदसम्बन्ध है। ऐतदात्म्य–सम्बन्ध से दोनों ही व्यवहार देखे जाते हैं। 'घटोऽयं मृत्तिकैव'' (यह घड़ा मिट्टी ही है)-' घटोऽयं मृत्तिकाजन्यः'' (यह घड़ा मिट्टी से उत्पन्न हुआ है, दोनों हीं व्यवहार सुप्रसिद्ध हैं। ठीक इसी तरह यहां भी-'ब्रह्मेदमीश्वरः, विद्येयमीश्वरः, वेदोऽयमीश्वरः' यह व्यवहार भी होसकता है। एवं 'ब्रह्मेदमीश्वरकृतम, विद्येयमीश्वरकृता वेदोऽयमीश्वरकृत.' यह व्यवहार भी होसकता है। इसी कार्यकारणभाव को हृदय में रखते हुए हम वेद को साक्षात् परमेश्वर कह सकते हैं। साथ हो में वेदईश्वरकृत है यह भी कहा जासकता है। जिनके मत में (कारणपक्षपातियों के मत में) ईश्वर वेदमूर्त्ति है, ईश्वर अन्यपुरुष से अनुत्पन्न है, नित्य है अतएव वेद भी अपौरुषेय है, अकृतक है, नित्यकूटस्थ है, उनके इस मत का भी कारणदृष्टि से समादर किया जा सकता है। एव जो वेद को ईश्वरकृत मानने के पक्षपाती (कार्यदृष्टि को प्रधान मानने वाले) हैं, उनके मतानुसार भी वेद को अपौरुषेयता, एव नित्यता ज्यों की त्यों अक्षुण्ण रह जाती है। कारण स्पष्ट है। महापुरुष ईश्वर के अतिरिक्त उसका बनाने वाला और कौन होसकता है। उधर उस नित्यमहापुरुष की इच्छाशक्ति सर्वथा नित्य है। नित्यइच्छासिद्ध इस नित्यवेद की अपौरुषेयता में कोई बाधा नहीं आसकती। ईश्वर को पुरुष मान कर थोड़ी देर के लिए तत्कृतिसाध्यता का समादर करते हुए वेद को पौरुषेय भी मानलें, तब भी कोई क्षति नहीं है। "शास्त्रयोनित्वात्" (शारी०सू० १।१।३।)इत्यादि वेदान्तसूत्र ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं समझते।

ब्रह्मतत्त्व को हमनें प्रतिष्ठा कहा है। यही आत्मा की सत्ताकला का विकास है, यही ऋग्वेद है। वेदतत्त्व को हमनें ज्योति कहा है। यही आत्मा की चित्कला का विकास है, यही सामवेद है। विद्या को हमनें आत्मोक्थ कहा है। यही आत्मा है, यही आत्मा की

में अन्तर्भाव है। कर्मजनित संस्कार वासनाप्रधान है, ज्ञानजनित संस्कार भावनाप्रधान है, एवं शब्दजनितसंस्कार उभयप्रधान है। इन तीनों में मूल शब्दजनित संस्कार ही है। ज्ञान में भी शब्द अनुस्यूत है, कर्म में भी शब्द अनुस्यूत है। दोनों हीं में शब्द सहायक बनता है। ज्ञान से काम लेने वाला एक विद्वान् भी अपनी ज्ञानीय कल्पनाओं में शब्द को ही मूलाधार बनाता है। कर्मप्रधान एक मजदूर भी कर्म करते समय शब्द का आश्रय लेता देखा गया है। प्रासादादि निर्म्माण काल में मजदूर लोग जब भी कभी कोई बोझल वस्तु उठाते हैं, तो सब के मुंह से "हां देखना-सावधान-वाह मेरे शेर-मन क्या है" ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते देखे गए हैं। इस शब्दाश्रय से अवश्य ही उन्हें अपने कर्म में सहायता मिलती है। इसी मूलप्रतिष्ठा के कारण शब्दसंस्कार को हम ऋग्वेद मानने के लिए तय्यार हैं। क्यों कि प्रतिष्ठा ही सत्ता है, सत्ता ही ऋक है, यही परमाव है।

कर्म में अक्षरप्रधाना चेतना का विकास है। चेतना ज्योति है। ज्योति साम है। फलतः कर्मजनित संस्कार का सामभाव होना सिद्ध होजाता है। ज्ञान अव्ययप्रधान आनन्द का विकास है, आनन्द आत्मा है, आत्मा यजु है। अतएव हम ज्ञानजनित संस्कार को यजुर्वेद कहने के लिए तय्यार हैं। इसीलिए तो ज्ञानीय कल्पना में आनन्द आया करता है। इस प्रकार तीनों में तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है, जैसा कि निम्न लिखित परिलेखों से स्पष्ट है।

१—विषयावच्छिन्नं ज्ञानं——→ब्रह्म——(प्रतिष्ठा——सत्ता)——→ऋग्वेदः
२—शब्दावच्छिन्नं ज्ञानं——→वेदः——(ज्योतिः——चेतना)——→सामवेदः   }→वेदत्रयी
३—संस्कारावच्छिन्नं ज्ञानं——→विद्या——(आत्मा——आनन्दः)——→यजुर्वेदः

———०:०:०———

सीमतत्व है। अव्ययप्रधान आनन्द ही यजु है। गद्य भी नि:सम है इसी सादृश्य के कारण हम गद्यात्मक शब्दप्रपञ्च को यजुर्वेद मानने के लिए तय्यार हैं। पद्यात्मक (छन्दोबद्ध) शब्द प्रपञ्च को हम ऋग्वेद कहने के लिए तय्यार हैं। कारण इसका यही है कि, ऋग्वेदमय आत्मा सत्ता-प्रधान है। सत्ता प्रतिष्ठा तत्व है। क्षरप्रधान सत्ता ही ऋग्वेद है। क्षरकूट ही तो सत्ता है, व्यञ्जनकूट ही तो पद्य है। इसी सादृश्य के कारण पद्यात्मक शब्द ऋग्वेद है। गेय भाग सामवेद है। पद्य में ही स्वरलहरी का समावेश करने से गान का स्वरूप निष्पन्न होजाता है। पद्य का वितान (फैलाव) ही तो गान है। साममय आत्मा चेतनाप्रधान है। सामात्मक गान से पशु पक्षियों तक में चैतन्य विकसित देखा गया है। अक्षरप्रधाना यह चेतना ही साम है। अक्षर को ही स्वर कहा जाता है स्वर ही तो वितत होकर पद्य को गेय बना डालता है। इसी समानता से हम गेय भाग को साम मानने के लिए तय्यार हैं-"गीतिषु सामाख्या"

३—विद्यावेद (यजुर्वेद)

संस्कारावच्छिन्न ज्ञान को ही विद्या कहा गया है। यह संस्कार तीन तरह से उत्पन्न होते हैं। शब्दश्रवण से भी संस्कार होता है, यही पहिला शब्दात्मक संस्कार है। कर्म करने से भी संस्कार होता है, यही कर्मात्मक, किंवा कर्मप्रधान संस्कार है। विषयज्ञान से भी संस्कार होते है, एवं बिना विषय के केवल सांस्कारिक विषयों के आधार पर नवीन नवीन काल्पनिक संस्कार उदित होते रहते हैं। इन दोनों में विषयज्ञान सम्बन्धी प्रथम संस्कारों का तो पूर्व के कर्मसंस्कारों में ही अन्तर्भाव है। दूसरे काल्पनिक संस्कार ज्ञानसंस्कार, किंवा ज्ञानप्रधान संस्कार कहलाते हैं। यहां जिन संस्कारों के आधार पर ज्ञान नवीन कल्पना करता है वे भी ज्ञानमय हैं, एवं स्वयं ज्ञान तो ज्ञान है ही। इसीलिए इन काल्पनिक संस्कारों को हम ज्ञान संस्कार कह सकते हैं। शब्द सुनने से आत्मा पर एक छाप सी लग जाती है, विषयदर्शन से भी वह विषय हृत्पटल पर खचित होजाता है ठाले बैठे नई नई कल्पनाओं से भी नवीन नवीन संस्कार उदित होते देखे गए हैं। इन तीनों ही संस्कारों का भावना-वासना संस्कार

में अन्तर्भाव है। कर्म्मजनित संस्कार वासनाप्रधान है, ज्ञानजनित संस्कार भावनाप्रधान है, एवं शब्दजनितसंस्कार उभयप्रधान है। इन तीनों में मूल शब्दजनित संस्कार ही है। ज्ञान में भी शब्द अनुस्यूत है कर्म्म में भी शब्द अनुस्यूत है। दोनों ही में शब्द सहायक बनता है। ज्ञान से काम लेने वाला एक विद्वान् भी अपनी ज्ञानीय कल्पनाओं में शब्द को ही मूलाधार बनाता है। कर्म्मप्रधान एक मजदूर भी कर्म्म करते समय शब्द का आश्रय लेता देखा गया है। प्रासादादि निर्म्माण काल में मजदूर लोग जब भी कभी कोई बोझल वस्तु उठाते हैं, तो सब के मुंह से "हां देखना-सावधान-वाह मेरे शेर-अब क्या है" ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते देखे गए हैं। इस शब्दाश्रय से अवश्य ही उन्हें अपने कर्म्म में सहायता मिलती है। इसी मूलप्रतिष्ठा के कारण शब्दसंस्कार को हम ऋग्वेद मानने के लिए तय्यार हैं। क्यों कि प्रतिष्ठा ही सत्ता है, सत्ता ही ऋक् है, यही ऋग्भाव है।

कर्म्म में अक्षरप्रधाना चेतना का विकास है। चेतना ज्योति है। ज्योति साम है। फलतः कर्म्मजनित संस्कार का सामभाव होना सिद्ध होजाता है। ज्ञान अव्ययप्रधान आनन्द का विकास है, आनन्द आत्मा है, आत्मा यजु है। अतएव हम ज्ञानजनित संस्कार को यजुर्वेद कहने के लिए तय्यार हैं। इसीलिए तो ज्ञानीय कल्पना में आनन्द आया करता है। इस प्रकार तीनों में तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध होजाता है, जैसा कि निम्न लिखित परिलेखों से स्पष्ट है।

१—विषयावच्छिन्न ज्ञानं —→ब्रह्म—(प्रतिष्ठा —सत्ता)——→ऋग्वेद	}	
२—शब्दावच्छिन्न ज्ञान —→वेद —(ज्योतिः—चेतना)——→सामवेदः	}	→वेदत्रयी
३—संस्कारावच्छिन्न ज्ञानं—→विद्या —(आत्मा—आनन्द)——→यजुर्वेदः	}	

———०✲०———

१—प्रतिष्ठालक्षणे सत्तात्मके ब्रह्मवेदे—ऋग्वेदे वेदत्रयोपभोगः

१—नामप्रपञ्च—(वाङ्मयी सत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—रूपप्रपञ्च—(मनोमयी चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—कर्म्मप्रपञ्च—(प्राणमय आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः
} → ब्रह्मवेदः—ऋक् १

—०:०—

२—ज्योतिर्लक्षणे चिन्मये वेदवेदे—सामवेदे वेदत्रयोपभोगः

१—पद्यात्मक शब्दप्रपञ्च (वाङ्मयी क्षरप्रधानासत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—गानात्मक शब्दप्रपञ्च—(प्राणमयी अक्षरप्र०चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—गद्यात्मक शब्दप्रपञ्च—(मनोमय अव्ययप्र०आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः
} → वेदवेदः—साम २

—०:०—

३—आत्मलक्षणे आनन्दमये विद्यावेदे—यजुर्वेदे वेदत्रयोपभोगः

१—शब्दावच्छिन्न संस्कार—(वाङ्मयी सत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—कर्म्मजनित संस्कार—(प्राणमयी चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—ज्ञानजनित संस्कार—(मनोमय आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः
} → विद्यावेदः—यजुर्वेदः ३

—०:—

अव्यय-अक्षर-आत्मक्षर-परात्पर की समष्टिरूप चतुष्पाद ब्रह्म ही कारणभूत आत्मा है। आत्मक्षर की दृष्टि से वही आत्मब्रह्म सृष्टि का उपादान कारण है, अक्षर की दृष्टि से वही आत्मब्रह्म निमित्त कारण है, अव्ययदृष्टि से वही आत्मब्रह्म आलम्बन कारण है।

परात्परदृष्टि से वही आत्मब्रह्म कार्य-कारणातीत है इस कारणभूत आत्मब्रह्म से स्थूलसृष्टि की मूलभूता क्रमशः ब्रह्म-नामरूप-अन्न नामक ब्रह्म-वेद-विद्या इन तीन सृष्टियों का विकास होता है। इन्हीं तीनों का उपबृंहण यह विश्व है। इस विश्व में आगे जाकर अग्नीषोमात्मक चारों विश्ववेदों का विकास होने वाला है। इससे पहिले पहिले का सारा वेदविवर्त्त आत्मकोटि में ही अन्तर्भूत है। इसी प्रकृतिसिद्ध वेदावतार-क्रम को लक्ष्य में रख कर हमने अनेक दृष्टियों से पहिले सच्चिदानन्दलक्षणभूत मूलकारणात्मक आत्मवेद, किंवा आत्मवेदत्रयी का दिग्दर्शन कराया है, इसके पीछे तूलकारणभूत ब्रह्म-वेद-विद्या लक्षण आत्मवेद का स्वरूप बतलाया है। इस प्रकार आरम्भ से अबतक विश्वगर्भ में सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म-वेद-विद्यावेदकृतमूर्ति सच्चिदानन्दलक्षण आत्मवेद, किंवा मूलवेद का ही निरूपण हुआ है। अब यद्यपि क्रमप्राप्त तूलवेदात्मक अग्नीषोममय विश्ववेद का निरूपण करना चाहिए था, तथापि वेदतत्त्व का स्पष्टीकरण करने के लिए दो चार स्थलों में वेदतत्व की व्याप्ति दिखला देना आवश्यक प्रतीत होता है। इन कुछ एक वेदसंस्थाओं से, साथ ही में पूर्वप्रतिपादित वेद के तात्त्विक स्वरूप से वेदभक्तों को यह मान लेने में अणुमात्र भी सन्देह न रहेगा कि वेद, वास्तव में वेद एक तत्व विशेष है, जो कि आत्मवत् सर्वत्र व्याप्त है। वेदग्रन्थ वेद नहीं है, वेदग्रन्थ तो वेदतत्वप्रतिपादक शब्दशास्त्रमात्र है। इस प्रकीर्णक वेदप्रकरण में उदाहरणरूप से निम्नलिखित ७ संस्थाओं का ही संक्षेप से दिग्दर्शन कराया जायगा।

(११) १—पर्ववेदनिरुक्ति
(१२) २—भावनावेदनिरुक्ति
(१३) ३—भाववेदनिरुक्ति
(१४) ४—दिग्वेदनिरुक्ति
(१५) ५—देशवेदनिरुक्ति
(१६) ६—कालवेदनिरुक्ति
(१७) ७—वर्णवेदनिरुक्ति

इति—वेदविद्याब्रह्मनिरुक्तिः

———०:०:०———

१—प्रतिष्ठालक्षणे सत्तात्मके ब्रह्मवेदे—ऋग्वेदे वेदत्रयोपभोगः

१—नामप्रपञ्च—(वाङ्मयी सत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—रूपप्रपञ्च—(मनोमयी चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—कर्म्मप्रपञ्च—(प्राणमय आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः
} → ब्रह्मवेदः—ऋक् [१]

—०:०—

२—ज्योतिर्लक्षणे चिन्मये वेदवेदे—सामवेदे वेदत्रयोपभोगः

१—पद्यात्मक शब्दप्रपञ्च (वाङ्मयी स्वरप्रधानासत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—गानात्मक शब्दप्रपञ्च—(प्राणमयी अक्षरप्र०चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—गद्यात्मक शब्दप्रपञ्च—(मनोमय अव्ययप्र०आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः
} → वेदवेदः—साम [२]

—०:०—

३—आत्मलक्षणे आनन्दमये विद्यावेदे—यजुर्वेदे वेदत्रयोपभोगः

१—शब्दावच्छिन्न संस्कार—(वाङ्मयी सत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—कर्म्मजनित संस्कार—(प्राणमयी चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—ज्ञानजनित संस्कार—(मनोमय आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः
} → विद्यावेदः—यजुर्वेदः [१]

—०:—

अव्यय—अक्षर—आत्मक्षर—परात्पर की समष्टिरूप चतुष्पाद ब्रह्म ही कारणभूत आत्मा है। आत्मक्षर की दृष्टि से यही आत्मब्रह्म सृष्टि का उपादान कारण है, अक्षर की दृष्टि से यही आत्मब्रह्म निमित्त कारण है, अव्ययदृष्टि से यही आत्मब्रह्म आलम्बन कारण है।

परात्परदृष्टि से वही आत्मब्रह्म कार्य-कारणातीत है इस कारणभूत आत्मब्रह्म से स्थूलसृष्टि की मूलभूता क्रमशः ब्रह्म-नामरूप-अन्न नामक ब्रह्म-वेद-विद्या इन तीन सृष्टियों का विकास होता है। इन्हीं तीनों का उपबृंहण यह विश्व है। इस विश्व में आगे जाकर अग्नीषोमात्मक चारों विश्ववेदों का विकास होने वाला है। इससे पहिले पहिले का सारा वेदविवर्त्त आत्मकोटि में ही अन्तर्भूत है। इसी प्रकृतिसिद्ध वेदावतार-क्रम को लक्ष्य में रख कर हमने अनेक दृष्टियों से पहिले सच्चिदानन्दलक्षणभूत मूलकारणात्मक आत्मवेद, किंवा आत्मवेदत्रयी का दिग्दर्शन कराया है, इसके पीछे तूलकारणभूत ब्रह्म-वेद-विद्या लक्षण आत्मवेद का स्वरूप बतलाया है। इस प्रकार आरम्भ से अबतक विश्वगर्भ में सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म-वेद-विद्यावेदकृतमूर्त्ति सच्चिदानन्दलक्षण आत्मवेद, किंवा मूलवेद का ही निरूपण हुआ है। अब यद्यपि क्रमप्राप्त तूलवेदात्मक अग्नीषोममय विश्ववेद का निरूपण करना चाहिए था, तथापि वेदतत्त्व का स्पष्टीकरण करने के लिए दो चार स्थलों में वेदतत्त्व की व्याप्ति दिखला देना आवश्यक प्रतीत होता है। इन कुछ एक वेदसंस्थाओं से, साथ ही में पूर्वप्रतिपादित वेद के तात्त्विक स्वरूप से वेदभक्तों को यह मान लेने में अणुमात्र भी सन्देह न रहेगा कि वेद, वास्तव में वेद एक तत्त्व विशेष है, जो कि आत्मवत् सर्वत्र व्याप्त है। वेदग्रन्थ वेद नहीं है, वेदग्रन्थ तो वेदतत्त्वप्रतिपादक शब्दशास्त्रमात्र है। इस प्रकीर्णक वेदप्रकरण में उदाहरणरूप से निम्नलिखित ७ संस्थाओं का ही संक्षेप से दिग्दर्शन कराया जायगा।

- (११) १—पर्ववेदनिरुक्ति
- (१२) २—भावनावेदनिरुक्ति
- (१३) ३—भाववेदनिरुक्ति
- (१४) ४—दिग्वेदनिरुक्ति
- (१५) ५—देशवेदनिरुक्ति
- (१६) ६—कालवेदनिरुक्ति
- (१७) ७—वर्णवेदनिरुक्ति

इति—वेदविद्याब्रह्मनिरुक्तिः

———o:x:o———

१—प्रतिष्ठालक्षणे सत्तात्मके ब्रह्मवेदे—ऋग्वेदे वेदत्रयोपभोगः

१—नामप्रपञ्च—(वाङ्मयी सत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—रूपप्रपञ्च—(मनोमयी चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—कर्म्मप्रपञ्च—(प्राणमय आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः

}—→ब्रह्मवेदः—ऋक्[१]

———०:◆:०———
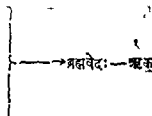
२—ज्योतिर्लक्षणे चिन्मये वेदवेदे—सामवेदे वेदत्रयोपभोगः

१—पद्यात्मक शब्दप्रपञ्च (वाङ्मयी चरप्रधानासत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—गानात्मक शब्दप्रपञ्च—(प्राणमयी अक्षरप्र०चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—गद्यात्मक शब्दप्रपञ्च—(मनोमय अव्ययप्र०आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः

}→वेदवेदः—साम[२]

———०:◆:०———

३—आत्मलक्षणे आनन्दमये विश्ववेदे—यजुर्वेदे वेदत्रयोपभोगः

१—शब्दावच्छिन्न संस्कार—(वाङ्मयी सत्ता)—प्रतिष्ठा—ऋग्वेदः
२—कर्म्मजनित संस्कार—(प्राणमयी चेतना)—ज्योतिः—सामवेदः
३—ज्ञानजनित संस्कार—(मनोमय आनन्द)—आत्मा—यजुर्वेदः

}—→विद्यावेदः—यजुर्वेदः[१]

———०:◆:०———

अव्यय-अक्षर-आत्मक्षर-परात्पर की समष्टिरूप चतुष्पाद ब्रह्म ही कारणभूत आत्मा है। आत्मक्षर की दृष्टि से यही आत्मब्रह्म सृष्टि का उपादान कारण है, अक्षर की दृष्टि से यही आत्मब्रह्म निमित्त कारण है, अव्ययदृष्टि से यही आत्मब्रह्म आलम्बन कारण है।

परात्परदृष्टि से वही आत्मब्रह्म कार्य-कारणातीत है इस कारणभूत आत्मब्रह्म से स्थूलसृष्टि की मूलभूता क्रमशः ब्रह्म-नामरूप-अन्न नामक ब्रह्म-वेद-विद्या इन तीन सृष्टियों का विकास होता है। इन्हीं तीनों का उपबृंहण यह विश्व है। इस विश्व में आगे जाकर अग्नीषोमात्मक चारों विश्ववेदों का विकास होने वाला है। इससे पहिले पहिले का सारा वेदविवर्त्त आत्मकोटि में हीं अन्तर्भूत है। इसी प्रकृतिसिद्ध वेदावतार-क्रम को लक्ष्य में रख कर हमने अनेक दृष्टियों से पहिले सच्चिदानन्दलक्षणभूत मूलकारणात्मक आत्मवेद, किंवा आत्मवेदत्रयी का दिग्दर्शन कराया है, इसके पीछे तूलकारणभूत ब्रह्म-वेद-विद्या लक्षण आत्मवेद का स्वरूप बतलाया है। इस प्रकार आरम्भ से अबतक विश्वगर्भ में सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म-वेद-विद्यावेदकृतमूर्त्ति सच्चिदानन्दलक्षण आत्मवेद, किंवा मूलवेद का ही निरूपण हुआ है। अब यद्यपि क्रमप्राप्त तूलवेदात्मक अग्नीषोममय विश्ववेद का निरूपण करना चाहिए था, तथापि वेदतत्त्व का स्पष्टीकरण करने के लिए दो चार स्थलों में वेदतत्व की व्याप्ति दिखला देना आवश्यक प्रतीत होता है। इन कुछ एक वेदसंस्थाओं से, साथ ही में पूर्वप्रतिपादित वेद के तात्त्विक स्वरूप से वेदभक्तों को यह मान लेने में अणुमात्र भी सन्देह न रहेगा कि वेद, वास्तव में वेद एक तत्व विशेष है, जो कि आत्मवत् सर्वत्र व्याप्त है। वेदमन्त्र वेद नहीं है, वेदमन्त्र तो वेदतत्वप्रतिपादक शब्दशास्त्रमात्र है। इस प्रकीर्णक वेदप्रकरण में उदाहरणरूप से निम्नलिखित ७ संस्थाओं का ही संक्षेप से दिग्दर्शन कराया जायगा।

(११) १—पर्ववेदनिरुक्ति
(१२) २—भावनावेदनिरुक्ति
(१३) ३—भाववेदनिरुक्ति
(१४) ४—दिग्वेदनिरुक्ति
(१५) ५—देशवेदनिरुक्ति
(१६) ६—कालवेदनिरुक्ति
(१७) ७—वर्णवेदनिरुक्ति

इति—वेदविद्याब्रह्मनिरुक्तिः

———०:०:०———

११—पर्ववेदनिरुक्ति

प्रकृत 'पर्ववेद' का प्रधानरूप से 'त्रयीवेद' के साथ ही सम्बन्ध समझना चाहिए त्रयीवेद की मूलप्रतिष्ठा अग्नितत्व है, जैसाकि पाठक आगे के प्रकरणों में देखेंगे । असङ्ख्य व्यष्टियों को अपने गर्भ में रखने वाले महासमष्टिरूप महाविश्व का मौलिकस्वरूप सोमगर्भित अग्नितत्व ही माना गया है, जैसा कि निम्नलिखित 'बृहज्जाबाल' सिद्धान्त से स्पष्ट है—

> अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते ॥
> अतएव हविःक्लृप्त—'मग्नीषोमात्मकं जगत्' ॥१॥
> ऊर्ध्वशक्तिमयःसोम अधोशक्तिमयोऽनलः ॥
> ताभ्यां सम्पुटितस्तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत् ॥२॥
> (बृहज्जाबालोपनिषत् २ ब्रा० ४-५ क०) ।

उक्त उपनिषद्वर्णन के अनुसार समष्टिरूप महाविश्व, एवं विश्व के गर्भ में प्रतिष्ठित व्यष्टिरूप चर—अचर पदार्थ अग्नि-सोम के ही सम्पुटितरूप हैं जिनका कि—"शिवशक्तिभ्यां नान्यात्मिह किञ्चन" इत्यादि रूप से 'उमामहेश्वर' के दाम्पत्यरूप पर विश्राम माना गया है । इसी दाम्पत्यभाव का प्रश्नोपनिषत् ने रयि—प्राण, तथा योषा—वृषा रूप से स्पष्टीकरण किया है । ब्राह्मणरहस्यवेत्ता महर्षि इसे ही अपनी याज्ञिक परिभाषा में आर्द्र—शुष्क, स्नेह-तेज. आज्य—पृष्ठ, इत्यादि नामों से व्यवहृत कर रहे हैं ।

तात्पर्य्य यह हुआ कि, सोमगर्भित अग्निमूर्ति विश्व एक महावेद है, एवं विश्वगर्भ में रहने वाला प्रत्येक पदार्थ एक एक अन्नवेद है । 'अनन्ता वै वेदाः' (तै० ब्राह्मण) के अनुसार इन व्यष्ट्यात्मक अनन्त वेदों को अपने गर्भ में रखने वाले अग्नीषोममय महाविश्वात्मक उसी महावेद को विश्वव्यापक विश्वात्मा का शरीर माना गया है, जैसाकि उसके "वेद-मूर्त्ति" नाम से स्पष्ट है । यद्यपि इस वेदमूर्त्ति में अग्नी—सोम दोनों तत्वों का समन्वय है, तथापि "अग्नेवाव्यापते नाधम्" (शत० ११।६।५।१।) इस याज्ञिसिद्धान्त के अनुसार आप

(अन्न) लक्षण सोमगर्भित अत्ता (अन्नाद) लक्षण अग्नि को ही उसका प्रातिस्विक स्वरूप मान लिया गया है। इसी दृष्टि से हम उस महासमष्टि को, एवं समष्टि के गर्भ में प्रतिष्ठित व्यष्टियों को केवल "अग्नि" शब्द से ही सम्बोधित करना उचित समझते हैं। आगे जाकर यही अग्नि-तत्त्व हमारे प्रकृत 'पर्ववेद' की आधारभूमि बनता है।

पूरणार्थक 'पर्व' धातु ('पर्व' पूरणे भा० प० से०) बाहुलकात् 'कनिन्' होने से 'पर्वन्' शब्द निष्पन्न हुआ है। फलतः पर्व शब्द का अर्थ होता है, कमी पूरा करने वाला। शरीर के अङ्गों का जबतक यथावत् सञ्चालन होता रहता है, तभी तक शरीरयष्टि की रक्षा रहती है, एवं तभी तक शरीर की कमी पूरी होती रहती है। अस्थि–मज्जा–शुक्र–शोणित आदि व्यष्टियाँ ही शरीरसमष्टि की पूरिका, एवं रक्षिका मानी गई हैं। व्यक्तिरक्षा ही समाज, किंवा राष्ट्र-रक्षा का मूलमन्त्र है। व्यक्तियों के प्रयास से ही समाज की आवश्यकताएं पूरी होतीं हैं, एवं इन्हीं आवश्यक सामग्रियों से समाज अपने स्वरूप की रक्षा करने में समर्थ होता है। अतएव 'पिपर्त्तीति-(पॄ–पालन-पूरणयोः-जु०प०से) इस कोषनिरुक्ति के अनुसार उस वस्तु को पर्व कहा जाता है, जिस के द्वारा तत्तद्वस्तुविशेषों का समष्टि–व्यष्टिरूप से पालन होता रहता है, कमी पूरी होती रहती है।

समष्टिरूप महाविश्व की रक्षा के लिए भी अवश्य ही 'पर्व' नाम की ऐसी कोई वस्तु होनी चाहिए, एवं विश्व के गर्भ में प्रतिष्ठित व्यष्टिरूप पदार्थों के लिए भी अवश्य ही किसी पूरक, तथा रक्षक की अपेक्षा होनी चाहिए। वही पूरक रक्षक तत्त्व 'पर्व' कहलाएगा।

शरीर के अङ्ग अपनी धातु–प्रस्रवण क्रिया द्वारा शरीर के रक्षक–पूरक बनते हुए शरीर के पर्व हैं। उत्सवविशेषों से सम्बन्ध रखने वाली तिथिएं देवाराधन द्वारा, मानसोल्लास द्वारा, आदि दृष्टियों से समाज में जीवनस्रोत, तथा आत्मशक्तिसञ्चार करने के कारण पर्व हैं। सम्पूर्ण खगोल की मूलप्रतिष्ठा बनता हुआ विष्वद्वृत्त खगोल का रक्षक तथा पूरक बनता हुआ पर्व है। इस प्रकार अपनी रक्षावृत्ति और पूरक वृत्ति से पर्वशब्द अनेक भावों का वाचक बना हुआ है।

११—पर्ववेदनिरुक्ति

प्रकृत 'पर्ववेद' का प्रधानरूप से 'त्रयीवेद' के साथ ही सम्बन्ध समझना चाहिए। त्रयीवेद की मूलप्रतिष्ठा अग्नितत्व है, जैसाकि पाठक आगे के प्रकरणों में देखेंगे। असंख्य व्यष्टियों को अपने गर्भ में रखने वाले महासमष्टिरूप महाविश्व का मौलिकस्वरूप सोमगर्भित अग्नितत्व ही माना गया है, जैसा कि निम्नलिखित 'बृहज्जाबाल' सिद्धान्त से स्पष्ट है—

> अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते ॥
> अतएव हवि क्लृप्त—'मग्नीषोमात्मकं जगत्" ॥१॥
> ऊर्ध्वशक्तिमयःसोम अधोशक्तिमयोऽनलः ॥
> ताभ्यां सम्पुटितस्तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत् ॥२॥
> (बृहज्जाबालोपनिषत् २ ब्रा० ४-५ कं०)।

उक्त उपनिषद्दर्शन के अनुसार समष्टिरूप महाविश्व, एवं विश्व के गर्भ में प्रतिष्ठित व्यष्टिरूप चर-अचर पदार्थ अग्नि-सोम के ही सम्पुटितरूप हैं जिनका कि—"शिवशक्तिभ्यां नान्यात्मिह किञ्चन" इत्यादि रूप से 'उमामहेश्वर' के दाम्पत्यरूप पर विश्राम माना गया है। इसी दाम्पत्यभाव का प्रश्नोपनिषत् ने रयि-प्राण, तथा योषा—वृषा रूप से स्पष्टीकरण किया है। ब्राह्मणरहस्यवेत्ता महर्षि इसे ही अपनी याज्ञिक परिभाषा में आर्द्र-शुष्क, स्नेह-तेज आज्य-पृषु, इत्यादि नामों से व्यवहृत कर रहे हैं।

तात्पर्य्य यह हुआ कि, सोमगर्भित अग्निमूर्ति विश्व एक महावेद है, एवं विश्वगर्भ में रहने वाला प्रत्येक पदार्थ एक एक महावेद है। 'अनन्ता वै वेदाः" (तै० ब्राह्मण) के अनुसार इन व्यष्टपात्मक अनन्त वेदों को अपने गर्भ में रखने वाले अग्नीषोममय महाविश्वात्मक उसी महावेद को विश्वव्यापक विश्वात्मा का शरीर माना गया है, जैसाकि उसके 'वेद-मूर्त्ति" नाम से स्पष्ट है। यद्यपि इस वेदमूर्त्ति में अग्नी-षोम दोनों तत्वों का समन्वय है, तथापि "अग्नावेवाग्न्यापते नाद्यम्" (शत० ११।६।५।१) इस याज्ञिसिद्धान्त के अनुसार आप

पर्य्यवसान है। किसी भी विषय का आरम्भ करने वाले व्यक्ति का जो उपक्रम–बीज है, वही प्रस्ताव है।

हृदयस्थानीय प्रस्तावबिन्दु, किंवा आरम्भस्थान ही तत्तद्वस्तुओं का 'उक्थ' माना जायगा। यही अग्निरूप वस्तु का, किंवा वस्तुगत अग्नितत्व का प्रथम एवं मुख्यपर्व कहा जायगा। और इसी "उक्थ" पर्व को हम "ऋक्" कहेंगे। स्तुत्यर्थक "ऋच्" (ऋचि–स्तुतौ) ही 'ऋक्' है। स्तुतिशब्द प्रस्ताव का ही सूचक है। प्रस्ताव आरम्भस्थान का ही द्योतक है। आरम्भस्थान वस्तु का हृदय ही माना गया है। एवं वस्तुगत यच्चयावत् भावों का प्रभव बनता हुआ हृदयपर्व ही उस वस्तु का "उक्थ" (उत्थानभूमि) है।

आरम्भ शब्द सर्वथा सापेक्षभाव से सम्बन्ध रखता है। वियोग की अपेक्षा रखने वाला संयोग शब्द, पतन की अपेक्षा रखने वाला समुच्छ्रय शब्द, एवमेव अवसान की अपेक्षा रखने वाला आरम्भ शब्द। प्रस्ताव वस्तु का आरम्भ है, तो निधन वस्तु का अवसान है। प्रस्तावात्मक आरम्भ शब्द से बद्ध निधनात्मक अवसानशब्द वस्तुस्वरूप के नाश का द्योतक नहीं है। वस्तु के उच्छेदरूप नाश का वाचक तो केवल 'मृत्यु' शब्द ही माना गया है। यहां अवसान से यह मृत्युभाव अपेक्षित नहीं है। अपितु वस्तुस्वरूप की विद्यमानता में वस्तु का जो अन्तिम आवरण है, वही प्रकृत में अवसान, किंवा निधनशब्द से अभिप्रेत है। जिसे याज्ञिकभाषा में 'छन्द' कहा जाता है, विज्ञानभाषा में जिसे 'वयोनाध' कहा जाता है, सामपरिभाषा जिसे 'निधन' कहती है, पृष्ठविज्ञानवेत्ता जिसे 'पारावतपृष्ठ' कहते हैं, अवसान से वही तत्व अभिप्रेत है। वस्तु का उपक्रम यदि हृदय है, तो उपसंहार अन्तिम वयोनाध है।

वस्तु की वही बाह्य-सीमा, जहां वस्तु–स्वरूप समाप्त है, 'पृष्ठ' नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्ताव-भाव के सम्बन्ध से हृदयरूप आरम्भस्थान जैसे 'उक्थ' कहलाता है, वैसे निधनभाव के सम्बन्ध से परिधिरूप अवसानस्थान 'पृष्ठ' कहलाता है। उक्थ जहां अपने प्रस्तावभाव से ऋक् कहलाता है, एवमेव पृष्ठ अपने निधनभाव से साम कहलाता है। अवसान ही अवसान है, अवसान ही साम है, साम ही आत्मविभूति का अन्तिम विश्रामस्थान है। निष्कर्षतः वस्तु

महाविश्व भी सोमगर्भित अग्निमय, विश्वगर्भ में प्रतिष्ठित व्यष्टियाँ भी एतद्रूप हीं परिणामतः दोनों के स्वरूप की "अग्नि" तत्त्व पर विश्रान्ति । विश्वस्वरूपरक्षक इस अग्नितत्व की रक्षा जिन भावों से होरही है, उन्हीं को हम अग्निपर्व कहेंगे । वे ही अग्निपर्व विज्ञानभाषा में उक्थ–पृष्ठ–ब्रह्म इन नामों से व्यवहृत हुए हैं । इन्हीं तीन पर्वों के सम्बन्ध से अग्नितत्व त्रयीवेदस्वरूप में परिणत हो रहा है । इसी दृष्टि को प्रधान रखता हुआ यह त्रयीवेद "पर्व-वेद" कहलाया है ।

जैसाकि विषयारम्भ में स्पष्ट किया जाचुका है, सभी पदार्थ अग्निप्रधान हैं । यह अग्नि-तत्त्व उक्थ–पृष्ठ–ब्रह्म, इन तीन पर्वों से सदा युक्त रहता है, यह भी कहा जासकता है, एवं ये तीनों उस एक ही अग्नितत्व की तीन विशेष अवस्था है, यह भी माना जासकता है । उभयथा तात्पर्य्य समान है । किसी भी वस्तु को लेलीजिए । अवश्य हो उस वस्तु का आप एक उपक्रम (आरम्भ) स्थान स्वीकार करेंगे । जहां से वस्तु का आरम्भ होता है, वस्तुस्वरूप का उपक्रम हुआ है, वही उपक्रमस्थान "उक्थ" कहलाता है । इस सामान्य परिभाषा के अनुसार दीपार्चि (लौ) प्रकाश का, वागिन्द्रिय शब्दों का, मेघ वृष्टि का, पृथिवी ओषधी–वनस्पतियों का, लेखिनी लिपि का, न्यायकर्त्ता (जज) न्याय (जजमेन्ट) का गुरू उपदेश का, पुण्य सुलोकों का, पाप अधोलोकों का, निष्कामभाव विदेहमुक्ति का, अध्वर्यु आध्वर्य्य कर्म्म का, होता हौत्र कर्म्म का, उद्गाता औद्गात्र कर्म्म का उक्थ माना जायगा । विश्व के समष्टि–व्यष्टयात्मक यच्-यावत् जड़चेतनपदार्थ अपने अपने आरम्भस्थान की दृष्टि से "उक्थ" रूप से उपलब्ध होंगे ।

अग्निप्रधान प्रत्येक पदार्थ का आरम्भस्थान उस पदार्थ का हृदय (केन्द्र–गर्भ) ही माना गया है । हृदय ही उस वस्तु का आरम्भस्थान है । चूंकि हृदय से ही वस्तु प्रस्तुत होती है, अत एव इसे "प्रस्ताव" भी कहा जाता है । उत्तालतरङ्गायित आज की अमर्यादित सभाओं में प्रस्ताव नाम की जो लम्बी चौड़ी वस्तु सुनी जाती है,(जो कि वस्तु अपने आगे के पृष्ठ ब्रह्म, इन दो पर्वों से शून्य रहती हुई सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो रही है) उस का भी इसी उक्थ पर

पर्य्यवसान है। किसी भी विषय का आरम्भ करने वाले व्यक्ति का जो उपक्रम–बीज है, वही प्रस्ताव है।

हृदयस्थानीय प्रस्तावविन्दु, किंवा आरम्भस्थान ही तत्तद्वस्तुओं का 'उक्थ' माना जायगा। यही अग्निरूप वस्तु का, किंवा वस्तुगत अग्नितत्व का प्रथम एवं मुख्यपर्व कहा जायगा। और इसी "उक्थ" पर्व को हम "ऋक्" कहेंगे। स्तुत्यर्थक "ऋच्" (ऋचि–स्तुतौ) ही 'ऋक्' है। स्तुतिशब्द प्रस्ताव का ही सूचक है। प्रस्ताव आरम्भस्थान का ही द्योतक है। आरम्भस्थान वस्तु का हृदय ही माना गया है। एवं वस्तुगत यच्चयावत् भावों का प्रभव बनता हुआ हृदयपर्व ही उस वस्तु का "उक्थ" (उत्थानभूमि) है।

आरम्भ शब्द सर्वथा सापेक्षभाव से सम्बन्ध रखता है। वियोग की अपेक्षा रखने वाला संयोग शब्द, पतन की अपेक्षा रखने वाला समुच्छ्रय शब्द, एवमेव अवसान की अपेक्षा रखने वाला आरम्भ शब्द। प्रस्ताव वस्तु का आरम्भ है, तो निधन वस्तु का अवसान है। प्रस्तावात्मक आरम्भ शब्द से बद्ध निधनात्मक अवसानशब्द वस्तुस्वरूप के नाश का द्योतक नहीं है। वस्तु के उच्छेदरूप नाश का वाचक तो केवल 'मृत्यु' शब्द ही माना गया है। यहां अवसान से यह मृत्युभाव अपेक्षित नहीं है। अपितु वस्तुस्वरूप की विद्यमानता में वस्तु का जो अन्तिम आवरण है, वही प्रकृत में अवसान, किंवा निधनशब्द से अभिप्रेत है। जिसे याज्ञिकभाषा में 'छन्द' कहा जाता है, विज्ञानभाषा में जिसे 'वयोनाध' कहा जाता है, सामपरिभाषा जिसे 'निधन' कहती है, पृष्ठविज्ञानवेत्ता जिसे 'पारावतपृष्ठ' कहते हैं, अवसान से वही तत्व अभिप्रेत है। वस्तु का उपक्रम यदि हृदय है, तो उपसंहार अन्तिम वयोनाध है।

वस्तु की वही बाह्य-सीमा, जहां वस्तु–स्वरूप समाप्त है, 'पृष्ठ' नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्ताव-भाव के सम्बन्ध से हृदयरूप आरम्भस्थान जैसे 'उक्थ' कहलाता है, वैसे निधनभाव के सम्बन्ध से परिधिरूप अवसानस्थान 'पृष्ठ' कहलाता है। उक्थ जहां अपने प्रस्तावभाव से ऋक् कहलाता है, एवमेव पृष्ठ अपने निधनभाव से साम कहलाता है। अवसान ही अवसाम है, अवसाम ही साम है साम ही आत्मविभूति का अन्तिम विश्रामस्थान है। निष्कर्षतः वस्तु

का हृदय उक्थ है, वस्तु की परिधि पृष्ठ है । आरम्भबिन्दु उक्थ है अवसानस्थान पृष्ठ है । उक्थ प्रस्तावात्मिका ऋक् है, पृष्ठ निधनात्मक साम है । इस ओर ऋक् है, उस ओर साम है । आरम्भ ही वस्तु का अवसान है । जो हृदय है, वही परिधि है । मूल में हृदय कहलाने वाला भाव ही तूलरूप में आकर परिधि कहलाने लगता है । अनिरुक्तभाव उक्थ है, निरुक्तभाव परिधि है । संकोच उक्थ है, विकास परिधि है । अवस्था दो हैं, मूलतः एक ही तत्व है । ऋक् ही तो त्रिच बनकर साम कहलाने लगता है । 'ऋच्यध्यूढं साम गीयते' सिद्धान्त के अनुसार ऋक् पर आरूढ होकर ही तो सामगान होता है । हृदयावच्छिन्न विष्कम्भ (व्यास) रूप ऋक् का त्रिगुणित भाव ही तो परिधिरूप साम है । 'त्रिचं साम'–'ऋचा सम मेने तस्मात् साम' सिद्धान्त इसी रहस्य का स्पष्टीकरण कर रहे हैं ।

हृदयरूप उक्थपर्व, एवं परिधिरूप पृष्ठपर्व, दोनों ही एक प्रकार से वयोनाध (छन्द) मात्र हैं । 'अयं घटः, तमहं जानामि' इस रूप से घट-पटादि पदार्थों की जो प्रतीति हुआ करती है, उसे ही 'भाति' कहा जाता है । हृदय शब्द जैसे परिधिभाव की नित्य अपेक्षा रखता है, एवमेव हृदय और परिधि दोनों शब्द किसी अन्य सत्तासिद्ध पदार्थ की नित्य अपेक्षा रखते हैं । किसी सत्तासिद्ध पदार्थ में ही हृदय और परिधि प्रतिष्ठित रहेंगे । वस्तु का हृदय होता है वस्तु की परिधि होती है । किंवा वस्तु में हृदय होता है, वस्तु में परिधि होती है । स्वयं हृदय और परिधि वस्तु नहीं है । ये दोनों भाव तो वस्तुस्वरूप के सम्पादक, पूरक तथा रक्षक हैं । हमारी भाति [प्रतीति–प्रत्यय–ज्ञान–उपलब्धि] का विषय न तो हृदय बनता, न परिधि । अपितु हृदय-परिधि से युक्त एक सत्तासिद्ध रसात्मक तीसरे ही पदार्थ की भाति होती है । जिस की हमें भाति होती है, वह सत्तासिद्ध पदार्थ है, वही वास्तव में वस्तुशब्दवाच्य है ।

जिसका हृदयरूप उक्थ है, जिसका परिधिरूप पृष्ठ है, उक्थ–पृष्ठ के मध्य में प्रतिष्ठित वही सत्तासिद्ध, भातिविषयक पदार्थतत्त्व "ब्रह्म" कहलाता है। हृदय-परिधिभावों से सीमित बनता हुआ रसभाव ही अपने उपबृंहण धर्म से, तथा भरणवृत्ति से 'ब्रह्म' कहलाया है । मध्यस्थित सत्तारसात्मक यह तीसरा अग्निपर्व चूंकि उपक्रम उपसंहार-स्थानीय उक्थ–पृष्ठों से

नित्य युक्त रहता है, अतएव इसे हम अवश्य ही 'यजु' कह सकते हैं । ऋक्-साम-यजु ही क्रमशः अग्नितत्व के उक्थ-पृष्ठ-ब्रह्म नामक तीन पर्व हैं ।

उक्त तीनों पर्व ही अग्निमूर्त्ति वस्तु के पूरक, तथा रक्षक बनते हुए पर्व नाम से प्रसिद्ध होरहे हैं । विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिस में सोमगर्भित अग्नि की प्रधानता न हो । ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिस में अग्निस्वरूपरक्षक उक्त तीनों पर्व न हों । प्रत्येक में तीनों पर्व अविनाभावसम्बन्ध से विना किसी व्यभिचार के परस्पर में उपकार्य-उपकारक बनते हुए, अन्योन्याश्रित रहते हुए नित्य प्रतिष्ठित रहते हैं । हृदय-परिधि-हृदयपरिधि से युक्त वस्तुतत्व, तीनों भाव आपको पदार्थमात्र में उपलब्ध होंगे । इन्हीं तीनों पर्वों की समष्टि को 'पर्ववेद' कहा जायगा । जिस तत्व के ये तीन पर्व होंगे, वही 'त्रयीवेद' माना जायगा और इस पर्वदृष्टि से आप सम्पूर्ण विश्व में वेदत्रयी का साम्राज्य देखेंगे ।

पर्ववेदसंस्था परिलेखः—

प्रथमं पर्व	द्वितीयं पर्व	तृतीयं पर्व
हृदय	सत्तारस	परिधि
उपक्रम	प्रक्रान्त	उपसंहार
प्रस्ताव	उद्गीथ	निधन
आरम्भ	मध्यस्थ	अवसान
वयोनाध	वय	वयोनाध
छन्द	छन्दित	छन्द
विष्कम्भ	मूर्त्ति	परिणाह

उक्थ	ब्रह्म	पृष्ठ
ऋग्वेद	यजुर्वेदः	सामवेदः

इति-पर्ववेदनिरुक्तिः

—o:#:o—

१२—भावनावेदनिरुक्ति

सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान–कर्म नाम के दो तत्वों का ही साम्राज्य है, जैसा कि पूर्व प्रकरणों में यत्र तत्र स्पष्ट किया जाचुका है। कर्मगर्भित ज्ञानतत्व 'विश्वात्मा' है, एवं ज्ञानगर्भित कर्मतत्व 'विश्व' है। दूसरे शब्दों में विश्वात्मा ज्ञानप्रधान है, विश्व कर्मप्रधान है। कर्मप्रधानविश्व ज्ञानप्रधान विश्वात्मा की नियति से नित्य सञ्चालित है। उसी की अप्रतिहत प्रेरणा से विश्व के समष्टि–व्यष्टिकर्मों का सञ्चालन होरहा है। उसी प्रेरणा के भय से सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि मृत्यु, वरुण आदि विश्व-पर्वों को कर्मों के उपक्रम–उपसंहार का अनुगामी बनना पड़ रहा है। उसी की प्रेरणा के भय से तत्तल्लोकों में रहने वाले अस्मदादि प्राणी तत्तत् कर्मविशेषों में आरूढ़ रहते हैं। विश्व, एवं विश्वगर्भ में प्रतिष्ठित कोई ऐसा पदार्थ बाकी नहीं बचा जिसने उस महाकालपुरुष के अन्वर्थ कालदण्ड के शासन का उल्लंघन किया हो। जिधर देखिए, उधर वही कर्मधारा–प्रवाह। जहां जाइए, वहीं कर्मभावना के प्रत्यक्षदर्शन। और जिस वस्तु का अन्वेषण कीजिए, उसी में कर्मभावनामूलक वेदतत्व की उपलब्धि।

हम पद पद पर 'भावना' शब्द का अभिनय किया करते हैं। कभी हमारे ज्ञानीय जगत् में सूर्य्य की भावना होती है, कभी चन्द्रमा की कभी पृथिवी की, कभी अन्न की, कभी पशु–पक्षियों की, कभी सेवाभाव (नौकरी) की, कभी अध्ययनाध्यापन की, कभी शयन की, कभी जागृति की, कभी सुख की, कभी दुःख की, कभी मूर्खता की, कभी विद्वत्ता की, कभी चलने की तो कभी बैठने की। इस प्रकार हमारा सारा कर्मकलाप, सम्पूर्ण ज्ञान किसी न किसी भावना से नित्य आक्रान्त रहता है। प्रश्न होता है कि यावज्जीवन एक महा भय, महा यक्ष की भांति पीछे पड़ी रहने वाली इस कर्मभावना, एवं ज्ञानभावना का तात्विक स्वरूप क्या है?

यदि कोशकारों से उक्त प्रश्न का उत्तर पूंछा जाता है, तो वे उत्तर में सत्ता, स्वभाव, अभिप्राय, चेष्टा, आत्मजन्म, क्रिया, विभूति, वस्तु इत्यादि विविध भावों को हमारे सामने रखदेते हैं। व्याकरणशास्त्र से यदि पूंछा जाता है, तो वह भी 'भावो भावना क्रिया०' पद कहता हुआ

कोश के साथ ही एकवाक्यता कर लेता है। उत्तर ठीक नहीं है, यह बात नहीं है। अवश्य ही सत्ता-स्वभावादि भाव, किंवा भावनारूप हैं एवं अवश्य ही क्रियाविशेष को भावना कहा जा-सकता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि, भावना से वह कौनसा अर्थ गृहीत है, जो कि वेदत्रयी का साधक बनता हुआ 'भावनावेद' की प्रतिष्ठा बना हुआ है। इस वेददृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले भावनापदार्थ के स्पष्टीकरण के लिए अवश्य ही किसी वैदिकसिद्धान्त का ही अनुगमन करना पड़ेगा, एवं वही अनुगमनभाव कहलाएगा 'क्रतु-दक्ष'।

सत्ता हो, स्वभाव हो, अभिप्राय हो, चेष्टा हो, आत्मजन्म हो, क्रिया हो, किंवा विभूति हो, अथवा कर्म्मप्रधान विश्व का कोई भी किसी भी जाति का पर्व हो, सर्वत्र सबकी भावना में हमें क्रतु-दक्ष, ये दो ही पर्व मिलेंगे। 'हम अमुक पदार्थ की सत्ता की, अमुक व्यक्ति के स्वभाव की, अभिप्राय की चेष्टा की, आत्मजन्म को, क्रिया की, विभूति की भावना कर रहे हैं" इन सब वाक्यों में "भावना कर रहे हैं" यह वाक्य क्रतु-दक्षभावों का ही सम्मिश्रण है। प्रत्येक भावना, चाहे वह किसी पदार्थ की हो, किसी विचार की हो, किसी कर्म्म की हो, क्रतु-दक्ष को गर्भ में रख कर ही प्रतिष्ठित है। दूसरे शब्दों में क्रतु-दक्षभावों के समन्वित-रूप का ही नाम 'भावना" है। यदि किसी में केवल क्रतु है, तो वह भी भावना नहीं। केवल दक्ष है, तब भी भावना नहीं। दोनों एकत्र समन्वित होकर ही भावना के स्वरूपसम्पादक बनते हैं। एवं साथ ही में यह भी निश्चित है कि, दोनों के समन्वय से जिस 'भावना' की स्वरूपनिष्पत्ति होती है, अवश्य ही उसमें ऋक्-साम-यजुर्म्मयी वेदत्रयी का विकास होजाता है। और इसी लिए क्रतु-दक्षमयीभावना को हम "भाववेद"-किंवा भावनावेद" कहने लगते हैं। हम जिन भावों की भावना करते हैं, सब में क्रतु-दक्षद्वन्द्व प्रतिष्ठित है। फलतः भावनादृष्टि से भी भावनाभावित यच्च-यावत् वस्तुभावों का वेदत्व सिद्ध होजाता है। भावना से सम्बन्ध रखने वाले क्रतु-दक्षभावों का क्या स्वरूप ? इसी प्रश्न का रहस्यात्मक समाधान करती हुई निम्नलिखित वाजिश्रुति हमारे सामने आती है—

कोश के साथ ही एकवाक्यता कर लेता है। उत्तर ठीक नहीं है, यह बात नहीं है। अवश्य ही सत्ता–स्वभावादि भाव, किंवा भावनारूप हैं एवं अवश्य ही क्रियाविशेष को भावना कहा जा-सकता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि, भावना से वह कौनसा अर्थ गृहीत है, जो कि वेदत्रयी का साधक बनता हुआ 'भावनावेद' की प्रतिष्ठा बना हुआ है। इस वेददृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले भावनापदार्थ के स्पष्टीकरण के लिए अवश्य ही किसी वैदिकसिद्धान्त का ही अनुगमन करना पड़ेगा, एवं वही अनुगमनभाव कहलाएगा 'क्रतु-दक्ष'।

सत्ता हो, स्वभाव हो, अभिप्राय हो, चेष्टा हो, आत्मजन्म हो, क्रिया हो, किंवा विभूति हो, अथवा कर्म्मप्रधान विश्व का कोई भी किसी भी जाति का पर्व हो, सर्वत्र सबकी भावना में हमें क्रतु–दक्ष, ये दो ही पर्व मिलेंगे। 'हम अमुक पदार्थ की सत्ता की, अमुक व्यक्ति के स्वभाव की, अभिप्राय की चेष्टा की, आत्मजन्म की, क्रिया की, विभूति की भावना कर रहे हैं" इन सब वाक्यों में 'भावना कर रहे हैं" यह वाक्य क्रतु–दक्षभावों का ही सम्मिश्रण है। प्रत्येक भावना, चाहे वह किसी पदार्थ की हो, किसी विचार की हो, किसी कर्म्म की हो, क्रतु–दक्ष को गर्भ में रख कर ही प्रतिष्ठित है। दूसरे शब्दों में क्रतु–दक्षभावों के समन्वित-रूप का ही नाम 'भावना' है। यदि किसी में केवल क्रतु है तो वह भी भावना नहीं। केवल दक्ष है तब भी भावना नहीं। दोनों एकत्र समन्वित होकर ही भावना के स्वरूपसम्पादक बनते हैं। एवं साथ ही में यह भी निश्चित है कि, दोनों के समन्वय से जिस 'भावना' की स्वरूपनिष्पत्ति होती है, अवश्य ही उसमें ऋक्–साम–यजुर्म्मयी वेदत्रयी का विकास होजाता है। और इसी लिए क्रतु–दक्षमयीभावना को हम "भाववेद"–किंवा भावनावेद" कहने लगते हैं। हम जिन भावों की भावना करते हैं, सब में क्रतु–दक्षद्वन्द्व प्रतिष्ठित है। फलतः भावनादृष्टि से भी भावनाभावित यच्च–यावत् वस्तुभावों का वेदत्व सिद्ध होजाता है। भावना से सम्बन्ध रखने वाले क्रतु–दक्षभावों का क्या स्वरूप ? इसी प्रश्न का रहस्यात्मक समाधान करती हुई निम्नलिखित वाजिश्रुति हमारे सामने आती है—

"क्रतु-दक्षौ ह वाऽस्य मित्रावरुणौ । एतन्नु-अध्यात्मम् । स यदेव मनसा कामयते-इदं मे स्याद्, इदं कुर्वीय, इति-स एव क्रतुः । अथ यदस्मै तद् समृध्यते, स-दक्षः । मित्र एव क्रतुः, वरुणो दक्षः। ब्रह्मैव मित्रः, क्षत्रं वरुणः । अभिगन्तैवब्रह्म, कर्त्ता क्षत्रियः ।ते हैतेऽग्रे नानेवासतुः-ब्रह्म च क्षत्रं च। ततः शशाकैव ब्रह्म मित्र ऋते क्षत्राद्वरुणात् स्थातुम् । न क्षत्रं वरुण ऋते ब्रह्मणो मित्रात् । यद्धि किञ्च वरुणः कर्म्म चक्रे-अप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न हैवास्मै तद् समानृधे । स क्षत्रं वरुणो ब्रह्म मित्रमुपमन्त्रयाञ्चक्रे-उप मा वर्त्तस्व, संसृजावहै, पुरस्त्वा करवै, त्वत्प्रसूतः कर्म्म करवै ! इति । तथेति । तौ समसृजेताम् । तत एष मैत्रावरुणो ग्रहोऽभवत् ।

सोऽएव पुरोधा । तस्मान्न ब्राह्मणः सर्वस्येव क्षत्रियस्य पुरोधां कामयेत । सं ह्येतौ सृजेते, सुकृतं च दुष्कृतं च । नोऽएव क्षत्रियः सर्वमिव ब्राह्मणं पुरोदधीत । सं ह्येवैतौ सृजेते, सुकृतं च दुष्कृतं च । स यततो वरुणः कर्म्म चक्रे प्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण, सं हैवास्मै तदानृधे ।

तत्तदवक्लृप्तमेव, यद् ब्राह्मणोऽराजन्यः स्यात् । यद्यु राजानं लभेत, स-मृद्धं तद् । एतद्ध त्वेवानवक्लृप्तं, यत् क्षत्रियोऽब्राह्मणो भवति । यद्ध किञ्च कर्म्म कुरुतेऽप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण, न हैवास्मै तद् समृध्यते । तस्माद् क्षत्रियेण कर्म्म करिष्यमाणेन उपसर्त्तव्य एव ब्राह्मणः। सं हैवास्मै तद् ब्रह्म प्रसूतं कर्म्मर्ध्यते" । (शत० ब्रा० ४ कां ० । १ अ० । ४ ब्रा० १-२-३-४-५-६ कण्डिका) ।

"क्रतु-दक्ष इस (यज्ञपुरुषलक्षण देवात्मा) के मित्र और वरुण हैं । (वक्ष्यमाण) अध्यात्म से सम्बन्ध रखता) है । सो जो कि(मनुष्य) मन से कामना करता है-"(मैं) यह करूं" यह (कामना ही) क्रतु है । इस (काममय) पुरुष के लिए जो कार्य्य (कामनानुसार) सम्पन्न हो जाता है, वह दक्ष है । मित्र ही क्रतु (मानस संकल्प) है, वरुण (संकल्पसिद्धि) दक्ष है । ब्रह्म

ामनामयी ज्ञानशक्ति) ही मित्र है, क्षत्र (सिद्धिमयी, किंवा कर्म्ममयी क्रियाशक्ति) ही वरुण है। भिगन्ता (पथप्रदर्शक पहिले आगे आगे चलने वाला) ही ब्राह्मण है, कर्त्ता (निर्दिष्ट पथ पर उनें वाला) क्षत्रिय है ये दोनों ब्रह्म और क्षत्र पहिले पृथक् पृथक् से ही थे। उस (पार्थस्य) शा में मित्र ब्राह्मण (तो बिना क्षत्रिय वरुण के (स्वस्वरूप से) रहने में समर्थ होगया। परन्तु त्र वरुण विना मित्र ब्रह्म के स्वस्वरूपरक्षा में समर्थ न हो सका। मित्र ब्रह्म की आज्ञा के बिना त्र वरुण ने जो भी कर्म्म किया, वह कोई भी कर्म्म इस वरुण के लिए समृद्धि का कारण न ा सका। (यह देखकर) वरुण ने मित्र ब्राह्मण से निवेदन किया कि आप मेरी ओर लौट ।इए, अपन दोनों मिल जायं, आप को मैं आगे रक्खूं, आप जैसा आदेश दें, उसी के अनु- ार मैं कर्म्म करूं। ब्रह्म मित्र ने 'ऐसा ही हो' आश्वासन दिया। दोनों मिल गए। इन दोनों मिलने से (आध्यात्मिक संस्था में ब्रह्म–क्षत्ररूप) 'मैत्रावरुण' नामक ग्रह उत्पन्न हुआ।

मित्र ब्राह्मण (क्षत्रिय के स्वरूप में घुल मिल जाने वाला) ही पुरोहित है, अर्थात् जो ाह्मण जिस यजमान का पुरोहित होता है, उसके गुण–दोष ब्राह्मण में संश्लिष्ट होजाते हैं, सलिए ब्राह्मण को चाहिए कि वह बिना गुण दोष की परीक्षा किए हर एक क्षत्रिय का ही रोहित बनने की इच्छा न करे। कारण, दोनों के सुकृत–दुष्कृत (पाप–पुण्य) परस्पर में मिल ाते हैं। इसी प्रकार क्षत्रिय को भी चाहिए कि, वह भी चाहे जिस ही ब्राह्मण को अपना ुरोहित न बना बैठे। कारण दोनों के सुकृत दुष्कृत मिल जाते हैं। जब वरुण क्षत्रिय ने ाह्मण मित्र के आदेशानुसार कर्म्म किया तो, क्षत्रिय के लिए वह कर्म्म समृद्धि का कारण न गया।

यह बात तो बनी बनाई है कि ब्राह्मण बिना क्षत्रिय राजा के सहयोग के भी अपने वरूप की रक्षा करने में समर्थ होजाता है। यदि ब्राह्मण को राजा का सहयोग मिल जाता है तो उसका विकास हो जाता है। परन्तु यह बात सर्वथा अप्राकृतिक है, यदि क्षत्रिय ब्राह्मण का सहयोग न करे, और फिर उस की स्वरूप रक्षा होजाय। क्षत्रिय बिना ब्राह्मण के सहयोग के जो भी कर्म्म करेगा, अवश्य ही उसके लिए कर्म्म कभी समृद्धि का कारण न बनेगा। इसलिए यह

बहुत आवश्यक है कि, कर्म करने वाला क्षत्रिय अवश्य ही किसी ब्राह्मण को अपना आश्रय (पथप्रदर्शक) बनावे। ऐसा करने से दोनों (शक्तिएं) मिल जाती हैं, ब्राह्मण से निर्दिष्ट कर्म अवश्य सफल एवं सुसमृद्ध हो जाता है"।

सुप्रसिद्ध "ग्रहयाग" में 'उपांशु-अन्तर्याम-उपांशुसवन-ऐन्द्रवायव-- मित्रावरुण" आदि ४० ग्रह होते हैं, जिन का कि विशद वैज्ञानिक विवेचन शतपथ ब्राह्मण के ग्रहकाण्ड में (चतुर्थकाण्ड) में हुआ है। उन्हीं ग्रहों में आध्यात्मिक क्रतु-दक्षभावों से सम्बन्ध रखने वाला एक मित्रावरुणग्रह है। उक्त श्रुतिने इसी के आध्यात्मिक रहस्य का विश्लेषण किया है, जो कि शतपथविज्ञानभाष्य के उक्त काण्ड में हीं द्रष्टव्य है।

प्रकृत में श्रुति के उद्धरण से हमें केवल यही कहना है कि, प्रत्येक कर्म की सिद्धि में प्रेरणा-कर्म-कर्मसिद्धि ये तीन पर्व होते हैं। उदाहरण के लिए उस यज्ञकर्म को ही लीजिए जिस के सम्बन्ध में उक्त श्रुति उद्धृत हुई है। यज्ञ करने वाला यजमान ही प्रधानरूप से यज्ञकर्म का आश्रय है। यज्ञकर्म से दैवात्मारूप जो अतिशय उत्पन्न होता है, उस का अन्यतम फलभोक्ता एकमात्र यजमान ही है। परन्तु जबतक कर्मकर्त्ता यजमान अपने इस यज्ञ कर्म में होता, उद्गाता, अध्वर्यु, ब्रह्मा आदि ब्राह्मण ऋत्विजों का वरण नहीं कर लेता, दूसरे शब्दों में जबतक वह अपने कर्म में इन ब्राह्मणों का सहयोग प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक कभी यह कर्मसिद्धि, एवं तज्जनित कर्मातिशय का अधिकारी नहीं बन सकता। इसी विप्रतिपत्ति को हटाने के लिए इसे विवश होकर ब्राह्मणों को पुरोहित बनाना पड़ता है। वे जो जो आदेश देते हैं, यजमान को ठीक उसी के अनुसार यज्ञेतिकर्त्तव्यता का अनुगमन करना पड़ता है।

ऋत्विक् ब्राह्मण अपनी शास्त्रीय दृष्टि के बल पर कर्मों का परिणाम समझे रहते हैं। वे जानते हैं कि, कौन कर्म, कब, कैसे करने से क्या अतिशय उत्पन्न करता है। कर्म परिणामदर्शी यह ब्राह्मण उसी परिणाम को अपने लक्ष्य में रखता हुआ यथावसर कर्मकर्त्ता यजमान को-'इदं कुरु, एवं कु[illegible] करो, ऐसे करो) इस प्रकार आदेश देता रहता है।

आदिष्ट यजमान कर्म्म करता रहता है। कालान्तर में प्रयोक्ता एवं आदिष्ट ब्राह्मण एवं यजमान के सहयोग से कर्म्म का स्वरूप सिद्ध होजाता है। इस प्रकार यज्ञकर्म्म में ब्राह्मण, यजमान का कर्म्म, कर्मसिद्धि तीन पर्व होजाते हैं। ब्राह्मण चूंकि कर्मोत्थान का आरम्भस्थान है, अतएव इसे 'कर्म्मोपक्रम' कहा जा सकता है। कर्मसिद्धि कर्म्म का अवसानस्थान है, अतः इसे 'कर्म्मोपसंहार' माना जासकता है। एवं दोनों के मध्य में सञ्चालित स्वयं यज्ञकर्म्म 'कर्म्ममध्य' कहा जासकता है।

यज्ञकर्म्म उदाहरणमात्र है। संसार के और और जितने भी कर्म्म हैं, सब में यही अवस्था समझनी चाहिए। यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि, प्रत्येक कर्म्मसंस्था में, चाहे वह ऐहलौकिक हो, अथवा पारलौकिक आवश्यकरूप से ब्रह्म-क्षत्र दोनों का सम न्वयलक्षण, पारस्परिक सहयोगलक्षण योग अपेक्षित है। गृहस्थकर्म्म को ही लीजिए। गृहस्थ का सर्ववृद्ध अनुभवी पुरुष ब्रह्म माना जायगा, गृहस्थ के अन्य सब व्यक्ति उस अनुभवी पुरुष के आदेशानुसार स्व स्व कर्म्मों का अनुष्ठान करते हुए क्षत्र कहलाए हैं। अध्ययनसंस्था में गुरु ब्रह्म माना जायगा, विद्यार्थीगण क्षत्र माना जायगा। राष्ट्रसंस्था में विशिष्ट नेता ब्रह्म माना जायगा, नेतृत्वानुगामी राष्ट्रीयदल क्षत्र कहा जायगा। इस प्रकार सभी कर्मसंस्थाओं में आप उक्त श्रौतसिद्धान्त का समन्वय देखेंगे।

एक नियम और। जो ब्रह्म होगा, वह कर्म्म में शिथिल रहेगा जो क्षत्र होगा वह आदेश में शिथिल रहेगा। ब्रह्म भी करेगा अवश्य, परन्तु प्रधानता ज्ञानलक्षण आदेश की ही रहेगी। क्षत्र भी ज्ञान से काम अवश्य लेगा, परन्तु प्रधानता कर्म्माचरण की ही रहेगी। कारण इस का यही है कि, ब्रह्म में ज्ञानशक्ति का प्राधान्य है और क्षत्रिय में क्रियाशक्ति की प्रधानता है। यदि दोनों में दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास सम्भव होता तो, कभी श्रुति के उक्त सिद्धान्त का आविर्भाव न होता। हुकूमत और हुकुम से काम करना दोनों के विभिन्न दो क्षेत्र हैं। दोनों के लिए वर्गीकरण प्रत्येक दशा में वाञ्छनीय है। जब दोनों धर्म्म एक ही व्यक्ति में आजाते हैं तो वह अपनी स्वाभाविक अल्पशक्ति से दोनों का बोझा सम्भालने में असमर्थ होता हुआ

बहुत आवश्यक है कि, कर्म्म करने वाला क्षत्रिय अवश्य ही किसी ब्राह्मण को अपना आश्रय (पथप्रदर्शक) बनावे। ऐसा करने से दोनों (शक्तिएं) मिल जाती हैं, ब्राह्मण से निर्दिष्ट कर्म्म अवश्य सफल एवं सुसमृद्ध हो जाता है")।

सुप्रसिद्ध "ग्रहयाग" में 'उपांशु-अन्तर्य्याम-उपांशुसवन-ऐन्द्रवायव-मित्रावरुण' आदि ४० ग्रह होते हैं, जिन का कि विशद वैज्ञानिक विवेचन शतपथ ब्राह्मण के ग्रहकाण्ड में (चतुर्थकाण्ड) में हुआ है। उन्हीं ग्रहों में आध्यात्मिक क्रतु-दक्षभावों से सम्बन्ध रखने वाला एक मित्रावरुणग्रह है। उक्त श्रुतिने इसी के आध्यात्मिक रहस्य का विश्लेषण किया है, जो कि शतपथविज्ञानभाष्य के उक्त काण्ड में हीं द्रष्टव्य है।

प्रकृत में श्रुति के उद्धरण से हमें केवल यही कहना है कि, प्रत्येक कर्म्म की सिद्धि में प्रेरणा-कर्म्म-कर्म्मसिद्धि ये तीन पर्व होते हैं। उदाहरण के लिए उस यज्ञकर्म्म को ही लीजिए जिस के सम्बन्ध में उक्त श्रुति उद्धृत हुई है। यज्ञ करने वाला यजमान ही प्रधानरूप से यज्ञकर्म्म का आश्रय है। यज्ञकर्म्म से दैवात्मारूप जो अतिशय उत्पन्न होता है, उस का अन्यतम फलभोक्ता एकमात्र यजमान ही है। परन्तु जबतक कर्म्मकर्त्ता यजमान अपने इस यज्ञ कर्म्म में होता, उद्गाता, अध्वर्यु ब्रह्मा आदि ब्राह्मण ऋत्विजों का वरण नहीं कर लेता, दूसरे शब्दों में जबतक वह अपने कर्म्म में इन ब्राह्मणों का सहयोग प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक कभी यह कर्म्मसिद्धि, एवं तज्जनित कर्म्मातिशय का अधिकारी नहीं बन सकता। इसी विप्रतिपत्ति को हटाने के लिए इसे विवश होकर ब्राह्मणों को पुरोहित बनाना पड़ता है। वे जो जो आदेश देते हैं, यजमान को ठीक उसी के अनुसार यज्ञेतिकर्त्तव्यता का अनुगमन करना पड़ता है।

ऋत्विक् ब्राह्मण अपनी शास्त्रीय दृष्टि के बल पर कर्म्मों का परिणाम समझे रहते हैं। वे जानते हैं कि, कौन कर्म्म, कब, कैसे करने से क्या अतिशय उत्पन्न करता है। कर्म्म परिणाम-दर्शी यह ब्राह्मण उसी परिणाम को अपने लक्ष्य में रखता हुआ यथावसर कर्म्मकर्त्ता यजमान को-'इदं कुरु, एवं कुरु' (यह करो, ऐसे करो) इस प्रकार आदेश देता रहता है।

आदिष्ट यजमान कर्म्म करता रहता है। कालान्तर में प्रदर्शक एवं आदिष्ट ब्राह्मण एवं यजमान के सहयोग से कर्म्म का स्वरूप सिद्ध होजाता है। इस प्रकार यज्ञकर्म्म में ब्राह्मण, यजमान का कर्म्म, कर्म्मसिद्धि तीन पर्व होजाते हैं। ब्राह्मण चूंकि कर्म्मोत्थान का आरम्भस्थान है, अतएव इसे 'कर्म्मोपक्रम' कहा जा सकता है। कर्म्मसिद्धि कर्म्म का अवसानस्थान है, अतः इसे 'कर्म्मोपसंहार' माना जासकता है। एवं दोनों के मध्य में सञ्चालित स्वयं यज्ञकर्म्म 'कर्म्ममध्य' कहा जासकता है।

यज्ञकर्म्म उदाहरणमात्र है। संसार के ओर छोर जितनें भी कर्म्म हैं, सब में यही अवस्था समझनी चाहिए। यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि, प्रत्येक कर्म्मसंस्था में, चाहे वह ऐहलौकिक हो, अथवा पारलौकिक आवश्यकरूप से ब्रह्म क्षत्र दोनों का सम न्वयलक्षण, पारस्परिक सहयोगलक्षण योग अपेक्षित है। गृहस्थकर्म्म को ही लीजिए। गृहस्थ का सर्ववृद्ध अनुभवी पुरुष ब्रह्म माना जायगा, गृहस्थ के अन्य सब व्यक्ति उस अनुभवी पुरुष के आदेशानुसार स्वस्व कर्म्मों का अनुष्ठान करते हुए क्षत्र कहलाए हैं। अध्ययनसंस्था में गुरू ब्रह्म माना जायगा, विद्यार्थीगण क्षत्र माना जायगा। राष्ट्रसंस्था में विशिष्ट नेता ब्रह्म माना जायगा, नेतृत्वानुगामी राष्ट्रीयदल क्षत्र कहा जायगा। इस प्रकार सभी कर्म्मसंस्थाओं में आप उक्त श्रौतसिद्धान्त का समन्वय देखेंगे।

एक नियम और। जो ब्रह्म होगा, वह कर्म्म में शिथिल रहेगा जो क्षत्र होगा वह आदेश में शिथिल रहेगा। ब्रह्म भी करेगा अवश्य, परन्तु प्रधानता ज्ञानलक्षण आदेश की ही रहेगी। क्षत्र भी ज्ञान से काम अवश्य लेगा, परन्तु प्रधानता कर्म्माचरण की ही रहेगी। कारण इस का यही है कि, ब्रह्म में ज्ञानशक्ति का प्राधान्य है और क्षत्रिय में क्रियाशक्ति की प्रधानता है। यदि दोनों में दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास सम्भव होता तो, कभी श्रुति के उक्त सिद्धान्त का आविर्भाव न होता। हुकूमत और हुकुम से काम करना दोनों के विभिन्न दो क्षेत्र हैं। दोनों के लिए वर्गीकरण प्रत्येक दशा में वाञ्छनीय है। जब दोनों धर्म्म एक ही व्यक्ति में आजाते हैं तो वह अपनी स्वाभाविक अल्पशक्ति से दोनों का बोझा सम्भलने में असमर्थ होता हुआ

दोनों शक्तियों से वञ्चित हो जाता है। प्रत्यक्ष में भी ऐसा ही देखा गया है। जो व्यक्ति अहोरात्र ज्ञानचिन्ता में निमग्न है, उस से कभी कर्म का निर्वाह नहीं होसकता। यदि आप यह चाहें कि, अध्ययनशील ज्ञान का अनुगामी एक ब्राह्मण ज्ञानचिन्ता के साथ साथ सामाजिक, राष्ट्रीय, लौकिककर्मों में भी पूर्ण सहयोग देता रहे तो, आप की इस चाह का कोई मूल्य न होगा। ठीक इस के विपरीत यदि आप कर्मव्यस्त व्यक्ति को ज्ञान की उच्च भूमिका में प्रतिष्ठित देखना चाहेंगे, तो यह भी आप की दुराशा ही होगी। गार्हस्थ्य, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि संस्थाओं को सुरक्षित रखने का, कर्मसंस्थाओं को सुसमृद्ध बनाने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रत्येक संस्था में एकवर्ग आदेश देने वाला रहे एक वर्ग आदेशानुसार कर्म करने वाला रहे। एक कहने वाला रहे, एक सुन कर तदनुसार करने वाला रहे। एक पथप्रदर्शक हो, एक पथानुगामी हो। एक ज्ञानशक्ति प्रधान हो, एक क्रियाशक्ति प्रधान हो एक उपदेशक हो, एक उपदिष्ट हो। एक शासक हो, एक शासित हो। और फिर दोनों एक दूसरे में मिल जांय। कभी आपसे एक दूसरे को छोटा बड़ा समझने की भूल न करे। अपने अपने अधिकार का सदुपयोग करते हुए परस्पर एकरूप से बनकर ही तत्तत् कर्मसंस्थाओं का सञ्चालन करें। वह (ब्रह्म) उसके भावों का आदर करे, यह (क्षत्र) उसको प्रसन्न रक्खे। समृद्धि निश्चित है, मैत्रावरुण ग्रह प्रतिपादिका उक्त श्रुतिनें इसी समृद्धि बीज का स्पष्टीकरण किया है।

वैदिक परिभाषानुसार हितैषी को 'मित्र' कहा जाता है, एवं द्वेषी (शत्रु) को 'वरुण' कहा जाता है। इधर हमने कर्म सम्बन्धी मानससंकल्प को तो 'मित्र' कहा है, और कर्मसिद्धि, किंवा संकल्पसिद्धि को 'वरुण' कहा है। प्रश्न होता है कि, क्या कर्मसिद्धि हमारी शत्रु है? यदि कर्मसिद्धि शत्रु होती तो कभी भूल कर भी कर्म के लिए कर्मसंकल्प न करते। ऐसे मित्र का आह्वान कौन बुद्धिमान करेगा, जो अपने साथ हमारे लिए एक शत्रु उत्पन्न कर देता है।

+—इस विषय का विशद वैज्ञानिक विवेचन बहिरङ्गपरीक्षात्मक गीताविज्ञानभाष्यभूमिका प्रथम खण्ड में देखना चाहिए।

अवश्य ही विप्रतिपत्ति ठीक है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि, वरुण शब्द शत्रुभाव का ही सूचक है। अब जान लेना केवल यह है कि, कर्म्मसिद्धि को शत्रुवाचक वरुणशब्द से क्यों व्यवहृत किया। कर्म्म के लिए संकल्प करना, और संकल्पानुसार कर्म्म में जुट पड़ना यहां तक तो सभी को मैत्रीभाव मानना पड़ेगा। जो व्यक्ति कर्म्म के लिए अपने मित्र कर्म्मसंकल्प का अनुगमन नहीं करता, वह अवश्य ही दुःखी रहता है। ऐसी दशा में कर्म्मसंकल्प, और तदनुगृहीत कर्म्म दोनों को अवश्य ही 'मित्र' कहा जा सकता है। मानी हुई बात है कि, यदि कोई व्यक्ति हमारे हितैषी मित्र को मारडालता है, दूसरे शब्दों में उस का विरोध कर देता है तो वह मित्र का शत्रु हमारा भी शत्रु बन जाता है। कर्म्म की दक्षता कर्म्मसिद्धि है। जब तक दक्षरूपा कर्म्मसिद्धि प्राप्त नहीं होती, तब तक हम कर्म्मानुगत संकल्पमित्र के साथी बने रहते हैं, अथवा वह संकल्प स्वयं हमारा साथी बना रहता है। परन्तु जिस क्षण कर्म्म सिद्ध होजाता है, उसी क्षण तत साधक कर्म्म से सम्बद्ध सकल्प का अवसान होजाता है। इच्छासिद्धि अवश्य ही इच्छा का विराम कर देती है। भला सोचिए तो, जिस सिद्धिने हमारी कामना को, हमारे संकल्प को, संकल्प के साथ साथ कर्म्म को समाप्त कर दिया, एक हितैषी मित्र को समाप्त कर डाला, उस कर्म्मसिद्धि को शत्रु (वरुण) न कहें तो और क्या कहें। चूकि कर्म्मसिद्धि कर्म्मसंकल्परूप मित्र का अवसान कर देती है, अतएव श्रुतिने इसे वरुण कहना ही उचित समझा है।

उत्तर कुछ अंशों में जंचा, कुछ अंशों में नहीं जंचा। चूंकि कर्म्मसिद्धिरूप वरुणशत्रु कर्म्मसंकल्परूप मित्र का अवसान कर देता है, इस लिए कर्म्मसिद्धि को शत्रु कहना तो ठीक बन जाता है। परन्तु इस उत्तर में कृतघ्नता बैठी हुई है। जिस मित्र ने (संकल्पने) हमें सिद्धि दिलवाई, सिद्धि मिलते ही उसी सिद्धि के द्वारा हम उसे मरवा डालें, उसका अवसान करादें, यह कृतघ्नता नहीं तो और क्या है। साथ ही में यह भी प्राकृतिक नियम है कि, सिद्धि हो जाने पर संकल्प रह नहीं सकता। बिना सिद्धि के ऐहलौकिक-पारलौकिक कोई व्यवस्था सुरक्षित रह नहीं सकती। अगत्या हमें मित्रद्रोही बनना ही पड़ता है। क्या कोई ऐसा उपाय है, जिससे सिद्धि प्राप्त करते हुए भी हम मित्र की मित्रता सुरक्षित रख सकें। है, और अवश्य

दोनों शक्तियों से वञ्चित हो जाता है । प्रत्यक्ष में भी ऐसा ही देखा गया है । जो व्यक्ति अहोरात्र ज्ञानचिन्ता में निमग्न है, उस से कभी कर्म का निर्वाह नहीं होसकता यदि आप यह चाहें कि, अध्ययनशील ज्ञान का अनुगामी एक ब्राह्मण ज्ञानचिन्ता के साथ साथ सामाजिक, राष्ट्रीय, लौकिककर्म्मों में भी पूर्ण सहयोग देता रहे तो, आप की इस चाह का कोई मूल्य न होगा। ठीक इस के विपरीत यदि आप कर्म्मव्यस्त व्यक्ति को ज्ञान की उच्च भूमिका में प्रतिष्ठित देखना चाहेंगे, तो यह भी आप की दुराशा ही होगी । गार्हस्थ्य, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि संस्थाओं को सुरक्षित रखने का, कर्मसंस्थाओं को सुसमृद्ध बनाने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रत्येक संस्था में एकवर्ग आदेश देने वाला रहे एक वर्ग आदेशानुसार कर्म्म करने वाला रहे । एक कहने वाला रहे, एक सुन कर तदनुसार करने वाला रहे । एक पथप्रदर्शक हो, एक पथानुगामी हो। एक ज्ञानशक्ति प्रधान हो, एक क्रियाशक्ति प्रधान हो एक उपदेशक हो, एक उपदिष्ट हो। एक शासक हो, एक शासित हो । और फिर दोनों एक दूसरे में मिल जाय । कभी आपसे एक दूसरे को छोटा बड़ा समझने की भूल न करे । अपने अपने अधिकार का सदुपयोग करते हुए परस्पर एकरूप से बनकर ही तत्तत् कर्म्मसंस्थाओं का सञ्चालन करे । वह (ब्रह्म) उसके भावों का आदर करे, यह (क्षत्र) उसको प्रसन्न रक्खे । समृद्धि निश्चित है, मैत्रावरुण ग्रह प्रतिपादिका उक्त श्रुतिने इसी समृद्धि बीज का स्पष्टीकरण किया है ।

वैदिक परिभाषानुसार हितैषी को 'मित्र' कहा जाता है, एवं द्वेषी (शत्रु) को 'वरुण' कहा जाता है । इधर हमने कर्म्म सम्बन्धी मानससंकल्प को तो 'मित्र' कहा है, और कर्म्म सिद्धि, किंवा सङ्कल्पसिद्धि को 'वरुण' कहा है । प्रश्न होता है कि, क्या कर्मसिद्धि हमारी शत्रु है ? यदि कर्मसिद्धि शत्रु होती तो कभी भूल कर भी कर्म्म के लिए कर्म्मसंकल्प न करते। ऐसे मित्र का आह्वान कौन बुद्धिमान करेगा, जो अपने साथ हमारे लिए एक शत्रु उत्पन्न कर देता है ।

+—इस विषय का विशद वैज्ञानिक विवेचन बहिरङ्गपरीक्षात्मक गीताविज्ञानभाष्यभूमिका प्रथम खण्ड में देखना चाहिए ।

अवश्य ही विप्रतिपत्ति ठीक है। इस में भी कोई सन्देह नहीं कि, वरुण शब्द शत्रुभाव का ही सूचक है। अब जान लेना केवल यह है कि, कर्म्मसिद्धि को शत्रुवाचक वरुणशब्द से क्यों व्यवहृत किया। कर्म्म के लिए संकल्प करना, और संकल्पानुसार कर्म्म में जुट पड़ना यहां तक तो सभी को मैत्रीभाव मानना पड़ेगा। जो व्यक्ति कर्म्म के लिए अपने मित्र कर्म्मसंकल्प का अनुगमन नहीं करता, वह अवश्य ही दुःखी रहता है। ऐसी दशा में कर्म्मसंकल्प, और तदनुगृहीत कर्म्म दोनों को अवश्य ही 'मित्र' कहा जा सकता है। मानी हुई बात है कि, यदि कोई व्यक्ति हमारे हितैषी मित्र को मारडालता है, दूसरे शब्दों में उस का विरोध कर देता है तो वह मित्र का शत्रु हमारा भी-शत्रु बन जाता है। कर्म्म की दक्षता कर्म्मसिद्धि है। जब तक दक्षरूपा कर्म्मसिद्धि प्राप्त नहीं होती, तब तक हम कर्म्मानुगत संकल्पमित्र के साथी बने रहते हैं, अथवा वह संकल्प स्वयं हमारा साथी बना रहता है। परन्तु जिस क्षण कर्म्म सिद्ध होजाता है; उसी क्षण तत साधक कर्म्म से सम्बद्ध सकल्प का अवसान होजाता है। इच्छासिद्धि अवश्य ही इच्छा का विराम कर देती है। भला सोचिए तो, जिस सिद्धिने हमारी कामना को, हमारे सकल्प को, संकल्प के साथ साथ कर्म्म को समाप्त कर दिया, एक हितैषी मित्र को समाप्त कर डाला, उस कर्म्मसिद्धि को शत्रु (वरुण) न कहें तो और क्या कहें। चूंकि कर्म्मसिद्धि कर्म्मसंकल्परूप मित्र का अवसान कर देती है, अतएव श्रुतिने इसे वरुण कहना ही उचित समझा है।

उत्तर कुछ अशों में जचा, कुछ अंशों में नहीं जंचा। चूंकि कर्म्मसिद्धिरूप वरुणशत्रु कर्म्मसंकल्परूप मित्र का अवसान कर देता है, इस लिए कर्म्मसिद्धि को शत्रु कहना तो ठीक बन जाता है। परन्तु इस उत्तर में कृतघ्नता बैठी हुई है। जिस मित्र ने (संकल्पने) हमें सिद्धि दिलवाई, सिद्धि मिलते ही उसी सिद्धि के द्वारा हम उसे मरवा डालें, उसका अवसान करादें, यह कृतघ्नता नहीं तो और क्या है। साथ ही में यह भी प्राकृतिक नियम है कि, सिद्धि हो जाने पर संकल्प रह नहीं सकता। बिना सिद्धि के ऐहलौकिक-पारलौकिक कोई व्यवस्था सुरक्षित रह नहीं सकती। अगत्या हमें मित्रद्रोही बनना ही पड़ता है। क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे सिद्धि प्राप्त करते हुए भी हम मित्र की मित्रता सुरक्षित रख सकें। है, और अवश्य

दोनों शक्तियों से वञ्चित हो जाता है। प्रत्यक्ष में भी ऐसा ही देखा गया है। जो व्यक्ति अहोरात्र ज्ञानचिन्ता में निमग्न है, उस से कभी कर्म्म का निर्वाह नहीं होसकता यदि आप यह चाहें कि, अध्ययनशील ज्ञान का अनुगामी एक ब्राह्मण ज्ञानचिन्ता के साथ साथ सामाजिक, राष्ट्रीय, लौकिककर्म्मों में भी पूर्ण सहयोग देता रहे तो, आप की इस चाह का कोई मूल्य न होगा। ठीक इस के विपरीत यदि आप कर्म्मव्यस्त व्यक्ति को ज्ञान की उच्च भूमिका में प्रतिष्ठित देखना चाहेंगे, तो यह भी आप की दुराशा ही होगी। गार्हस्थ्य, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि सस्थाओं को सुरक्षित रखने का, कर्म्मसस्थाओं को सुसमृद्ध बनाने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रत्येक सस्था में एकवर्ग आदेश देने वाला रहे एक वर्ग आदेशानुसार कर्म्म करने वाला रहे। एक कहने वाला रहे, एक सुन कर तदनुसार करने वाला रहे। एक पथप्रदर्शक हो, एक पथानुगामी हो। एक ज्ञानशक्ति प्रधान हो, एक क्रियाशक्ति प्रधान हो एक उपदेशक हो, एक उपदिष्ट हो। एक शासक हो, एक शासित हो। और फिर दोनों एक दूसरे में मिल जांय। कभी आपसे एक दूसरे को छोटा बड़ा समझने की भूल न करें। अपने अपने अधिकार का सदुपयोग करते हुए परस्पर एकरूप से बनकर ही तत्तत् कर्म्मसस्थाओं का सञ्चालन करे। वह (ब्रह्म) उसके भावों का आदर करे, यह (क्षत्र) उसको प्रसन्न रक्खे। समृद्धि निश्चित है, मैत्रावरुण ग्रह प्रतिपादिका उक्त श्रुतिने इसी समृद्धि बीज का स्पष्टीकरण किया है।

वैदिक परिभाषानुसार हितैषी को 'मित्र' कहा जाता है, एव द्वेपी (शत्रु) को 'वरुण' कहा जाता है। इधर हमने कर्म्म सम्बन्धी मानससंकल्प को तो 'मित्र' कहा है, और कर्म्म सिद्धि, किंवा सकल्पसिद्धि को 'वरुण' कहा है। प्रश्न होता है कि, क्या कर्म्मसिद्धि हमारी शत्रु है? यदि कर्म्मसिद्धि शत्रु होती तो कभी भूल कर भी कर्म्म के लिए कर्म्मसंकल्प न करते। ऐसे मित्र का आह्वान कौन बुद्धिमान करेगा, जो अपने साथ हमारे लिए एक शत्रु उत्पन्न कर देता है।

+—इस विषय का विशद वैज्ञानिक विवेचन बहिरङ्गपरीक्षात्मक गीताविज्ञानभाष्यभूमिका प्रथम खण्ड में देखना चाहिए।

अवश्य ही विप्रतिपत्ति ठीक है। इस में भी कोई सन्देह नहीं कि, वरुण शब्द शत्रुभाव का ही सूचक है। अब जान लेना केवल यह है कि, कर्म्मसिद्धि को शत्रुवाचक वरुणशब्द से क्यों व्यवहृत किया। कर्म्म के लिए संकल्प करना, और संकल्पानुसार कर्म्म में जुट पड़ना यहां तक तो सभी को मैत्रीभाव मानना पड़ेगा। जो व्यक्ति कर्म्म के लिए अपने मित्र कर्म्मसंकल्प का अनुगमन नहीं करता, वह अवश्य ही दुःखी रहता है। ऐसी दशा में कर्म्मसंकल्प, और तदनुगृहीत कर्म्म दोनों को अवश्य ही 'मित्र' कहा जा सकता है। मानी हुई बात है कि, यदि कोई व्यक्ति हमारे हितैषी मित्र को मारडालता है, दूसरे शब्दों में उस का विरोध कर देता है तो वह मित्र का शत्रु हमारा भी शत्रु बन जाता है। कर्म्म की दक्षता कर्म्मसिद्धि है। जब तक दक्षरूपा कर्म्मसिद्धि प्राप्त नहीं होती, तब तक हम कर्म्मानुगत सकल्पमित्र के साथी बने रहते हैं, अथवा वह संकल्प स्वयं हमारा साथी बना रहता है। परन्तु जिस क्षण कर्म्म सिद्ध होजाता है, उसी क्षण तत साधक कर्म्म से सम्बद्ध संकल्प का अवसान होजाता है। इच्छासिद्धि अवश्य ही इच्छा का विराम कर देती है। भला सोचिए तो, जिस सिद्धिने हमारी कामना को, हमारे संकल्प को, संकल्प के साथ साथ कर्म्म को समाप्त कर दिया, एक हितैषी मित्र को समाप्त कर डाला, उस कर्म्मसिद्धि को शत्रु (वरुण) न कहें तो और क्या कहें। चूंकि कर्म्मसिद्धि कर्म्मसंकल्प-रूप मित्र का अवसान कर देती है, अतएव श्रुतिने इसे वरुण कहना ही उचित समझा है।

उत्तर कुछ अंशों में जंचा, कुछ अंशों में नहीं जंचा। चूंकि कर्म्मसिद्धिरूप वरुणशत्रु कर्म्मसंकल्परूप मित्र का अवसान कर देता है, इस लिए कर्म्मसिद्धि को शत्रु कहना तो ठीक बन जाता है। परन्तु इस उत्तर में कृतघ्नता बैठी हुई है। जिस मित्र ने (संकल्पने) हमें सिद्धि दिलवाई, सिद्धि मिलते ही उसी सिद्धि के द्वारा हम उसे मरवा डालें, उसका अवसान करादें, यह कृतघ्नता नहीं तो और क्या है। साथ ही में यह भी प्राकृतिक नियम है कि, सिद्धि हो जाने पर सकल्प रह नहीं सकता। बिना सिद्धि के ऐहलौकिक-पारलौकिक कोई व्यवस्था सुरक्षित रह नहीं सकती। अगत्या हमें मित्रद्रोही बनना ही पड़ता है। क्या कोई ऐसा उपाय है, जिससे सिद्धि प्राप्त करते हुए भी हम मित्र की मित्रता सुरक्षित रख सकें। है, और अवश्य

दोनों शक्तियों से वञ्चित हो जाता है। प्रत्यक्ष में भी ऐसा ही देखा गया है। जो व्यक्ति अहोरात्र ज्ञानचिन्ता में निमग्न है, उस से कभी कर्म्म का निर्वाह नहीं होसकता यदि आप यह चाहे कि, अध्ययनशील ज्ञान का अनुगामी एक ब्राह्मण ज्ञानचिन्ता के साथ साथ सामाजिक, राष्ट्रीय, लौकिककर्म्मों में भी पूर्ण सहयोग देता रहे तो, आप की इस चाह का कोई मूल्य न होगा। ठीक इस के विपरीत यदि आप कर्म्मव्यस्त व्यक्ति को ज्ञान की उच्च भूमिका में प्रतिष्ठित देखना चाहेंगे, तो यह भी आप की दुराशा ही होगी। गार्हस्थ्य, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि संस्थाओं को सुरक्षित रखने का, कर्म्मसंस्थाओं को सुसमृद्ध बनाने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रत्येक संस्था में एकवर्ग आदेश देने वाला रहे एक वर्ग आदेशानुसार कर्म्म करने वाला रहे। एक कहने वाला रहे, एक सुन कर तदनुसार करने वाला रहे। एक पथप्रदर्शक हो, एक पथानुगामी हो। एक ज्ञानशक्ति प्रधान हो, एक क्रियाशक्ति प्रधान हो एक उपदेशक हो, एक उपदिष्ट हो। एक शासक हो, एक शासित हो। और फिर दोनों एक दूसरे में मिल जांय। कभी आपसे एक दूसरे को छोटा बड़ा समझने की भूल न करे। अपने अपने अधिकार का सदुपयोग करते हुए परस्पर एकरूप से बनकर ही तत्तद् कर्म्मसंस्थाओं का सञ्चालन करे। वह (ब्रह्म) उसके भावों का आदर करे, यह (क्षत्र) उसको प्रसन्न रक्खे। समृद्धि निश्चित है, मैत्रावरुण ग्रह प्रतिपादिका उक्त श्रुतिनें इसी समृद्धि बीज का स्पष्टीकरण किया है।

वैदिक परिभाषानुसार हितैषी को। मित्र' कहा जाता है, एवं द्वेषी (शत्रु) को 'वरुण' कहा जाता है। इधर हमने कर्म्म सम्बन्धी मानससंकल्प को तो 'मित्र' कहा है, और कर्म्म सिद्धि, किंवा सकल्पसिद्धि को 'वरुण' कहा है। प्रश्न होता है कि, क्या कर्म्मसिद्धि हमारी शत्रु है? यदि कर्म्मसिद्धि शत्रु होती तो कभी भूल कर भी कर्म्म के लिए कर्म्मसंकल्प न करते। ऐसे मित्र का आह्वान कौन बुद्धिमान करेगा, जो अपने साथ हमारे लिए एक शत्रु उत्पन्न कर देता है।

+—इस विषय का विशद वैज्ञानिक विवेचन बहिरङ्गपरीक्षात्मक गीताविज्ञानभाष्यभूमिका प्रथम खण्ड में देखना चाहिए।

हैं। यही सत्तासिद्ध पदार्थ "भाव" कहलाएंगे। भावना में ज्ञान का प्राधान्य रहेगा, भाव में सत्ता का प्राधान्य रहेगा। भावनात्मकपदार्थों के सम्बन्ध में-"हम जानते हैं, इस लिये उन पदार्थों की सत्ता है" यह कहा जायगा। एवं भावात्मकपदार्थों के सम्बन्ध में-"पदार्थ हैं" इस लिए हम उन्हें जानते हैं" यह कहा जायगा। इस प्रकार ज्ञानपूर्विका सत्ता से सम्बन्ध रखते हुए वे ही पदार्थ 'भावना' कहलाएंगे, एवम् सत्तापूर्वकज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले वे ही पदार्थ 'भाव' कहलाएंगे। और इसी दृष्टि से दोनों को भिन्न भिन्न ही वस्तुतत्त्व माना जायगा।

बहिर्जगत् में प्रतिष्ठित सत्तासिद्ध, अतएव भावरूप पदार्थों में योंतो प्रतिक्षण ही नवीन नवीन परिवर्तन होता रहता है। और इस क्षणिक परिवर्त्तन से हम कह सकते हैं कि, प्रत्येक भाव (सत्तासिद्ध पदार्थ) क्षण क्षण में ही विकृत हो रहा है। परन्तु विद्वानों ने क्षणमात्रात्मक अनन्त भावविकारों का प्रधानरूप से छः भागों में ही वर्गीकरण करना उचित समझा है। वे ही षड्भाव विकार* निरुक्तादि ग्रन्थों में क्रमशः निम्नलिखित नामों से व्यवहृत हुए हैं—

१—जायते	४—वर्द्धते
२—अस्ति	५—अपक्षीयते
३—विपरिणमते	६—नश्यति

१—उत्पन्न होता है।	४—बढ़ने लगता है।
२—प्रतिष्ठित होता है।	५—क्षीण होने लगता है।
३—बदलने लगता है।	६—नष्ट हो जाता है।

* 'षड्भावविकारा भवन्ति-इति वार्ष्यायणिः-जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, नश्यति-इति'-(यास्कनिरुक्त १।२।८)

जो हमारे ज्ञान में प्रविष्ट रहेंगे। उधर भावलक्षण पदार्थ उन्हें कहा जायगा, जो हमारे ज्ञान से बाहर रहेंगे। भावनात्मक पदार्थों के निर्म्माता हम हैं, भावात्मक पदार्थों के निर्म्माता अन्य-व्यक्ति एवं ईश्वर है। यद्यपि भावना का उदय भावसंसर्ग से ही होता है, परन्तु दोनों का पार्थक्य प्रत्यक्षानुभूत है। बाह्यजगत् के भावात्मक किसी एक पदार्थ के आधार से हमारे ज्ञानीयजगत् में तद्रूप (भावरूप) पदार्थ का भावनारूप से जन्म होगया। यह भावनात्मक पदार्थ चूंकि हमारे ज्ञान से बना, अतएव यह हमारी प्रातिस्विक वस्तु बन गया। अब यदि बाह्यजगत् में प्रतिष्ठित वह भावात्मक पदार्थ नष्ट भी हो जाता है, तब भी हमारे भावनात्मक पदार्थ का कुछ नहीं बिगड़ता। जब तक हम रहेंगे, हमारा भावनात्मक पदार्थ सुरक्षित रहेगा। इस प्रकार अन्तर्जगत् बहिर्जगत् भेद से भावना भाव दोनों सर्वथा पृथक् पृथक् ही मानें जायंगे। पूर्व प्रकरण में भावनात्मक वेद का दिग्दर्शन हुआ है, एवं प्रकृतप्रकरण संक्षेप से भाववेद का ही स्पष्टीकरण कर रहा है।

दूसरी दृष्टि से भेद का विचार कीजिए। पदार्थों की सत्ता के दो स्वरूप माने गये हैं। ज्ञानपूर्विकासत्ता एक पक्ष है, सत्तापूर्वकज्ञान दूसरा पक्ष है। जो पदार्थ हमारे ज्ञान में आगए हैं, दूसरे शब्दों में हम जिन पदार्थों को जानते हैं, उन का अस्तित्व इसी लिये है कि, हम उन्हें जानते हैं। हमारे ज्ञानाकाश में हमें जिन सत्तासिद्ध पदार्थों की प्रतीति होती है, उन की सत्ता ज्ञानपूर्विका ही मानी जायगी। हम उन्हें जानते हैं, इसी लिए वे हैं, यही कहा जायगा। इस ज्ञानपूर्विका सत्ता को, दूसरे शब्दों में ज्ञानानुगृहीत पदार्थ को ही 'भावना" कहा जायगा। जो पदार्थ हमारे ज्ञान में अभी तक नहीं आए, इसी लिए जिन्हें हम अभी तक नहीं जानते, परन्तु जिन की सत्ता कहीं न कहीं अवश्य है, जो कि किसी समय हमारे ज्ञान में आकर भावनात्मक बन सकते हैं, उन पदार्थों को "सत्तापूर्वकज्ञान" इस वाक्य से सम्बोधित किया जायगा। बहिर्जगत् में प्रतिष्ठित इन सत्तासिद्ध पदार्थों के संसर्ग से ही हमारा ज्ञान एतद्रूप पदार्थों की कल्पना करने में, अपने अन्तर्जगत् के स्वरूपनिर्म्माण में समर्थ होता है। सत्तासिद्ध बाह्यजगत् के पदार्थों को आश्रय बना कर ही हम उनका ज्ञान करने में समर्थ होते

हैं। यही सत्तासिद्ध पदार्थ "भाव" कहलाएंगे। भावना में ज्ञान का प्राधान्य रहेगा, भाव में सत्ता का प्राधान्य रहेगा। भावनात्मकपदार्थों के सम्बन्ध में-"हम जानते हैं, इस लिये उन पदार्थों की सत्ता है" यह कहा जायगा। एवं भावात्मकपदार्थों के सम्बन्ध में-"पदार्थ हैं" इस लिए हम उन्हें जानते हैं" यह कहा जायगा। इस प्रकार ज्ञानपूर्विका सत्ता से सम्बन्ध रखते हुए वे ही पदार्थ 'भावना' कहलाएंगे, एवम् सत्तापूर्वकज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले वे ही पदार्थ 'भाव' कहलाएंगे। और इसी दृष्टि से दोनों को भिन्न भिन्न ही वस्तुतत्त्व माना जायगा।

बहिर्जगत् में प्रतिष्ठित सत्तासिद्ध, अतएव भावरूप पदार्थों में यों तो प्रतिक्षण ही नवीन नवीन परिवर्त्तन होता रहता है। और इस क्षणिक परिवर्त्तन से हम कह सकते हैं कि, प्रत्येक भाव (सत्तासिद्ध पदार्थ) क्षण क्षण में ही विकृत हो रहा है। परन्तु विद्वानों ने क्षणभावात्मक अनन्त भावविकारों का प्रधानरूप से छ भागों में ही वर्गीकरण करना उचित समझा है। वे ही षड्भाव विकार* निरुक्तादि ग्रन्थों में क्रमशः निम्नलिखित नामों से व्यवहृत हुए हैं—

१—जायते	४—वर्द्धते
२—अस्ति	५—अपक्षीयते
३—विपरिणमते	६—नश्यति

१—उत्पन्न होता है।	४—बढ़ने लगता है।
२—प्रतिष्ठित होता है।	५—क्षीण होने लगता है।
३—बदलने लगता है।	६—नष्ट हो जाता है।

* 'षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः-जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, नश्यति-इति'-(यास्कनिरुक्त १।२।८)

अभी तक देवदत्त संसार में न था। माता-पिता के रज-वीर्य्य के सम्मिश्रण में देवदत्त का कर्मभोक्ता औपपातिक आत्मा कर्मानुसार प्रविष्ट होकर गर्भरूप में परिणत होगया। ९ मास की क्रमिक वृद्धि से स्वरूप धारण कर यथासमय 'प्रसवामरुत्' के प्रत्याघात से भूमिष्ठ होगया। यही इस सत्तात्मक भाव की पहिली जन्मावस्था हुई। यहीं आकर यह "जायते" इस पहिले भावविकार का पात्र बना। "जायते इति पूर्वभावस्यादिमाचष्टे नापरभावमाचष्टे, न प्रतिषेधति" (यास्क०नि०१ २।८ के अनुसार इतर भावविकारों की प्रथमावस्था, उपक्रमावस्था ही "जायते" से सूचित होती है। उत्पन्न होने के अनन्तर आज उसी देवदत्त की "देवदत्त है" इस रूप से सत्ता का अभिनय होने लगता है जिस देवदत्त की कि, जायते से पहिले सत्ता का कहीं पता भी न था। यही—अस्तीत्युत्पन्नस्य सत्त्वस्यावधारणम्" लक्षण दूसरा 'अस्ति" भावविकार हुआ। उत्पन्न हुआ, सत्त्व का अवधारण हुआ, पनपा, लीजिए बदलने लगा। क्रमशः परिवर्त्तन का आरम्भ हुआ। यही तीसरा "विपरिणमते" भावविकार कहलाया। क्रमशः बढने लगा, अङ्ग प्रत्यङ्ग पुष्ट होने लगे, यही चौथा भावविकार "वर्द्धते" कहलाया। वृद्धि की चरम सीमा पर पहुंचते ही अब क्रमशः शारीरिक शक्तियों का क्षय होने लगा, बाल सुफेद हुए दांत टूटने लगे, हाथ पैरों में झुर्रिए पड़ने लगीं। यही पांचवां "अपक्षीयते" भावविकार कहलाया। एक समय ऐसा आया कि, जिस देवदत्त ने एक दिन 'जायते' का बाना पहिना था, वही धराशायी बन कर "नश्यति" इस छटे भावविकार का पात्र बन गया। उदाहरण मात्र है। उत्पन्न होने वाले जड़-चेतनात्मक जितनें भी भाव हैं, सब में इन्हीं ६ भावविकारों का समावेश है। इतर अन्यान्यभावविकार-"अतोऽन्येभावविकारा एतेषामेव विकारा भवन्तीति ह स्माह-(वार्ष्यायणिः)" (यास्क नि० १।३।१) के अनुसार इन्हीं ६ भावविकारों में यथानुरूप अन्तर्भूत हैं।

उक्त ६ भाव विकारों में 'जायते' नामक पहिला भावविकार, और 'नश्यति' नामक छटा भावविकार दोनों समानधर्म्मा है। इसी समानता को लक्ष्य में रखकर सर्वश्री यास्कायनें टो[illegible] करते हुए दोनों के सम्बन्ध में "नापरभावमाचष्टे, न प्रतिषेधति"—

"न पूर्वभावमाचष्टे, न प्रतिषेधति" इन वाक्यों का उल्लेख किया है। इस ओर जन्म है, उस ओर मृत्यु है। मध्य में बाल—तारुण्य-प्रौढ—वार्धक्यादि अवस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाले अस्ति—विपरिणमते—वर्द्धते—अपक्षीयते ये चार भावविकार हैं। इस ओर प्रस्ताव है, उस ओर निधन है, मध्य में जीवन है। "जायते" उपक्रम है, नश्यति' उपसंहार है। 'जायते' ही शेष चारों भावविकारों का उक्थस्थान बनता हुआ ऋग्वेद है। 'नश्यति' ही शेष पांचों भावविकारों का अन्तिम निधन पृष्ठ बनता हुआ 'सामवेद' है। एवं मध्यस्थ—अस्ति आदि चारों भावों की समष्टि उपक्रमस्थानीय उक्थलक्षण जायतेरूप ऋग्वेद के साथ, तथा उपसंहारस्थानीय पृष्ठलक्षण, नश्यतिरूप सामवेद के साथ युक्त रहती हुई युज्यते—उपक्रमोपसंहाराभ्याम्' इस निर्वचन से 'यजुर्वेद' है। इस प्रकार षड्विकारात्मक सत्तसिद्ध प्रत्येकभाव में उक्त दृष्टि से तीनों वेदों का समन्वय देखा जा सकता है। इसी वेद को "भाववेद" कहा जाता है—

भाववेदसंस्थापरिलेखः—

१–१–१–जायते—जन्मावस्था ⊱ उपक्रमः—उक्थम्—"ऋग्वेदः"

१–२–अस्ति—बालावस्था

२–२–३–विपरिणमते –तरुणावस्था

३–४–वर्द्धते–प्रौढावस्था

४–५ -अपक्षीयते–वृद्धावस्था

(१–२ से ४–५ तक) } मध्यभावाः–मध्यबिन्दुः–'यजुर्वेद'

३–१–६–नश्यति—निधनावस्था ⊱ उपसंहारः—पृष्ठम्—"सामवेदः"

(सर्व) } →"भाववेदः"

इति—भाववेदनिरुक्तिः

——— o:o:o ———

अब तक पर्व-भावना-भाव इन तीन वेदसंस्थाओं का निरूपण हुआ है एवं दिक्-देश-काल-वर्ण इन चार वेदसंस्थाओं का निरूपण अवशिष्ट है।

हृदय-परिधि-सत्तारस तीन पर्वों की समष्टि ही 'पर्ववेद' है। हृदय और परिधिरूप ऋक्सामलक्षण छन्द हैं। छन्द स्वयं भातिसिद्ध पदार्थ है। इन दोनों ऋक्-सामछन्दों से छन्दित स्वयं वस्तुतत्त्व (रसाग्नि) यजु है, और यह सत्तासिद्ध पदार्थ है इस प्रकार पर्ववेदसंस्था में ऋक्साम तो भातिसिद्ध हैं, एवं यजु सत्तासिद्ध है। पर्ववेद में चूंकि दोनों का समन्वय है, अतएव इसे हम उभयसिद्धवेदसंस्था का उदाहरण मानेंगे।

भावनावेद का मानसभावना से मुख्य सम्बन्ध है। मानसभावना में क्रतु-दक्ष और दोनों से वेष्टित कर्म्मधारा, ये तीन विभाग हैं। क्रतुरूप सङ्कल्प भी कर्म है, समृद्धिरूप दक्ष भी कर्म है, कर्म्मधारा का कर्म्मत्व तो सिद्ध ही है। कर्म्म किंवा क्रिया एक भातिसिद्ध पदार्थ है, और भावनात्मिका वह क्रिया तो अवश्य ही भातिरूपा मानी जायगी, जिस का केवल ज्ञानीय अन्तर्जगत् से सम्बन्ध हो। इसी हेतु से हम इस दूसरी भावनावेदसंस्था को "भातिसिद्धवेदसंस्था' का उदाहरण मानेंगे।

भाववेद का बहिर्जगत् से सम्बन्ध बतलाया गया है। बहिर्जगत् के भावात्मक पदार्थ सत्तासिद्ध माने गए हैं। जब तक ये बहिर्जगत् की वस्तु रहते हैं, तभी तक इन्हें भाव' कहा जाता है। अन्तर्जगत् की वस्तु बने बाद ही इन्हें भावना' शब्द की उपाधि मिलती है। साथ ही में अपनी भावदशा में (हमारी ज्ञानलक्षणा भाति से बहिर्भूत रहते हुए) ये पदार्थ सत्तासिद्ध ही रहते हैं। अतः इस तीसरी भाववेदसंस्था को 'सत्तासिद्ध वेदसंस्था' का उदाहरण माना जा सकता है।

दिक्-देश-काल तीनों विशुद्ध भातिसिद्ध पदार्थ हैं। अतः इन तीनों वेदसंस्थाओं को 'विशुद्धभातिवेदसंस्था' के उदाहरण माना जायगा। एवं सातवीं वर्णवेदसंस्था का विशुद्ध सत्ता से सम्बन्ध है। वर्णलक्षण ब्रह्म-क्षत्र-विड्वीर्य्य प्राणात्मक हैं। रूप-रस

गन्धादि पञ्चतन्मात्राओं से अतीत तत्त्व ही प्राण का स्वरूपलक्षण है। इन्द्रिएं तन्मात्रधर्म्मी का ही भान करने में समर्थ होती है। चूंकि वर्णात्मक प्राण इन्द्रियातीत है, अतः वर्णवेदसंस्था को 'विशुद्ध सत्तासिद्धसंस्था' का ही उदाहरण माना जायगा। इस वर्गीकरण को लक्ष्य में रखते हुए ही प्रकीर्णक वेदसंस्थाओं के स्वरूप पर दृष्टि डालनी चाहिए।

१—पर्ववेदसंस्था——उभयसिद्धावेदसंस्था
२—भावनावेदसंस्था——भातिसिद्धावेदसंस्था
३—भाववेदसंस्था——सत्तासिद्धवेदसंस्था
४—दिग्वेदसंस्था——विशुद्धभातिसिद्धावेदसंस्था
५—देशवेदसंस्था—— "
६—कालवेदसंस्था—— "
७—वर्णवेदसंस्था——विशुद्धसत्तासिद्धावेदसंस्था

सातों में तीन का निरूपण गतार्थ है। चौथी क्रमप्राप्त विशुद्धभातिरूप दिग्वेद संस्था ही हमारे सामने आती है। दिशा और अवान्तर दिशा के सम्बन्ध से १० दिशाएं मानी गई हैं। पूर्व-पश्चिम-उत्तर दक्षिण ये चार तो दिशा हैं, एवं ईशान-आग्नेय—नैऋत—वायव्य ऊर्ध्व—अध; ये ६ अवान्तर दिशाएं मानी गई हैं। इन छओं अवान्तर दिशाओं का चार मुख्य दिशाओं में ही अन्तर्भाव मान लिया जाता है। ईशान कोण का पूर्वोत्तर दिशाओं में, आग्नेय कोण का पूर्व-दक्षिण दिशाओं में, नैऋत कोण का दक्षिण-पश्चिम-दिशाओं में, वायव्यकोण का पश्चिमोत्तर दिशाओं में अन्तर्भाव है। एवम् ऊर्ध्व-अधः इन दो अवान्तर दिशाओं का पूर्व पश्चिम इन दोनों मुख्य दिशाओं में अन्तर्भाव है। उर्ध्वदिशा—अधोदिशा दोनों का क्रमशः खगोलीय खस्वस्तिक, एवं अधःस्वस्तिक के साथ सम्बन्ध है। खगोलीय ये दोनों स्वस्तिक ऊर्ध्व अधः क्रमशः मित्रावरुण' नाम से प्रसिद्ध पूर्व—पश्चिम कपालद्वय के मध्य में पड़ते हैं। पूर्वकपाल मित्र' है पश्चिम कपाल 'वरुण' है। मित्र इन्द्र पूर्व दिशा के दिक्पाल हैं आप्य वरुण पश्चिमदिशा के दिक्पाल माने गए हैं। क्रतु—दक्ष जहां आध्यात्मिक मैत्रावरुणग्रह' है,

इन्द्र–वरुण आधिदैविक मैत्रावरुण ग्रह माना गया है । चूंकि खगोलीय ऊर्ध्व–अध नामक मध्यस्थ दोनों अवान्तर दिशाएं मित्रावरुण की सन्धि से युक्त रहती हुई पूर्व–पश्चिम दोनों दिशाओं से सम्बद्ध है, अतएव इन दोनों का हम पूर्व-पश्चिम दिशाओं में ही अन्तर्भाव मानना उचित समझते हैं । तात्पर्य इस दिग्विवेचन का प्रकृत में केवल यही है कि, दश दिशाओं का प्रधानरूप से पूर्वादि प्रसिद्ध चार दिशाओं में ही पर्य्यवसान हो जाता है ।

पूर्व–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण चारों के क्रमशः इन्द्र–वरुण–चन्द्रमा–यम चार देवता अधिपति हैं । इन्द्रदेवतामयी प्राची दिक् ही इतर दिशाओं की उक्थरूपा बनती है, अतएव इसे हम 'ऋग्वेद" कहने के लिये तय्यार हैं । दक्षिणा दिक् यमाग्निमयी बनती हुई अग्निमय "यजुर्वेद" से सम्बन्ध रखती है । प्रतीचीदिक् आपोमयी वरुणमयी) बनती हुई अथर्वाङ्गिरा लक्षण "अथर्ववेद" है । एव उत्तरादिक् सोममयी बनती हुई "सामवेद" है । इसी दिग्वेद-संस्था का दिग्दर्शन कराते हुए महर्षि तित्तिरि कहते हैं—

ऋचां प्राची महती दिगुच्यते–
दक्षिणामाहुर्यजुषामपाराम् ।
अथर्वणामङ्गिरसा—प्रतीची–
साम्नामुदीची महती दिगुच्यते ॥ (तै॰ ब्रा॰ ३।१२।९।७) ।

दिग्वेदसंस्थापरिलेखः

१–प्राची—ऐन्द्री—→'ऋग्वेद.'
२–दक्षिणा-याम्या—→'यजुर्वेदः'
३–उदीची–सौम्या—→'सामवेद.'
४–प्रतीची–वारुणी—→'अथर्ववेद.'
} → "दिग्वेदः"

इति–दिग्वेद निरुक्तिः

१५—देशवेदनिरुक्ति

स्थान को ही देश कहा जाता है। दिशा ही देशभाव की अनुग्राहिका बनती है। दूसरे शब्दों में दिशा ही देश की परिचयिका बनती है। जब कि देशपरिचायिका दिशा स्वयं भातिसिद्ध पदार्थ है तो, हम अवश्य ही दिशा द्वारा परिचित देश को भी भातिसिद्धपदार्थ ही कहेंगे। अतएव देशवेदसंस्था को भी भातिसिद्धवेदसंस्था का ही उदाहरण माना जायगा। पूर्वदेश पश्चिमदेश-उत्तरदेश-दक्षिणदेश इत्यादि शब्द स्पष्ट ही देशों को दिगनुबन्धी बतलाते हुए इन की भातिसिद्धता प्रकट कर रहे हैं। यह स्मरण रखने की बात है कि, देश अपने स्वरूप से,तो एक सत्तासिद्ध पदार्थ ही माना जायगा। क्योंकि देश का प्रदेशभाव से सम्बन्ध है, प्रदेश का मूर्तिभाव (पिण्डभाव) से सम्बन्ध है। एवं पिण्ड एक सत्तासिद्ध पदार्थ है। दिक् के सम्बन्ध से ही सत्तासिद्ध, धामच्छददेश—पदार्थों में भातिभाव का उदय होता है।

ऐसी परिस्थिति में हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ता है कि यदि देशशब्द से दिगनुबन्धी पूर्व पश्चिम—उत्तरादि देश गृहीत हैं, तब तो देशवेद भातिवेद का उदाहरण बनेगा। एवं उस दशा में पूर्वदेश ऋग्वेदमय, दक्षिणदेश यजुर्वेदमय उत्तरदेश सामवेदमय, पश्चिमदेश अथर्ववेदमय कहलाएगे। यदि देश का दिक् से सम्बन्ध न मानकर स्वतन्त्ररूप से विचार किया जायगा तो उस दशा में यही देशवेद सत्तानुबन्धी बनता हुआ सत्तासिद्ध वेदसंस्था का ही उदाहरण कहा जायगा। चूंकि दिगनुबन्धी देशवेद पूर्व के दिग्वेदप्रकरण से गतार्थ है, अतः प्रकृत में सत्तानुबन्धी विशुद्ध देशवेद का ही विचार अपेक्षित होगा।

पूर्वादिदिशाओं से असम्बद्ध देशपदार्थ एक सत्तासिद्ध पदार्थ है। सूर्य्य—चन्द्रमा पृथिवी-मनुष्य आदि जितने भी सत्तासिद्ध भौतिक पिण्ड हैं, देशरूप हैं। देश को ही वैदिकभाषा में 'लोक' कहा जाता है। इसे ही वैज्ञानिक लोग 'मूर्त्ति' कहते हैं। लोकभाषा इसे ही 'पिण्ड' नाम से सम्बोधित करती है। फलतः देशशब्द की इतिश्री पिण्डात्मक सत्तासिद्ध पदार्थों पर हो जाती है।

इन्द्र–वरुण आधिदैविक मैत्रावरुण ग्रह माना गया है । चूंकि त्रैलोक्यीय ऊर्ध्व–अधः नामक मध्यस्थ दोनों अवान्तर दिशाएं मित्रावरुण की सन्धि से युक्त रहती हुई पूर्व–पश्चिम दोनों दिशाओं से सम्बद्ध है, अतएव इन दोनों का हम पूर्व–पश्चिम दिशाओं में ही अन्तर्भाव मानना उचित समझते हैं । तात्पर्य इस दिग्विवेचन का प्रकृत में केवल यही है कि, दश दिशाओं का प्रधानरूप से पूर्वादि प्रसिद्ध चार दिशाओं में ही पर्य्यवसान हो जाता है ।

पूर्व–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण चारों के क्रमशः इन्द्र–वरुण–चन्द्रमा–यम चार देवता अधिपति हैं । इन्द्रदेवतामयी प्राची दिक् ही इतर दिशाओं की उक्थरूपा बनती है, अतएव इसे हम "ऋग्वेद" कहने के लिये तय्यार हैं । दक्षिणा दिक् यमाग्निमयी बनती हुई आग्नेय "यजुर्वेद" से सम्बन्ध रखती है । प्रतीचीदिक् आपोमयी वरुणमयी, बनती हुई अथर्वाङ्गिरस लक्षण "अथर्ववेद" है । एवं उदीचीदिक् सोममयी बनती हुई "सामवेद" है । इसी दिग्वेद-संस्था का दिग्दर्शन कराते हुए महर्षि तित्तिरि कहते हैं—

ऋचां प्राची महती दिगुच्यते–
दक्षिणामाहुर्यजुषामपाराम् ।
अथर्वणामङ्गिरसां—प्रतीची–
साम्नामुदीची महती दिगुच्यते ॥ (तै॰ब्रा॰३।१२।९।१) ।

दिग्वेदसंस्थापरिलेखः

१–प्राची–ऐन्द्री–→'ऋग्वेदः'
२–दक्षिणा–याम्या–→'यजुर्वेदः'
३–उदीची–सौम्या–→'सामवेदः'
४–प्रतीची–वारुणी–→'अथर्ववेदः'
→"दिग्वेदः"

इति–दिग्वेद निरुक्तिः

१५—देशवेदनिरुक्ति

स्थान को ही देश कहा जाता है। दिशा ही देशभाव की अनुग्राहिका बनती है। दूसरे शब्दों में दिशा ही देश की परिचायिका बनती है। जब कि देशपरिचायिका दिशा स्वयं भातिसिद्ध पदार्थ है तो, हम अवश्य ही दिशा द्वारा परिचित देश को भी भातिसिद्धपदार्थ ही कहेंगे। अतएव देशवेदसंस्था को भी भातिसिद्धवेदसंस्था का ही उदाहरण माना जायगा। पूर्वदेश पश्चिमदेश-उत्तरदेश-दक्षिणदेश इत्यादि शब्द स्पष्ट ही देशों को दिगनुबन्धी बतलाते हुए इन की भातिसिद्धता प्रकट कर रहे हैं। यह स्मरण रखने की बात है कि, देश अपने स्वरूप से, तो एक सत्तासिद्ध पदार्थ ही माना जायगा। क्योंकि देश का प्रदेशभाव से सम्बन्ध है, प्रदेश का मूर्त्तिभाव (पिण्डभाव) से सम्बन्ध है। एवं पिण्ड एक सत्तासिद्ध पदार्थ है। दिक् के सम्बन्ध से ही सत्तासिद्ध, धामच्छददेश—पदार्थों में भातिभाव का उदय होता है।

ऐसी परिस्थिति में हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ता है कि यदि देशशब्द से दिगनुबन्धी पूर्व पश्चिम—उत्तरादि देश गृहीत हैं, तब तो देशवेद भातिवेद का उदाहरण बनेगा। एवं उस दशा में पूर्वदेश ऋग्वेदमय, दक्षिणदेश यजुर्वेदमय उत्तरदेश सामवेदमय, पश्चिमदेश अथर्ववेदमय कहलाएगे। यदि देश का दिक् से सम्बन्ध न मानकर स्वतन्त्ररूप से विचार किया जायगा तो उस दशा में यही देशवेद सत्तानुबन्धी बनता हुआ सत्तासिद्ध वेदसंस्था का ही उदाहरण कहा जायगा। चूंकि दिगनुबन्धी देशवेद पूर्व के दिग्वेदप्रकरण से गतार्थ है, अतः प्रकृत में सत्तानुबन्धी विशुद्ध देशवेद का ही विचार अपेक्षित होगा।

पूर्वादिदिशाओं से असम्बद्ध देशपदार्थ एक सत्तासिद्ध पदार्थ है। सूर्य्य—चन्द्रमा पृथिवी-मनुष्य आदि जितने भी सत्तासिद्ध भौतिक पिण्ड हैं, देशरूप हैं। देश को ही वैदिकभाषा में 'लोक' कहा जाता है। इसे ही वैज्ञानिक लोग 'मूर्त्ति' कहते हैं। लोकभाषा इसे ही 'पिण्ड' नाम से सम्बोधित करती है। फलतः देशशब्द की इतिश्री पिण्डात्मक सत्तासिद्ध पदार्थों पर हो जाती है।

हमें जब भी जहां भी कुछ उपलब्ध होता है, उस उपलब्ध पदार्थ की 'अस्ति' रूप से प्रतीति हुआ करती है। सूर्य्य की उपलब्धि का स्वरूप 'सूर्योऽस्ति' यह सत्ताभाव ही है। सत्तात्मक सूर्य्यपिण्ड को (जिसे कि हम पूर्वपरिभाषानुसार देश कहेंगे) आधार बना कर ही हमें सूर्य्यपदार्थ की उपलब्धि होती है। इस प्रतीति की उपलब्धि का मूलाधार बनने वाला देशात्मक सूर्य्य ही देशवेद कहलाएगा। इस देशवेद में मूर्त्ति–मण्डल–गति भेद से तीनों वेदों का उपभोग हो रहा है। हमारी सूर्य्योपलब्धि का जो मूल आधार है, जिसे मूलाधार बना कर उपलब्धि होरही है, वह मूल पिण्ड उपलब्धि का उक्थ बनता हुआ पूर्वपरिभाषा के अनुसार 'ऋग्वेद' कहा जायगा।

उक्थ उस तत्त्व का नाम है, जिस से अनन्त अर्क (रश्मिए) बाहर की ओर निकल कर ऊर्ध्व–अधः–पूर्व–पश्चिम–उत्तर–दक्षिण सब ओर फैली रहें। उक्थ सदा एक रहता है, अर्क असंख्य होते हैं। पूर्व में यद्यपि हमने उक्थ पिण्ड को उपलब्धि का आधार बतलाया है, परन्तु वस्तुतः उपलब्धि के आधार ये ही अर्क बनते हैं। चूकि अर्कों का आधार स्वय पिण्ड है, इसलिए परम्परया मूलपिण्ड की भी आधारता सिद्ध होजाती है। सूर्य्यपिण्डरूप उक्थ केन्द्र से निकल कर चारों ओर पृथिवीपिण्ड से भी परेतक अर्क व्याप्त होरहे हैं। इन अर्कों का एक स्वतन्त्र तेजोमण्डल बना हुआ है। इसी अर्करूप तेजोमण्डल को 'सामवेद' कहा जायगा। तेजोमण्डलरूप बहि पृष्ठ, एवं सूर्य्यपिण्डरूप उक्थ पृष्ठ दोनों के मध्य में दोनों से योग करता हुआ जो संचरी भाव है, गतिमत् तत्त्व है, सूर्य्यबिम्ब से निकल कर पृथिवीपृष्ठ का स्पर्श करता हुआ जो अपने गतिमात्र से लोकालोकपृष्ठपर्य्यन्त अभिव्याप्त है, उसे ही 'ब्रह्म रूप 'यजुर्वेद' कहा जायगा। तात्पर्य्य कहने का यही हुआ कि, सत्त सिद्ध प्रत्येक पिण्ड देशवेद है। प्रत्येक पिण्ड में उक्थ-पृष्ठ ब्रह्म ये तीन विभाग रहते हैं। स्वय मूलपिण्ड उक्थ कहलाता है। मूलपिंड के केन्द्र से निकल कर बड़ी दूर तक व्याप्त होने वाला रश्मिमण्डल पृष्ठ कहलाता है। पिण्डकेन्द्र और मण्डल की अन्तिम परिधि दोनों के मध्य में विचरण करने वाला गतिमत्तत्त्व 'ब्रह्म' कहलाता है। चूकि सूर्य्य में ज्योतिर्भाव के कारण तीनों का प्रत्यक्ष भलीभांति हो जाता है, इसीलिए उसे उदा-

हरण बतला दिया है। वस्तुतः यह त्रयीभाव पिण्डमात्र में समझना चाहिए। जो रूपज्योतिर्मय (पृथिव्यादि) पिण्ड हैं, उनमें भी यही व्यवस्था है। पार्थिवतम के आवरण से ही पार्थिवरश्मिमण्डल का सूर्यरश्मिमण्डलवत् प्रत्यक्ष नहीं होता। वस्तुतस्तु जिसे प्रत्यक्ष कहा जाता है, उपलब्धि माना जाता है, वह तो मण्डल की ही होती है। जैसा कि पाठक आगे आने वाले वेदरहस्य प्रकरण में देखेंगे। यहां इस सम्बन्ध में यही जान लेना पर्य्याप्त होगा कि, स्वज्योतिर्मय (सूर्य्यादि पिण्ड हो, परज्योतिर्मय (चन्द्रमादि) पिण्ड हो, अथवा रूपज्योतिर्मय (पृथिव्यादि) पिण्ड हो, सब में उक्थ–ब्रह्म–पृष्ठ तीनों संस्थाएं नियमतः रहेंगी। स्वयं मूलपिण्ड उक्थ कहलाएगा इसे ही ऋग्वेद माना जायगा। मूलपिण्ड के केन्द्र से बद्ध होकर चारों ओर वितत तेजोमण्डल किंवा रश्मिमण्डललक्षण पृष्ठ सामवेद कहा जायगा। एवं उक्थपिण्ड और तेजोमण्डल दोनों से अनुगृहीत-गतिमद् प्राणब्रह्म यजुर्वेद कहलाएगा। इस प्रकार देशात्मक प्रत्येक सत्तासिद्ध पदार्थ में तीनों वेदों का उपभोग मिलेगा। जड़-चेतनात्मक यच्चयावद् पिण्डों में प्रकृत वेदव्यवस्था की समान रूप से ही व्याप्ति उपलब्ध होगी। निम्नलिखित श्रौत वचन इसी देशवेदसंस्था का समर्थन कर रहा है—

> ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः-
> सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
> सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत्-
> सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् ॥ (तै० ब्रा० ३।१२।९।१) ।

देशवेदसंस्थापरिलेखः

१—मूर्त्तिः—उक्थम्——→'ऋग्वेदः'	
२—वस्तुभावः–ब्रह्म——→'यजुर्वेदः'	——→"देशवेदः"
३—मण्डलम्-पृष्ठम्——→'सामवेदः'	

इति—देशवेदनिरुक्तिः

१८—कालवेदनिरुक्तिः

विश्वसृष्टिप्रवर्तक 'प्रतिष्ठापुरुष' (ब्रह्मा), विश्वसृष्टिपालक 'यज्ञपुरुष' (विष्णु , एवं इन दोनों पुरुषों के क्रमशः प्रवर्तित और पालित स्वयं विश्वप्रपञ्च विश्वसृष्टिसंहारक महापुरुषरूपेण जिस 'महाकाल' (महादेव) के गर्भ में अणुवत् समा रहा है, जो कालतत्त्व अपने इतर सब प्रपञ्चों को अपना ग्रास बनाए हुए है, जो कालपुरुष स्वयं काल (संहार) मर्य्यादा से अतीत बनता हुआ 'मृत्युञ्जय' नाम से प्रसिद्ध हो रहा है, मृत्यु ही जिस महाकाल का विश्वसंहारक ताण्डवनृत्य है, जो तत्त्व स्वयं विश्वातीत बनता हुआ अखण्ड–अद्वय–परात्पर है, जो तत्त्व विश्वविवर्त्त को अपनी कालरूपा माया महाकाली के द्वारा कालचक्र में फंसाता हुआ, स्वयं कालबन्धन से पृथक् रहता हुआ कालातीत है, उस अखण्ड, कालातीत, कालपुरुष के सम्बन्ध में खण्डभाव से सम्बन्ध रखने वाली शब्दतन्मात्रत्रयी वेदनिरुक्त का प्रदर्शन कराना तात्त्विक दृष्टि से यद्यपि सर्वथा अनुचित है, तथापि विश्वविवर्त्त के सोपाधिकभाव को ही आगे कर कालपुरुष को उपाधि से विभूषित कर, विश्वदृष्ट्या उसी अखण्ड के क्रमशः भूत-वर्त्तमान-भविष्यद् ये तीन खण्ड कर उसके इन सोपाधिकरूपों के साथ ही वेद का सम्बन्ध कराने का साहस किया गया है।

स्वयं विश्वातीत, अखण्ड, महाकालपुरुष यद्यपि विशुद्ध सत्तासिद्ध तत्त्व है, परन्तु उसी अखण्ड के खण्डात्मक भूत–वर्त्तमान–भविष्यत् तीनों सोपाधिकखण्ड विशुद्ध भातिसिद्ध ही माने जायंगे। सत्ता एक है भाति तीन हैं। विश्वमर्य्यादा से सम्बन्ध रखने वाले मानवीय व्यवहारकाण्ड में उस एक ही सत्तासिद्ध तत्त्व की तीन खण्डों में प्रतीति होरही है। तीनों ही खण्ड चूंकि भाति–भाव से सम्बन्ध रखते हैं अतएव इनका अनुगममर्य्यादा से ही सम्बन्ध रहता है। निश्चितभाव को निगममर्य्यादा कहा जाता है, एवं इसका प्रधानतया सत्भाव से ही सम्बन्ध है। अनिश्चित, विपरिणामी, परिवर्त्तनीय भाव को अनुगममर्य्यादा माना गया है एवं इसका भातिभाव से ही प्रधान सम्बन्ध है। खण्डात्मिका कालत्रयी चूंकि भातिमूल है अतएव अपेक्षाभाव के अनुग्रह से पर्व पर्व में, अणु अणु में तीनों खण्डों का समन्वय देखा जाता है।

जब सृष्टि न हुई थी, तो सारा प्रपञ्च भूतात्मक कालखण्ड के गर्भ में विलीन था। आज सृष्टि विद्यमान है, और यह वर्त्तमानात्मक कालखण्ड के आधार पर प्रतिष्ठित है। कोई समय ऐसा आवेगा, जिस दिन सम्पूर्ण विश्व भविष्यदात्मक कालखण्ड में विलीन हो जायगा। इस प्रकार विश्वसत्त काल को वर्त्तमान कहा जा सकता है, विश्व के पूर्वकाल को भूतकाल माना जा सकता है, एवं विश्व की उत्तरावस्था को भविष्यत् कहा जा सकता है। 'जायते' से पहिले भूतसत्ता, अस्ति-विपरिणमते-वर्द्धते-अपक्षीयते-चारों वर्त्तमानसत्ता, 'नश्यति' भविष्यत्सत्ता।

भूतकाल सृष्टि का मूल है। भूत ही वर्त्तमान का कारण बनता है। इसी आधार पर कितने एक दार्शनिक अभाव को भाव के प्रति कारण माना करते हैं। बात है भी सच। जो वस्तु नहीं रहती उसी की तो उत्पत्ति होती है। उत्पत्तिदशा वर्त्तमान है, 'नहीं' दशा भूत है। अतः अवश्य ही भूत को वर्त्तमान का जनक माना जा सकता है। इस वर्त्तमान का अवसान होता है भविष्यत् पर। इसी दृष्टि से काल के भूतपर्व को प्रभवस्थान वर्त्तमानपर्व को प्रतिष्ठास्थान, एवं भविष्यत् पर्व को परायणस्थान माना जा सकता है। भूतकाल विश्वप्रपञ्च का प्रभव बनता हुआ 'उक्थ' है, यही कालात्मक 'ऋग्वेद' है। भविष्यत्काल विश्वप्रपञ्च की अवसानभूमि बनता हुआ 'पृष्ठ' है, यही कालात्मक 'सामवेद' है। वर्त्तमानकाल भूतकालात्मक ऋक्, और भविष्यत् कालात्मक साम दोनों के मध्य में प्रतिष्ठित रहता हुआ, दोनों से युक्त रहता हुआ 'ब्रह्म' है, और यही कालात्मक 'यजुर्वेद' है। इस प्रकार महाविश्वानुबन्धी महाकालखण्डों में तीनों वेदों का उपभोग हो रहा है।

(क-)महाकालवेदसंस्थापरिलेखः

१—भूतकालः	—सृष्टेःप्रागवस्था	—उक्थम्	—ऋग्वेदः	"महाकालवेदः"
२—वर्त्तमानकालः	—सृष्ट्यवस्था	—ब्रह्म	—यजुर्वेदः	
३—भविष्यत् कालः	—सृष्टेरुत्तरावस्था	—पृष्ठम्	—सामवेदः	

१६—कालवेदनिरुक्तिः

विश्वसृष्टिप्रवर्त्तक 'प्रतिष्ठापुरुष' (ब्रह्मा), विश्वसृष्टिपालक 'यज्ञपुरुष' (विष्णु), एवं इन दोनों पुरुषों के क्रमशः प्रवर्तित और पालित स्वयं विश्वप्रपञ्च विश्वसृष्टिसंहारक महापुरुष-स्वरूप जिस 'महाकाल' (महादेव) के गर्भ में अणुवत् समा रहा है, जो कालतत्त्व अपने इतर सब प्रपञ्चों को अपना ग्रास बनाए हुए है, जो कालपुरुष स्वयं काल (संहार) मर्य्यादा से अतीत बनता हुआ 'मृत्युञ्जय' नाम से प्रसिद्ध हो रहा है, मृत्यु ही जिस महाकाल का विश्वसंहारक ताण्डवनृत्य है, जो तत्त्व स्वयं विश्वातीत बनता हुआ अखण्ड–अद्वय–परात्पर है, जो तत्त्व विश्वविवर्त्त को अपनी कालरूपा आद्या महाकाली के द्वारा कालचक्र में फंसाता हुआ, स्वयं कालबन्धन से पृथक् रहता हुआ कालातीत है, उस अखण्ड, कालातीत, कालपुरुष के सम्बन्ध में खण्डभाव से सम्बन्ध रखने वाली शब्दतन्मात्रा त्रयी वेदनिरुक्त का प्रदर्शन कराना तात्त्विक दृष्टि से यद्यपि सर्वथा अनुचित है, तथापि विश्वविवर्त्त के सोपाधिकभाव को ही आगे कर कालपुरुष को उपाधि से विभूषित कर, विश्वदृष्टया उसी अखण्ड के क्रमशः भूत-वर्त्तमान-भविष्यत् ये तीन खण्ड कर उसके इन सोपाधिकरूपों के साथ ही वेद का सम्बन्ध कराने का साहस किया गया है।

स्वयं विश्वातीत, अखण्ड, महाकालपुरुष यद्यपि विशुद्ध सत्तासिद्ध तत्त्व है, परन्तु उसी अखण्ड के खण्डात्मक भूत–वर्त्तमान–भविष्यत् तीनों सोपाधिकखण्ड विशुद्ध भातिसिद्ध ही माने जायंगे। सत्ता एक है भाति तीन हैं। विश्वमर्य्यादा से सम्बन्ध रखने वाले मानवीय व्यवहार-काण्ड में उस एक ही सत्तासिद्ध तत्त्व की तीन खण्डों में प्रतीति होरही है। तीनों ही खण्ड चूंकि भाति–भाव से सम्बन्ध रखते हैं अतएव इनका अनुगममर्य्यादा से ही सम्बन्ध रहता है। निश्चितभाव को निगममर्य्यादा कहा जाता है, एवं इसका प्रधानतया सत्ता भाव से ही सम्बन्ध है। अनिश्चित, विपरिणामी, परिवर्त्तनीय भाव को अनुगममर्य्यादा माना गया है एवं इसका भातिभाव से ही प्रधान सम्बन्ध है। खण्डात्मिका कालत्रयी चूंकि भातिमूल है अतएव अपेक्षा-भाव के अनुग्रह से पर्व पर्व में, अणु अणु में तीनों खण्डों का समन्वय देखा जाता है।

(ख)-कालवेदसंस्थापरिलेखः

१–पूर्वाह्नबिन्दुः———भूतकालः-उक्थम्-॥ 'ऋग्वेदः'
२–मध्यकालः———वर्त्तमानकाल.-ब्रह्म-॥ 'यजुर्वेदः' →'कालवेदः'
३–अपराह्णावसानबिन्दुः-भविष्यत्कालः-पृष्ठम्॥ 'सामवेदः'

इति–कालवेदनिरुक्तिः

———०:#:०———

१७–वर्णवेदनिरुक्तिः

ब्राह्मण में रहने वाला ब्राह्मणत्व, क्षत्रिय का क्षत्रियत्व, एवं वैश्य का वैश्यत्व जिस तत्त्व से सुरक्षित रहता है, जिस तत्त्व के सुरक्षित रहने से ब्राह्मणादि, ब्राह्मणादि कहलाने के अधिकारी बनते हैं, उसी तत्त्व को "वर्ण" कहा जाता है। प्रकृति-साम्राज्य में विचरण करने वाले अष्टाक्षर गायत्रीछन्द से छन्दित प्रात.सवन के संचालक प्राणाग्नि, देवता ही "ब्रह्मतत्त्व" है, इसे ही, "ब्रह्मवीर्य्य" कहा जाता है। एवं यही आधिदैविक संस्था का "ब्राह्मण वर्ण" है, जैसा कि–"अग्ने! महां असि ब्राह्मण भारतेति" इत्यादि वचन से स्पष्ट है। जिस की उत्पत्ति इस ब्रह्मवर्ण से युक्त माता-पिता के रजोवीर्य्य के दाम्पत्य से सम्बन्ध रखती है, वही मनुष्यों में जाता ब्राह्मण' कहलाता है।

एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्द से छन्दित, माध्यन्दिनसवन के सञ्चालक, प्राणेन्द्र देवता ही 'क्षत्रतत्त्व' है, इसे ही "क्षत्रवीर्य्य" कहा जाता है, एवं यही आधिदैविक संस्था का 'क्षत्रियवर्ण' है। जिस की उत्पत्ति एतद्युक्त दाम्पत्यभाव से होती है, मनुष्यों में वही जाता 'क्षत्रिय' कहलाता है। द्वादशाक्षर जगती छन्द से छन्दित, सायसवन के सञ्चालक, प्राणात्मक 'विश्वेदेव' नामक देवसमष्टि ही "विट्तत्त्व" है, इसे ही 'विट्वीर्य्य" कहा जाता है, एवं यही

पूर्वोक्त अनुगममर्य्यादा की कृपा से आगे जाकर स्वयं विश्वदशा में इस महाकालखण्डत्रयी के अनन्त–अपरिमेय खण्ड हो जाते हैं इन्हीं खण्डों के आधार पर पुराणशास्त्र की महाप्रलय प्रलय, खण्डप्रलय, नित्यप्रलय आदि अनेक प्रलयावस्था प्रतिष्ठित हैं। विश्वसीमा से भी बाहिर तक दौड़ लगाने में सामान्य बुद्धि वालों को चूंकि कष्ट होता है, अतएव वेदमहर्षि ने विश्वमर्यादा के भीतर ही कालवेद के दर्शन कराए हैं। विश्व मर्यादा भी दुरधिगम्य है। सभी वहां भी नहीं पहुच सकते। इसी लिए सर्वानुभूत अहःकाल के ही पूर्वाह्ण—मध्याह्न—अपराह्ण तीन विभागों के द्वारा बड़ी सुगमता से कालवेदत्रयी का स्वरूप हमारे सामने रख दिया है।

प्रातःकाल पूर्वाह्ण का उपक्रमस्थान है, सायकाल अपराह्ण का उपसंहारस्थान है, बीच का सारा समय मध्याह्न है। पहिला भूत है अन्त का भविष्यत् है, मध्य का वर्त्तमान है। पूर्वाह्णोपलक्षित भूतकाल, आगे का 'उक्थ' बनता हुआ 'ऋग्वेद' है। अपराह्णोपलक्षित भविष्यत्काल अवसानलक्षण 'पृष्ठ' बनता हुआ 'सामवेद' है। एवं मध्याह्नोपलक्षित वर्त्तमानकाल प्रतिष्ठालक्षण 'ब्रह्म' बनता हुआ, दोनों से योग करता हुआ 'यजुर्वेद' है। इस प्रकार एक ही अहःकाल में तीनों वेदों का उपभोग हो रहा है, और इस उपभुक्त वेदत्रयी का भोग कर रहे हैं—अपने यज्ञ के प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन, सायसवन नाम तीनों पर्वों से अहःपति सूर्य्यदेवता। निम्न लिखित श्रुति इसी कालवेद का दिग्दर्शन करा रही है—

> ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते—
> यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः।
> सामवेदेनास्तमये महीयते—
> वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्य्यः॥ (तै०ब्रा०३।१२।९।१)।

ब्राह्मणवर्ण का विकास ज्ञानशक्तियुक्त इन्द्रानुगत सामवेद से हुआ है। क्रियाशक्तियुत क्षत्रियवर्ण की उत्पत्ति क्रियाशक्तियुत वाय्वनुगत यजुर्वेद से हुई है। एवं अर्थशक्तियुत वैश्यवर्ण की प्रसूति अर्थशक्तियुत अग्न्यनुगत ऋग्वेद से हुई है। तत्त्वतः ब्राह्मणवर्ण सामवेदरूप है, क्षत्रियवर्ण यजुर्वेदरूप है, एवं वैश्यवर्ण ऋग्वेदरूप है।

ज्ञान–क्रियाभावों का उक्थ 'अर्थ' ही माना गया है। अर्थ के आधार पर ही ज्ञान-कर्म पुष्पित, तथा पल्लवित होते है। इसी उक्थभाव के कारण उक्थरूप वैश्य को "ऋग्वेद" कहना न्यायसङ्गत होता है। ज्ञान पर सम्पूर्ण कर्म–कलाप का अवसान है। ज्ञानोदय होने पर अर्थ–कर्म सब का अवसान हो जाता है। इसी पृष्ठलक्षण अवसानभाव से ब्राह्मण को "सामवेद" कहना अन्वर्थ बनता है। क्रियारूप क्षत्रिय दोनों के मध्य में रहता हुआ, दोनों से योग रखता हुआ दोनों को प्रतिष्ठित रखने वाला, दोनों में सामञ्जस्य रखने वाला है, अतएव प्रतिष्ठारूप ब्रह्मात्मक क्षत्रिय को "यजुर्वेद" कहना उचित हो जाता है। इस प्रकार वर्णत्रयी में क्रमशः तीनों वेदों का उपभोग सिद्ध हो जाता है। इसी वर्णवेद का स्पष्टीकरण करती हुई श्रुति कहती है–

> ऋग्भ्यो जातं वैश्यवर्णमाहुः—
> यजुर्वेदं क्षत्रियस्याऽऽहुर्योनिम्।
> सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः—
> पूर्वे पूर्वेभ्यो वच एतदूचुः॥ (तै०ब्रा०१३।१२।९।२)।

वर्णवेदसंस्थापरिलेखः—

१–पृथिवी—अग्निः–अर्थः–उक्थम्—विट्→"ऋग्वेदः"
२–अन्तरिक्षम्–वायुः–क्रियाः-ब्रह्म—क्षत्रम→"यजुर्वेदः"
३–द्यौः——इन्द्रः–ज्ञानम् पृष्ठम्—ब्रह्म→"सामवेदः"

(तीनों मिलकर) →'वर्णवेदः'

इति–वर्णवेदनिरुक्तिः

आधिदैविकसंस्था का 'वैश्यवर्ण' है। जिस का जन्म इन विश्वेदेवों को प्रधानता देनेवाले शुक्र-शोणित से होता है, उसे ही मनुष्यों में "वैश्य" कहा जाता है। प्रकृति में तीन ही देवता सच्छन्दस्क बनते हुए वीर्य्यरूप हैं। दूसरे शब्दों में वर्ण तीन ही मुख्य हैं। अतएव चौथा शूद्रवर्ण पार्थिव पूषाप्राण-सम्बन्ध से वर्ण' कहलाता हुआ भी स्वछन्द है, स्वतन्त्र है, यथाजात है, वेदमर्य्यादा से बहिष्कृत है। इसी छन्दोविज्ञान को लक्ष्य में रख कर श्रुति कहती है—

"गायत्र्या ब्राह्मणं निरवर्त्तयत् त्रिष्टुभा राजन्यं,
जगत्या वैश्यं न केनचिच्छन्दसा शूद्रं निरवर्त्तयत्"

वर्णतत्त्व प्राणदेवतारूप है, अतएव यह विशुद्ध 'सत्तासिद्ध' पदार्थ है। शुक्र शोणित-रूप भूतों में रहने वाली इस वर्णत्रयी का हम अपनी किसी इन्द्रिय से भान नहीं कर सकते। हां तत्तद्वर्णोचित तत्तद्विशेषताओं द्वारा अनुमान अवश्य ही लगाया जा सकता है। परन्तु जिस प्रकार मनुष्य-पशु-पक्षी इत्यादि उभयसिद्ध पदार्थों का हमें भान होता है, वैसे यदि कोई वर्णतत्त्व की अपने चर्म्मचक्षुओं से प्रतीति करना चाहे, तो उस का यह प्रयास व्यर्थ होगा। कारण स्पष्ट है। वर्णतत्त्व प्राणात्मक है, एवं प्राणतत्त्व रूप-रस-गन्धादि पञ्चतन्मात्राओं की मर्य्यादा से बहिर्भूत है। इधर इन्द्रियां उसी सत्तासिद्ध पदार्थ का भान करने में समर्थ हैं जो सत्ताभाव तन्मात्रामूलक भूतों से वेष्टित रहते हैं। यही कारण है कि, ब्राह्मणादि वर्णों के परिचय के लिए ब्राह्मणादि मनुष्यों में ऐसा कोई बाह्य चिह्न नहीं है, जिस के आधार पर आप विशुद्ध बाह्यदृष्टि से बाह्य आकार के आधार पर ब्राह्मणादि वर्णों का विभाजन कर सकें। वर्ण-तत्त्व प्राणात्मक, अतएव विशुद्धसत्तात्मक बनता हुआ केवल बुद्धिगम्य ही माना जायगा।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य, तीनों वर्ण क्रमशः ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति-अर्थशक्ति, इन तीन शक्तियों के प्रवर्त्तक माने गए हैं। उधर पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ, इन तीन लोकों के अग्नि-वायु-इन्द्र ये तीन अतिष्ठाता (अधिष्ठाता) देवता बतलाए गए हैं। पार्थिव अग्नि अर्थशक्ति के, आन्तरिक्ष्य वायु क्रियाशक्ति के, एवं द्युलोकस्थ मघवेन्द्र ज्ञानशक्ति के प्रवर्त्तक हैं। साथ ही में अर्थशक्तिप्रधान अग्नि का ऋग्वेद से, क्रियाशक्तिप्रधान वायु का यजुर्वेद से, एवं ज्ञानशक्ति-प्रधान इन्द्र का सामवेद सम्बन्ध है फलतः यही निष्कर्ष निकलता है कि, ज्ञानशक्तियुत

भूमिकाप्रथमखण्डोपसंहार

'क्या उपनिषत् वेद है ? इस प्रश्न की मीमांसा चल रही है। इस सम्बन्ध में दार्शनिकदृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले मतवादों का निरूपण करते हुए वैज्ञानिकदृष्टि से वेद के तात्त्विक स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है। अब आगे के द्वितीयखण्ड में इसी प्रश्न से सम्बन्ध रखने वाले वेद के तात्त्विक स्वरूप का विस्तार से निरूपण होगा । जिन सत्रह वेदनिरुक्तियों का प्रस्तुतखण्ड में दिग्दर्शन कराया गया है, उनमें सर्वत्र त्रिवृद्भाव की व्याप्ति है । इस त्रिवृद्भाव की व्याप्ति से ही ये निरुक्तियाँ अधिकाश में समभावापन्न बन रहीं हैं। अतएव इन सब वेदनिरुक्तियों का हम 'आत्मवेद' में अन्तर्भाव मान सकते हैं।

इसी आत्मवेद का आगे जाकर 'प्राजापत्यवेद' रूप से विकास होता है। एवं अगले खण्ड का प्रथम प्रकरण इस प्राजापत्यवेद का स्पष्टीकरण करता हुआ तत्समतुलित शाखवेद का ही उपबृंहण करने वाला है । तात्त्विकवेद की कितनीं शाखा हैं ? शाखवेद की नियमित शाखाएं ही क्यों हुईं ? इत्यादि प्रश्नों का विशद समाधान करने वाला अगला प्रकरण वेदप्रेमियों के लिए एक विशेष अनुरञ्जन की सामग्री होगी। हमें यह विश्वास है कि, यदि पाठकोंने इस भूमिका–खण्डों को देखने का कष्ट उठाया, तो उपनिषदों से सम्बन्ध रखने वाले वैज्ञानिक–इतिवृत्त के साथ साथ वेद के पौरुषेय–अपौरुषेयवाद से सम्बन्ध रखने वाले चिरकालिक विसंवाद का भलीभाति समन्वय होजायगा । इसी समन्वय भावना को आगे रखते हुए प्रस्तुत खण्ड उपसंहृत होता है।

इति-उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिकायाः
प्रथमखण्डः–समाप्तः